अथातो भक्ति जिज्ञासा भाग-२

प्रवेश से पूर्व

'पूछा तुमने, कैसा धर्म इस प्रथ्वी पर आप लाना चाहते हैं?

जीवन-स्वीकार का धर्म। परम स्वीकार का धर्म।

चूंकि जीवन-अस्वीकार की बातें बहुत प्रचलित रही हैं, इसलिये स्वभावतः लोग देह के विपरीत हो गए। अपने शरीर को ही सताने में संलग्न हो गए। और यह देह परमात्मा का मंदिर है। मैं इस देह की प्रतिष्ठा करना चाहता हूं। और चूंकि लोग संसार के विपरीत हो गए, देह के विपरीत हो गए, इसलिए देह के सारे सबंधों के विपरीत हो गए। भूल हो गई।

देह के ऐसे सबंध हैं, जिनसे मुक्त होना है। और देह के ऐसे सबंध हैं, जिनमें और गहरे जाना है। प्रेम ऐसा ही सबंध है। प्रेम में गहराई बढ़ना चाहिए। घृणा में गहराई घटनी चाहिए। घृणा से तुम मुक्त हो सको,तो सैभाग्य। लेकिन अगर प्रेम से मुक्त हो गए तो दुर्भाग्य! और मजा यह है कि अगर तुम्हें घृणा से मुक्त होना हो तो सरल रास्ता यह है कि प्रेम से भी मुक्त हो जाओ। और तुम्हारे अब तक के साधु-संन्यासियों ने सरल रास्ता पकड़ लिया। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी! लेकिन बांस और बांसुरी में बड़ा फर्क है। बांसुरी बजनी चाहिए। बांस से बांसुरी बनती है, लेकिन बांसुरी बड़ा रूपांतरण है। बांसुरी सिर्फ बांस नहीं है। बांसुरी में क्रांति घट गई। तुम अभी बांस जैसे हो, बांसुरी बन सकते हो।

घृणा से भयभीत हो गए लोग। क्रोध से भयभीत हो गए। भाग गए जंगलों में। जब कोई रहेगा ही नहीं पास,तो न घृणा होगी, न क्रोध होगा। यह तो ठीक, लेकिन प्रेम का क्या होगा? प्रेम भी नहीं होगा। इसलिए तुम्हारे तथाकथित महात्मा प्रेम शून्य हो गए। प्रेम रिक्त हो गए। उनके प्रेम की रस धार सुख गई। वे मरूस्थल की भांति हो गए। और वहीं चूक हो गई। परमात्मा तो मिला नहीं, संसार जरूर खो गया। सत्य तो मिला नहीं, इतना ही हुआ कि जहां सत्य मिल सकता था, जहां सत्य को खोजा जा सकता था, जहां चुनौती थी पाने की, उस चुनौती से बच गए। एक तरह की शांति मिली—लेकिन वह मुर्दा, मरघट की। एक और शांति है—उत्सव की,जीवन उपवन की। मैं उसी शांति के धर्म को लाना चाहता हूं।

तुम जीवन को अंगीकार करो, देह को अंगीकार करो। परमात्मा ने जो दिया है, सब अंगीकार करो। उसने दिया है तो उसमें कुछ राज छिपा होगा ही! इस वीणा को फेंक मत देना, इसमें संगीत छिपा है। इसे बांस मत समझ लेना, इसमें बांसुरी बनने की क्षमता है। जल्दी छोड़-छाड़ कर भाग मत जाना। तलाश करना। हालांकि तलाश बहुत कठिन है। होनी ही चाहिए। क्योंकि तलाश के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। जो खोजने जाएगा, वह पाएगा। इसी जीवन में खोजना है।

परमात्मा ने संसार बनाया कभी, ऐसा मत सोचो। परमात्मा संसार रोज बना रहा है, प्रतिपल बना रहा है। तो यह धारणा तुम्हारी गलत है कि परमात्मा ने सृष्टि की। परमात्मा सृष्टि कर रहा है। और अगर तुम मेरी बात और भी ठीक से पकड़ना चाहो, तो मैं कहता हूं : परमात्मा कोई अलग व्यक्ति नहीं है कि बैठा है और बना रहा है चीजों को। कुम्हार नहीं है कि घड़े बना रहा है। नर्तक है—नाच रहा है। उसका नाच उसका अंग है। इन सब फूलों में, पत्तों में, सागरों में, सरोवरों में उसका नाच है। तुममें, मुझमें,बुद्ध-महावीर में —उसका नाच है। उसकी भावभंगिमाएं हैं। उसकी अलग-अलग मुद्राएं हैं। इनमें पहचानों!

तो मैं भगोड़े धर्म से छुटकारा दिलाना चाहता हूं। देह स्वीकृत हो—देह मंदिर बने। प्रेम स्वीकृत हो—प्रेम पूजा बने। संसार का सम्मान हो, क्योंकि उसमें स्रष्टा छिपा है। अभी भी उसके हाथ काम कर रहे हैं। अगर तुम जरा संसार में गहरा प्रवेश करोगे तो उसके हाथ का स्पर्श तुम्हें मिल जाएगा, उसका हाथ तुम्हारे हाथ में आ जाएगा।

तो मूल्यों का एक पुनर्मूल्यांकन करना है। सारे मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करना है। और पृथ्वी आज तैयार हो गई है इस घटना के लिए। क्योंकि पांच हजार साल के दमनकारी धमो ने, पलायनवादी धमो ने मनुष्य को काफी सजग कर दिया है। मनुष्य तैयार है कि अब कुछ नया आविर्भाव होना चाहिए। लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, लोग

आतुरता से राह देख रहे हैं, कि परमात्मा का कोई नया अवतरण होना चाहिए। कोई नई भाषा मिलनी चाहिए धर्म को। और चूंकि ऐसी भाषा नहीं मिल पा रही है, और ऐसा नया अवतरण नहीं हो पा रहा है, और लोगों को दिखाई नहीं पड़ रहा है कि कैसे धार्मिक हों, तो गलत धर्म पैदा हो रहे हैं। वे भी खोज की वजह से पैदा हो रहे हैं। आदमी के भीतर अनिवार्य तड़प है। और तड़प गहरी हो गई है। क्योंकि सब पुराने धर्म फीके पड़ गए हैं। तो मनुष्य बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा है : कोई नई किरण उतरे।

इसलिए मैंने कहा कि यह गैरिक आग फैलती जाए सारी दुनिया में तो नई किरण उतर सकती है। और इस तरह का संन्यास ही अब भविष्य का संन्यास हो सकता है। भगोड़ा संन्यास नही हो सकता। जीवन को अंगीकार करने वाला संन्यास ही भविष्य में स्वीकृत हो सकता है।

और मैं कोई कारण नहीं देखता हूं कि कहीं भागकर जाने की जरूरत है। तुम जहां हो, वहीं अगर तुमने हृदयपूर्वक पुकारा तो परमात्मा आता है। असली बात हृदयपूर्वक पुकारने की है।

ओशो

द्यूतराजसेवयोः प्रतिषेधाच्च ।।५१।।

वासुदेवेऽपीति चेन्नाकारमात्रत्वात् ।।५२।।

प्रत्यभिज्ञान्नाच्च ।।५३।।

वृष्णिषु श्रेष्ठत्वमेतत् ।।५४।।

एवं प्रसिद्धेषु च ।।५५।।

भगवान को नहीं, भक्त को खोजो

पहला प्रवचन

अथातो भक्तिजिज्ञासा!

अब भक्ति की जिज्ञासा।

भक्ति की क्यों? भगवान की क्यों नहीं?

साधारणतः लोग भगवान की खोज में निकलते हैं। और चूंकि भगवान की खोज में निकलते हैं इसलिए ही भगवान को कभी उपलब्ध नहीं हो पाते। भगवान की खोज ऐसी ही है जैसे अंधा आदमी प्रकाश की खोज में निकले। अंधे को आंख खोजनी चाहिए, प्रकाश नहीं। आंख का उपचार खोजना चाहिए, प्रकाश नहीं। प्रकाश तो है, उसकी खोज की जरूरत भी नहीं है, आंख नहीं है। इसलिए जो व्यक्ति भगवान की खोज में निकला, वह भटका। जो व्यक्ति भक्ति की खोज में निकलता है, वह पहुंचता है।

भक्ति यानी आंख। भक्ति यानी कुछ अपने भीतर रूपांतरित करना है। भक्ति का अर्थ हुआ, एक क्रांति से गुजरना है।

अथातो भक्तिजिज्ञासा। साधारणतः कोई विचार करेगा तो लगेगा सूत्र शुरू होना चाहिए था—अब भगवान की जिज्ञासा। लेकिन सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। सूत्र भगवान की बात ही नहीं उठाता। भगवान से तुम्हारा संबंध ही कैसे होगा? भगवान से संबंधित होनेवाला हृदय अभी नहीं, अभी वह तरंग नहीं उठती भीतर जो जोड़ दे तुम्हें। अभी आंखें अंधी हैं, अभी कान बहरे हैं। इसलिए भगवान को छोड़ो। उस चिंता में न पड़ो। भक्ति को जगा लो! इधर भक्ति जगी, उधर भगवान मिला। इधर आंख खुली, उधर सूरज के दर्शन हुए। इधर कानों का बहरापन मिटा कि नाद ही नाद है, ओंकार ही ओंकार छाया हुआ है। सारा जगत अनाहत की ही अभिव्यक्ति है। इधर हृदय में तरंगें उठीं कि जो नहीं दिखायी पड़ता, वह दिखायी पड़ा।

एक तो बुद्धि है, जो विचार करती है और एक हृदय है, जो अनुभव करता है। हमारे अनुभव की ग्रंथि बंद रह गयी है। खुली नहीं; गांठ बनी रह गयी है। हमारे अनुभव करने की क्षमता फूल नहीं बनी। इसलिए प्रश्न उठता

है—भगवान है या नहीं? लेकिन प्रश्न अगर जरा ही गलत हुआ तो उत्तर कभी सही नहीं हो पाएगा। भक्ति की जिज्ञासा करो!

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं—भगवान कहां है? मैं उनसे पूछता हूं—भक्ति कहां है? भक्ति पहले होनी चाहिए। लेकिन उनके प्रश्न की भी बात विचारणीय है। वे कहते हैं, जब तक हमें भगवान का पता न हो, तब तक भक्ति कैसे हो? किसकी भक्ति करें? कैसे करें? कहां जाएं, किसके चरणों में झुकें? भगवान का भरोसा तो पहले होना चाहिए। तभी तो हम झुक सकेंगे। क्योंकि भगवान की खोज की उन्होंने गलत जिज्ञासा उठा दी है, अब इस गलत जिज्ञासा के कारण बहुत से गलत समाधान उठते रहेंगे। भक्ति के लिए भगवान की कोई जरूरत नहीं है। आंख के उपचार के लिए सूरज की क्या जरूरत है? भक्ति के लिए सिर्फ तुम्हारे प्रेम के, भाव के बढ़ने की जरूरत है, भगवान की कोई जरूरत ही नहीं है। प्रेम को इतना बढ़ाओ कि अहंकार उसमें डूब जाए, लीन हो जाए। जहां प्रेम निर-अहंकार को उपलब्ध हो जाता है, वहीं भक्ति बन जाता है।

भक्ति का भगवान से कुछ भी संबंध नहीं है। भक्ति तो प्रेम का ऊर्ध्वगमन है। प्रेम को मुक्त करो क्षुद्र से। प्रेम को बड़ा करो। प्रेम की बूंद को सागर बनाओ। जिससे भी प्रेम करते हो, गहनता से करो। जहां भी प्रेम हो, वहीं अपने को पूरा ऊंड़ेल दो। कंजूसी न करो। अगर प्रेम कृपण हो, तो काम हो जाता है, और प्रेम अगर अकृपण हो तो भक्ति हो जाता है। प्रेम अगर मांगता हो, तो वासना हो जाता है; प्रेम अगर देना ही जानता हो, तो भक्ति हो जाता है।

लुटाओ प्रेम। उसी लुटने में तुम भक्त हो जाओगे। और जहां तुम भक्त हुए, वहीं भगवान का दर्शन है।

तुमसे कहा गया है बार-बार कि भगवान पर भरोसा करो ताकि भक्ति हो सके। मैं तुमसे कहना चाहता हूं, भक्ति को जगाओ ताकि भगवान पर भरोसा हो सके। और शांडिल्य के सूत्र मेरे पक्ष में खड़े हैं। शांडिल्य कहते हैं—अथातो भक्ति जिज्ञासा; अब भक्ति की जिज्ञासा करें। और जिसने भक्ति की जिज्ञासा नहीं की, वह आया तो संसार में, आ नहीं पाया, जीया और जी नहीं पाया। हुआ और हो नहीं पाया। उसकी कथा दुर्दिनों की कथा है और दुर्घटनाओं की अवसर मिले, लेकिन कोई भी अवसर फला नहीं। जो भक्ति के बिना जी लिया, जो भगवान को बिना जाने जी लिया, उसके जीवन को क्या खाक जीवन कहें!

श्री अरविंद ने कहा है: जब मैं जागा तब मैंने जाना कि जीवन क्या है। उसके पहले तो जो जाना था, वह मृत्यु ही थी। उसे भ्रांति से जीवन समझ बैठा था। जब आंख खुली तब पहचाना रोशनी क्या है। उसके पहले जिसे रोशनी समझी थी, वह तो अंधेरा निकला। जब हृदय खुला तो अमृत की पहचान हुई; उसके पहले तो मृत्यु को ही अमृत समझ बैठे थे।

अंधा आदमी पत्थर को हीरा समझ ले, आश्चर्य क्या? अंधे को परख भी कैसे हो पत्थर की और हीरे की? अंधे को दोनों पत्थर हैं। आंख फर्क लाती है। आंख में जौहरी छिपा है।

तो खयाल रखना, अगर भक्ति की जिज्ञासा नहीं उठी है तो समझना कि अभी तुम जन्मे ही नहीं। अभी तुम गर्भ में ही पड़े हो। अभी तुम बीज ही हो। अभी अंकुरण नहीं हुआ। अभी जीवन की जो परम संपदा है उसकी भनक भी तुम्हारे कानों में नहीं पड़ी।

दिल में सोजे-गम की इक दुनिया लिये जाता हूं मैं

आह तेरे मैकदे से बेपिये जाता हूं मैं

जो बिना भक्ति के चला गया है, वह इस मधुशाला में आया और बिना पीये चला गया। आह तेरे मैकदे से बेपिये जाता हूं मैं।

इस जगत को पीने की कला है भक्ति। और जगत को जब तुम पीते हो तो कंठ में जो स्वाद आता है, उसी का नाम भगवान है। इस जगत को पचा लेने की कला है भक्ति। और जब जगत पच जाता है तुम्हारे भीतर और उस पचे हुए जगत से रस का आविर्भाव होता है—रसो वै सः—उस रस को जगा लेने की कीमियां है भक्ति।

शांडिल्य ने ठीक ही किया जो भगवान की जिज्ञासा से शुरू नहीं की बात। भगवान की जिज्ञासा दार्शनिक करते हैं। दार्शनिक कभी भगवान तक पहुंचते नहीं; विचार करते हैं भगवान का। जैसे अंधा विचार करे प्रकाश का। बस ऐसे ही उनके विचार हैं। अंधे की कल्पनाएं, अनुमान। उन अनुमानों में कोई भी निष्कर्ष कभी नहीं। निष्कर्ष तो अनुभव से आता है।

शांडिल्य के सूत्र दर्शनशास्त्र के सूत्र नहीं हैं, प्रेमशास्त्र के सूत्र हैं। इसलिए पहले सूत्र में ही शांडिल्य ने अपनी यात्रा का सारा संकेत दे दिया—मैं किस तरफ जा रहा हूं।

इसके पहले कि मौत तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे—और मौत दस्तक देगी ही—तुम भक्ति की जिज्ञासा करो। मौत आए, उसके पहले भक्ति आ जाए, ऐसे जीवन का नियोजन करो। इसी को मैं संन्यास कहता हूं। जीवन का ऐसा नियोजन कि मौत के पहले भक्ति आ जाए, तो तुम कुशलता से जिए, तो तुम होशियार थे, तो तुम्हारे भीतर बुद्धिमत्ता थी।

वख्त की शईए-मुसलसल कारगर होती गयी

जिंदगी लहजा-ब-लहजा मुख्तसर होती गयी

सांस के पर्दों में बजता ही रहा साजे-हयात

मौत के कदमों की आहट तेजतर होती गयी

सुन रहे हो? ये सांस की वीणा बजती ही रहेगी और मौत करीब आती जा रही है। 'सांस के पर्दों में बजता ही रहा साजे-हयात' यह जिंदगी का गीत सांस के बाजे पर बजता ही रहेगा। इसी में मत भटके रहना।

सांस के परदों में बजता ही रहा साजे-हयात

मौत के कदमों की आहट तेजतर होती गयी

जरा गौर से सुनो, मौत के कदम रोज-रोज करीब आते जा रहे हैं। मौत फासला कम कर रही है। जिस दिन से तुम पैदा हुए हो, उसी दिन से मौत फासला कम करने में लग गयी है : तुम रोज मर रहे हो। सांसों में बहुत भटके मत रहना। इनका बहुत भरोसा नहीं। अभी आ रही है सांस, अभी न आएगी तो कुछ भी न कर सकोगे। अवश पड़े रह जाओगे। तब बहुत पछताओगे। आह तेरे मैकदे से बेपिये जाता हूं मैं। रोओगे फिर, लेकिन तब बहुत देर हो चुकी। कहते हैं सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता। लेकिन सांझ भी आ जाए तो! अगर मौत आ गयी तो सांझ भी आयी और गयी। फिर लौटने का उपाय न रहा, समय न रहा।

मौत का अर्थ क्या होता है? इतना ही कि जितना समय तुम्हें दिया था, चुक गया। मौत का अर्थ होता है, जितना अवसर तुम्हें दिया था, तुमने गंवा दिया। मौत का अर्थ होता है, अब और समय नहीं बचा। अब करने का कोई उपाय नहीं। एक आह भी न भर सकोगे। एक प्रार्थना भी न कर सकोगे। राम का नाम भी न ले सकोगे। सांस ही न लौटी तो राम का नाम अब कैसे ले सकोगे? एक नाम रहने की भी, लेने की भी सुविधा नहीं बचती।

और मौत रोज करीब आ रही है। और तुम जिंदगी की सांसों में उलझे पड़े रहते हो। अथातो भक्ति जिज्ञासा! अब भक्ति की जिज्ञासा करो!

इसके पहले कि हम आज के सूत्रों में उतरें, कुछ पिछले सूत्रों का थोड़ा-सा स्वाद ले लेना जरूरी है।

पूर्व-सूत्र :

सूर्य को देखने के दो उपाय हो सकते हैं। एक तो सीधा सूरज को देखो और एक दर्पण में सूरज को देखो। हालांकि दर्पण में जो दिखायी पड़ता है वह प्रतिबिंब ही है, असली सूरज नहीं। प्रतिबिंब तो प्रतिबिंब ही है, असली कैसे होगा? वह असली का धोखा है। वह असली की छाया है। इसलिए सूरज को देखने को दो ढंग हैं यह कहना भी शायद ठीक नहीं, ढंग तो एक ही है—सीधा देखो। दूसरा ढंग कमजोरों के लिए है, कायरों के लिए है। जो लोग शास्त्र में सत्य को खोजते हैं, वे कायर हैं। वे दर्पण में सूरज को देखने की कोशिश कर रहे हैं। दर्पण में सूरज दिख भी जाएगा तो भी किसी काम का नहीं। छाया मात्र है। दर्पण के सूरज को तुम पकड़ न

पाओगे। शास्त्र में जो सत्य की झलक मालूम होती है, झलक ही है, लेकिन लोगों ने शास्त्र सिर पर रख लिये हैं। कोई गीता, कोई कुरान, कोई बाइबिल। लोग शास्त्रों की पूजा में लगे हैं। यह दर्पण की पूजा चल रही है; सूरज को तो भूल ही गये। और दर्पणों पर इतने फूल चढ़ा दिये हैं पूजा के कि अब उनमें प्रतिबिंब भी नहीं बनता। उन पर व्याख्याओं की इतनी धूल जमा दी है, सिद्धांतों का इतना जाल फैला दिया है कि अब शास्त्रों से कोई खबर नहीं आती सत्य की।

सत्य को देखना हो, सीधा ही देखा जा सकता है। इसलिए शांडिल्य कहते हैं—भक्ति की जिज्ञासा करें हम। शांडिल्य के पहले भक्त हो चुके थे, बहुत हो चुके थे, ज्ञानी हो चुके थे, शास्त्र निर्मित हो चुके थे—शांडिल्य ने नहीं कहा कि चलो अब शास्त्र में चलें और सत्य को खोजें, चलो अब शास्त्र में चलें और भगवान की छबि को तलाशें। नहीं, शांडिल्य ने कहा, हम अपने हृदय को साफ करें। भगवान मिलेगा तो वहां मिलेगा। शब्दों में नहीं, परायों के शब्दों में नहीं, अपने अनुभव में मिलेगा।

अनुभूति पर यह जारे ठीक-ठीक पकड़ लेना।

परमात्मा की झलक तो सब तरफ मौजूद है। और अगर तुम्हें वृक्षों में उसकी झलक नहीं दिखायी पड़ती तो तुम्हें शास्त्रों में उसकी झलक कभी भी दिखायी नहीं पड़ेगी। क्योंकि शास्त्र में तो मुर्दा शब्द हैं। न तो बढ़ते, न घटते; न उनमें नये पत्ते लगते, न नयी शाखें उमगतीं, न पक्षी बसेरा लेते। शास्त्रों में तो थोथे शब्द हैं। वहां फूल कहां खिलते हैं? वहां सुगंध कहां उठती है? शास्त्र तो कागज पर खींची गयी लकीरें हैं। मगर खूब धोखा आदमी ने खाया है? उन्हीं लकीरों की पूजा करता रहता है। या तो यह धोखा है, या यह चालबाजी है।

चालबाजी यह है कि इस तरह भगवान से बचता रहता है। कहता है, देखो तो तुम्हारे शास्त्रों को पूजते हैं। कभी-कभी भगवान को और-और झलकों में भी पकड़ने की कोशिश करता है। पुराने दिनों में राजाओं को, महाराजाओं को भगवान मान लिया जाता था। पद को परमपद समझ लिया जाता था। जो लोग राजाओं की पूजा करते रहे; पद की प्रतिष्ठा करते रहे। बात अब भी समाप्त नहीं हो गयी है। राजा तो अब नहीं के बराबर रहे, न के बराबर रहे...कहते हैं अंत में दुनिया में केवल पांच ही राजा रह जाएंगे; एक इंग्लैंड का राजा और चार ताश के पत्तों के राजा; बाकी सब चले जाएंगे। इंग्लैंड का राजा भी ताश का पत्ता ही है, इसलिए बचेगा। और कोई बच सकता नहीं। लेकिन राजनीति का अब भी बल है। अब भी राजपद का बल है। राजा न रहे हों, लेकिन राजनेता है। तुम उसीकी पूजा में लग जाते हो। देखते हो, राजनेता के आसपास लोग कैसी पूंछ हिलाते हैं? किस तरह गजरे पहनाते हैं? किस तरह फूल बरसाते हैं?

धन की पूजा में लग जाते हो। जिसके पास धन है, वहां पूजा में लग जाते हो। या तो कुछ लोग शास्त्रों के मुर्दा शब्दों को पूजते रहते हैं, या मंदिरों में रखी हुई पत्थर की मूर्तियों को पूजते रहते हैं, या पंडित-पुजारी को पूजते रहते हैं, जिन्हें खुद भी परमात्मा की कोई झलक नहीं मिली, जो तुम्हारे नौकर-चाकर हैं, जिन्हें तुमने नियुक्त कर रखा है, जो पूजा के नाम पर केवल आजीविका कमा रहे हैं। या लोग पद में देख लेते हैं परमात्मा को और पद की पूजा में लग जाते हैं, या धन में। मगर ये सब मुर्दा हैं खेल। अगर परमात्मा को देखना हो तो सीधा देखो। परमात्मा सीधा उपलब्ध है, इन पक्षियों के गीत में, इन वृक्षों की हरियाली में, आकाश के चांद-तारों में, मनुष्यों की आंखों में। और जहां भी तुम प्रेम की कुदाल से खोदोगे वहीं तुम पाओगे कि परमात्मा का झरना मिलना शुरू हो गया। झलकों में मत भटको।

इसलिए पूर्व-सूत्रों ने कहा कि विभूतियों में मत उलझ जाना। विभूतियां तो झलकें मात्र हैं। प्रतिभा की। कोई आदमी बड़ा गणितज्ञ है, यह प्रतिभा है। और कोई आदमी बड़ा संगीतज्ञ है, यह प्रतिभा है। और कोई आदमी बड़ा होशियार है और धन इकट्ठा कर लिया है, कोई आदमी बड़ा चालबाज है और राजपद पर पहुंच गया है, ये सब प्रतिभाएं हैं। इनका कोई धार्मिक मूल्य नहीं है। इनके होने से कोई धर्म का संबंध नहीं है।

इसलिए पूर्व-सूत्रों में कहा गया कि प्रतिभा, विभूति, इनमें मत उलझ जाना। इनका प्रभाव पड़ता है। कोई आदमी अच्छा बोलता है, इससे मत उलझ जाना, क्योंकि अच्छे बोलने से सत्य का कोई संबंध नहीं है। हो सकता है अच्छा बोलता हो, लेकिन झूठ ही बोलता हो। और इतने अच्छे ढंग से बोलता हो कि झूठ भी सच जैसा मालूम पड़ता हो। यह भी हो सकता है, कोई आदमी सुंदर गीत गा सकता है—ऐसे सुंदर कि आकाश की उड़ान लें, ऐसे सुंदर कि लगे सत्य के लोक से उतरा है यह आदमी, मगर इससे उलझ मत जाना। यह सिर्फ हो सकता है गीत की कला हो, यह मात्रा बिठाने की कुशलता हो, यह आदमी कवि हो।

बहुत तरह की विभूतियां हैं। विभूतियां श्रम से अर्जित हैं, चाहे इस जन्म की हो चाहे पिछले जन्म की हों। विभूति श्रम से उत्पन्न होती है।

किसीने पश्चिम के बहुत बड़े संगीतज्ञ मोज़र्ट से पूछा..? मोज़र्ट अदभुत प्रतिभा का धनी था। कहते हैं जब सात साल का था तभी से संगीत में उसकी कुशलता ऐसी थी कि बड़े-बड़े संगीत के पंडित उस छोटे-से बच्चे से हार गये थे। सारे जगत में उसकी ख्याति थी...किसीने पूछा कि तुम्हारी प्रतिभा का राज क्या है? तो उसने कहा—श्रम। उसने जो शब्द उपयोग किये...पूछनेवाले ने उससे पूछा था, तुम्हारी प्रतिभा की प्रेरणा क्या है? तुम्हारी प्रतिभा का 'इंस्पिरेशन' क्या है?...मोज़र्ट हंसा और उसने कहा—'इंस्पिरेशन' तो बहुत थोड़ा है, 'पर्स्पिरेशन' बहुत ज्यादा है। पसीना बहुत है। श्रम बहुत है। प्रतिभा कहां? प्रेरणा कहां? पूछनेवाला चौंका। उसने कहा, मैं समझा नहीं। मोज़र्ट ने कहा कि अगर मैं एक दिन भी अभ्यास न करूं तो मुझे समझ में आता है कि फर्क पड़ गया। और अगर दो दिन अभ्यास न करूं तो मेरे जो आलोचक हैं उनको समझ में आ जाता है कि फर्क पड़ गया। और तीन दिन अगर अभ्यास न करूं तो सभी को समझ में आ जाता है कि फर्क पड़ गया। आठ-दस घंटे श्रम करता हूं, उसका फल है।

फिर चाहे यह फल इस जन्म को हो, या पिछले जन्म का हो, या जन्मों-जन्मों का हो। प्रतिभा तुम्हारे प्रयास का फल है।

तो शांडिल्य ने पूर्व-सूत्रों में कहा—प्रतिभा को या विभूति को परमात्मा मत समझ लेना।

फिर उन्होंने एक फर्क किया जो बड़ा बहुमूल्य है, जिसे खयाल में ले लोगे तो ही आज के सूत्र समझ में आ सकेंगे। उन्होंने यह कहा फिर—लेकिन कृष्ण प्रतिभावान हैं, इतना ही नहीं; या राम प्रतिभावान हैं, इतना ही नहीं, राम या कृष्ण या बुद्ध या क्राइस्ट या महावीर या जरथुस्त्र, ये प्रतिभाएं ही नहीं हैं, ये अवतार हैं।

क्या फर्क है अवतार और प्रतिभा का?

प्रतिभा मिलती है प्रयास से, श्रम से, अर्जित करनी होती है; और अवतरण होता है प्रसाद से, तुम्हारे प्रयास से नहीं। तुम मिट जाते हो तो परमात्मा का अवतरण होता है। प्रतिभा तो अहंकार की ही खोज है। परमात्मा का अवतरण निर-अहंकार की दशा में फलता है। तुम जब शून्य मात्र हो जाते हो तब परमात्मा तुममें उतरता है। इसलिए तुम प्रतिभाशाली आदमी को बड़ा अहंकारी पाओगे। चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, कवि, कलाकार अहंकारी होते हैं। अति अहंकारी होते हैं। कलह ही चलती रहती है उनमें। उनमें कभी तुम सामंजस्य न पाओगे। एक-दूसरे की गर्दन घोंटने में लगे रहते हैं।

आमतौर से प्रतिभाशाली आदमी स्थुल या सूक्ष्म अर्थों में अहंकारी होता है। उसकी सारी प्रतिभा का खेल अस्मिता का खेल है। मैं महत्वपूर्ण हूं, यह सिद्ध करने की चेष्टा में लगा रहता है। मुझसे ज्यादा महत्वपूर्ण कोई भी नहीं, यही उसके जीवन की पूरी तलाश है। मैं विशिष्ट हूं, यही उसकी दौड़ है, यही उसका लक्ष्य है।

अवतार का अर्थ होता है, जिसने अपने अहंकार को जाने दिया। जिसने कहा, मैं तो हूं ही नहीं, प्रभु तू है। जो बांस की पोंगरी बन गया। जिसने परमात्मा को पूरी जगह दे दी, सारा स्थान खाली कर दिया। जो इस तरह से मेजबान बन सकता है, इस तरह से आतिथ्य कर सकता है परमात्मा का, कि स्वयं को बिलकुल पोंछ डाले, मिटा डाले, जरा भी जगह न घेरे, बांस की पोंगरी हो जाए, परमात्मा के स्वर को पुकारे और प्रतीक्षा करे। और

जब परमात्मा का स्वर उतरे तो स्वभावतः यह व्यक्ति और प्रतिभाशाली व्यक्ति में फर्क कर लेना। यह फर्क सूक्ष्म है। अगर तुम्हें अवतार के पास होने का मौका मिल जाए, तो तुम दर्पण में नहीं देख रहे हो परमात्मा को, तुम परमात्मा को ही देख रहे हो—झरोखे से।

फर्क समझ लेना।

अवतार है—झरोखा, खिड़की। उससे तुम जो देख रहे हो वह परमात्मा ही है, झरोखे से देख रहे हो। शायद परमात्मा को सीधा देखने के योग्य तुम्हारी क्षमता भी न हो, शायद उतना बड़ा सत्य तुम सम्हाल भी न पाओ, सह भी न पाओ; शायद उतनी अग्नि से तुम गुजर भी न पाओ—सूरज को सीधा देखना कठिन भी तो है। थोड़ी आड़ हो तो सुविधा मिल जाती है। थोड़ा झीना-सा पर्दा हो तो सुविधा मिल जाती है। आंख पर काला चश्मा हो तो थोड़ी सुविधा मिल जाती है। थोड़ी सुरक्षा हो जाती है। आंख कोमल है। अवतार परमात्मा में झरोखा है, छोटा-सा झरोखा। विराट आकाश में खुलता है लेकिन झरोखा छोटा है।

पंडित, ज्ञानी, विद्वान झरोखा नहीं है, दर्पण है। और हो सकता है दर्पण में सीधा सूर्य का बिंब नहीं बन रहा हो, यह दर्पण और दर्पणों का प्रतिबिंब बना रहा हो—दर्पण, दर्पण, दर्पण। पंडित और पंडितों की छाया बन जाते हैं। वे किसी और पंडित की छाया थे। और ऐसे सदियों-सदियों तक छाया से छाया, छाया से छाया पैदा होती है। धीरे-धीरे सत्य तो खो ही जाता है, छाया ही रह जाती है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक मित्र आया और साथ में एक बतख लाया। गांव से आया था। मुल्ला बहुत प्रसन्न हुआ। बतख मुल्ला को भेंट की। बतख का शोरबा बनाया गया। मुल्ला ने उसका खूब आथित्य-सत्कार किया। कुछ दिनों बाद एक दूसरा आदमी गांव से आया। उसने पूछा, आप कौन हैं मैंने कभी देखा नहीं—मुल्ला ने पूछा। उसने कहा, मैं उसका मित्र हूं जो बतख लाया था। उसका भी स्वागत सत्कार किया गया।

एक दिन एक तीसरा आदमी आया, उसने कहा कि मैं उस मित्र का मित्र हूं। ऐसे लोग आते ही चले गये। फिर तो हिसाब रखना ही मुश्किल हो गया। मुल्ला भी थक गया स्वागत करते-करते। यह बतख महंगी पड़ गयी।

एक दिन एक आदमी आया; मुल्ला ने कहा, आप कौन है? उसने कहा, आप मुझे नहीं पहचानोगे। जो मेरे पहले आया था, मैं उसका मित्र हूं। अब तो बात बहुत लंबी हो गयी थी। मुल्ला ने सिर्फ गर्म पानी उसे पीने को दिया। उसने गर्म पानी पिया, उसने कहा, यह किस तरह का शोरबा है? मैं तो शोरबे की तारीफ सुनकर आया था। उसने कहा, यह बतख के शोरबे के शोरबे के शोरबे का शोरबा है। अब तो यह कुनकुना पानी ही बचा है।

ऐसी ही हुआ है। वेद में किसी ने जाना था उसने कहा। फिर वेद पर टीकाएं हैं, टीकाओं पर टीकाएं हैं, टीकाओं पर टीकाएं हैं—शोरबे के शोरबे के शोरबे का शोरबा। फिर पांच-दस हजार साल के बाद कोई पंडित उस गरम पानी को लिये बैठा है। उसमें बतख तलाश रहा है। वह बतख मिलती नहीं। लेकिन बतख होनी तो चाहिए, क्योंकि पहले ज्ञानी कह गये हैं। इसलिए बतख को कल्पित करता है। होनी तो चाहिए ही, नहीं तो सारी परंपरा गलत होती है। और सारे लोग गलत नहीं हो सकते। इतने लोग गलत कैसे हो सकेंगे? इतने पूज्यों की परंपरा पीछे खड़ी है, इसमें जाने-माने प्रसिद्ध लोग पीछे खड़े हैं—कतार है हजारों साल की—तो गलत तो नहीं हो सकता। तो यही तो हो सकता है कि मेरी ही कुशलता नहीं है। इसलिए अनुमान करता है, भरोसा करता है, कल्पना करता है; जो नहीं मिलता है, उसको बना लेता है कि है, उसको दोहराए चला जाता है। यह तो दर्पण भी नहीं।

प्रतिभा कितनी भी महत्वपूर्ण हो, चूंकि अहंकार से भरी होती है, इसलिए परमात्मा का दर्पण उसमें नहीं बन पाता।

शांडिल्य ने कहा कि विभूतियों में परमात्मा को मत देखना अन्यथा उलझ जाओगे। या तो परमात्मा को सीधा देखना, और अगर सीधे देखने की आंख न हो, या आंख कमजोर हो, या भय लगता हो—जो बिलकुल स्वाभाविक है—तो फिर किसी ऐसे आदमी के पास से देखना जिसने देखा हो, जो यह न कहता हो कि वेद कहते हैं इसलिए परमात्मा है; जो कहता है, मैं कहता हूं इसलिए परमात्मा है; जिसने देखा हो, जिसने पहचाना हो, जिसने अनुभव किया हो, उसके उठना पास, बैठना पास, उसका सत्संग करना, उसकी आंखों में झांकना, उसकी तरंगों में डूबना। क्योंकि बहुत बार तो कहने वाले लोग भी झूठ होते हैं।

पहचान कैसे करोगे कि जो कह रहा है वह सच ही कह रहा है कि मैंने जाना है, मैंने देखा है? पहचान इस तरह होगी कि उसके पास बैठकर अगर तुम्हारा चित्त रूपांतरित होने लगे, तो समझना कि उसने जाना है। उसके पास बैठकर अगर तुम्हारा मन शांत होने लगे, तुम्हारे बिना कुछ किये शांत होने लगे, उसके पास बैठते-बैठते ही तुम्हारे भीतर कुछ धुन बजने लगे, कुछ नये द्वार खुलने लगें, कुछ नये संगीत का अनुभव होने लगे, कुछ नये तार छिड़ने लगे, कुछ नये रंग तुम्हारे भीतर बिखरने लगें, उसकी मौजूदगी तुम्हारे भीतर रूपांतरकारी होने लगे, तो समझना।

अवतार से संबंध जोड़ लेना। और ऐसा मत सोचना कि अवतार कृष्ण और बुद्ध और राम में समाप्त हो गये हैं। जब भी कोई व्यक्ति परमात्मा के प्रति शून्य भाव से खड़ा हो जाता है, परमात्मा अवतरित होता है। हालांकि हर व्यक्ति में अवतरण भिन्न तरह का होता है। होगा ही। कृष्ण में उतरेंगे तो एक ढंग से उतरना होगा। और बुद्ध में उतरना होगा तो दूसरे ढंग से उतरना होगा।

अवतार शब्द को समझ लेना। अवतार का अर्थ होता है, उतरना, अवतरण; ऊपर से आता है कोई, तुम जगह खाली करो, कोई रोशनी उतरती है, कोई बाढ़ आती है, सब कूड़ा-कर्कट बहा ले जाती है। फिर पीछे जो शेष रह जाता है वही भगवत्ता की अनुभूति है। तो अभी भक्ति की जिज्ञासा का क्या अर्थ होगा? अभी परमात्मा को तो जाना नहीं, इसलिए भक्ति परमात्मा का प्रेम तो अभी हो नहीं सकतीं।

चार प्रेम की सीढ़ियां कही हैं शांडिल्य ने। एक हैं—स्नेह। अपने से छोटे के प्रति, बेटे के प्रति, बेटी के प्रति, शिष्य के प्रति, विद्यार्थी के प्रति, अपने से छोटे के प्रति। फिर दूसरे को प्रेम कहा है। अपने से समान के प्रति, मित्र के प्रति, पत्नी के प्रति, पति के प्रति। फिर तीसरे को श्रद्धा कहा है, अपने से श्रेष्ठ के प्रति। पिता के प्रति, मां के प्रति, गुरु के प्रति। और चौथे को भक्ति कहा है। परम के प्रति।

उठो! स्नेह से उठो प्रेम में, प्रेम से उठो श्रद्धा में। श्रद्धा तक जाना बिलकुल सुगम है। अधिक लोग प्रेम पर ही अटक गये हैं, उनके जीवन में श्रद्धा का सूत्र नहीं है। और जिनके जीवन में श्रद्धा का सूत्र नहीं है, उनके जीवन में भक्ति का जन्म न हो सकेगा। ये सब शृंखलाबद्ध प्रक्रिया है। श्रद्धा के बाद भक्ति है। इसलिए गुरु की इतनी महिमा शास्त्रों ने कहीं है। गुरु का अर्थ है, जिसके पास श्रद्धा जन्मे। गुरु का अर्थ है, जिसके पास जाकर झुकने का सहज मन हो। झुकना पड़े तो बात गलत हो गयी। परंपरागत रूप से झुकना पड़े तो बात व्यर्थ हो गयी। औपचारिक रूप से झुकना पड़े तो बात व्यर्थ हो गयी। दूसरे लोग झुक रहे हैं इसलिए झुकना पड़े, तो भी बात व्यर्थ हो गयी। जब तुम्हारे भीतर सहज झुकाव आ जाए, किसी व्यक्ति के प्रति तुम्हारे मन में सहज ही झुकाव आ जाए, तुम अपने को रोक ही न पाओ और झुक जाओ, झुक जाओ तब पाओ कि अरे मैं झुक गया हूं, तो समझना कि गुरु मिला।

गुरु के पास बैठ कर श्रद्धा को उमगने देना। इसी श्रद्धा की सघनता में भक्ति का पहला अंकुर उठता है। इसलिए शास्त्रों ने, ज्ञानियों ने गुरु को परमात्मा का प्रतीक कहा है; सिर्फ इस अर्थ में कि उसके पास श्रद्धा उमगती है, श्रद्धा की सघनता ही भक्ति बनती है। भक्ति की जिज्ञासा करें तो इसका अर्थ हुआ गुरु की तलाश करें। परमात्मा का तो पता नहीं है। सूरज का तो पता नहीं है। आंखें अंधी हैं, इसलिए वैद्य की तलाश करें; जो उपचार करेगा, जो आंख पर जमे जाले को काटेगा, जो औषधि देगा। बुद्ध ने अपने को वैद्य कहा है। नानक ने

भी अपने को वैद्य कहा है। ठीक कहा है, वे वैद्य ही है। गुरु उपचार करता है; उपदेश नहीं, उपचार। अगर उपदेश भी करता है तो उपचार के निमित्त। बोलने में उसका रस नहीं है, जगाने में उसका रस है। बोलने में उसका रस नहीं है, खोलने में उसका रस है।

इस सूत्र को खयाल में रखना। प्रतिभा अर्जित की जाती है, प्रतिभा अहंकार का उपाय है, अवतरण निरअहंकार समाधि में फलित होता है। जब मैं मिट जाता है, तब परमात्मा उतरता है।

आज के सूत्र—

'द्यूतराज सेवयोः प्रतिषेधात् च ।।

धर्मशास्त्रों में जुआ और राजा की सेवा का निषेध है।' उसके पहले के सूत्र में शांडिल्य ने कहा था, राजा में भगवान मत देखना। पद में परमपद मत देखना; धन में ध्यान मत देखना। अब वे इसकी व्याख्या कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि धर्म शास्त्रों ने जुआ और राजा की सेवा का निषेध किया है, इसलिए राजा में भगवान तो कैसे हो सकता है! बड़े हिम्मतवर धर्मशास्त्र रहे होंगे, जिन्होंने राजा की सेवा को जुए के साथ गिना है। राजनीति है ही जुआ। चालबाजों, धोखेबाजों, पाखंडियों के लिए ही वहां उपाय है। राजनीति सबसे बड़ा जुआ है। अगर जुआरी देखना हो तो 'दिल्ली' में! सब तरह के पागल और सब तरह के जुआरी और सब तरह के शराबी। हालांकि कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि ये शराबी शराब के खिलाफ होते हैं। नशाबंदी के पक्ष में होते हैं। मगर धर्मशास्त्र कहते हैं, पद का नशा सबसे बड़ा नशा है और सबसे घातक।

अब मोरारजी देसाई कहते हैं, नशाबंदी होनी चाहिए। और मोरारजी देसाई से ज्यादा नशे में डूबा हुआ आदमी पाओगे? मौत करीब अपने आने लगी, आखिरी दिन करीब आ रहे हैं लेकिन नशे की दौड़ है। पद की दौड़ को मद कहा है शास्त्रों ने। लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है कि जिसको पद का नशा चढ़ गया उसे फिर और नशे की जरूरत नहीं रहती। उसने सबसे कीमती और सबसे पुरानी और महंगी शराब पा ली। अब उसको क्या जरूरत है? वह नशाबंदी के पक्ष में हो सकता है।

ये जो राजनीति की दौड़ में दौड़नेवाले पागलों की जमात है, इनको चिकित्सा की जरूरत हैः इनको मानसिक व्याधियां हैं। सच तो यह है, जो आदमी पद की तलाश में निकलता है वह किसी हीनग्रंथि के कारण ही निकलता है, 'इनफिरिआरिटी कांप्लेक्स' से ही निकलता है। जिस व्यक्ति के भीतर हीनता की ग्रंथि नहीं होती, वह पद की तलाश में नहीं निकलता। पद की तलाश अपनी हीनता की ग्रंथि को छिपाने का उपाय है। पद पर पहुंचकर आदमी अपने सामने यह सिद्ध कर लेना चाहता है कि कौन कहता है कि मैं ना-कुछ हूं! सिद्ध कर दिया मैंने कि मैं कुछ हूं। लेकिन जरूर इसके भीतर कहीं डर रहा होगा कि अगर मेरे पास पद न हो, धन न हो, तो दुनिया कहेगी तुम ना-कुछ हो, और मैं भी जानता हूं, ना-कुछ तो हूं, इसको भर कर दिखला देना है; दुनिया को समझा देना है कि मैं कुछ हूं।

मगर दुनिया को समझाने से तुम कुछ होते नहीं। दुनिया समझ भी ले तो भी कुछ फल हाथ नहीं आता। कितना ही धन इकट्ठा कर लो, भीतर तुम निर्धन ही रह जाते हो। क्योंकि भीतर का धन तो और ही है। और कितने ही ऊंचे पद पर बैठ जाओ, तुम पदहीन रह जाते हो। क्योंकि भीतर का पद तो और ही है। उसके लिए बाहर की यात्रा नहीं करनी पड़ती। उसके लिए राजधानियों की ओर नहीं जाना पड़ता। उसके लिए तो अंतर्धानी खोजनी पड़ती है। भीतर की यात्रा करनी पड़ती है। उसके लिए दूसरों पर जीत करने की कोई जरूरत नहीं है, अपने को जीतना होता है, आत्मविजय करनी होती है।

धर्मशास्त्र कहते हैं, जुआ और राजा की सेवा का निषेध है। राजा बनने की तो बात ही छोड़ो, धर्मशास्त्र कहते हैं, राजा की सेवा का भी निषेध है। उसकी सेवा से भी बचना। क्योंकि जुआड़ियों, पागलों, नशे में डूबे लोगों से जितने दूर रहो उतना ही अच्छा। दुष्ट-संग से बचना चाहिए। सत्संग करना चाहिए। राजा की सेवा स्वभावतः

तुम्हें बदलेगी, तुम्हें निकृष्ट करेगी। राजा की सेवा में तुम और-और झूठ में निष्णात होते जाओगे। राजा की सेवा में तुम्हारी अंतरात्मा तो मर ही जाएगी।

बड़ी प्रसिद्ध कथा है—

चीन का एक महाज्ञानी—भारत की भाषा में कहें तो अवतार—च्वांग्त्सू एक नदी के किनारे बैठा मस्ती से नदी में उठती लहरों को देख रहा था। सुबह का सूरज निकल था, फूल खिले थे, पक्षी गीत गा रहे थे। मछलियां सुबह की ताजी रोशनी में छलांगें भर रही थीं। तभी सम्राट के दो वजीर च्वांग्त्सू को खोजते हुए आए और उन्होंने च्वांग्त्सू से आकर प्रार्थना की कि सम्राट ने आपकी प्रतिभा की बड़ी खबरें सुनी हैं और सम्राट उत्सुक है और वह चाहता है कि आप उसके प्रधान वजीर बन जाएं। च्वांग्त्सू खूब हंसा। वे वजीर थोड़े हतप्रभ भी हुए, उन्होंने पूछा कि आप इस तरह हंस रहे हैं, मामला क्या है? आप हां कहें, यह तो बड़े सौभाग्य का क्षण है। लोग तो दीवाने होते हैं, जिंदगी भर मेहनत करते हैं तब भी नहीं हो पाते हैं—हम भी मेहनत करते-करते थक गये हैं और अभी तक प्रधान वजीर ही हो पाए, आपके लिए सौभाग्य अपने-आप आया है; यह तो वरदान है। आपकी हंसी से हमें शक होता है।

चवांग्त्सू ने कहा—एक बात का मुझे उत्तर दो। देखते हो वह पास एक कीचड़ के गड्ढे में एक कछुआ मस्ती से अपनी पूंछ हिला रहा है, कीचड़ में मजा ले रहा है। पूछा च्वांग्त्सू ने, देखते हो इस कछुए को कीचड़ में मस्त होते? मैंने सुना है कि सम्राट के महल में कछुआ है। उन वजीरों ने कहा—निश्चित है, अति प्राचीन है—तीन हजार साल पुराना है। सोने के संदूक में बंद है, हीरे-जवाहरात जड़े हैं, उसकी पूजा की जाती है वर्ष में एक दिन, वह बड़ा पवित्र कछुआ है, वह धरोहर है, जब पहली दफा सम्राट के पूर्वज सम्राट बने थे तब से वह चला आया है। च्वांग्त्सू ने पूछा कि मैं तुमसे यह पूछता हूं, अगर इस कछुए से जो कीचड़ में मजा ले रहा है तुम पूछो कि तुम सोने की पेटी में बंद होना चाहोगे?—हीरे-जवाहरात जड़ी होगी और वर्ष में एक दिन तुम्हारी पूजा भी होगी, तो यह सोने की पेटी में बंद होने के लिए राजी होगा? या इसी कीचड़ में मजे से पूंछ हिलाना पसंद करेगा? वजीरों ने कहा कि कछुए की बात करते हो तो कछुआ तो कीचड़ में ही पूंछ हिलाना पसंद करेगा, कछुआ जाना पसंद नहीं करेगा सोने के महल में और सोने की पेटी में। च्वांग्त्सू ने कहा—तुम मुझे कछुआ से ज्यादा मूढ़ समझते हो? तुम मुझे कछुआ से ज्यादा बुद्धू समझते हो? भाग जाओ और दुबारा कभी इस तरफ मत आना। मैं अपनी कीचड़ में मस्त हूं, मुझे राजमहल नहीं चाहिए।

कहते हैं च्वांग्त्सू ने वह गांव छोड़ दिया। वह राज्य छोड़ दिया क्योंकि राजा उसे के फिर-फिर पीछे पड़ा।

राजनीति विषाक्त करती है। एक्टन का प्रसिद्ध वचन है—'पावर करप्ट्स एंड करप्टस एब्सोल्यूटली'। सत्ता विकृत करती है और समग्र रूप से विकृत करती है। यह चमत्कार तुम रोज देखते हो, फिर भी तुम देख नहीं पाते। तुम जब भी चुनते हो, अच्छे से अच्छे आदमी को चुनकर भेजते हो, लेकिन पद पर पहुंचते ही वह आदमी वही नहीं रह जाता। पद पर पहुंचते ही सब बदल जाता है। जिसको भेजा था, वह बड़ा विनम्र था, झुक-झुक कर नमस्कार करता था—शायद इसीलिए झुक-झुक कर नमस्कार करता था, शायद इसीलिए विनम्रता का आरोपण किये हुए था कि तुम उसे भेजो। पहुंचते से सब आरोपण समाप्त हो जाते हैं, सत्ता अपनी नग्न स्थिति में प्रकट होनी शुरू होती है, सब आश्वासन झूठे सिद्ध होते हैं, लेकिन तुम सदा यह आशा रखते हो कि इसने धोखा दे दिया तो कल किसी और को चुनेंगे, परसों किसी और को चुनेंगे, और ऐसा सदियों से तुम लोग चुनते रहे। सदियों से तुम क्रांतियां करते रहे। और हर क्रांति में तुमने बड़ी आशा मानी। और कोई क्रांति कभी पूरी नहीं हुई। किसी ने कभी कोई आशा पूरी नहीं की।

जो पद पर जाता है वह तुम्हारी आशा पूरी करने को जाता ही नहीं। वह तो तुम्हारी आशा पूरी करने की बात करता है क्योंकि उसके बिना तुम उसे भेजोगे नहीं। और एक दफें पद पर पहुंच जाता है तो उसकी फिर एक ही

चेष्टा होती है—कैसे पद पर बना रहे। क्योंकि अब पद से उतरना बड़ा महंगा सौदा है। क्योंकि जो लोग फूलमालाएं पहना रहे हैं, यही कल जूते फेंकेंगे।

जो आदमी पद पर बैठ गया उसकी तकलीफ यह है कि अब वह उतर नहीं सकता। उसने रस ले लिया अहंकार का, अब वह वहां से पद से उतरने में सारा अहंकार खो जाता है। लोग नमस्कार सिंहासन को कर रहे थे, लेकिन उसने समझा कि मुझे कर रहे हैं। अब वह उतर नहीं सकता। क्योंकि उतरा तो लोग फिर नमस्कार नहीं करते। तुमने देखा जो लोग पद से खो जाते हैं, जिन के हाथ से पद चले जाते हैं? उनकी हालत क्या रह जाती है? लोग उनसे बदला लेने लगते हैं। लोग कहते हैं कि खूब नमस्कार करवायी थी, खूब चरण दबवाए थे, खूब आदर-सम्मान लिया था हमसे, अब उसका बदला भी लेना होगा। यही लोग पत्थर फेंकते हैं, जूतों की माला पहनाते हैं। और यही लोग उपेक्षा करने लगते हैं। जो कल एकदम आकाश में था, वह कहां भीड़ में खो जाता है कुछ पता नहीं चलता।

जो व्यक्ति पद पर पहुंचा, उसको पद को पकड़ रखने की आकांक्षा होती है। फिर वह उपाय करता है, सब कुटिलताएं करता है—किसी तरह पद बना रहे। उसके पास जो लोग होंगे, उन्हें भी उसकी कुटिलताओं में भागीदार होना पड़ेगा। उसे उसके षड्यंत्रों में हिस्सा बंटाना पड़ेगा।

शास्त्र कहते हैं, जुआ और राजा की सेवा का निषेध है। द्यूतराज सेवयोः प्रतिषेधात च। इसलिए राजा को भगवान तो कहा ही कैसे जा सकता है? अगर राजा भगवान होता, तो शास्त्र कभी यह न कहते कि उसकी सेवा बुरी है। शास्त्र तो कहते हैं, साधु की सेवा करो। सेवा का अर्थ है, उसके पास होने के बहाने खोजो। कभी पैर दबाने के बहाने उसके पास हो लिये। कभी भोजन कराने के बहाने उसके पास हो लिये; बहाने खोजो। क्योंकि जितनी देर तुम उसके पास हो लो, उतना तुम्हारा सौभाग्य है! जितनी वे किरणें तुम्हारे ऊपर पड़ जाएं, उतनी ही तुम्हारी आंखों के खुलने की संभावना बढ़ती है; उतना ही तुम्हारा हृदय विकसित होगा इसलिए राजा पराभक्ति का आश्रय नहीं है।

वासुदेवः अपि इति चेत न आकारमात्रत्वात।।

लेकिन फिर सवाल उठता है, वासुदेव अर्थात श्रीकृष्ण में विभूति की आशंका करनी चाहिए या नहीं करनी चाहिए? क्योंकि कई शास्त्र कहते हैं कि कृष्ण विभूतिसंपन्न हैं। शांडिल्य कहते हैं, वासुदेव में विभूति की आशंका नहीं करनी चाहिए, वे आकार मात्र से ही मनुष्य हैं।

यह सूत्र बहुमूल्य है।

विभूतियां तो अहंकार से भरे हुए लोग हैं। कुशल हैं, प्रतिभाशाली हैं, मेधावी हैं, कुछ करने की कला जानते हैं, लेकिन अहंकार से भरे हुए लोग हैं। कृष्ण को विभूति नहीं कहा जा सकता। और अगर शास्त्रों ने कहा है तो उपचार मात्र से कहा है। कृष्ण तो अवतार है, विभूति नहीं। शांडिल्य कहते हैं, वे आकार मात्र से ही मनुष्य है।

तुम में और कृष्ण में फर्क क्या है? आकार तो दोनों का एक-जैसा है। उसी हड्डी-मांस-मज्जा से तुम बने हो, जिससे कृष्ण बने हैं। भेद क्या है? भेद इतना ही है कि तुम हो और कृष्ण नहीं हैं। तुम आकार के भीतर अहंकार भी हो और कृष्ण सिर्फ आकार मात्र हैं, अहंकार नहीं। वहां भीतर कोई विराजमान नहीं है। वहां भीतर सन्नाटा है, शून्य है। उस शून्य के कारण ही परमात्मा उतर पाता है। उस शून्य में ही उतर पाता है। कृष्ण आकार से तो तुम्हारे जैसे हैं, लेकिन अगर आकार को छोड़कर जरा भीतर जाओगे तो निराकार को पाओगे। और जहां जिस आकार में निराकार मिल जाए, वही सदगुरु है।

शास्त्रों में मत भटकना, सदगुरु तलाशना। जहां मिल जाए। फिर इसकी फिक्र न करना वह हिंदू है, कि मुसलमान है, कि ईसाई है, कि बौद्ध है, इसकी फिक्र ही मत करना, क्योंकि ये सब आकार की दुनिया की बातें हैं। अगर तुम्हें कभी सौभाग्य से ऐसा आदमी कहीं मिल जाए जिसमें तुम्हें दिखे कि आकार के भीतर निराकार

विराजमान है, जिसकी आंखों में तुम झांको और अहंकार न पाओ, तो छोड़ना मत संग-साथ, फिर सब दांव पर लगा देना, फिर मौका देना कि उसका शून्य तुम्हारा शून्य भी बन जाए—शून्य संक्रामक है।

ध्यान रखना, जिस तरह बीमारियां संक्रामक होती हैं, वैसे ही स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है। और जिस तरह दुख संक्रामक होता है, उसी तरह आनंद भी संक्रामक होता है। दुखी आदमी के पास बैठकर तुमने अनुभव किया ही होगा, अचानक तुम उदास हो जाते हो। चार लोग दुखी बैठे हों, तुम हंसते हुए आए थे और उनके पास बैठकर तुम्हें अचानक लगता है तुम भी उनके दुख में डूब गये। वहां दुख की तरंग थी, उसने तुम्हारे भीतर भी दुख का साज छेड़ दिया। वहां दुख की हवा थी, उसमें तुमने श्वास ली कि तुम भी दुख पी गये। कभी तुमने यह भी अनुभव किया होगा कि तुम दुखी थे और चार हंसते हुए लोगों में जा बैठे, और तुम भूल ही गये कि दुख कहां था, कहां गया! तुम हंसने लगे। तुम उनके साथ गीत गुनगुनाने लगे। बाद में तुम्हें याद आएगा कि अरे, मैं इतना दुखी गया था, मेरे दुख का क्या हुआ? तुम एक नयी तरंग में पड़ गये।

प्रत्येक व्यक्ति की तरंग है। और हम सब अनुभव से जानते हैं यह, कि किसी व्यक्ति के पास जाओ तो लौटकर ऐसा लगता है कि जिसने चूस लिया। और किसी व्यक्ति के पास जाओ तो लौटकर ऐसा लगता है उसने जीवन दिया। किसी व्यक्ति के पास बैठकर ऐसा लगता है और बैठे रहें, और बैठे रहें। और कोई व्यक्ति आ जाता है तो ऐसा लगता है कि महानुभाव कब जाएं, कैसे इनसे छुटकारा हो? ये तुम्हारे सामान्य अनुभव हैं, लेकिन तुमने इने अनुभवों पर बहुत विचार नहीं किया है। अगर इन अनुभवों को तुम थोड़ा सजग होकर समझो तो तुम्हें सदगुरु खोजना कठिन नहीं होगा। जिसके पास बैठकर सुख-दुख दोनों भूल जाएं, शांति का अनुभव हो—शांति का अर्थ होता है, जहां न सूख है न दुख है। ध्यान रखना इस भेद को। किसी के पास बैठकर तुम उदास हो जाते हो, किसी के पास बैठकर तुम उदास हो जाते हो, किसी के पास बैठकर प्रसन्न हो जाते हो, ये दोनों संसार की अवस्थाएं हैं।

सदगुरु कौन?

जिसके पास बैठकर तुम दुख भी भूल जाते हो, सुख भी भूल जाते हो। तुम अपने को ही भूल जाते हो—कहां सुख, कहां दुख! जिसके पास बैठकर एक परम शांति की झंकार सुनायी पड़ने लगती है, एक सन्नाटा छा जाता है; जिसके पास बैठकर शून्य होने लगते हो; जिसके पास बैठकर निराकार फैलने लगता है तुम्हारे प्राणों में।

लोग शांति शब्द का प्रयोग करते हैं लेकिन अर्थ भी नहीं जानते। लोग शांति से यही अर्थ लेते हैं। सुख। शांति का अर्थ सुख नहीं होता। सुख भी एक उपद्रव है, जैसे दुख एक उपद्रव है। दुख प्रीतिकर उपद्रव नहीं है, सुख प्रीतिकर उपद्रव है। दुख का भी तनाव होता है, सुख का भी तनाव होता है। एक तनाव को तुम पसंद करते हो इसलिए सुख कहते हो, एक तनाव को तुम नापसंद करते हो इसलिए दुख कहते हो, मगर दोनों तनाव हैं। और दोनों विक्षुब्ध चित्त की अवस्थाएं हैं। दोनों थकाते हैं।

तुमने खयाल किया, सुख से भी तुम थक जाते हो। रोज ही रोज तमाशा चलता रहे! एकाध दिन मिल जाए तुम्हें लाटरी तो ठीक है, मगर रोज मिलने लगे, तो तुम थक जाओगे। और तुमने सोचा है कभी कि कभी-कभी दुख भी इतना नहीं तोड़ता जितना सुख तोड़ देता है। कभी-कभी लोग सुख के कारण मर जाते हैं; इतने सुख में इतने उद्विग्न हो जाते हैं। राह चलते तुम्हें अचानक एक लाख रुपये की थैली मिल जाए, भले-चंगे चले जा रहे थे, कोई बीमारी न थी, एकदम 'हार्ट अटैक' हो जाए, वहीं गिर पड़ो थैली के साथ, इतना सुख एकदम से न झेल पाओ। कहते हैं, किसी को सुख की खबर भी देनी हो तो धीरे-धीरे देनी चाहिए ।

मैंने सुना है, ऐसा हुआ, एक आदमी को पांच लाख की लाटरी मिल गयी। वह घर नहीं था। उसकी पत्नी बहुत घबड़ायी। क्योंकि वह आदमी तीस साल से लाटरी की टिकटें खरीद रहा था। धीरे-धीरे तो भूल ही गया था कि लाटरी मिलेगी भी। लेकिन आदतवश हर महीने खरीद लेता था। पत्नी बहुत घबड़ा गयी। घर में कभी पांच-सौ रुपये भी इकट्ठे नहीं आए थे। पांच लाख! पत्नी समझदार थी, उसने कहा, ये पांच लाख तो जान ले

लेंगे मेरे पति की। वह भागी हुई पड़ोस में गयी, एक पादरी पास में ही रहता था, उसने पादरी से कहा, आप ही कुछ उपाय करें। अब मैं क्या करूं? ये पांच लाख की लाटरी मिल गयी है, वह दफ्तर से आते ही होंगे; पांच लाख की खबर मिलकर उन्हें क्या हो जाए! पादरी ने कहा, घबड़ाओ मत, मैं आता हूं।

पादरी आया, उसने कहा, मैं धीरे-धीरे खबर दूंगा। पति लौटा। पादरी ने कहा, सुनते हो, तुम्हें एक लाख रुपया लाटरी में मिला। पांच हिस्से करके, उसने सोचा कि यह एक लाख सम्हाल लेगा, इसकी धकधक सामान्य हो जाएगी, तो फिर कहूंगा कि एक लाख नहीं, दो लाख मिला है। लेकिन मामला बड़ा गड़बड़ हो गया। उस आदमी ने कहा—एक लाख! सच कह रहे हो? उस पादरी ने कहा—बिलकुल सच कह रहा हूं, एक लाख। तो उसने कहा, अगर एक लाख मिला होगा तो पचास हजार तुमको देता हूं। वह पादरी वहीं मर गया। उसने सोचा ही नहीं था, पचास हजार एकदम से! वह तो सहायता करने आया था।

सुख की भी अपनी उत्तेजना है, जैसे दुख की उत्तेजना है। और शांति शब्द को लोग समझते नहीं। शांति का अर्थ है, जहां न सुख न दुख।

मैंने सुना है, एक पतिमहोदय चारों धाम की यात्रा पर निकल पड़े। जाते-जाते पत्नी से बोले, मैं शांति की खोज में जा रहा हूं। कर्कशा पत्नी ने छाती पीट ली और बोली, रुक! अब किस मरी शांति के पीछे जा रहे हो, दस शांतियां दफ्तर में बैठी हैं, एक मैं घर में पड़ी हूं!

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी समझ का तल है।

शांति का अर्थ होता है, एक निर्विकार चित्त की दशा, जहां कोई उत्तेजना नहीं है। सब चुप है। बिलकुल चुप है। न इस तरफ, न उस तरफ। सब मध्य में ठहर गया है। सब संतुलन है। संतुलन का नाम शांति।

जिस व्यक्ति के पास तुम्हें धीरे-धीरे शांति का स्वाद मिले, समझ लेना कि वह द्वार आ गया जहां झुक जाना है। श्रद्धा का मंदिर आ गया। झरोखा यहां से खुलेगा भक्ति का।

'वासुदेव श्रीकृष्ण में विभूति की आशंका नहीं करनी चाहिए'। वे केवल विभूतिसंपन्न ही नहीं है। ऐसा तुम सोचोगे तो गलती करोगे। फिर तुम चूक ही जाओगे। 'वे आकार मात्र से ही तुम जैसे हैं, मनुष्य हैं।' जो व्यक्ति आकार से तुम जैसा और आत्मा से परमात्मा जैसा है, उसका नाम सदगुरु। कृष्ण या बुद्ध, जरथुस्त्र या मुहम्मद, जीसस या महावीर, आकार से ही तुम जैसे हैं। उनके भीतर जो उतरेगा, जरा सीढ़ियां पार करेगा, महावीर के कुएं में जाएगा गहरा, या मूसा के कुएं में जाएगा गहरा, अचानक पाएगा—आकार तो पीछे रह जाता है, निराकार खुल जाता है, द्वार में आकार होता है लेकिन द्वार से तुम निकले कि आकाश; निराकार मिल जाता है। गुरु तो द्वार है। इसलिए नानक ने ठीक ही कहा, मंदिर को नाम दिया—गुरुद्वारा। वह द्वार ही मात्र है। और नानक का बहुत जोर था गुरु पर। समस्त ज्ञानियों का रहा है।

'प्रत्यभिज्ञानात् च।।

इस विषय में प्रत्यभिज्ञा भी उपलब्ध है।' शांडिल्य कहते हैं, ऐसा मैं कहता हूं इसलिए मत मान लेना। इस विषय में तुम स्वयं का अनुभव कर सकते हो, प्रत्यभिज्ञा भी हो सकती है। तुम खुद इस प्रतीति में जा सकते हो। ये सूत्र किसी विचारक के द्वारा कहे गये सूत्र नहीं हैं। ये किसी अनुभव के वचन हैं। अनुभवी के जीवन का सार है। शांडिल्य कहते हैं—'प्रत्यभिज्ञानात् च', और मैं तुमसे इतना ही नहीं कहता कि ऐसा है, मैं तुमसे कहता हूं ऐसे अनुभव को तुम भी पा सकते हो। तुम भी ऐसे व्यक्ति को खोज सकते हो जो सिर्फ विभूति नहीं है वरन अवतार है। जो अपने प्रयास से, अपनी अस्मिता से, अपनी खोज से कुछ विशिष्ट नहीं हो गया है बल्कि अपने को मिटा दिया है और विशिष्ट हो गया है। जिसने अपने को पोंछ डाला है और परमात्मा को जगह दे दी है।

कुफ्र क्या, तस्लीस क्या, इल्हाद क्या, इस्लाम क्या,

तू ब-हरसूरत किसी जंजीर में जकड़ा हुआ

तोड़ सकता हो तो पहले तोड़ दे यह कैदो-बंद

बेड़ियों के साज पर नग्माते-आजादी न गा

सबसे बड़ी चीज यही है कि किसी तरह तुम अपनी बेड़ियों को तोड़ दो। लेकिन लोग बेड़ियों को पकड़े बैठे हैं। लोगों ने बेड़ियों को आभूषण समझा है। हिंदू हूं, मुसलमान हूं, ईसाई हूं, जैन हूं, बौद्ध हूं—बेड़ियां हैं। जब तक तुम्हें सदगुरु नहीं मिला, तब तक तुम सिर्फ एक कैदी हो और कुछ भी नहीं। न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, न बौद्ध; तब तक यह सब बातचीत है। सदगुरु मिले तो कुछ हो। तो प्रत्यभिज्ञा हो।

तोड़ सकता हो तो पहले तोड़ दे यह कैदो-बंद

बेड़ियों के साज पर नग्माते-आजादी न गा

लेकिन तुम अपनी बेड़ियों को ही बजाकर स्वतंत्रता का गीत गा रहे हो। तुम बेड़ियों पर ताल बजा रहे हो, स्वतंत्रता का गीत गा रहे हो। स्वतंत्रता ऐसे नहीं फलती। मोक्ष ऐसे नहीं मिलता। भगवत्ता ऐसे उपलब्ध नहीं होती। कुछ दांव पर लगाना पड़ेगा। और मजा यह है कि सिर्फ बेड़ियों के अतिरिक्त और तुम्हारे पास है भी क्या दांव पर लगाने को? लेकिन लोग बेड़ियां भी दांव पर नहीं लगाते। मार्क्स का प्रसिद्ध वचन है किसी और संदर्भ में कि दुनिया के मजदूरों, एक हो जाओ, तुम्हारे पास खोने को है क्या सिवाय बेड़ियों के! ये किसी और संदर्भ में कहीं गयी बात है, लेकिन आध्यात्मिक अर्थों में बड़ी बहुमूल्य हो सकती है। मैं तुमसे कहता हूं—इकट्ठे हो जाओ, एकजुट हो जाओ, आत्मकेंद्रित हो जाओ और एक बार दांव पर लगा ही दो! तुम्हारे पास है भी क्या दाव पर लगाने को? सिवाय तुम्हारी बेड़ियों के। और बेड़ियों को दांव पर लगाने से जो मिलती है, वह है आजादी।। प्रत्यभिज्ञा हो सकती है। पहचान हो सकती है। आंख से आंख डाल कर मुलाकात हो सकती है। आमने-सामने हो सकती है बात। अनुभव हो सकता है। शांडिल्य कहते हैं, मेरी मान मत लेना, प्रत्यभिज्ञा करो। प्रत्यभिज्ञानात् च।

तुम ऐसे व्यक्ति को सदा पा सकते हो। यह पृथ्वी कभी भी अवतार से खाली नहीं है। लेकिन तुम्हें अवतार मिलता नहीं, उसका भी कारण है। तुम किसी पुराने अवतार को खोज रहे हो जो कि अब नहीं है। कोई कृष्ण को खोज रहा है, कृष्ण अब नहीं है। कोई क्राइस्ट को खोज रहा है, क्राइस्ट अब नहीं हैं। और मजा यह है कि जब क्राइस्ट थे तब तुम किसी और को खोज रहे थे। तब तुम मूसा को खोज रहे थे। तब मूसा जा चुके थे। जब बुद्ध थे, तब तुम राम को खोज रहे थे। तब राम जा चुके थे। और जब राम थे, तब तुम्हें राम से कुछ लेना-देना नहीं था। तब तुम किसी और को खोज रहे थे, किसी और प्राचीन पुरुष को, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तुम कुछ और खोज रहे थे।

तुम सदा अतीत को खोजते हो इसलिए चुकते हो। अन्यथा पृथ्वी पर जैसे रोज सूरज आता है, ऐसे ही रोज परमात्मा भी आता है। लेकिन तुमने एक धारणा बना रखी है कि जब तक तुम मोर-मुकुटधारी, हाथ में बांसुरी लेकर कृष्ण की तरह न आओगे, मैं तुम्हें स्वीकार करनेवाला नहीं। और परमात्मा तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करे, इसकी कोई जरूरत नहीं है। पुनरुक्ति होती ही नहीं इस जगत में। कृष्ण बस एक बार आते हैं, दुबारा नहीं। हालांकि कृष्ण ने कहा है कि जब संकट होगा तब मैं आऊंगा। लेकिन ध्यान रखना, कृष्ण की शक्ल में नहीं, वहीं भूल हो रही है, नहीं तो संकट तो काफी है, कृष्ण को आ जाना चाहिए। अब और क्या संकट ज्यादा होगा? और क्या अधर्म ज्यादा होगा? और नास्तिकता क्या ज्यादा होगी? या तो कृष्ण ने झूठा वचन दिया था, कि अब आते नहीं, कि भूल-भाल गये, कि वचन ऐसे ही था जैसे राजनीतिज्ञ देते हैं, बहलावा था, भटकावा था, धोखा था, या फिर कुछ बात और है।

बात यह है कि जो एक दफा व्यक्ति पैदा हुआ, दुबारा वैसा व्यक्ति पैदा नहीं होता। परमात्मा रोज नये व्यक्ति गढ़ता है। नये ढंग से गढ़ता है। जरूरतें बदल जाती हैं। तो वहीं अवतार काम नहीं आते। नयी देहों में उतरता है, नये शब्दों में बोलता है, क्योंकि भाषा बदल जाती है, लोग बदल जाते हैं, रीति-रिवाज बदल जाते हैं। अब कृष्ण अगर अचानक प्रकट हो जाएं 'एम. जी. रोड' पर तो पुलिस उनको ले जाएगी पकड़ कर कि आप यहां क्या कर

रहे हैं? मोर-मुकुट क्यों बांधा? समझेगी कोई हिप्पी है। और बांसुरी किसलिए लटकाए हुए हो? जो कृष्ण की पूजा करते हैं वे भी नहीं पहचानेंगे। वे भी कहेंगे, कोई चालबाज है। यह कोई बात है, यह कोई ढंग हैं 'एम. जी. रोड' पर खड़े होने का! और अगर गोपियां भी नाच रही हों पास, तो तुम सभी खिलाफ हो जाओगे। वह तो तुम कहानी में पढ़ लेते हो, एक बात है। स्त्रियां नहा रही हों और कृष्ण उनके पकड़े लेकर झाड़ पर चढ़ जाएं, तो तुम क्या व्यवहार करोगे उनसे?

परिस्थिति बदल जाती है, संदर्भ बदल जाता है, अर्थ बदल जाते हैं। फिर वही कहानियां दोहराने का कोई अर्थ नहीं है। अब रामचंद्रजी आ जाएं लिये धनुषबाण तो लगेंगे, कोई भील इत्यादि। शायद गणतंत्र-दिवस पर दिल्ली जा रहे हैं, प्रदर्शन करेंगे वहां कुछ। तुम पहचान न पाओगे। परमात्मा उस रूप में उतरता है जिस रूप में तुम हो। और तुम्हारी अड़चन यह है कि तुम्हारा अपने प्रति कोई सम्मान नहीं है। इसलिए अगर परमात्मा को तुम अपनी ही शक्ल में पाते हो तो तुम अंगीकार नहीं कर पाते। तुम कहते हो कि यह व्यक्ति तो हमारे जैसा ही है। और तुम्हारा अपने प्रति बड़ा अपमान है। तुम अपने को परमात्मा मान ही नहीं सकते। और जब तक तुम यह न स्वीकार करो कि तुम्हारे भीतर भी परमात्मा की संभावना है, तब तक तुम अवतार को न पहचान पाओगे। कम से कम संभावना तो स्वीकार करो। संभावना से समझ का द्वार खुलता है। प्रत्यभिज्ञा हो सकती है, पहचान हो सकती है, लेकिन तलाशो आसपास; तलाशो यहां, अभी; तलाशो इस जगत में जो वर्तमान है। जरूर तुम पा लोगे। पृथ्वी कभी खाली नहीं है। किसी न किसी घट में परमात्मा का अमृत भरता ही रहता है। क्योंकि कोई न कोई कहीं न कहीं शून्य होता ही रहता है। और ध्यान रखना, व्यर्थ की बातों में मत पड़ना कि यह कलियुग है। व्यर्थ की चिंताओं में मत पड़ जाना कि कलियुग में कहां भगवान! कि भगवान सतयुग में होते थे। समय में कोई भेद नहीं है। परमात्मा के लिए समय एक जैसा है, एक ही वर्तुलाकार है। जो व्यक्ति भी सरल हो जाता है उसका सतयुग में प्रवेश हो जाता है। सतयुग और कलियुग समय के नाम नहीं हैं, व्यक्तियों की चित्तदशाओं के नाम हैं। तुम्हारे पड़ोस में बैठा हुआ आदमी सतयुग में हो सकता है, तुम कलियुग में हो सकते हो। सतयुग का अर्थ इतना ही होता है—श्रद्धावान, सत्य की खोज में लगा; सत्य पर जिसका भरोसा है। सभी बच्चे सतयुगी होते हैं और सभी बूढ़े कलियुगी हो जाते हैं। कलियुग बुढ़ापे का नाम है, वह चौथी अवस्था है। लेकिन जरूरी नहीं है कि सभी बूढ़े कलियुगी हो जाएं। अगर कोई चाहे तो बुढ़ापे तक सतयुगी रह सकता है, बच्चे-जैसा निर्दोष रह सकता है। मत दो तर्क को जगह, मत दो संदेह को जगह, भरोसे पर भरोसा करो। तुम भी भरोसा करते हो, लेकिन तुम भरोसा संदेह पर करते हो। तुम्हारा भी भरोसा है लेकिन तुम्हारा भरोसा गलत पर है, नकार पर है; तुम भरोसा कांटों पर करते हो, फूलों पर नहीं करते। इसलिए अगर फूल तुम्हारे लिए खो गये हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं है। और अगर तुम्हें कांटे ही कांटे मिलते हैं तो भी कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जिस पर तुम्हें भरोसा है, वही तुम्हें मिलेगा। तुम्हारा भरोसा ही तुम्हारा जीवन बन जाता है। तुम्हारा भरोसा ही तुम्हारी नियति हो जाता है। तुम्हारा भरोसा ही तुम्हारा भाग्य है। इसलिए सोच-समझकर भरोसा करना। गलत पर भरोसा किया, गलत हो जाओगे। और अधिक लोग गलत पर भरोसा किये बैठे हैं।

मेरे पास एक व्यक्ति आया, उसने कहा, मैं तो नास्तिक हूं, मैं तो संदेह को मानता हूं, अगर आप कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण दे सकें ईश्वर के तो मैं भरोसा कर सकता हूं। मैंने उस व्यक्ति को पूछा-संदेह से कभी किसी को कुछ मिला है इसका तुम प्रमाण दे सकते हो? अगर प्रमाण नहीं दे सकते कि संदेह से कभी किसी को कुछ मिला है, तो तुम संदेह पर भरोसा क्यों करते हो? संदेह पर तुम्हारा भरोसा कहां से आया? तुमने जीवन में संदेह से कुछ पाया है? उसने कहा—मिला तो कुछ भी नहीं। तो फिर मैंने कहा, यह कैसा भरोसा? श्रद्धा पर भरोसा करने के लिए प्रमाण मांगते हो, संदेह पर भरोसा करने के लिए प्रमाण नहीं मांगते। यह तो बड़ी ज्यादती हो गयी। गलत पर भरोसे के लिए इतनी तत्परता, सही पर भरोसे के लिए इतना विरोध! तुमने तय ही कर रखा है। गलत में जीने के लिए? अगर तुमने तय कर रखा है, तो तुम्हें कोई भी नहीं बदल सकता।

परमात्मा मौजूद है। अनेक-अनेक रंगों, अनेक-अनेक रूपों में। हर पड़ोस में मौजूद है, देखनेवाली आंख चाहिए। और देखनेवाली आंख श्रद्धा से उत्पन्न होती है, समर्पण से उत्पन्न होती है, थोड़ा अहंकार गलाने से उत्पन्न होती है।

खिरमने-दिल जला रहा हूं मैं
नक्शे-हस्ती मिटा रहा हूं मैं
तू न मग्मूम हो, मगर ऐ दोस्त!
तेरी ही सिम्त आ रहा हूं मैं

तुम इधर मिटते हो कि उधर तुम परमात्मा के करीब पहुंचने लगते हो। उस आखिरी मित्र के करीब पहुंचने लगते हो। जितने मिटोगे, उतने उसके पास हो जाओगे। जितने तुम रहोगे, उतना वह दूर रहेगा। परमात्मा और तुम्हारे बीच की दूरी तुम्हारे होने की सघनता पर निर्भर है। अगर कोई व्यक्ति कहता है मुझे परमात्मा नहीं दिखायी पड़ता, तो उसका केवल इतना ही मतलब है वह इतना सघन हो गया है कि बिलकुल पत्थर हो गया है। परमात्मा तरलता में मिलता है। बिखरो, पिघलो मिटो।

'प्रत्यभिज्ञानात् च'। शांडिल्य कहते हैं, चाहो तो तुम्हें प्रत्यभिज्ञा हो सकती है। ऐसा आदमी मिल सकता है जो आकार मात्र से आदमी हो और भीतर निराकार हो और भीतर परमात्मा हो। ऐसी अपूर्व घटना घटती है। उस अपूर्व घटना का नाम ही अवतार है।

कृष्ण को फिर क्यों विभूति कहा है? 'वृष्णिषु श्रेष्ठतम् एतत्'। यह वृष्णि वंश की मर्यादा बढ़ाने का अर्थ में कहा है। यह साहित्यिक उक्ति है, अस्तित्वगत नहीं। अस्तित्व को ध्यान में रखें तो कृष्ण परमात्मा हैं। उनके निराकार को ध्यान में रखें तो कृष्ण परमात्मा हैं। अगर उनके आकार को ध्यान में रखें तो विभूति हैं। अपूर्व हैं। जिन्होंने उनकी देह भी देखी, जिन्होंने उन्हें ऊपर-ऊपर से देखा, जो उनके भीतर नहीं भी गये, उन्हें भी तो उनका थोड़ा सौंदर्य अनुभव हुआ, उन्होंने उन्हें विभूति कहा। जिन्होंने बुद्ध को बाहर से देखा, कभी बुद्ध के शिष्य नहीं बने—और ध्यान रखना, शिष्य बने बिना भीतर से देखने का कोई उपाय नहीं है; सिर्फ शिष्य ही अंतरंग में प्रवेश करता है—जो बुद्ध के पास बाहर से देख कर लौट गये, उन्हें भी लगा कि अपूर्व विभूति हैं। वह शांति, वह शून्य, वह प्रसाद, वे प्यारे वचन, उनका उठना-बैठना, वह सब अपूर्व है। जो बाहर से आए, वे सोचकर गये विभूति हैं। जिन्होंने भीतर झांका, उन्होंने जाना कि भगवान हैं।

'एवं प्रसिद्धेषु च।।

और-और प्रसिद्ध अवतारों में भी ऐसा ही है।' फिर शांडिल्य कहते हैं कि यह कृष्ण के संबंध में ही सच नहीं है, जितने भी अवतार हुए हैं, और जितने भी अवतार पहचाने गये हैं, उन सब में ऐसा ही है। बहुत-से अवतार पहचाने नहीं गये। जो नहीं पहचाने गये, उन्हें लोगों ने केवल विभूति जाना। जो पहचाने गये, जो प्रसिद्ध हो गये, जिनके अंतरंग में कुछ लोग उतर गये, उन्होंने ये दोनों बातें देखीं।

यहूदियों ने जीसस को सूली पर चढ़ाया सिर्फ इस वजह से कि जीसस ने घोषणा की अवतार होने की। यहूदियों में ऐसी कोई धारणा न थी अवतार होने की। पैगंबर हो सकता था कोई, अवतार नहीं। जीसस के पहले पैगंबर हुए थे, 'प्रॉफेट'। पैगंबर का अर्थ होता है, जो केवल संदेश लाता है। है तो मनुष्य ही, भगवान नहीं है। अवतार की यह अपूर्व धारणा भारत में ही जन्मी। क्योंकि भारत ने जितनी खोज की है इस अंतर्लोक में, किसी और देश ने नहीं की। तो यहूदियों में तो पैगंबर होता था। लेकिन जीसस ने बड़ी अड़चन खड़ी कर दी, और जीसस को यह अड़चन भारत से ही मिली।

इस बात के अब काफी प्रमाण इकट्ठे हो गये हैं कि जीसस अठारह वर्ष तक भारत में रहे। बाइबिल में केवल बारह वर्ष की उम्र तक उल्लेख मिलता है और फिर तीस साल के बाद का उल्लेख मिलता है, अठारह साल बिलकुल नदारद हैं। बाइबिल में कोई खबर नहीं है उन अठारह सालों में जीसस का क्या हुआ? ये लंबा अंतराल

है। इस संबंध में एक भी घटना का उल्लेख न होना सिर्फ इस बात की सूचना है कि जीसस यहूदियों के बीच नहीं थे। और इसके बहुत प्रमाण हैं अब उपलब्ध कि जीसस भारत में थे। ये अठारह वर्ष जीसस का भारत में रहना, यहां उन्होंने बहुत-सी बातें सीखीं, उनमें एक बात थी अवतार की धारणा। न केवल धारणा सीखी बल्कि उस धारणा का अनुभव भी किया। वे अवतार बन गये। उन्होंने अपने को पोंछ डाला, मिटा डाला। उन्होंने परमात्मा को अपने भीतर उतरता देखा। जीसस का यहूदियों द्वारा सूली पर लटकाया जाना सिर्फ इस बात का सबूत है कि जीसस ने कुछ ऐसी बातें कहीं जो यहूदी परंपरा में बिलकुल ही नहीं थीं। इतनी विजातीय बातें कहीं कि परंपरा उनको लेने को राजी नहीं हुई। परंपरा ने कहा, यह तो हद की बात हो गयी।

परंपरागत पुरोहितों ने, पंडितों ने कहा कि यह तो हो ही नहीं सकता। कोई व्यक्ति परमात्मा होने का दावा करे! अब यह बड़े मजे की बात है कि कई बार कैसे उल्टे अर्थ हो जाते हैं। परमात्मा का दावा जीसस इसीलिए कर रहे हैं कि अब अहंकार नहीं रहा है, लेकिन दूसरों को ऐसा समझ में आता है कि यह तो महाअहंकार की बात हो गयी कि कोई व्यक्ति परमात्म का दावा करे। यह दावा जीसस नहीं कर रहे हैं, यह दावा परमात्मा ही कर रहा है जीसस के भीतर। जीसस ने तो अपना गीत बंद कर दिया। अब तो वह बांसुरी मात्र हैं, जो भी गीत गाया जा रहा है वह परमात्मा का है। लेकिन बाहर से तो यही दिखायी पड़ेगा कि यह आदमी बड़ा अहंकारी है। इससे बड़ा अहंकार और क्या होगा, यह आदमी कहता है मैं भगवान, मैं ईश्वर!

भारत में जीसस रहे होते तो हमने सूली न लगायी होती। हमने किसी को सूली नहीं लगायी। हम इस सत्य के ज्ञाता रहे हैं। हमें इसकी प्रत्यभिज्ञा है। हमने इसे हजारों-हजारों तरह से पहचाना है। हमने कृष्ण में देखा, बुद्ध में देखा, महावीर में देखा, पार्श्व में देखा, नेमि में देखा, जैनों में चौबीस तीथ□करों में देखा, हिंदुओं के अवतारों में देखा, हमने न-मालूम कितने लोगों में देखा इस घटना को घटते, यह घटना अनहोनी नहीं है, यह घटना नयी नहीं है। हमने जीसस को भी आत्मसात कर लिया होता। हमने उन्हें स्वीकार कर लिया होता। वे हमारे एक अवतार हो गये होते। हमारी छाती बड़ी है। हम अंगीकार करना जानते हैं। और फिर हमें इस बात की प्रत्यभिज्ञा है, इसे हम झुठला नहीं सकते। लेकिन यहूदी बरदाश्त नहीं कर सके, जीसस को सूली लगी। मंसूर को सूली लगी, मुसलमान बरदाश्त नहीं कर सके। क्योंकि मुसलमान भी यहूदी विचारधारा की ही धारा है, उसीकी प्रशाखा हैं। मुसलमान-ईसाई, दोनों ही यहूदी धर्म से ही पैदा हुई शाखाएं हैं।

मुसलमानों में भी पैगंबर की धारणा है। मुहम्मद को भी वे अवतार नहीं कह सकते। मुहम्मद भी संदेशवाहक हैं। खबरें लाने-ले जाननेवाले, चिट्ठीरसा, इससे ज्यादा मूल्य नहीं है। तो मंसूर ने जब घोषणा की—'अनलहक', मैं परमात्मा हूं, तो मुसलमान बरदाश्त नहीं कर सके। और मंसूर ठीक ही कह रहा था। और ऐसा नहीं है कि मुहम्मद को यह अनुभव नहीं हुआ था। मुहम्मद को भी यह अनुभव हुआ था, लेकिन मुहम्मद ने कभी यह कहा नहीं। मुहम्मद ज्यादा व्यावहारिक व्यक्ति हैं, मंसूर पागल है, व्यावहारिक नहीं है।

मंसूर के गुरु ने, जुन्नैद ने मंसूर से कहा था—देख, यह बात मत कह! मुझे भी मालूम है, मुझे भी इसकी प्रत्यभिज्ञा है, मैं भी जानता हूं कि मैं परमात्मा हूं, मगर तू यह बात कह मत, जैसे मैं चुप हूं, ऐसे ही तू भी चुप रह। क्योंकि तू देखता है, आसपास जो भीड़ है अज्ञानियों की है। वे मार डालेंगे तुझे। जुन्नैद चुप ही रहा। और जब मंसूर नहीं माना—मंसूर की भी मजबूरी थी, वह जब अपनी मस्ती में आ जाता, अपनी समाधि में आ जाता, तो बस घोषणा कर देता—'अनलहक', अहं ब्रह्मास्मि, मैं ईश्वर हूं। जब होश में लौटता तो वह माफी भी मांगता जुन्नैद से कि क्षमा करो, आपकी आज्ञा का उल्लंघन हो गया, आपने मना किया था, आप मेरे गुरु हैं, मगर मैं भी क्या करूं, वह मेरे भीतर से बोलता है। और जब बोलता है, तब मैं रोक नहीं सकता। जुन्नैद ने कहा कि देख अगर तू रुका नहीं तो तू अपने हाथ से अपनी सूली निश्चित करवा रहा है। यह देश तुझे स्वीकार न करेगा। ये लोग तुझे स्वीकार न करेंगे। इनकी ऐसी प्रत्यभिज्ञा नहीं है। ये तेरा आकार ही देखते हैं; ये तेरे भीतर जो निराकार फल रहा है नहीं देखते। मैं देखता हूं, लेकिन ये तुझे नहीं पहचानेंगे, ये तुझे मार डालेंगे।

और यही हुआ। जुन्नैद की बात सही हुई, मंसूर मारा गया। लाखों लोगों की भीड़ इकट्ठी हुई थी उस घटना को देखने के लिए जब मंसूर को काटा गया और उसे बड़ी बेरहमी से मारा गया, जीसस को भी इस बेरहमी से नहीं मारा गया था। पहले उसके पैर काट दिये, फिर उसके हाथ काट दिये, फिर उसकी जबान काटी, एक-एक टुकड़े कर-कर के उसको मारा—और वह अभी जिंदा है, उसके एक-एक टुकड़े किये जा रहे हैं, लेकिन वह हंसता रहा, वह प्रसन्न रहा, वह 'अनलहक' की घोषणा करता रहा। लोग पत्थर फेंक रहे हैं। जुन्नैद भी आया था उस भीड़ में। लोग जब पत्थर फेंक रहे थे जब जुन्नैद ने एक गुलाब का फूल उसकी तरफ फेंका।

यही बड़ी प्यारी घटना है।

मंसूर हंस रहा था। लोग पत्थर फेंक रहे थे, सिर से खून बह रहा था, पैर काट डाले गये थे, हाथ काटे जा रहे थे और हंस रहा था। पत्थरों को ऐसे झेल रहा था जैसे फूल हों। लेकिन जब जुन्नैद ने एक फूल ने एक फूल फेंका गुलाब का, तो रोने लगा। किसी ने पास खड़े भक्त ने पूछा—यह मामला क्या है? इतने लोग पत्थर फेंक रहे हैं और तुम नहीं रोए और जुन्नैद ने एक फूल फेंका और तुम रोए! मंसूर ने कहा—क्योंकि ये लोग तो जानते नहीं कि मैं कौन हूं और जुन्नैद जानता है। इसलिए उसका फूल भी मुझे पत्थर-जैसा लग रहा है। जुन्नैद पहचानता है, उसको प्रत्यभिज्ञा है कि मैं जो कह रहा हूं ठीक कह रहा हूं। ये लोग तो नासमझ हैं, ये पत्थर भी फेंक रहे हैं तो क्षमा योग्य हैं; लेकिन जुन्नैद का फूल भी कष्टदायी है। जुन्नैद तो जानता है।

लेकिन जुन्नैद व्यावहारिक आदमी था। ऐसे ही मुहम्मद व्यावहारिक व्यक्ति थे। बात को छिपा गये। जीसस मंसूर जैसे ही अव्यावहारिक व्यक्ति थे। और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, मूसा को भी पता था और जो पैगंबर यहूदियों में हुए उनको भी पता था, लेकिन उन्होंने यह बात कही नहीं। इसको पचा गये। इसको छुपा गये। कबीर ने अपने भक्तों से कहा है कि जब हीरा मिल जाए तो जल्दी से गांठ गठिया कर चुपचाप अपने भीतर छिपा लेना, बताना मत, किसी को कहना मत क्योंकि लोग नासमझ हैं।

लेकिन इस देश में हजारों साल की बहु मूल्य परंपरा है कि हमने आकार में निराकार देखा है। और जो एक बार हुआ है, वह बार-बार हो सकता है। जो एक व्यक्ति में हुआ है, वह सभी में हो सकता है। जो एक में घटा है, वह सभी की नियति है। जो एक बीज खिला है और फूल बना है तो सभी बीज खिल सकते हैं और फूल बन सकते हैं। इस स्वीकृति से ही तो बीज की हिम्मत बढ़ेगी। तो मैं तुमसे कहता हूं—स्वीकार करना, इसकी प्रत्यभिज्ञा करना खोजना।

'एवं प्रसिद्धेषु च।।'

शांडिल्य कहते हैं, और-और प्रसिद्ध अवतारों में भी ऐसा ही है। फिर वे अवतार कोई भी हों, किसी भी परंपरा के हों। हर मनुष्य की यह स्वभावसिद्ध क्षमता है कि वह अपने आकार के भीतर निराकार आमंत्रित कर सकता है। तुम आतिथेय बन सकते हो, अतिथि को बुला सकते हो। इस अतिथेय बनने और अतिथि को बुलाने का नाम भक्ति है। अथातो भक्ति जिज्ञासा।

चाहे पाहन की हो चाहे पनघट की
असली पूजा तो विश्वासी मन की है

फिर चाहे पत्थर की ही क्यों न हो।

चाहे पाहन की हो, चाहे पनघट की
असली पूजा तो विश्वासी मन की है

अक्सर ऐसा होता है सभ्य आवरण में

खो जाते हैं भाव—शब्द की बन-ठन में

चाहे मधुबन में हो चाहे मरुस्थल में
भाषा उर को छू लेती चितवन की है

आंख चाहिए, हरी-भरी आंख चाहिए। आंख में भाव चाहिए, भक्ति चाहिए।

चाहे मधुबन में हो, चाहे मरुस्थल में
भाषा उर को छू लेती चितवन की है

पावन पल जब जग में प्यार मिले
ज्यों कोहरे के बीच धूप का फूल खिले

चाहे बस्ती में हो चाहे निर्जन में
उस क्षण की आरती धूप-चंदन की है

सुख का नहीं ठहरता चंचल मौसम है
जीवन की सरगम में केवल सम कम है

चाहे हो निर्धन चाहे धनवान कोई
कभी नहीं घटती जागीर सपन की है

आयु बिता देते कुछ यों ही उलझन में
बिना छुद्र की वंशी के अन्वेषण में

पाप-पुण्य क्या, निर्णय का अधिकार किसे?
जब कि बात अपने-अपने दर्पण की है

ध्यान रखना, परमात्मा तो मौजूद है, दर्पण चाहिए। तुम कोरे होओ तो झलक बने। तुम झील की तरह शांत होओ तो प्रतिबिंब बने चंद्रमा का।

पाप-पुण्य क्या, निर्णय का अधिकार किसे?
जब कि बात अपने-अपने दर्पण की है

बीती बाढ़ वक्त की रेत बची केवल
मिट जाते माटी में कल के विंध्याचल

काहे की खिड़की फिर कैसे दरवाजे,

सिर्फ जरूरत, मुक्त खुले आंगन की है

चाहे पाहन की हो, चाहे पनघट की—
असली पूजा तो विश्वासी मन की है

श्रद्धायुक्त, भाव से भरा हुआ हृदय—बस सब पूरा हो जाता है। भगवान को मत खोजो, भक्ति को खोजो। भक्ति मिली, भगवान अपने से मिल जाता है। जो भगवान को खोजने निकला बिना भक्ति को खोजे, खोजे कितना ही, पहुंचेगा कभी नहीं, पाएगा कभी नहीं। प्रेम हो तो प्रेमी मिल जाता है। भक्ति हो तो भगवान मिल जाता है। आंख हो तो सूरज सदा मौजूद है।

अथातो भक्ति जिज्ञासा।

आज इतना ही।

मेरे प्रति लोगों की क्या धारणा होगी, इससे सदा भयभीत रहता हूं।। अब संन्यास लेना है, लेकिन भय के कारण रुका हूं।

क्या करूं?

गीता में कृष्ण द्वारा अपने बार-बार आने में निमित्तरूप बताए गये तीन कारणों को क्या आप पूरा कर रहे हैं? क्योंकि आप अपने को भगवान कहते हैं।

आप अपने को भगवान क्यों कहते हैं? क्या आप सबको पैदा कर रहे हैं?

क्या इस जगत में प्रेम का असफल होना अनिवार्य ही है?

परमात्मा के प्रति राग है भक्ति

दूसरा प्रवचनः

पहला प्रश्नः मैं सदा भयभीत रहता हूं—खासकर लोगों की मेरे प्रति क्या धारणा होगी, इससे। अब संन्यास भी लेना है, लेकिन भय के कारण रुका हूं। क्या करूं?

भय नहीं है मूल में, मूल में अहंकार है। दूसरों की धारणा क्या होगी मेरे प्रति इसका इतना ही अर्थ है कि दूसरे मुझे ऐसा समझें, वैसा न समझें; बुद्धिमान समझें, विक्षिप्त न समझ लें। लोगों की धारणा मेरे प्रति इस ढंग की ही होनी चाहिए तो ही मेरा अहंकार सधेगा। अगर लोगों की धारणा बदल गयी तो मेरे अहंकार का क्या होगा? अहंकार दूसरों पर निर्भर है। उनके हाथ में है तुम्हारी कुंजी। अहंकार के प्राण तुम्हारे हाथ में नहीं है, दूसरों के हाथ में हैं; जब चाहें तब दबा देंगे तो तो तुम मर जाओगे। इससे भय है। तुमने अपने प्राण दूसरों में रख दिये हैं। तुमने बच्चों की कहानियां पढ़ी है? कोई सम्राट है, उसने अपने प्राण तोते में रख दिये हैं। सम्राट को नहीं मारा जा सकता लेकिन कोई तोते की गर्दन मरोड़ दे तो सम्राट मरेगा। ऐसे ही अहंकार ने अपने प्राण दूसरों के मंतव्यों में रख दिये हैं। भीड़ क्या कहेगी? इसीलिए भीड़ के अनुकूल चलो, ताकि भीड़ तुम्हारे अनुकूल रहे। जैसा भीड़ कहे, वैसे उठो, वैसे बैठो—भेड़-चाल चलो। अपनी चाल मत चलना; भीड़ पसंद नहीं करती तुम्हारी चाल। क्योंकि तुम्हारी चाल का मतलब होता है, तुम बगावती हो, विद्रोही हो; तुम अपने होने की घोषणा कर रहे हो। यह भीड़ बर्दाश्त नहीं करती। भीड़ कायरों की है। कायर किसी हिम्मतवर को बर्दाश्त नहीं करते। क्योंकि उस हिम्मतवर के कारण उन्हें अपना कायर पन दिखायी पड़ता है। वे तुमसे बदला लेंगे। वे तुम्हें पागल कहेंगे, विक्षिप्त कहेंगे, सिरफिरा कहेंगे। सो डर लगता है। क्योंकि तुम्हारी प्रतिष्ठा उनके हाथ में है।

गौर से समझना, यह भय नहीं है। भय गौण है, मूल में अहंकार है। और जब तक किसी प्रश्न को ठीक-ठीक न पकड़ लिया जाए तब तक उसका हल नहीं होता। तुम भय समझते रहे तो तुम इसका हल कभी न कर पाओगे।

क्योंकि भय सिर्फ लक्षण है, मूल रोग नहीं। रोग का उपचार किया जा सकता है, लक्षणों का उपचार नहीं होता। और जो लक्षणों का उपचार करता रहेगा, ऊपर-ऊपर उपचार में उलझा रहेगा, भीतर-भीतर रोग बढ़ता रहेगा। क्यों डरते हो किसी से? लोग तुम्हें पागल ही समझेंगे न! समझने दो। लोग तुम्हारी प्रतिष्ठा न करेंगे, न करने दो। उनकी प्रतिष्ठा का मूल्य भी कितना है? यह नासमझों की भीड़ अगर तुम्हें बुद्धिमान भी समझती है तो इन नासमझों के समझने का कितना मूल्य है? इनकी प्रतिष्ठा तो दो कौड़ी की भी तो नहीं है! और बदले में ये तुमसे सब ले लेते हैं, तुम्हारी आत्मा ले लेते हैं। तुम्हें फिर इनके अनुसार चलना पड़ता है, लकीर के फकीर होकर चलना पड़ता है। फिर न कभी तुम मस्ती में डोल सकते हो, न परमात्मा को खोज करते हो, न सत्य को खोज सकते हो। क्योंकि भीड़ कहती है, सत्य मिल ही चुका है, कृष्ण ने गीता में दे दिया है, अब तुम्हें और खोज की क्या जरूरत है? गीता पढ़ो, गीता गुनगुनाओ, गीता रटो, तोते हो जाओ। या भीड़ कहती है, बाइबिल में सत्य है, अब तुम्हें और क्या करना है? यीशु मसीह ने सारे संसार के लिए दुख झेल लिया, अब तुम्हें किसी और तपश्चर्या की जरूरत नहीं है। यीशु मसीह ने सूली पर अपने को लटका दिया, अब तुम्हें सूली पर लटकने की जरूरत नहीं है। तुम तो यीशु का नाम जपो, यीशु का गुण गाओ।

भीड़ तुम्हें इस तरह की बातें कहती है कि हम जो मानते रहे हैं, वैसा मानकर चलो। भीड़ कहती है, शंका मत उठाना, संदेह मत उठाना। भीड़ कहती है, अपना सिर मत उठाना, गुलाम रहो। भीड़ गुलामी आरोपित करती है। और जो जितनी सुगमता से गुलाम होने को राजी होता है उसे उतना आदर देती है, उसी अनुपात में आदर देती है। अब यह बड़े मजे की बात है, जीसस को तो सूली लगी, लेकिन जीसस के पीछे चलनेवाले पादरी को सूली नहीं लगती, सम्मान मिलता है। जीसस बगावती थे। भीड़ ने उन्हें बरदाश्त नहीं किया। पादरी-पुरोहित बगावती नहीं है, भीड़ के बड़े काम का है। वह भीड़ को बांधकर रखता है। उसका लोग सम्मान करते हैं। असली संतों को सूली लग जाती है, गालियां मिलती हैं, अपमान मिलता है, नकली संत पूजे जाते हैं। यह तुम देख सकते हो। नकली क्यों पूजा जाता है?

नकली में खतरा नहीं है। आग नहीं है, राख ही राख है। उसे तुम छुओगे तो जलोगे नहीं, उससे तुम्हारे जीवन में चिनगारी नहीं पड़ेगी। उससे तुम्हारे जीवन में कोई रूपांतरण नहीं होगा। नकली सांत्वना है, संक्रांति नहीं। इसलिए नकली को आदर दिया जाता है, असली का अपमान किया जाता है, निंदा की जाती है। हजार लांछन लगाये जाते हैं। सत्य सदा सूली पर रहा है, और असत्य सिंहासन पर अगर तुम सिंहासन चाहते हो, तो फिर तुम्हें गुलाम होना पड़ेगा। अगर तुम सत्य चाहते हो तो तुम्हें साहस चाहिए। और एक ही साहस है जगत में, अपने अहंकार को छोड़ देने का साहस। फिर तुम मुक्त हो गये। फिर दुनिया में कोई तुम्हें बांध नहीं सकता। तुमने जड़ ही काट दी; तुमने सारी गुलामी के आधार गिरा दिये। और यह तुम्हारे हाथ में है; जिस दिन तुमने सोच लिया कि ठीक है, भीड़ को जो सोचना हो सोचे, मुझे जैसे जीना है, वैसे जीऊंगा, यह मेरी जिंदगी है और मुझे मिली है, और ईश्वर के सामने मैं उत्तरदायी होऊंगा।

हसीद फकीर झूसिया मर रहा था। यहूदी फकीर था। एक बूढ़े यहूदी ने उसके पास आकर कहा, परमात्मा से सुलह कर ली न? झूसिया ने आंख खोली और कहा: परमात्मा से मेरा कोई झगड़ा ही नहीं था, झगड़ा तो भीड़ से था। बगावती फकीर था! बूढ़े ने दया से कहा होगा कि परमात्मा से सुलह कर ली न! झूसिया ने कहा, परमात्मा से मेरा कभी झगड़ा ही नहीं हुआ, झगड़ा भीड़ से था। और भीड़ से क्या सुलह करनी है? चार दिन की जिंदगी में क्या भीड़ से सुलह करनी है? सम्मानित जीए कि अपमानित जीए, फूल मिले कि पत्थर मिले, क्या फर्क पड़ता है? यह दो दिन की कहानी है। यह तो पानी पर खींची लकीर है, मिट जाएगी। रही परमात्मा की बात, उससे मेरा कोई झगड़ा नहीं। उस बूढ़े ने फिर भी करुणावश कहा, मोजेज का स्मरण करो, वही रक्षक हैं, मृत्यु करीब है।

झूसिया हंसने लगा। और झूसिया ने कहा कि मैं मर रहा हूं, अब तो मोजेज को मेरे बीच में मत लाओ, अब तो मुझे परमात्मा के आमने-सामने सीधा होने दो। मरने के बाद परमात्मा मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तुम मोजेज क्यों नहीं थे? वह मुझसे पूछेगा, झूसिया तुम झूसिया क्यों नहीं थे? उत्तर मुझे देना पड़ेगा, मुझे जीवन दिया था, इसका तुमने क्या किया? तुम इस जीवन में क्या फल लेकर आए? कौन-सी परिपक्वता तुमने पायी? कौन-सी गरिमा जानी? कौन-से सत्य का उदघाटन किया? कौन-सा अनुभव लाए हो? वह मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तुम मोजेज क्यों नहीं बन गये? मोजेज बनने उसने मुझे भेजा नहीं था, उसने मुझे भेजा है झूसिया बनने। मोजेज को मेरे बीच में मत लाओ। मरते वक्त तो मुझे अकेला मरने दो।

भीड़ न तुम्हें अकेले जीने देती है, न अकेले मरने देती है। तुम मर रहे हो और भीड़ तुम्हें गंगाजल पिला रही है। तुम मर रहे हो और भीड़ तुम्हारे कान में राम-नाम जप रही है। तुम मर रहे हो और सत्यनारायण की कथा सुनायी जा रही है। तुम्हें मरने भी नहीं देती अकेले में भीड़, तुम्हें जीने भी नहीं देती भीड़।

संन्यास का केवल इतना ही अर्थ है, इस बात की घोषणा कि अब मैं इसकी चिंता नहीं करूंगा कि भीड़ सम्मान देगी कि अपमान देगी, अब मैं अपने ढंग से जीऊंगा। गलत तो गलत सही, ठीक तो ठीक सही, लेकिन जो जीवन मुझे मिला है, उसे मैं अपने ढंग से जीऊंगा। और मैं तुमसे कहता हूं, अगर कोई अपने ढंग से गलत भी जीए तो ठीक तक पहुंच जाता है। और दूसरों के ढंग से ठीक भी जीए तो ठीक तक नहीं पहुंचता। क्योंकि दूसरों के ढंग से ठीक जीने में कोई प्राण नहीं होते, तुम्हारा अंतर का साथ नहीं होता; बोझ की तरह तुम जीते हो। हिंदू भीड़ में पैदा हुए हो तो जाते हो मंदिर, राम की पूजा कर आते हो, लेकिन तुम्हारे हृदय की यह उमंग नहीं है। नाचते तुम वहां नहीं गये हो। ईसाई घर में पैदा हुए हो तो चर्च में चक्कर लगा आते हो। लगाना पड़ता है। एक औपचारिकता है, एक कर्तव्य है, निभाना है। मां-बाप ने थोप दिया है तुम्हारे सिर पर, उसे पूरा करना है। लेकिन इसका क्या मूल्य हो सकता है?

जो आदमी मंदिर में गया है, और केवल देह से गया है, और जिसकी आत्मा बाजार में भटकती है; जो प्रार्थना दोहरा रहा है लेकिन जिसके चित में और हजार तरंगें और विचार उठ रहे हैं; जो झुक रहा है मंदिर की मूर्ति के सामने, लेकिन पीछे लौटकर देख रहा है कि कोई जूता न चुरा ले जाए...मैंने एक आदमी को झुकते देखा मंदिर में, और पीछे लौटते देखा कि वह पीछे लौट-लौट कर देख रहा है; मैंने पूछा, तुम लौट कर क्या देखते हो? उसने कहा कि नये जूते पहन कर आ गया हूं, कोई ले न जाए। तो मैंने कहा कि तुम सिर भी उसी तरफ कर लो, क्योंकि तुम झुक जूते के लिए रहे हो; प्रार्थना तुम्हारी बिलकुल झूठी है! तुम जूते को ही सामने रखकर क्यों नहीं झुक लेते? तुमसे मुसलमान बेहतर हैं! नमाज पढ़ने जाते हैं, दुखो, जूते को सामने रख लेते हैं। जूता कोई ले न जाए! खुदा के लिए झुक रहे हैं! अभी कल ही मैं एक चित्र देख रहा था, कोई दस हजार आदमी नमाज पढ़ रहे हैं, दस हजार जूते अपने-अपने सामने रखे हुए हैं। वहीं झुके हैं, जूतों में झुके हैं। यह झूठ है। इसमें सत्य की सुगंध नहीं। यह व्यवहार होगा, इससे समाज चलता होगा, लेकिन इससे सत्य की यात्रा नहीं होती।

भीड़ को पता भी क्या है कि संन्यास क्या है? संन्यास पूछना है, उनसे पूछो जो संन्यासी हैं। संगीत समझना है, उनसे समझो जो संगीत जानते हैं। और ध्यान की खबर लेनी है तो उनसे लो, जिन्होंने ध्यान में उतरने का साहस किया है, जिन्होंने ध्यान की गहराइयां छुई हैं। बाजार में एक किरानी बैठा है, वह कहता है, संन्यास में मत उलझ जाना, यह सब सम्मोहन है। न वह कभी उलझा, न उसने कभी जाना; इस दुकान से कभी उठा नहीं, इस दुकान से बाहर गया नहीं। यह दुकान सम्मोहन नहीं है, यह रुपये इकट्ठे करते जाने में सम्मोहन नहीं है, यह सत्य है! यह रुपये इकट्ठे करना और मर जाना, यह सत्य है। और ध्यान की चिंता में लगना, व्यर्थ की बातों में पड़ना है! तुम किससे पूछते हो?

सांस तेजाब की तरह जलकर
ऐसी कौंधी है सारे सीने में

छाले-छाले-से पड़ गये जैसे
जर्ब-सी चिर गयी है सीने में
सुनके नादान दोस्त का ताना
'क्यू न गम रास आएंगे उसको
जिसको दौलत मिले बदौलते-दिल'
ऐसे लोगों का क्या करे कोई
नोंच देते हैं जर्द चंपा को
जरें सोने के ढूंढा करते हैं
और खुशबू—वह उनकी चीज नहीं
जिसको फूल की पहचान हो उससे फूल की बात करना।
ऐसे लोगों का क्या करे कोई
नोंच देते हैं जर्द चंपा को
जरें सोने के ढूंढा करते हैं
और खुशबू—वह उनकी चीज नहीं
जिन्होंने फूलों से प्रेम न किया हो, उनके आधार पर तुम फूलों को खोजने निकलोगे तो वे तुम्हें पागल कहेंगे ही। यह बिलकुल स्वाभाविक है। जिन्होंने सोने के अतिरिक्त और किसी चीज में मूल्य नहीं जाना, जिन्होंने सोने में ही सारा सार देखा, उनसे तुम सत्य की बातें करोगे, संन्यास की बातें करोगे, वे तुम्हें पागल न समझेंगे तो और क्या समझेंगे? इसमें कुछ एतराज की बात भी नहीं है, यह बिलकुल ठीक है, यह जैसा होना चाहिए वैसा ही है।
ऐसे लोगों का क्या करे कोई
नोंच देते हैं जर्द चंपा को
जरें सोने के ढूंढा करते हैं
और खुशबू—वह उनकी चीज नहीं
भय नहीं है, भीतर अहंकार है। अहंकार ही डरता है। इसे तुम समझ लो, बहुत ठीक से समझ लो। जब तुम मृत्यु से भी डरते हो तब भी अहंकार के कारण ही डरते हो। मृत्यु का कोई डर नहीं होता। मृत्यु तक का कोई डर नहीं होता। मृत्यु को जाना ही नहीं है, उससे डरोगे कैसे? डर तो जानी-पहचानी चीज से होता है। कहावत है, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है। लेकिन कम से कम दूध का जला तो होना चाहिए। तुमने मृत्यु जानी ही नहीं, तुम मृत्यु में जले ही नहीं, तुम्हें मृत्यु की कोई खबर ही नहीं; वह अज्ञात, वह अनजान, सुखद है या दुखद, इसका भी कुछ पता नहीं है, डरोगे कैसे? भयभीत कैसे होओगे? कौन जाने वरदान हो। अभिशाप है इसका निश्चय क्या है?
एक भी मरे हुए आदमी ने लौटकर तो कहा नहीं कि मृत्यु दुख देती है, कि मृत्यु तुम्हें पीड़ाएं देगी, संताप देगी; कि मृत्यु तुम्हारी छाती में भाले भोंकेगी, एक ने भी तो लौटकर नहीं कहा है। मृत्यु तो अपरिचित है। अपरिचित का भय कैसे? देखा नहीं तुमने, छोटा बच्चा सांप से नहीं डरता। उसे पता नहीं है कि सांप क्या करेगा? वह सांप को पकड़कर खेलने लगेगा। छोटा बच्चा आग से नहीं डरता। उसे पता नहीं है! पता हो तो भय होता है। तो जब लोग कहते हैं, मुझे मृत्यु का भय है, तो वे असल में कुछ और कहते हैं, ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहे हैं कि क्या स्थिति है। वे यह नहीं कहते मुझे मृत्यु का डर है, वे सिर्फ इतना ही कहते हैं, मुझे मेरे मिट जाने का डर है। लेकिन तुम्हारे भीतर जो मिट सकता है तत्व, वह अहंकार है—और तो कोई मिटनेवाली चीज नहीं। देह मिट्टी में मिल जाएगी, मिटेगी नहीं। श्वास हवा में लीन हो जाएगी, मिटेगी नहीं। आग आग में चली जाएगी, पानी पाने में, मिटेगा कुछ भी नहीं। और तुम्हारे भीतर जो अंतरात्मा है, उससे तुम्हारी पहचान नहीं है, वह भी मिटनेवाली

नहीं है। जिन्होंने उसे जाना, उन्होंने निरपवाद रूप से सदियों-सदियों में एक ही बात कही है कि वह शाश्वत है, अमृत है। कृष्ण ने कहा है : 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे।' शरीर के मरने से उसका मरना नहीं है। 'नैनं दहति पावकः।' 'नैनं छिंदन्ति शास्त्राणि'। 'नैनं दहति पावकः।' नहीं जलती जलाने से, नहीं छिदती शस्त्रों के भोंक देने से। वह अमर है।

फिर मरता कौन है?

सिर्फ यह झूठा अहंकार। यह जो तुमने अपनी धारणा बना ली है कि मैं कौन हूं—यह नाम, यह रूप, यह यश, यह पद-प्रतिष्ठा, यह मैं, बस यही मरता है। मृत्यु के भय में भी छिपा अहंकार है। समस्त भय के भीतर छिपा हुआ अहंकार है। और अगर तुम इसी भय और अहंकार में जीए तो निश्चित तुम बड़ी भयभीत दशा में जी रहे हो। तुम कुछ भी न जान पाओगे, जो मृत्यु के पार है।

जोखिम तो उठानी होगी! और संन्यास जोखिम है।

नजर नवाज़ नजारा बदल न जाए कहीं
जरा सी बात है मुंह से निकल न जाए कहीं
वह देखते हैं तो लगता है नींव हिलती है
मेरे बयान को बंदिश निगल न जाए कहीं
यूं मुझको खुद पै बहुत ऐतबार है लेकिन
ये बर्फ आंच के आगे पिघल न जाए कहीं
चले हवा तो किवाड़ों को बंद कर लेना
ये गर्म राख शरारों में ढल न जाए कहीं
तमाम रात तेरे मैकदे में मय पी है
तमाम उम्र नशे में निकल न जाए कहीं
कभी मचान पै चढ़ने की आरजू उभरी
कभी ये डर कि ये सीढ़ी फिसल न जाए कहीं

जब भी नया कदम उठाओगे, जब भी अज्ञात में उतरोगे, अनजान सागर में नाव खोलोगे, तो थोड़ा कंपन तो स्वाभाविक है। क्योंकि ज्ञात छूटता है, ज्ञात किनारा छूटता है, अज्ञात सागर में चले। लेकिन इसी कंपन के कारण रुक जाओगे? यही किनारा तुम्हारी कब्र बन जाएगा। उस किनारे को कब पाओगे? फिर यही क्षुद्र जगत तुम्हारा सब कुछ हो जाएगा। फिर विराट की खोज पर कब निकलोगे? फिर इन्हीं सीमाओं में दबे-दबे समाप्त हो जाओगे। असीम से पहचान करनी है, नहीं करनी है? और असीम में ही सुरक्षा है। अज्ञात को जान लेने में ही अमरत्व का स्वाद है।

संन्यास तो केवल एक भाव-भंगिमा है कि मैं यात्रा पर जाता हूं, कि मुझे जो ज्ञात है उसे दांव पर लगाता हूं, अज्ञात की तलाश में जाता हूं। जान लिया इस किनारे को, पहचान लिया, कुछ पाया नहीं। देख लिये नाते-रिश्ते, देख ली धन-दौलत, देख ली पद-प्रतिष्ठा, सब राख ही राख है। ऐसी प्रतीति जब तुम्हें सघन हो जाती है तो फिर यहां रोकने को क्या है? फिर तुम यात्रा पर जा सकते हो। संन्यास यात्रा है। और जो संन्यास की यात्रा पर जाता है। वही जीवित होता है। नहीं तो लोग मुर्दे की तरह जीते हैं।

फिर धीरे-धीरे यहां का मौसम बदलने लगा है।
वातावरण सो रहा था अब आंख मलने लगा है
पिछले सफर की न पूछो, टूटा हुआ एक रथ है
जो रुक गया था कहीं पर, फिर साथ चलने लगा है
हमको पता भी नहीं था, वह आग ठंडी पड़ी थी

जिस आग पर आज पानी सहसा उबलने लगा है
जो आदमी मर चुके थे, मौजूद हैं इस सभा में
हर एक सच कल्पना से आगे निकलने लगा है।
ये जिनको तुम संन्यासियों की तरह देख रहे हो, ये भी तुम्हारी तरह मरे हुए थे। इन्होंने हिम्मत की है, राख झाड़ दी है।
इसीलिए तो संन्यास के लिए गैरिक रंग चुना है। गैरिक अग्नि का रंग है, जो राख झाड़ देता है, और अंगारे को उभार लेता है; जो व्यर्थ को अपने से झाड़ता जाता है, और सार्थक को उभारता जाता है; जो धीरे-धीरे सांयोगिक को छोड़ देता है, और शाश्वत को पकड़ लेता है। हिम्मत तो चाहिए ही, साहस तो चाहिए ही।
एक ही भूल है जगत में, सत्य की खोज न करना; डरो तो उससे डरो। और तो कुछ भूल नहीं है। और थोड़ा कम कमाया, कि ज्यादा कमाया, दस लोगों ने नमस्कार की रास्ते पर की सौ लोगों ने नमस्कार की, इसका मूल्य क्या है? सारा गांव तुम्हें नमस्कार करता रहे, इसको तुम कहां ले जाओगे? इससे संपदा नहीं बनेगी। जब मौत आएगी, तो इससे तुम अपना बचाव न कर सकोगे। यह सब तो यहीं पड़ा रह जाएगा—ये नमस्कारें, ये धन, ये दौलत, ये लोगों के खयाल तुम्हारे संबंध में।
मैं एक फकीर को जानता हूं। बूढ़े आदमी थे। अब तो मर गये। मैं जब छोटा था तब उनसे मेरी पहचान हुई। उनकी एक बात मुझे रुच गयी, इसीसे मेरा उनसे संबंध बना। वे जब सभा में बोलते थे तो किसी को ताली नहीं बजाने देते थे। अगर कभी लोग ताली बजा दें तो वे बड़े नाराज हो जाते थे। जब मैंने पहली दफा यह देखा तो मैं बहुत हैरान हुआ, क्योंकि बोलनेवाला चाहता है लोग ताली बजाएं। बोलता ही इसलिए है कि लोग ताली बजाएं। तालियां बजें, इसका इंतजाम करके आता है। स्टेलिन तो अपनी सभा में अपना छपा हुआ व्याख्यान बंटवा देता था, उसमें जगह-जगह कहां-कहां तालियां बजानी हैं, उसका भी संकेत रहता था। तो लोग पढ़ लेते थे और जहां-जहां ताली बजानी है, वहां ताली बजानी पड़ती थी। इस फकीर को मैंने नाराज होते देखा तो मैंने पूछा, मैं उत्सुक हो गया, मैंने पूछाः बात क्या है? उन्होंने कहाः बात यह है कि नासमझों की ताली का मूल्य कितना? अगर ये ताली बजाते हैं तो इसका मतलब है, मैंने जरूर कोई गलत बात कही होगी। सही बात में तो ये ताली बजा ही नहीं सकते हैं, सही का इन्हें पता ही नहीं है।
यह बात मुझे रुच गयी; यह बात बड़ी प्यारी लगी। यह आदमी कुछ जानता है। इसने कहा कि ये नासमझ जब भी ताली बजाते हैं तो मुझे नाराजगी होती है। नाराजगी यह होती है कि जरूर मैंने कोई गलत बात कह दी। इन पर नाराज नहीं होता, अपने पर नाराज होता हूं, कि जरूर कोई बात कह दी जो इनकी बुद्धि को भी जंच रही है। जिनके पास बुद्धि है ही नहीं, इनको जंच रही है। तो मैंने जरूर कोई बुद्धिहीनता की बात कह दी। उससे दुखी होता हूं; उससे नाराज होता हूं। सत्य तो इनकी समझ में आएगा क्या? असत्य में पगे हैं, असत्य ही समझ में आता है।
छोड़ो इनकी फिक्र और ख्याल से समझ लो, भय ऊपर-ऊपर है, भीतर अहंकार है। जिस दिन अहंकार को उतारकर रख दोगे, फिर क्या फिक्र? लोग पागल ही कहेंगे न, तो कहने दो। इन्होंने बुद्ध को पागल कहा है। इन्होंने कबीर को पागल कहा है। इन्होंने सुकरात को पागल कहा है। तुम सौभाग्यशाली हो, अगर ये तुम्हें भी पागल कहें। तुम धन्यभागियों की परंपरा के हिस्से हो जाओगे। तुम बुद्ध, महावीर और कृष्ण की शृंखला में खड़े हो जाओगे; वे सब पागल थे। इस भीड़ ने उन सब को ही पागल कहा है।
और यह भीड़ बड़ी अदभुत है। पहले पागल कहती है, फिर जब आदमी मर जाता है तो पूजा करती है। यह भीड़ मुर्दों की पूजा करती है। जीवंत का विरोध करती है। यह इसकी सदा की आदत है।
दूसरा प्रश्नः गीता में कृष्ण ने कहा है कि जब-जब धरती पर संकट आता है, मैं अवतार लेता हूं। अवतार लेने के तीन कारण बताए हैं। पहला, साधुओं को रक्षा करना। दूसरा, धर्म की स्थापना करना। तीसरा, पापियों को

दंड देना। अर्थात् ये तीन कार्य करने के लिए भगवान धरती पर आते हैं। आप अपने को भगवान कहते हैं। क्या आप ये तीनों कार्य कर रहे हैं?

पहली बात। पूछा तुमने, 'गीता में कृष्ण ने कहा कि जब-जब धरती पर संकट आता है'; धरती पर कभी भी ऐसा कोई समय है जब संकट नहीं है? धरती संकट है। यहां होना संकट में होना है। कब ऐसा समय था जब संकट नहीं था? ऐसी कोई किताब आज तक नहीं पायी जा सकी है, दुनिया के इतिहास में, जिसमें लिखा हो कि इस समय धरती पर संकट नहीं है। सभी किताबें कहती हैं कि बड़ा संकट है। हालांकि सभी किताबें कहती हैं कि पहले संकट नहीं था। लेकिन वह पहले कब था? क्योंकि उस समय की किताबें कहती हैं कि संकट था। तुम चकित होओगे यह जानकर, संकट सदा से रहा है।

संकट धरती का स्वभाव है। होना ही चाहिए। क्योंकि धरती छोड़नी है; धरती से मुक्त होना है। यहां अगर संकट न होगा तो धरती छोड़ोगे किसीलिए? धरती से मुक्त किसलिए होओगे? यहां अगर संकट न होगा तो धर्म की कोई जरूरत ही न रह जाएगी। बीमारी ही न होगी तो औषधि की क्या जरूरत होगी?

थोड़ा सोचो। धर्म की सदा जरूरत है, क्योंकि संकट सदा है; आदमी सदा बीमार है। तुम सोचते हो, कभी कोई ऐसा युग था, सतयुग, जब लोग बीमार नहीं थे; कोई युग था, रामराज्य, जब लोग बीमार नहीं थे। जरा राम की कहानी देखो! राम के पिता खुद ही बीमार मालूम पड़ते हैं। एक जवान औरत के प्रेम में बेटे को निकाल दिया। अन्याय किया। यह सतयुग था? रावण ही तो नहीं था उस दिन अकेला, बहुत रावण थे; रावण के संगी-साथी भी थे। स्त्रियां उस दिन भी चुरायी जाती थीं। झगड़े उस दिन भी खड़े होते थे। युद्ध उस दिन भी होते थे। कौन-सी हालत बेहतर थी? क्या था जिसके गुणगान करते हो? अगर गौर से देखने जाओगे और ईमानदारी से जांच करोगे तो तुम पाओगे, रामराज्य भी रामराज्य नहीं था। रामराज्य इस धरती पर कभी रहा ही नहीं, कल्पना में है आदमी के। होना चाहिए, आशा है, मगर फलता कभी नहीं।

कृष्ण जब थे, तब कौन-सा इस जगत में आनंद था? युद्ध था; भयंकर युद्ध हुआ। तुम कोई स्मरण कर सकते हो? और पीछे लौटो—परशुराम! तो कोई दुनिया में शांति रही होगी? परशुराम ने फरसा लेकर पृथ्वी को अनेक बार क्षत्रियों से समाप्त कर दिया, खाली कर दिया; विधवाएं ही विधवाएं छोड़ी। बुरे आदमी तो बुरे होते ही होंगे, भले आदमी भी बहुत भले नहीं थे। परशुराम कोई बहुत भले आदमी नहीं मालूम पड़ते हैं! तुम किस जमाने की बात कर रहे हो?

बुद्ध को गालियां मिलीं, पत्थर मिले। महावीर को गांव-गांव से हटाया गया, निकाला गया, कानों में खीले ठोंके गये। ये भले लोग थे? दुनिया में संकट नहीं था?

मेरे देखे, पृथ्वी संकट है। इसलिए यह बात तो फिजूल है। किसने कही, मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। और ध्यान रखना, कृष्ण ने कुछ कहा हो तो कृष्ण को खोजो उनसे उत्तर लो। मैं उनके लिए उत्तरदायी नहीं हूं। मैं कौन हूं जो उनके लिए उत्तर दूं? कृष्ण को पकड़ो, उन पर अदालत में मुकदमा चलाओ। मैं जो कह रहा हूं, उसके लिये उत्तरदायी हूं। मैं जो कह रहा हूं, उसके लिए कृष्ण कैसे उत्तरदायी हो सकते हैं? लेकिन लोग इस ढंग से पूछते हैं जैसे कि कृष्ण ने कुछ कह दिया, तो उसके लिए मैं उत्तरदायी हूं, या कोई भी उत्तरदायी है। कृष्ण ने जो कहा वह कृष्ण जानें। तुम उनसे झगड़ लेना, कहीं मिल जाएं—शायद इसीलिए मिलते भी नहीं, तुमसे डरते होंगे; तुमसे भयभीत होते होंगे कि हजार सवाल तुम खड़े करोगे।

तुम कहते हो, 'गीता में कृष्ण ने कहा है कि जब-जब धरती पर संकट आता है' मैं तुमसे कहता हूं, धरती पर सदा संकट है। आता नहीं, जाता नहीं, धरती संकट है। छः हजार साल पुरानी चीन में किताब मिली है, ऐतिहासिक आधार पर सबसे ज्यादा पुरानी है, उसमें जो भूमिका है, वह तुम पढ़ोगे तो चकित हो जाओगे। भूमिका ऐसी लगती है, जैसे आज के सुबह के अखबार में निकली हो। भूमिका के शब्द अगर सुनोगे तो तुम मान ही न सकोगे कि छः हजार साल पुरानी है भूमिका में लिखा है कि बेटे अपने मां-बाप का आदर नहीं करते हैं। यह

कैसा दुखद युग आ गया है। शिष्य गुरु की नहीं मानते। यह किन पापों का फल मनुष्य भोग रहा है। स्त्रियां सती नहीं रहीं, व्यभिचार फैला है। अनाचार है, झूठ है, रिश्वतखोरी है। ये सारी बातें हैं। तो ऐसा लगता है जैसे दिल्ली का कोई अखबार आज ही सुबह छपा हो! राजा भी भरोसे योग्य नहीं रहा, तो प्रजा का क्या होगा? यह छः हजार साल पुरानी किताब! आदमी वैसा का वैसा है। तुम्हें भ्रांति इसलिए पैदा होती है कि तुम सोचते हो कि वैसा कैसे है? आज का आदमी कार चाहता है। यह बात सच है कि कार आज से छः हजार साल पहले नहीं थी, लेकिन छः हजार साल पहले जो था, उसकी चाह इतनी ही थी; फर्क क्या पड़ता है? बैलगाड़ी चाहता था आदमी, शानदार छकड़े की गाड़ी चाहता था। आज फिएट गाड़ी चाहता है; तब एक छकड़ा गाड़ी चाहता था। चाह तो वही है। कल हवाई जहाज चाहने लगेगा उससे क्या फर्क पड़ता है? चाह के विषय बदल गये हैं, चाह नहीं बदल गयी है। वेश्याएं आज ही तो नहीं होती हैं, तब भी होती थीं। और जमीन पर ही नहीं होतीं, स्वर्ग में भी होती हैं—उनको तुम अप्सराएं कहते हो। जिन ऋषि-मुनियों ने स्वर्ग की कल्पना की है, वे स्वर्ग में भी वेश्याओं को नहीं छोड़ सके; वेश्या ऐसा अनिवार्य अंग थी कि होनी ही चाहिए। और यहां ही लोग एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा नहीं करते हैं। तुम कहानियां पढ़ते हो पुराणों में कि जब भी कोई ऋषि-महर्षि ज्ञान की गहराई में उतरता है, तप में उतरता है, इंद्र का सिंहासन डोलने लेता है। क्यों इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है? क्या इंद्र बेचैन हो जाता है?

यह वही की वही कथा है, इसमें फर्क कहां है? जो रोज हो रहा है। और फिर इंद्र करता क्या है? इंद्र वही करता है जो राजनीतिज्ञ अभी कर रहे हैं। इंद्र भेज देता है दो खूबसूरत औरतों को कि जाकर नाचो, ऋषि को भड़काओ, उपद्रव, और फोटो निकलवा लेना, अखबार में छपवा देना कि भ्रष्ट है। रिश्वत दे दो। किसी तरह लालच-लोभ, किसी तरह इसमें कामवासना जगा दो। अब यह बड़े मजे की बात है कि जो इंद्र भेजता है इन वेश्याओं को, अब इसमें कोई पाप नहीं लगता। पुराण इसकी कोई बात ही नहीं कहते कि इसमें कुछ पाप लगता है कि नहीं लगता। ये ऋषि तो भ्रष्ट हो गये, लेकिन भ्रष्ट जिसने करवाया, उसका जुम्मा? और यह ऋषि भी खूब हैं कि दो स्त्रियां आकर नाचने लगती हैं कि भ्रष्ट हो जाता है। जैसे भ्रष्ट होने को ही बैठे थे। प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि हे इंद्र, अब भेजो; कि इतनी देर क्यों हो रही है, अब भेजो, अभी तक तुम्हारा सिंहासन नहीं कंपा?

आदमी वैसा का वैसा है। वही स्पर्धा विश्वामित्र और वशिष्ठ में है, जो आज चलती है। वही संघर्ष अहंकार का, वही दौड़ वही हिंसा, सब वही का वही है। तुम जरा पुराने शास्त्रों में जो शिक्षाएं दी गयी हैं, उनको गौर से देख लो। सब शास्त्र कहते हैं, चोरी मत करो। इनका मतलब है, तब चोरी होती थी जब शास्त्र लिखा गया। नहीं तो पागल थे शास्त्र लिखनेवाले कि चोरी मत करो? सब शास्त्र कहते हैं, झूठ मत बोलो। साफ है कि लोग झूठ बोलते थे। सब शास्त्र कहते हैं, हिंसा मत करो। साफ है कि लोग हिंसक थे। सब शास्त्र कहते हैं, व्यभिचार मत करो। साफ है कि लोग व्यभिचारी थे। और क्या साफ होगा? जो लोग करते हैं उसीको तो रोकने के लिए शास्त्र सूचना देता है। अगर लोग व्यभिचारी थे ही नहीं, लोग चोर थे ही नहीं, झूठ बोलते ही नहीं थे, तो ये शास्त्र लिखनेवालों का दिमाग खराब था, ये पागलों ने लिखे होंगे। चिकित्सक तभी औषधि का नाम लिखता है, 'प्रसक्रिप्शन' देता है तुम्हें, नुस्खा देता है, जब तुम बीमार होते हो।

कौन-सा फर्क पड़ा है? वही की वही बात है।

तुम कहते हो, 'गीता में कृष्ण ने कहा है, जब-जब धरती पर संकट आता है'; संकट, मैं तुमसे कहता हूं, सदा है। धरती संकट है। यहां होना संकट है। आता नहीं, जाता नहीं। 'तब-तब मैं अवतार लेता हूं। अवतार लेने के तीन कारण बताए हैं। साधुओं की रक्षा करना।' पहली बात, साधुता में ही रक्षा है, किसी और के आने की जरूरत नहीं है। जो साधुता अपने-आप अपनी रक्षा न कर सके, वह साधुता नहीं है साधुता का मतलब क्या होता है? बड़ी नपुंसक साधुता हुई कि कृष्ण को आना पड़े साधुओं की रक्षा करने। फिर साधुता का अर्थ क्या हुआ? साधुता में बल क्या है? यह तो असाधु से कमजोर हुई। असाधु तो अपनी रक्षा खुद कर लेता है। और

साधु के लिए कृष्ण को आना पड़ता है! ये साधु बड़े नपुंसक रहे होंगे। साधुता में रक्षा है। सत्य में बल है। सत्यमेव जयते। अगर यह सच है कि कि सत्य जीतता है तो कृष्ण की क्या जरूरत है? सत्य बलशाली है, असत्य कमजोर है, अपने-आप हारता है। हार ही जाता है। हारेगा ही। उसके असत्य होने में उसकी हार छिपी है। प्रेम जीतता है, घृणा हारती है। मैत्री जीतती है, वैर हारता है। ये साधुता के सूत्र हैं।

तुम कह रहे हो कि कृष्ण तब अवतार लेते हैं जब साधुओं की रक्षा करने का सवाल उठता है। असल में ये बातें साधुओं ने लिख रखी हैं—नपुंसक साधुओं ने। ये साधु-वाधु नहीं हैं। ये असाधु से भी कमजोर हैं। इनका सत्य बिलकुल लचर है, दो कौड़ी का है। सच्चाइयां कुछ और हैं। रामायण कहती है कि रामचंद्र जी साधुओं की रक्षा के लिए दक्षिण भारत गये। बकवास है। वे साधु-वाधु नहीं थे, सब 'पोलिटिकल एजेंट' थे। वे राम की सेवा में संयुक्त थे और वहां जासूसी कर रहे थे। दक्षिण में रावण के खिलाफ। साधु-वाधु इसमें कुछ नहीं थे। साधुओं के लिए क्या रक्षा की जरूरत है? कृष्ण की तो कोई जरूरत नहीं आने की। उसका सत्य ही उसकी रक्षा है।

लेकिन ये तरकीबें हैं, ये बहुत पुरानी राजनीति की तरकीबें हैं। ईसाइयत का इतिहास कहता है कि ईसाई पहले अपने पादरी को भेजते हैं किसी देश में बाइबिल लेकर फिर उसकी रक्षा के लिए तलवारें लेकर आ जाते हैं। जब वह बाइबिल लेकर आता है उनका पादरी, तब तुम्हें लगता है, कोई हर्जा नहीं है। लेकिन फिर उसकी रक्षा के लिए तलवार लेकर पीछे सिपाही आ जाते हैं, कि साधु की रक्षा करनी है! इस तरह की भी खबरें उपलब्ध हैं कि ईसाइयों ने अपने साधुओं को भेजकर वहां लोगों को भड़काकर अपने साधुओं पर चोट भी करवायी, ताकि फिर वे सैनिक भेज सकें। और पीछे सैनिक आकर सफाया करता है।

वस्तुतः जो साधु है, उसे कृष्ण के आने की कोई प्रतीक्षा नहीं, न कोई जरूरत है। वस्तुतः जो साधु है, उसके भीतर तो परमात्मा का अवतरण हो गया, अब और कृष्ण की क्या जरूरत है? साधु का मतलब क्या होता है? जिसको प्रभु का साक्षात हुआ। जिसको प्रभु का साक्षात हुआ वही तो साधु है। जिसने सत्य जाना वही तो साधु है। जो सरल हुआ वही तो साधु है। तो मैं तुमसे नहीं कहता कि साधु की रक्षा के लिए किसी कृष्ण के आने की जरूरत है। नाहक कष्ट न करें। कोई आवश्यकता नहीं है। साधु अपनी रक्षा है।

और तुम कहते हो, 'धर्म की स्थापना करने'। धर्म की स्थापना नहीं की जाती है। और न कभी धर्म स्थापित होता है, न अस्थापित होता है। धर्म तो वही है जो शाश्वत है। कृष्ण थोड़े ही धर्म की स्थापना करते हैं। धर्म तो इस जगत का नियम है। धर्म ने इस जगत को धारण किया है—इसलिए उसको 'धर्म' कहते हैं। जैसे आग जलाती है और गर्म है, ऐसा ही इस अस्तित्व का स्वभाव धर्म है। धर्म यानी स्वभाव। किसी को आकर स्थापना थोड़े ही करनी पड़ती है। तो कृष्ण के पहले क्या मामला था? धर्म नहीं था? कृष्ण ने स्थापना की? फिर कृष्ण के बाद क्या हुआ? धर्म समाप्त हो गया? धर्म तो इस जगत को संभालने वाले सूत्र का नाम है।

लेकिन तुम्हारे मन में कुछ और बातें हैं; हिंदू-धर्म की रक्षा! हिंदू-धर्म धर्म नहीं है, और न मुसलमान-धर्म धर्म है, ये तो सब राजनीतियों के जाल हैं। धर्म तो एक ही है, न वह हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है। धर्म तो वह है, जब तुम अपने भीतर परिपूर्ण शांति में उतरते हो तो अनुभव करते हो, उस अनुभूति का नाम धर्म है। जब तुम अपने अंतरतम में डूब जाते हो तो जिसका तुम्हें स्वाद मिलता है, उसका नाम धर्म है। लेकिन हिंदू-धर्म को रक्षा की जरूरत मालूम होती है; इस्लाम को रक्षा की जरूरत मालूम होती है; ईसाई को रक्षा की जरूरत मालूम होती है; ये धर्म नहीं हैं।

तो मैं तुमसे कहता हूंः धर्म तो सदा है। जो सदा है उसी का नाम धर्म है। उसकी न कोई स्थापना करनी होती है, न कभी कोई उसे मिटा सकता है। उसका मिटना संभव ही नहीं है। अगर धर्म मिट जाए तो हम सब बिखर जाएं। अगर धर्म मिट जाए तो चांद-तारे न चलें, सूरज न निकले, पानी न बहे, हवा न उठे, फूल न खिलें, पक्षी न गाएं, लोग न हों। धर्म टूटा कि सब टूट जाए। धर्म तो सबको जोड़े हुए है। धर्म तो वह धागा है जिसमें सब, सारे फूलों को अपने में गूंथा हुआ है और माला बनी है। यह सारा अस्तित्व गुंथा है। जिससे गुंथा है, उस सूत्र

का नाम धर्म है। कृष्ण इत्यादि की कोई जरूरत नहीं है कि इसको स्थापित करें। कृष्ण धर्म को स्थापित करने नहीं आते हैं, जो धर्म है उसको जानने से कोई कृष्ण होता है; जो धर्म है उसको पहचान लेने से कोई कृष्ण होता है; जो धर्म है उसके साथ पूरा-पूरा संगीत-बद्ध हो जाने से कोई कृष्ण होता है।

कृष्ण को धर्म की स्थापना करने की कोई जरूरत नहीं है। यह पंडित-पुरोहितों ने लिखा होगा। कृष्ण ऐसा नहीं कह सकते।

तीसरी बात तुम कहते हो, पापियों को दंड देना। पाप में स्वयं ही दंड निहित है। जब तुम पाप करते हो, उसी करने में तुम्हें दुख मिल जाता है। दुख के लिए प्रतीक्षा थोड़े ही करनी पड़ती है कि कृष्ण आएंगे जब तुम्हें दंड देंगे। चोरी तुम करोगे, बेईमानी तुम करोगे, झूठ तुम बोलोगे, हिंसा-हत्या तुम करोगे, फिर कृष्ण आएंगे डंडा लेकर और तुमको दंड देंगे? इसमें तो बड़ी झंझट होगी। और उन पर भी तो कुछ दया करो। कृष्ण यही धंधा करते रहें? कृष्ण कोई पुलिस वाले हैं? कृष्ण पर थोड़ा तो सदभाव लाओ।

नहीं, इस जगत की व्यवस्था ऐसी है कि तुमने गलती की कि दंड मिला। आग में हाथ डालते हो, जल जाता है न! ऐसा थोड़े ही है कि आग में हाथ डाला, फिर बैठे हैं हाथ डाले, फिर आए कृष्ण, उन्होंने कहा ः क्यों जी, तुमने आग में हाथ क्यों डाला? अब हम तुम्हें जलाएंगे। अगर ऐसा होता हो तो तो बड़ी झंझट हो जाए बड़ी मुश्किल हो जाए। आग में हाथ डालने से जलना हो जाता है। तुम जरा सोचो, जब तुम क्रोध करते हो तो जल जाते हो या नहीं? और क्या दंड चाहिए? क्रोध में आग है और क्रोध में नर्क है। भोग लिया नर्क तुमने।

तो मैं तुम्हें यह कहना चाहता हूं कि मेरी दृष्टि में पुण्य का फल पुण्य में छिपा है, पाप का दंड पाप में छिपा है। यही धर्म है। यहां जो शुभ करता है, शुभ पाता है। और यहां जो अशुभ करता है, अशुभ पाता है। जहर पीओगे, मर जाओगे। अमृत पीओगे, अमृत हो जाओगे। बीच में किसी की कोई आवश्यकता नहीं है। ये जो नियम हैं, यह जो ऋत है, इसीका नाम धर्म है।

तो तुम पूछ रहे हो—'अर्थात ये तीन कार्य करने के लिए भगवान धरती पर आते हैं।' तो यह भगवान तुम्हारे वहीं से नहीं कर सकते ये कार्य? इनमें इतनी भी अकल नहीं है कि टेलिफोन लगवा लें। अकल बिलकुल बेंच बैठे हैं? इसके लिए धरती पर आना पड़ता है? ये तुम्हारी धारणाएं हैं। इसलिए मैंने कहा, कृष्ण से मिलना हो तो तुम उनसे पूछ लेना। मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है। मैं अपनी बात कहता हूं, और अपनी बात के लिए उत्तर देने को तैयार हूं।

अब तुम पूछते हो कि आप अपने को भगवान कहते हैं; क्या आप ये तीनों कार्य कर रहे हैं? मैं इन तीनों कार्यों को करने योग्य मानता ही नहीं। और अपने को भगवान इसलिए नहीं कहता हूं कि मैं भगवान हूं और तुम भगवान नहीं हो। अपने को भगवान इसलिए कहता हूं कि यहां सब भगवान है, यहां भगवान होने के अतिरिक्त उपाय ही नहीं है। भगवान होने में मैं किसी विशिष्टता की घोषणा नहीं कर रहा हूं। उसी से तुम्हें कष्ट होता है; तुम्हें पीड़ा यही है कि एक आदमी ने अपने को भगवान कह दिया, फिर हमारा क्या होगा? तो हम आदमी ही रह गये और आप भगवान हो गये! जब मैं भगवान कह रहा हूं तो यही कह रहा हूं कि आदमी भगवान है, पौधे भगवान हैं, पक्षी भगवान हैं, पशु भगवान हैं; भगवत्ता हमारा सहज स्वभाव है।

भगवान होना हमारी कोई विशिष्ट बात नहीं है। यह हमारा सामान्य गुण-धर्म है। तुम इसे पहचानो; मैंने इसे पहचान लिया है, बस इतना ही फर्क होगा। तुम भी इसमें जागो; मैं इसमें जाग गया हूं। और मैं जो तुमसे कहता हूं कि मैं भगवान हूं, इसमें कुछ घोषणा नहीं है, न कोई दावा है। यह सिर्फ इसलिए कहता हूं ताकि तुम्हें भी याद दिला सकूं कि देखो, तुम्हारे जैसे ही हड्डी-मांस-मज्जा का व्यक्ति भगवान हो सकता है, तुम क्यों नहीं हो सकते? तुम्हारे जैसी ही भुख लगती है मुझे, प्यास लगती है मुझे, तुम्हारे जैसा ही जीवन है, तुम्हारे जैसे ही मेरी मौत होगी; बिलकुल तुम जैसा हूं, तुमसे जरा भी भिन्नता की घोषणा नहीं कर रहा हूं। भगवान कहने के पीछे इतना ही राज है कि तुम्हें याद दिला रहा हूं कि तुम झूठी बातों में पड़ गये हो।

तुम कहते हो, भगवान वह है जो आकर ये तीन कार्य करता है। तो कृष्ण आए थे, साधुओं की रक्षा हुई? कहां हैं वे साधु जिनकी रक्षा हुई? धर्म की स्थापना हुई? कृष्ण के बाद जितना अधर्म इस देश में फैला, कभी नहीं फैला था। क्योंकि भयंकर युद्ध हुआ। और दूसरों की तो छोड़ दो, कृष्ण के अनुयायी, यदुवंशी, इस भयंकर तरह से लड़े एक-दूसरे से, उन्होंने सब विनाश कर डाला। कृष्ण के द्वारा पापियों को दंड मिला? कौन-से पापियों को दंड मिला गया? तुम कहोगे कि मिला, कौरवों को मिला। कौरव पापी थे! और तुम्हारे धर्मराज युधिष्ठिर? यह जुआ खेल रहे हैं, यह पापी नहीं हैं? और ऐसे ही जुआ नहीं खेल रहे हैं, अपनी औरत तक को जुए में दांव पर लगा रहे हैं, ये पापी नहीं हैं? इनको दंड कब मिला? कैसे मिला? इनको धर्मराज कह रहे हो! जरा जाकर अपनी औरतों को दांव पर तो लगाकर देखो। जेल में सड़ोगे। वहां यह नहीं कह सकोगे कि हम धर्मराज हैं, हम युधिष्ठिर हैं, यह हमारे साथ क्या अन्याय हो रहा है? हे भगवान! आओ, हमारी रक्षा करो! धर्मराज की रक्षा तो करनी ही चाहिए।

यह तुम देखते हो, यह जो कौरवों-पांडवों की बीच झंझट थी, इस झंझट में तुम सोचते हो कौरव ही जिम्मेवार थे? तो तुम गलत सोचते हो। इसमें पांडव उतने ही जिम्मेवार थे। धर्मराज में धर्म जैसा कुछ नहीं मालूम होता। और ये पांच पुरुष एक स्त्री के पति बन गये हैं, इसमें तुम्हें कुछ धर्म मालूम होता है? इन्होंने एक अबला को बिलकुल वेश्या में रूपांतरित कर दिया है, इसमें तुम्हें कुछ धर्म मालूम होता है? और ये किसलिए इतने आतुर थे? राज्य के लिए आतुर थे। जैसा दुर्योधन आतुर था, वैसे ही ये भी आतुर थे कि राज्य हमारा हो। राज्य हमारा हो, इसमें तुम्हें कुछ धर्म मालूम होता है? वही बल, वही अहंकार, वही मालकियत, वही कब्जे की आकांक्षा! इसमें तुम्हें धर्म-जैसा क्या मालूम होता है? ये कोई साधु थे? ये एक ही जैसे थे। वे निश्चित ही चचेरे भाई थे? इनमें कुछ फर्क नहीं था।

तुम अगर अपनी कथाओं को ठीक से समझोगे तो तुम बड़े हैरान हो जाओगे।

और फिर उसके बाद हुआ क्या? महाभारत के बाद इस देश का ऐसा पतन हुआ कि यह अभी तक नहीं सम्हला है। महाभारत के बाद यह देश सम्हला ही नहीं। महाभारत के बाद इस देश ने वह ऊंचाई कभी पायी ही नहीं। और तुम सोचते हो, कृष्ण जब आते हैं तो साधुओं की रक्षा होती है, धर्म की स्थापना होती है, पापियों को दंड मिलता है। यह तो जब कृष्ण आए थे तब भी नहीं हुआ, आगे की व्यर्थ आशाओं में मत पड़ो।

मैं जब कहता हूं तुमसे, तो मेरे कहने का प्रयोजन बहुत ही भिन्न है। लेकिन तुमने और बातें सुनी हैं, उनसे तुम्हारा मन भरा है, इसलिए तुम मेरी बात नहीं समझ पाते। कृष्ण जब कहते हैं कि मैं भगवान हूं, तब तुम्हें अड़चन नहीं होती। क्यों तुम्हें अड़चन नहीं होती? पहली तो बात यह है, कृष्ण से इतना फासला हो गया है कि अब तुम उन्हें हड्डी-मांस-मज्जा के मनुष्य की तरह नहीं देख पाते। इतनी कहानियां जुड़ गयी हैं उनके आसपास, इतनी भव्य प्रतिमा निर्मित कर ली गयी है कि अब तुम उनमें मनुष्य नहीं देख पाते। लेकिन कृष्ण तुम जैसे मनुष्य थे। तुम मान लेते हो वह भगवान हैं, लेकिन अर्जुन ने भी मान नहीं लिया था। दुर्योधन ने तो कभी नहीं माना था। नहीं तो युद्ध ही न होता लाखों लोग कृष्ण को भगवान नहीं मानते थे; चालबाज, कूटनीतिज्ञ मानते थे। जो मौजूद थे उन्होंने कृष्ण को भगवान नहीं माना। तुम मान लेते हो, क्योंकि तुम्हें अब असली कृष्ण का कुछ हिसाब नहीं है। तुम भी मौजूद होते तो न मान पाते। तुम्हारी स्त्री से छेड़खानी करते कृष्ण तो न मान पाते कि भगवान हैं। किसी और की स्त्री से की होगी, तुम्हें लेना-देना क्या है?

तुम्हारी पत्नी नहा रही होती और उसके कपड़े उठाकर झाड़ पर बैठ जाते तो तुम पूजा और ही अर्थ में करते उनकी! मराठी अर्थ में शिक्षा देते उनको! वही किया था जो लोग मौजूद थे उन्होंने। लेकिन तुम्हारे लिए भगवान हैं। अब बात बहुत दूर हो गयी। पांच हजार साल बीत गये, पांच हजार साल में हजारों कहानियां बीच में खड़ी हो गयी, परदे पर परदे हो गये। अब तुम कृष्ण को देख सकते हो दिव्य।

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, कहानियों के आधार पर किसी को दिव्य देखने से कुछ लाभ नहीं होता, क्योंकि वे कहानियां झूठी हैं। दिव्यता को यहां देखो, अभी देखो, सामान्य में देखो। क्योंकि सामान्य में दिव्यता को देख सको, तो ही तुम्हारी दिव्यता मुक्त हो सकती है। मैं अगर तुमसे कह रहा हूं कि मैं भगवान हूं, तो इसमें मेरा कोई दावा नहीं है; इसमें मुझे कोई रस ही नहीं है। अगर रस है तो तुममें है। और जब तक तुममें मेरा रस है तब तक मैं कहूंगा कि मैं भगवान हूं। जिस दिन मैं देखूंगा कि कोई सार नहीं है तुम में रस लेने में, तुम्हें ही रस नहीं है तुम में तो कब तक मैं रस लूं, उसी दिन भगवान कहना बंद कर दूंगा। उसमें कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे कुछ लेना-देना नहीं। मैं जो हूं, हूं। भगवान कहूं, न कहूं, इससे क्या फर्क पड़ता है? लेकिन अभी मुझे तुम में रस है। अभी और थोड़ी कोशिश करूंगा। अभी तुम्हें और याद दिलाने की चेष्टा करूंगा। शायद इसी बहाने तुम्हें याद आ जाए। लेकिन तुम यह मान नहीं सकते कि तुम भगवान हो। यही तुम्हारे जीवन में भगवत्ता और तुम्हारे बीच बाधा है कि तुम मान नहीं सकते कि तुम भगवान हो। तुम्हें लगता है, मुझ जैसा पापी और भगवान! मुझ जैसा जुआरी और भगवान! मुझ जैसा शराबी और भगवान! मैं तुमसे कहता हूं कि तुम शराब पीते हो तब इतना ही फर्क पड़ता है कि भगवान शराब पी रहे हैं, और कुछ फर्क नहीं पड़ता। जब तुम जुआ खेलते हो तो इतना ही है कि भगवान जुआ खेल रहे हैं। तुम्हारी भगवत्ता अछूती रहती है। तुम्हारे कृत्य तुम्हारी भगवत्ता को नहीं छूते हैं। तुम्हारे सब कृत्य स्वप्न जैसे हैं। जैसे रात स्वप्न देखा तुमने और तुम भिखारी हो गये; लेकिन जब आंख खुलती है सुबह तो तुम पाते हो कि तुम भिखारी नहीं हो, अपने बिस्तर पर सोए हो। तुम्हारे सारे कृत्य स्वप्न जैसे हैं, यही माया के सिद्धांत का अर्थ है। तुमने चोरी की, तुमने शराब पी, तुमने अच्छा किया, तुमने बुरा किया, तुमने मंदिर बनवाया, तुमने पुण्य किया, दान किया, सब—सब के सब तुम्हारे भीतर उठे एक स्वप्न की भांति हैं। जागोगे जिस दिन उस दिन तुम पाओगे, भगवत्ता तुम्हारी है। तुम भगवान हो।

कुछ और बातें इस प्रश्न के संबंध में।

पहली बात, तुमने कहा है कि अवतार तब होता है जब ये तीन काम उसे करने होते हैं। परमात्मा का अवतरण होता है, अवतार नहीं होता। अवतार का तो मतलब होता है, कि बस कृष्ण में हुआ, राम में हुआ—गिनती का। तो दस अवतार हुए, कि चौबीस, या जितनी गिनती तुमने मान रखी है उतने अवतार होंगे। फिर बाकी? बाकी वंचित रह जाएंगे। इसलिए मैं कहता हूं: परमात्मा का अवतार नहीं होता, अवतरण होता है। जो भी समाधि में पहुंचता है, वही परमात्मा का अवतार हो जाता है। करोड़ों लोग पहुंचे हैं। करोड़ों लोग पहुंचेंगे। और प्रत्येक व्यक्ति का यह स्वरूपसिद्ध अधिकार है, जिस दिन चाहे और अपने भीतर समाधि को जन्मा ले, उस दिन वह भी अवतार हो जाएगा।

फिर अवतार का कारण कोई हेतु नहीं होता, कि यह काम करने के लिए। जब तक कर्ता का भाव है, तब तक कहां कोई अवतार? यह तो कर्ता का ही भाव हुआ कि ये काम करने हैं, इसलिए। इसमें तो हेतु हुआ, इसमें तो वासना हुई। नहीं, अवतरण तब होता है जब सब हेतु समाप्त हो जाते हैं; सब वासनाएं गिर जाती हैं; भीतर कोई करने का कारण ही नहीं रह जाता। जहां कर्ता समाप्त हो जाता है, वहां अवतरण होता है।

तो मेरी धारणाएं अलग हैं। तुम और शास्त्रों को मेरे बीच में मत लाओ। और जब मैं इन शास्त्रों पर भी बोलता हूं, तब भी तुम ध्यान रखना कि मैं अपने पर ही बोलता हूं। मेरी धारणाएं मेरी हैं। मैं तुम्हें अपनी धारणाएं समझा रहा हूं। मुझे इससे कुछ प्रयोजन नहीं है कि कृष्ण का क्या अर्थ था, क्या नहीं था। इसमें माथा-पच्ची करने में मुझे रस ही नहीं है। मैं कोई पंडित नहीं हूं, न कोई व्याख्याकार हूं। मेरे पास अपना अनुभव है, वह मैं तुम्हें दे रहा हूं।

इसमें कोई हेतु नहीं है। न तो किसी साधु की रक्षा करनी है मुझे क्योंकि जिसको अभी साधु-असाधु में फर्क हो, वह अभी अवतार ही नहीं है। द्वंद्व जिसके मन में हो, वह कहां अवतार? मैं उस व्यक्ति को कहता हूं परमात्मा,

जिसके भीतर से द्वंद्व गया, न अब साधु है कोई, न असाधु; न कुछ पाप, न कुछ पुण्य; न कुछ धर्म, न कुछ अधर्म। यह द्वंद्व गया, यह विरोध गया, यह द्वैत गया, सब अद्वय हो गया। सब लीला है, सब एक है।
मेरे देखे राम के बिना रावण नहीं हो सकता है और रावण के बिना राम नहीं हो सकते। अगर रावण को नष्ट कर दोगे तो राम को भी नष्ट कर दोगे।
इसे समझ लेना।
जरा सोचो, रावण को अलग कर लो राम की कथा से, फिर कितने राम बचेंगे? क्या बच रहेगा? रावण को अलग करते ही कथा गिर जाएगी। रावण के बिना राम की कथा खड़ी नहीं हो सकती। राम के बिना रावण की कथा खड़ी नहीं हो सकती। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। अगर दोनों एक-दूसरे पर इतने निर्भर हैं, तो तुम उनको अलग-अलग मत करो। पाप और पुण्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं; धर्म और अधर्म भी, साधु-असाधु भी। जैसे दिन और रात हैं, जैसे कांटा और फूल हैं, जैसे स्त्री और पुरुष हैं, ऐसे सारे द्वंद्व एक-दूसरे को संभाले हुए हैं। इस जगत में कभी ऐसा नहीं होगा कि सिर्फ भलाई बचे। भलाई अकेली नहीं बच सकती है; बुराई बचेगी। बुराई के साथ ही भलाई बच सकती है।
और बड़े चमत्कार की बात है कि दोनों में सदा संतुलन रहता है। जितनी भलाई होगी, उतनी बुराई होगी। जितनी बुराई होगी, उतनी भलाई होगी। संतुलन कभी नहीं टूटता है। यहां राम और रावण दोनों सदा हैं। यही तो जगत का द्वंद्व है। इसी को तो मैंने पृथ्वी का संकट कहा। लेकिन अगर अवतार भी देखता है कि यह साधु, इसको बचाना, यह असाधु, इसको मारना, तो वह अभी अवतार नहीं है। अभी उसे असली बात दिखायी नहीं पड़ी। अभी उसे यह नहीं दिखायी पड़ा कि दोनों के पीछे एक ही परमात्मा छिपा है। उसे अभी एक का अनुभव नहीं हुआ है।
मुझे न तो साधु को बचाना है, न असाधु को मिटाना है। न पुण्य फैलाना है, न पाप को मिटाना है। न धर्म की स्थापना करनी है, न अधर्म को उखाड़ना है।
फिर मुझे क्या करना है?
मुझे तुम्हें याद दिलानी है कि दो जब तक हैं, तब तक भ्रांति है, सपना है, माया है, द्वंद्व है। इन दो के बीच एक को देख लो। एक को देखते ही मुक्ति है, निर्वाण है।
तीसरा प्रश्न भी उन्हीं मित्र का है; वैसे का वैसा है। पूछनेवाले हैं, देवराज खुराना, पंजाब। ऐसे प्रश्न पंजाब में से ही आ सकते हैं। पंजाबियों की बुद्धिमत्ता तो जग-जाहिर है।
तीसरा प्रश्न हैः नानक अपने को प्रभु का दास कहते थे। कबीर भी प्रभु के भक्त थे। बुद्ध और महावीर ने भी कभी भगवान होने का दावा नहीं किया। यीशु मसीह ने भी अपने को ईश्वर का इकलौता बेटा कहा था। आप भी उन्हें की तरह एक पूर्ण संत हैं, फिर आप अपने को भगवान क्यों कहते हैं? भगवान तो वह है जो सब को पैदा कर रहा है। क्या आप सबको पैदा कर रहे हैं?
देखा! इसलिए मैंने कहा कि ऐसा प्रश्न पंजाब से ही आ सकता है। थोड़ा समझने की कोशिश करो। शायद नानक ने इसलिए अपने को भगवान नहीं कहा होगा, पंजाबियों के डर के कारण! कि इन मूढ़ों से सिर कौन मारेगा? जरा नानक पर दया करो। नानक कोई भले आदमियों के बीच में नहीं थे। झगड़ा-फसाद खड़ा हो जाए, लट्ठ निकल आएं। नानक ने अपने को नहीं कहा कि मैं भगवान हूं, इसका यह अर्थ नहीं है कि नानक ने नहीं जाना कि मैं भगवान हूं। नानक ने जाना, खूब जाना; उसीको जानकर तो वे नानक हुए, उसीको जानकर तो वे गुरु हुए।
गुरु का अर्थ क्या होता है? जिसने अनुभव लिया है कि मैं भगवान के साथ एक हूं। जिसने अनुभव कर लिया, वही तो तुम्हें अनुभव करवा सकता है उस एकता का। लेकिन कहा नहीं कि मैं भगवान हूं; यह दुर्दिन की बात है। कहा नहीं, सुननेवालों का खयाल रखा होगा, उनकी जड़ता को देखा होगा। लेकिन कृष्ण ने तो कहा कि मैं

भगवान हूं। क्यों कृष्ण कह सके? कारण था सुननेवाला अर्जुन, एक सुसंस्कृत प्रतिभा, एक मेधावी व्यक्ति, जो समझ सकेगा। गंवारों से नहीं बोल रहे थे। गीता की जो ऊंचाइयां हैं वे इसलिए हैं कि जिससे बोल रहे थे, वह एक समझनेवाला मित्र था, समझने के लिए चेष्टा कर रहा था, सहानुभूतिपूर्ण था। नानक भीड़-भीड़ में घूम रहे थे, गांव-गांव घूम रहे थे, लोगों से बोल रहे थे।

मैं भी कोई पंद्रह वर्षों तक गांव-गांव घूमा हूं। उसमें पंजाब भी मेरा हिस्सा था घूमने का। पंजाब मैं काफी गया हूं। गांव-गांव घूमकर मुझे यह लगा कि जिस तरह के लोगों से बोलना हो, उस तरह से बोलना पड़ता है; समझौते करने पड़ते हैं। इसलिए मैंने जाना बंद कर दिया। अब मुझे जो बोलना है वह बोलूंगा, जिसे सुनने आना है, उसे आना चाहिए। समझौता उसे करना हो तो कर ले, अब मैं समझौता नहीं करूंगा। क्योंकि जो तल होता है लोगों का उस तल की ही बात करनी पड़ेगी। इसलिए मैं पसंद नहीं करता हूं कि मेरे सामने गैर-संन्यासी बैठे। इसलिए गैर-संन्यासियों को पीछे बिठाता हूं। उसका कारण है। उसका कुल कारण इतना है, जो मुझे सुनते रहे हैं, जिन्होंने मुझे समझा है, जिन्होंने मुझे चाहा है, जिनसे मेरा हृदय जुड़ा है, वे मेरे सामने हों, तो मैं ज्यादा ऊंचाइयां ले पाता हूं; तो मैं वही कह पाता हूं जो कहने का मेरा मन है। अगर सामने ऐसे लोग बैठे हों जो जम्हाइयां ले रहे हैं, इस तरह बैठे हों कि पता नहीं क्यों आ गये हैं, कि कहां फंस गये, कि इतनी देर तो दुकान ही कर ली होती, या बार-बार घड़ी देख रहे हैं कि दफ्तर चले जाएं, उस तरह के लोग अगर मेरे सामने बैठे हों तो मुझे बार-बार नीचे खींच ले आते हैं। फिर मैं उड़ान नहीं ले पाता, फिर उन पर मुझे ध्यान रखना पड़ता है, नहीं तो उनका डेढ़ घंटा व्यर्थ जाएगा। उनके मतलब की कुछ बात कहूं, उनकी बुद्धि में आ सके ऐसी कुछ बात कहूं। तुम पूछते हो, नानक ने अपने को भगवान क्यों नहीं कहा? तुम्हारी वजह से। देवराज खुराना, तुम रहे होओगे। तुम्हें देखकर उन्होंने कहा होगा, अब क्या कहना? अब किससे कहना?

'कबीर भी अपने को प्रभु का भक्त कहते थे'। नहीं, तुम्हें पता नहीं है। कबीर अपने को प्रभु का भक्त कहते थे, जब खोज कर रहे थे; जब खोज पूरी हो गयी, तब नहीं। तब तो कहा हैः

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाइ

फिर तो और ऊंची उड़ान लीः

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाइ

समुद्र, विराट आकर बूंद में समा गया। और क्या मतलब होता है भगवान का? बुद्धि इतनी जड़ है कि तुम सिर्फ शब्द को ही समझोगे, इशारे न समझोगे? कबीर कहते हैंः बूंद में सागर आकर समा गया है; कबीर तो गया, अब सागर ही बचा है। और क्या अर्थ होता है भगवान को खोज लेने का? कबीर ने कहा हैः एक दिन था कि मैं परमात्मा को खोजता घूमता था, अब ऐसा दिन आ गया है कि परमात्मा मेरे पीछे-पीछे चलता है, कहता हैः कबीर, कबीर! और क्या मतलब होता है? तुम पूछते हो, 'और महावीर, बुद्ध ने कभी भगवान होने का दावा नहीं किया।' तुम्हें पता नहीं है। महावीर ने कहा हैः 'अप्पा सो परमप्पा', आत्मा परमात्मा है। और क्या कहना है? जिसने आत्मा को जाना उसने परमात्मा को जाना। महावीर ने तो कहा है, और कोई परमात्मा है ही नहीं। इसलिए महावीर ने भगवान को नहीं माना, कि कोई दुनिया को बनानेवाला भगवान है। महावीर ने तो कहा है, जो स्वयं को जान लेता है, वह भगवान है। भगवत्ता आत्म-अनुभूति का नाम है।

और तुम्हें बुद्ध का भी कुछ पता नहीं। क्योंकि बुद्ध ने कहा है कि मैंने वह सब पा लिया जो पाया जा सकता है, अब पाने को कुछ भी नहीं बचा। मैंने परिपूर्ण सम्यक संबोधि पा ली। मैं उस जगह आ गया, जहां सब जान लिया गया है। भगवान का और क्या अर्थ होता है? संक्षिप्त शब्द में इन्हीं सारी बातों को कहने का ढंग है।

तुम कहते हो, 'यीशु मसीह ने भी अपने को ईश्वर का इकलौता बेटा कहा है'। उससे मैं राजी नहीं होता। इकलौता बेटा कहना गलत बात है। क्योंकि फिर तुम किसके बेटे हो? नाजायज? अगर जीसस ईश्वर के इकलौते बेटे हैं, तो तुम किसके बेटे हो? वह तो बात गलत है। उससे मैं राजी नहीं हूं। वह तो उन्होंने गलत बात कहीं। उससे तुम भी राजी मत होना। क्योंकि उसका मतलब यह होता है कि जीसस भर उनके बेटे हैं। और तुम? मैं कहता हूं, तुम सब उसके बेटे हो। लेकिन बेटे में थोड़ा फासला रह जाता है। उतना फासला भी क्यों रखना। बेटा बाप नहीं है, फासला है। इतना फासला भी क्यों बचाना चाहते हो? तुम उस परमस्रोत के साथ एक क्यों नहीं होना चाहते?

जीसस को भी कहने का कारण था। इतना फासला बनाकर रखा, यहूदियों की वजह से। यहूदी तो यह भी बर्दाश्त नहीं कर सके कि जीसस ईश्वर के बेटे हैं। ईश्वर हैं, यह तो कहने पर बिलकुल बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। यह लोगों की जड़ताओं के कारण इस तरह की बातें कहनी पड़ी। लेकिन बहुत जगह जीसस ने सूचना दे दी है अपने शिष्यों को, कि मेरा पिता और मैं एक हैं। तुमने अगर मुझे देख लिया तो मेरे पिता को देख लिया। यह वचन है। जिसने मुझे चाहा, उसने परमात्मा को चाह लिया।

लेकिन इकलौता बेटा शब्द मुझे पसंद नहीं है। वह जीसस ने कहा भी नहीं है। ईसाइयों ने गढ़ा है। ईसाइयों को गढ़ना पड़ा। क्योंकि ईसाइयों को डर लगा कि अगर कई बेटे हों, तो झंझट- झगड़ा होगा; फिर बंटवारा होगा, फिर पूंजी बंटेगी। और ईसाइयों का दिल है कि सारी दुनिया ईसाई हो जाए। अगर कृष्ण भी ईश्वर के बेटे हैं, और बुद्ध भी और महावीर भी और मुहम्मद भी, तो फिर झंझट होगी। फिर यह जमीन बंटेगी। फिर तुम यह नहीं कह सकते कि सारी जमीन ईसाइयत हो जाए। फिर हिंदू भी रहेंगे, मुसलमान भी रहेंगे, बौद्ध भी रहेंगे। इनको इनकार करने के लिए ईसाइयों ने यह कहानी गढ़ी कि ईश्वर का इकलौता बेटा!

इस तरह की कहानियां सभी धर्मों ने गढ़ी हैं। वे मनुष्य के ओछेपन से पैदा होती हैं। जैसे हिंदू कहते हैं, ईश्वर ने बस एक ही किताब लिखी है—वेद। वह भी वही की वही बात है; ताकि बाइबिल गलत हो जाए, कुरान गलत हो जाए, धम्मपद गलत हो जाए। वही की वही तरकीब है। ईश्वर का बेटा एक ही है, ताकि बाकी सब बेटे नाजायज हो गये। ये तरकीबें चालबाजियां हैं, इनसे सावधान हो जाओ। कुरान भी उसकी किताब है, बाइबिल भी उसकी किताब है, वेद भी उसकी किताब है। असल में तो जब भी सत्य उतरेगा, उसी का होगा। किसी और का हो सकता है? और कृष्ण भी उसी के बेटे हैं, और बुद्ध भी। और कृष्ण और बुद्ध और क्राइस्ट ही नहीं, तुम भी उसी के बेटे हो, उसी की बेटी हो। क्योंकि और कहां से आओगे? वही मूलस्रोत है। लेकिन एक और ऊंची ऊंचाई है, जो उपनिषदों ने छुई, जब कहाः 'अहं ब्रह्मास्मि', मैं ब्रह्म हूं। बेटा बाप में लीन हो गया। 'बूंद समानी समुंद में, समुंद समाना बुंद में'। कब तक दूरी रखोगे? लीन क्यों नहीं हो जाते?

यीशु मसीह ने भी अपने को ईश्वर का इकलौता बेटा कहा था। आप भी उन्हीं की तरह एक पूर्ण संत हैं।

न तो मैं पूर्ण हूं। और न मैं संत हूं। मैं ठीक तुम जैसा अपूर्ण आदमी हूं। मैं इस बात को दोहराना चाहता हूं। तभी तुम मेरी बात समझ पाओगे। पूर्ण हूं, संत हूं—बस तुमने दूर करना शुरू किया। तुमने कहा, हम हम हैं, आप आप हैं। आपकी बातें सुनेंगे, आपकी पुजा कर लेंगे, आपके चरणों में सिर झुका देंगे, मगर आपकी बातें मानेंगे नहीं—आप आप हैं, हम हम हैं, हम तो अपने ही ढंग से जीएंगे, हम तो कीड़े-मकोड़े की तरह ही सरकेंगे। हम आकाश में नहीं उड़ सकते। आप पूर्ण संत हैं। नहीं, मैं पूर्ण संत नहीं हूं। मैं ठीक तुम जैसा हूं। मेरा सारभूत संदेश यही है कि ठीक तुम जैसा हूं और फिर भी मैं कहता हूं, मैं भगवान हूं। ताकि तुम्हें याद मैं दिल सकूं कि तुम भी भगवान हो। और यह याद तुम्हारे भीतर सघन हो जाए तो क्रांति हो जाएगी, आग जलेगी, सब भस्मीभूत हो जाएंगे तुम्हारे स्वप्न। यह आग इतनी बड़ी है।

लेकिन तुम पूर्णता थोपना चाहोगे मेरे ऊपर, तुम संतत्व थोपना चाहोगे। ये तुम्हारी तरकीबें हैं; तुम्हारे दूर करने के उपाय हैं। जीतना दूर बन सके तुम करना चाहोगे। अभी तुम कह रहे हो, पूर्ण संत हो, जब मैं मर जाऊंगा, तुम

कहोगे—भगवान! तब बिलकुल फासला कर दिया। ईश्वर के अवतार! बात खत्म कर दी। तुमने छुटकारा कर लिया। तुम भागे अपनी दुकान में, कि अब ईश्वर के अवतार से अपना क्या लेना-देना? मंदिर में बिठा दो, कभी पूजा कर लेंगे वर्ष में एक दिन; कभी जाकर प्रसाद चढ़ा देंगे, बांट देंगे। लेकिन, बस छुटकारा हो गया। तुमने कृष्ण की सुनी? तुमने राम की सुनी? तुमने बुद्ध की सुनी? तुमने उनको भगवान कहकर छुटकारा पा लिया। और मरने के बाद तुम भगवान कहकर छुटकारा पाते हो।

इसलिए मैं खुद, अभी जिंदा मैं तुमसे कह रहा हूं कि मैं भगवान हूं। छुटकारा पाने का मैं उपाय नहीं छोड़ रहा हूं। और तुमसे जिंदा में कह देना चाहता हूं, ताकि यह बात कायम-रिकार्ड पर रहे, कि मैं संत नहीं हूं, मैं पूर्ण नहीं हूं, मैं ठीक तुम जैसा आदमी हूं; और फिर भी कहता हूं—मैं भगवान हूं। और चाहता हूं कि तुम भी उदघोषणा करो कि तुम भी भगवान हो।

भगवान होने के लिए न तो पूर्ण होना जरूरी है, न संत होना जरूरी है। भगवान हम हैं। सिर्फ जानना जरूरी है। इस भेद को खयाल में लो। भगवान कोई लक्ष्य नहीं है आगे, भविष्य में, कि चढ़ेंगे, पहुंचेंगे, बड़ी यात्रा करेंगे, तपश्चर्या, यह, वह, फिर एक दिन पहुंच पाएंगे। भगवान कोई गौरीशंकर का शिखर नहीं है। भगवान तुम्हारी अंतर्दशा है। तुम भगवान हो। इसका तुम्हें बोध नहीं है। बस इसकी प्रत्यभिज्ञा करनी है, इसकी पहचान करनी है।

मंजिलों के करीब होकर भी

मंजिलों की है जुस्तजू बाकी

तुम करीब हो, तुम वहीं विराजमान हो, मंजिल मिली हुई है। मगर तुम तलाश रहे हो, इसलिए खो रहे हो। रोको तलाश, झांको भीतर, और पा लो।

और ध्यान रखना, ऐसा नहीं है कि कभी-कभी किसी एकाध को भगवान होना है। यहां कुछ कंजूसी नहीं है; यह अस्तित्व कंजूस है ही नहीं। तुम इतने घबड़ाओ मत। तुम कहते हो कि अब सभी भगवान हो जाएंगे, ऐसा कैसे हो सकता है? यहां सभी वृक्षों में फूल खिल रहे हैं, ऐसा कैसे हो रहा है? यहां सभी प्राणों में हृदय धड़क रहा है, ऐसा कैसे हो रहा है? ऐसे ही तुम सब भगवान भी हो जाओगे।

लेकिन कई अड़चनें हैं। हिंदू को डर लगता है, अगर मैं कहूं कि मैं भगवान हूं तो वह कहता है, फिर हमारे कृष्ण और हमारे राम! उनका दावेदार पैदा हो गया? उनके भीतर राजनीति पैदा होती है। जैन को अड़चन होती है। तीथ□कर तो चौबीस ही हुए, बस उसके बाद खत्म कर दिया उन्होंने सिलसिला, उसके बाद कोई तीथ□कर हो नहीं सकता, कोई भगवान हो नहीं सकता। पच्चीसवां वे कैसे स्वीकार करें; और मैं कहता हूं पच्चीसवें पर रुकने की जरूरत नहीं है, कहीं रुकने की जरूरत नहीं है, हर दीया जलना चाहिए, सब दीये जलने चाहिए।

मैकदे पर तश्नगी छा जाएगी।

एक मैकश भी अगर प्यासा रहा

इस मधुशाला में कोई प्यासा नहीं रहना चाहिए; एक भी प्यासा नहीं रहना चाहिए। जिस दिन यह सारा जगत भगवत्ता में होकर नाचेगा, उस दिन आएगा रामराज्य; जिस दिन सब राम होंगे, उस दिन आएगा रामराज्य। किसी राम के आने से नहीं आता। राम तो कई बार आए और गये। उससे रामराज्य नहीं आता। जब तुम्हारे सबके भीतर राम की सुगंध उठेगी! राम का मंत्र नहीं जपो, राम की सुगंध उठने दो। भगवान-भगवान कहकर मत पुकारो, भगवान हो जाओ।

जहां आंसू गिरे इक चश्मए-जमजम वहां उबला

पड़ी बुनियाद काबे की, जहां मैंने जबीं रख दी

तुम जिस दिन इस भगवत्ता के भाव से भरोगे, जहां तुम्हारे आंसू गिर जाएंगे, वहां चश्मए-जमजम, वहां अमृत का झरना फूट पड़ेगा। और जहां तुम सिर झुका दोगे, वहां काबा बन जाएगा; जहां तुम बैठोगे, वहां तीर्थ! इस उदघोषणा को करने के लिए ही मैं कुछ कह रहा हूं।

तुम पूछते हो कि भगवान तो वह है जो सबको पैदा कर रहा है।

भगवान वह नहीं है जो सबको पैदा कर रहा है। जरा उस पर भी तो दया करो! अब तक घबड़ा गया होगा। अब तक परेशान हो गया होगा। अब तक थक गया होगा। तुम्हें पैदा करते-करते कितना समय हो गया? हार गया होगा; उदास हो गया होगा; या पागल हो गया होगा। भगवान वह नहीं है जो तुम्हें पैदा कर रहा है। भगवान स्रष्टा नहीं है, वह धारणा छोड़ो। भगवान इस सृष्टि का आधार है। भगवान सृष्टि है। वही फूल में खिल रहा है; वही मनुष्य में बोल रहा है; वही पत्थर में सो रहा है। भगवान अलग नहीं है। ऐसा नहीं है भगवान जैसे मूर्तिकार मूर्ति बनाता है। फिर मूर्ति बन गयी तो मूर्तिकार अलग हो गया, मूर्ति अलग हो गयी। भगवान ऐसे है जैसे नृत्यकार, नर्तक, नाचता है तो नृत्य रहता है, नाच बंद हुआ कि नृत्य भी गया। नृत्य को और नर्तक को अलग नहीं कर सकते हो। इसलिए तो हमने नटराज की प्रतिमा बनायी। जो लोग कहते हैं, भगवान कुम्हार की तरह है, घड़े की तरह तुम्हें ढाल रहा है, उन्हें कुछ पता नहीं है। भगवान नटराज है। तुम उसका नृत्य हो। उससे अलग नहीं हो। तुम्हें पैदा नहीं कर रहा है, तुम्हारे भीतर पैदा हुआ है।

इस भेद को खयाल में लेना। यह भेद बुनियादी है। जो मुझे समझना चाहते हैं, उन्हें यह समझ लेना पड़ेगा। भगवान ने तुम्हें पैदा नहीं किया है, भगवान तुम्हारे भीतर पैदा हुआ है। भगवान ने तुम्हें बनाया नहीं है, तुम बना है। और तुम्हारे भीतर ही नहीं, इतना विराट है कि तुममें कैसे चुक जाएगा? इसलिए वृक्षों में, पौधों में, पत्थरों में, चांद-तारों में, सब में वही हुआ है, अनेक-अनेक रूपों में, अनेक ढंगों में। सागर के किनारे जाओ, सागर में उठती लहरों को देखो। सागर लहरों को पैदा नहीं कर रहा है, सागर लहरा रहा है। अगर सागर लहरों को पैदा करता हो, तो दो-चार लहरों को बीनकर और गट्ठर बांधकर घर ले आना। न ला सकोगे। सागर से लहरें अलग नहीं की जा सकती। इसलिए यह कहना ठीक नहीं है कि सागर लहरों को पैदा कर रहा है; ठीक यही होगा कहना कि सागर लहरों में लहरा रहा है। ठीक ऐसा ही अस्तित्व है। यहां स्रष्टा सृष्टि में लहरा रहा है। यह दृष्टि तुम्हें साफ हो तो ही मेरी बातें तुम्हें समझ में आ सकेंगी। अन्यथा तुम बचकाने प्रश्न पूछते रहोगे।

तुम पूछ रहे हो कि क्या आप सबको पैदा कर रहे हैं? मैं ऐसी झंझट क्यों लूंगा? मुझे क्या लेना-देना किसी को पैदा करने से? कोई पैदा नहीं कर रहा है, कोई कर्ता की तरह अलग नहीं बैठा है। यह जो विराट ऊर्जा है अस्तित्व की, यही भगवत्ता है। सृष्टि की क्रिया हो रही है, लेकिन स्रष्टा कोई भी नहीं है। सृजन की क्रिया घट रही है, लेकिन घटा कोई भी नहीं रहा है। यही तो इसका रहस्य है, यही तो इसकी अपूर्व गरिमा है। यहां कोई बनानेवाला नहीं है, और चीजें बन रही हैं। स्रष्टा स्वयं अनेक-अनेक रूपों में ढल रहा है। सृजन शक्ति है परमात्मा, स्रष्टा नहीं। वह भाषा गलत है। लेकिन तुम्हें दिखायी नहीं पड़ रहा है, क्योंकि तुम धारणाओं में जकड़े बैठे हो। तुम सोच रहे हो, ऊपर कहीं कोई बैठा है, वह सारा काम चला रहा है—कोई बड़ा इंजीनियर, कि कोई बड़ा यंत्रविद। तुम्हारी धारणा बच्चों की धारणा है।

हैरान हूं क्यों मुझको दिखायी नहीं देते
सुनता हूं मेरी बज्म में वह आए हुए हैं

दिखायी दे नहीं सकता, जब तक तुम्हारी ये धारणाएं न गिर जाएं। ये धारणाएं जाएं तो तुम्हें दिखायी दे। बुद्ध का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जब मेरी दृष्टि बिलकुल निर्मल हुई तो मुझे कुछ दिखायी नहीं पड़ा; बस दृष्टि निर्मल रह गयी, कोई दिखायी नहीं पड़ा। कोई परमात्मा नहीं, कोई विषय नहीं; दृष्टि जब मेरी निर्मल हुई, शुद्ध हुई, तो कोई दिखायी नहीं पड़ा। फिर क्या हुआ? दृष्टि की इस शुद्धता में दृष्टि ने अपने को जाना। द्रष्टा को कोई दिखायी नहीं पड़ा, द्रष्टा को द्रष्टा का अनुभव हुआ। इसको आत्मज्ञान कहा है, समाधि कहा है, निर्वाण कहा है।

तुम जिस दिन अपने भीतर छिपे हुए द्रष्टा को देख लोगे, उसी दिन तुम हंसोगे कि तुम कहां खोजने चल पड़े थे? दूर जाने की जरूरत न थी। कहीं जाने की जरूरत न थी। जाने की जरूरत न थी। सिर्फ शांत होकर भीतर देख लेने की जरूरत थी।

मैंने देखा और पाया। मैं तुमसे कहता हूं, तुम भी देखो और पा लो। तुम सिद्धांतों में मत उलझे रहो।

चौथा प्रश्नः क्या इस जगत में प्रेम का असफल होना अनिवार्य ही है?

इस जगत का प्रेम तो चैतन्य कीर्ति, असफल होगा ही। उसकी असफलता से ही उस जगत का प्रेम जन्मेगा। बीज तो टूटेगा ही, तभी तो वृक्ष का जन्म होगा। अंडा तो फूटेगा ही, तभी तो पक्षी पंख पसारेगा और उड़ेगा। इस जगत का प्रेम तो बीज है। पत्नी का प्रेम, पति का प्रेम; भाई का, बहन का, पिता का, मां का, इस जगत के सारे प्रेम बस प्रेम की शिक्षणशाला हैं। यहां से प्रेम का सूत्र सीख लो, लेकिन यहां का प्रेम सफल होने वाला नहीं है, टूटेगा ही। टूटना ही चाहिए। वही सौभाग्य है! और जब इस जगत का प्रेम टूट जाएगा, और इस जगत का प्रेम तुमने मुक्त कर लिया, इस जगत के विषय से तुम बाहर हो गये, तो वही प्रेम परमात्मा की तरफ बहना शुरू होता है। वही प्रेम भक्ति बनता है। वही प्रेम प्रार्थना बनता है। हमारी इच्छा होती है कभी टूटे न।

कभी तिलिस्म न टूटे मेरी उमीदों का

मेरी नजर पै यही परदाए-शराब रहे

हम तो चाहते ही यही है कि यह परदा पड़ा रहे, टूटे न। यह जादू न टूटे! लेकिन यह जादू टूटेगा, ही, क्योंकि यह जादू है, सत्य नहीं है। कितनी देर चलाओगे? जिती देर चलाओगे उतना ही पछताओगे। जितनी जल्दी टूट जाए, उतना सौभाग्य है। क्योंकि यहां से आंखें मुक्त हों तो आंखें आकाश की तरफ उठें; बाहर से मुक्त हों तो भीतर की तरफ जाएं।

हद्दे-तलब में गम की कड़ी धूप ही मिली

जुल्फों की छांव चाह रहे थे किसीसे हम

यहां कोई जुल्फों की छांव नहीं मिलती, यहां तो कड़ी धूप ही मिलती है। यहां तो तुम जिसको प्रेम करोगे उसीसे दुख पाओगे। यहां प्रेमी दुखी ही होता है। सुख के सपने देखता है! जितने सपने देखता है, उतने ही बुरी तरह सपने टूटते हैं। इसीलिए तो बहुत-से लोगों ने तय कर लिया है कि सपने ही न देखेंगे। प्रेम का सपना न देखेंगे, विवाह कर लेंगे। न रहेगा सपना, न टूटेगा कभी। इसीलिए तो लोग विवाह पर राजी हो गये। समझदार लोगों ने प्रेम को हटा दिया, उन्होंने विवाह के लिए राजी कर लिया लोगों को।

लेकिन विवाह का खतरा है एक—सपना नहीं टूटेगा, यही खतरा है। सपना टूटना ही चाहिए। सपना होना चाहिए और टूटना चाहिए। बड़ा सपना देखो, डरो मत; मगर टूटेगा, यह याद रखो। रूमानी सपने देखो, मगर टूटेंगे, यह याद रखो। यहां जुल्फों की छांव मिलती ही नहीं, यहां हर जुल्फ की छांव में धूप मिलती है, कड़ी धूप मिलती है।

दागे-दिल से भी रोशनी न मिली

यह दिया भी जला के देख लिया

जलाओ दिया। जलाना उचित है। इसलिए मैं प्रेम के खिलाफ नहीं हूं। और इसलिए मेरी बातें तुम्हें बड़ी बेबूझ मालूम पड़ती है। तुम्हारे तथाकथित संतों ने तुमसे कहा है, प्रेम के विपरीत हो जाओ। मैं प्रेम के विपरीत नहीं हूं। मैं कहता हूंः प्रेम करो, देखो, जानो, जलो! हालांकि प्रेम का सपना टूटेगा।

और अगर ठीक से तोड़ना हो सपना, तो ठीक से उसमें जाना जरूरी है। भोग में उतरोगे तो ही योग का जन्म होगा; राग में जलोगे तो विराग की सुगंध उठेगी। जो राग में नहीं जला वह विराग से वंचित रह जाएगा और जिसने भोग की पीड़ा नहीं जानी, वह योग का रस कैसे पीएगा?

इसलिए मेरी बातें तुम्हें बहुत बार उल्टी मालूम पड़ती हैं। मैं कहता हूं, अगर योगी बनना है तो भोगी बनने से डरना मत। भोग ही लेना। उसी भोग के विषाद में से तो योग का सूत्रपात है। जब तुम देखोगे, देखोगे, देखोगे, दुख पाओगे,जलोगे, तड़पोगे, जब सब तरह से देखोगे—' दागे-दिल से भी रोशनी न मिली, यह दीया भी जला के देख लिया, ' जब रोशनी मिलेगी नहीं, अंधेरा बना ही रहेगा, बना ही रहेगा, एक दिन तुम सोचोगे कि मैं जो दीया जला रहा हूं वह दीया जलने वाला दीया नहीं है, अब मैं तलाश करूं उस दीये की जो जलता है। और वह दीया सदा से जल रहा है। जरा लौटोगे पीछे और उसे जलता हुआ पाओगे। वह दीया तुम हो।

बुझ गये आरजू के सब चिराग
एक अंधेरा है चारसू बाकी

और जब वासना के चिराग बुझ जाएंगे तो निश्चित गहन अंधकार में पड़ोगे। उसी गहन अंधकार में से तलाश पैदा होती है, आदमी टटोलना शुरू करता है।

इसलिए डरो मत। कच्चे मत प्रार्थना में उतना, अन्यथा तुम्हारी प्रार्थना भी कच्ची रह जाएगी। प्रार्थना का गुणधर्म तुम्हारे अनुभव पर होता है। जिसने संसार को ठीक से देख लिया, और कांटों में चुभ गया है, और जार-जार हो गया है, और घाव-घाव हो गया है, और जिसने सब तरफ से अनुभव कर लिया और अपने अनुभव से जान लिया कि संसार असार है—शास्त्रों में लिखा है, इसलिए नहीं; कोई ज्ञानी ने कहा है, इसलिए नहीं; नानक-कबीर ने दोहराया है, इसलिए नहीं; अपने अनुभव से गवाह हो गया कि हां, संसार असार है—बस, इसी क्षण में क्रांति घटती है, संन्यास का जन्म होता है।

कहीं पे धूप की चादर बिछाके बैठ गये
कहीं पे शाम सिरहाने लगा के बैठ गये
खड़े हुए थे अलावों की आंच लेने को
सब अपनी-अपनी हथेली जला के बैठ गये
दुकानदार तो मेले में लुट गये यारो
तमाशबीन दुकानें लगा के बैठ गये
ये सोचकर कि दरख्तों में छांव होती है
यहां बबूल के साये में आके बैठ गये

इस संसार को तुम बबूल का वृक्ष पाओगे। देर-अबेर यह अनुभव आएगा ही।

यह सोचकर कि दरख्तों में छांव होती है
यहां बबूल के साये में आके बैठ गये

लेकिन तुम्हारे अनुभव से ही यह बात उठनी चाहिए। उधार अनुभव काम नहीं आएगा। उधार ज्ञान कूड़ा-करकट है, उसे जितनी जल्दी फेंक दो उतना बेहतर! अपना थोड़ा-सा ज्ञान पर्याप्त है—एक कण भी अपने ज्ञान का पर्याप्त है—रोशनी के लिए! और शास्त्रों का बोझ जरा भी काम नहीं आता। शास्त्र से बचो! शास्त्र को हटाओ। जीवन को जीओ।

यह जीवन सपना है, यह टूटेगा। इसके टूटने में ही हित है। इसके टूटने में सौभाग्य है, वरदान है। क्योंकि यह सपना टूटे तो परमात्मा से मिलन हो; यह विराग जगे संसार से, तो परमात्मा से राग जगे।

दो तरह के लोग हैं। जिनका संसार से राग है, उनको परमात्मा से विराग होता है; क्योंकि राग और विराग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिन्होंने संसार की तरफ मुंह कर लिया, परमात्मा की तरफ पीठ हो गयी। संसार के सम्मुख हो गये, परमात्मा से विमुख हो गये। संसार के प्रति राग, परमात्मा के प्रति विराग। जिस दिन संसार के प्रति विराग होगा, उस दिन तुम एकदम रूपांतरित हो जाओगे। उस दिन तुम पाओगे, परमात्मा के प्रति राग का जन्म हो गया। उस राग का नाम ही भक्ति है।

अथातो भक्ति जिज्ञासा भाग-२

अथातो भक्ति जिज्ञासा।
आज इतना ही।

भक्त्या भजनोपसंहाराद्गौण्या परायैतद्धेतुत्वात् ।।५६।।
रागार्थे प्रकीर्त्तिसाहचर्याच्चेतरेषाम् ।।५७।।
अंतराले तू शेषाः स्युरुपास्यादौ च काण्डत्वात् ।।५८।।
ताभ्यः पावित्र्यमुपक्रमात् ।। ५९।।
तासुप्रधान योगात् फलाऽधिक्यमेके ।। ६०।।
गौणी-भक्ति में लगो, पराभक्ति की प्रतीक्षा करो
तीसरा प्रवचनः

भक्ति की यात्रा को दो खंडों में बांटा जा सकता है। एक तो भक्त के हृदय में विरह की अवस्था है—वियोग की, रुदन की। और फिर दूसरी भक्त के हृदय में योग की अवस्था है—मिलन की, हर्ष-उन्माद की।एक तो जब भक्त तलाश रहा है, भगवान की कोई झलक नहीं मिलती; अंधेरे में टटोल रहा है; गिरता है, उठता है, फिर गिरता है, फिर-फिर उठता है, कई बार भरोसे का धागा हाथ से छूट-छूट जाता है; कई बार अंधेरा आत्यंतिक मालूम होता है कि सुबह कभी भी नहीं होगी; लेकिन, ये क्षण संदेह के आते हैं और चले जाते हैं; सुबह की यात्रा, सुबह की खोज जारी रहती है। इन सारी स्थितियों के बावजूद भक्त तलाशता रहता है। यह आधी यात्रा है। फिर आधी यात्रा आनंद-उत्सव की है, जब मिलन हो गया; मिलन की घड़ी घट गयी।

पहले क्षणों में भक्त प्रमुख है, भगवान गौण है। जिसे जाना नहीं, वह गौण होगा ही। जिसे पहचाना नहीं, वह प्रमुख कैसे हो सकता है? भक्त मिटाना चाहता है, मगर किसमें मिटे, उसकी तलाश करता है। जैसे गंगा तलाश करती है सागर की—मिटना चाहती है, खोना चाहती है।

इस जगत में वे ही धन्यभागी हैं जो मिट पाते हैं; जो उस शरण को उपलब्ध हो जाते हैं जहां मिटाना सुगम है। वे ही धन्यभागी हैं और वे ही हैं, जो मिट गये हैं। विरोधाभास लगेगा। लेकिन जीवन का अंतरंग विरोधाभासों से भरा है यही तो अर्थ है कहने का कि अस्तित्व रहस्यपूर्ण है। यहां जो हैं, वे नहीं हैं; और जो मिट गये हैं, वे ही हैं। यहां जिसने अपने को बचाया, उसने गंवाया; और जिसने अपने को गंवाया, उसने पाया। यहां जीत हार में बदल जाती है, यहां हार जीत हो जाती है।

भक्त मिटने चला है। मगर अभी उस जगह का भी पता नहीं है, उस द्वार का भी पता नहीं है जिस द्वार पर मिटना हो जाएगा। तलाश रहा है। भक्त अपनी मौत खोज रहा है। इसलिए भक्त होने के लिए साहस चाहिए। साधारणतः लोग सोचते हैं, कायर लोग धार्मिक हो जाते हैं। गलत है उनकी धारणा। कायर कभी धार्मिक नहीं हो पाते; कायर तो धार्मिक हो ही नहीं सकता। दुस्साहसी चाहिए। मिटने की क्षमता चाहिए।

भक्ति तो आत्मघात की कला है। तुम मिटोगे तो ही परमात्मा हो सकेगा। तुम जरा भी बचे तो उतनी ही बाधा शेष रह जाएगी। तुम्हारे होने में बाधा है।

तो भक्त रोता है, पुकारता है, चीखता-चिल्लाता है, छाती पीटता है, गिर-गिर पड़ता है, सारा हृदय विषाद से भरा होता है। इस विषाद में कभी-कभी दूर के तारे भी ऊग आते हैं। और इस विषाद में कभी-कभी फूल की सुगंध भी नासापुटों तक आ जाती है। इस विषाद में कभी-कभी उस परम की ध्वनि भी सुनी जाती है, उसका तैरता संगीत भी कभी-कभी आ जाता है। पर ऐसी घड़ियां बहुत कम होती हैं; और जब होती भी हैं तो प्यास को बुझाती नहीं, और जलाती हैं और जगाती हैं। क्योंकि जरा-जरा सा जो स्वाद लगता है, वह और तड़पाता है। एकाध बूंद प्यासे के कंठ में पड़ जाए तो प्यास बढ़ जाती है, घटती नहीं। भरोसा बढ़ता है, प्यास भी बढ़ती है।

इस प्रथम अवस्था को जो पार कर सके, वही दूसरी अवस्था को पाता है—मिलन की—विरह की अग्नि में जो जले, वही मिलन के योग्य हो पाता है। विरह की यह अवस्था परीक्षा की अवस्था है। अगर दिल भर कर रोए न, पुकारा न, तो कभी पा न सकोगे। पहली अवस्था में कंजूसी की, दूसरी से दूर रह जाओगे। यह मार्ग कृपण के लिए नहीं है, कायर के लिए नहीं है। साहस चाहिए और अकृपणभाव चाहिए। सब भांति सर्वस्व चरणों में रख देने की क्षमता चाहिए।

इस अवस्था में भगवान तो दूर होता है—दूर की ध्वनि की भांति; दूर से आती सुगंध की भांति—भगवान तो एक प्रतिशत होता है, भक्त निन्यानबे प्रतिशत होता है। दूसरी घड़ी जब घटती है तो भक्त एक प्रतिशत रह जाता है और भगवान निन्यानबे प्रतिशत हो जाता है।

ये दो अवस्थाएं तो शब्दों में कही जा सकती हैं। तीसरी अवस्था है, जिसको कहा नहीं जा सकता—जब भक्त बचता ही नहीं और भगवान ही बचता है। वह परम फल है।

आज के सूत्र इस दिशा में तुम्हारे लिए सहयोगी होंगे।

'भक्त्या भजनोपसंहारात् गौण्या पराय एतद्धेतुत्वात्।।

भक्ति शब्द यहां गौणी-भक्ति का प्रतिपादक है; भजन और सेवा ही गौणी भक्ति है, और यह गौणी भक्ति पराभक्ति की भित्तिरूप है।

शांडिल्य इन दो अंगों को दो नाम देते हैं: एक को गौणी-भक्ति, एक को पराभक्ति। गौणी-भक्ति नाममात्र को ही भक्ति है। अभी भगवान ही नहीं मिला तो भक्ति क्या? मगर जरूरी अंग है। गौणी-भक्ति में उपचार है, विधि-विधान है, पूजा-प्रार्थना, आराधना है। गौणी-भक्ति में द्वैत है। भक्त और भगवान दूर हैं, बीच में बड़ा फासला है। अभी सेतु भी नहीं बना। लेकिन भक्त ने इस किनार से उस किनारे को पुकारना शुरू किया है। आवाज उसकी पहुंचती है या नहीं, यह भी कुछ पता नहीं। पहुंचेगी भी या नहीं, यह भी कुछ पता नहीं। वहां कोई है भी दूसरे किनारे पर सुनने को, यह भी पता नहीं। दूसरा किनारा होता भी है, यह पता नहीं। जिसमें इतना साहस हो, इतनी श्रद्धा हो...।

हजार संदेह खड़े होंगे: क्यों समय व्यर्थ करते हो? किसे पुकार रहे हो? आकाश चुप मालूम होता है, उत्तर तो आता नहीं। उस किनारे से कोई इशारा तो मिलता नहीं। हजार संदेह उठेंगे, स्वाभाविक है। इतनी श्रद्धा चाहिए। कि तुम उन संदेहों को पार कर जाओ। इतनी श्रद्धा चाहिए कि उन संदेहों के बावजूद तुम आगे बढ़ जाओ। यह श्रद्धा कहां से आएगी।

इसलिए शांडिल्य ने कहा है: यह श्रद्धा गुरु से मिलेगी। यह गुरु के पास मिलेगी। अगर तुम्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए जो उस किनारे खड़ा है, या उसे किनारे से आया है, जिसने उस किनारे को जाना है, जिसके आसपास उस किनारे की कुछ हवा है, और जिसकी आंखों में उस किनारे की कुछ झलक है, और जिसका हाथ छुओ तो उस किनारे से जुड़ जाते हो, और जिसमें झांको तो आकाश के द्वार खुल जाते हैं। ऐसा व्यक्ति न मिले, तब तक मरुस्थल में भटकना होता है।

गुरु का अर्थ है: मरुस्थल में तुम्हें कोई मरूद्यान मिल गया। अज्ञानियों की भीड़ में तुम्हें कोई जागा पुरुष मिल गया। सोए हुए लोगों में तुम्हें कोई मिल गया जो सोया हुआ नहीं है। सोया हुआ जो नहीं है वही तुम्हें जगा सकेगा।

शास्त्रों से काम नहीं चलने का। शास्त्र तो कमजोर पकड़ लेते हैं। कायर शास्त्रों को पकड़ लेते हैं। साहसी शास्ता को खोजते हैं; जिसके भीतर अभी शास्त्र का जन्म हो रहा हो, जिसके भीतर उस दूर के प्रकाश की किरण उतर रही हो, अभी नाचती हो, अभी जीवंत हो, अभी धड़कती हो, अभी श्वास लेती हो—ऐसे व्यक्ति के पास ही श्रद्धा का आविर्भाव होता है। फिर इसी श्रद्धा के सहारे तो परमात्मा की तरफ जाना है।

इसलिए गुरु पाथेय है। बिना गुरु के पाथेय को पकड़े हुए तुम जा न सकोगे। यात्रा बहुत खतरनाक है। बड़े से बड़ा खतरा तो यही है कि तुम जाओगे कहां? किस दिशा में खोजोगे? कैसे खोजोगे? तुम अपने से इतने ग्रसित हो! और तुम्हारा सारा अतीत अज्ञान का है, तुम्हारा सारा अतीत गलत आदतों से भरा है, उन्हीं आदतों को सिर पर लिये जाओगे, वे आदतें तुम्हें वापिस अतीत की तरफ मोड़ती रहेंगी।

आदतों का एक नियम है कि वे पुनरुक्त होना चाहती हैं। तुमने कल शराब पी थी, आदत आज भी कहेगी—पीओ। तुमने कल गाली दी थी, आदत आज भी कहेगी—दो। तुमने जो कल किया था, और-और अतीत में किया था, वह सब दोहरना चाहता है। कोई भी आदत आसानी से नहीं छूट जाती। और ध्यान रखना, तुम्हारे पास आदतों के सिवाय कुछ भी नहीं है; तुम्हारे पास अतीत के सिवाय कुछ भी नहीं है, भविष्य तुम्हारे पास नहीं है। ऐसे किसी व्यक्ति को खोज लेना जिसके पास भविष्य हो। उसके साथ जुड़ोगे तो द्वार खुलेगा, क्योंकि भविष्य द्वार है। उसके साथ जुड़ोगे तो धीरे-धीरे भरोसा बढ़ेगा, धीरे-धीरे उसकी तरंगें तुम्हारे हृदय की भी बंद कलियों को खोलेंगी। उसकी हवाएं तुम्हारे भीतर प्रवेश करेंगी; तुम्हारे वृक्षों को स्पर्श करेंगी, तुम्हारे वृक्षों में से दौड़ेंगी, तुम्हारी धूल झाड़ेंगी, तुम्हारे सूखे पत्ते गिराएंगी, तुम्हारी पुरानी आदतों को उखाड़ेंगी; और धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर भी नये पत्ते ऊगने शुरू हो जाएंगे—तुम समर्थ हो, सिर्फ तुम्हें अपने सामर्थ्य का पता नहीं है।

पहली को शांडिल्य ने कहा गौणी-भक्ति। लेकिन गौणी से तुम यह अर्थ मत लेना कि उसका कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि उसके बिना पराभक्ति होगी ही नहीं। गौणी उसे इसलिए कहते हैं कि उस पर रुक मत जाना, ध्यान रखना। श्रद्धा पर रुक नहीं जाना है, गुरु पर रुक नहीं जाना; गुरु से पार होना है।

लेकिन दुनिया में दो तरह के नासमझ हैं। एक हैं जो कहते हैंः जब गुरु से पार ही होना है तो फिर गुरु से जुड़े ही क्यों? और दूसरे हैं जो कहते हैंः जब गुरु से जुड़ना ही है और गुरु के बिना मिलन होगा ही नहीं, तो जुड़ गये, अब छूटें क्यों? ये दोनों नासमझ हैं। गुरु तो सीढ़ी है। एक दिन उसे पकड़ना पड़ता है, एक दिन उसे छोड़ देना पड़ता है। तो ही तो सीढ़ी का उपयोग हो पाएगा। चढ़ भी गये सीढ़ी से और आखिरी सोपान पर जाकर सीढ़ी को पकड़कर बैठ रहे, तो सार क्या हुआ? सीढ़ी तो गंतव्य नहीं है। तो कुछ हैं जो अपने अहंकार के कारण गुरु को नहीं पकड़ पाते, और कुछ हैं जो अपने लोभ के कारण गुरु को पकड़ तो लेते हैं लेकिन छोड़ नहीं पाते। लोभ और अहंकार, दो बातों से सावधान रहना।

गौणी इसीलिए कहा है कि यह अंत नहीं है, यात्रा का प्रारंभ है। अनिवार्य प्रारंभ है। इससे बचा नहीं जा सकता है।

'गौणी-भक्ति में भजन और सेवा'। भजन उसका, जिससे अभी मिलन नहीं हुआ, जिससे अभी पहचान नहीं हुई। उसकी पुकार! पुकारो-पुकारो, तो एक दिन जरूर यह अस्तित्व उत्तर देता है। यह अस्तित्व बहरा नहीं है। यह अस्तित्व संवेदनशील है। लेकिन तुम्हारी पुकार हार्दिक होनी चाहिए। तुम पुकारते हो और कोई नहीं सुनता—उसका सिर्फ इतना ही अर्थ है कि तुम्हारी पुकार के पीछे तुम्हारा हृदय नहीं धड़कता था। और कुछ अर्थ नहीं है। इससे यह मत सोच लेना कि वहां कोई उत्तर देनेवाला नहीं है। उत्तर तो दिया जाएगा, लेकिन अभी तुम उत्तर के योग्य नहीं। अभी तुमने प्रश्न भी ठीक से नहीं पूछा, तुम्हारा प्रश्न भी उधार है, तुम्हारा प्रश्न भी अपना नहीं है, तुम्हारे प्रश्न में भी प्राण नहीं है, तुम्हारा प्रश्न कचरा है। कचरा प्रश्नों के उत्तर नहीं आते अस्तित्व से।

लेकिन जब भी तुम ऐसा कोई प्रश्न पूछोगे, जिस पर तुम अपने जीवन को लगाने को तैयार हो; जब तुम कोई ऐसा प्रश्न पूछोगे, ऐसी पुकार करोगे कि तुम उस पर सब न्योछावर करने की तैयारी रखते हो, तुम कीमत चुकाने के लिए

राजी हो, तुम मुफ्त उत्तर नहीं पाना चाहते और जो भी मांगा जाएगा, जो भी शर्त होगी, पुरी करोगे—चाहे जीवन ही क्यों न देना पड़े—उसी दिन तुम उत्तर पाओगे। उसी दिन तुम पाओगे, सारा अस्तित्व जो कल तक बहरा मालूम पड़ता था, बहरा नहीं है। वृक्ष बोलने लगे, तारे बोने लगे, पत्थर-पहाड़ बोलने लगे। अचानक तुम

पाओगे, तुम एक दूसरे जगत में प्रवेश कर गये, एक संवेदनशील जगत का जन्म हुआ। कुछ भी नहीं हुआ, जगत वही का वही है, सिर्फ तुम्हारी संवेदना जग गयी; तुम्हारी संवेदना के स्रोत खुल गये। तुम्हारा हृदय अनुभव करने लगा।

मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेसे
एक लहर उठ-उठकर फिर-फिर
ललक-ललक तट तक जाती है,
किंतु उदासीना युग-युग से
भाव-भरी तट की छाती है,
भाव-भरी यह चाहे तट भी
कभी बढ़े, तो अनुचित क्या है?
मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेसे

भक्त ऐसा अनुभव करेगा। 'मेरी तो हर सांस मुखर है।' पुकारेगा, आवाज देगा, और वहां से कोई उत्तर न पाएगा।

मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेसे एक लहर उठ-उठकर फिर-फिर
ललक-ललक तट तक जाती है,
किंतु उदासीना युग-युग से
भाव-भरी तट की छाती है,

तुम्हारी छाती उदासीन है। लहर आती भी है उस तरफ से तो तुम पकड़ नहीं पाते। तुम्हारी आंखें अंधी हैं। उस तरफ से हाथ बढ़ता भी है, आशीर्वाद बरसाने को तो तुम देख नहीं पाते। तुम कुछ का कुछ देख लेते हो। तुम कुछ का कुछ समझ लेते हो। तुम्हारी समझ ही बाधा बन रही है। तुम नासमझ हो जाओ, तुम अपनी सारी समझ छोड़ दो, तो शायद समझ भी जाओ। लेकिन तुम्हारा पांडित्य, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारी व्याख्याएं, तुम्हारी टीकाएं, तुम्हारे शास्त्र; तुमने जो सीखा, पढ़ा, गुना है—वह सब बीच में बाधा बन जाता है। उस सबको पार कर के प्रभु की आवाज तुम तक नहीं पहुंच पाती।

मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय तेरे सब मौन संदेसे

परमात्मा मौन नहीं है, परमात्मा प्रतिपल बोल रहा है। उसके बोलने के ढंग और हैं। कभी-कभी मौन से भी बोलता है, मौन उसकी भाषा है। लेकिन बोलता है, निश्चित बोलता है।

बंद कपाटों पर जा-जाकर
जो फिर-फिर सांकल खटकाए,
और न उत्तर पाए, उसकी
लाज-व्यथा को कौन बताए,
पर अपमान पीये पग फिर भी
उस डयोढ़ी पर जाकर ठहरें,
क्या मुझमें ऐसा जो तुझसे मेरे तन-मन-प्राण बंधे से।
मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेसे

फिर भी भक्त पुकारता रहता है। हारता है, और पुकारता है। जल्दी सफलता नहीं मिलती है। इसलिए जो जल्दबाजी में हैं वे परमात्मा से वंचित रह जाते हैं। यह हमारी सदी अगर परमात्मा से वंचित है तो उसका और कोई कारण नहीं है; न तो पाप बढ़ा है, न लोग भ्रष्ट हुए हैं, न नास्तिकता फैल गयी है, अगर कोई एक चीज

बढ़ी है तो वह जल्दबाजी बढ़ी है। आदमी तत्क्षण चाहता है। प्रतीक्षा की क्षमता चुक गयी है। घड़ीभर भी राह देखने को कोई तैयार नहीं।

बंद कपाटों पर जा-जाकर जो फिर-फिर सांकल खटकाए,
और न उत्तर पाए, उसकी
लाज-व्यथा को कौन बताए,

बहुत बार होगा। सांकल खटखटाओगे, कोई उत्तर न आएगा। बार-बार लौट आओगे—थके, उदास, हारे, पराजित। प्रतीक्षा चाहिए ही। जब हारे लौट आओ, तो ऐसा मत सोचो कि परमात्मा नहीं है; और ऐसा भी मत सोचना कि परमात्मा कठोर है; और भी ऐसा मत सोचना कि परमात्मा संवेदनशून्य है, इतना ही जानना की अभी मेरी पुकार पूरी नहीं है; अभी मेरी प्यास अधूरी है। अभी मैंने द्वार तो खटखटाया था, लेकिन पूरे प्राण ,खटखटाने में संयुक्त न हुए। ऐसे डरते-डरते खटखटाया था। सोचा था, शायद हो—इस तरह खटखटाया था। श्रद्धा पूरी न थी। मेरे संदेह ही बाधा बन गये।

जाहिर और अजाहिर दोनों
विधि मैंने तुझको आराधा,
रात चढ़ाए आंसू, दिन में
राग रिझाने को स्वर साधा,
मेरे उर में चुभती प्रतिध्वनि
आ मेरी ही तीर सरीखी
पीर बनी थी गीत कभी, अब गीत ह्रदय के पीर बने से
मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेसे

प्रारंभ में ऐसा होगा। लगेगा। तुम किसी पत्थर से बातें कर रहे हो। अगर बातें करते ही रहे, तो पत्थर पिघले हैं, तुम्हारे लिए भी पिघलेंगे। थकना मत, चोट किये जाना। किसी को भी पता नहीं है, किस चोट पर द्वार खुल जाएगा। द्वार खुलता है, इतना पक्का है। औरों के लिए खुला है, तुम्हारे लिए भी खुलेगा। मगर किस चोट पर खुलता है, कोई भी नहीं कह सकता। कितनी प्रार्थनाएं संयुक्त हो जाती हैं तब ह्रदय इस योग्य होता है, कोई भी नहीं कह सकता। फिर प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग है।

पुकारो! नये-नये रास्ते खोजो पुकारने के। शब्द से पुकारो, मौन से पुकारो; आंसुओं से पुकारो, नृत्य से पुकारो, पुकारो। नये-नये मार्ग खोजो पुकारने के। एक हारे तो दूसरा तलाशो। थको मत! हारो मत! जीत सुनिश्चित है। देर हो सकती है, अंधेर नहीं है।

क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं

नये-नये गीत गाओ। एक गीत सफल न हो, दूसरा गीत गाओ। एक द्वार न खुले, दूसरा द्वार खटखटाओ। उसके द्वार अनंत हैं।

क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं
प्राची के वातायन पर चढ़
प्रात किरण ने गाया,
लहर-लहर ने ली अंगड़ाई
बंद कमल खिल आया,
मेरी मुस्कानों से मेरा
मुख न हुआ उजियाला
आशा के मैं क्या तुझको राग सुनाऊं

क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं

कमल खिल जाता, तुम क्यों न खिलोगे? कली फूल बन जाती है, तुम क्यों न बनोगे? पक्षी गा उठते हैं, तुम क्यों न गा उठोगे? अपने पर थोड़ी श्रद्धा चाहिए।

और बड़ी हानि हुई है कि जिनसे तुमने सोचा था तुम्हें श्रद्धा मिलेगी, उनसे सिर्फ तुम्हें स्वयं के प्रति अपमान मिला है। तुम्हारे धर्मगुरु, तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हारे तथाकथित साधु-संत अगर कोई एक बात तुम्हें पकड़ा दिये हैं, तो वह तुम्हारे प्रति निंदा का भाव है। तुम्हें उन्होंने गर्हित घोषित कर दिया है। तुम अपात्र हो, पापी हो और तुम सदा ऐसे ही रहनेवाले हो—ऐसे धारणा तुम्हारे चित्त में बिठा दी है। उन्होंने तुम्हें इतना क्षुद्र कर दिया है कि तुम विराट की तरफ आंखें उठाने में समर्थ नहीं रह गये। तुम आंखें झुकाए जमीन में गड़े-गड़े चल रहे हो।

प्राची के वातायन पर चढ़

प्रात किरन ने गाया

लहर-लहर ने ली अंगड़ाई

बंद कमल खिल आया

तुम भी खिलोगे। सुबह की किरण तुम्हें भी जगा सकती है। लेकिन थोड़ा आत्मसम्मान सम्हालो। तुम फूलों से गये-बीते नहीं हो। कौन कमल तुमसे ज्यादा मूल्यवान है? तुम सहस्रात हो—तुम्हारे भीतर सहस्रदल-कमल है। तुम्हारी झील में जो कमल खिल रहा है वैसा किसी झील में न कभी खिला है, न खिल सकता है। झीलों के कमल साधारण हैं। तुम्हारे भीतर चेतना का कमल खिलने को तत्पर बैठा है।

लेकिन अगर एक मार्ग से हार जाओ तो हताश मत हो जाना।

पकी बाल, बिकसे सुमनों से

लिपटी शबनम सोती,

धरती का यह गीत, निछावर

जिस पर हीरा-मोती

सरस बनाना था जिसको वे

हाय, गये कर गीले,

कैसे आंसू से भीगे साज सजाऊं

क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं

पूछो! खोजो!! तलाशो!!!

क्या गाऊं जो मैं तेरे मन का भा जाऊं

सौरभ के बोझे से अपनी

चाल समीरण साधे,

कुछ न कहो इस वक्त उसे, वे

स्वर्ग उठाये कांधे,

बंधी हुई मेरी कुछ सांसों

से भी मीठी सुधियां,

जो बीत चुकी क्या उसकी याद दिलाऊं

क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं

छोड़ो अतीत को, जो बीता, बीता! अनबीते को तलाशो। जो हुआ, हुआ। अनहुए का तलाशो। और अनहुआ बड़ा है। हुआ तो बहुत क्षुद्र है। तुम जो रहे हो वह तो ना-कुछ है, तुम जो हो सकते हो वह सब कुछ है। तुम्हारा भविष्य विराट है। तुम अतीत के बोझ से अपने को दबा बत लो। तुम छोटी-छोटी बातों में मत पड़ जाओ।

लोग छोटे-छोटे अपराधों से दब गये हैं। पंडितों ने, पुरोहितों ने, संतों ने तुम्हें इतने अपराधों से भर दिया है कि तुम यह मान ही नहीं सकते कि मेरा और प्रभु से मिलन हो सकता है। तुमने यह स्वीकार ही कर लिया है कि तुम अंधेरे के कीड़े हो और अंधेरे में ही जीओगे, प्रकाश से तुम्हारा मिलन नहीं हो सकता। इसीलिए प्रकाश से मिलन नहीं हो रहा है। यह सबसे बड़ी दुर्घटना है जो मनुष्य के जीवन में घटी है।

अब चाहिए ऐसा धर्म जो लोगों को भरोसा दिलाए कि तुमने जो किया है, वह कुछ भी नहीं है। तुम्हारा होना तुम्हारे किये से अछूता है। तुम्हारे पाप और पुण्य सब सपने हैं। तुमने जो बुरा किया, भला किया, उसका कोई बड़ा मूल्य नहीं है। तुम जो हो सकते हो, उसका मूल्य है। और तुम्हारे भीतर परम मूल्यवान बैठा है। तुम्हारा कोई कृत्य उसे दूषित नहीं कर पाया है।

कबीर ने कहा हैः ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया। मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारी चादर भी वैसी की वैसी है। इसमें कुछ कबीर ने किया नहीं था कि जैसी की तैसी चदरिया रख दी। चदरिया मैली होती ही नहीं। यह चदरिया तुम्हारे भीतर जो है, ऐसी है, मैला होना इसका गुण नहीं। तुम कितने ही अंधेरी रातों से गुजरे हो, तुम्हारी चादर में अंधेरा ही न चिपक जाता। और तुम कितने ही नर्कों में गुजर गये हो, तुम्हारी चादर का स्वर्ग सदा सुरक्षित है।

तुम अतीत को देखते हो तो अपराध के भाव से दब जाते हो। भविष्य को देखो। संभावना को देखो। वास्तविक का कोई मूल्य नहीं है, जो हो सकता है, उसे देखो। तब तुम्हारे भीतर उमंग उठेगी। वही उमंग भजन बनती है।

'भजन और सेवा'...। सेवा का क्या अर्थ है? शांडिल्य के सूत्रों पर जिन्होंने टीकाएं लिखी हैं, उन्होंने लिखा हैः सेवा का अर्थ है, मंदिर में भगवान की जो मूर्ति है उसकी सेवा। यह झूठा अर्थ है। मूर्ति को सेवा की कोई जरूरत नहीं। तुम नाहक समय खराब कर रहे हो। जीवित परमात्मा चारों तरफ मौजूद है, सेवा करनी हो इसकी करो।

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूंः जब तुम अपने बच्चे की सेवा कर रहे हो, अपनी पत्नी की, अपने पति की, अपने पिता की, अपनी मां की, अपने पड़ोसी की, अपनी गाय की, अपने घोड़े की, अपने पौधे की—तब तुम परमात्मा की सेवा कर रहे हो। मंदिर की मूर्ति ने तुम्हें खूब धोखा दे दिया। वह सस्ती सेवा है। और मंदिर की मूर्ति को तुम जानते हो पत्थर है; इसलिए सेवा भी कर आते हो और भीतर तुम जानते हो—पत्थर पत्थर है। इसे झुठलाओगे कैसे? इसलिए तुम्हारी सेवा कभी हार्दिक नहीं हो पाती। जीवंत चारों तरफ मौजूद है, तुम कहां जा रहे हो? किस मंदिर में, किस मस्जिद में? किस मूर्ति की तलाश कर रहे हो? परमात्मा तुम्हारे घर आया हुआ है और तुम मंदिर जा रहे हो? परमात्मा तुम्हारे बेटे में मौजूद है, तुम्हारी मां में, तुम्हारे पिता में, तुम्हारी पत्नी में। लेकिन नहीं, पत्नी, पिता, मां, बेटा—यह तो जंजाल है, यह माया है। यह बड़े मजे की बात है, यह माया है और वह पत्थर की मूर्ति जो मंदिर में रखी है, वह सत्य है! आदमी कैसे धोखे खड़े कर लेता है! जीवंत झूठा है और मुर्दा सच है। और वह मुर्दा भी इन्हीं जीवंतों ने बनाया है; किसी मूर्तिकार ने गढा है; किसी पुजारी ने फूल चढ़ाये हैं। इन मुर्दों के द्वारा, इन झूठों के द्वारा बनाया गया परमात्मा सच हो गया है, और बनानेवाले झूठे हो गये हैं।

नहीं, मैं तुम्हें सेवा का वही अर्थ देना चाहता हूं जो शांडिल्य का रहा होगा। भजन करो, खोजो, गीत गाओ, पूछो कि मैं किस तरह गाऊं कि तुझे लुभा लूं, कि तुझे भा जाऊं? नये नृत्य सीखो। नये ध्यान सीखो। और चारों तरफ जो परमात्मा मौजूद है इसकी सेवा में लग जाओ।

यह गौणी भक्ति है।

'और यह गौणी-भक्ति पराभक्ति की भित्तिरूप है' और जिसने गौणी को न साधा, वह भराभक्ति को न साध सकेगा। यह बुनियाद है, भित्ति है। इसी बुनियाद पर यह मंदिर उठेगा। पराभक्ति का अर्थ होता है। वहां भजन भी खो जाएगा; वहां वार्ता बंद हो जाएगी; वहां सन्नाटा हो जाएगा। वहां अंततः भक्त भी खो जाएगा, भगवान भी खो जाएगा; वहां द्वैत खो जाएगा, वहां एक ही बचेगा। इतना एक कि उसको एक भी न कह सकेंगे हम। क्योंकि एक कहो तो दो का भाव पैदा होता है। वहां जो बचेगा उसको शब्द न दिया जा सकेगा। अनिर्वचनीय

होगा वह। अव्याख्य होगा। उसकी कोई शब्द में परिभाषा नहीं होगी। न तो वहां बचेगा जाननेवाला और न जाना जानेवाला। एक शून्य विराजमान होगा, और उस शून्य में पूर्ण का नृत्य होगा।

वह अलौकिक है। उसकी अलौकिकता की घोषणा के लिए उसको 'परा' कहा है। वह पार और पार! वह हमारे सारे अनुभवों का अतिक्रमण कर जाता है। हमारा कोई अनुभव उसके संबंध में सूचना नहीं दे सकता है। हमने अब तक जो जाना है, जो अनुभव किया है, वह सब उसके सामने व्यर्थ हो जाता है। हमारी भाषा पंगु होकर गिर जाती है। हमारी बुद्धि अवाक होकर ठिठक जाती है। हमारा हृदय नहीं धड़कता। वहां अपूर्व सन्नाटा है। उस पराभक्ति को पाने के लिए गौणी-भक्ति केवल भित्तिरूप है।

गौणी-भक्ति पर रुक मत जाना। गौणी-भक्ति से गुजरना जरूर है, मगर गुजर जाना है।

अब दो तरह के लोग हैं। अधिक लोग गौणी-भक्ति में उलझे रह गये हैं। वे भजन-कीर्तन ही करते रहते हैं। वे पराभक्ति की बात ही भूल गये हैं। उन्होंने मंदिर की बुनियाद तो भर ली है, लेकिन बुनियाद भरने में ही इतने मस्त हो गये हैं कि उन्होंने मंदिर उठाना है, मंदिर उठाया जाना है, इसकी बात ही विस्तमृत कर दी है। बस अपनी बुनियाद भरे बैठे हैं! उसी बुनियाद की पूजा कर रहे हैं! मंदिरों की मूर्तियों में जो पूजा में लगे हैं, वे बुनियाद में ही उलझे हैं। एक तो इस तरह के लोग हैं, जो गौणी-भक्ति में उलझ कर रह गये। गौणी-भक्ति उनके लिए पराभक्ति का आधार नहीं बनी, पराभक्ति के लिए अवरोध बन गयी।

और दूसरे कुछ ऐसे लोग हैं, जो जरा सोच-विचारवाले हैं, जिनमें बुद्धि की थोड़ी प्रखरता है, वे कहते हैं, गौणी में हम जाएं क्यों? हम सीधे परा में जा रहे हैं। वे वेदांत की बड़ी ऊंची चर्चा करते हैं, अद्वैत की बातें करते हैं, लेकिन उनकी बातें फिजूल हैं। वे मंदिर उठाने की बातें करते हैं, मंदिर के शिखर की बातें करते हैं, स्वर्ण-शिखरों की चर्चा करते हैं, लेकिन बुनियाद नहीं रखी गयी है।

तुम दोनों का ध्यान रखना। दोनों को साधने से बात सधेगी। और मजा ऐसा है कि दोनों ही आधे-आधे सही हैं। लेकिन आधा सत्य झूठ ही है। आधे सत्य का कोई मतलब नहीं होता। और आधा सत्य अक्सर तो झूठ से भी खतरनाक होता है। क्योंकि झूठ तो किसी दिन पकड़ में आ जाएगा कि झूठ है, तो छोड़ दोगे, आधा सत्य कभी पकड़ में न आएगा कि झूठ है। क्योंकि उसका आधा सत्य तो मौजूद है। वह आधा सत्य तुम्हें लुभाये रखेगा। वह आधा सत्य तुम्हें भरमाये रखेगा। वह आधा सत्य कहेगा, कौन जाने पूरा भी छिपा हो! और दोनों आधे सत्य हैं।

तो एक तो साधारण आदमी है, जो मंदिर पूजा कर आता है, कभी घर में फूल लगा देता है भगवान को, धूप-दीप जला देता है, और सोचता है बात पूरी हो गयी। और फिर एक पंडित है, वे जो वेदांत की चर्चा करता रहता है; वह समझता है, चर्चा करने से बात पूरी हो गयी।

दोनों को जीवन में आने दो। गौणी को आधार बनाओ। और गौणी का भी मजा है, चूकने जैसा नहीं है। और गौणी का भी बहुत-सा काम है, जो नहीं हो पाएगा तो परा असंभव है।

गौणी-भक्ति में तुम किसी को देखोगे तो तुम्हारा मन होगा कहने का कि पागल है। कोई आदमी एकांत में बैठा भगवान से बातें कर रहा है, तो तुम पागल ही कहोगे न! वहां कोई भी तो नहीं है। इसी तरह तो पागल बातें करते रहते हैं; कोई भी नहीं है और बातें करते रहते हैं। और यह आदमी भी बातें कर रहा है, और कोई दिखायी तो पड़ता नहीं। तुम्हें दिखायी नहीं पड़ रहा है!

ऐसे निष्कर्ष मत लेना। ऐसे निष्कर्ष घातक हैं। ऐसे निष्कर्षों से उस आदमी का कोई नुकसान नहीं होता, तुम्हारा नुकसान हो रहा है। क्योंकि ऐसे निष्कर्षों के कारण अगर तुमने यह सोचा कि यह पागलपन है, तो तुम कभी इस दिशा में द्वार न खटखटाओगे। और वहीं से मार्ग जाता है।

सुनते ही मुस्करा उठी गुलशन में हर कली बादे-सबा ने उससे खुदा जाने क्या कहा?

जब तक तुम भी कली की तरह मुस्कुराओगे न, खिलोगे न, तब तक तुम जान भी न पाओगे कि सुबह की हवा क्या कह जाती है कली को कि कली एकदम मुस्कुराने लगती है, कि कली के ओंठों पर एकदम मुस्कुराहट फैल जाती है! तुम्हें हवा तो दिखायी नहीं पड़ती, हवा का संदेश भी समझ में नहीं आता है, उस संदेश को समझने के लिए कली होना जरूरी है। उसके बिना कोई उपाय नहीं—कली ही जानती जै उस भाषा को। कली ही खोल पाती है उस राज को जो हवा उसे कानों में गुनगुना जाती है। तुम तो बाहर से खड़े हो। पत्थर की तरह तुम देख रहे हो, चट्टान की तरह तुम पड़े हो। तुम्हें चौंकना होगा, ही, तुम्हें विस्मय होगा ही—पता नहीं क्या मामला चल रहा है! यह कली क्यों हंसने लगी? पागल होगी?

अगर भक्त को तुम मुस्कराते देखोगे, अगर भक्त को तुम हंसते देखोगे, खिल-खिलाते देखोगे, भक्त को रोते देखोगे, तो तुम्हें बड़ी अड़चन होगी।

सुनते ही मुस्करा उठी गुलशन में हर कली,
बादे-सबा ने उसे खुदा जाने क्या कहा?

तुम यही सोचोगे, पागल हो गया यह व्यक्ति। गौणी-भक्ति में स्थिति पागल जैसी हो जाती है। और तुम उससे पूछोगे कि क्या तुझे हुआ है, तो जैसे कली चुप रह जाती है वैसे वह भी चुप रह जाएगा। क्योंकि जो उसे हो रहा है वह कुछ ऐसा है, कहे तो कैसे कहे! और कहता है तो सदा पाता है कि जो कहा, वह गलत हो गया; कहते ही गलत हो गया। जो कहना चाहा था, वह पीछे ही छूट गया; कुछ का कुछ कह दिया। इसलिए चुप रह जाता है।

सवाल सुनके किसी ने जवाब तक न दिया,
तेरी गली में हर एक बेजबां लगे है मुझे।

उसकी गली में जो प्रवेश किया, वह बेजबां हो जाता है, तुम पूछोगे भी किसी से तो लोग हंसेंगे, वे कहेंगे, तुम भी चखो; तुम भी गुनो; तुम भी आओ, हमारे साथ बैठ जाओ!

जीसस से उनके शिष्यों ने एक दिन पूछा कि हम प्रार्थना कैसे करें? जीसस ने कहा, देखो! वे घुटनों पर झुक गये। उन्होंने आकाश की तरफ उठा ली आंखें और प्रार्थना में लीन हो गये। उनकी आंख से आंसू झरने लगे। मगर शिष्य तो खड़े हैं, वे समझ नहीं पा रहे हैं कि यह मामला क्या है? हमने पूछा, प्रार्थना कैसे करें? हमने यह थोड़े ही कहा कि तुम प्रार्थना करके बताओ। हमने तो पूछा था, हम कैसे करें, हमें बताओ। इससे तो कुछ हल नहीं होता।

और जब जीसस प्रार्थना से उठे—वह स्निग्ध, सद्यःस्नात रूप, वे सुंदर आंखें, आंसू धो गये उन आंखों को, वह कोमल भाव, वह पारलौकिक आभा! उन्होंने फिर पूछा कि इससे कुछ हल नहीं होता। हमने यह नहीं कहा था, आप प्रार्थना करो; हमने कहा था हम प्रार्थना कैसे करें?

जीसस ने कहाः बस मैं प्रार्थना करके बता सकता हूं। तुम भी ऐसे ही करो; और कुछ भी कहा नहीं जा सकता। प्रार्थना करनेवाले से प्रार्थना सीख लो। प्रार्थना करनेवाले के पास बैठ-बैठ कर तुम भी प्रार्थना में धीरे-धीरे डूबो, डुबकी लगाओ। प्रार्थना को संक्रामक होने दो। अन्यथा—'तेरी गलीह में हर एक बेजबां लगे हैं मुझे'। वहां कुछ कोई बतानेवाला नहीं मिलेगा। भक्ति के मार्ग पर जो गया है, वह धीरे-धीरे बेजबां हो जाता है।

और भक्त चाहता भी नहीं कि बुद्धि की बकवास में पड़े। क्योंकि भक्त को एक अनुभव रोज-रोज होने लगता है, जब भी वह बुद्धि के खेल में पड़ता है तभी उसकी प्रार्थना टूट जाती है, खंडित हो जाती है। जब भी वह बुद्धि के जाल में उलझ जाता है, तभी परमात्मा से दूर पड़ जाता है। फिर प्रार्थना पुकारे-पुकारे नहीं उठती, बुलाये-बुलाये नहीं आती। फिर बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, तब कहीं प्रार्थना खुलती है। क्योंकि प्रार्थना और बुद्धि बड़े अलग केंद्र हैं। प्रार्थना उठती है हृदय से, बुद्धि चलती है सिर में। सिर को प्रार्थना का कोई पता नहीं है, हृदय को तर्क का कोई पता नहीं है।

इसलिए अगर तुम भक्त से पूछोगे भी कि तू यह क्या करता है, क्या है तेरा भजन, तो वह चुप रहेगा, मुस्कुराएगा, हंसेगा, इधर-उधर की बातें करेगा, लेकिन भजन के संबंध में कुछ कहेगा नहीं। ज्यादा होगा तो भजन गाकर सुना देगा। वही जीसस ने किया।

खुदा करे कि न टूटे तिलिस्मे-जौके नजर,

जुनूं पै अक्ल अगर छा गयी तो क्या होगा?

वह चाहता नहीं कि उसकी मस्ती टूट जाए। और मस्ती में कहीं बुद्धिमत्ता छा गयी तो फिर क्या होगा? क्योंकि दोनों बातें बड़ी विपरीत हैं। बुद्धिमान मस्त नहीं हो पाता, और मस्त को सब बुद्धिमानी छोड़ देनी पड़ती है। मगर यही तो मैं तुमसे कहना हूं: इस जगत में बुद्धिमानी जो छोड़ दे, वहीं बड़े-से-बड़ा बुद्धिमान है।

क्या है भजन? बहुत-सी बातें हैं भजन में। हृदय का भाव है। आंसुओं की वर्षा है। पैरों का नृत्य है। मगर जानोगे तो ही। नाचोगे तो पता चलेगा, नाच क्या है। नाचनेवाले को नाचते देखकर भी तुम बाहर ही बाहर हो, तुम्हें वह तो कभी पता नहीं चल सकता जो नाचनेवाले को पता चल रहा है। तुम ज्यादा से ज्यादा भाव-भंगिमाएं देख लोगे बाहर से।

यहां लोग आ जाते हैं कुछ दर्शकों की भ्रांति। जो दर्शक की भ्रांति यहां आता है, वह बड़ा मूढ़ है। मेरे पास आकर वे कहते हैं कि यह मामला क्या है? लोग नाचते हैं, गाते हैं, शोरगुल मचाते हैं, इससे क्या होगा? उसकी भी बात ठीक है। बाहर से देखेगा तो उसे लगेगा, इससे क्या होगा? दूर से खड़े होकर देखेगा तो उसे लगेगा, यह सब पागलपन है। इसमें बुद्धिमानी कहां है।

इसमें एक और ही तरह की बुद्धिमानी है जिसका तुम्हें अनुभव नहीं। इसमें मस्ती है, मादकता है। इसकी अपनी शराब है। यह पीनेवाले को ही पता है। जब तुम शराबी को शराब पीते देखते हो तो तुम्हें बाहर से लगता है, क्यों पागल हुआ जा रहा है? ऐसा क्या हो सकता है इसमें? क्यों इतना मस्त हुआ जा रहा है?

पीओगे तो जानोगे। स्वाद के अतिरिक्त अर्थ नहीं खुलता।

भजन क्या है?

ठहरते ही नहीं आंखों में आंसू

चमककर टूटते हैं आबगीने

क्या है भजन?

आवाज दी है तुमने कि धड़का है दिल मेरा

कुछ खास फर्क तो नहीं दोनों सदाओं में

क्या है भजन?

क्या बुझायेंगे अश्क दिल की आग

वो तो खुद आतशीं शरारे हैं

क्या है भजन?

वो दूर से ही हमें देख लें यही है बहुत

मगर कुबूल हमारा सलाम हो जाए

परमात्मा एक दफा देख ले, दूर से सही, अनंत दूरी से सही—क्योंकि उसकी नजर अगर पड़ गयी तो सेतु बन गया, फिर दूरी कहां! उसकी नजर से जुड़ गये कि सेतु बन गया।

वो दूर ही से देख लें यही है बहुत

मगर कुबूल हमारा सलाम हो जाए

बस इतना भरोसा आ जाए कि हमने पुकारा था, वह पुकार पहुंच गयी, हमारा सलाम स्वीकार हो गया है।

नाचो, गाओ, गुनगुनाओ, बहो, पिघलो। आंसुओं में अमृत है। और जो विरह में डूबेगा, वही मिलन को उपलब्ध होता है। विरह की कीमत चुकानी पड़ती है।

'रागार्थे प्रकीर्त्तिसाहचर्यात् च इतरेषाम्।।

नमस्कार और नाम-कीर्तन आदि अनुराग के अर्थ है। क्या जरूरत है नमस्कार की और नाम-कीर्तन की? इनसे अनुराग पैदा होता है। इनमें प्रेम उमगता है। जैसे पानी सींचते हो वृक्ष पर तो वृक्ष में नये पल्लव आते हैं, नये फल खिलते हैं—ऐसा जो प्रेम का पौधा है, उसको भी पानी की जरूरत है। वह भी सूख जाता है अगर पानी न मिले। उसे भी पोषण चाहिए। नाम-संकीर्तन, नमस्कार इत्यादि उसका पोषण है। जब तुम बार-बार झुकते हो परमात्मा की तरफ, झुकते ही चले जाते हो, झुकना ही तुम्हारी जीवन की कला हो जाती है, झुकना तुम्हारा स्वभाव हो जाता है, तो कुछ चीजें तुम्हारे भीतर ऊगेंगी, जो उन्हीं में ऊगती हैं जो झुकना जानते हैं।

अकड़ गयी, अकड़ के साथ तुम्हारे जीवन में जो पड़े हुए पत्थर थे वे हटे। अकड़ यानी तुम्हारे मार्ग में पड़े पत्थर। जैसे बीज पत्थर में दबा हो, ऐसी तुम्हारी अकड़ में तुम्हारा बीज दबा है। तुम्हारे अहंकार ने तुम्हारे भीतर छिपे हुए झरने को रोक रखा है, चट्टान की तरह। झुको!

नमस्कार का अर्थ होता है, झुको। जहां जितने मौके मिले जाएं झुकने के, झुको। झुकने का मौका न खोओ। तुम देखते हो, यह अकेला देश है सारी दुनिया में, जहां नमस्कार में हम भगवान के नाम का उपयोग करते हैं। दुनिया में कहीं वैसा नहीं है। उसका कारण है। क्यों मौका खोते हो? रास्ते पर एक अजनबी मिल गया, तुमने कहा, 'रामराम'। तुम क्या कह रहे हो? तुम शायद होश में भी नहीं हो। तुमने तो सिर्फ इसको एक उपचार बना लिया है। लेकिन जिसने खोजी थी बात, बड़े अदभुत लोग थे। तुम यह कह रहे हो कि अजनबी हो तुम भला, मगर भीतर तो तुम राम ही हो। तुम्हें देख कर मैंने फिर राम की याद कर ली। यह मौका क्यों छोडूं? तुम्हें देखकर फिर मैं राम के लिए झुक लिया। यह मौका मैं क्यों छोडूं?

अब इस हिसाब से दुनिया में जो और नमस्कार की विधियां प्रचलित हैं, वे बहुत बचकानी मालूम पड़ती हैं। अंग्रेजी में हम कहते हैं कि शुभप्रभात, 'गुड मोर्निंग!' इसका कोई खास मतलब नहीं है। एक शुभाकांक्षा है। लेकिन जब हम कहते हैं 'जयरामजी, तो हम यह कहते हैं: भगवान की जय हो; तुम्हें देखकर मुझे भगवान की जय की याद आ गयी। तुममें मैंने भगवान को फिर देखा; इस बहाने देखा, इस रूप में भगवान आया।

नमस्कार का अर्थ है, जहां मौका मिल जाए, झुकना। झुकने का कोई मौका मत छोड़ना। अभी हालत उल्टी है। लोग अकड़ने का कोई मौका नहीं छोड़ते हैं। राह पर भी तुम किसी को मिल जाते हो तो तुम देखते हो कि पहले वह नमस्कार करे। तुम कैसे किसी को पहले नमस्कार करोगे! तुम राह देखते हो, तुम इधर-उधर देखते हो, तुम बहाना करते हो कि मैंने तुम्हें अभी देखा नहीं, कि पहले तुम नमस्कार करो; कि मैं हेडक्लर्क हूं, तुम क्लर्क हो; कि मैं हेडमास्टर, तुम सिर्फ मास्टर, मैं कैसे नमस्कार करूं? कि मैं शिक्षक, तुम विद्यार्थी, मैं कैसे नमस्कार करूं? मैं और तुम्हें हाथ जोडूं!

तुम अकड़े होते हो। अकड़े होते हो, इसलिए चूक रहे हो। अकड़ को जाने दो। नमस्कार का कुल इतना ही अर्थ है, अकड़ को गलाओ, अकड़ को मिटाओ। जितना बन सके, जहां बन सके, जो चरण भी बहाने बन जाएं वहीं झुक जाओ।

'नमस्कार और नाम-कीर्तन आदि अनुराग के अर्थ हैं, अनुराग के लिए हैं, ताकि प्रेम उमगे, ताकि तुम्हारे भीतर प्रेम का पौधा बड़ा हो। क्योंकि प्रेम का पौधा ही बड़ा हो तो उसीमें एक दिन प्रार्थना की सुगंध उठेगी।

प्रेम को फैलाओ! कैसे प्रेम फैलेगा? झुकने से फैलता है। अहंकारी आदमी प्रेम नहीं कर सकता है। जीवन का साधारण प्रेम भी अहंकारी आदमी नहीं कर सकता, क्योंकि प्रेम के लिए झुकना अनिवार्य शर्त है। तुम तो प्रेम में भी दूसरे को झुकाने की कोशिश लगे रहते हो। यही पति-पत्नी का संघर्ष है सारी दुनिया में, दोनों एक दूसरे को झुकाने की कोशिश में लगे होते हैं। पति चाहता है पत्नी को झुका ले, पत्नी चाहती है पति को झुका ले। उनकी

सारी कूटनीति, प्रत्यक्ष-परोक्ष में एक ही होती है, कैसे दूसरे को झुका लें। अच्छे-अच्छे बहाने खोजे जाते हैं दूसरे को झुकाने के लिए। पत्नी अपने ढंग से खोजती है; उसके ढंग स्त्रैण होते हैं। लेकिन वह भी झुकाने की तरकीबें खोजती रहती है। स्त्रैण होने के कारण उसके ढंग बड़े परोक्ष होते हैं, प्रत्यक्ष नहीं होते।

पति को अगर पत्नी को झुकाना है तो वह कभी-कभी पत्नी को सीधा मार देता है। पत्नी को अगर पति को झुकाना है तो वह अपने को पीट लेती है। फर्क जरा भी नहीं है। प्रयोजन एक ही है। और निश्चित ही पत्नी ज्यादा जीतती है, क्योंकि परोक्ष, उसके मार्ग सूक्ष्म हैं। पति के जरा आदिम हैं, ज्यादा सुसंस्कृत नहीं हैं, स्त्री का मार्ग ज्यादा सुसंस्कृत है। इसलिए वह जीतती है। उसका मार्ग ज्यादा कोमल है। उसको अगर पति को जीतना है तो वह रोने लगती है। पति को अगर पत्नी पर कोई विरोध हुआ है, तो वह क्रोधित होता है। पत्नी उदास होती है। उदासी क्रोध का छिपा हुआ ढंग है।

यह तुम चकित होओगे जानकर कि उदास आदमी क्रोध को दबा रहा है, इसलिए उदास है। वह दबा हुआ क्रोध है, वह पी गया क्रोध है। लेकिन जब कोई उदास होता है तो दया ज्यादा आती है। कोई क्रोध कर रहा हो तो उससे तो लड़ने की भी सुविधा है, लेकिन कोई क्रोध न कर रहा हो, सिर्फ रो रहा हो, तो उससे कैसे लड़ोगे? इसलिए सौ में निन्यानबे पुरुष हार जाते हैं। जो एकाध जीतता है, वह एकदम बिलकुल ही हिंस प्रकृति का हो तो ही जीत पाता है, एकदम पाशविक वृत्ति का हो तो ही जीत पाता है। नहीं तो सभी हारते हैं।

तुमने वह प्रसिद्ध कहानी सुनी न कि अकबर ने एक दिन अपने दरबारियों से कहा कि बीरबल मुझसे कहता है कि तुम्हारे दरबार में सब अपनी औरतों के गुलाम हैं। यह बात मुझे जंचती नहीं; यह मैं मान नहीं सकता; मेरे बहादुर सिपाही, मेरे बहादुर सेनापति, मेरे बहादुर वजीर, ये सब औरतों के गुलाम हैं, यह मैं मान नहीं सकता। तो आज मैंने परीक्षा लेनी है। जो-जो अपनी पत्नी के गुलाम हों, एक तरफ खड़े हो जाएं। और कोई झूठ न बोले, क्योंकि इसका पता लगाया जाएगा, तुम्हारी स्त्रियों को भी बुलवाया जाएगा, फिर पीछे फजीहत होगी; इसलिए जो-जो अपनी स्त्रियों के गुलाम हों, चुपचाप एक लाइन में खड़े हो जाएं। और जो अपनी स्त्रियों के मालिक हों, वे एक लाइन में खड़े हो जाएं।

सिर्फ एक आदमी उस लाइन में खड़ा हुआ जो अपनी स्त्रियों का मालिक था और बाकी सब उस लाइन में खड़े हो गये जहां स्त्रियों के गुलामों को खड़ा होना था। बादशाह हैरान हुआ। फिर भी उसने कहा कि चलो, यह भी क्या कम है। क्योंकि बीरबल तो कहता था, सौ प्रतिशत, मगर एक आदमी तो कम से कम है। मैं तुमसे पूछता हूं कि तुम उस लाइन में क्यों खड़े हो? तुम्हें पक्का भरोसा है? उस आदमी ने कहा, भरोसा इत्यादि कुछ नहीं है, जब मैं घर से चलने लगा, मेरी औरत ने कहा—भीड़-भाड़ में खड़े मत होना। मुझे कुछ पता नहीं है, मैं तो सिर्फ उसकी आज्ञा का पालन कर रहा हूं।

सदा ही कोमल जीत जाएगा कठोर पर। पानी जीत जाता है चट्टान पर। मगर जीत की चेष्टा चल रही है, संघर्ष चल रहा है। पति-पत्नी के बीच जो शाश्वत कलह है, वह यही है। प्रेम में यह कलह? फिर प्रेम कैसे फलेगा? इसलिए प्रेम कहां फलता है! पति-पत्नी लड़ते रहते हैं और मर जाते हैं; प्रेम कहां फलता है! बाप-बेटे में संघर्ष चलता है, भाई-भाई में संघर्ष चलता है, प्रेम कहां फल पाता है! प्रेम वहीं फलता है जहां कोई अपने अहंकार को स्वेच्छा से विसर्जित करता है। हार कर नहीं, स्वेच्छा से; स्वयं अपने से। कहता है, मुझे तुमसे प्रेम है तो तुमसे लड़ना क्या? तुमसे मुझे प्रेम है तो तुम्हारे लिए मैंने अपना अहंकार छोड़ा। तुमसे मेरा कोई संघर्ष नहीं है।

साधारण प्रेम में भी झुकने से ही प्रेम फलता है, तो फिर उस परम प्रेम में, परमात्मा के सामने तो पूरी तरह झुक जाना होगा। इस झुकने की कला का नाम है, नमस्कार, नाम-कीर्तन उसकी याद, उसका गुणगान।

जिन्होंने उसे जाना है उनसे सुनना उसकी याद। जिन्होंने थोड़ी-बहुत उसकी झलक पायी है, उनके पास बैठकर उसकी झलक की चर्चा करना। जहां चार दीवाने बैठ जाएं वहां उसकी याद करनी चाहिए। लेकिन तुम क्या करते हो? तुम व्यर्थ की बातें करते हो। पड़ोसियों की निंदा में लगते हो। कौन ने चोरी की, कौन किसकी स्त्री को भगा

लग गया, कौन किसने रिश्वत ले ली, कौन चुनाव हार गया, कौन जीत गया; तुम इस व्यर्थ में ही अपना जीवन खराब कर रहे हो। और ध्यान रखना ये सब बातें महंगी हैं, क्योंकि तुम्हारे ओंठ जिन बातों को कहते हैं, तुम्हारे प्राण भी उन्हीं बातों जैसे हो जाते हैं। तुम्हारे ओंठ और तुम्हारे प्राणों में संबंध है।

पुराने दिनों में लोग सुबह उठकर प्रभु का स्मरण करते थे—दिन की यात्रा शुरू करने को। भरी दोपहरी में थोड़े क्षण खोज लेते थे कि फिर प्रभु का स्मरण कर लें बीच बाजार में। रात सोने के पहले, थके-मांदे, लेकिन फिर भी प्रभु का स्मरण करके सोते थे। ऐसे प्रभु की याद से सब तरफ से अपने को घेरे रखते थे। अब वह सुबह उठते से ही, अभी मुंह भी नहीं धोया, अखबार मांगते हैं। कहते हैं, अखबार आया कि नहीं? जैसे रातभर अखबार की प्रतीक्षा करते रहे। और अखबार में तुम भली भ्रांति जानते हो क्या होगा। वही कूड़ा-करकट वही का वही रोज-रोज।

मैं एक नगर में कुछ महीनों तक रहा था। मेरे पड़ोस में एक पागल आदमी था। उससे मेरी दोस्ती हो गयी। मेरे पागलों से नाते हैं! उससे मेरी दोस्ती हो गयी। वह रोज मेरे पास आता, अखबार पढ़ने का उसे बड़ा शौक था; लेकिन वह इसकी फिक्र नहीं करता था कि तारीख कौन-सी है अखबार पर। दस साल पुराना अखबार, वह बैठा है मजे से, उसको पढ़ रहा है! मैंने उससे पूछा कि भई, और सब तो ठीक है, और सब पागलपन मेरी समझ में आता है, दस साल पुराना अखबार! उस पागल ने क्या कहा, मालूम है! उसने कहा दस साल पुराना हो कि आज का, सब में बात तो वही होगी। मुझे बात उसकी लगी। वह कह तो ठीक ही रहा है, बात तो वही होगी। अगर तुम्हें तारीख का पता न हो तो दस साल पुराना अखबार उठाकर पढ़ना और तुम्हें कोई अड़चन नहीं मालूम होगी कि कुछ नया दुनिया में हो रहा है। वही हो रहा है। बदलाहटें सब थोथी हैं, ऊपर-ऊपर हैं, अन्यथा सारी बात वही की वही है। 'लेबिल' बदल जाते हैं; कुछ अंतर नहीं आता।

कुछ बाहर की दुनिया में अंतर होता ही नहीं कभी। वही पिटी-पिटायी दुनिया चलती रहती है, वही लकीर की फकीर दुनिया चलती रहती है। वही मुकदमे, वही अदालतें, वही चोरियां, वहां बेईमानियां, वही राजनीतिज्ञ, वही मुखौटे, वही आश्वासन, वही धोखेधड़िया, सब वही चलता रहता है। लेकिन सुबह से उठकर तुम्हें जो पहली आकांक्षा जगती है वह यही अखबार! इससे तुम्हारी आत्मा का पता चलता है। तुम्हारी आत्मा अखबार हो गयी है। तुम्हारी आत्मा अब कुरान नहीं है, गीता नहीं है, वेद नहीं है, तुम्हारी आत्मा अखबार हो गयी है।

प्रभु का स्मरण करो। उसके स्मरण से ही धीरे-धीरे धीरे-धीरे तुम्हारा हृदय उसकी तरफ डोलेगा, आंदोलित होगा। उसकी खबर रोज-रोज सुनोगे, उसकी बात रोज-रोज करोगे, कितनी देर तक रुके तक रहोगे? एक न एक दिन खोज शुरू करनी ही पड़ेगी।

रोज कहता हूं न आऊंगा कभी घर उसके
रोज उस कूचे में एक काम निकल आता है

अगर प्रेम होता है तो आदमी रास्ता बना ही लेता है। कई दफा आदमी कह देता है कि अब नहीं, बस, बहुत हो गया।

रोज कहता हूं न आऊंगा कभी घर उसके
रोज उस कूचे में एक काम निकल आता है

निकालते रहो काम। उसके कूचे में ही अंतिम पड़ाव डालना है। उसके कूचे में ही आखिर में बसना है। निकालते रहो काम, कोई भी बहाने, प्रभु का स्मरण करो। मंदिर को ही क्यों झुकते हो; रास्ते में गुरुद्वारा पड़ जाए, उसको भी झुको याद के लिए एक मौका मिला, उसको क्यों छोड़ते हो? मस्जिद मिल जाए, उसको भी झुको। और गिरजा मिल जाए, उसको भी झुको। क्यों मौका छोड़ते हो?

मैं एक बार यात्रा पर था, और एक जैन महिला मेरे साथ यात्रा पर थी। उसकी बड़ी तकलीफ थी। जब तक वह जाकर जैन-मंदिर में भगवान महावीर को स्मरण न कर ले, उनके चरणों में सिर न झुका ले, भोजन न ले। मैं

बड़ी मुश्किल में पड़ा। किसी गांव में मंदिर नहीं भी था, तो उसने भोजन नहीं किया। उसकी वजह से मुझे जल्दी गांव छोड़ना पड़े, दूसरे गांव में जहां मंदिर हो। ऐसा दो दिन हो चुका था कि उसे भोजन नहीं मिला था, मैं भी परेशान था, उसको लाख समझाओ, वह सुनती नहीं थी। तीसरे गांव में हम पहुंचे। राह से गुजरते थे तो मुझे मंदिर दिखायी पड़ा। तो मैंने जो मित्र मुझे ड्राइव कर रहे थे उनसे कहा कि भई, जैन-मंदिर मालूम होता है। तो उन्होंने कहां, हां, जैन-मंदिर है। मैंने कहा, चलो अच्छा हुआ। जिस देवी को मैं ले आया हूं साथ, वह भोजन नहीं करती और उसकी वजह से मेरी तक मुसीबत हो गयी है। यह अच्छा हुआ।

मैंने देवी को कहा कि अब तू स्नान कर और जाकर मंदिर में पहले स्मरण कर आ। वह गयी और वापिस आ गयी। उसने कहा, वह तो श्वेतांबर जैन-मंदिर है; मैं दिगंबर हूं।

आदमी ने कैसी-कैसी झूठी और व्यर्थ की बातें बना रखी हैं। वही महावीर की मूर्ति दिगंबर मंदिर में है, वही महावीर की श्वेतांबर में है। लेकिन महावीर-महावीर की मूर्ति में फर्क हो गया। वह दिगंबर हैं एक महावीर, एक महावीर श्वेतांबर।

मस्जिद में भी वही बैठा है। वहां अमूर्त है। मंदिर में भी वही बैठा है, वहां मूर्ति में विराजमान है। गुरुद्वारे में भी वही है, गिरजे में भी वही है, गिरजे के बाहर भी वही है, सब तरफ वही है। जिसको यह बात समझ में आ गयी की जितना झुकना हो सके, झुको, वह यह कहां छोटी-छोटी बातों कि फिक्र करेगा कि तुम किस रूप-रंग में मिले? जिस रूप-रंग में मिले, वह कहता है—जयराम! वह झुकता है। इसी झुकने से धीरे-धीरे पत्थर टूट जाता है, तुम्हारे भीतर की अकड़ मिट जाती है।

यह विरह का तूफान जितना जोर से उठ आए, यह याद जितनी सघन हो, उतना शुभ है।

ऐ नाखुदा यह देखा है, दरिया का मोजिजा

साहिल पै फेंक देते हैं तूफां कभी-कभी

यह चमत्कार भी घटता है।

ऐ नाखुदा यह देखा है दरिया का मोजिजा

यह चमत्कार देख है कभी?

साहिल पै फेंक देते हैं तूफां कभी-कभी

तूफान सदा ही नहीं डुबाते, कभी-कभी साहिल पर फेंक देते हैं, किनारे पर फेंक देते हैं। नाव तूफान की वजह से किनारे पर आकर लग जाती है। यह विरह का तूफान ही मिलन के किनारे पर ले आता है। मगर तूफान को उठाओ, कंजूसी मत करो! सब तूफान में लगा दो। उठने दो अंधड़!

'अंतराले तु शेषाः स्यः उपास्यादौ च काण्डत्वात्।।

गीता में भी इस उपासनाकाण्ड रूप गौणी-भक्ति का वर्णन है'।

शांडिल्य कहते हैं : जो मैं कह रहा हूं, उसकी गवाही शास्त्रों में भी है। गीता में भी कृष्ण ने यही कहा है।

कृष्ण का वचन है :

'सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढ़व्रताः

नमस्यंतश्च। मां भक्तया नित्ययुक्ता उपासते

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते

एकत्वेना पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्

कोई-कोई भक्त मेरा गुण कीर्तन करके, कोई-कोई दृढ़ नियमयुक्त तपस्या करके, कोई-कोई भक्तिपूर्वक मुझे प्रणाम करके, कोई-कोई सर्वदा एक मन होकर ध्यान करके, कोई ज्ञानयज्ञ द्वारा मेरी उपासना करके, कोई-कोई अहंकाररहित होकर दास रूप से मेरी पूजा करके और कोई-कोई भक्त मुझे। सर्वात्मक जान कर नाना रूप से ही मेरी उपासना किया करते हैं।'

लेकिन ये सभी मार्गों से चलनेवाले लोग उसी एक गंतव्य पर पहुंच जाते हैं। तुमने कैसे पुकारा, इससे कोई संबंध नहीं है; पुकारा! और हृदय से पुकारा! तुमने किस भाषा में पुकारा, इससे भी कोई संबंध नहीं है—अरबी में, कि संस्कृत में, कि हिंदी में, कि जापानी में; तुमने कौन-सी विधि का उपयोग किया—कुरान की या उपनिषद की; तुम बुद्ध को मानकर पुकारो, कि महावीर को मानकर पुकारे; इन सब बातों का कोई अर्थ नहीं है। अर्थ सिर्फ एक बात का है, जिस पर सारी बात निर्भर होती है, तुमने जो किया, वह हृदय से किया या नहीं? बस वहीं सारी बात निर्णय होती है। हृदय से पुकारो तो सब भाषाएं उस तक पहुंच जाती हैं। बिना हृदय के पुकारते रहो तो फिर तुम चाहे शुद्ध संस्कृत में बोलो, चाहे शुद्ध अरबी में, कुछ भी नहीं पहुंचता। टूटी-फूटी भाषा भी उस तक पहुंच जाती है।

तालस्ताय की बड़ी प्रसिद्ध कहानी है।

रूस का जो सबसे बड़ा पुरोहित था, उसे खबर मिली—खबर रोज मिलने लगी, बढ़ने लगी थीं खबरें—कि पास की एक झील के किनारे तीन फकीर रहते हैं, जो बिलकुल बेपढ़े-लिखे और गंवार हैं, जिन्हें प्रार्थना करना भी नहीं आता, उनके लोग दर्शन करने जाते हैं, वहां बड़े चमत्कार होते हैं। वह तो बड़ा नाराज हुआ। उसने एक दिन नाव ली, नाव में बैठकर उस किनारे गया, तो तीनों फकीर वहां बैठे थे एक झाड़ के नीचे। बड़े मस्त हो रहे थे। कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता था मस्ती का। डोल रहे थे आनंद में! उसने कहा कि बंद करो यह डोलना! उसने कहा जानते हो, मैं कौन हूं? उन्होंने कहा कि हमें कुछ पता नहीं कि आप कौन हैं। मगर आप बतायें तो हम जान लेंगे कि आप कौन हैं।उसने कहा कि मैं सबसे बड़ा पुरोहित हूं। उन तीनों ने उसके चरणों में सिर रख दिया। तब तो वह निश्चित हो गया कि ये मूढ़, इनको क्या चमत्कार आता होगा और क्या इनको भक्ति आती होगी? लोग इनके पीछे नाहक पागल हो रहे हैं, ये तो मेरे चरणों में सिर रख रहे हैं।

उसने पूछा कि तुम्हारी क्या साधना है? तुम्हारे पीछे भीड़ क्यों आती है? उन्होंने कहा, हम साधना जानते ही नहीं। तुम प्रार्थना क्या करते हो, उस पुरोहित ने पूछा। उन्होंने कहा, प्रार्थना भी अब आप से हम क्या कहें, शर्म आती है। शर्म आती है? फिर भी तुम कहो। उन्होंने एक-दूसरे की तरफ देखा कि भई तू कह दे! मगर वह कोई कहने को राजी नहीं। आखिर एक ने हिम्मत की। उसने कहा अब आप मानते नहीं तो हमें कहना पड़ेगा। असल में प्रार्थना हमें आती नहीं थी, हम तीनों ने अपनी प्रार्थना गढ़ ली है। हमने ही बनायी है, इसलिए क्षमा करना आप। फिर भी उस पुरोहित ने कहा, तुमने क्या प्रार्थना बनायी है? वह तो नाराज होने लगा कि तुमने प्रार्थना बनायी कैसे? प्रार्थना तो चर्च का अधिकार है बनाना। उसका तो ऊपर से निर्णय होता है। तुमने कैसे प्रार्थना बना ली? फिर चर्च की निश्चित प्रार्थना है। क्या है तुम्हारी प्रार्थना?

वे तीनों एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। फिर उन्होंने कहा कि अब नहीं मानते तो हम आपको कह देते हैं। हमने सुना है कि ईश्वर के तीन रूप हैं, त्रिमूर्ति; या जैसा ईसाई कहते हैं, 'ट्रिनिटी,' उसके तीन रूप हैं। और हम भी तीन हैं। तो हमने एक प्रार्थना बना ली है, कि 'तुम भी तीन, हम भी तीन, हम पर कृपा करो!' वह पुरोहित तो हंसने लगा। उसने कहा, तुम बिलकुल मूढ़ हो। यह कोई प्रार्थना हुई? मैं तुम्हें प्रार्थना बताता हूं, अब तुम यह बंद करो प्रार्थना, यह असली प्रार्थना तुम्हें देता हूं।

तो उसने ईसाई-धर्म की जो स्वीकृत प्रार्थना है, प्रामाणिक, वह कही। लेकिन वे तीनों बोले कि यह तो बड़ी लंबी है और हम भूल जायेंगे। यह संक्षिप्त नहीं हो सकती? उसने कहा कि यह संक्षिप्त नहीं हो सकती, इसमें एक शब्द नहीं बदला जा सकता, न एक जोड़ा जा सकता है। तो उन्होंने कहा, आप फिर एक दफा और कह दें। फिर तीसरी दफे भी कहा कि एक दफा और बस, ताकि हमें याद हो जाए।

इधर पुरोहित कहने लगा, उधर वे उसे दोहराने लगे। उन्होंने कहा कि ठीक, हम कोशिश करेंगे।

पुरोहित बड़ा प्रसन्न होकर नाव में बैठकर वापिस लौटा। जब वह बीच झील में था, तब उसने देखा, एक बवंडर की तरह चला आ रहा है। वह तो बड़ा हैरान हुआ कि यह क्या है; कोई तूफान नहीं है, कोई आंधी नहीं है, यह

बवंडर कैसे आ रहा है? तब उसने गौर से देखा तो पाया कि वे तीनों पानी पर भागते चले आ रहे हैं। उन्होंने कहा कि रोको, रोको। हम भूल गये। एक दफा और कह दो वह प्रार्थना एक दफा और बता दो।

तब उस पुरोहित को थोड़ी बुद्धि आयी कि जो पानी पर चलकर आ गये इनकी ही प्रार्थना ठीक होगी, इनकी प्रार्थना पहुंच गयी है। उसने उनके चरण छुए और कहा, मुझे क्षमा करो, मैंने बड़ा अपराध किया है। तुम्हारी प्रार्थना पहुंच गयी है; तुम अपनी प्रार्थना जारी रखो। मेरी प्रार्थना भूल जाओ, क्योंकि मैं वह प्रार्थना जिंदगी-भर से कर रहा हूं, अभी भी मुझे नाव में बैठना पड़ता है। अभी मुझे इतनी श्रद्धा नहीं कि उस प्रार्थना के सहारे मैं पानी में चल जाऊंगा। तुम वापस जाओ, मुझे माफ कर देना! मैंने तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच बड़ी बाधा डाली। मैंने पाप किया।

भाषा का मूल्य नहीं है, न शास्त्र का मूल्य है—मूल्य है हृदय का, हार्दिकता का। इसलिए कृष्ण कहते हैंः कोई किसी ढंग से आए, किसी बहाने आए, किसी मार्ग से आए, किसी दिशा से आए, सब मुझ तक पहुंच जाते हैं।

परमात्मा परम शिखर है। पहाड़ पर बहुत रास्ते शिखर की तरफ जाते हैं, तुम किसी भी रास्ते से चल पड़ो, बस चलते रहना, पहुंच जाओगे। रास्तों की इतनी मूल्यवत्ता नहीं है, जितना लोग समझ बैठे हैं। लोग इतना झंझट मचाकर रखते हैं, कि कौन-सा रास्ता ठीक है। रास्ता ठीक नहीं होता है, चलनेवाला ठीक होता है या गलत होता है। रास्ते तो बस रास्ते हैं। रास्ते तो मुर्दा हैं। चलनेवाला हो तो गलत रास्तों से पहुंच जाता है और न चलनेवाला हो तो ठीक रास्तों पर भी मकान बना लेता है, वहीं बैठकर रह जाता है। ठीक और गलत रास्ते क्या होंगे!

मैं तुम्हारी दृष्टि बदलना चाहता हूं। मैं तुमसे कहना चाहता हूंः चलनेवाला ठीक होता है या गलत होता है। कब ठीक होता है? जब वह जो कर रहा है, उसके पीछे उसका हृदय होता है। और कब गलत होता है? जब वह ऊपर-ऊपर करता है और पीछे हृदय का साथ नहीं होता, तब गलत होता है। हृदयपूर्वक जो भी किया जाए, वह परमात्मा के चरणों तक पहुंच जाता है।

कठिनाइयां आती हैं। कठिनाइयां स्वाभाविक हैं। उनसे भयभीत मत होना। उनको चुनौती समझना।

जो जिद है बर्के-चमन सोज को तो ज़िद ही सही

हम आज अपना नशेमन बनाके देखेंगे

अगर बिजलियों ने ज़िद बांध रखी है कि आज गिरकर रहेगी, तो यह भी सही, मगर हम तो अपने घोंसले बना कर रहेंगे। बिजलियां गिरें तो गिरें, तूफान आएं तो आएं—हम तो यात्रा पर चल पड़े हैं तो चल कर रहेंगे।

सारी विपरीत अवस्थाओं को चुनौती समझना। उन्हीं चुनौतियों को स्वीकार कर-कर के तुम्हारे भीतर दृढ़ता पैदा होती है। उन्हीं चुनौतियों से गुजर कर तुम निखरते हो। तुम कुंदन बनते हो, आग से गुजर कर और कोई उपाय नहीं है।

'ताभ्यः पावित्र्यम् उपक्रमात्।।

गौणी-भक्ति के द्वारा पवित्रता लाभ होती है।' गौणी-भक्ति का क्या फल है? नाम-स्मरण, भजन-कीर्तन सेवा, नमस्कार, नर्तन, इस गौणी-भक्ति का क्या परिणाम है? इन सबके माध्यम से हृदय पवित्र होता है, सुचिता आती है, सारल्य आता है, सरलता आती है, निष्कपटता आती है, निर्दोषता आती है। और वे ही पा सकते है प्रभु को निर्दोष है। परिभक्ति उन्हें में उमगेगी, जिनका हृदय पवित्र है। ये सारे गौणी-भक्ति के आयोजन तुम्हारे हृदय से कीचड़ को अलग करने के उपाय हैं।

प्रार्थना के इन क्षणों में कई बार जैसे बादल छंट जाएंगे, आकाश खुल जाएगा, सूरज चमक आएगा; फिर बादल घिर जाएंगे। ऐसा बहुत बार होगा, अनंत बार होगा। लेकिन एक बात निश्चित होने लगी कि बादल कितने ही घिरें; अंधेरा फिर-फिर आ जाए, सुबह होती है। और बादल कितने ही घिर जाएं, सूरज नष्ट नहीं होता। और मैं कितना ही परमात्मा को भूल-भूल जाऊं, तो भी याद वापिस लौट आती है। बहुत बार भूलोगे, बहुत बार

भटकोगे। कोई एक ही कदम में नहीं पहुंच जाता है। कई बार रास्ता चूक-चूक जाएगा, लेकिन अगर हृदय खोजने के लिए तत्पर है, अगर तुमने तय ही कर रखा है कि—

जो जिद है बर्के-चमन सोज को तो जिद ही सही
हम आज अपना नशेमन बनाके देखेगे

—तो नशेमन बनेगा।

दस्ते-तनहाई में ऐ जाने-जहां लरजां हैं
तेरी आवाज के साये तेरे होठों के शराब
दस्ते-तनहाई में, दूरी के खसो-खास तले
खिल रहे हैं, तेरे पहलू के समन और गुलाब
उठ रही है कहीं कुरबत से तेरी सांस की आंच
अपनी खुशबू में सुलगती हुई मद्धिम-मद्धिम
दूर-उफक पार चमकती हुई कतरा-कतरा
गिर रही है तेरी दिलदार नजर की शबनम
इस कदर प्यार से ऐ जाने जहां! रक्खा है
दिल के रुखसार पै इस वक्त तेरी याद ने हाथ
यूं गुमां होता है, गर्चे है अभी सुबहे-फिराक
ढल गया हिज्र का दिन, आ अभी गयी वस्ल की रात

साधारण प्रेमियों को ऐसा होता ही है, असाधारण प्रेमियों को भी ऐसा ही होता है। प्रेम के अनुभव एक ही जैसे हैं। साधारण प्रेम का अनुभव बूंद जैसा है, परमात्मा के प्रेम का अनुभव सागर जैसा है, लेकिन मौलिक रूप से कुछ भेद नहीं है। मात्रा का भेद है। करोड़-करोड़ गुना है परमात्मा का प्रेम, लेकिन तुमने अगर प्रेम कभी जाना है, अगर तुम किसी स्त्री की याद में तड़फे हो, या किसी पुरुष की याद में रोए हो, तो तुम जानोगे कि प्रार्थना क्या है, पूजा क्या है।

इस कदर प्यार से ऐ जाने जहां! रक्खा है
दिल के रुखसार पै इस वक्त तेरी याद ने हाथ

जब उसकी याद तुम्हें घेर लेगी, जब उसकी याद तुम्हें स्पर्श करेगी—

यूं गुमां होता है, गर्चे है अभी सुबहे-फिराक

अभी तो विरह की सुबह है, लेकिन ऐसा संदेह होता है—

यूं गुमां होता है, गर्चे है अभी सुबहे-फिराक
ढल गया हिज्र का दिन...

अभी सुबह ही है विरह की, अभी मार्ग पर चले ही हैं, लेकिन ऐसा एहसास होने लगता है कि ढल गया हिज्र का दिन, विरह के दिन समाप्त हुए, 'आ भी गयी वस्ल की रात, और मिलन की रात आ गयी। ऐसा बहुत बार होगा। और जब-जब ऐसा होगा तब-तब तुम्हारे जीवन में एक नया पहलू प्रकट हो जाएगा, एक ऊंचाई आ जाएगी। ऐसा बहुत बार होगा, परमात्मा से मिलने के पहले बहुत बार एहसास होगा कि आ गयी मंजिल, आ गयी मंजिल। फिर-फिर चूक जाएगी।

यह चूकना भी तुम्हारे जीवन को निखारने का उपाय है। इसे सौभाग्य समझना। यह परीक्षा है, यह कसौटी है। और तुम हर बार पाओगे कि जब भी तुमने एक चुनौती को अंगीकार किया और एक आग से गुजरे, तुम और पवित्र हो गये, कुछ कचरा और जल गया।

तासु प्रधान योगात् फलः अधिक्यमम् एके।

कोई-कोई आचार्य गौणी-भक्ति की प्रधानता के कारण अधिक फल मानते है।'

गौणी-भक्ति का इतना मूल्य है कि कुछ आचार्यों ने ऐसा भी मान लिया है कि गौणी-भक्ति पराभक्ति से भी ज्यादा मूल्यवान है। उनकी बात में भी थोड़ी सचाई है, क्योंकि बिना गौणी-भक्ति के पराभक्ति तो होगी नहीं। बिना बुनियाद के मंदिर तो उठेगा नहीं। तो बुनियाद महत्वपूर्ण है कि मंदिर महत्वपूर्ण है? इस फिजूल झंझट में पड़ना ही मत; क्योंकि यह विवाद ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि मुर्गी पहले कि अंडा पहले? कोई कह सकता है, अंडा पहले, क्योंकि बिना अंडे के मुर्गी कैसे होगी? और कोई कह सकता है, मुर्गी पहले, क्योंकि बिना मुर्गी के अंडा कौन रखेगा? और यह विवाद चलता रह सकता है। दार्शनिक इस पर लड़ते रहे हैं। पांच हजार-सालों में न-मालूम कितना विवाद इस बात पर हुआ है कि कौन पहले। और एक छोटी-सी बात दिखायी नहीं पड़ती कि मुर्गी और अंडा दो नहीं है। मुर्गी में अंडा समाया हुआ है, अंडे में मुर्गी बैठी हुई है। उनको दो मानना गलत है। वे एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं। मुर्गी हो तो अंडा हो जाती है। अंडी ही तो मुर्गी ही जाती है। इसलिए एक ही घटना है, उसके दो रूप है, दो ढंग हैं, दो कदम हैं।

तुम बच्चे थे, तुम्हीं तो जवान हो गये! तुम जवान हो, तुम्हीं तो बूढ़े हो जाओगे। तुम्हीं जीवन हो, तुम्हीं कल मृत्यु हो जाओगे। ये दोनों एक ही बात हैं। इनके बीच अंतर मानना और इनको दो मानने से झंझट खड़ी हो जाती है। एक दफा दो मान लिया तो फिर कोई हल नहीं हो सकता।

शांडिल्य कहते हैः कुछ आचार्य कहते हैं कि गौणी-भक्ति प्रधान है, उसको गौण कहना ठीक नहीं, क्योंकि उसके बिना परभक्ति कभी होगी ही नहीं। ठीक ही कहते हैं। मगर दूसरे हैं जो कहते हैं, पराभक्ति परा है, गौणी तो गौण हैं। वे भी ठीक कहती हैं, क्योंकि पराभक्ति के लिए ही तो गौणी-भक्ति की जाती है, वह साधन रूप है। हम राह चलते हैं—मंजिल पर पहुंचने के लिए। मंजिल का मूल्य है। राह चलने के लिए तो कोई राह नहीं चलता, मंजिल पर पहुंचने के लिए चलता है। इसलिए असली मूल्य तो मंजिल का है।

लेकिन कोई यह भी कह सकता है, बिना राह चले मंजिल पहुंचोगे? कैसे पहुंचोगे? और जब मंजिल मिल नहीं सकती बिना राह के, तो राह मंजिल से भी ज्यादा मूल्यवान है। ये दोनों ही बातें ठीक हैं। इनमें विवाद व्यर्थ है।

गौणी-भक्ति को हृदय में बिठाना लो, स्वागत से उसे मेहमान बना लो। उसके बड़े रंग हैं, बड़े रूप हैं! भगवान जब करीब आने लगता है भक्त के—पुकारता है भक्त कि मेरे करीब आओ, कि मुझे करीब लो, लेकिन जब आने लगता है तो डरने लगता है। कभी-कभी कहता है, बस और पास मत आ जाना! इससे ज्यादा पास आए तो घबड़ाहट होती है।

लाऊंगा मैं कहां से जुदाई का हौसला?

क्यों इस कदर करीब मेरे आ रहे हो तुम?

डरने लगता है कि इतने करीब आ गये और फिर जाओगे, तो फिर बहुत दुख होगा, फिर और विरह होगा। जरा दूर ही रहो। नहीं आता परमात्मा करीब तो पुकारता है। करीब आता है तो कहता है—

लाऊंगा मैं कहां से जुदाई का हौसला?

क्यों इस कदर करीब मेरे आ रहे हो तुम?

शिकायतें हजार उठती हैं। शिकायतें सोचता भी है, फिर सोच-सोच कर यह भी सोचता है कि सार क्या है शिकायतों में?

शिकायत किस जबां से मैं करूं उनके आने की

यही अहसान क्या कम है कि मेरे दिल में रहते हैं

ऐसे समझाता है, सांत्वना देता है। सांत्वना में, समझाने में, अपने को सम्हालता है। प्रतीक्षा करता है, धैर्य रखता है, पुकारता है। परमात्मा का आगमन न हो, तो जानता है, मेरी पात्रता अभी न होगी। और जब परमात्मा का

आगमन होता है, तो ऐसा नहीं जानता कि अब मेरी पात्रता है। इसको खयाल में रखना। जब तक परमात्मा नहीं आता है, जानता है कि मेरी पात्रता नहीं है। लेकिन जब परमात्मा आता है तो जानता है, उसका प्रसाद है।

गौणी-भक्ति प्रयास है। फिर भी भक्त का भाव सदा इसका ही होता है कि तेरी अनुकंपा के कारण तू मिला है, मेरे प्रयास के कारण नहीं। तेरा प्रसाद है। तेरी करुणा है।

करो प्रयास, ध्यान रखना प्रसाद पर। इन दो शब्दों के बीच सारा राज है। प्रयास पर बहुत भरोसा कर लिया तो चूक जाओगे। और प्रयास किया ही नहीं तो भी चूक जाओगे। प्रयास करना भरपूर, और भरोसा रखना प्रसाद पर। इसमें विरोधाभास लगता है, मगर यह विरोधाभास भक्त को समझना ही पड़ता है फिर से तुम्हें कह दूं।

चेष्टा पूरी करना, जितनी तुम कर सको उसमें कुछ कंजूसी नहीं लेना, अपने को बचाना मत, अपने को पूरा दांव पर लगा देना; और फिर भी जब मिलन हो, तो भूल कर भी यह भाव मत उठने देना कि मेरी पात्रता से मिला। क्योंकि अगर यह भाव उठा, उसी क्षण तुम इतने दूर पड़ जाओगे जितने दूर परमात्मा से कोई हो सकता है। क्योंकि यह तो अहंकार ही है। फिर अहंकार लौट आया नये रास्ते से। फिर उसने तुम्हारी गर्दन दबा दी। तुम फिर हार गये अहंकार से, फिर अकड़ आ गयी।

तो भक्त प्रसाद की याद रखता है। जब परमात्मा मिलता है तो वह कहता है: मेरी कोई पात्रता नहीं है। मुझ जैसे अपात्र को तुम मिले, जरूर तुम्हारी अनुकंपा होगी! इसका यह अर्थ नहीं है—जैसा कि कुछ काहिलों ने और सुस्तों ने ले रखा है। उन्होंने यह ले रखा है कि जब प्रसाद से ही मिलता है, तो हमारे किये से क्या होगा? प्रार्थना भी क्या करनी, पूजा भी क्या करनी, नमस्कार भी क्या करना, जब उसकी कृपा होगी तब होगी, हमारे किये से क्या होता है, जब भाग्य में होगा तब होगा। वे प्रयास ही नहीं करते हैं। और जो प्रयास नहीं करता, वह प्रसाद के योग्य नहीं बनता।

तुम अपना पूरा प्रयास करो। तुम्हारा प्रयास जब पूर्णता पर पहुंच जाएगा तभी प्रसाद की किरण उतरती है। और जैसे ही प्रसाद की किरणें उतरीं, गौणी-भक्ति विदा हो गयी। फिर पराभक्ति का प्रारंभ है। वहां भक्त और भगवान एक हैं। वहां एक ही ऊर्जा का नृत्य है। फिर वहां कोई भेद नहीं, कोई द्वैत नहीं। जहां तक भेद है, जहां तक द्वैत है, वहां तक द्वंद्व भी रहेगा, दुख भी रहेगा। दुख की समाप्ति है द्वैत की समाप्ति पर। उस लक्ष्य पर ध्यान रखना कि एक दिन भगवान में लीन हो जाना है, भगवान को अपने में लीन हो जाने देना है। एक दिन सब सीमाएं मिटा देनी हैं।

गौणी-भक्ति में लगो और पराभक्ति की प्रतीक्षा करो। यह घटना घटती है। जब घटती है तभी तुम जानोगे कि जीवन कैसा अपूर्व अवसर है! गुलाब की झाड़ी, जिसमें कभी गुलाब के फूल नहीं खिले, उसे पता भी नहीं हो सकता कि जब फूल खिलेंगे तो कैसी सुगंध बिखरेगी! उसे यह भी खयाल नहीं हो सकता कि मैं कैसी सुंदर हो जाऊंगी जब फूल खिलेंगे, कि कैसी महिमा का जागरण होगा, कि कैसा गौरव मेरे भीतर उठेगा, कि कैसी दुल्हन-सी मैं सज जाऊंगी! फिर हवाओं में नाचूंगी, एक गरिमा होगी! फिर हवाओं में सुगंध लुटाऊंगी, एक सौरभ उठेगा! एक संगीत मुझसे जन्मेगा! उसे कुछ पता भी नहीं हो सकता जब गुलाब में फूल नहीं खिले हैं; तब तक तो वह कोरी बांझ झाड़ी है। तुम भी जब तक परमात्मा तुम्हारे भीतर न उतरे, बांझ झाड़ी हो। तुम्हारे भीतर फूल नहीं खिले हैं, तुम्हें अपनी सुगंध का भी कोई पता नहीं है, तुम्हें पता नहीं तुम किस महत संगीत को लिये भीतर चल रहे हो। तुम्हें पता नहीं, तुम्हारी हृदय की वीणा कैसे अपूर्व नाद को उठा सकती है।

मगर उतरे परमात्मा, उसकी अंगुलियां तुम्हारे हृदय पर पड़ें, तो ही संगीत उठ सकता है। उस संगीत का नाम ओंकार है।

आज इतना ही।

मैं क्या करूं? कैसे प्रार्थना करूं? कैसे अर्चना करूं?

आपने कहा: 'न मैं पूर्ण हूं और न संत'। इससे मुझे बड़ा सदमा लगा। मैं रातभर सो भी न सका।
संन्यास लेने में अहंकार ही सबसे बड़ी बाधा है; तो इसको कैसे हटाया जा सकता है?
आप शास्त्र-ज्ञान का विरोध क्यों करते हैं?
गरीब जानके हमको न तुम भुला देना
तुम्हीं ने दर्द दिया है तुम्हीं दवा देना
आप सहित सभी महापुरुष जो जिंदा हैं, कभी इकट्ठे क्यों नहीं होते?
प्रार्थना निरालंब दशा है
चौथा प्रवचन:
पहला प्रश्न: मैं क्या करूं? कैसे प्रार्थना करूं? कैसे अर्चना करूं?
प्रार्थना क्रिया नहीं है, कर्म नहीं है। कर्ता का भाव ही प्रार्थना में बाधा है। प्रार्थना अक्रिया है। की नहीं जाती, सिर्फ होने दी जाती है। प्रार्थना ऐसे है जैसे नींद। लाने की कोशिश करोगे, आना मुश्किल हो जाएगा। भूलों नींद की बात, पड़े रहो बिस्तर पर, आएगी अपने से। प्रार्थना आती है, लायी नहीं जाती।
इस बुनियादी बात को खूब खयाल में रख लेना।
भक्त कुछ कर नहीं सकता, करना उसके बस में नहीं है। करना ही वश में हो तो भक्ति की कोई जरूरत नहीं है। भक्ति असहाय अवस्था है। बेसहारा! जब व्यक्ति अपने को पाता है अब मेरे किये कुछ भी न होगा, कुछ भी न होगा, मेरा सारा करना गिर गया, हार गया, मेरा कर्ता पुंछ गया, मिट गया, वैसी शून्य अवस्था में, जब करने को कुछ भी नहीं सूझता, आंखें अपने-आप आंसुओं से भर आती हैं, वही प्रार्थना है। वे आंसू ही फूल हैं, चढ़ाने योग्य।
रुदन उठेगा, गान भी उठेगा, मगर तुम्हें खींच-खींच कर लाना नहीं है, उठने देना है। तुम्हारे भीतर से उमगेगी प्रार्थना, जैसे वृक्षों में पत्ते निकलते हैं और फूल खिलते हैं। ऐसे तुम्हारे प्राणों में पत्ते खिलेंगे, फूल खिलेंगे, तुम हरे हो उठोगे, कोई गीत जन्मेगा, कोई एक कड़ी गूंजेगी। वही मंत्र है। जो दूसरे ने दिया, वह मंत्र नहीं है। जो तुमने पाया, जो तुम्हें मिला, जो परमात्मा से मिला, वह मंत्र है।
तुम पूछते हो, 'मैं क्या करूं? करना छोड़ो। किये-किये खूब भरमे, कर-कर के खूब भटके, करने के कारण ही भटके, अब जागो। अब एक बात समझो कि तुम्हारे किये कुछ भी न होगा। जैसे सांस अपने से चलती है—तुम थोड़े ही चलाते हो—खून अपने से बहता है—तुम थोड़े ही बहाते हो—हृदय अपने से धड़कता है—तुम थोड़े ही धड़काते हो! सब अपने से हो रहा है, तुम अपने को बीच में मत लाओ। तुम हट जाओ, तुम रास्ता दे दो। तुम गिर पड़ो तुम मिट जाओ। तुम करने की बात ही विस्मरण कर दो। और तब तुम एक दिन अचानक पाओगे, होने का जन्म हुआ।
फिर प्रार्थना कैसी होगी, कहना कठिन है। प्रत्येक की अलग-अलग होगी। किस ढंग की सुगंध तुम्हारे भीतर उठेगी, कैसे पत्ते खिलेंगे, कैसे फूल—सब पौधे अलग हैं! किसी पर गुलाब खिलेगा, किसी पर चंपा, किसी पर चमेली, मगर एक बात समान होगी—खिलावट होगी। उस खिलावट का नाम प्रार्थना है।
तुम पूछते हो—क्या करूं? कैसे करूं? प्रार्थना की कोई विधि नहीं है। प्रेम की कहीं विधि हुई है! जहां विधि आयी, वहां कृत्रिमता आयी। तुम प्रेम करना सीखते थोड़े ही हो, अभ्यास थोड़े ही करते हो—और अभ्यास किया हुआ प्रेम अभिनय होगा, वास्तविक नहीं होगा। मगर प्रेम के अभ्यास की जरूरत नहीं, तुम जन्मे हो प्रेम की क्षमता के साथ। तुम लाए हो अपने प्राणों में वह स्वर, वह पड़ा ही है, जरा अवसर चाहिए। और अवसर क्या है? इतना ही कि तुम्हारा बाहर का शोरगुल थोड़ा बंद हो।
तो करने के नाम पर नकारात्मक करना है।

जैसे एक आदमी को, मैं फिर याद दिलाऊं, सोना है। वह क्या करे? सोने के लिए कोई अभ्यास करे? व्यायाम करे? उछल-कूद करे? आसन लगाए? जो भी करेगा, उसे नींद में बाधा पड़ जाएगी। लेकिन फिर भी कुछ किया जा सकता है; वह करना नहीं है। कमरे का प्रकाश बुझा सकता है। उससे सहारा मिलेगा दरवाजे-खिड़किया बंद कर सकता है। पर्दे गिरा दे सकता है। उससे सहारा मिलेगा। विश्राम की अवस्था के लिए अंधेरा उपयोगी है। द्वार-दरवाजे बंद हों, अंधेरा हो, बाहर का शोरगुल न आता हो, यह सहयोगी है, मगर नींद तो अपने से घटेगी।

ऐसी ही प्रार्थना है।

तुम बाहर के शोरगुल से थोड़ा अपने को निश्‍चिंत कर लो, चौबीस घंटे में एक घड़ी खोज लो, द्वार-दरवाजे बंद कर दो, बैठ जाओ, भूलो जगत को, प्रतीक्षा करो अज्ञात की; धैर्य रखो; आज नहीं होगा, कोई चिंता नहीं; आज नहीं खोद पाए कुआं, थोड़ी ही दूर तक गये, थोड़ी मिट्टी-पत्थर निकाला, मगर फिर भी काम शुरू हो गया, कुआं खुदना शुरू हो गया, कल थोड़ा और खुदेगा, परसों थोड़ा और खुदेगा, एक दिन तुम पाओगे जलधार फूट गयी। जल्दबाजी न करो। मैं तुम्हारी व्यथा समझता हूं।

भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।
बोल उठी है मेरे स्वर में
तेरी कौन कहानी,
कौन जगी मेरी ध्वनियों में
तेरी पीर पुरानी,
अंगों में रोमांच हुआ, क्यों
कोर नयन के भींगे,
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।

किसी दिन आंखें भीग जाएंगी। 'कोर नयन के भींगे' भाव की धारा बहेगी। यद्यपि उस धारा को तुम विधि मत कहना, क्योंकि वह प्रत्येक की भिन्न होगी, अलग-अलग होगी। सबके आंसुओं का स्वाद अलग है। सब की मुस्कुराहट का ढंग अलग है। सबके प्रेम की शैली भिन्न है। यही तो व्यक्ति की गरिमा है। इसलिए सबको प्रार्थनाएं भी अलग होंगी।

दुनिया में प्रार्थना मर गयी है, क्योंकि प्रार्थना सिखायी गयी है। हिंदुओं ने एक तरह की प्रार्थना सीख ली है, बस वही दोहराए जा रहे हैं। मुसलमानों ने एक तरह की प्रार्थना सीख ली है, वही दोहराए जा रहे हैं। व्यक्तियों को पोंछ कर हटा दिया गया है, विधियां थमा दी गयी हैं। विधियां झूठी हो जाती हैं। और जब भी तुम बाहर से सीखी कोई प्रार्थना दोहराओगे, तुम्हारे भीतर की प्रार्थना अजन्मी रह जाएगी।

भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।
बोल उठी है मेरे स्वर में
तेरी कौन कहानी,
कौन जगी मेरी ध्वनियों में
तेरी पीर पुरानी,
अंगों में रोमांच हुआ, क्यों
कोर नयन के भींगे,
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।
मैंने अपना आधा जीवन
गाकर गीत गंवाया

शब्दों का उत्साह पदों ने
मेरे बहुत कमाया,
मोती की लड़ियां तो केवल
तूने इन पर वारीं,
निर्धन की झोली आज गयी भर पूरी।
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।

फिर भी तुम कह न पाओगे जो हुआ है। तुम किसी दूसरे को बता न पाओगे जो हुआ है। तुम किसी को समझा न पाओगे जो हुआ है। समझाने जाओगे और उलझ जाओगे। 'भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी'। तुमने जो गीत गाये, वे तो कचरा; जो गीत परमात्मा तुमसे गाता है, वही, वही सार्थक है।

मैंने अपना आधा जीवन
गाकर गीत गंवाया,
शब्दों का उत्साह पदों ने
मेरे बहुत कमाया,
मोती की लड़ियां तो केवल
तूने इन पर वारीं,

जब उसका संस्पर्श मिलता है, तभी तुम्हारी मिट्टी सोना होती है।

मोती की लड़ियां तो केवल
तूने इन पर वारीं,
निर्धन की झोली आज गयी भर पूरी।
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।
क्षणभंगुर होता है जग में
यह रागों का नाता,
सुखी वही है जो बीती को
चलता है बिसराता,
और दुखी है पूर्ति ढूंढ़ता
जो अपनी साधों की,
रह जाती हैं जो उर के बीच अधूरी,
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।

प्रार्थना के नाम पर तुम कुछ मांगना मत। तुम किसी अधूरी वासना को पूरा करने की आकांक्षा मत करना। वही लोग करते हैं। प्रार्थना नहीं करते हैं। भिखमंगापन उनकी प्रार्थना में प्रकट होता है। यह मिल जाए, वह मिल जाए, ऐसा हो जाए, वैसा हो जाए। अगर तुमने कुछ भी मांगा, तो तुमने प्रार्थना गंदी की, अपवित्र की। तुमने अपनी प्रार्थना में वासना जोड़ी कि तुमने प्रार्थना के पंख काट दिये और प्रार्थना के गले में पत्थर बांध दिये। वह पक्षी फिर उड़ेगा नहीं, यहीं तड़फाएगा, यहीं गिरेगा, यहीं मरेगा।

इतना ही खयाल रखना, प्रार्थना में मांग न हो। कुछ भी मत मांगना, परमात्मा को भी मत मांगना—क्योंकि मांग तो बस मांग है; मांगा कि चूके।

अब बड़े दुख की बात है कि प्रार्थना शब्द का अर्थ ही मांगना है। मांगनेवाले को हम प्रार्थी कहते हैं। सदियों से प्रार्थना के नाम पर मांगा गया है। इसलिए प्रार्थना का शब्द ही गलत हो गया, शब्द ही विकृत हो गया, उसका अर्थ ही मांगना हो गया। और इसलिए प्रार्थना कभी खिल नहीं पाती। तुम सिर्फ किसी उन्मेष में आंदोलित होना,

किसी उमंग में डोलना, मांगना कुछ भी मत। बिना मांगे मिलता है, मांगने से चूक जाता है। तुम न मांगोगे तो सब मिलेगा। तुम मांगोगे तो कुछ भी न मिलेगा। और जब कुछ भी न मिलेगा तो विषाद घिरेगा। और जब बिन मांगे मिलता है, प्रसाद बरसता है, तो आल्हाद का जन्म होता है।

मैं क्या करूं? कैसे प्रार्थना करूं? कैसे अर्चना करूं? 'कैसे' शब्द को बिदा कर दो। तुम निष्क्रिय में गति करे। बैठ रहो घड़ीभर न सोचो कि क्या करना है, बैठ रहो धड़ी भर। पक्षी गीत गाते हों, सुनो; सूरज की किरणें तुम्हारे ऊपर नाचती हों, अनुभव करो; हवा का झोंका आता हो तुम्हारे वस्त्रों को कंपा जाता हो, नचा जाता हो, अनुभव करो; बस बैठे रहो। तुम चकित होओगे यह जानकर कि अगर तुम बैठ सको घड़ीभर, बिना किसी व्यस्तता के, प्रार्थना एक दिन तुम्हारे भीतर ऐसे ही जन्म जाएगी, कि चमत्कार!

लेकिन तुम जब पूछते हो—कैसे, तो तुम्हें पता नहीं कि तुम क्या पूछ रहे हो। तो तुम पूछ रहे हो कि चलो ठीक है, प्रार्थना के लिए बैठेंगे, लेकिन व्यस्तता के लिए कुछ तो दे दें। माला फेरें? मंत्र जपें? पूजा का थाल सजाएं? आरती उतारें? तुम चाहते हो, कुछ व्यस्तता के लिए उपाय दे दो। तुम बिना किये नहीं रह सकते। करना तुम्हारी बीमारी है, तुम्हारा पागलपन है। दुकान करोगे, अखबार पढ़ोगे, कुछ उठा-धरी करते रहोगे। प्रार्थना में भी तुम चाहते हो, कुछ करने को रहे।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, कुछ आलंबन तो चाहिए। क्योंकि चाहिए आलंबन? किसलिए चाहिए आलंबन? आलंबन के सहारे मन जीता है; और सब आलंबन मन को बचा रखते हैं; आलंबन हटाना है, देना ही नहीं है। सब आलंबन छीन लो! हटा दो मालाएं! हटा दो पूजा के थाल! मूर्तियों को बिसरा दो! बैठ रहो, कोई आलंबन मत दो। मन घूमेगा, विक्षिप्त की तरह; पागल की तरह चीखेगा, पुकारेगा कि कुछ काम चाहिए।

तुमने कहानी सुनी है न बच्चों की कि एक आदमी ने बड़ी मेहनत से, तंत्र-मंत्र-टोटके से एक प्रेत को जगा लिया। प्रेत तो जग गया और उसने कहा, आपकी सेवा में सदा हाजिर रहूंगा, लेकिन एक बात खयाल रखना—मुझे काम चाहिए चौबीस घंटा काम चाहिए; अगर जरा भी मुझे काम नहीं मिला, मैं तुम्हारी गर्दन मरोड़ दूंगा। मैं बिना काम के नहीं रह सकता। बिना काम मुझे एक क्षण कठिन हो जाता है। फिर मैं कुछ का कुछ कर दूंगा। वह आदमी तो बड़ा खुश हुआ, उसने कहा, इसीलिए तो तुझे जगाया है कि हजारों काम पड़े हैं, मेरे, जो हो नहीं पाते, जो मैं नहीं कर पाता, वही तो तुझसे करवाने हैं, तू फिक्र मत कर, यही तो मैं चाहता हूं, ऐसा ही सेवक चाहिए था।

मगर जल्दी ही गड़बड़ हो गयी। क्योंकि वह काम दे और वह भूत उसे क्षण न लगे और पूरा कर दे। महल बनाओ। वह महल बना दे। वह खड़ा है क्षण भर बाद कि महल बन गया। जल्दी ही काम चुक गये—काम ही कितने हैं! महल भी बन गये, किले भी खड़े हो गये, स्वर्ण अशर्फियों के ढेर भी लग गये, सुंदर स्त्रियां भी आ गयीं, भोजन के थाल भी सज गये; अभी घड़ी भी नहीं बीती, उसने सब निपटारा कर दिया। वह आदमी बड़ा घबड़ाया। उसे एकदम सूझे ही न कि अब काम इसे क्या दूं? अब यही मुश्किल हो गयी कि काम इसे क्या दूं? क्योंकि काम न दूं तो यह गर्दन दबा दे। वह भूत आ-आकर खड़ा हो जाए। वह आदमी एक फकीर के पास गया। उसने कहा, कुछ रास्ता बताओ, मैं बड़ी झंझट में पड़ गया हूं। उस फकीर ने पास में पड़ी एक नसैनी उसे दे दी और कहा, इसे जमीन में गाड़ दे और उस भूत से कह—पहले ऊपर जा, फिर नीचे आ। फिर ऊपर जा, फिर नीचे आ। अब तेरे पास कोई खास काम हो करवाने का तो करवा लेना, अन्यथा नसेनी बता देना। वह नसेनी गड़ा दी गयी आंगन में, भूत को काम मिल गया—वह बड़ा प्रसन्न; ऊपर जाए, नीचे आए, अब उसका कोई अंत नहीं है, चलता रहे। जब जरूरत हो उस आदमी को किसी काम की वह काम करवा ले, अन्यथा वह नसेनी बता दे।

मन की ही कहानी है यह। मन को काम चाहिए। वह जो तुम माला फेरते हो, वह नसेनी है। फेरे जा रहे हैं गुरिये पर गुरिये, इधर से उधर तक, फिर वे एक सौ आठ हो गये, फिर फेरो, फिर फेरो! कोई मंत्र का जाप कर रहा है,

वह कहता है, एक करोड़ दफे जाप करना है। कोई बैठा राम-राम लिख रहा है, वह नसेनी है। चढ़ते रहो, उतरते रहो। काम मिल जाता है; मगर काम से कहीं राम मिला है? राम तो मिलता है निष्काम दशा में। जब चित्त में कोई व्यस्तता नहीं होती। प्रार्थना अव्यस्तता का नाम है। वही ध्यान का अर्थ है, वही प्रार्थना का अर्थ है।

'कैसे' को भूलो! तेईस घड़ी उलझे रहो—चढ़ो नसेनी, उतरो नसेनी—एक घड़ी भूल जाओ नसेनी को, बैठ जाओ खाली होकर, कुछ भी न करो।

नयन तुम्हारे चरण-कमल में अर्ध्य चढ़ा फिर-फिर भर आते।
कब प्रसन्न, अवसन्न हुए कब,
है कोई जिसने यह जाना?
नहीं तुम्हारी मुखमुद्रा ने
सीखा इसका भेद बताना,
ज्ञात मुझे, पर, अब तक मेरी
पूर्ण नहीं पूजा हो पायी,
नयन तुम्हारे चरण-कमल में अर्ध्य चढ़ा फिर-फिर भर आते।
यह मेरा दुर्भाग्य नहीं है
जो आंसू की धार बहाता,
कस उसको अपनी सांसों में
अब तो मैं संगीत बनाता,
और सुनाता उनको जिनको
दुख-दर्दों ने अपनाया है,
मेरे ऐसे यत्न तुम्हारे पास भला कैसे आ पाते।
नयन तुम्हारे चरण-कमल में अर्ध्य चढ़ा फिर-फिर भर आते।
इस जल-कण माला का मतलब
साफ यहीं तक हो पाया है,
ऐसा लगता दूर कहीं से
भार हृदय ढोकर आया है,
अनायास, अनजाना, प्रयोजन—
हीन समर्पण करके तुमको
अंतर का कुछ श्रम कम होता औ' कुछ-कुछ लोचन हलकाते।
नयन तुम्हारे चरण-कमल में अर्ध्य चढ़ा फिर-फिर भर आते।

बैठो! और तुम पाओगे—आंसू भरे, आंखें डबडबायीं, हृदय नाचा, रोमांच हुआ, कोई दूर का संगीत सुनायी पड़ा, कोई अज्ञात की गंध तुम्हारे नासापुटों में उतरी। यह होता है। यह यहां अनेक को हो रहा है। कोई कारण नहीं कि तुम्हें क्यों न हो? तुम कभी बैठे ही नहीं अव्यस्त होकर, तुमने कभी खाली होने का अवसर नहीं दिया, तुम कभी रिक्त नहीं हुए इसीलिए रिक्त रह गये हो।

प्रार्थना यानी रिक्त हो जाओ। और तुम परमात्मा से भर उठोगे। परमात्मा प्रतिपल उत्सुक है कि तुम्हारे भीतर राह बनाए। तुम राह देते नहीं। तुम नसेनी चढ़ते-उतरते। तुम कुछ न कुछ उपद्रव करते रहते। उस उपद्रव को तुम बड़े अच्छे-अच्छे नाम देते हो, कहते हो—आलंबन! प्रार्थना निरालंब दशा है। प्रार्थना निराधार अवस्था है। प्रार्थना निराकार अवस्था है। घटती है, घटायी नहीं जाती।

दूसरा प्रश्नः मैं तो आपको पूर्ण मानता हूं और संत भी। लेकिन आपने कहा, 'न मैं पूर्ण हूं और न संत'। इससे मुझे बड़ा सदमा लगा। मैं रात भर सो भी न सका।

सदमा लगाना मेरा धंधा है।

नींद तुम्हारी रात में ही टूटे, दिन में भी टूटे, ऐसी मेरी आकांक्षा है। नींद टूट ही जाए! सो लिये बहुत, सदियों सो लिये, इसलिए जितने उपाय हो सकें उतने उपाय से तुम्हें सदमे पहुंचाता हूं। समझोगे, तो उन्हीं सदमों के सहारे जागरण को साध लोगे। नहीं समझोगे, तो व्यर्थ परेशानी में पड़ जाओगे। जो दे रहा हूं, वह औषधि है—समझो तो औषधि, नहीं समझे तो व्याधि बन जाएगी। मैंने कहा—न मैं पूर्ण हूं और न संत। वह इसलिए कहा कि जब तक पूर्ण का बोध है, तब तक अपूर्ण से छुटकारा नहीं। यह तो द्वंद्व का ही खेल है—पूर्ण-अपूर्ण, संत-असंत, साधु-असाधु, पाप-पुण्य, भला-बुरा, यह सब द्वंद्व का ही खेल है। पहुंच गया जो, वह न तो पूर्ण होता है, न अपूर्ण होता है, वह न तो संत होता है न असंत होता है, वह न तो शुभ होता है, न अशुभ होता है। पहुंच गया जो, जाना जिसने, जागा जो, वह अचानक पाता है कि सारे द्वंद्व विसर्जित हो गये। अब द्वंद्व कहां? इस निद्व□द्व अवस्था को ही मैं भगवत्ता कहता हूं।

भगवत्ता उन थोड़े-से शब्दों में से एक है, जिसका विपरीत नहीं है। संत भी भगवत्ता में है, असंत भी भगवत्ता में है । लेकिन असंत ने असंत से अपना तादात्म्य कर रखा है और संत ने संत से अपना तादात्म्य कर रखा है। दोनों ने अपनी भ्रांतियां बना लीं।

ऐसा समझो कि तुम हो तो नग्न, नग्न तुम्हारा स्वभाव है। फिर किसी ने एक ढंग के वस्त्र पहन रखे हैं—सुंदर, बहुमूल्य, हीरे-जवाहरात जड़े—और उसने इन्हीं वस्त्रों के साथ अपना तादात्म्य कर लिया और वह सोचता है मैं यही हूं—ये सुंदर वस्त्र, ये बहुमूल्य वस्त्र! और फिर किसी ने दीन-दरिद्र वस्त्र पहन रखे हैं—भिखमंगे के—उसने उनसे अपना तादात्म्य बना लिया है कि मैं यही वस्त्र हूं, मैं यही दीन, दुख, दारिद्रय। दोनों अपनी परम पवित्रता को, अपनी परम नग्नता को भूल गये हैं। ऐसी ही दशा साधु-असाधु की है। साधु सोचता है, मैंने जो अच्छे कृत्य किये हैं—वह मैं हूं। असाधु सोचता है, मैंने जो बुरे कृत्य किये हैं वह मैं हूं। मगर दोनों कृत्यों से अपने को जोड़ रहे हैं। और तुम कृत्य नहीं हो, तुम कर्ता नहीं हो। तुम साक्षी मात्र हो। साक्षी के सामने अच्छा कृत्य, बुरा कृत्य, दोनों उसके सामने हैं, वह उन दोनों के पार है। इसलिए साक्षी न तो पूर्ण होता है, न अपूर्ण होता है; न शुभ होता है, न अशुभ होता है। जब मैंने कहा कि मैं पूर्ण नहीं हूं, तो मैं इतना ही कह रहा हूं कि मैं सिर्फ साक्षी हूं। साक्षी किसी अनुभव के साथ अपने को जोड़ता नहीं। अगर जोड़ ले, तो कर्ता हो जाता है, पतन हो गया। न तो साक्षी कह सकता है मैं दुखी हूं, न कह सकता है मैं सुखी हूं। सुख-दुख दोनों अनुभव हैं। न तो साक्षी कह सकता है मैं अज्ञानी हूं, न कह सकता है मैं ज्ञानी हूं। दोनों अनुभव हैं। साक्षी का अर्थ होता है, अब कोई अनुभव की जकड़ न रही, सब अनुभव दूर खड़े रह गये, सारे अनुभवों के बंधन टूट गये।

फिर साक्षी को क्या कहोगे?

पूर्ण कहोगे? संत कहोगे? असंत कहोगे? तुम बेचैन हो गये होओगे, क्योंकि तुम्हें साक्षी की कोई अनुभूति नहीं है। लोग अपने ही अनुभव से अर्थ करते हैं। स्वाभाविक है।

मैंने सुना, एक स्त्री—बड़ी प्रसिद्ध गायिका थी वह—अपने जन्मदिन पर देर तक गीत गाती थी। एक बार वह रात को अपने जन्मदिन पर गाना गा रही थी, तो उसका गाना बहुत लंबा हो गया। मस्ती में डूब गयी और गाती ही रही, गाती ही रही। आखिर जब वह गाना खत्म करने लगी तो उसके अंतिम बोल थे 'यह कौन आया', 'यह कौन आया'? उस समय प्रातःकाल के चार बज रहे थे, बाहर से आवाज आयी—दूधवाला आया जी! दूधवाले ने समझा—यह कौन आया, यह कौन आया? अपना अर्थ लिया।

मैं एक घर में मेहमान था। उस घर के एक छोटे-से बच्चे से मेरी दोस्ती हो गयी। उससे मैंने पूछा कि तुझे पता है, तेरी भाभी तुझे बार-बार कहती है—लाला,लाला; लाला क्यों कहती है? उसने कहा, इसमें क्या कठिनाई है, बिलकुल सीधी बात है, मैं उसे चीजें ला-ला के देता हूं; तो वह मुझे कहती—ला, ला!

उसका अपना अर्थ है।

प्रत्येक व्यक्ति का अपना तल है अर्थ करने का। मुझे सुनते वक्त तुम्हें बहुत सावधानी बरतनी पड़ेगी। मैं तुमसे वह कह रहा हूं जो तुम्हारे अनुभव में अभी नहीं है। इसलिए तुम्हें बड़ी अड़चनें भी हो सकती हैं।

एक दूसरे मित्र ने इसी तरह का प्रश्न पूछा है, वह भी इसी संदर्भ में समझ लेना उचित है।

आपने हिंदू-धर्म और अन्य धर्मों को बेकार और पागलपन कहा है। गुरु तेग बहादुर, गुरु गोबिंदसिंह ने हिंदू-धर्म की रक्षा के लिए कुर्बानियां दी हैं। यहां तक कि अपने बच्चों तक को शहीद करवा दिया। क्या यह पागलपन था? इस तरह से आप हमारे गुरुओं की निंदा कर रहे हैं।

पूछा है निहालसिंह, पंजाब ने।

भाई मेरे! गलत जगह आ गये तुम। तुम नाहक पंजाबियों की बदनामी करवाओगे। ऐसे ही बदनामी बहुत है। तुम्हारी समझ का तल है! गुरु तेगबहादुर ने और गुरु गोबिंदसिंह ने हिंदू-धर्म की रक्षा के लिए कुछ भी नहीं किया, कभी नहीं किया। अगर कुछ किया तो धर्म के लिए किया; हिंदू-धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है। जिन्होंने जाना है, उनके लिए हिंदू, मुसलमान, ईसाई, इनमें फर्क नहीं रह जाता। जिन्होंने जाना है, उनको भी अगर ये विशेषण मूल्यवान रह जाएं, तो उन्होंने जाना ही नहीं। ये विशेषण तो ऊपर की खोलें हैं, इनके भीतर का असली राज—धर्म—तो एक है। परमात्मा एक है। नानक ने कहा: इक ओंकार सतनाम।

लेकिन अनेक भाषायें हैं, आदमियों के अनेक रास्ते हैं उस परमात्मा तक पहुंचने के, अनेक विधि-विधान हैं, अनेक लोगो की अनेक शैलियां हैं, उसके कारण हजार विश्लेषण हो गये हैं, हजार विशेषण हो गये हैं। लेकिन जो जानता है, वह धर्म के लिए अपने को समर्पित करता है। हिंदू के लिए नहीं। हिंदू तो राजनीति का नाम है। जैसे मुसलमान राजनीति का नाम है, जैसे सिक्ख राजनीति का नाम है। धर्म बड़ी अलग बात है। ये तो वस्त्र हैं धर्मों के। किसी ने गुरुद्वार बना लिया है, ये एक ढंग है, किसी ने मंदिर बना लिया है, किसी ने मस्जिद बना ली है। लेकिन मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारा के भीतर जिसकी पूजा की जा रही है वह एक है। गुरुग्रंथ में जो पढ़ा जा रहा है और वेद में जो पढ़ा जा रहा है, गीता और कुरान में जो पढ़ा जा रहा है, शब्द तो अलग-अलग हैं, निश्चित अलग-अलग हैं, लेकिन जिस तरफ उन शब्दों के इशारे हैं, वह एक है। जिसको वह एक दिखायी पड़ता है, उसे मैं कहता हूं—वह पागल नहीं। जिसे अनेक दिखायी पड़ता है, वह पागल है।

हिंदू-धर्म में दो शब्द हैं—हिंदू और धर्म। अगर हिंदू पर बहुत जोर है, तो तुम पागल हो। अगर धर्म पर बहुत जोर है, तो तुम बुद्धिमान हो। और जैसे-जैसे धर्म पर जोर बढ़ेगा, हिंदू पर जोर कम होता जाएगा। एक दिन तुम पाओगे, हिंदू तो बिदा हो गया, धर्म रह गया। अगर हिंदू पर बहुत जोर दिया, तो तुम पाओगे, धर्म तो धीरे-धीरे बिदा होने लगा, हिंदू रह गया। एक दिन तुम पाओगे, धर्म समाप्त हो गया, हिंदू बचा।

हिंदू-धर्म दो दिशाएं खोल रहा है: एक धर्म की और एक हिंदू की। अगर हिंदू की राह पकड़ी, तो राजनीति में पड़ जाओगे। कहीं जाकर समाप्त होओगे, वह राजनीति होगी। अगर धर्म की राह पकड़ी, तो अध्यात्म में उतर जाओगे; कहीं पहुंच जाओगे एक दिन, वहां हिंदू नहीं बचेगा, मुसलमान नहीं बचेगा, ईसाई नहीं बचेगा। तो तुम मेरी बात नहीं समझ पाते, तुम कुछ का कुछ समझ लेते हो। जरूर तेग बहादुर और गोबिंद सिंह...कुर्बानियां दी हैं। लेकिन ये कुर्बानियां हिंदू की शरण में नहीं हैं। ये कुर्बानियां उस परमात्मा के लिए हैं।

जान पर खेलते हैं अहले-वफा

आशिकी दिल्लगी नहीं होती

हिंदू, ईसाई, मुसलमान, सिक्ख, इन शब्दों में मत अटक जानना। अन्यथा तुम्हारी हालत ऐसी हो गयी कि दवा तो भूल गये, बोतल को पकड़ लिया। फिर बोतल को लगाये रखो छाती से, कुछ हल होनेवाला नहीं है। दवा बोतल से और है। दवा पीओ, बोतल फेंको। इसलिए कहता हूं कि हिंदू-धर्म, मुसलमान-धर्म सब पागलपन है। बोतल को पकड़े हुए हैं, इसलिए कहता हूं। इसका यह मतलब नहीं है कि बोतल के भीतर जो औषधि है, वह पागलपन है। बोतल से औषधि तुम्हें अलग दिखायी पड़ने लगे, इसकी मैं पूरी चेष्टा कर रहा हूं। तुम भूल ही गये औषधि को, तुम बोतल में भटक गये हो।

रोके जो रास्ते में सो रहजन से कम नहीं

जो फूल हो कि खारे बयाबां चले चलो

बोतलों ने तुम्हें रोक लिया है, विशेषणों ने तुम्हें रोक लिया है, शब्दों ने तुम्हें रोक लिया है।

रोके जो रास्ते में सो रहजन से कम नहीं

और जो भी तुम्हें रोक ले चीज तुम्हारी बढ़ती से, तुम्हारे विकास से; सागर तक पहुंचने से जो भी अटका दे, उसे दुश्मन जानना। मंदिर रोक रहा है, मस्जिद रोक रही है, पंडित रोक रहा है, मौलवी रोक रहा है। जो भी रोके, उससे छूटना। तुम्हें सागर खोजना है।

देखते हो—तुम तो काशी जाते हो बहुत—गंगा काशी में रुकती है? तुम जिसके लिए काशी जाते हो, वह काशी में नहीं रुकती। वह भागी जा रही है, उसे सागर तक पहुंचना है। काशी से गुजर जाती है, काशी में रुक नहीं जाती, नहीं तो गंदा डबरा हो जाती। तुम्हें भी काशी से गुजर जाना है। और काबा से भी, और कैलाश से भी। सागर तक पहुंचना है। परमात्मा को पाना है! हां, कभी-कभी ऐसी मन की दशा होती है जब तुम अज्ञानी होते हो, तब ठीक है, मंदिर का भी उपयोग कर लेना, मस्जिद का भी उपयोग कर लेना, गुरुद्वारा का भी उपयोग कर लेना। मगर वहां अटक मत जाना। इतनी याद बनी ही रहे कि ये साधन हैं, साध्य नहीं। जिसने साधन को साध्य समझा उसे मैं पागल कहता हूं।

लेकिन मेरी भाषा और तुम्हारी भाषा में फर्क होना स्वाभाविक है। इसलिए तुम्हें अड़चन हो जाएगी। तुम्हें लग रहा है कि तुम्हारे गुरुओं की निंदा हो गयी। और मैं जो कह रहा हूं वह वही कह रहा हूं जो तुम्हारे गुरुओं ने कहा था। अगर वे गुरु थे, मैं वही कह रहा हूं जो उन्होंने कहा था। अगर उन्होंने जाना था, तो मैं जानकर कह रहा हूं। शब्द अलग होंगे, ढंग अलग होंगे।

और खयाल रखो, यह पाठशाला नहीं है, यह विश्वविद्यालय है। यहां क, ख, ग, की बात मत करो। फिर तुम कहीं और खोजो। और छोटी-छोटी पाठशालाएं हैं जहां क, ख, ग, से शुरू होता है, जहां पढ़ाया जाता है—'ग' गधा का, 'ग' गणेश जी का, वहां तुम जाओ। यहां हम सब गधे और सब गणेशजी को छोड़कर आगे बढ़ रहे हैं। यहां उनके लिए जगह है जो काशी छोड़कर सागर तक जाने की तैयारी रखते हैं। जो कहें—काशी कैसे छोड़ें, काशी तो पवित्र भूमि है, तो डबरे बन जाएंगे। तुम्हें बहुत बार अड़चन होती है, मैं जानता हूं। कुछ कहानियां तुमसे कहूं—क्योंकि निहालचंद पंजाब से हैं, कहानियां शायद समझ लें।

एक आदमी ने बड़ी कोशिशों के बाद ब्लैक मार्केट से घी के दस कनस्तर खरीदे और अपने नौकर को अकेले में ले जाकर कहा, किसी को कानोंकान खबर न हो, बगीचे में एक गड्ढा खोदकर उसमें यह घी छिपा दो। थोड़ी देर बाद नौकर वापस आया और बोला—साहब, आपने कहा था सो गड्ढा खोदकर घी तो छिपा दिया, अब इन खाली डिब्बों का क्या करूं?

दूसरी कहानी—

एक इंस्पेक्टर महोदय एक स्कूल में मुआइना करने गये। एक कक्षा में विद्यार्थी बहुत शोर मचा रहे थे। इंस्पेक्टर महोदय ने उस कक्षा के अध्यापक को पास बुलाया और कहा—क्या बात है, मास्टर जी? लगता है ये बच्चे आप से डरते नहीं हैं? तो मैं ही इनसे कौन-सा डरता हूं, मास्टर जी ने तपाक से उत्तर दिया।

तीसरी कहानी—

एक उच्च जिलाधिकारी शाम को क्लब में आए। अन्य अधिकारी मित्रों के बीच बैठते हुए उन्होंने अपनी जेब से अपनी फोटो निकाली और पूछा, जरा देखना यार! मेरी पत्नी कहती है कि फोटो में तुम बेवकूफ दिखायी देते हो। एक अधिकारी ने फोटो हाथ में लेकर गौर से देखा और बोला—नहीं साहब, फोटो में तो आप बिलकुल बेवकूफ दिखायी नहीं देते।

हमारी समझ के तल होते हैं। यहां सदगुरुओं ने जो कहा है उसका गुणगान हो रहा है। और तुम सोच रहे हो कि निंदा हो रही है। तुम अपनी कृपाण इत्यादि लेकर मत आ जाना, कि यहां सदगुरुओं की निंदा हो रही है! तुम जरा धीरज रखना! तुम कहीं चिल्ला मत देना—'वाह गुरुजी का खालसा,' 'वाह गुरुजी की फतह'!

मुझे सुनते वक्त बहुत धीरज और सहानुभूति की जरूरत है। अन्यथा नासमझी होगी। लाभ नहीं होगा, हानि हो जाएगी। तुम कुछ लेने आए हो, बिना लिये चले जाओगे, खाली हाथ चले जाओगे। और तुम्हीं जिम्मेवार होओगे। मैं तुम्हारी झोली पूरी भर देने को तैयार हूं। लेकिन कम से कम तुम्हें मेरे साथ थोड़ा धैर्य रखना होगा। तुम्हें मेरे रंग-ढंग समझने होंगे। तुम्हें मेरी भाषा से थोड़ी पहचान बनानी होगी।

एक साहित्यिक डॉक्टर अपने रोगी से बोला—रात्रि को निद्रादेवी आयी थी क्या? अपढ़ रोगी बोला—'के मालूम, साहब; मैं तो बीनै जानूं कोई नहीं। अर दूसरा, मैं तो सूत्यो था। क्या मालूम, साहब मैं तो जानता भी नहीं। और दूसरी बात, मैं तो सो रहा था। तो निद्रादेवी आयीं कि नहीं, क्या पता!

सदमे खाओ, जागो! चोट तुम्हें पहुंचाता हूं। लेकिन तुम अपनी चोट को यह मत समझ लेना कि मैंने वह चोट अतीत में हुए सदगुरुओं को पहुंचायी। तुम्हें चोट पहुंचा रहा हूं, क्योंकि तुम्हें जगाना है। तुम्हें चोट पहुंचाने के लिए कभी-कभी मुझे ऐसे सख्त शब्दों का भी उपयोग करना पड़ता है जो मैं स्वयं चाहूंगा कि न करता तो अच्छा था। लेकिन कोई और उपाय दिखायी नहीं पड़ता। जब तक मैं शास्त्रों के खिलाफ न बोलूं, तब तक तुम जागते नहीं। मुझे पीड़ा भी होती है। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं, वह शास्त्र है। लेकिन जब तक मैं शास्त्र के खिलाफ न बोलूं, तुम अपने शास्त्र को छाती से लगाए बैठे हो। मुझे शास्त्र के प्रति सम्मान है, इसलिए शास्त्र के खिलाफ भी बोलता हूं। शास्त्र तुमसे छूट जाए तो शास्त्र में जो छिपा है, वह प्रकट हो। कभी मंदिर-मस्जिद के खिलाफ बोलता हूं। चाहता हूं कि यह पृथ्वी मंदिर बन जाए, इसलिए, कि मस्जिद बन जाए, इसलिए। कभी तुमसे कहता हूं कि छोड़ दो सब यह हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन, बौद्धों की बकवास! क्योंकि तुम व्यर्थ में उलझ गये हो, सार्थक भूल ही गया है। यह बकवास छूट जाए तो तुम्हें सार्थक दिखायी पड़ जाए।

वह सार्थक वही है जो नानक ने कहा, कबीर ने कहा, बुद्ध ने कहा, महावीर ने कहा। वह दूसरा हो ही नहीं सकता। मैं लाख उपाय करूं, तो भी तुमसे कुछ ऐसा नहीं कह सकता जो पहले जाननेवालों ने नहीं कहा है। सब कहा जा चुका है। लेकिन अब तुम्हारे हाथ में अंगार नहीं है, राख है। और यह भी मैं जानता हूं कि राख अंगार से ही पैदा होती है। कभी अंगार रहा होगा। जब नानक ने अपनी बात वही, तो उसमें अंगार था। जिन्होंने झेली थी, वे अदभुत लोग थे। तुम वे नहीं हो—आज जो अपने को सिक्ख कहते हैं, तुम नहीं झेल पाते नानक को। जिन्होंने झेली थी वे अदभुत लोग थे। तुम जैसे लोग तो नानक के खिलाफ थे।

यह बड़े मजे की बात है।

जो आज अपने को सिक्ख कहते हैं, इस तरह के लोग तो नानक के खिलाफ थे। क्योंकि इस तरह के लोग तब गीता से बंधे थे, कुरान से बंधे थे। नानक ने जब पहली दफा अपनी बात कही, तब स्वभावतः तुम्हें गीता से भी छुड़ाया, कुरान से भी छुड़ाया। गीता के भी और कुरान के भी जो मोही थे, उनके मन को चोट पड़ी होगी। वैसी ही चोट जैसी तुम्हें यहां पड़ रही है। तिलमिला गये होंगे। नाराज हो गये होंगे। पूछा होगा तो क्या हमारे रामचंद्र जी गलत थे? कृष्णचंद्रजी गलत थे? तो कुरान गलत? लेकिन नानक वही कह रहे हैं जो कुरान में कहा गया है और जो गीता में कहा गया है। लेकिन अब नयी भाषा दे रहे हैं। पुरानी भाषा विकृत हो गयी—तुम्हारे हाथ में

बहुत दिन रह ली; तुम्हें तो नहीं बदल पायी, तुमने उसे बदल लिया। राख हो गयी। अब उस राख से छुटकारा चाहिए। फिर अंगारा!

अंगारा तो वही झेलता है जिसमें हिम्मत हो। जलने की हिम्मत हो। मिटने की हिम्मत हो। जिन्होंने झेला, वे पहले सिक्ख थे। 'सिक्ख' शब्द जानते हो शिष्य से आया है! वे झुके। उन्होंने स्वीकार किया। फिर पीछे जो सिक्ख हुए, वे तो सिर्फ पैदाइशी सिक्ख हैं। अब मजबूरी है। ऐसे अनेक सीक्खों को मैं जानता हूं, छुटकारा चाहते हैं केश से भी, दाढ़ी से भी! मगर अब क्या करें! सिक्ख घर में पैदा हुए हैं। तो खींचना पड़ता है, परंपरा है। लेकिन शिष्यत्व कहीं भी नहीं है अब, राख ही राख रह गयी है। अब अगर नानक फिर आएं, तो तुम उनसे राजी न हो सकोगे। और मैं तुमसे जो कह रहा हूं वह वही कह रहा हूं जो नानक फिर आएं तो तुमसे कहेंगे। अब की बार नानक आएं तो गुरुग्रंथ साहब से तुम्हें छुड़ाना होगा। तुम्हें फिर अड़चन होगी। यह सदा होता रहा। जीसस को यहूदियों ने मार डाला, क्योंकि जीसस ने जो बात कही वह वही थी जो मूसा ने कही थी। जीसस का मूसा से अपूर्व प्रेम था। तुम जानकर यह हैरान होओगे कि जीसस सूली से बच गये थे। कैसे बच गये यह तो लंबी कथा है, लेकिन इतना तय है कि सूली से बच गये थे। सूली से बचकर जीसस कहां गये? सूली से बचकर जीसस भारत की तरफ आए—कश्मीर आए। क्यों आए कश्मीर? सिर्फ इसलिए आए कि कश्मीर में मूसा की लाश गड़ी है। मूसा की देह कश्मीर में है। मूसा की तलाश में आए। उन्हीं की कब्र के पास कहीं सो जाने के मन से आए। मूसा के प्रति ऐसी चाहत थी। लेकिन जो जीवन भर किया, वह ऐसा था कि मूसा को माननेवालों ने सूली लगा दी थी। सूली में कुछ व्यवस्था बन गयी, जीसस बच सके। जिस आदमी ने सूली दी, जो गवर्नर जनरल था, वह चाहता नहीं था कि सूली दे—पांटियस पायलट जीसस से प्रभावित हो गया था। वह रोमन था, यहूदी नहीं था; उसे कोई विरोध भी नहीं था जीसस से। रोम का साम्राज्य था इजराइल पर, वह गवर्नर था रोम का, वह चाहता था जीसस को बचा ले, उसने बहुत कोशिश भी की। उसका पत्र पाया गया है जिसमें उसने जीसस की बड़ी प्रशंसा की है। लेकिन यहूदियों ने बड़ा जोर मारा। उन्होंने कहा कि अगर तुम नहीं जीसस को सूली दोगे तो हम सम्राट से प्रार्थना करेंगे कि गवर्नर को बदला जाए। इतनी झंझट में वह भी नहीं पड़ना चाहता था, अपना पद वह भी नहीं खोना चाहता था। और यहूदी एकमत से जीसस को सूली देना चाहते थे। इसलिए पांटियस पायलट ने इस ढंग से सूली दी कि जीसस बच जाएं।

उन दिनों जिस ढंग से सूली दी जाती थी, उसमें आदमी को मरने में कम से कम तीन दिन से सात दिन लगते थे। बड़ी पीड़ादायी थी। हाथों में कीले ठोंक दिये जाते थे, पैर में कीले ठोंक दिये जाते थे और लटका दिया एक तख्ते पर। आदमी एकदम नहीं मरता। इतनी जल्दी नहीं मर सकता। हाथ और पैर में कोई मरने की बात नहीं है। खून बहता, खून सूख जाता, बहना बंद हो जाता, आदमी लटका है—तीन से लेकर सात दिन मरने में लगते थे। पांटियस पायलट ने एक तरकीब की। उसने शुक्रवार की शाम को, जब दोपहर ढलती थी तब जीसस को सूली दी। यहूदियों का नियम है कि कोई भी व्यक्ति शनिवार को सूली पर न लटका रहे—उनका पवित्र दिन है। यह होशियारी की पांटियस पायलट ने, वह चाहता था जीसस को बचा लेना। उसने सूली ऐसे मौके पर दी कि सांझ के पहले, सूरज ढलने के पहले जीसस को सूली से उतार लेना पड़ा। बेहोश हालत में वे उतार लिये गये। वे मरे नहीं थे। फिर उन्हें एक गुफा में रख दिया गया और गुफा उनके एक बहुत महत्वपूर्ण शिष्य के जिम्मे सौंप दी गयी। मलहम-पट्टियां की गयीं, इलाज किया गया और जीसस सुबह होने के पहले वहां से भाग गये। लेकिन मन में उनके एक ही आशा थी—जाकर मूसा की कब्र के करीब विश्राम करना है!

इसके पहले मूसा भी कश्मीर आकर मरे। कश्मीर मरने लायक जगह है। पृथ्वी पर स्वर्ग है। जीसस उनकी तलाश में आए उसी रास्ते से। कश्मीरी मूलतः यहूदी हैं। कश्मीरियों का मूल उत्स यहूदी है। जीसस काफी वर्षों तक जिए कश्मीर में। उनकी कब्र भी कश्मीर में बनी।

जीसस ने वही कहा जो मूसा ने कहा था, लेकिन यहूदियों ने सूली लगा दी। अगर जीसस फिर लौट कर आएं, तो अब की बार ईसाई उन्हें सूली लगाएंगे।

सत्य सदा सूली पर। झूठ सदा सिंहासन पर। क्योंकि झूठ तुम्हारी फिकिर करता है; तुम्हें जो रुचे, वही कहता है; तुम्हें जो भाये, वही कहता है—तुम्हें चोट नहीं पहुंचाता। तुम्हें फुसलाता है, तुम्हें मलहम-पट्टी करता है; तुम्हें सांत्वना देता। झूठ तुम्हारी सेवा में रत होता है। चूंकि झूठ तुम्हारी सेवा में रत होता है, इसलिए तुम झूठ से बड़े राजी और प्रसन्न होते हो। सत्य तुम्हारी सेवा में रत नहीं है सत्य तो सत्य की सेवा में रत है। तुम्हें चोटें पहुंचती हैं।

आईना मुंह पे बुरा और भला कहता है

सच ये है, साफ जो होता है साफ कहता है

फिर चाहे नानक हों, चाहे कबीर, आईने हैं, दर्पण हैं। तुम अगर मेरे आईने में झांकोगे तो सोचकर, समझकर झांकना। आईने पर नाराज मत हो जाना, क्योंकि आईना सिर्फ तुम्हारी शक्ल बताएगा। अब अगर आईने में बंदर झांकेगा तो बंदर ही दिखायी पड़ेगा—कोई देवता दिखायी नहीं पड़ सकता, यह खयाल रखना। और बंदर को जब आईने में बंदर दिखायी पड़ेगा तो बंदर नाराज हो जाए, यह भी स्वाभाविक है। आईने को तोड़ने-फोड़ने को तैयार हो जाए, यह भी स्वाभाविक है। तुम्हें चोट लगती है मुझसे, चोट तुम्हें लगनी ही चाहिए। मगर चोट इसलिए ही है कि तुम जागो। चोट तुम्हें किसी तरह से अपमान करने के लिए नहीं है, चोट तुम्हारा सम्मान है। इसलिए फिर कहूं—मेरी बात को बहुत धीरज से, बहुत शांति से समझने की कोशिश करना, जल्दी निष्कर्ष मत लेना।

पहले मित्र ने कहा, मैं तो आपको पूर्ण मानता हूं और संत भी। लेकिन आपने कहा कि न मैं पूर्ण हूं, और न संत। इससे मुझे बहुत सदमा लगा; मैं रात भर सो भी न सका। जब मैंने कहा कि न मैं पूर्ण हूं, न संत, तुम्हें सोचना था, तुम्हें पुनर्विचार करना था, तुम्हारी अपनी धारणाएं एक तरफ रख देनी थीं। लेकिन तुम्हारी धारणाओं को चोट लगी। तुम अगर मानते हो कि मैं संत हूं और मैंने कहा मैं संत नहीं हूं, तो तुम्हारी धारणा को चोट लगी, तुम्हारे अहंकार को चोट लगी। तुम मेरे शिष्य इसीलिए हो गये हो कि तुम मुझे संत मानते थे और अब मैं ही कह रहा हूं कि मैं संत नहीं हूं तो बड़ी मुश्किल की बात हो गयी। कहां झंझट में तुम पड़ गये! तुम्हारे अहंकार को बड़ी तृप्ति मिल रही थी कि तुम किसी संत के शिष्य हो गये हो और अब वह तृप्ति कैसे मिलेगी?

तुम थोड़ा समझना। जब मैंने कहा है कि मैं संत नहीं हूं, तो जरूर कोई बात कही होगी जो संतत्व से भी ऊपर जाती है। कुछ बात कही होगी जो पूर्णत्व से भी ऊपर जाती है। मैं तुम्हें ऊपर की यात्रा पर ले चला हूं। तुम जितना समझने लगोगे, उतने ऊपर की बात कहूंगा। इसलिए मेरी बातों में तुम्हें विरोधाभास मिलेगा, क्योंकि मैं तुम्हारे साथ तुम्हें आगे बढ़ाने की कोशिश में लगा हूं। एक-एक सीढ़ी तुम चढ़ते हो, जो सीढ़ी तुम चढ़ जाते हो, वह मैं इनकार कर देता हूं, ताकि आगे की सीढ़ी पर बढ़ो। हर सीढ़ी तुमसे छीन लेनी है, ताकि तुम बढ़ते ही जाओ। और एक दिन उस अनंत में प्रवेश कर जाओ जहां कोई सीढ़ियां नहीं जहां केवल छलांग होती है।

तीसरा प्रश्नः संन्यास लेने में अहंकार ही सबसे बड़ी बाधा है। तो इसको कैसे हटाया जा सकता है?

अहंभाव जाता नहीं। हटाने से जाएगा भी नहीं। हटाएगा कौन; जो हटाता है वही तो अहंकार है। अगर हटा दिया किसी तरह, तो विनम्रता का अहंकार पैदा हो जाएगा और कुछ भी न होगा। एक अकड़ हो जाएगी कि मुझ-जैसा विनम्र कोई भी नहीं। देखो मैं कितना सीधा-सादा, कितना झुका हुआ, समर्पित! यह नया अहंकार होगा। तुम जो भी करोगे, उससे अहंकार बढ़ेगा—तुम्हारे करने से अहंकार घट ही नहीं सकता। अहंकार नयी शक्लें ले सकता है, नये रूप ले सकता है, नये वेश-परिधान ले सकता है, लेकिन अहंकार मिटेगा नहीं।

फिर क्या करना है?

अहंकार को समझो, मिटाने की जल्दी करो ही मत। जल्दी क्या है? अहंकार को समझो कि क्या है। जो आदमी मिटाने की कोशिश करता है, वह समझने की कोशिश से बच रहा है। और बिना समझे अहंकार जाता नहीं।

अहंकार मिटाया नहीं जाता, जब समझ का दीया जल जाता है तो अहंकार नहीं पाया जाता। जैसे दीया जला कि अंधेरा गया। अहंकार अंधेरा है।

तुम पूछते हो, संन्यास लेने में अहंकार सबसे बड़ी बाधा है। तो इसको हटाया कैसे जा सकता है?' हटाने का तो मतलब यह हुआ कि तुम मानते हो कि अहंकार कुछ है। अहंकार कुछ भी नहीं है, भ्रांति है। इसको हटा नहीं सकते। भ्रांति को कोई कैसे हटायेगा! समझो राह पर तुमने एक रस्सी पड़ी देखी और तुम्हें अंधेरे में दिखायी पड़ा कि सांप है; और किसी ने तुमसे कहा कि व्यर्थ भागे जा रहे हो, कहां भागे जा रहे हो, वहां कोई सांप-वांप नहीं है, मुझे भलीभांति पता है, मैंने दिन के उजाले में देखा है, रस्सी पड़ी है; सच तो यह है कि मैंने ही फेंकी है, तुम मेरी बात का भरोसा करो, वहां कोई सांप-वांप नहीं है। तुम कहते हो, अच्छा मान लिया कि सांप नहीं है, मगर अब सांप को हटाया कैसे जाए? तो मैं बंदूक लेने जा रहा हूं; कि तलवार उठाने जा रहा हूं। तो तुम समझे ही नहीं। अहंकार हटाया कैसे जाए इसका मतलब हुआ कि अहंकार है, कोई वास्तविक पदार्थ है अहंकार। अहंकार कोई वास्तविक पदार्थ नहीं है, भ्रांति है। तुमने अपने को ठीक से नहीं देखा, इसलिए जैसा तुम अपने को समझ रहे हो, वह भ्रांति है। जब ठीक से देखोगे, अचानक पाओगे—अहंकार नहीं है, आत्मा है; अहंकार नहीं है, परमात्मा है। इस जिंदगी को गौर से समझने की कोशिश करो। अहंकार ने किन बातों का सहारा लिया है, उनकी जरा परख करो

मैंने पूछा जो जिंदगी क्या है

हाथ से गिरके जाम टूट गया

तुमने जिंदगी का सहारा लिया अहंकार के लिए, और जिंदगी क्या है? रेत पर खींची गयी लकीरें। या रेत पर बनाये गये महल। या कागज की नाव। इस जिंदगी पर इतने इतरा रहे हो! जो अभी है और अभी नहीं हो जाएगी। इस जिंदगी का सहारा लेकर अहंकार को खड़ा कर रहे हो।

मैंने पूछा जो जिंदगी क्या है

हाथ से गिरके जाम टूट गया

यह तो टूट जानेवाली बात है। जिंदगी को ठीक से पहचानो, यह क्षणभंगुर है, पानी का बबूला है। फिर अकड़ कहां? अकड़ तभी तक है जब तक तुम सोचते हो— जिंदगी कुछ टिकनेवाली चीज है।

वही चार तिनके पयामे-कफस थे

जिन्हें हम समझते रहे आशियाना

चार तिनके!

वही चार तिनके पयामे-कफस थे

जिन्हें हम समझते रहे आशियाना

जिनको तुम घर समझ रहे हो, वही कब्र बन जाएगी। वे ही चार तिनके तुम्हारा कफन बन जाएंगे जिनको तुमने आशियाना समझा है। जरा जिंदगी को गौर से देखो। यहां सब तो मर रहा है। यहां सब तो धू-धू कर जल रहा है। यहां हर चीज तो मृत्यु के मुंह में चली जा रही है। हम सब तो मृत्यु के मुंह में सरक रहे हैं। कतार लगी है, लोग मृत्यु में डूबते जा रहे हैं, बिदा होते जा रहे हैं। इस जिंदगी में है क्या जिसके सहारे तुम अस्मिता को संग्रहीत करते हो? कहते हो मैं हूं?

यूं तसल्ली दे रहे हैं हम दिले-बीमार को

जिस तरह थामें कोई गिरती हुई दीवार को

दीवार तो अपने से गिर रही है, तुम पूछते हो—इसको गिराए कैसे? यह तो दीवार गिर ही रही है, तुम थामो भर मत, जरा दूर खड़े होकर देखो।

यूं तसल्ली दे रहे हैं हम दिले-बीमार को

जिस तरह थामें कोई गिरती हुई दीवार को

अहंकार की कोई वास्तविकता नहीं है। फिर अहंकार की क्या व्याख्या करें? अहंकार की व्याख्या इस भांति समझो। तुम बाहर देख रहे हो, तो अहंकार है; तुम भीतर देखोगे, अहंकार विदा हो जाएगा। ध्यान में लगो, अहंकार से लड़ने की फिकिर ही छोड़ो। अहंकार से लड़ना वैसे ही है जैसे कोई अंधेरे से लड़े और अंधेरे को धक्के दे और निकालना चाहे। नहीं, मैं कहता हूं—तुम दीया जलाओ, ध्यान में लगो, प्रार्थना में लगो, दीया जलाओ, भीतर मुड़ो; आंख बंद करो और भीतर देखना शुरू करो—क्या है? तुम एक बात पाओगे, अहंकार कभी न पाओगे। और जहां अहंकार नहीं है, वहीं परमात्मा है। परमात्मा तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है, अहंकार तुम्हारी भ्रांति है। जैसे सांप में रस्सी देख ली किसीने, या रस्सी में सांप देख लिया किसीने, ऐसे अहंकार भ्रांति है। कुछ न कुछ देख लिया है। जो है, उसक वैसा ही देख लेना, परमात्म-अनुभव है।

और निश्चित ही संन्यास लेने में अहंकार सबसे बड़ी बाधा है। लेकिन संन्यास अहंकार से मुक्त होने में सबसे बड़ा साधक है। ये दोनों बातें खयाल में रखो। इन दोनों में से चुनो। ये दोनों संभावनाएं खुलती है। अगर तुम संन्यास की तरफ झुकने लगे तो अहंकार से मुक्त होने लगोगे। अगर तुम अहंकार की तरफ झुकने लगे तो संन्यास लेना कठिन होता जाएगा। इसलिए मैं कहता हूं—अहंकार बाधा है। इसका यह मतलब नहीं है कि जब अहंकार तुम्हारा मिटेगा तब तुम संन्यास ले सकोगे। यह चुनाव है। तुम एक दोराहे पर खड़े हो, जहां एक राह अहंकार की तरफ जाती है, एक संन्यास की तरफ जाती है। एक पर ही चला जा सकता है। इसलिए मैं कहता हूं, अहंकार बाधा है। अगर अहंकार को चुना और अहंकार के रास्ते पर चले, तो संन्यासी न हो सकोगे। अगर संन्यास के रास्ते पर चले, तो अहंकारी न हो सकोगे।

लेकिन तुम्हारा मन बड़ा होशियार है। तुम संन्यास लेने से डरते भी होओगे, संन्यास लेने से बचना भी चाहते होओगे, तुम्हें मेरी बात में सहारा मिल गया, तुमने सुना कि अरे, अहंकार बाधा है; तब तो बात मिल गयी—कुंजी मिल गयी—अब संन्यास कैसे लें? जब तक अहंकार न मिटे तब तक संन्यास कैसे लेंगे? और अहंकार पहले मिटना चाहिए, फिर सोचेंगे संन्यास की बात। न मिटेगा अहंकार, न लेंगे संन्यास। झंझट मिटी। न रहा बांस न बजेगी बांसुरी।

तुम मेरी बात से अपने मतलब मत निकालो। जब मैंने कहा है कि अहंकार बाधा है, तो मैंने सिर्फ इतना ही कहा कि अगर तुम अहंकार चुनते हो तो संन्यास न चुन सकोगे। अगर संन्यास चुनते हो, तो फिर अहंकार न चुन सकोगे। ये दोनों विपरीत हैं। इनमें से एक को ही सम्हाल सकते हो, दोनों को साथ नहीं सम्हाल सकते। अब तुम्हारे हाथ में है, क्या चुनते हो? दोनों रास्ते खुले हैं। अगर सच में ही अहंकार से मुक्त होना चाहते हो, संन्यास चुनो। और अभी अहंकार है, यह भी सच है। लेकिन संन्यास को चुनते ही रूपांतरण की क्रिया शुरू हो जाएगी। बीमार हो, माना लेकिन औषधि न लोगे तो बीमारी मिटेगी कैसे?

और यह भी ध्यान रखना कि बीमारी औषधि के काम करने में बाधा डालती है। इसीलिए तो समय लगता है। कोई एकाध घूंट औषधि पी लेने से तो बीमारी नहीं मिट जाती, महीनों दवा लेनी पड़ती है तब धीरे-धीरे बीमारी जाती है। दवा में और बीमारी में संघर्ष होगा। मगर तुम कहोगे कि जब तक मैं बीमार हूं, दवा कैसे पीऊं? क्योंकि बीमारी दवा के काम में बाधा डालती है। मैं तो दवा तब पीऊंगा जब बीमारी मिट जाएगी। लेकिन तब दवा किसलिए पियोगे? फिर पागल हो गये हो! फिर और बीमार होना है! अहंकार मिट गया, फिर संन्यास का क्या करोगे? संन्यास औषधि है, अहंकार व्याधि है। और अहंकार अड़चनें डालेगा संन्यास की प्रक्रिया में। लेकिन औषधि को अगर लिया और लेते ही रहे, तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों, रोग हारेगा, निरोग तुम हो सकोगे, हिम्मत करो! अहंकार बाधा इतनी नहीं डाल रहा है जितनी तुम सोच रहे हो। क्योंकि जिन्होंने संन्यास लिया है, उनके लिए भी यही सवाल था। तुम्हारे लिए भी वही सवाल है। अहंकार को किनारे हटाओ और छलांग लो।

अहंकार से भी ज्यादा बड़ी बाधा भय है। तुम डरते होओगे—लोग क्या कहेंगे? लोग हंसेंगे, कहेंगे—पागल हो गये, सम्मोहित हो गये; भले-चंगे गये थे, यह क्या हो गया? सत्संग करने गये थे, यह क्या हो गया? तुम लोगों से डरे हुए हो। तुम जरा शांत बैठकर सोचना, कल्पना करना कि तुमने संन्यास ले लिया। गैरिक वस्त्र पहन कर, माला डालकर, पागल बनकर अपने गांव पहुंचे—जरा कल्पना करना—स्टेशन पर उतरे हो, स्टेशन मास्टर पूछता है—अरे, क्या हो गया! कुली हंसता है, कि भई ये कैसे कपड़े पहन लिये, ये तो कुलियों के कपड़े हैं! ये तो हम पहनते हैं। यह आपको क्या हो गया? तांगावाला नीचे से ऊपर तक देखेगा। आप ही हैं क्या—पूछेगा! अच्छे-भले गये थे दस दिन पहले, अब क्या हुआ? और मन कहने लगेगा—क्या करें, स्टेशन जाकर कपड़े बदल लें? क्योंकि अभी तो बस्ती की शुरुआत भी नहीं हुई है! अभी तो सारा गांव चौंकेगा! अभी तो भीड़ इकट्ठी हो जाएगी बाजार पहुंचते ही! लोग हजार तरह की सलाह देंगे—लोग सलाह तो मुफ्त देते हैं। जिन्हें कुछ स्वाद नहीं है संन्यास जैसी किसी बात का, कोई अनुभव नहीं है, वे भी कहेंगे कि यह क्या किया? जिनको तुम सलाह देते थे, वे तुम्हें सलाह देने आएंगे।

जरा आज बैठकर दो घड़ी इसकी पूरी कल्पना करना।

फिर पत्नी मिलेगी घर, वह एकदम छाती पीट कर रोने लगेगी। क्योंकि वह सोचेगी—हो गये संन्यासी! संन्यास की उसकी पुरानी धारणा है। संन्यासी हो गये मतलब स्त्री विधवा हो गयी। वह छाती पीटने लगेगी, वह चूड़ियां फोड़ने लगेगी, वह कहेगी—मामला खत्म हो गया! तुम लाख समझाओ कि यह और तरह का संन्यास है, वह कहेगी कि संन्यास भी कहीं तरह-तरह के हुए हैं! अगर तुम अपनी पत्नी को समझाने के लिए उसका हाथ हाथ में लोगे तो वह झिड़क देगी, वह कहेगी—यह क्या करते हो, संन्यासी होकर और स्त्री को छूते हो! अब घर के बाहर ही रहो। अब जो हो गया हो गया, अब जाओ। अब तुम्हारा कोई घर-द्वार नहीं है।

इसकी सारी कल्पना करना बैठ कर आज। उससे तुम्हें पता चल जाएगा कि असली अड़चन क्या हो रही है। उस कल्पना से ही तुम्हें सूत्र मिल जाएगा। सिर्फ भय है! अहंकार इत्यादि की आड़ में मत छिपो, सिर्फ भय है। सिर्फ एक साहस चाहिए, पागल होने का साहस, फिर तुम संन्यासी हो सकते हो। यह दीवानापन है। यह दीवानों का काम है। यह मस्तों का काम है। ये पियक्कड़ों का काम है। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है। यह होशियारों का काम नहीं है, चालबाजों का काम नहीं है।

हालांकि ज्यादा देर नहीं चलेगा यह उपद्रव। दो-चार दिन रहेगी, खबर रहेगी, लोग विचार करेंगे, बात करेंगे, पूछेंगे, फिर सब रास्ते पर आ जाते हैं। फिर अपनी सब दुनिया चलने लगती है जैसे चलती थी। कोई जिंदगी भर यह सवाल नहीं रहनेवाला है। एक सप्ताह ज्यादा से ज्यादा! क्योंकि गांव में दूसरी घटनाएं भी तो घटती हैं। फिर और घटनाएं घटती हैं, लोग उनमें उलझ जाते हैं। किसी की पत्नी भाग गयी, किसी के घर डाका पड़ गया, कोई चुनाव हार गया, फिर अब तुम्हारी ही बात लिए थोड़े बैठे रहेंगे! फिर दो-चार-आठ दिन बाद तुम्हें कोई फिक्र नहीं करेगा, कि ठीक है, बात समाप्त हो गयी। स्वीकार कर लिये जाओगे।

तुम खयाल रखना, तुम तो मर भी जाओगे तो भी लोग कितने दिन तुम्हारी बात करेंगे! तुम मर भी जाओगे तो कौन-सा काम कितनी देर अटकेगा? रो-धो कर लोग निपट लेते हैं, फिर सब शुरू हो जाता है। लोगों को जीना है आखिर। अब तुम मर गये, तुम्हारा तो छुटकारा हुआ, उनको तो जीना है आखिर। दुकान भी खुलेगी—दो-चार दिन बंद रहेगी, फिर खुलेगी, कोई और चलाएगा। पत्नी भी मुस्कुराएगी। कितने दिन रोएगी? आखिर उसे जीना है। रो-रोकर कोई कितने दिन जी सकता है? बच्चे भी फिर नाचेंगे, फिर खेलेंगे, फिर कूदेंगे। दुनिया चलती रहती है। तुम मर भी जाओ तो भी चलती रहती है।

संन्यास से कुछ अटक जानेवाला नहीं है। अगर, तुम्हारे जीवन में क्रांति आ जाएगी। संन्यास का अर्थ यही होता है: मरने के पहले मर जाना। और दुनिया में इस तरह जीने लगना जैसे तुम हो ही नहीं। अपूर्व आनंद है उस घड़ी का जब तुम दुनिया में ऐसे जीने लगते हो जैसे हो ही नहीं। दुनिया मैं होते हो और दुनिया तुम्हारे भीतर नहीं होती।

चौथा प्रश्नः आप शास्त्र-ज्ञान का विरोध क्यों करते हैं?

क्योंकि शास्त्र-ज्ञान ज्ञान नहीं है, इसलिए। ज्ञान तो स्वयं पाना होता है, उधार नहीं होता, इसलिए। तुम दूसरों के शब्दों में मत उलझे रह जाना इसलिए।

समझो, मेरे ही शब्द तुम्हारे लिए शास्त्र से ज्यादा नहीं। इनके भी मैं विरोध में हूं। ऐसा नहीं है कि मैं कृष्ण के शब्दों के विरोध में हूं, कि कबीर के शब्दों के विरोध में हूं, मैं अपने शब्दों के भी विरोध में हूं। तुम मेरे शब्दों को ही पकड़ कर मत बैठ जाना। अगर शब्दों को पकड़ कर बैठ गये, तो तुम भटक गये। शब्द कहां ले जाएंगे!

शब्द 'भोजन' से पेट तो नहीं भरता और शब्द 'पानी' से प्यास भी नहीं बुझती। और शब्द 'आग' से तुम आंच न ले सकोगे। शब्द तो शब्द हैं, संकेत हैं, प्रतीक हैं। यथार्थ उनमें नहीं है। उनसे इशारा लो और यथार्थ की खोज में लग जाओ। तो एक दिन जब तुम सत्य को जानोगे, तो ज्ञान होगा। ज्ञान तुम्हारे और सत्य के बीच घटनेवाला है, तुम्हारे और शास्त्र के बीच नहीं। तुम्हारे और शास्त्र के बीच जो घटता है वह स्मृति है, ज्ञान नहीं।

और वही भेद साफ समझ लेना। स्मृति ज्ञान नहीं है। शास्त्र कंठस्थ कर लिया तो तुम तोते हो गये। तुम ठीक-ठीक दोहराने लगे गीता, तो भी तुम कृष्ण तो नहीं हो जाओगे गीता दोहराने से। तुम यह तो नहीं कहोगे कि अब मैं ठीक वही तो बोल रहा हूं जो कृष्ण ने बोला था। अब फर्क क्या रहा? मात्रा का भी भेद नहीं है, ठीक-ठीक वही बोल रहा हूं जो कृष्ण ने बोला था, जैसा बोला था वैसा ही बोल रहा हूं। लेकिन क्या तुम इससे कृष्ण हो गये! ये शब्द स्मृति हैं। कृष्ण के भीतर से आ रहे थे, तुम्हारे भीतर से नहीं आ रहे हैं। तुम्हारे हृदय में इनकी कोई जड़ें नहीं है। कल मैं एक हास्य की कविता पढ़ रहा था—

बिना पंख मंडराना
प्रभुजी अजब कबूतरखाना
पढ़े सो पंडित लिखे सो खंडित
मंडित छापाखाना
कोरा कागज लिखि-लिखि बहि गये
गुनि-जन वेद पुराना
सोधो भवसागर तरि जाना
पोथी ऊपर पोथी बैठी
पोथिन नहीं ठिकाना
बांचनवाले बांचि न पायें
भौंचक जग बौराना
प्रभुजी मूरख मन पतियाना
बिना सूंड़ के गणपति डोलें,
डिम-डिम डिमिक सुजाना
गांठ-फांस बिन ज्ञान-गठरिया
अपनेहि हाथ बिकाना
साधो यह जग है बेगाना
आढ़त-बाढ़त देखि धुरंधर
फुदकि फुदकि इतराना
जगमग चोला डगमग खोला
पारि उतर कहं जाना
यह जग सागर माहिं बिलाना

बिना पंख मंडराना

प्रभुजी अजब कबूतरखाना

बिना पंख मंडराने की कोशिश चल रही है। अजब कबूतरखाना! पंख तुम्हारे भीतर ऊगने चाहिए। किसी और के पंखों से तुम कैसे उड़ोगे? किसी और की आंखों से तुम कैसे देखोगे? मेरी आंख तुम्हें उपलब्ध है, लेकिन फिर भी तुम मेरी आंख से तो न देख सकोगे। देखोगे तो अपनी ही आंख से। ज्यादा से ज्यादा मेरी आंख पर भरोसा कर सकते हो, लेकिन भरोसा थोड़े ही ज्ञान है। विश्वास कर सकते हो, लेकिन विश्वास थोड़े ही अनुभव है। प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी? प्रतीति कैसे होगी? स्वानुभव कैसे होगा? और स्वानुभव स्वतंत्रता है। इसीलिए शास्त्र-ज्ञान के विरोध में हूं।

लेकिन मैं जानता हूं कि दुनिया में बहुत हैं जो शास्त्र-ज्ञान के विरोध में नहीं हैं। पंडित हैं, पुरोहित हैं, वे कैसे शास्त्र-ज्ञान के विरोध में हो सकते हैं! वे खुद भी शास्त्र ही हैं। ज्ञान तो वहां भी नहीं है। उन्होंने भी पढ़ा है, वही तुम्हें समझा रहे हैं। उन्होंने भी जाना नहीं है। वे भी तुम्हारे जैसे अंधे हैं। अंधा अंधा ठेलिया दोनों कूप पड़ंत। संभल कर चलना जरा। उन अंधों को सिर्फ इसी बात की कोशिश है कि किस तरह अपनी किताब तुम्हें बेच दें। मैंने सुना, दिल्ली में एक आदमी बस से टकराकर गिर पड़ा। लोग उसे चारों ओर से घेर कर खड़े थे। इतने में उसे होश आया, उसने पूछा, भाई मैं कहा हूं? भीड़ में से तुरंत एक आदमी ने एक किताब उसकी ओर बढ़ायी और कहा—यह लीजिए 'दिल्ली गाइड', कीमत सिर्फ एक रुपया।

किताब बेचनेवाले लोग हैं। उनकी उत्सुकता इतनी ही है कि तुम उनकी किताब मान लो, कि तुम उनकी किताब के पीछे खड़े हो जाओ, कि तुम भी उनके शब्दों में भरोसा कर लो।

शब्दों के व्यवसाय से सावधान होना। शब्द सत्य की खोज में बड़ी बाधा बन जाते हैं। बनने तो चाहिए साधक, बन नहीं पाते साधक। तुम उन्हीं में बैठ जाते हो। तुम सोच लेते हो 'प्रेम' शब्द सीख लिया तो प्रेम आ गया। और 'प्रार्थना' शब्द सीख लिया तो प्रार्थना आ गयी। 'परमात्मा' शब्द को दोहराने लगे तोते की तरह तो परमात्मा मिल गया। ये सस्ती बात हो गयी, बड़ी सस्ती बात हो गयी। जीवन इतने सस्ते हाथ नहीं आता। जीवन के लिए कीमत चुकानी पड़ती है।

पांचवा प्रश्नः गरीब जान के हमको न तुम भुला देना

तुम्हें ने दर्द दिया है तुम्हीं दवा देना

दर्द में ही दवा है। दर्द के अतिरिक्त और कोई दवा नहीं है। इसीलिए तो मैंने तुमसे कहा कि विरह में मिलना छिपा है। आंसुओं में मुस्कुराहट छिपी है। अगर तुम हृदय पूर्वक रो सको, तो मिलन हो जाए। तुम दर्द ही नहीं उठने देते, वही तकलीफ है। वही अड़चन है। तुम दवा की तलाश में हो, और दवा दर्द की गहराई में है।

इसलिए तो तुमसे बार-बार कहता हूं—रोओ, पुकारो, चीखो, तड़फो—मछली की तरह तड़फो; जैसे मछली को किसी ने सागर से खींच कर किनारे पर पटक दिया हो। तुम ऐसी ही मछली हो जिसका सागर खो गया है और संसार की कड़ी धूप और गर्म रेत में तुम पड़े हो। तड़फो, दवा की तलाश मत करो। पुकारो, उछलो-कूदो। उसी उछल-कूद से सागर में वापस लौट जाने की व्यवस्था है। जिस दिन दर्द इतना गहरा हो जाए कि दर्द ही बचे और दर्दी न बचे, उसी दिन दवा हो जाती है। दर्द का हद से गुजर जाना है दवा हो जाना।

अंगूर में थी मय यह पानी की चंद बूंदें

जिस दिन से खिंच गयी है तलवार हो गयी।

आदमी और आदमी में इतना फर्क पड़ जाता है। एक साधारण संसारी है और एक भक्त। इतना फर्क पड़ जाता है जैसे, 'अंगूर में थी मय यह पानी की चंद बूंदें' जब तक अंगूर में रहती है शराब तो कुछ भी नहीं है, पानी की चंद बूंद; 'जिस दिन से खिंच गयी हैं तलवार हो गयीं' जब तक तुम छोटी-मोटी पीड़ाओं में पड़े हो, तुम पानी की चंद बूंद हो। धन के लिए रो रहे, यह भी कोई रोना है! आंसू जैसी कीमती चीज धन जैसी बेकीमत चीज के लिए गंवा

रहे हो! यह भी कोई रोना है। पत्नी मर गयी, पति मर गया और तुम रो रहे हो, यह भी कोई रोना है! क्योंकि जो मरना ही था, वह मर गया, वह मरने ही वाला था। यहां सब मरणधर्मा है। अमृत के लिए रोओ। मरणधर्मा के लिए रोकर तुम व्यर्थ ही अपना समय खराब कर रहे हो। अपनी आंखें गला रहे हो। मकान गिर गया और तुम रो रहे हो। यहां सब मकान गिर जाने हैं। यहां कोई मकान टिकनेवाला नहीं। यहां सब मकान खंडहर हो जानेवाले हैं। तुम किन चीजों के लिए रो रहे हो! आंसू जैसी बहुमूल्य चीज कहां गंवा रहे हो! इनसे तो हीरे खरीदे जा सकते हैं, तुम कंकड़-पत्थरों में गिरा रहे हो।

अंगूर में थी मय यह पानी की चंद बूंदें
जिस दिन से खिंच गयीं हैं तलवार हो गयीं।

जिस दिन से तुम्हारे आंसू परमात्मा की तलाश में निकल पड़ेंगे, तुम्हारे भीतर तलवार पैदा हो जाएगी। तुम पर धार आएगी। तुम्हारे भीतर प्रतिभा का आविर्भाव होगा। दर्द को दबाओ मत। देखते हो, दवा शब्द बड़ा अच्छा है, उसका मतलब ही होता है—'दबाना' दर्द को दबाओ मत, दवा की तलाश मत करो। दर्द को उभारो। दर्द को जगाओ। फिर इतनी जल्दी क्या है? जिस दिन पकेगा फल उसी दिन गिरेगा। इतना अधैर्य क्यों है?

तुझको पा लेने में यह बेताब कैफियत कहां,
जिंदगी वो है, जो तेरी जुस्तजू में कट जाए।

उसकी प्रार्थना में, उसकी तलाश में उसकी इंतजारी में, 'जिंदगी वो है जो तेरी जुस्तजु में कट जाए'। पाने की इतनी जल्दी मत करो। पाना तो हो जाएगा। विरह का भी आनंद है। यह दर्द भी मीठा है। इस दर्द की मिठास अभी लो। एक दफा मिलन हो गया, फिर यह दर्द की मिठास दुबारा नहीं संभव होगी। इस दर्द की मिठास को भोग लो। यह दर्द तुम्हें मिटाएगा यह दर्द तुम्हें गलाएगा। यह दर्द तुम्हें समाप्त कर देगा। उसी समाप्ति में तो दवा है, उसी समाप्ति में तो मिलन है।

मगर एक ही बात खयाल रखो। मिटने में बुराई नहीं है। अगर विराट के लिए मिट रहे हो तो सौभाग्य है। क्षुद्र के लिए मत मिटना।

तुझको बर्बाद तो होना था ही बहरहाल 'खुमार'
नाजकर नाज कि उसने तुझे बर्बाद किया।

परमात्मा के लिए अगर बर्बाद हो जाओ तो और सौभाग्य क्या होगा? इस दर्द को दबाओ मत। मेरा काम ही यही है कि तुम्हारा दर्द उकसाऊं, जगाऊं। तुम्हारे हृदय को छेडूं। तुम्हारे आंसुओं को गतिमान करूं। तुम्हारी प्यास को उकसाऊं, अग्नि बनाऊं। जिस दिन तुम्हारा दर्द परिपूर्णता पर पहुंचेगा, उसी घड़ी, ठीक उसी घड़ी, एक क्षण की भी फिर देर नहीं होती। विरह का पूर्ण हो जाना मिलन की शुरुआत है।

इसलिए जल्दी नहीं। अभी तो परमात्मा से कहो—

सुर न मधुर हो पाये, उर की वीणा को कुछ और कसो ना।
मैंने तो हर तार तुम्हारे
हाथों में, प्रिय, सौंप दिया है,
काल बतायेगा यह मैंने
गलत किया या ठीक किया है,
मेरा भाग समाप्त मगर
आरंभ तुम्हारा अब होता है,
सुर न मधुर हो पाये, उर की वीणा को कुछ और कसो ना।

अभी तो कहो—और दर्द चाहिए, दवा नहीं, और तड़पाओ।
सुर न मधुर हो पाये, उर की वीणा को कुछ और कसो ना।

जगती के जय-जयकारों की
किस दिन मुझको चाह रही है,
दुनिया के हंसने की मुझको
कौड़ी भर परवाह नहीं है,
लेकिन हर संकेत तुम्हारा
मुझे मरण जीवन, कुछ दोनों
से भी ऊपर, तुम तो मेरी त्रुटियों पर इस भांति हंसो ना।
सुर न मधुर हो पाये, उर की वीणा को कुछ और कसो ना।
तुम पर भी आरोप कि मेरी
झंकारो में आग नहीं है,
जिसका छू जग जाग न उठता
वह कुछ हो, अनुराग नहीं है,
तुमने मुझे छुआ, छेड़ा भी
और दूर के दूर रहे भी
उर के बीच बसे हो मेरे, सुर के भी तो बीच बसो ना।
सुर न मधुर हो पाये, उर की वीणा को कुछ और कसो ना।

सुर न मधुर हो पाये, उर की वीणा को कुछ और कसो ना। जल्दी नहीं, अधैर्य नहीं; अभी तो दर्द को और मांगो, अभी दवा नहीं। अभी तो दर्द के लिए झोली और फैलाओ। अभी तो दर्द को गिरने दो, अभी तो दर्द को बरसने दो मेघ बनकर—ऐसा कि बाढ़ आ जाए दर्द की।

सुर न मधुर हो पाये, उर की वीणा को कुछ और कसो ना।

अभी तो पुकारो कि मेरी वीणा को और कसो। अभी तो पुकारो—मुझे और जलाओ, दग्ध करो। इसी दग्धता में दवा है।

अंतिम प्रश्नः क्षमा करें, एक बात पूछना चाहता हूं जो बहुत दिनों से मेरे मन में हैं। आप सहित सभी महापुरुष जो जिंदा हैं, कभी इकट्ठे क्यों नहीं होते?

'जनता पार्टी' बनानी है! इकट्ठा किसलिए? सिंहों के नहिं लेहड़े, संत चलैं न जमात।

इकट्ठा होना भेड़ों की आदत है। और भेड़ें जरूर सोचती होंगी मन में कि मामला क्या है, हम तो कैसे घसर-पसर चलते हैं, एक-दूसरे में मिले-जुले चलते हैं, सिंहों की इस तरह की एकता, इस तरह का इकट्ठापन क्यों नहीं होता? जरूरत नहीं है। आदमी इकट्ठा भय के कारण होता है।

समझना थोड़ा।

जितना भयभीत होगा आदमी उतना भीड़ का हिस्सा बनना चाहता है। भीड़ में सुरक्षा मालूम होती है। इसीलिए तो तुम हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो। तुम कोई धर्म के लिए थोड़े ही हिंदू हो। हिंदू तुम सिर्फ इसलिए हो कि हिंदुओं की इतनी बड़ी भीड़, इसके साथ तुम सुरक्षित हो। बीस करोड़, चालीस करोड़, साठ करोड़, अस्सी करोड़—करोड़ों की भीड़ में तुम्हें बड़ा आश्वासन मिलता है। अब अस्सी करोड़ भेड़ें चल रही हैं, उसमें तुम भी हो, तुम्हें खतरा नहीं मालूम होता है। खतरा कहां? इतने संगी-साथी हैं। यही कमजोर दुनिया में राजनीति पैदा करवाते हैं। दुनिया ऐसी चाहिए जहां प्रत्येक व्यक्ति व्यक्ति हो। जहां न पार्टियां हों, न धर्म हो, न संगठन हों। दुनिया का वही दिन सौभाग्य का दिन होगा, जहां प्रत्येक व्यक्ति होगा। कोई हिंदू हो, क्यों मुसलमान हो, क्यों ईसाई हो? कोई क्यों किसी भीड़ का हिस्सा बने? स्वयं हो।

तुम पूछते हो—क्षमा करें, एक बात पूछता हूं जो बहुत दिनों से मेरे मन में है। आप सहित सभी महापुरुष जो जिंदा हैं, कभी इकट्ठे क्यों नहीं होते। पहली तो बात, कोई प्रयोजन नहीं है। इकट्ठा होकर करेंगे क्या! किसी से लड़ना-झगड़ना है—कि संगठन में शक्ति है! सब इकट्ठे हो जाएं तो किसी से लड़ना है। फिर अगर दो संत मिलें भी, तो क्या कहेंगे एक-दूसरे से? क्या बोलेंगे? क्या बतियाएंगे? मौन बैठे रहेंगे।

ऐसा कभी-कभी हुआ है। फरीद और कबीर का मिलना हो गया था। हुआ तो नहीं होता अगर फरीद और कबीर पर छोड़ गया होता। शिष्यों की वजह से हो गया। फरीद यात्रा पर था और कबीर के आश्रम के पास से यात्रा गुजर रही थी, फरीद के शिष्यों ने कहा कि बड़ा शुभ होगा; विश्राम तो कहीं करना ही पड़ेगा, रात आगे के गांव में ठहरेंगे, तो कबीर के आश्रम में ही क्यों न ठहर जाएं? कबीर के शिष्यों को खबर मिली, वे भी बड़े उत्सुक हो गये। उन्होंने कबीर से कहा कि फरीद निकलते हैं, हम निमंत्रण क्यों न करें? आप दोनों साथ बैठेंगे, हमारा बड़ा सौभाग्य होगा! कुछ फूल झड़ेंगे दोनों के बीच, हमें भी सुगंध मिलेगी। कबीर ने कहा—ठीक। और फरीद ने भी कहा—ठीक।

दो दिन साथ रहे, एक शब्द नहीं बोले। न कबीर बोले, न फरीद बोले। एक-दूसरे को देखा, मस्ती में बैठे रहे। शिष्य तो बड़े ऊबे। क्योंकि उनकी उत्सुकता तो इसमें थी कि दोनों बोलें। कुछ खंडन-मंडन हो, कुछ चर्चा चले, तो कुछ मजा आए। कुछ बात में से बात निकले, कुछ विवाद हो—कौन बड़ा संत, कौन छोटा, कौन पहुंचा, कौन नहीं पहुंचा; आज पक्का ही हो जाए! बड़ी उत्सुकता से बैठे रहे। मगर कब तक बैठे रहें! घड़ी, दो घड़ी, चार घड़ी, फिर ऊब होने लगी। फिर एक-दूसरे की तरफ देखने लगे कि यह क्या तमाशा हुआ? यह तो बड़ी बेचैनी की बात हो गयी। दो दिन के बाद बिदाई हो गयी। कबीर गांव बाहर आकर फरीद को छोड़ भी गये, गले भी मिले, बात न हुई सो न हुई। शब्द न बोला न बोला गया सो न बोला गया।

बिदा होते ही से दोनों के शिष्य अपने गुरुओं पर टूट पड़े। फरीद के शिष्यों ने पकड़ लिया कि हद हो गयी! हमें समझाते हैं आप रोज, आपकी वाणी कहां खो गयी? कबीर से कुछ तो कहना था! फरीद ने कहा—जो बोलता, वह अज्ञानी। दो दर्पण सामने रखे हों, तो क्या प्रतिबिंब बने? दो शून्य पास बैठे हों, तो कैसे शब्द निर्मित हो? जो बोलता सो अज्ञानी, फरीद ने कहा। तुम क्या चाहते हो मैं बोल कर अपनी फजीहत करवाता। कबीर के शिष्यों ने पूछा—आप चुप क्यों रहे? आपकी वाणी में तो ऐसा ओज, फरीद को भी तो थोड़ा रस देते! हम पर तो आप रोज लुटाते हैं। पर कबीर ने कहा कि फरीद को तो मिल ही गया है। जो मैं तुम पर लुटाता हूं, वह फरीद को मिल गया है। जहां मैं हूं वहां फरीद हैं। हम दोनों एक जगह खड़े हैं। देखकर हम भौंचक्के रह गये। हम दो ही नहीं हैं, हम एक ही हैं। इसलिए क्या कहना, किससे कहना? अब अकेला आदमी बैठ कर बात करे, कबीर ने कहा, तो पागल नहीं कहोगे उसको? कोई अकेला बैठा अपने से ही बातें कर रहा है—जवाब भी खुद ही दे, प्रश्न भी खुद ही उठाये, उसी को तो पागल कहते हैं। तो कबीर ने कहा—क्या तुम मुझे पागल बनवाना चाहते थे? हम दो थे नहीं।

इसलिए संतों को मिलने की कोई जरूरत नहीं उठती। संत अलग नहीं है कि मिलना पड़े। 'जनता पार्टी' असंतों से बनती है, संतों से नहीं बनती। फिर प्रत्येक संत की अपनी अनूठी आभा है, अपना व्यक्तित्व है, अपनी भाषा है, अपना ढंग है। और यह वैविध्य सुंदर है। जरा सोचो कि दुनिया में सिर्फ कृष्ण ही हुए होते, बुद्ध न हुए होते, तो दुनिया बड़ी दरिद्र होती। या बुद्ध ही हुए होते और मुहम्मद न हुए होते, तो दुनिया बड़ी दरिद्र होती। यह दुनिया में इतनी जो संपदा है अध्यात्म की यह इसीलिए है कि इतने भिन्न-भिन्न लोग हुए। एक ही सत्य को जानकर उन्होंने इतने भिन्न-भिन्न नाच नाचे, इतने भिन्न-भिन्न गीत गाए। उनमें अनूठापन है। इस अनूठेपन को मिलाया नहीं जा सकता। इसको मिलाने से दोनों का अनूठापन खराब हो जाएगा। इसलिए मिलन की कोई जरूरत नहीं है।

दुनिया में तीन तरह के मिलन संभव हैं। दो ज्ञानियों का मिलन, जैसा कबीर और फरीद का हुआ। यह कभी-कभी हो पाता है। और इसका कोई मतलब नहीं है। बुद्ध और महावीर अनेक बार एक ही गांव में ठहरे

और मिलन नहीं हुआ। एक बार तो एक ही धर्मशाला में ठहरे और मिलन नहीं हुआ। बौद्धों को भी थोड़ी बेचैनी होती है कि क्यों नहीं हुआ? जैनों को भी थोड़ी बेचैनी होती है—क्यों नहीं हुआ? जो अहंकारी जैन हैं वह सोचते हैं कि बुद्ध अज्ञानी थे इसलिए महावीर नहीं मिले। जो अहंकारी बौद्ध हैं वे सोचते हैं—क्या मिलना महावीर से, वह अज्ञानी थे। इसलिए बुद्ध उनसे नहीं मिले। लेकिन बुद्ध जिंदगी भर तो और तरह के हजारों अज्ञानियों से मिलते रहे, महावीर का अज्ञान ही ऐसा क्या विशिष्ट था? और महावीर भी अज्ञानियों से खूब मिलते रहे, नहीं तो इन जैनियों को कहां से मिलते? बुद्ध को ही क्यों छोड़ दिया? यह अहंकार की बात है। या कुछ सोचते हैं कि दोनों में इतना विरोध था, दुश्मनी थी, इसलिए नहीं मिले। वह बात भी मूढ़ता की है। भेद तो है, विरोध नहीं।

इसको खयाल में रखाना, भेद विरोध नहीं है। चंपा अपने ढंग से खिली है और चमेली अपने ढंग से—भेद तो है, विरोध नहीं है। भेद तो खूब है। अब कहां गुलाब का फूल और कहां गेंदे का फूल, भेद तो बहुत है। मगर दोनों फूल हैं। फूल यानी फूलें हैं, खिले हैं। दोनों नाच रहे हैं हवाओं में और दोनों ने सूरज से बातें की हैं और दोनों ने रंग बिखेरा है और दोनों ने अपनी गंध लुटा दी है। जो जिसके पास था, लूटा दिया है। दोनों रिक्त हाथ हैं। सब लुटा कर खड़े हैं। मस्ती में खड़े हैं। अपना गीत गा लिया गया है, अब परमतृप्ति है।

फूल के पास तुमने देखी हैं एक परम तृप्ति! इसीलिए तो फूल इतना आकर्षक मालूम होता है। आकर्षण क्या है? रंग ही नहीं है आकर्षण, क्योंकि रंग तो प्लास्टिक के फूल में भी होता है, कागज के फूल में भी होता है—शायद और भी अच्छा रंग हो सकता है; सुगंध ही नहीं है, क्योंकि कागज के फूल पर भी हम इत्र छिड़क दे सकते हैं। फिर क्या है फूल में जो आकर्षित करता है? फूल तृप्त है। अब की दफे जब फूल को देखो, तो खयाल करना। वृक्ष आनंदित है; मंजिल आ गयी, खिलाव हो गया, जो छिपा था प्रकट हो गया, अप्रकट प्रकट हो गया, अभिव्यंजना हो गयी आत्मा की, अपना गीत गा लिया, अब तृप्ति है, अब कोई भागदौड़ नहीं, आपाधापी नहीं। फूल में यह है राज। फिर फूल चाहे गेंदे का, चाहे गुलाब का, चाहे चमेली का, चाहे चंपा का; फिर चाहे फूल घास का और चाहे बड़ा कमल कोई भेद नहीं पड़ता। भेद बहुत है, विरोध जरा भी नहीं है।

तो जो सोचते हैं महावीर और बुद्ध में विरोध था, इसलिए नहीं मिले, वे गलत सोचते हैं। विरोध तो हो ही नहीं सकता। लेकिन भेद अज्ञानियों को बहुत बार विरोध जैसा मालूम पड़ता है। दोनों अपना-अपना गीत गा रहे हैं। दोनों के गीत की शैली इतनी भिन्न है, भाषा इतनी भिन्न है, ढंग इतना भिन्न है कि स्वभावतः लगता है कि दोनों में कुछ विरोध है। इसलिए नहीं मिले कि विरोध था, तो दोनों की निंदा हो जाएगी और दोनों अज्ञानी सिद्ध होंगे।

लेकिन फिर क्यों नहीं मिले?

मुझसे जैनों ने भी पूछा है, बौद्धों ने भी पूछा है कि फिर क्यों नहीं मिले? मेरा उत्तर कुछ और है। मेरा उत्तर यही है कि मिलने को वहां दो व्यक्ति थे ही नहीं। किससे मिलते? कौन मिलता? किससे मिलता? वहां एक ही था। मिलन के लिए दो चाहिए। उतनी दूरी भी नहीं थी। इसलिए नहीं मिले। नहीं मिलने का और कोई भी कारण नहीं। मिलने की कोई जरूरत भी नहीं थी। महावीर ने पा लिया था मिलना क्या था, बुद्ध ने पा लिया था मिलना क्या था, लेकिन ऐसा पागलपन चलता है। मिलाने की कोशिश शिष्यों में रहती है। सिर्फ जिज्ञासा, कुतूहल! पता नहीं क्या घटे! कुछ भी न घटेगा। दो शून्य पास आएंगे और एक शून्य हो जाएगा। जरा भी आवाज न होगी, सरसराहट भी न होगी, सन्नाटा हो जाएगा। दो समाधिस्थ पुरुष जब पास होंगे, तो कुछ घटना घटेगी। दो अकर्ता जब एक-दूसरे के पास होंगे तो कोई कृत्य नहीं घटेगा।

तो एक मिलन हो सकता है, दो ज्ञानियों का, जो की व्यर्थ है। दूसरा एक मिलन होता है दो अज्ञानियों का, वह भी व्यर्थ है। क्योंकि उसमें मारा-मारी काफी होती है, लेकिन परिणाम कुछ नहीं होता। दो अज्ञानी बातचीत तो बहुत करते हैं, मगर एक-दूसरे की सुनते ही नहीं। दो ज्ञानी बातचीत ही नहीं करते, पर एक-दूसरे की सुन लेते हैं। बिना बोले बात सुन ली जाती है। बिना बोले समझ ली जाती है। दो अज्ञानी बकवास तो बहुत करते हैं,

लेकिन कौन किसको सुन रहा है? अपनी-अपनी हांकते। यह दूसरा मिलन। ये दोनों मिलन बेकार हैं। दो अज्ञानियों का मिलन बेकार है, दो ज्ञानियों का मिलन बेकार है।
सार्थक तो मिलन है अज्ञानी और ज्ञानी का। क्योंकि वहां कुछ घट सकता है। वह तीसरा मिलन है। बस ये तीन ही तरह के मिलन हो सकते हैं। जब ज्ञानी और अज्ञानी का मिलन हाता हैं तो शिष्य और गुरु की घटना घटती है। तो कुछ घटता है। क्योंकि ज्ञानी की तरफ से धारा बहती है और अज्ञानी अगर लेने को तैयार हो उस धारा को आत्मसात करने को, तो रूपांतरित हो जाता है।
आज इतना ही।

नाम्नेति जैमिनिः सम्भवात् ।।६१।।
अत्राड;गप्रयोगाणां यथाकालसम्भवो गुहादिवत् ।।६२।।
ईश्वर तुष्टेरेकोऽपि बली ।। ६३।।
अबन्धोऽर्पणस्य मुखम् ।। ६४।।
ध्यानवनियमस्तु दृष्टसौकर्यात् ।।६५।।
सब जागरण उसका है
पांचवां प्रवचनः
भक्ति एक छलांग है। इसलिए साधन और साध्य का भेद केवल बौद्धिक भेद है। विचार के लिए अनिवार्य है। अनुभव में ऐसी कोई सीमा—साधन अलग, साध्य अलग, इस भांति नहीं है। बीज कब वृक्ष बनता है, कौन रेखा खींचेगा? गौणी-भक्ति कब पराभक्ति हो जाती है, कैसे निर्णय लोगे? कोई मापदंड नहीं है। गौणी-भक्ति पराभक्ति का ही प्रारंभ है। और पराभक्ति गौणी-भक्ति का ही अंत है। बच्चा कब जवान हो जाता है, जवान कब बूढ़ा हो जाता है? जीवन में रेखाएं नहीं। सब रेखाएं कल्पित हैं। जीवन अखंड है। रेखामुक्त है, सीमातीत है। भक्ति छलांग है।
लेकिन, विभाजन की सार्थकता जरूर है। अस्तित्व नहीं है, पर सार्थकता है। समझने के लिए उपयोगी है। शुरुआत तो गौणी-भक्ति से ही करनी होगी। शुरुआत तो टटोलने से ही करनी होगी। एक दिन टटोलते-टटोलते उससे मिलन हो जाता है। प्रारंभ तो विरह से ही होगा; लेकिन विरह मिलन से अलग नहीं है। अस्तित्वगत अनुभव में विरह मिलन की ही शुरुआत है। वे विपरीत नहीं हैं और न ही भिन्न हैं। विरह मिलन की शुरुआत है। और मिलन विरह का अंत है। वे जुड़े हैं। जैसे दो पंख पक्षी के जुड़े हैं, जैसे तुम्हारे दो पैर जुड़े हैं ऐसे वे संयुक्त हैं। लेकिन आचार्यों ने रेखाबद्ध विचार करने के लिए विभाजन किया है। विभाजन के साथ ही उपद्रव शुरू हो जाता है। जैसे ही विभाजन करोगे वैसे ही सवाल उठता है—कौन प्रमुख है? कौन प्रमुख नहीं है!
गौणी-भक्ति का अर्थ होता है—भजन, कीर्तन, नाम-स्मरण, प्रभु की महिमा का गुणगान, श्रवण, सत्संग। कुछ आचार्य कहते हैं, यही प्रमुख है। और उनकी बात में भी बल है। क्योंकि वे कहते हैं, इनके बिना, इन बीजों के बिना वृक्ष तो कभी होगा नहीं। इन बीजों के बिना वृक्ष पर फूल कभी खिलेंगे नहीं। तो जो आधार है वह प्रमुख है।
फिर आज के सूत्र उन दूसरे आचार्यों के संबंध में हैं।
नाम्नः इति जैमिनिः सम्भवात्।।
'आचार्य जैमिनी गौणी-भक्ति को प्रधान नहीं कहते, और-और स्थानों में उसका नाम मात्र ही लिया गया है'।
जैमिनी ने गौणी-भक्ति को प्रधान नहीं कहा। उस बात में भी सत्य है। क्योंकि बीज का कोई मूल्य अपने में क्या है? मूल्य यही है कि कभी फूल हो सकेंगे। मूल्य तो फूल का ही है। बीज को भी हम सम्हाल कर रखते हैं तो फल के लिए। बीज के लिए ही नहीं। इस जीवन को भी हम सम्हाल कर रखते हैं तो इसके भीतर परमात्मा की

तलाश के लिए। इसका अपने में कोई मूल्य नहीं है। इस जगत में मूल्य तो अंततः उसका ही है जिसके लिए हम साधन को सम्हालते हैं।

जैमिनी भी ठीक ही कहते हैं कि शिखर ही मूल्यवान है, आधार नहीं। शिखर के लिए ही तो आधार रखते हैं। आधार के लिए तो कोई आधार नहीं रखता। बुनियाद रखने के लिए तो कोई बुनियाद नहीं रखता। शिलान्यास करते हैं बुनियाद का, लेकिन लक्ष्य तो यही है कि मंदिर उठेगा, शिखर चढ़ेगा, धूप में चमकेंगे स्वर्ण कलश। उस शिखर के लिए ही शुरुआत है। तो जैमिनी भी ठीक ही कहते हैं। मगर दोनों में बड़ा विवाद हो गया है। शास्त्र विभाजित हो गये हैं। जहां शब्द आया, वहां विवाद आया। और जहां विभाजन आया, वहां द्वैत आया।

अगर तुम अविभाज्य को देख सको तो विभाजन में मत पड़ना। शांडिल्य की जीवन दृष्टि बड़ी समन्वयी है। शांडिल्य का स्वयं का सूत्र यही है कि दोनों जरूरी हैं, दोनों, अनिवार्य हैं, क्योंकि वस्तुतः दोनों अलग नहीं हैं। इसके पहले कि शांडिल्य के सूत्र में तुम प्रवेश करो, कुछ बातें खयाल में ले लेना।

जब तुम किसी यात्रा पर निकलते हो तो जो पहला कदम उठाते हो, पहले कदम से मंजिल नहीं मिल जाती। यह तो सच है। लेकिन लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन है—एक-एक कदम से ही तो हजारों मील का फासला तय होता है। तो जब तुमने पहला कदम उठाया तो मंजिल तो नहीं मिली, लेकिन क्या निश्चित रूप से कह सकते हो के मंजिल नहीं मिली! एक कदम तो मंजिल करीब आयी। एक कदम करीब आयी, इतनी तो मिली। फिर दूसरा कदम उठाओगे, उतनी और मिल जाएगी। और एक कदम ही तो एक बार में उठाया जा सकता है। एक-एक कदम, एक-एक कदम चल कर आदमी हजारों मील की यात्रा पूरी कर लेता है।

तो जो गौर से देखेगा वह कहेगा—पहले कदम में मंजिल मिली भी नहीं और मिली भी। दो में से किसी भी एक बात को पकड़ लेने में भ्रांति हो जाएगी। जो कहेगा पहले कदम में ही मंजिल मिल गयी, वह फिर दूसरा कदम क्यों उठाएगा? मंजिल मिल ही गयी, बात समाप्त हो गयी। वह वहीं बैठ जाएगा। ऐसे बहुत लोग बैठ गये हैं मंदिरों में, मस्जिदों में। वे कीर्तन ही कर रहे हैं। उससे आगे बात उठी ही नहीं। श्रवण ही चल रहा है! सत्संग ही हो रहा है! सदियों बीत गयीं, जनम-जनम बीत गये, नाम-स्मरण ही चल रहा है! माला ही फेरी जा रही है! मंत्र-पाठ ही किया जा रहा है! पूजा, प्रार्थना, यज्ञ-हवन, उसी में संलग्न हैं। पहले कदम पर बैठ गये इन लोगों को खयाल में रखना।

इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि पहले कदम पर मंजिल मिल गयी। लेकिन यह कहना भी उचित नहीं है कि पहले कदम पर मंजिल नहीं मिलती। क्योंकि अगर, पहले कदम पर मंजिल नहीं मिलती, तो आदमी पहला कदम उठाए क्यों? छोड़ दो पहला कदम। और पहला छोड़ दिया तो दूसरा कैसे उठेगा? पहले के बाद दूसरा है। इसलिए कुछ लोग हैं जिन्होंने पहला कदम भी नहीं उठाया है। वे कहते हैं, कदम उठाने से क्या होगा, कोई मंजिल तो मिलती नहीं। भजन-कीर्तन करने से क्या होगा? भगवान भजन-कीर्तन से मिलता है! उन्होंने भजन-कीर्तन भी नहीं किया। कुछ ने भजन-कीर्तन को सब मान कर वहीं डेरा डाल दिया है। ऐसे दो तरह के भ्रांति से भरे हुए लोग हैं।

शांडिल्य कहना चाहते है कि दोनों भ्रांतियों में मत पड़ना। दोनों सत्यों को समझने की कोशिश करना। दोनों सत्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पहला कदम अंश है मंजिल का। दूसरे कदम पर और अंश, तीसरे कदम पर और अंश, एक दिन कदम पूरे होते जाएंगे और मंजिल मिलती चली जाएगी। लेकिन हमारी जीवन-धारणाएं सदा ऐसी होती हैं। तुम जिस दिन से पैदा हुए उसी दिन से मरने भी लगे हो लेकिन यह तुम्हें खयाल में नहीं आता। जिस दिन बच्चा एक दिन का हो गया, उस दिन बच्चा एक दिन कम हो गया उसके जीवन का। बच्चे ने पहली सांस ली कि एक सांस कम हो गयी। सरकने लगा मौत की तरफ। तो जो जानते हैं वे कहेंगे कि जन्म में ही मृत्यु भी घट गयी। घटना शुरू हो गयी। पहली सांस अंतिम सांस भी है। हालांकि हम जानते हैं कि पहली सांस पहली सांस है, अंतिम कैसे हो सकती है? जीवन को जब तुम पहचानोगे तो ये गुत्थी तुम्हें हर जगह मिलेगी। पहला

अंतिम है; साधन में साध्य छिपा है। और फिर भी पहला अंतिम नहीं है और साधन साधन है, साध्य नहीं है। इन दोनों को जो एक साथ पकड़ लेता है, उसे भक्ति की छलांग दिखायी पड़नी शुरू होती है।

पश्चिम के बहुत बड़े विचारक ऍल्डुअस हक्सले ने एक किताब लिखी है—साधन-साध्य, 'एंड्स ऐंड मीन्स'। बहुत ऊहापोह किया है कि कौन मूल्यवान है—साधन कि साध्य? दोनों संयुक्त हैं, अलग नहीं हैं। इसलिए उनकी मूल्यवत्ता को अलग-अलग नहीं आंका जा सकता। कौन मूल्यवान हैं तुम्हारी देह में—पैर मूल्यवान हैं कि हाथ? आंखें मूल्यवान हैं कि कान? बायीं आंख मूल्यवान है कि दायीं आंख? मस्तिष्क मूल्यवान है कि हृदय? कौन मूल्यवान है? तुम एक संयुक्तता हो। तुम एक समग्रता हो। सभी उस समग्रता के अनिवार्य हिस्से हैं। न किसी का मूल्य कम है, न किसी का मूल्य ज्यादा है। उन सबके होने में ही तुम्हारा होना है। आंखें नहीं होंगी तो आंखों का काम पैर न कर सकेंगे। और पैर नहीं होंगे तो पैरों का काम आंख नहीं कर सकती।

यही भ्रांति तो इस देश के पूरे जीवन पर छा गयी। ब्राह्मणों को हमने कहा—वे सिर हैं; शूद्रों को हमने कहा—वे पैर हैं। बस, पैर हैं तो वे गौण हो गये। ब्राह्मण सिर हैं, वे मूल्यवान हो गये। लेकिन सिर को काट कर रख दो अलग, उसका क्या मूल्य रह जाता है! ब्राह्मण को अलग काट दिया, वह भी मुर्दा हो गया, शूद्र को अलग काट दिया, वह भी मुर्दा हो गया। यह दृष्टि गलत है। पैर और सिर, दोनों एक संयुक्त व्यक्तित्व के अंग हैं, दोनों अनिवार्य हैं। कोई कम नहीं, कोई ज्यादा नहीं।

शांडिल्य कहते हैं—

अत्र अड;गप्रयोगणां यथाकालसम्भवः गृहादिवत्।।

'इस स्थान पर गृह आदि के अंगस्थान की भांति यथाकाल में अंगप्रयोग मात्र समझना चाहिए।'

सब अंग हैं। साधन भी जिन्हें हम कहते हैं, वे अंग हैं, और साध्य भी जिसे हम कहते हैं वे भी अंग हैं। असली बात दोनों के पार है। या असली बात में दोनों समाहित है। असली बात दोनों के जोड़ से बनती है। तुम क्या हो? तुम्हारे हाथ, तुम्हारे पैर, तुम्हारी आंख, तुम्हारे कान, तुम्हारा स्वाद, तुम इन सबका जोड़ हो। और इनके जोड़ से थोड़ा अधिक भी।

इस भेद को भी खयाल में ले लेना। यही भेद है चेतन और अचेतन का।

चेतन अपने अंश का जोड़ मात्र नहीं होता। अपने अंशों के जोड़ से थोड़ा ज्यादा होता है। अचेतन अपने अंगों का जोड़ मात्र होता है। जोड़ से ज्यादा नहीं होता।

जैसे समझो, एक कार है। इसके सब अंग अलग कर लो, तो पीछे कोई कार की आत्मा नहीं बचती। फिर अंगों को जोड़ दो, कार फिर खड़ी हो जाती है। अंग अलग कर लो, कार बिखर जाती है। कार सिर्फ अपने अंगों का जोड़ है, उसके भीतर कोई आत्मा नहीं है। यंत्र है। यहीं फर्क है जीवन का और अंगों का। आदमी के हाथ, पैर, सिर अलग कर लो, फिर तुम लाख जोड़ो तो भी आदमी वापिस नहीं लौटता। कार तो वापिस लौट आती है, आदमी क्यों वापिस नहीं लौटता? अगर आदमी भी यंत्र मात्र होता, तो लौटना चाहिए था। यही प्रमाण है कि आदमी यंत्र नहीं है, आत्मा है। कुछ खो गया, जो अंगों के पार था, अंगों से ज्यादा था; अंगों के कारण यहां रुका था, ठहरा था; तुमने अंग अलग कर लिये, वह उड़ गया। अंग तो पिंजड़ा है, पक्षी उड़ गया। पक्षी अदृश्य है।

तुमने पिंजड़े के सब अंग अलग कर लिये, पक्षी मुक्त हो गया, उड़ गया। अब तुमने पिंजड़े के सब अंग जोड़ दिये, पिंजड़ा बन गया, लेकिन अब उसमें श्वास नहीं है, हृदय की धड़कन नहीं है, आंखें देखती नहीं है, कान सुनते नहीं हैं। आत्मा खो गयी।

चैतन्य का अर्थ यही होता है—अपने जोड़ों से ज्यादा। सारे अंगों के जोड़ से कुछ ज्यादा जो है, वही चैतन्य है। इसलिए तो आदमी में गणित नहीं आता। क्योंकि यह बात गणित के बाहर हो गयी। अगर दो और दो को जोड़ो, तो चार क्या है, दो और दो का जोड़ है। इससे ज्यादा नहीं है। गणित में आदमी नहीं आता। गणित में जीवन नहीं

आता। जीवन गणित के बाहर छुप जाता है। कौन-सी चीज बाहर छूट जाती है? वह समग्रता है, वह आत्मा है। व्यक्ति के भीतर उसको हम आत्मा कहते हैं, और जब हम सारी समष्टि के भीतर उसको अनुभव कर लेते हैं तो उसे परमात्मा कहते हैं।

शांडिल्य कहते हैं, अंगमात्र हैं। सब शांडिल्य की दृष्टि समन्यवग्राही है। शांडिल्य मात्र आचार्य नहीं हैं, शांडिल्य अनुभोक्ता हैं। शांडिल्य मात्र दार्शनिक नहीं हैं। दार्शनिक होते तो उसी विवाद में पड़े होते कि कौन प्रमुख, कौन गौण?

फिर एक और मजा है। गौणी-भक्ति अगर सच में ही केवल साधनमात्र है, तो तब भक्त पहुंच जाता तब समाप्त हो जानी चाहिए, लेकिन समाप्त नहीं होती। मीरा पाकर भी तो गाती रही। पाकर भी तो गुनगुनाती रही। पाकर भी तो नाचती रही। अगर यह उपकरण मात्र था, तो जब पहुंच गये तो समाप्त हो जाना चाहिए। अगर यह रास्ता ही था जिससे हम मंजिल पर पहुंचते हैं, तो जब मंजिल पर पहुंच गये तो रास्ता समाप्त हो गया। अब रास्ते पर चलने का क्या प्रयोजन? लेकिन भक्तों के जीवन को गौर से देखो। वे पहले भी गाते थे और पीछे भी गाते हैं। हालांकि गीत बदल गया। गीत के भीतर का अर्थ बदल गया। गीत के भीतर की भाव-भंगिमा बदल गयी। मगर गीत जारी है। पहले मीरा विरह में गाती थी; अभी मिलन नहीं हुआ था, तड़पती थी। अब मिलन हो गया, उसके आनंद में गाती है। मगर गीत तो जारी है। कीर्तन जारी है, भजन जारी है, सत्संग जारी है।

पहले गुरु के पास जाता है भक्त सत्य की खोज में, फिर गुरु के पास जाता है अनुग्रह के भाव में, लेकिन जाना जारी रहता है। जाना नहीं रुकता। अगर गुरु केवल साधनमात्र हो, तो जब मिल गया तो नमस्कार! बात समाप्त हो गयी। अब गुरु के पास जाकर क्या करना है? लेकिन भक्त गुरु के पास पीछे भी जाता है। जाने का अर्थ बदल गया। जाने के भीतर का सार बदल गया। पहले आता था खोजने। अब धन्यवाद देने आता है। पहले भी झुकता था कि शायद झुकने से मिलेगा, अब इसलिए झुकता है कि मिल गया है। तो अब न झुके कैसे चले? धन्यवाद में झुकता है, अनुग्रह में झुकता है।

जो बाहर से देखता है उसकी समझ में न आएगा। क्योंकि झुकना झुकना एक जैसा है। चाहे तुम मांगने के लिए झुको और चाहे धन्यवाद देने के लिए झुको, झुकने की प्रक्रिया बाहर से एक जैसी है। फिर तुम्हें याद दिला दूं, यही फर्क है जड़ और चेतन में। जड़ जैसा बाहर से होता है वैसे ही भीतर से होता है। चैतन्य को तुम बाहर से ही न समझ पाओगे। क्योंकि बाहर कई बार एक-सी घटना होती है और भीतर सब भेद होता है। दो भक्त अपने भगवान के लिए झुक रहे हैं, दो भक्त मंदिर में बैठे गीत गा रहे हैं, गीत भी एक हो सकता है, मूर्ति भी एक हो सकती है, उनका डोलना भी एक हो सकता है, फिर भी भेद हो। बाहर कोई भेद न हो, रत्ती भर भी भेद न हो, फिर हो सकता है, एक अभी खोज रहा है और एक को मिल गया है। एक अभी टटोल रहा है और एक भर गया है। एक अभी खाली है, इसलिए रो रहा है—उसकी आंख से भी आंसू बह रहे हैं—और एक भर गया है इसलिए रो रहा है—क्योंकि अब आंसुओं के अतिरिक्त और कैसे धन्यवाद दे? एक के आंसू दुख के आंसू हैं, एक के आंसू सुख के आंसू हैं, मगर आंसू तो आंसू हैं। अगर तुम आंसुओं को इकट्ठा कर लो दोनों के और चले जाओ 'केमिस्ट' की दुकान पर परीक्षा करवाने, तो दोनों एक-से मिलेंगे। दोनों में नमक का स्वाद होगा। दोनों में एक-सा रासायनिक द्रव्य होगा, कोई भेद न होगा।

बाहर से जो एक-जैसा रहे और फिर भी भीतर भेद पड़ जाए, वह चैतन्य का लक्षण है। इसलिए कृत्यों का मूल्य नहीं होता, कृत्य के पीछे जो खड़ा है उसका मूल्य होता है। तुम क्या करते हो, इसका मूल्य कम है, तुम क्या हो, इसका मूल्य ज्यादा है।

शांडिल्य ठीक कहते हैं—अंग की भांति हैं। न तो शिखर का कोई बड़ा मूल्य है और न बुनियाद का कोई बड़ा मूल्य है। दोनों ने मिलकर मंदिर बनाया है। मंदिर का मूल्य है। मंदिर न तो बिना शिखर के हो सकता है, न बिना

बुनियाद के हो सकता है। वह जो मंदिर की समग्रता है, उसका मूल्य है। इसलिए इस विवाद में मत पड़ना। मंदिर की समग्रता को खयाल में रखना।

फिर विद्वानों ने विचार उठाया है कि साधन तो कोई कई कहे हैं, उन सब साधनों में कौन प्रमुख के हैं? चलो यह भी छोड़ दो कि साधन और साध्य दोनों एक ही समान मूल्य हैं, तो सवाल उठता है कि साधन तो बहुत हैं, उनमें कौन प्रमुख है? भजन है, कीर्तन है, नाम-स्मरण है, श्रवण है, मनन है, ध्यान है, सत्संग है, सेवा है, पूजा है, अर्चना है, यज्ञ-हवन है, साधन तो बहुत है—बुद्धि सदा प्रश्न उठा लेती है और बुद्धि प्रश्न में ही उलझ जाती है—इनमें प्रमुख कौन है? हम क्या साधें? ये सभी तो नहीं साधने पड़ेंगे? ये सभी के साधने में तो बड़ी उलझन हो जाएगी। हम क्या करें? अनेक-अनेक साधनों में कौन-सा साधन प्रमुख है?

यह प्रश्न हमें सार्थक लगेगा। जो भी खोजने चला है, उसको भी लगेगा कि यह बात तो साफ होनी चाहिए कि कौन-से साधन से पहुंचना होता है! यह बात फिर गलत हो गयी। यह वैसे ही हो गया कि जैसे एक गांव में तुम बैलगाड़ी से भी जा सकते हो और हाथी पर भी जा सकते हो और घोड़े पर भी जा सकते हो और पैदल भी जा सकते हो, ट्रेन भी पकड़ सकते हो, हवाई जहाज से भी उड़ सकते हो। अब इनमें कौन प्रमुख है? सभी पहुंचा देते हैं। फिर अपनी-अपनी मौज! फिर किसी को घुड़सवारी पसंद है; लाख हवाई जहाज जल्दी पहुंचा देता हो लेकिन घुड़सवारी का अपना आनंद है। और किसी को पैदल चलने में रस है। पैदल चलने का आनंद अलग है। हवाई जहाज पहुंचा देगा, लेकिन पैदल चलने का मुकाबला नहीं हो सकता!

जिन पर्वतों पर कुछ वर्षों पहले तक बसें नहीं जाती थीं, तब तक उन तक पहुंचने का मजा और था। क्योंकि चलने में एक साधना होती थी। कैलाश की लोग यात्रा करते या बद्री-केदार की, तब चलना एक साधना थी। जीवन को दांव पर लगाना था। पुराने दिनों में तो तीर्थयात्री का मतलब होता था कि अब लौटेगा कि नहीं लौटेगा? तो घर के लोग बिदा ही दे देते थे—आखिरी बिदा। कि शायद लौटना हो ही नहीं। घर के लोग रो-धो लेते थे। तीर्थयात्रा पर कोई जा रहा है, मतलब वह करीब-करीब महायात्रा पर जा रहा है। अब क्या पता लौटेगा कि नहीं?—जंगल थे, पहाड़ थे, जंगली पशु थे; डाकू थे, हत्यारे थे; कहां गिर जाएगा, कहां खो जाएगा, इसकी खबर भी फिर मिलेगी या नहीं मिलेगी, यह भी पक्का नहीं था, बिदा दे देते थे, अंतिम बिदा दे देते थे। लौटना करीब-करीब असंभव होता था। कोई लौट आता, तो वह संयोग की बात थी। न लौटता, स्वीकार था। लेकिन तब का आनंद और था। उन सारे खतरों और चुनौतियों के बीच चलने में बात और थी। फिर पहुंचने का मजा भी और था।

अब तुम एक जगह से हवाई जहाज पर सवार हुए—हेलिकॉप्टर पर—और जाकर बद्री-केदार में तुमको उतार दिया। तुमने कोई मूल्य नहीं चुकाया। तुम बद्री-केदार तो पहुंच गये, लेकिन बिना मूल्य चुकाए पहुंच गये। अगर तुम्हें बद्री-केदार में वैसी शांति अनुभव न हो जैसी हजारों-हजारों साल में लोगों को हुई है, तो तुम कुछ चकित मत होना। तुमने उस शांति के लिए कुछ चुकाया नहीं। तुमने मुफ्त पा ली। तुम्हें राह में पड़ी हुई मिल गयी। तुम्हारा बद्री-केदार बंबई और कलकत्ते से भिन्न नहीं होगा। कितना हम चुकाते हैं, इस पर सब निर्भर करता है। साधन बहुत हैं। कोई न गौण हैं और न कोई प्रधान हैं। शांडिल्य ठीक सूत्र कहते हैं। वे कहते हैं—

ईश्वर तुष्टेः एकः अपि बली।।

'ईश्वर के प्रीत्यर्थ एकमात्र साधन भी बलवान है'। बस उसके प्रेम में किया जाए इतनी शर्त है। प्रेम में किया जाए तो कोई भी साधन पर्याप्त बलवान है। नाम स्मरण हो, प्रेम से हो—बस काफी है। लेकिन तुमने नाम-स्मरण तो किया होगा, लेकिन प्रेम से शायद ही किया हो। इसलिए काम नहीं आया। लोग नाम-स्मरण करते हैं भय से। भय से किया नाम-स्मरण खो जाएगा। वह नाम-स्मरण नहीं है। लोग मरते हैं तब नाम-स्मरण करते हैं। जबान लड़खड़ाने लगती है, श्वास खोने लगती है, तब नाम-स्मरण करते हैं। वह मौत के भय में कर रहे हैं, जीवन के आनंद में नहीं। लोग हारते हैं तब नाम-स्मरण करते हैं। जब जीतते हैं तब तो भूल जाते हैं। सुख में कौन याद

करता है प्रभु को? दुख में लोग याद करते हैं। दुख में याद करते हैं, इसीलिए याद प्रभु तक नहीं पहुंचती। तुम्हारी याद ही झूठी है। सुख में जो याद करे, उसकी याद पहुंच जाती है।

सूत्र है—'परमात्मा के प्रीत्यर्थ', प्रभु के प्रेम में। शांडिल्य की दृष्टि बड़ी साफ है। विवादी नहीं है, विचारक की नहीं है, चिंतक की नहीं है, अनुभोक्ता की है। अनुभव से उन्होंने जाना है कि जो भी साधन प्रेम से पकड़ लिया जाए, वही पहुंचा देता है। प्रेम पहुंचाता है, साधन तो केवल सहारा है। और जिसके साथ प्रेम जुड़ जाए, वही साधन अति बलवान हो जाता है।

अब समझो!

तुम यहां मुझे सुनने बैठे हो। यह सुनना भी हो सकता है, यह श्रवण भी हो सकता है। सुनने का मतलब इतना ही हुआ कि तुम्हारे पास कान है और कान खराब नहीं है। तो जो मैं कह रहा हूं वह तुम्हें सुनायी पड़ रहा है। श्रवण बड़ी और बात है! श्रवण का अर्थ है, कान से ही नहीं सुनी जा रही है बात, हृदय से सुनी जा रही है। हृदय में भी कान ऊग आएं हों। तुम कान ही कान हो गये हो। तुम्हारा रोआं-रोआं सुन रहा है। तुम्हारा कण-कण तरंगित हो रहा है। तुम्हारे भीतर रोमांच हो रहा है। तुम सुन ही नहीं रहे, पी रहे हो। सुन ही नहीं रहे, जी रहे हो। एक-एक शब्द जो कहा जा रहा है, वह तुम्हारे भीतर तृप्ति बन रहा है, तुम्हारे भीतर प्रसाद की तरह उतर रहा है। शब्द ही नहीं सुन रहे हो तुम मेरी उपस्थिति को भी पी रहे हो। तो यह श्रवण होगा। अगर मुझसे प्रेम है, तो यह संभव हो पाएगा।

अब यहां तुम देखते हो, बहुत-से विदेशी संन्यासी बैठे हैं, जो मेरी भाषा का एक शब्द नहीं समझ रहे हैं। मगर तुम यह मत सोचना कि वे श्रवण नहीं कर रहे हैं। श्रवण का भाषा से कोई संबंध नहीं है। यह भी हो सकता है कि तुम जो मेरी भाषा समझ रहे हो, श्रवण न कर रहे हो। और यह भी हो सकता है कि कोई जो मेरी भाषा नहीं सुन रहा है, श्रवण कर रहा हो।

श्रवण बड़ी और बात है, गहरी बात है। अगर मेरे प्रति प्रेम है, अगर तुम्हारी आंखें प्रेम से भरी मुझ पर टिकी हैं, तो घटना घट रही है, तो तुम्हारा हृदय मेरे हाथ डोल रहा है; तो तुम्हारी श्वास धीरे-धीरे मेरी श्वास की गति में बंध जाएगी। तो तुम धीरे-धीरे भूल जाओगे कि तुम पृथक हो। इधर बोलनेवाला अलग और सुननेवाला अलग, तो सुनना हो रहा है। जहां बोलनेवाला और सुननेवाला एक हो जाते हैं, जहां उनका तादात्म्य हो जाता है, जहां दोनों की भावदशा एक हो जाती है, उस घड़ी श्रवण शुरू होता है। जब कोई प्रेम से सुनता है तो श्रवण शुरू होता है। बस श्रवण हो जाए, प्रेम से भरा हो, पर्याप्त है। भजन हो जाए, प्रेम से भरा हो, पर्याप्त है।

याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।

सच है, दिन की रंग-रंगीली
दुनिया ने मुझको बहकाया,
सच, मैंने हर फूल-कली के
ऊपर अपने को डहकाया,
किंतु अंधेरा छा जाने पर
अपनी कंथा से तन-मन ढक,
याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा
सत्य-कल्पना में बसुधा पर
बहुत, युगों से बहस हुई है,
मगर तुम्हारी अधर-सुधा से
मेरी भीगी पलक हुई है,
कंड लगाया तुमने तब तो,

कंठस्थल से राग उमड़ता
इतने कुछ को सपना समझूं तो है मुझसा कौन अभागा।
याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।

सत्संग का अर्थ है, एक याद तुम्हारा पीछा करने लगे। गुरु पा लेने का अर्थ है, गुरु की सुगंध तुम्हें घेरे रहे, घेरे रहे। जागो तो घेरे रहे, सोओ तो घेरे रहे। दुनिया के हजार काम में उलझे रहो, तो भी तुम जानते हो कि भीतर किसी की याद तुम्हारे हृदय में बनी है। ऐसी याद हो, ऐसा प्रेम से भरा हुआ हृदय हो, तो फिर कोई भी साधन बलवान हो जाता है। साधन बलवान नहीं होते और साधन बलहीन नहीं होते। प्रेम जिस साधन में पड़ जाए, उसी में जीवन पड़ जाता है। और जिस साधन में प्रेम न हो, वही जीवनरहित हो जाता है।

इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है, कोई तुमसे कहता है कि कृष्ण को पूजो, मुझे देखते नहीं मैं कितना आल्हादित हो रहा हूं कृष्ण को पूज कर। तुम भी लोभ में पड़ते हो, सोचते हो शायद कृष्ण की पूजा से कुछ होता होगा। ध्यान रखना, कृष्ण का इसमें कुछ हाथ नहीं है, यह कृष्ण की पूजा करनेवाले में ही सब कुछ छिपा है—उसके प्रेम में छिपा है। उसने कृष्ण की मूर्ति पर अपने प्रेम को उंडेल दिया, अब वह मूर्ति जीवंत हो गयी। उसने इतना प्रेम उंडेल दिया है कि अब वह मूर्ति पत्थर नहीं रही, पाषाण नहीं रही, उसमें प्राण आ गये। उसने अपने हृदय की धड़कन मूर्ति में रख दी है। इसका नाम भाव-प्रतिष्ठा है। अब मूर्ति की तरफ से वह स्वयं श्वास लेता है। यह मूर्ति उसके लिए मूर्ति नहीं है, तुम्हारे लिए मूर्ति है, उसके लिए मूर्ति नहीं है, उसके लिए इतनी जीवंत है जितना वह स्वयं भी जीवंत नहीं है। उसने अपना सब निछावर कर दिया है।

और तब उसके सामने मूर्ति का एक अप्रतिम रूप प्रकट होता है। उसकी आंख के सामने मूर्ति साकार हो उठती है। वह कृष्ण से बोलता है, बतियाता है। प्रश्न करता, उत्तर भी लेता—और ध्यान रखना, सब उसके भीतर हो रहा है। प्रश्न भी उसका है, उत्तर भी उसका है। लेकिन फिर भी एक क्रांति घट रही है। प्रश्न उसके मन का है, उत्तर उसकी आत्मा से आ रहा है। और वही आत्मा कृष्ण है। लेकिन उसने अपनी आत्मा को एक सहारा दे दिया कृष्ण का। अब कृष्ण के बहाने उसकी आत्मा बोल सकती है। कृष्ण का आधार दे दिया। उसका केंद्र उसकी ही परिधि से बोल रहा है। परिधि का प्रश्न है, केंद्र का उत्तर है। लेकिन अब उत्तर पकड़ने की उसे सुविधा हो गयी है, क्योंकि वहां कृष्ण सामने हैं। कृष्ण के दर्पण से उत्तर झलककर लौटता है, तो उसे यह भय नहीं होता कि मेरा उत्तर है। उत्तर उसका ही है। लेकिन इतना आत्मविश्वास नहीं है कि अपने उत्तर को स्वयं खोज ले। एक बहाने की, एक निमित्त की जरूरत है।

जो सीधा उत्तर सकता है अपने भीतर, उसे भी उतर मिल जाएगा। लेकिन उसे सदा एक संदेह रहेगा कि पता नहीं मेरा उत्तर है, कहां तक ठीक हो? हो सकता है मेरे मन ने धोखा दिया हो। हो सकता है मैंने गढ़ लिया हो। हो सकता है जो मैं चाहता था वैसा मैंने सोच लिया हो; मेरी वासना इसके भीतर छिपी हो। ये सारी शंकाएं उठेंगी। तुम जानकर चकित होओगे, सदगुरु तुमसे वही कहता है, केवल वही कहता है, जो अगर तुम गौर से खोजते तो अपने भीतर ही पा लेते। सदगुरु दर्पण है। वह तुम्हारे अंतस्तम को झलका देता है। लेकिन उसमें जब झलक मिलती है, तुम्हें भरोसा आता है। तुम निश्‍चिंतता से चल सकते हो तुम्हें एक सुरक्षा मालूम होती है कि कोई मजबूत हाथ मुझे पकड़े हुए हैं, मैं अकेला नहीं हूं। यह निश्‍चिंतता यात्रा को गति दे देती है, प्राण दे देती है।

जहां भी तुम प्रीति को उंडेल दोगे, वहीं क्रांति घट जाती है। प्रेम क्रांति है। प्रेम पत्थर को रूपांतरित कर देता है। और जहां प्रेम नहीं है, वहां जीवंत व्यक्ति भी पत्थर होकर रह जाता है। तुमने देखा? जिस व्यक्ति से तुम्हारा प्रेम नहीं है, वह व्यक्ति है या नहीं है, तुम्हें कोई अंतर नहीं पड़ता। पड़ोस में कोई मर गया, तुम सुन भी लेते हो, कहते हो बुरा हुआ, मगर वह भी सब औपचारिक है। तुम्हारे भीतर कोई रेखा नहीं खिंचती। लेकिन तुमने अगर किसी पत्थर की मूर्ति को भी प्रेम किया और वह टूट गयी, तो तुम रोओगे। तुम्हारा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो

जाएगा। जीवन वहीं होता है जहां तुम्हारा प्रेम होता है। जीवन वहीं दिखायी पड़ता है जहां तुम प्रेम की आंख से देखते हो। नहीं तो कहीं जीवन दिखायी नहीं पड़ता।

शांडिल्य कहते हैं, प्रेम को जिस साधन में डाल दोगे—उन्होंने बड़ा रूपांतर कर दिया, साधनों के बीच विवाद नहीं रखा कि कौन साधन ठीक है। क्योंकि कोई कहता है कीर्तन ठीक है, कीर्तन से पहुंचना होगा। कोई कहता है, कीर्तन से क्या होगा? तुम्हारी ही आवाज, तुम्हीं गुनगुनाते रहोगे। नाचने से क्या होगा? तुम्हारे ही पैर, तुम्हीं नाचते रहोगे। अज्ञानी नाचेगा, नाचने से ज्ञानी कैसे हो जाएगा? अज्ञानी गीत गाएगा, गीत गाने से ज्ञानी कैसे हो जाएगा? अज्ञान से गीत जन्म रहा है, अज्ञान से नृत्य पैदा हो रहा है, वह अज्ञान को मिटाएगा कैसे? जो अज्ञान से पैदा होता है, वह अज्ञान को कैसे मिटाएगा? तो वह कहेगा, नहीं, कीर्तन से कुछ भी नहीं होगा, सत्संग करो। सदगुरु के पास बैठो। सत्संग प्रमुख है।

लेकिन तुम सदगुरु के पास बैठ सकते हो और फिर भी दूर रह सकते हो। सदगुरु को देखना कहां आसान है? आमने-सामने खड़े होकर भी तो चूकना हो जाता है। आंख में आंख डाल कर बुद्ध तुम्हें देखते हैं और चूकना हो जाता है। तुम नहीं देख पाते। तुम्हें भरोसा ही नहीं आता। तुम्हारी जिंदगी संदेहों से, शंकाओं से भरी है। तुम्हें हजार शंकाएं उठती हैं। तुम्हारी हजार धारणाएं बीच में बाधा बनती हैं। बुद्ध तुम्हारे पास से गुजर जाते हैं, तुम वैसे के वैसे रह जाते हो, तुम्हारे भीतर कुछ भी डोलता नहीं, तुम्हारे भीतर कोई रोमांच नहीं होता। तुम्हारे भीतर कोई खबर ही नहीं पड़ती। बुद्ध अदृश्य ही रहे आते हैं। तुम्हारे लिए दृश्य नहीं हो पाते। सत्संग से भी क्या होगा? सुनते रहो बैठे हुए! बार-बार सुनते-सुनते-सुनते-सुनते धीरे-धीरे सुनना भी भूल जाएगा। वही-वही सुनते-सुनते तुम सोचोगे अब सुनने में भी क्या सार है?

इसीलिए तो लोग मंदिरों में तुम्हें सोते हुए मिलेंगे। धर्मसभाओं में सोते मिलेंगे। उन्हें पहले ही से पता है कि वही रामकथा! उन्हें सब पता है कि आगे क्या होगा। उसमें कुछ फर्क भी नहीं होता। तुम थोड़ा सोचो, एक ही फिल्म अगर तुम्हें बार-बार देखनी पड़े, तुम कितने दिन तक जागे हुए देख सकोगे? एक बार दो बार, तीन बार, फिर तुम्हें सब पता है कि आगे क्या होनेवाला है। जिस उपन्यास को तुमने एक बार पढ़ लिया उसे कितनी बार पढ़ सकोगे? लोग रामकथा को बार-बार पढ़ रहे हैं। क्या पढ़ रहे होंगे? अब पढ़ नहीं रहे हैं, अब सिर्फ अंधे की तरह, बहरे की तरह दोहराए चले जा रहे हैं। अब उनके भीतर कोई अर्थ पैदा नहीं होता। अब उनके भीतर कोई तरंग पैदा नहीं होती। एक जड़ स्थिति हो गयी है। लोगों को शास्त्र कंठस्थ हो गये हैं। ऐसे ही सदगुरु के पास बैठ-बैठ कर उसकी बातें कंठस्थ हो जाएंगी। फिर तुम सुनते भी रहोगे और सुनोगे भी नहीं और सोए भी रहोगे। सत्संग से क्या होगा?

तो दूसरी तरफ लोग हैं जो कहते हैं, सत्संग से कुछ भी नहीं होगा। पूजा करो आरती उतारो, अर्चना के थाल सजाओ; कुछ करो, सुनने से क्या होगा? इनमें विवाद चलता रहा है।

लेकिन शांडिल्य ने ठीक किया, उस विवाद को एक झटके में तोड़ दिया। यही ज्ञानी की कला है। एक झटके में विवाद को तोड़ दिया! सारा रूप बदल दिया। नया अर्थ दे दिया। अर्थ यह दिया—

ईश्वर तुष्टेः एकः अपि बली।।

'ईश्वर के प्रीत्यर्थ एकमात्र साधन ही बलवान है'।

उसके प्रेम की असली बात है।

तू मेरी कैदे-मुहब्बत से निकल सकता नहीं,
तेरी सूरत दिल में है, तेरा तसव्वुर दिल में है।
मुझसे तुम दामन बचाकर जाओगे आखिर कहां,
याद आ सकता हूं मैं, दिल में समा सकता हूं मैं।

और ध्यान रखना, जितना तुम परमात्मा को अपने दिल में समा लोगे, उतने ही तुम परमात्मा के दिल में समा जाते हो। एक अनुपात है। इस अनुपात में कभी भेद नहीं पड़ता। तुम जितनी उसकी याद करते हो उतनी ही दूसरी तरफ से भी याद शुरू हो जाती है। परमात्मा तो तुम जो करते हो उसी का प्रतिफलन है। तुम उसकी याद करते हो, तो उस तरफ से ध्वनियां उठने लगती हैं। यह अस्तित्व प्रतिपल तुम जो उसके साथ करते हो वही दोहरा देता है। अगर तुम गालियां बकते हो, तो गालियां तुम पर लौट कर गिर जाती हैं। अगर तुम प्रेम फैलाते हो, तो प्रेम तुम पर बरस जाता है। ध्यान रखना जो तुम्हें मिलता है, खोजबीन करोगे तो तुम पाओगे तुमने इस जगत को वही दिया था। वही तुम्हें मिलता है। इसे सिद्धांत की भाषा में कहो तो—कर्म का सिद्धांत।

ऐसा ही नहीं है कि परमात्मा वहां बैठा है, जो हिसाब लगा रहा है कि तुमने कितनी चोरी की और कितना 'ब्लैक मार्केट' किया कितनी रिश्वत खायी, कितनी बेईमानी की? इस सब का हिसाब कौन रखेगा? नहीं, इस हिसाब की जरूरत भी नहीं है। तुम जो करते हो, जगत अनिवार्यरूपेण उसे तुम्हें पर लौटा देता है। तुम्हारा कृत्य तुम्हारा भविष्य हो जाता है। जिसने आनंद के भाव से भरकर परमात्मा को स्मरण किया है, उसके ऊपर परमात्मा सब तरफ से बरसने लगेगा।

तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाए फिर तुम्हारी याद।
स्वर्ण-चांदी के कटोरों
में भरा था झलमलाता नीर,
मैं झुका सहसा पिपासाकुल
मगर फिर हो गया गंभीर—
भेद पानी और पानी,
प्यास में औ' प्यास में भी भेद,
तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाए फिर तुम्हारी याद।
पंखुरी पर ओस की दो
बूंद में भी डूबता है कौन,
उस घड़ी की ही प्रतीक्षा
मैं कभी गाता, कभी हूं मौन,
जब अमृत सागर सुनेगा,
सिर धुनेगा फेन बन साकार
औ' करेंगे सिंधु हाला औ' हलाहल के प्रणय-संवाद।
तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाए फिर तुम्हारी याद।
भक्त कहता है, दो ही उपाय हैं अब—
तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाए फिर तुम्हारी याद।

या तो बुझा दो मेरी प्यास को या ऐसा जला दो मेरी प्यास को कि मैं उसी में राख हो जाऊं। मगर ये दो बातें दो नहीं हैं। जब तुम अपनी प्यास को इतना जगा लोगे कि उसी में राख हो जाओ, तभी प्यास बुझती है। प्यास का पूरा हो जाना प्यास का बुझ जाना है। दर्द का पूरा हो जाना दर्द का दवा हो जाना है। जब तक प्यास अधूरी है तभी तक भटकाव है। ईश्वर के प्रति प्रेम ऐसा हो कि तुम मिटने को तैयार हो, तो इसी घड़ी मिलन हो सकता है। कीमत तो चुकानी ही पड़ेगी।

लोग सस्ते में चाहते हैं—लोग पूछते हैं—ईश्वर कहां है, हम ईश्वर को देखना चाहते हैं। मैं उनसे पूछता हूं, तुम ईश्वर को पाने के लिए चुकाना क्या चाहते हो? जब भी मुझसे कोई आकर पूछता है, ईश्वर को दिखा दें, तो मैं कहता हूं ईश्वर तो दिख जाएगा, कोई बड़ी बात नहीं है, वह तो सरल बात है, असली सवाल यह है—तुम

चुकाने को क्या तैयार हो? कहते हैं चुकाना, चुकाना क्या है, ईश्वर को देखना भर है। चुकाने की जरा तैयारी नहीं है। अगर उनसे कहो कि एक घड़ी बैठ कर गीत गुनगुना लिया करें रोज उसकी याद में, वह कहते हैं यह न हो सकेगा, समय कहां है? उनसे कहो कि नाच लिया करो कभी, वह कहेंगे—लोग हंसेंगे। पत्नी-बाल-बच्चे हैं, प्रतिष्ठा का सवाल है। उनसे कहो कुछ भी न किया करो, एक घंटा बैठ जाया करो आंख बंद करके, भूल जाया करो बाहर के जगत को थोड़ी देर के लिए, वे कहते हैं—यह कैसे हो सकता है। विचार कहीं बंद हुए हैं? विचार बंद हो ही नहीं सकते हैं! वे मानकर ही बैठे हैं।

कचरा विचारों को भी छोड़ने की तैयारी नहीं है जिनमें तुम्हारा कुछ जाएगा नहीं। जिनके होने से तुम्हें कुछ मिला भी नहीं है। सिनेमा जाने को उसके पास समय है, होटल में बैठने को उनके पास समय है, ताश खेलने को उनके पास समय हैं, व्यर्थ की बकवास करने को उनके पास समय है, अखबार पढ़ने को उनके पास समय है, लेकिन अगर ध्यान की बात करो तत्क्षण उनका उत्तर आता है—समय कहां है? रोटी-रोजी कमाएं कि ध्यान करें? यह बात वे नहीं पूछते कि सिनेमा जाते समय समय कहां है। तुम देखते हो, सिनेमा के सामने कतार लगी रहती है—उन्हें लोगों की जिनसे ध्यान का कहो तो वे कहते हैं समय नहीं है।

ठीक बात खयाल में ले लेना, परमात्मा को पाने के लिए हम कुछ चुकाने को राजी नहीं हैं। एक भी घड़ी शांत बैठने के लिए राजी हैं। हम चाहते हैं मुक्त मिलना चाहिए। इसलिए इस सदी में परमात्मा खो गया है। परमात्मा तो उतना ही है जितना पहले था, लेकिन दाम चुकानेवाले लोग खो गये हैं, खरीददार नहीं रहे। मुफ्त चाहते हैं। परमात्मा खुद उनके द्वार पर आए, उनके चरण दबाए और कहे कि मुझे देख लो। तो भी शायद वे कहेंगे कि समय कहां है, फिर आना, अभी और हजार काम पड़े हैं। मेरे देखे परमात्मा को केवल वे ही लोग देख पाते हैं जो चुकाने की हिम्मत रखते हैं।

'अबंधः अर्पणस्य मुखम्।।

अर्पण से बंधन मुक्त हो जाता हैं।'

बड़े बहुमूल्य सूत्र हैं। शांडिल्य कह रहे हैं कि अगर तुम प्रेम में अर्पित हो जाओ, फिर सारे कर्मों के बंधन समाप्त हो जाते हैं। तुम एक बार भी अपने को समर्पित कर दो, कह दो कि मैं तेरा हूं; अब तू जो करवाएगा, करूंगा, तू जो नहीं करवाएगा, नहीं करूंगा; बूरा तेरा, भला तेरा; साधुता तेरी, असाधुता तेरी; अब मैं तेरा हूं; अब मैं 'नहीं' कहना छोड़ता हूं; अब मैं सिर्फ 'हां' ही कहूंगा; तू आज्ञा देना और मैं 'हां' कहूंगा; तू पूरब ले जाए तो पूरब, तू पश्चिम ले जाए तो पश्चिम; तू जहां ले जाए, जाऊंगा; तू नर्क भेज दे तो नर्क जाऊंगा, शिकायत नहीं होगी; अब मैं तेरे हाथों में अपने को सौंपता हूं; ऐसा जिसने कहा, ऐसा जिसने भीतर से किया, उसके जीवन में रूपांतरण हो जाता है।

क्या रूपांतरण हो जाता है?

कर्ताभाव समाप्त हो जाता है तुम कर्ता नहीं रहे, परमात्मा कर्ता हो गया। तुम कौन रहे अब? तुम एक कठपुतली हो गये।

भक्ति का सारा सार कठपुतली के नाच में है। देखी, कठपुतली का नाच देखा? भीतर छिपा रहता है उनको नचानेवाला। उसके हाथ में कठपूतलियों के धागे रहते हैं। कठपुतलियां रोती हैं, गाती हैं, नाचती हैं, लड़ती-झगड़तीं, प्रेम भी करतीं, सब चलता है, लेकिन कठपुतली का अपना कुछ भी नहीं। कठपुतली किसी के इशारे पर नाच रही है। भक्ति का सार-सूत्र इतना है कि कठपुतली हो जाओ। यह कहना छोड़ दो कि मैं करूंगा, कि मेरे किये कुछ हो सकता है। जहां मैं गया, कर्ताभाव गया, वहीं कर्म भी गया। फिर परमात्मा सम्हाल लेता है। उस क्षण से ही जीवन में प्रसाद की वर्षा शुरू हो जाती है। दुनिया ऐसी ही चलती है, तुम जो करते हो वही काम जारी रहता है, मगर फिर भी सब बदल जाता है। अब तुम कर्ता नहीं रह जाते। सफलता मिलती है तो तुम

यह नहीं कहते कि मैं सफल हुआ; देखो, मैं कुछ खास। असफलता मिलती है तो तुम रोते नहीं, तुम यह नहीं कहते कि मैं असफल हो गया, आत्महत्या कर लूंगा। अब सुख और दुख में भेद नहीं रह जाता।

सुख-दुख में भेद क्या है?

जब तक तुम कर्ता हो तब तक भेद है। सफलता-असफलता में भेद क्या है? जब तक मैं करनेवाला हूं तब तक भेद है। जब मैं करनेवाला नहीं, तो सफलता हो तो उसकी, असफलता हो तो उसकी। कठपुतली को जिता दे कि हरा दे, कठपुतली को क्या देना-देना है? गिरा दे कि उठा दे, राजसिंहासन पर बैठा दे कि सूली पर लटका दे, कठपुतली को क्या लेना-देना है?

'अबंधः अर्पणस्य मुखम्।।

अर्पण से बंधन-मुक्ति हो जाती हैं।'

अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।

पंख उगे थे मेरे जिस दिन

तुमने कंधे सहलाए थे,

जिस-जिस दिशि-पथ पर मैं विहरा

एक तुम्हारे बतलाए थे,

विचरण को सौ ठौर, बसेरे

को केवल गलबांह तुम्हारी

अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।

नाम तुम्हारा ले लूं, मेरे

स्वप्नों की नामावलि पूरी,

तुम जिससे संबद्ध नहीं वह

काम अधूरा, बात अधूरी

तुम जिसमें डोले वह जीवन,

तुम जिसमें बोले वह वाणी,

मुर्दा-मूक नहीं तो मेरे सब अरमान, सभी अभिलाषा।

अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।

तुमसे क्या पाने को तरसा

करता हूं कैसे बतलाऊं,

तुमको क्या देने को आकुल

रहता हूं कैसे जतलाऊं,

यह चमड़े की जीभ पकड़ कब

पाती है मेरे भावों को,

इन गीतों में पंगु स्वर्ग में नर्तन करनेवाली भाषा।

अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा और पिपासा।

सब अर्पित-आशा, निराशा, पिपासा। अब अर्पित—अंधेरा, प्रकाश, सुख-दुख आकांक्षाएं, विषाद, सब अर्पित। अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा। कुछ बचाना मत। यह मत सोचना कि अच्छा-अच्छा अर्पित करें। वह भी अहंकार है। साधुता अर्पित करें। वह भी अहंकार है। फूल ही फूल मत ले जाना प्रभु के चरणों में अन्यथा चुक हो जाएगी। तुम्हारे कांटों का क्या होगा? लोग फूल ही फूल चढ़ाते हैं।

मैं एक गांव में बहुत दिन तक रहा। मैंने एक बड़ा बगीचा लगा रखा था। मेरे पड़ोस के एक वृद्ध सज्जन रोज सुबह आ जाते थे—थोड़े फूल चाहिए, मंदिर जा रहा हूं। उनको मैंने कई बार फूल तोड़ते देखा। एक दिन मैंने उनसे कहा, कभी कांटे भी ले जाओ। उन्होंने कहा, आप कहते क्या है? कांटे! किस शास्त्र में लिखा है कांटे चढ़ाने की बात।

मैंने उनसे कहा, ऐसा कोई शास्त्र ही नहीं है जिसमें यह न लिखा हो। इशारे हैं शास्त्रों में, सीधा-सीधा शायद न भी लिखा हो, लेकिन मैं तुमसे कहता हूं—कांटे भी ले जाओ। क्योंकि फूल तो तुम चढ़ा दोगे, तुम्हारे कांटों का क्या होगा? स्वर्ग तो तुम चढ़ा दोगे, तुम्हारे नर्क का क्या होगा? अपने देवता को तो चढ़ा दोगे, अपने दानव का क्या होगा! वह तुम्हारे पास बचा रह जाएगा। तुम उसी में जकड़ जाओगे। सब चढ़ा दो! अब यह भी भेद क्या करना जब चढ़ाने ही गये हो! सब उसका है। ऐसे भी उसका है, तुम चढ़ाओ या न चढ़ाओ, ऐसे भी उसका है। लेकिन चढ़ा दो तो तुम्हारे जीवन में बड़ा फर्क पड़ जाएगा। 'त्वदीयं वस्तु तुभ्यमेव समर्पये'। तेरी चीज तुझे ही समर्पित।

ऐसे भी तुम्हारी नहीं है। तुम्हारे पास है क्या देने को? तुम उसके हो, तुम्हारे पास देने को हो भी क्या सकता है? लेकिन तुमने अकड़ बना ली है। जो तुम्हारा नहीं है, उस पर तुमने अपने होने का कब्जा कर रखा है। तुमने जमीन पर रेखाएं खींच दीं कि यह मेरी जमीन, यह मेरा देश, यह मेरा घर, यह मेरी पत्नी, यह मेरा बेटा—ये तुम्हारी खींची हुई लकीरें हैं, सब गैर कानूनी हैं। क्योंकि सब उसका है। तुम्हारा यहां कुछ भी नहीं है। यहां मेरा-तेरा ही संसार है।

अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।

पंख उगे थे मेरे जिस दिन

तुमने कंधे सहलाए थे,

उसके ही कंधे सहलाने पर पंख उगते हैं। वही श्वास लेता है तो तुम श्वास लेते हो। वही धड़कता है तो तुम्हारा हृदय धड़कता है। वही तुम्हारा जीवन है—जीवन का जीवन।

जिस-जिस दिशि-पथ पर मैं विहरा

एक तुम्हारे बतलाए थे,

तुम चाहे जानो और चाहे न जानो, वही तुम्हारे धागों को खींच रहा है। और जहां-जहां तुम विहरे हो, जिन-जिन रास्तों पर तुम चले हो, उसके ही बतलाए चले हो। लेकिन तुम अपनी अकड़ बना सकते हो।

मैंने सुना है, एक पत्थरों की ढेरी लगी थी एक राजमहल के पास, एक बच्चा खेलता हुआ निकला, उसने एक पत्थर उठाकर राजमहल की खिड़की की तरफ फेंका। फेंका तो बच्चे ने था, लेकिन पत्थर का भी अहंकार होता है। पत्थर जब ढेरी से ऊपर उठने लगा तो उसने आसपास पड़े हुए पत्थरों से कहा—मित्रों, मैं जरा यात्रा को जा रहा हूं। नीचे पड़े पत्थर ईर्ष्या से दबे रह गये। तड़पे, हिले-डुले, मगर हिल-डुल भी न सके। सोचा, यह विशिष्ट पत्थर है—अवतारी, असाधारण, हम तो उड़ ही नहीं सकते। उड़ने की आकांक्षा किस में नहीं होती? पत्थर भी आकाश में उड़ना चाहते हैं। वे भी चांद-तारों से बात करना चाहते हैं। वे भी सूरज की यात्रा पर निकलना चाहते हैं। पंख की आकांक्षा किसको नहीं होती? तुम भी सपने देखते हो रात तब पंख उग आते हैं और आकाश में उड़ते हो। पत्थर भी सपने देखते हैं। उड़ने का मजा ऐसा है! उड़ने की मुक्ति ऐसी है! खुले आकाश का आनंद ऐसा है! उड़ना यानी स्वतंत्रता। कोई बंधन नहीं, सारा आकाश तुम्हारा है। कशमशाए, दुखी हुए, ईर्ष्या से जले, पड़े रह गये।

पत्थर तो उठा, जाकर महल की खिड़की से टकराया, कांच चकनाचूर हो गया। अब जब पत्थर कांच से टकराता है तो कांच चकनाचूर हो जाता है। पत्थर चकनाचूर करता नहीं है, करना नहीं पड़ता पत्थर को कुछ। यह दोनों का स्वभाव ऐसा है कि पत्थर के टकराने से कांच चकनाचूर हो जाता है इसमें पत्थर का कोई कृत्य नहीं है।

लेकिन पत्थर हंसा और उसने कहा—मैंने लाख बार कहा है, मेरे रास्ते में कोई भी न आए। जो आएगा, चकनाचूर हो जाएगा।

यही तुमने किया है। सोचना, यही तुमने कहा है। ऐसे ही तुम भी जिए हो। यह संयोग ही है, इसमें कुछ गौरव नहीं है पत्थर का—पत्थर पत्थर है, कांच कांच है, बस इतनी बात है। कांच कोमल है, पत्थर कठोर है, इतनी बात है। न पत्थर के किये कुछ हो रहा है, न कांच के किये कुछ हो रहा है, स्वभावगत सब हो रहा है।

कांच तो छितरकर टूट गया, पत्थर जाकर महल के भीतर कालीन पर गिरा। बहुमूल्य ईरानी कालीन! मालूम पत्थर ने कहा? पत्थर ने कहा—यात्री की, लंबी यात्रा की, थक भी गया, थोड़ा विश्राम करूं। गिरा है, लेकिन कहता है—विश्राम करूं! नौकरी से तुम निकाले भी जाते हो तो तुम कहते हो—इस्तीफा दे दिया है। चुनाव हार जाते हो, तुम कहते हो—राजनीति का त्याग कर दिया, संन्यास ले लिया।

महल के द्वार पर खड़े नौकर ने आवाज सुनी, कांच के टूटने की, पत्थर के गिरने की, वह भागा, भीतर आया। उसने पत्थर को हाथ में उठाया—फेंकने के लिए—लेकिन पत्थर ने कहा कि बड़े भले लोग हैं, मेरे स्वागत में न केवल कालीन बिछा रखे थे, बल्कि सेवक भी लगा रखे हैं। नौकर ने पत्थर को उठाकर वापिस खिड़की से नीचे फेंक दिया। मालूम है पत्थर ने क्या कहां? पत्थर ने कहा—बहुत दिन हो गये घर छोड़े, मित्रों की याद भी बहुत आती है, अब वापिस चलूं! और जब पत्थर वापिस गिर रहा था अपनी ढेरी पर, तो उसने कहा—मित्रो, तुम्हारी बड़ी याद आती थी। ऐसे तो महलों में निवास किया, राजाओं के हाथों में उठा, सम्राटों से मुलाकात हुई, मगर फिर भी अपना घर, अपने लोग, अपना देश—मातृभूमि—बड़ी याद आती थी, मैं वापिस आ गया। उस सब को छोड़-छाड़ दिया।

ऐसी जिंदगी है तुम्हारी। कौन हाथ तुम्हें जिंदगी में फेंक देता है, तुम्हें पता नहीं। क्यों तुम एक दिन जन्म जाते हो, तुम्हें पता नहीं। कौन तुम्हें जन्मा देता है, तुम्हें पता नहीं। क्यों कुछ पता नहीं। मगर तुम कहते हो—मेरा जीवन, मेरा जन्म! जैसे तुम्हारा इसमें कुछ हाथ हो। जैसे तुमने निर्णय लिया हो! जैसे तुमसे पूछ कर किया गया हो। जैसे तुम्हें पता हो।

फिर कौन तुम्हारे भीतर आकांक्षाएं जगाता है, कौन वासनाएं जगाता है, तुम्हें कुछ पता नहीं। लेकिन तुम कहते हो—मैं यह करके रहूंगा। मुझे संगीतज्ञ बनना है; मैं दुनिया को दिखाकर रहूंगा कि मुझे संगीतज्ञ बनना है। किसने तुम्हारे भीतर आकांक्षा उठायी है संगीतज्ञ बनने की? तुमने? तुम्हारे बस के बाहर है। उठी है, तुमने उठते पाया है इस वासना को। कि तुमने पाया कि बड़ा धन कमाऊंगा, कि एक सुंदर स्त्री पानी है, कि एक सुंदर पुरुष पाना है, मगर ये सारी आकांक्षाएं तुम्हारे भीतर उठी हैं। इन्हें तुमने उठाया नहीं है, तुम इनके मालिक नहीं हो। ये किस गहराई से आती हैं, तुम्हें कुछ पता नहीं। यह कौन धागे खींच रहा है, तुम्हें कुछ पता नहीं; कौन तुम्हें लड़ा रहा है जीवन के संघर्ष में, कौन तुम्हें विजय की आकांक्षा से भर रहा है, कौन तुम्हें महत्वाकांक्षा दे रहा है, तुम्हें कुछ पता नहीं। यह खेल जो तुम खेल रहे हो, तुम्हारा लिखा हुआ नहीं है। यह पार्ट जो तुम अदा कर रहे हो, यह तुम्हारा लिखा हुआ नहीं है। यह तुम जो हो रहे हो, यह तुम्हारी ही बात नहीं है, कोई बड़ा राज पीछे छुपा है, जो बिलकुल अज्ञात है, अंधेरे में पड़ा है।

भक्त इस बात को ठीक से देखता है, समझता है। इस समझ से ही अर्पण पैदा होता है। इस समझ में ही अर्पण घट जाता है। उसे दिखायी पड़ जाता है कि मैं हूं ही कहां! न-मालूम कौन अज्ञात ले आया है, न-मालूम कौन अज्ञात श्वास ले रहा है, न-मालूम कौन अज्ञात एक दिन उठा ले जाएगा—जैसा आया था वैसे चला जाऊंगा—न-मालूम कौन अज्ञात न-मालूम किन-किन यात्राओं पर भेज रहा है; जब तक भेज रहा है, जा रहा हूं। जिस दिन रोक लगा, रुक जाऊंगा; न संसार मेरा है, न संन्यास मेरा है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं कि संन्यास लेने की आकांक्षा हो रही है, ले लें, या न लें? मैं उनसे कहता हूं—तुम्हारे हाथ में है? तो तुम समझे ही नहीं संन्यास का अर्थ। तुम निर्णायक बनोगे तो संन्यास चूक गया।

कौन अज्ञात तुम्हारे भीतर यह आकांक्षा उठा रहा है कि अब संन्यास ले? छोड़ दो उसके हाथों में, लेने दो उसे संन्यास तुम्हारे द्वारा—वही संन्यास लेता है तुम्हारे द्वारा, वही संन्यास छोड़ संसार में जाता है तुम्हारा द्वारा। सब खेल उसका, सब द्वंद्व उसके, सारी लीला उसकी।

ऐसी प्रतीति जब होने लगती है। और सत्संग में यही हो जाए तो बस सत्संग पूरा हुआ। किसी के पास बैठकर यह बात तुम्हारी समझ में उतर जाए कि तुम नहीं हो, परमात्मा है। फिर यह कहना ही बात फिजूल होगी कि अर्पित करता हूं। कौन है अर्पित करनेवाला? किसको करेगा? अर्पण हो जाते हो तुम, करना नहीं पड़ता। यह कोई घोषणा नहीं करनी कि आज से मैं अपने को परमात्मा में अर्पित करता हूं। एक दिन तुम समझ-समझ कर पाते हो—हो गया अर्पण! आज से तुम नहीं हो, परमात्मा है!

नाम तुम्हारा ले लूं, मेरे
स्वप्नों की नामावलि पूरी,
तुम जिससे संबद्ध नहीं वह
काम अधूरा, बात अधूरी,
तुम जिसमें बोले वह वाणी,
तुम जिसमें डोले वह जीवन,
मुर्दा-मूक नहीं तो मेरे सब अरमान, सभी अभिलाषा।
अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा और पिपासा।

सब अर्पित हैं। सब कांटे-फूल, स्वर्ग-नर्क, अंधेरा-रोशनी, अच्छा बुरा, पाप-पुण्य, सब अर्पित है।

अबंधः अर्पणस्य मुखम्।।

और ऐसा जो अर्पित है, वह मुक्त हो गया। वह जीवनमुक्त है।

यह सूत्र ख्याल में लेना। यह सूत्र सार-सूत्र है। यह एक सूत्र काफी है। इस एक सूत्र के सहारे तुम्हारा सारा जीवन नया हो सकता है, तुम्हारा नया जन्म हो सकता हैः तुम द्विज हो सकते हो।

क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।
मेरी अंजलि के कुसुमों में
प्रिय तेरी गलमाला,
मेरे हाथों के दीपक से,
तेरा घर उजियाला,
अगरु-गंध तेरे आंगन में
दग्ध हुआ उर मेरा,
क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।
मैं जागा या तूने अपने
सरसिज-से दृग खोले,
मेरा स्वर फूटा या तेरे
भाव-विहंगम बोले,
मेरा भाग्य-उदय है तेरी
ऊषा का वातायन,
अरुण किरण के शर हैं मेरे, तेरा सुभग सबेरा
क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।

अर्पित होते ही तुम पाओगे। जो तुम्हारा है, सब उसका है। और तब एक दूसरी क्रांति घटती है, कि उसका जो है, वह सब तुम्हारा है। एक बार दो, तो मिले। एक बार लुटा दो तो पा लो। मिटो, तो हो जाओ।

क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।

यह तुम्हें एक दिन अनुभव करना पड़े। तो एक दिन वह अपूर्व घटना भी घटती है जब तुम अनुभव करोगे—

क्या तेरा है जो आज नहीं है मेरा।

तुम अपनी क्षुद्रता उसमें समर्पित कर दो, तो उसकी विराटता तुम्हारी हो जाती है। तुम खोओगे नहीं। यह सौदा करने जैसा है। सिर्फ नासमझ डरे रहते हैं। तुम अपना छोटा-सा आंगन छोड़ोगे, उसका सारा आकाश तुम्हारा हो जाएगा। तुम अपनी छोटी-सी दुनिया छोड़ेगे, उसका सारा ब्रह्मांड़ तुम्हारा हो जाएगा। तुम छोड़ोगे ना-कुछ पा लोगे सब कुछ।

रामकृष्ण के पास एक आदमी आया और उसने रामकृष्ण से कहा कि आप का त्याग महान है। रामकृष्ण कहे—चुप! दुबारा ऐसी भूलकर बात मत कहना। त्यागी तू है, हम तो भोगी हैं! अपूर्व बात रामकृष्ण ने कही। वह आदमी थोड़ा चौंका, रामकृष्ण के शिष्य भी थोड़े चौंके कि यह वह क्या कह रहे हैं, होश में हैं? उस आदमी को जब कि सभी जानते हैं, वह नगर का सबसे बड़ा धनपति, सबसे बड़ा कंजूस, उसको कह रहे हैं। त्यागी तुम हो, भोगी मैं हूं। उस आदमी ने भी कहा कि आप भी क्या मजाक कर रहे हैं? मैं और त्यागी? नहीं-नहीं, त्यागी आप हैं, मैं तो भोगी हूं। रामकृष्ण ने कहा इसमें मैं राजी नहीं हो सकता। क्योंकि तूने क्षुद्र को पकड़ा है, विराट को छोड़ा है, तो त्यागी तू। हमने विराट को पाया, क्षुद्र का छोड़ा, हम त्यागी कैसे? कोई कौड़ी छोड़ दे और कोहिनूर पकड़ ले, उसको त्यागी कहोगे? कोई कौड़ी पकड़ ले और कोहिनूर छोड़ दे, वह है त्यागी। रामकृष्ण ने ठीक कहा। वह बात बिलकुल सच है।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं—योग तुम्हें परम भोग पर ले जाता है। जब तक तुम भोगी हो, तब तुम्हें भोग का पता ही कहां है? भोगी भोगी है ही नहीं, जानता ही नहीं, भोगी बड़ा त्यागी है। क्षुद्र को पकड़े है, विराट को चूका है। सीमित को पकड़े हैं, असीम से वंचित है। मृत को पकड़े हैं, अमृत बरस रहा है, नहीं पीता। मृत्यु की अंधेरी गली में सरक रहा है, अमृत की रोशनी मौजूद है, अमृत का आकाश खुला है, वहां पंख ही न फैलाता। मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि योगी परम भोगी है। क्योंकि परमात्मा को भोगने से बड़ा और क्या भोग होगा?

क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।

तुम इतना कहो; तुम इतना जीओ।

मेरी अंजलि के कुसुमों में

प्रिय तेरी गलमाला,

तुम्हारे हाथ में जो फूल हैं, उन्हें तुम अपने हाथ के मत समझो, उसके गले की माला समझो।

मेरे हाथों के दीपक से

तेरा घर उजियाला

तुम अपने दीयों को अपने लिए मत जलाओ, उसके घर को उजियाला करो। सब उसका है। तुम्हारा घर भी उसका है।

अगरु-गंध तेरे आंगन में

दग्ध हुआ उर मेरा,

तुम अपने को ऐसे जला दो—अगरु और गंध जलाने से कुछ भी न होगा, हृदय को जला दो।

अगरु-गंध तेरे आंगन में

दग्ध हुआ उर मेरा,

क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।

और तब सब रूप बदल जाएगा। तुम्हारे भीतर एक अपूर्व भाव उठेगा—क्या तेरा है जो आज नहीं है मेरा। मैं को गंवाओ तो सब तुम्हारा हो जाता है। जीसस ने कहा हैः धन्यभागी हैं वे जो मिटने को तैयार हैं, क्योंकि केवल वे ही हैं जो बचेंगे। अभागे हैं वे जो अपने को बचाते हैं। जिसने अपने को बचाया, उसने अपने को गंवाया।

मैं जागा या तूने अपने
सरसिस-से दृग खोले,
जरा सोचना इस पर, इस पर ध्यान करना—
मैं जागा या तूने अपने
सरसिस-से दृग खोले,

तुम्हारे भीतर कौन जागता है? वही जागता है। सब जागरण उसका है, सब चैतन्य उसका है। जब सुबह तुम आंख खोलते हो तो तुम यह सोचो ही मत कि तुमने आंख खोली, उसने ही तुम्हारे भीतर आंख खोली। उसने ही श्वास ली, उसने ही जीवन लिया, उसने ही आंख खोली। रात आंख बंद करके विश्राम करता है, सुबह आंख खोलकर वही काम पर निकल जाता है। जिस दिन तुम अपने को ऐसा समझने लगोगे, उस दिन अर्पित हुए।

मैं जागा या तूने अपने
सरसिस-से दृग खोले,
मेरा स्वर फूटा या तेरे
भाग-विहंगम बोले,

तुम क्या गाओगे! सब गीत उसके हैं। और जहां तुम आ जाते हो, वहीं विसंगीत है।

रवींद्रनाथ से किसी ने कहा—आपने इतने प्यारे गीत गाए। रवींद्रनाथ ने कहा कि मैंने जो-जो गाए, वे प्यारे नहीं हैं। जहां-जहां मैं आया, वहीं-वहीं गीत का छंद टूटा गया। जहां तुम छंद पाओ, वहां मैं नहीं हूं। सब छंद उसका है।

कूलरिज, एक महाकवि, मरा तो हजारों कविताएं अधूरी घर में मिली। उसके मित्र तो सदा से जानते थे कि वह अधूरी कविताएं लिख कर रखता जाता है, रखता जाता है थोड़ी बहुत नहीं, हजारों। उसके मित्रों ने उससे हमेशा कहा था कि पूरी क्यों नहीं करते? कूलरिज कहता कि मैं कैसे पूरा करूं? जितनी उतरी उतनी उतरी। जितनी उसने गायी उतनी गायी। मैंने पूरी करने की कोशिश की है कभी-कभी, लेकिन तब मैंने पाया कि जो मैं जोड़ देता हूं उससे सब खराब हो जाता है। एक ही पंक्ति अधूरी है किसी कविता में, एक ही पंक्ति रह गयी है, एक पंक्ति और जुड़ जाए तो पूरी हो जाए कविता। कूलरिज ने कहा कि मैंने एक पंक्ति जोड़कर देखी, बहुत तरह से कोशिश की है, लेकिन मेरी पंक्ति अलग रह जाती है। वे जो पंक्तियां उतरी हैं, जिनका अवतरण हुआ है, उनमें गंध और है—उनमें उस लोक की गंध है। जो मैं जोड़ देता हूं, वह थेगड़ा-सा मालूम होता है।

ऐसा हुआ। रवींद्रनाथ ने गीतांजलि का अंग्रेजी में अनुवाद किया। तो थोड़ा संकोच उनको था कि अंग्रेजी अपनी भाषा नहीं है, अनुवाद पता नहीं ठीक हुआ है या नहीं हुआ है। तो उन्होंने सी. एफ. एंड्रयूज को अपना अनुवाद दिखलाया। एंड्रयज ने कहा—अनुवाद तो सब ठीक हुआ है, सिर्फ चार जगह थोड़ी व्याकरण की दृष्टि से चूक है। एंड्रयूज पंडित थे, विद्वान थे; और उन्होंने जो शब्द सुझाए वे रवींद्रनाथ को भी जंच गये, कि ठीक हैं। उन्होंने शब्द बदल लिये। फिर लंदन में—रवींद्रनाथ ने लंदन के कवियों को इकट्ठा किया अपनी गीतांजलि सुनाने के लिए; ईट्स नाम के एक कवि के घर छोटी-सी बैठक हुई कवियों की और रवींद्रनाथ ने अपनी गीतांजलि सुनायी, लोग भावविभोर हो गये। लेकिन ईट्स बीच में खड़ा हो गया और उसने कहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन तीन-चार जगह अड़चन है। रवींद्रनाथ ने कहा—कौन-सी जगहें हैं जहां अड़चन है? वे वे ही जगहें थीं जो सी. एफ. एंड्रयूज ने सुझायी थीं। रवींद्रनाथ भरोसा ही नहीं कर सके कि यह संभव है।

रवींद्रनाथ ने कहा—आपने पहचाना कैसे? उन्होंने कहा कि छंद भंग हो गया है। पत्थर की तरह आ गयी हैं कुछ बातें। रवींद्रनाथ ने अपने शब्द जो उन्होंने पहले रखे थे, दोहराए। ईट्स ने कहा कि ये ठीक हैं—भाषा की दृष्टि से गलत होंगे, छंद की दृष्टि से ठीक हैं; इनको ही रहने दो; इनमें प्रवाह है, ये पत्थर की तरह नहीं आए हैं। इनमें एक तरंगायित सुसंबद्धता है, एक संगीत है, एक संगति है।

मेरा स्वर फूटा या तेरे
भाव-विहंगम बोले,

अर्पित व्यक्ति धीरे-धीरे अनुभव करने लगता है—बोलता तो वही बोलता, मैं बांस की पोंगरी हूं। कबीर ने वही कहा है कि मैं तो बांस की पोंगरी। तू गाए तो गाए, तू चुप रहे तो चुप।

मेरा स्वर फूटा या तेरे
भाव-विहंगम बोले,
मेरा भाग्य-उदय है तेरी
ऊषा का वातायन,
अरुण किरण के शर हैं मेरे, तेरा सुभग सबेरा।
क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।

'अबंधः अर्पणस्य मुखम्।।
अर्पण से बंधन-मुक्ति हो जाती है।'

खयाल में आया सूत्र? कुछ अर्पण करना नहीं है। सब उसका ही है। अभी भी उसका है। जब तुम सोच रहे हो मेरा है, तब भी उसका है। तुम्हारा दावा झूठा है। झूठे दावे को हटा लेना है। बस इतना ही फर्क पड़नेवाला है। उस झूठे दावे के हटते ही जीवन में एक नयी अवस्था, एक प्रभात होता है। तुम्हारे भीतर से परमात्मा जीता है। यही मुक्त की दशा है। तुम नहीं जीते, फिर तुम्हारा बंधन क्या? फिर जो करवाता है, तुम करते हो। कुछ दिन भी जरा इस पर ध्यान करना—जो करवाता है, वही करते हो! और इससे फर्क नहीं पड़ता कि तुम जो कर रहे हो उसमें कुछ फर्क पड़ेगा; दुकान जाते थे अब भी जाओगे; कुछ परमात्मा ऐसा नहीं है कि वह सभी हिमालय को गुफा में ले जानेवाला है—उसका संसार कैसे चलेगा? कुछ ऐसा नहीं है कि परमात्मा पर तुम सब छोड़ दोगे तो तुम्हारी पत्नी और बच्चों से तुम्हें छुड़ा देगा। महात्माओं ने छुड़ाया है। परमात्मा ने नहीं छुड़ाया है। महात्माओं से बचना। महात्माओं ने बहुत हत्या की है। महात्माओं के ऊपर भारी दोष है। उन्होंने परमात्मा के संसार को विकृत किया है। उन्होंने जिंदा पति के रहते पत्नियां विधवा करवा दी हैं, जिंदा बाप के रहते बच्चों को अनाथ करवा दिया है।

मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि यह कैसा संन्यास है आपका, कि आदमी घर में रह रहा है? पत्नी भी, बच्चे भी, यह कैसा संन्यास है आपका?

कल्याण के एक मित्र ने संन्यास लिया। वे बंबई बिचारे काम करने आते थे। मेरे पास आए एक दिन अपनी पत्नी को लेकर, कहा अब इसको भी संन्यास दे दें। मैंने पूछा मामला क्या है? उन्होंने कहा, मामला यह है कि इसके साथ मैं कहीं जाता हूं तो लोग बड़ी शक की नजर से देखते हैं कि संन्यासी किसकी स्त्री को भगा ले आया? कई लोग पूछते हैं कि यह बाई कौन है? और इस तरह पूछते हैं जैसे कि मैं कोई अपराध कर रहा हूं। और अगर मैं कहता हूं मेरी पत्नी है, तो वे मुझे इस तरह से देखते हैं कि तुम होश में हो, पागल तो नहीं हो? संन्यासी, पत्नी कैसे? मैंने कहा—ठीक, इसका भी संन्यास कर देते हैं।

एक सप्ताह बाद अपने बेटे को भी लेकर आए, छोटे बच्चे को, कि अब इसको भी संन्यास दे दें। कहा—इसका क्या मामला है? उन्होंने कहा—अब हम दोनों इसके साथ कहीं जाते हैं, तो लोग सोचते हैं कि किसी के बच्चे को ले भागे! खबरें तो उड़ती रहती हैं न कि साधु किसी के बच्चे को लेकर भाग गये, बच्चों को उड़ाया जा रहा

है। तो उन्होंने कहा—कल बड़ी झंझट हो गयी, ट्रेन में बैठे थे, एक पुलिसवाला आ गया, उसने का कि नीचे उतरो, थाने चलो, यह बच्चा किसका है? कहां ले जा रहे हो?

धारणा बन गयी है कि संन्यासी का मतलब होता है—भगोड़ा। पलायनवादी सब छोड़-छाड़ कर चला जाए। संन्यासी का यह अर्थ नहीं होता। संन्यासी का अर्थ होता है, सब उस पर छोड़ दे। छोड़-छाड़ कर न चला जाए! छोड़-छाड़ कर क्या जाना? वह तो फिर नया अहंकार हुआ कि मैं छोड़ कर जा रहा हूं, मैं संन्यासी। वह तो फिर नयी बंधन की, व्यवस्था हो गयी। नयी जंजीरें ढाल लीं तुमने। और ध्यान रखना, पुरानी जंजीरें बेहतर थीं, नयी ज्यादा खतरनाक हैं। क्योंकि पहला अहंकार स्थूल था, अब बड़ा सूक्ष्म अहंकार हो गया। कि मैं सब छोड़ दिया! लाखों पर लात मार दी! पत्नी-बच्चे छोड़ दिये, संसार छोड़ दिया, मैंने बड़ा काम कर के दिखाया है। तुम भगवान के सामने और भी बड़े दावेदार हो गये, तुम्हारा दावा नहीं मिटा। अब अगर भगवान तुम्हें मिल जाए तो तुम हजार शिकायतें करोगे—कि अन्याय हो रहा है मेरे साथ, मैंने इतना छोड़ दिया और अभी तक मेरा मोक्ष नहीं हुआ है। अभी तक स्वर्ग का कुछ पता नहीं है, अभी तक अप्सराएं नहीं मिलीं। कहां है अप्सराएं? कहां हैं झरने शराब के? बहिश्त कहां है? और क्या चाहिए अब, सब तो छुड़वा दिया! सब तो दांव पर लगा दिया, बचा तो कुछ भी नहीं है।

कुछ भी दांव पर नहीं लगा है। तुमने कुछ छोड़ा भी नहीं।

छोड़ने का अर्थ होता है—परमात्मा पर सब छोड़ना। परमात्मा फिर जैसे जिआए! वह अगर कहे कि घर में रहो, पत्नी के साथ रहो, बच्चे के साथ रहो, तो ठीक! और यही मेरी दृष्टि में क्रांति है। तुम सब उस पर छोड़ दो। दुकान करवाए तो दुकान ठीक।

कबीर ज्ञान को उपलब्ध हो गये, समाधि को उपलब्ध हो गये, लेकिन कपड़ा बुनते रहे। जुलाहे थे सो जुलाहे रहे। शिष्यों ने बहुत बार कहा कि हमें बड़ा अशोभन लगता है, हमें बड़ी पीड़ा होती है, कि हमारा गुरु और दिनभर कपड़ा बुनता रहे। आप छोड़ते क्यों नहीं? हम भोजन देंगे, व्यवस्था सब हम करेंगे, हम हमेशा तैयार हैं सेवा के लिए, आप छोड़ते क्यों नहीं? कबीर कहते हैं—लेकिन वह छुड़वाए तो छोड़ूं! वह तो मेरे कपड़े बुनने से बिलकुल राजी है। उसकी तरफ से तो इशारा ही नहीं आता। वह तो मेरे कपड़ों से बड़ा प्रसन्न है। और जब मैं बाजार ले जाता हूं अपने कपड़े बेचने तो वह बड़े खुश होकर खरीदता है। राम खरीदने आते हैं—कबीर कहते थे। और मैं न बनाऊंगा तो उनके लिए इतने सुंदर कपड़े कौन बनाएगा? 'झीनी झीनी बीनी चदरिया'। वे चादर बुनते हैं और गीत गाते हैं। चादर ही नहीं बुनते, चादर में गीत बुनते हैं। चादर ही नहीं बुनते, चादर में रामरस बुनते हैं। यह चादर और है। अब यह चादर ही नहीं है, यह अर्पित व्यक्ति के हाथ से बुनी गयी चादर है। काम वही जारी रहा।

गोरा कुम्हार ज्ञान को उपलब्ध हो गया, लेकिन कुम्हार ही रहा, घड़े बनाता ही रहा। तुलाधर वैश्य की कथा आती है। ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, ब्रह्मज्ञान को, लेकिन तौलता रहा; तराजू पर बैठा रहा, जो काम जारी था जारी रहा।

जिसने अपने को अर्पित कर दिया, अब उसकी कोई मंशा नहीं है। अब जो परमात्मा करवायेगा करवायेगा। नहीं करवायेगा तो नहीं करवायेगा। लेकिन अपनी तरफ से अब हम कुछ भी न करेंगे। जो उसकी तरफ से आता रहेगा, उसे होने देंगे, हम उसके सहयोगी रहेंगे, हम उसके लिए निमित्त रहेंगे। कृष्ण की गीता का कुल सार इतना है—इस सूत्र में आ गया—अबंधः अर्पणस्य मुखम्। इतनी ही बात कृष्ण ने उतनी लंबी गीता में कही है, जो शांडिल्य ने एक सूत्र में कह दिया। अर्जुन को यही समझाया है कि तू अर्पित हो जा, सब उस पर छोड़ दे, तू निमित्तमात्र रह जा; वह युद्ध करवाए तो युद्ध कर, वह जो करवाए सो कर, तू अपने को बीच में न ला। तू निर्णायक मत बन। तेरा निर्णायक बनना ही तेरा संसारी होना है। तू अनिर्णायक हो गया, सिर्फ ग्राहक रह गया है उसके संदेशों का—वही संन्यास है।

'ध्याव नियमः तु दृष्टिसौकर्यात्।।
जिस भाव से ध्यान करने से नेत्र तृप्त होते हों, उसी भाव के चिंतन करने का नाम ध्यान है।'
महत्वपूर्ण सूत्र है, खयाल में लेना।
अधिकतर लोग ध्यान, पूजापाठ, प्रार्थना जबरदस्ती आरोपित करते हैं। वह उचित नहीं है। जबरदस्ती आरोपण से कुछ भी न होगा। सहज स्वभाव का प्रवाह होना चाहिए। लेकिन उपद्रव इसलिए हो गया है कि जन्म के साथ तुम्हें धर्म भी पिला दिया गया है। मां ने दूध के साथ तुम्हें धर्म भी मिला दिया है। कोई आदमी जैन-घर में पैदा हुआ है, अब इसके भीतर हो सकता है भक्ति की उमंग सहज हो, मगर यह महावीर के सामने नाचे तो कैसे नाचे? वह महावीर नग्न खड़े हैं, वहां नृत्य का कोई अर्थ नहीं है। यह महावीर के सामने गीत गाए तो कैसे गाए? वह गीत बिलकुल बेमौजूं मालूम होता है। गीत कृष्ण के सामने गाया जा सकता है, और कृष्ण के सामने नाचा जा सकता है।
जरा सोचो, अगर मीरा महावीर की भक्त हो, तो नाचे कैसे? पैर कट जाएंगे। लेकिन कोई कृष्ण के घर में पैदा हुआ है, कृष्ण को माननेवाले लोगों के घर में पैदा हुआ है और हो सकता है उसको नाचने और गीत और भजन और कीर्तन में कोई रस न हो; उसे रस हो कि शांत बैठ जाए जैसे बुद्ध बैठ गये। कि शांत खड़ा हो जाए जैसे महावीर खड़े हैं। मगर अड़चन आ गयी है। तुम्हारे सहज स्वभाव को देखकर तुम्हारा धर्म नहीं है। तुम्हारा धर्म तो सांयोगिक है। किसी घर में पैदा हो गये, धर्म तुम्हारा पकड़ा दिया गया।
जिस व्यक्ति को सच में ही परमात्मा की तलाश करनी हो, उसे अपने स्वभाव की पहले तलाश करनी होती है, कि मेरी स्वाभाविक, सहज रस की धारा किस तरफ बहती है! जिसने अपने स्वभाव को ठीक से समझ लिया, उसके लिए कठिनाई न रह जाएगी।
'जिस भाव से ध्यान करने से नेत्र तृप्त होते हों,' दोनों तरह नेत्र, बाहर के नेत्र और भीतर के नेत्र। अब कोई हो सकता है कृष्ण के रूप में एकदम तल्लीन हो जाए। और यह भी हो सकता है किसी को कृष्ण का रूप देखकर बड़ा कष्ट हो। कोई सोचने लगे कि यह कैसा भगवान! यह मोर-मुकुट बांधे खड़ा है। यह तो बड़े राग की दशा है। यह सजावट, यह श्रृंगार, इसमें वीतराग कहां है? यह गोपियां का नृत्य, यह स्त्रियों का जमघट चारों तरफ यह रासलीला, यह कैसा भगवान है।
इसलिए जैनों ने कृष्ण को भगवान नहीं माना। कैसे मान सकते हैं? उनकी धारणा में वीतरागता भगवत्ता है। और ऐसा नहीं है कि उनकी धारणा गलत है। एक तरह के लोग हैं इस दुनिया में जिनके लिए वीतरागता ही भगवत्ता है। और एक तरह के ऐसे लोग भी हैं इस जगत में जिनके लिए राग का पूर्ण हो जाना भगवत्ता है। इस जगत में भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं। यहां बहुत तरह के फूल खिलते हैं इस बगीचे में। और इस बगीचे की गरिमा है, गौरव है। यहां गुलाब ही गुलाब खिलते होते तो लोग गुलाब से ऊब गये होते। यहां चंपा, जूही, चमेली, और भी हजार तरह के फूल खिलते हैं। नये रंग, नये ढंग। अपने पसंद को ठीक से सोच लेना।
शांडिल्य कहते है, जिससे तुम्हारी बाहर की आंखें तृप्त हों, उसी से तुम्हारी भीतर की आंखें भी तृप्त होंगी, खयाल रखना। इसलिए और कोई धारणाओं को बीच में मत आने देना। जिससे तुम्हारा लग जाए हृदय, लग जाने देना। चल पड़ना। फिर दुनिया कुछ भी कहे! दुनिया की फिक्र मत करना। जिससे तुम्हें रस बहे, उसी से तुम पहुंचोगे। रसधार में सम्मिलित हो जाओगे तो परमात्मा के सागर तक पहुंचोगे।
'जिस भाव से ध्यान करने से नेत्र तृप्त हों, उसी भाव से चिंतन करने का नाम ध्यान है'। पहले बाहर फिर भीतर। पहले बाहर के नेत्र तृप्त हों--और नेत्र तो सिर्फ प्रतीक हैं, संकेत मात्र।
यहां मेरे पास इतने तरह के लोग हैं। किसी को विपस्सना ठीक पड़ती है। शांत बैठना। किसी को विपस्सना ऐसी लगती है कि यह कहां के कारागृह में फंस गये? किसी को सूफी-नृत्य आनंद देता मालूम पड़ता है। नाच गीत!

अपनी अवस्था को पहले जांच लेना। क्योंकि तुम्हें जाना है परमात्मा तक। ऐसी कोई बात मत चुन लेना जो तुम्हारे ऊपर जबरदस्ती मालूम पड़े। और अक्सर ऐसा हो गया है कि लोग ऐसी बातें चुनते हैं जो जबरदस्ती है। अक्सर ऐसी बातें चुनते हैं, जिनमें जबरदस्ती है। क्योंकि जबरदस्ती के कारण उनको ऐसा लगता है—कुछ तपश्चर्या कर रहे हैं। मूढ़ता कर रहे हो, तपश्चर्या नहीं! कुछ लोग सिर के बल सिर्फ इसलिए खड़े हैं कि सिर के बल खड़े होने में बड़ा कष्ट होता है। कष्ट के कारण ही चुन लिया है। क्योंकि धारणा यह बैठी है कि कष्ट से ही परमात्मा मिलेगा। पागल हो तुम। परमात्मा को पाने के लिए किसी तरह के कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। अगर तुम कष्ट उठाते हो, तो उसका केवल इतना ही कारण है कि तुम अपने स्वभाव के विपरीत जाते हो; इसलिए कष्ट उठाते हो।

और परमात्मा को पाना हो तो स्वभाव के अनुकूल जाना जरूरी है। जैसे-जैसे परमात्मा के पास जाओगे, सुख बढ़ेगा, कष्ट कम होगा; जीवन में धीरे-धीरे एक शांति की आभा उतरेगी, एक आनंदमग्न भाव आएगा, एक मस्ती आएगी।

लेकिन लोगों ने कष्टप्रद बातों को चुन लिया है। उससे एक लाभ होता है, अहंकार की तृप्ति होती है। कोई उपवास कर रहा है, उससे अहंकार तृप्त होता है कि देखो, तुम खाने के पीछे दीवाने हो, मरे जाते हो, एक मैं हूं कि आज तीस दिन से उपवासा बैठा हूं। अब झुको मेरे पैर में! अब करो नमस्कार! अब निकालो शोभायात्रा, कि मुनि महाराज ने तीस दिन का उपवास किया? अगर उपवास से किसी को आनंद आ रहा है, तो शोभायात्रा की क्या जरूरत है? अगर उपवास से किसी को आनंद आ रहा है, तो उनके चरणों में झुकने की क्या जरूरत है? लोग चरणों में तभी झुकते है यहां जब उन्हें लगता है कि बेचारा बड़ा कष्ट उठा रहा है! बड़ी तपश्चर्या चल रही है!

परमात्मा की तलाश में तपश्चर्या तुम्हारी भूलों के कारण है। तुम्हारी गलतियों के कारण है। तुम कष्ट उठाते हो तो अपनी नासमझी के कारण उठाते हो। लेकिन परमात्मा के मार्ग पर सुख ही सुख है। ठीक कहते हैं रामकृष्ण, कि मैं भोगी हूं।मैं भी तुमसे कहता हूं—मैं भोगी हूं। और मैं तुम्हें भी महाभोगी बनाना चाहता हूं।

अपने को कष्ट देना मनोवैज्ञानिक रूप से रोग है, तुम जाकर मनोवैज्ञानिकों से पूछो! उन्होंने एक बीमारी को नाम ही दे रखा है—मैसोचिज्म। ऐसे लोग हैं दुनिया में जो अपने को कष्ट देने में रस लेते हैं; जो अपने जीवन में घाव बनाने में रस लेते हैं, अपने को परेशान करने में रस लेते हैं।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो जो दूसरे को परेशान करने में रस लेते हैं और एक वे जो अपने को परेशान करने में रस लेते हैं—दोनों बीमार हैं। न तो दूसरे को परेशान करने की कोई जरूरत है, न खुद को परेशान करने की कोई जरूरत है। अपने स्वभाव को ठीक से पहचान लो और सहज की दिशा में यात्रा करो। तुम निश्चित पहुंच जाओगे। तुम पहुंचे हुए हो, सिर्फ स्वभाव को पहचानने की बात है।

'ध्यान नियमः तु दृष्टसौकर्यात्।।'

जिससे तुम्हारे नेत्र तृप्त हों, जिससे तुम्हारे प्राण तृप्त हों, वही ध्यान है। वही मार्ग है। जिससे सुख अहर्निश बढ़े, दिन-दिन बढ़े, दिन दूना रात चौगुना बढ़े वही ध्यान है।

इस सूत्र की क्रांति समझते हो? यह तुम्हारे जीवन के सारे रोगों से मुक्ति दिला देगा। काश फ्रायड ने सूत्र को पढ़ा होता, तो वह धार्मिकों के खिलाफ इतनी बातें न लिखता जितनी उसने लिखीं। क्योंकि उसे धार्मिकों का केवल उतना ही पता था जितना ईसाई फकीर अपने को सताते रहे हैं। कोई अपनी आंखें फोड़ लेता है। कोई अपनी जननेंद्रिय काट लेता है। कोई अपने कान फाड़ लेता है। कोई अपने शरीर को सुखा लेता है। कोई धूप में ही खड़ा रहता है। कोई कांटों की सेज बिछाकर लेटा हुआ है। ये भगवान को पाने के उपाय हो रहे हैं। किसी ने त्रिशूल अपने मुंह में छेद लिया है। कोई खड़ा है तो वर्षों से खड़ा ही है, बैठता नहीं है। कोई रात में सोता नहीं है, जाग ही रहा है। ये रुग्णचित्त की अवस्थाएं। ये विक्षिप्त लोग हैं। इनकी मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। इनकी

शोभायात्राएं मत निकालो, इनको अस्पतालों में भरती करवाओ। इनको 'इलेक्ट्रिक शॉक' दिलवाओ। इनकी बुद्धि विकृत है। यह तपश्चर्या नहीं हो रही है, ये केवल अपने को दुख देने में मजा ले रहे हैं।

मगर दूसरों को भी मजा आता है। क्योंकि दूसरे भी दुखवादी हैं। दूसरे जब अपने को दुख देते हैं, तुमको भी मजा आता है। तुम भी देखने चले जाते हो। तुम्हें भी बड़ा रस आता है। तुम सुखी आदमी को देखकर प्रसन्न नहीं होते, तुम सुखी आदमी को देखकर थोड़े नाराज हो जाते हो। तुम दुखी आदमी को देखकर प्रसन्न होते हो, क्योंकि दुखी आदमी से तुम्हें एक बात पता चलती है कि इससे तो हम ही ज्यादा सुखी हैं। एक राहत मिलती है, कि चलो हम बेहतर तो! जब सुखी आदमी मिलता है तो तुम्हें ईर्ष्या जगती है।

सुखी के साथ आनंदित होना कठिन है! इसीलिए सुखी व्यक्तियों की पूजा नहीं हुई। दुखी व्यक्तियों की पूजा चलती रही है।

मैं तुम्हें संन्यास की एक नयी दृष्टि दे रहा हूं। सुख त्याज्य नहीं है। सुख का ही सूत्र तुम्हें परमात्मा की तरफ ले जाएगा। अपने स्वभाव के अनुकूल जो हो, वही करो। क्योंकि स्वभाव परमात्मा है।

आज इतना ही।

संसार जड़ है, अध्यात्म फूल है

छठवां प्रवचनः

पहला प्रश्नः उस फूल का रंग उड़ के सिर्फ बू रह जाए
सर जाए तो जाए आबरू रह जाए
साबित हो मेरी नफी से तेरा इकबाल
मैं इतना मिटूं कि सिर्फ तू रह जाए

बू भी बची तो तुम बच जाओगे। उतना भी बचाया कि सब बच जाएगा। 'मैं' मिटना ही नहीं चाहता। वह नये-नये रास्ते खोजता है बचने का।

उस फूल का रंग उड़ के सिर्फ बू रह जाए

लेकिन बू क्यों? बू भी तुम्हारी होगी, बदबू होगी। मिटने ही चले हो तो पूरे से कम में काम नहीं चलेगा।

सर जाए तो जाए आबरू रह जाए

आबरू! सर और किसको कहते हैं? सर जाने का मतलब यह थोड़े ही होता है कि यह तुम्हारा शरीर पर जो सिर लगा है यह कट जाए। आबरू ही सिर है। वह जो इज्जत; अभिमान; वह जो मैं का भाव है—मेरी प्रतिष्ठा, मेरा सम्मान! असली तो बचा लिया, नकली छोड़ रहे हो। बू तो बचा ली, फूल छोड़ रहे हो। फूल का मूल्य ही बू की वजह से था। और आबरू ही तो तुम्हारा सिर है। सिर बचे तो बचने दो, आबरू जानी चाहिए। फूल पड़ा भी रहे तो पड़ा रहे, बू जानी चाहिए। तुम अहंकार का सार तो बचाने के लिए उत्सुकता रखते हो—

उस फूल का रंग उड़ के सिर्फ बू रह जाए

—क्यों? तुम जब तक पूरे ही शून्य न हो जाओगे, तब तक परमात्मा का आगमन नहीं है।

सर जाए तो जाए आबरू रह जाए

साबित हो मेरी नफी से तेरा इकबाल

तुम कुछ भी साबित करोगे तो तुम ही साबित होओगे, और कुछ साबित न होगा। तुम्हारे सब दावे, तुम्हारे सब प्रमाण तुम्हारे अहंकार को ही प्रामाणित करेंगे। तुम्हारे द्वारा परमात्मा सिद्ध होनेवाला नहीं है। तुम मिटोगे तो परमात्मा सिद्ध है ही। तुम हटो, राह दो। परमात्मा को न लाना है, न प्रमाणित करना है, न सिद्ध करना है, न खोजना है; परमात्मा है ही। सिर्फ तुम्हारा अहंकार पर्दा बना है। परमात्मा पर पर्दा नहीं बना है, तुम्हारी आंख पर ही अहंकार का पर्दा पड़ा है। बस वह पर्दा हट जाए!

लेकिन तुम पर्दे को बचा रहे हो। तुम कहते हो, 'साबित हो मेरी नफी से तेरा इकबाल'! परमात्मा की महिमा भी तुम्हारे द्वारा सिद्ध होनी चाहिए! परमात्मा की घोषणा तुम्हारे माध्यम से होनी चाहिए! तुम सिद्ध करोगे परमात्मा को। लेकिन निश्चित ही जो सिद्ध करेगा, वह सिद्ध जिसे किया उससे बड़ा हो जाता है—स्वभावतः तुम्हारे बिना परमात्मा सिद्ध नहीं हो सकता, तुम पर निर्भर हो गया। तुम उसके तर्क हो; तुम उसके गवाह हो; तुम्हारे बिना दो कौड़ी का है परमात्मा। तुम उसे मूल्य दे रहे हो। स्वभावतः तुमने बड़े पीछे के दरवाजे से अपने को मूल्य दे लिया। अहंकार की आदतें ऐसी सूक्ष्म हैं कि जाता ही नहीं। नये-नये उपाय खोज लेता है। एक दरवाजा बंद करो, दूसरा खोल लेता है। स्थूल से हटाओ, सूक्ष्म में प्रवेश कर जाता है। चेतन से हटाओ, अचेतन को पकड़ लेता है। दिन में विदा करो, रात लौट आता है। जागने में दूर रखो, नींद सपने में उतर आता है। अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। तुम्हें उसे पूरा-पूरा समझना होगा। नहीं तो तुम्हारी लड़ाई व्यर्थ होगी।

अहंकार एक ही भाषा जानता है—अपने को बचाने की। तुम्हें उसे उड़मूल से उखाड़ना होगा।

मैंने सुना है, एक भिखारी को लाटरी का टिकट खरीदते देखकर एक पत्रकार ने उत्सुकतावश पूछा—बाबा, अगर तुम्हारा पहला इनाम निकल आया तो उस पैसे का क्या करोगे? उस भिखारी ने कहा—बेटा, कार खरीदूंगा। पैदल भीख मांगते-मांगते मेरी टांगे टूट जाती हैं।

मगर भीख तो वह मांगेगा ही। भीख तो उसकी आदत है। भीख तो उसका स्वभाव हो गया। कार में बैठकर भीख मांगेगा, लेकिन भीख मांगेगा।

अहंकार की भाषा को ठीक से पहचानो, जल्दी नहीं करो मिटाने की। इतना आसान काम नहीं है जितना तुमने समझा है। दुरूह है, बड़ा बारीक है और नाजुक है। और अति जागरूकता से कोई अपने भीतर जाएगा तो ही किसी दिन अहंकार से छुटकारा पा सकेगा। खूब रोशनी चाहिए भीतर—ध्यान की—और खूब विनम्रता चाहिए भीतर प्रार्थना की। असहाय अवस्था का भाव चाहिए। और जल्दी किसी चीज को पकड़ मत लेना। अन्यथा एक रोग छूटता है, दूसरा रोग पकड़ जाता है। मगर पकड़ जारी रहती है।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन केमिस्ट की दुकान पर गया, और दुकानदार से मुल्ला ने कहा—याद है, कल मैं आप के पास से, यहां से स्याही के दाग दूर करनेवाली एक दवा ले गया था। दुकानदार ने कहा, हां मुल्ला, भलीभांति याद है; क्या दूसरी शीशी चाहिए—मुल्ला ने कहा—नहीं, उस दवा का दाग मिटानेवाली दवा हो तो दे दीजिए।

स्याही का दाग तो मिट गया, अब दवा का दाग रह गया! इसका अंत कहां होगा? इसका अंत कैसे होगा?

जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं है। 'मैं' को मिटाने की भी चेष्टा में मत लगो। क्योंकि 'मैं' इतना कुशल कारीगर है कि तुम 'मैं' को मिटाने में लगोगे, मैं मिटनेवाले के पीछे छिप जाएगा। और एक दिन अहंकार उठेगा कि देखो मैंने अपना मैं मिटा दिया, अब मैं निरहंकारी हो गया, मुझसा विनम्र कौन है? यह घोषणा अहंकार की ही है।

भीतर जागो, अहंकार के रास्तों को देखो, पहचानो लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। लड़े कि हारे! अगर हारना हो तो लड़ना।

फिर अहंकार कैसे जाएगा?

अहंकार जाता है मात्र जागरण से। जैसे अंधेरा जाता है रोशनी के जला लेने से। कोई अंधेरे को धक्का थोड़े ही देना पड़ता है, कोई तलवार उठाकर अंधेरे को काटना थोड़े ही पड़ता है, कोई अंधेरे से मल्लयुद्ध थोड़े ही करना होता है! अगर कोई आदमी अंधेरे से मल्लयुद्ध करने लगे, ताल ठोंककर और लग जाए लड़ने, तो तुम सोचते हो जीतेगा कभी? मर जाएगा, लड़-लड़कर मर जाएगा और अंधेरे का बाल बांका न होगा। और स्वभावतः जब आदमी लड़-लड़कर बार-बार हारेगा तो सोचेगा कि मैं कमजोर हूं, अंधेरा महाशक्तिशाली है। मगर सच्ची बात कुछ और है। अंधेरा है ही नहीं इसलिए आदमी नहीं जीत पा रहा है। अंधेरा होता तो तलवार से काट देते। अंधेरा होता तो धक्के मारकर निकाल देते अंधेरा है नहीं। अनुपस्थिति का नाम है। प्रकाश का अभाव है। तुम एक छोटा-सा दिया जलाओ, या कि एक मोमबत्ती और अंधेरा गया। तुम्हारी चेष्टा मोमबत्ती जलाने में लगनी चाहिए, अंधेरे से लड़ने में नहीं।

और यही बुनियादी भेद है नास्तिक और आस्तिक का।

नास्तिक लड़ने में लग जाता है, नकार में लग जाता है। इसको मिटाओ उसको मिटाओ; इसको त्यागो; इसको छोड़ो, उसको छोड़ो। यह मेरी नास्तिक की परिभाषा है। मेरी नास्तिक की परिभाषा तुम्हारी नास्तिक की परिभाषा जैसी नहीं है। तुम कहते हो जो ईश्वर को नहीं मानता है, वह नास्तिक है। यह बात सच नहीं है। क्योंकि महावीर ने ईश्वर को नहीं माना और वे परम आस्तिक थे। बुद्ध ने ईश्वर को नहीं माना, लेकिन बुद्ध से बड़ा आस्तिक तुम कहीं पा सकोगे? और करोड़ों लोग ईश्वर को मानते हैं और जरा इनकी जिंदगी में झांको, कहां आस्तिकता है? इसलिए तुम्हारी यह धारणा और तुम्हारी यह परिभाषा कि जो ईश्वर को नहीं मानता वह नास्तिक है, गलत हो चुकी है। या जो ईश्वर को मानता है वह आस्तिक है, वह भी गलत हो चुकी है। अब नयी परिभाषा चाहिए।

मैं तुम्हें नयी परिभाषा देता हूं। जो नकार पर जीता है, जो नहीं करके जीता है वह नास्तिक है। जो हां-भाव से जीता है, आस्था से, श्रद्धा से, स्वीकार से, वही आस्तिक है। फिर ईश्वर को मानो या न मानो, गौण बात है। जिसने अस्तित्व को हां कहना सीख लिया वह ईश्वर को जान ही लेगा कहे या न कहे। और जिसने ना कहने की भाषा सीखी, वह मरेगा, वह तड़पेगा, परेशान होगा, कभी अनुभव न कर पाएगा।

नकार में अहंकार बचता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जिस दिन बच्चा अपने मां-बाप को इनकार करना शुरू करे, समझना उसी दिन से अहंकार की शुरुआत है। एक घड़ी आती है ऐसी—कोई तीन-चार साल की उम्र में—जब बच्चा पहली दफा अपने मां-बाप को इनकार करना शुरू करता है। वही घड़ी अहंकार के जन्म की घड़ी है। अब तक जो मां कहती थी, मानता था; जो कहा जाता था, चुपचाप स्वीकारता था। अब तक एक श्रद्धा थी, अब श्रद्धा गयी। अब लड़ाई शुरू हुई। मां कहती यहां बैठो, वह कहता है यहां नहीं बैठूंगा। यह करो, वह कहता है यह नहीं करूंगा। सच तो यह है कि बच्चे से तुम जो कहोगे करो, उसको छोड़कर सब करेगा। अब अहंकार उद्दाम वेग ले रहा है। अब अहंकार की तरंग उठनी शुरू हो गयी है। अब बच्चा यह कह रहा है कि मैं भी कुछ हूं। मैं हूं, और ऐसी आसानी से अपनी जमीन नहीं दे दूंगा, ऐसी आसानी से झुक नहीं जाऊंगा। तुम जब भी नहीं कहते हो—किसी भी चीज से—तो अहंकार मजबूत होता है।

इसलिए मैं तुम्हें यह चौंकानेवाली बात कहूं कि तुम्हारे जो लोग संन्यास के नाम पर भाग गये हैं, परिवार को, पत्नी को, बच्चो को, मां-बाप को छोड़कर, वे सब नास्तिक हैं। उन्होंने इनकार किया है। उन्होंने परमात्मा ने जो दिया था उसे स्वीकार नहीं किया है। परम आस्तिक वही है जो सब स्वीकार करता है। सुख भी, दुख भी, सफलता भी, असफलता भी। कांटे भी यहां बहुत हैं, फूल भी यहां हैं। जो दोनों स्वीकार करता है। रात और दिन, जीवन और मरण सबको अंगीकार करता है, और कहता है जो परमात्मा ने दिया है उसमें कुछ राज होगा। मैं इनकार करनेवाला कौन? जिसकी हां समग्र है। इसी हां में दिया जलना शुरू होता है। इसी हां में भीतर रोशनी पैदा होती है। इसी आस्तिकता में भीतर मंदिर बनता है, प्रतिमा प्रकट होती है। और तब तुम पाओगे उस रोशनी

में अहंकार कहीं खोजे भी नहीं मिलता। जैसे दिया जलाकर कोई अपने कमरे में जाए, और अंधेरे को खोजे कि कहां अंधेरा है, और न पाए, और लौटकर कहे कि अंधेरा नहीं है। वैसी ही बात होगी है जिस दिन तुम जागकर ध्यानपूर्वक भीतर जाओगे, अहंकार पाओगे नहीं। अन्यथा इसी तरह की झंझट होगी।

उस फूल का रंग उड़के सिर्फ बू रह जाए

सर जाए तो जाए आबरू रह जाए

साबित हो मेरी नफी से तेरा इकबाल

मैं इतना मिटूं कि सिर्फ तू रह जाए

यह मिटने की बात सिर्फ बात है। क्योंकि जहां मैं मिट गया, वहां तू भी न रह जाएगा। मैं के बिना तू का क्या अर्थ होगा? तू का सारा अर्थ 'मैं' में छिपा है। मैं और तू दो अलग-अलग शब्द नहीं हैं, एक ही शब्द के दो पहलू हैं। जहां मैं है, वहां तू है। जहां तू है, वहां मैं है। अगर मैं सचमुच चला जाए तो तू भी चला गया। तू कैसे कहोगे फिर? कौन कहेगा? किसको कहेगा? कैसे कहेगा? मैं के गिरते ही तू भी गिर जाता है। भक्त के मिटते ही भगवान भी विदा हो जाता है। फिर जो शेष रह जाता है, वही असली भगवत्ता है।

जब तक भक्त है और भगवान है, तब तक जानना असली भगवत्ता घटित नहीं हुई। जब तक तुम्हें लगता है मैं हूं और तू है—या तुम्हें ऐसा भी लगने लगा कि मैं नहीं हूं, तू है; लेकिन मैं नहीं हूं, यह कौन कह रहा है? यह तो वैसी ही मूढ़ता की बात हुई जैसा हुआ—

मुल्ला नसरुद्दीन होटल में बैठा गपशप था। बातचीत में अपनी प्रशंसा करने लगा और कहने लगा कि मुझसे ज्यादा उदार इस नगर में कोई भी नहीं है। मित्रों ने कहा यह भी तुमने खूब कहीं! हमने तो उदारता के कभी कोई लक्षण नहीं देखे। कभी ऐसा भी नहीं हुआ कि तुमने हमें घर भोजन के लिए निमंत्रण किया हो। मुल्ला ने कहा, अभी चलो, इसी वक्त चलो। तीस-पैंतीस आदमी, पूरी होटल साथ हो ली। जैसे-जैसे घर के पास पहुंचा वैसे-वैसे घबड़ाया—जैसा कि हर पति घबड़ाता है। दरवाजे पर रोककर कहा कि तुम जरा ठहरो भाई, तुम तो जानते ही हो घर-गृहस्थी वाला आदमी हूं, पत्नी है घर में, पहले जरा उसको राजी कर लूं। तीस-पैंतीस लोगों को आधी रात लेकर घर आ गया हूं, भोजन करवाने। तुम समझ सकते हो मेरी मुसीबत। वह एकदम टूट पड़ेगी। जरा उसे राजी कर लूं, तुम जरा रुको।

मुल्ला नसरुद्दीन भीतर गया और फिर आधी घड़ी बीत गयी, निकले ही न। घंटा बीतने लगा, रात बहुत लंबी होने लगी, मित्रों ने कहा यह तो हद हो गयी, यह आदमी भीतर गया तो बाहर नहीं आता। उन्होंने दरवाजा खटखटाया। मुल्ला ने अपनी पत्नी को इतना समझाया कि गलती हो गयी मुझसे, इनको लिवा लाया हूं, अब तू जाकर इनसे कह दे मुल्ला घर पर ही नहीं हैं। पत्नी बाहर आयी, उसने कहा—किसलिए खड़े हैं यहां आप लोग? नसरुद्दीन घर पर नहीं हैं। उन्होंने कहा, अरे यह हद हो गयी, हमारे साथ ही आए थे, हमने उन्हें भीतर जाते देखा है। पत्नी थोड़ी झिझकी कि अब कहे तो क्या कहे? मुल्ला घर के भीतर है। मुल्ला खिड़की के पास खड़ा हुआ सुन रहा है कान-लगाकर कि मित्र क्या विवाद कर रहे हैं? मित्र ज्यादा विवाद करने लगे तो उसने खिड़की खोलकर कहा कि सुनो जी, आधी रात किसी स्त्री से विवाद करते शर्म नहीं आती। यह हो सकता है कि नसरुद्दीन तुम्हारे साथ आया हो, लेकिन पीछे के दरवाजे से भी कहीं जा सकता है।

अब यह खुद नसरुद्दीन कह रहा है!

तुम अपने घर में बैठकर यह नहीं कह सकते कि मैं घर में नहीं हूं। अगर कहोगे तो उसका मतलब सिर्फ होगा कि तुम घर में हो।

मैं इतना मिटूं कि सिर्फ तू रह जाए

तुम यह नहीं कह सकते, कि मैं मिट गया हूं। क्योंकि कौन कहेगा कि मैं मिट गया हूं। कि मैं इतना मिट गया हूं! इसका तो मतलब हुआ कि अभी थोड़ा-बहुत शेष रह गया है। इतना तो मात्रा है। समग्ररूपेण जब कोई मिट

जाता है तो वहां कहने को कोई भी नहीं बचता। और जहां मैं नहीं बचता, वहां तू कैसे बचेगा? वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं—मैं और तू। दोनों गिर जाते हैं, तब जो बचता है उसे समाधि कहो, निर्वाण कहो, मोक्ष कहो। वहां न भक्त है, न भगवान है। उसको शांडिल्य ने पराभक्ति कहा है।

दूसरा प्रश्नः मैं यह तो नहीं कह सकता कि आप मुझे भूल गये, लेकिन 'आवन कहि गये अजहूं न आए, लीनी न मोरी खबरिया', यह कहने की इजाजत मांगता हूं।

'मोरी खबरिया'! वह 'मैं' ही पीछा करता है। तुम कब जागोगे!! तुम कब देखोगे कि 'मैं' के कारण ही परमात्मा भीतर नहीं आ पा रहा है! तुम चाहते हो कि परमात्मा भी तुम्हारी खबर ले। तू उसे भी अपनी सेवा में नियुक्त कर देना चाहते हो। तुम बातें करते हो कि मैं तुम्हारा चरण सेवक, इत्यादि-इत्यादि, लेकिन भीतर आकांक्षा यही रखते हो कि राह देख रहे हैं कि कब आओ और चरण की सेवा करो। कब मेरी खबर लो।

तब तक तुम्हारी खबर नहीं ली जा सकती, जब तक तुम हो। तुम्हारी खबर उसी दिन से ली जाएगी जिस दिन से तुम मिटोगे। जब तक तुम हो तब तक तुम्हारी खबर लेने की आवश्यकता भी नहीं है—तुम खुद ही खबर ले रहे हो। तुम परमात्मा को मौका ही नहीं दे रहे हो।

मैंने सुना है, कृष्ण वैकुंठ में भोजन करने बैठे हैं। और बीच में उठ गये हाथ का कौर छोड़कर उठ गये, भागे द्वार की तरफ। रुक्मिणी ने कहा—कहां जाते हैं आप? उत्तर भी नहीं दिया, इतनी जल्दबाजी दिखायी जैसे घर में आग लग गयी हो। और दरवाजे पर ठिठक गये, एक क्षण रुके, वापिस लौटकर थाली पर बैठकर भोजन करने लगे। रुक्मिणी ने कहा, तुमने मुझे और उलझा दिया। ऐसे भागे जैसे घर में आग लग गयी हो। मैं पूछी थी कि कहां जाते हो तो जवाब न दिया। फिर गये भी कहीं नहीं, द्वार से ही ठिठके लौट आए। कृष्ण ने कहा—ऐसा हुआ, मेरा एक भक्त जमीन पर एक गांव में से गुजर रहा है। लोग उसे पत्थर मार रहे हैं, उसके सिर से खून बह रहा है। लेकिन वह मस्त अपना एकतारा बजा रहा है और मेरी धुन गा रहा है। उसे पता नहीं है कि क्या हो रहा है? लोग पत्थर मार रहे हैं, लोग गालियां दे रहे हैं, लोग उसे अपमानित कर रहे हैं, और उसे कुछ पता नहीं है, वह अपनी मस्ती में है, उसका एकतारा बज ही रहा है। उसका गीत टूटा ही नहीं। उसकी कड़ी खंडित नहीं हुई। उसका भाव अहर्निश मेरी तरफ बह रहा है। इसलिए भागा था, मेरी जरूरत थी। इतना जो असहाय हो, तो मुझे भागना ही पड़े! इसलिए तेरे प्रश्न का उत्तर न दे सका, क्षमा करना। रुक्मिणी ने कहा, फिर लौट कैसे आए? कृष्ण ने कहा, लौटना इसलिए पड़ा कि जब तक मैं दरवाजे तक पहुंचा तब तक उसने वीणा तो एक तरफ पटक दी, उसने खुद ही पत्थर उठा लिये हैं। अब यह खुद जवाब दे रहा है। अब मेरी कोई जरूरत न रही!

तुम जब तक अपनी खबर खुद ले रहे हो, तब तक परमात्मा तुम्हारी खबर ले इसकी कोई जरूरत भी नहीं है। तुम जब परिपूर्ण असहाय अवस्था में पहुंच जाओगे, जब तुम कहोगे कि अब असमर्थ हूं, जब तुम्हारा अपने ऊपर जरा भी निर्भर रहने का भाव न रह जाएगा, जब तुम एक छोटे बच्चे की भांति रोओगे, जिसकी मां खो गयी है और तुम्हें कुछ भी न सूझेगा सिवाय रुदन के, कुछ भी न सूझेगा सिवाय पुकारने के, उसी क्षण खबर ली जाती है।

परमात्मा तुम्हारे साथ-साथ है लेकिन तुम्हारे रास्ते पर अंधेरा है। अंधेरे का कारण तुम हो। सूरज निकला है और तुम आंख बंद किये खड़े हो। फिर भी तुम कहते हो कि मेरे लिए सूरज क्यों नहीं निकला? सूरज सबके लिए निकला है। लेकिन कोई आंख बंद किये खड़ा है, सूरज करे भी तो क्या करे? तुम्हारी शिकायत सार्थक मालूम होती है।

जबकि तुम खुद हो हमसफर मेरे
क्यों अंधेरा है राहगुजारों पर

जबकि तुम मेरे साथ चल रहे हो, जबकि तुम मेरे संगी-साथी हो, जबकि तुम मेरे हृदय में धड़क रहे हो, तो फिर रास्ते पर अंधेरी क्यों है? परमात्मा सब तरफ व्यापक है। फिर तुम्हारी जिंदगी अंधेरा क्यों है? तुमने आंखें बंद

कर रखी हैं।सूरज के निकलने से ही क्या होगा, आंख भी तो खुली चाहिए। तुम्हारा हृदय भी खुला चाहिए! यह 'मैं' तुम्हारे हृदय पर चट्टान की तरह पड़ा है और तुम्हारे भावों के झरने को बहने नहीं देता। रोओ थोड़ा। शिकायत न करो, और असहाय हो जाओ। टूटो थोड़े और, गिरो थोड़े और, हारो थोड़े और। जिस घड़ी तुम सर्वहारा हो जाओगे उसी घड़ी क्रांति घटती है।

दर्दे-फूरकत की हद नहीं अब तो

चैन दिल को नहीं किसी करवट।

जब ऐसा होगा, तड़पोगे मछली की भांति। तट पर फेंकी गयी मछली की भांति, जब प्यास परिपूर्ण होगी और लपटें ही लपटें रह जाएंगी जीवन मैं; कोई सहारा न दिखेगा; कोई सुरक्षा न दिखेगी; जब यह अपनी परिपूर्णता पर पहुंच जाता है, दुख तभी टूटता है। और फिर एक क्षण को भी जुदाई नहीं होती। आंख खोलो तो भी परमात्मा दिखायी पड़ता है, आंख बंद करो तो भी परमात्मा दिखायी पड़ता है। एक दफे दिखायी पड़ जाए, फिर आंख बंद किये भी दिखायी पड़ता है।

हमें क्यों जुदाई का गम हो तुझे हम

तसव्वुर में शामो-सहर देखते हैं

फिर तुम चाहे आंख बंद करो, चाहे खोलो। उसकी मौजूदगी बनी ही रहती है। वह तुम्हारे तसव्वूर में छा जाता है। वह तुम्हारे तन-प्राण में समाता है। मगर एक बार उसके दर्शन होना चाहिए। तो अभी तो शिकायत छोड़ो, प्रार्थना करो।

एक यही अरमान गीत बन प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊं।

जड़ जग के उपहार सभी हैं धार आंसुओं की बिन बानी,

शब्द नहीं कह पाते तुमसे मेरे मन की मर्म कहानी,

उर की आग राग ही केवल कंठस्थल में लेकर चलता,

एक यही अरमान गीत बन प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊं।

जान-समझ मैं तुमको लूंगा यह मेरा अभिमान कभी था,

अब अनुभव यह बतलाता है मैं कितना नादान कभी था,

योग कभी स्वर मेरा होगा विवश उसे तुम दोहराओगे,

बहुत यही है अगर तुम्हारे अंधरों से परिचित हो जाऊं।

एक यही अरमान गीत बन प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊं।

कितने सपने कितनी आशा कितने आयोजन, आकर्षण,

बिखर गया है सबके ऊपर टुकड़े-टुकड़े होकर जीवन,

सिर पर सफर खड़ा है लंबा फैला सब सामान पड़ा है,

अंतर्ध्वनि का तार मिले तो एक जगह संचित हो जाऊं।

एक यही अरमान गीत बन प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊं।

प्रार्थना करो, पुकारो। जानने की, पाने की भाषा छोड़ो। जानने में भी अस्मिता है। पाने में भी अहंकार है। तुम तो कहो—मैं कैसे पा सकूंगा तुझे! मैं कैसे जान सकूंगा तुझे! तू ही जनाए तो जानूं। तू ही आ जाए तो पा लूं। मेरे किये कुछ भी न होगा। तेरे किये ही कुछ हो सकता है। ऐसा समग्रता से, एक ध्वनि से तुम्हारे भीतर से प्रार्थना उठे, निश्चित पूरी हो जाती है।

अंतर्ध्वनि का तार मिले तो एक जगह संचित हो जाऊं।

अगर तुम्हारे सारे प्राण इस एक ही प्रार्थना में आकर संयुक्त हो जाएं, एक स्वर बन जाएं, फिर शिकायत की जरूरत न होगी। परमात्मा बरस रहा है, अहर्निश। जब आता है तो बूंद की तरह नहीं आता, बाढ़ की तरह आता

है। तुम समा न पाओगे। तुम सम्हाल न पाओगे। लेकिन हमें तो बूंद भी नहीं मिली है, बाढ़ का हम क्या भरोसा करें! शिकायत में कहीं यह स्वर होता है कि तेरी तरफ से कुछ अन्याय हो रहा है। यही मैं जोर देकर तुमने कहना चाहता हूं, उसकी तरफ से कोई अन्याय नहीं हो रहा है। इसलिए शिकायत गलत हो जाती है। भूल अगर कहीं हो रही है, हमारी तरफ से हो रही है। हमने अभी पुकारा ही नहीं।

तुम जरा फिर से आंख बंद करके बैठकर सोचना, तुमने सच परमात्मा को पुकारा है? जब कभी तुम पुकारे भी हो, तब भी तुम्हारी अंतर्ध्वनि के सारे तार पुकारे हैं? तुमने एकजुट होकर पुकारा है? जब तुमने कभी प्रार्थना भी की है तो प्रार्थना तुम्हारे पूरे तन-प्राण पर छा गयी थी या और हजार काम भीतर चलते थे? तुम्हारा गोरखधंधा, तुम्हारा मन, तुम्हारे विचार, सब चलते थे, उसीमें एक प्रार्थना भी थी? जब तुम मंदिर गये हो, संसार भूल गया है? यह कि तुम संसार को सब भांति अपन भीतर लिये मंदिर पहुंच गये हो? जब तुम मस्जिद में झुके हो, तो तुम सच में झुके थे? या केवल शरीर की कवायत कर ली थी?

गौर से देखोगे तो तुम अपनी प्रार्थना का थोथापन पाओगे, उसका अन्याय नहीं। तुम अपनी पूजा की व्यर्थता पाओगे, उसका अन्याय नहीं। या कि तुमने तोतों की तरह प्रार्थनाएं रट ली है और तुम उन्हीं को दोहराए जा रहे हो। तुमने अपनी प्रार्थना तक नहीं खोजी है। तुम प्रार्थना तक उधार दोहरा रहे हो। जिस दिन यह उधारी बंद होगी—और इसकी कोई फिकिर न करो कि तुम्हारी प्रार्थना अगर तुम्हीं बनाओगे, अगर तुम्हारी प्रार्थना तुम्हीं से जन्मेगी तो शायद इतनी सुंदर न हो, फिकिर न करो। परमात्मा प्रार्थना के सौंदर्य और शब्दों का हिसाब नहीं रखता है। प्रार्थना के भाव भर गिने जाते हैं। न शब्द गिने जाने, न व्याकरण की फिकर की जाती, न भाषा की। परमात्मा तो सिर्फ भाव सुनता है। मौन भाव भी उस तक पहुंच जाते हैं। और तुम कितना ही चिल्लाओ, लाख शोरगुल मचाओ, अगर तुम्हारा हृदय भीतर नहीं है तो परमात्मा बहरे की तरह रहेगा। तुम्हारे स्वर उस तक नहीं पहुंचे हैं, नहीं पहुंचेंगे।

शिकायत का भाव छोड़ो! शिकायत बाधा है। अगर परमात्मा न आता हो तो इतना ही जानना कि अभी मुझमें कहीं भूल-चूक, अभी मैं तैयार नहीं। अपने पर ही काम करो। अपने को और निखारो। अपने को और स्वच्छ करो। इतना सुनिश्चित है—यही तो सारे भक्ति-शास्त्र का आधार है—कि जिस दिन तुम्हारी प्रार्थना सम्यकरूपेण पूर्ण हो जाएगी, उसी क्षण परमात्मा उतर आता है। पर्दा हटे तुम्हारी आंख से, रोशनी सदा से मौजूद है।

तीसरा प्रश्न: भक्त रोते क्यों हैं? रुदन और ध्यान का क्या संबंध है?

रोएं न तो भक्त और करें क्या? छोटे बच्चे क्यों रोते हैं जब उन्हें भूख लगती है? जब प्यास लगती है तब झूले में पड़ा बच्चा क्यों रोता है? इसीलिए भक्त रोते हैं। भक्त इस अस्तित्व को पुकार रहे हैं, और इस अस्तित्व के सामने भक्त वैसे ही असहाय हैं जैसे छोटा बच्चा असहाय है। शायद उससे भी ज्यादा असहाय हैं इस विराट को देखते हो? इस विराट के सामने हमारी सामर्थ्य क्या है? इस अनंत को देखते हो? इस अनंत के सामने हम कहां हैं, कौन हैं, क्या हैं? हम कण भी तो नहीं हैं। इस कण की बिसात क्या है? यह कण रोए न तो और क्या करे? असहाय अवस्था में, अंधेरे में, जन्मों-जन्मों से भटका हुआ भक्त और क्या करें?

न पिरोते जो रिश्त-ए-गम में

दिल के टुकड़े बिखर गये होते

यही पुकार, यही आंसू तो बांधे हुए हैं। न पिरोते जो रिश्त-ए-गम में। एक विराग जगत से उठना शुरू होता है, और साथ ही एक राग परमात्मा की तरफ उठना शुरू होता है। एक ही साथ दोनों बातें घटती हैं। जगत व्यर्थ दिखायी पड़ने लगता है और जो सार्थक है उसकी तलाश शुरू होती है। जो व्यर्थ है वह तो दिखायी पड़ता है और जो सार्थक है उसका कुछ पता नहीं चलता; व्यर्थ हाथ से छूटने लगता है और सार्थक की कोई खबर नहीं; एक अंतराल खड़ा हो जाता है, उसी अंतराल में भक्त रोता है।

जिसको कल तक जीवन समझा था वह तो जीवन नहीं है, यह सिद्ध हो गया। धन के पीछे दौड़े और ठीकरे पाए। पद के पीछे दौड़े, सिवाय परेशानियों के और कुछ भी न मिला। जिसको संपदा समझा, वह विपदा थी। जिस दिन यह दिखायी पड़ जाता है उस दिन जगत तो व्यर्थ हो गया, जो दिखायी पड़ रहा है वह व्यर्थ हो गया और जो सार्थक होगा, वह दिखायी नहीं पड़ रहा है—भक्त रोए न तो और क्या करे? इस अंतराल में आंसू के सिवा और क्या उपाय है? इस अंतराल को आंसू ही जोड़ सकते हैं और सेतु बन सकते हैं।

जो तेरी बज्म से उठा वे इस तरह उठा

किसी की आंख में आंसू, किसीके दामन में

आंसू ही आंसू हो जाएंगे—आंख में और दामन में। इस जगत की सच्चाई को देखोगे तो और क्या करोगे? बड़ी हैरानी मालूम होगी। बड़ी बिबूचन होगी। जो मिल सकता है वह बेकार है और जो बेकार नहीं है, उसका पता नहीं है, ठिकाना नहीं है, कहां है, है भी या नहीं! एक रिक्तता पैदा हो जाती है। उस रिक्तता में आंसुओं का जन्म है।

मुझे जब होश आता है तो यह महसूस करता हूं

अभी उठ कर गये हो तुम मेरी आगोशे-वीरां से

फिर भक्त दो कारणों से रोता है। एक तो कारण, जब संसार व्यर्थ हो जाता है और परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता है। अब तक जिन वासनाओं के सहारे जी लिये थे, वे उखड़ गयीं। अब तक जिन आशाओं के सहारे जी लिये थे, अब उनमें कुछ सार न रहा। हाथ एकदम राख से भर गये। इसलिए रोता है। फिर एक और दशा भी है। जब भक्त को परमात्मा की झलकें मिलने लगती हैं, लेकिन झलकें मिलती हैं और खो जाती हैं; मिलती हैं और खो जाती है; यह दिखी झलक और गयी, बिजली की कौंध की तरह। फिर और भी रोता है। और जार-जार रोता है। अब सत्य का स्वाद भी लग गया, लेकिन पेट नहीं भरा।

तो पहले चरण पर भक्त रोता है—संसार व्यर्थ हो गया, सार्थक की कोई खबर नहीं। दूसरे चरण पर भक्त रोता है—सार्थक की खबर मिलने लगी, मगर मिलन कब होगा? जब तक खबर न मिली थी तब तक तो रोने में इतना बल नहीं था, क्योंकि भीतर एक संदेह तो रहेगा ही कि पता नहीं मैं जिसके लिए रो रहा हूं वह है भी या नहीं; अब तो दिखायी भी पड़ने लगा कि जिसके लिए मैं रो रहा हूं, वह है और फिर भी हाथ चूक-चूक जाते हैं, फिर भी मैं बढ़ता हूं, बढ़ता हूं और नहीं पहुंच पाता, एक बूंद कंठ में भी उतर गयी, अब भक्त और रोता है। अब रोने में बड़ी गहराई आ जाती है।

मुझे जब होश आता है तो यह महसूस करता हूं

अभी उठकर गये हो तुम मेरे आगोशे-वीरां से

अभी-अभी उठ गये तुम मेरी गोद से। अभी-अभी मेरे हृदय में थे, अभी-अभी तुम चले गये। अभी-अभी पास थे, अब फिर दूर हो गये—फिर अनंत दूरी; फिर तुम लापता, फिर पता नहीं तुम्हारा मकान कहां है, कहां तुम्हें खोजूं, यह भी पता नहीं है कैसे यह क्षणभर को तुम्हारा मिलना हुआ था, तुम बिना कुछ सूत्र बताए आए और बिना कुछ सूत्र बताए चले गये। यह दूसरी गहराई है।

फिर एक तीसरी, अंतिम भक्त के रोने की गहराई है। जब भगवान मिल ही जाता है, पूरा-पूरा मिल जाता है, छूटता नहीं, तब अनुग्रह में रोता है भक्त, तब आह्लाद में रोता है भक्त। फिर आह्लाद इतना होता है कि शब्द ओछे मालूम पड़ते हैं, सिर्फ आंसू ही कह सकते हैं। मगर इन सब आंसुओं के गुणधर्म अलग हैं। पहले रोता है—असहाय अवस्था में। फिर रोता है—स्वाद लग गया, अनुभूति की थोड़ी-थोड़ी किरण उतरने लगी। फिर रोता है—अनुभव हो गया। अब अनुग्रह में और क्या करे?

तो तुम भक्त को पहले भी रोते पाओगे, बाद में भी रोते पाओगे। और इसलिए प्रश्न सार्थक है कि भक्त रोते क्यों हैं? और रुदन और ध्यान का क्या संबंध है?

रुदन और ध्यान का तो कोई संबंध नहीं है, लेकिन रुदन और प्रार्थना का संबंध जरूर है। ये दो अलग मार्ग हैं। ध्यानी नहीं रोता। महावीर कभी रोए, ऐसी किसी घटना का उल्लेख नहीं है। या बुद्ध कभी रोए, ऐसी घटना का कोई उल्लेख नहीं है। ज्ञानी नहीं रोता, ध्यानी नहीं रोता। क्योंकि ध्यानी की सारी प्रक्रिया बुद्धि को निखारने की है। इसीलिए तो गौतम सिद्धार्थ को हमने बुद्ध कहा। उन्होंने बुद्धि को पूरा-पूरा निखार लिया। यह प्रक्रिया अलग है। ध्यान की प्रक्रिया विचार-मुक्ति की प्रक्रिया है और भक्ति की प्रक्रिया भाव को जगाने की प्रक्रिया है। आंसू मस्तिष्क से नहीं आते, आंसू हृदय से आते हैं, उनका स्रोत हृदय में है। इसलिए ध्यान नहीं रोता। उसका सारा काम मस्तिष्क में हैं। वहां से आंसू आने का कोई कारण नहीं है। ध्यानी की आंखें तो आंसुओं से बिलकुल रिक्त हो जाती हैं। लेकिन भक्त रोता है। मीरा रोती है, चैतन्य रोते हैं, सहजो रोती है। और रोने के ये तीन तल हैं।
प्रार्थना से संबंध है आंसुओं का।

और ध्यान रखना, दुनिया में बहुत थोड़े लोगों ने ध्यान के द्वारा परमात्मा को पाया, अधिक लोगों ने भाव के द्वारा परमात्मा को पाया है। ध्यान के द्वारा परमात्मा को पाना ऐसा ही है जैसे कोई सिर के पीछे से हाथ घुमा कर और कान को पकड़े; या नाक को पकड़े। लंबी यात्रा है। भक्ति सुगम है, सीधी यात्रा है। नाक पकड़नी है तो सीधी नाक पकड़ लो। पूरे सिर के पीछे से हाथ को घुमाकर लाओगे फिर नाक पकड़ोगे? ध्यानी बड़े उपक्रम में लग जाता है। भक्त सिर्फ रोता है और पा लेता है। भक्त सिर्फ पुकारता है और पा लेता है। अगर भक्ति की संभावना हो तो ध्यानी बनने की व्यर्थ झंझट में पड़ना ही मत। अगर ऐसा लगे कि मेरे भीतर भाव उठते ही नहीं, संवेदना उठती ही नहीं, छूता ही नहीं मेरे हृदय को कुछ, तो ही ध्यान की तरफ जाना। जिनका हृदय बिलकुल रेगिस्तान हो गया हो, उनके लिए ध्यान का मार्ग है। जिनके हृदय में अभी थोड़ी संभावना हो, जलस्रोत बहते हों, हरियाली हो, फूल खिल सकते हो, उन्हें ध्यान तक जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। वे भक्ति में डूब जाएं।

आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।
तुमने आहें भरी कि मुझे था
झंझा के झोंकों ने घेरा,
तुम मुस्काये थे कि जुन्हाई में था
डूब गया मन मेरा,
तुम जब मौन हुए थे मैंने
सूनेपन का दिल देखा था
आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।
हंसता हूं तो उनकी अंजलि
रिक्त नहीं होती कलियों से
मुखरित हो पथ उनका
सुरभित होगा पंखुड़ियों से,
पलकों! सूख न जाना देखो
राग न उनका रुकने पाए,
किस मरु को मधुबन करने को
आज न जाने वे गाते हैं
आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।

सुनो गौर से, सुनो शांत होकर, मल्हार छिड़ी ही हुई है।
आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।
भक्त ऐसा कोमल हो जाता है, ऐसा नाजुक हो जाता है, ऐसा स्त्रैण हो जाता है कि पक्षी गीत गाता है और भक्त की आंख भर आती हैं; गुलाब की झाड़ी पर फूल खिलता है और भक्त की आंखें भर आती हैं; कोयल कुहू-कुहू करती है और भक्त रोने लगता है; पपीहा पुकारता है पी को और भक्त डोलने लगता है; हवाएं वृक्षों से सरसराती निकलती हैं और भक्त रोने लगता है; चांद को देखे कि सूरज को, जहां आंख उठाता है वहीं उसकी मल्हार सुनायी पड़ती है।
आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।
पलकों! सूख न जाना देखो
राग न उनका रूकने पाए,
भक्त और भगवान के बीच यही संबंध है। भगवान की तरप से राग छिड़ा है, भक्त की तरफ से आंखें आंसुओं से भरी हैं। यही सेतु है। उस तरफ से राग, इस तरह से आंसुओं से भरी आंखें।
पलकों! सूख न जाना देखो।
राग न उनका रुकने पाए,
किस मरु को मधुबन करने को
आज न जाने वे गाते हैं।
आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।
रोओ। रोने में कंजूसी मत करना। रोने में क्या लगता है तुम्हारा? लेकिन लोगों की आंखें सूख गयी हैं। लोग तर्क के मरुस्थल हो गये हैं। रोनेवाला व्यक्ति तो उन्हें लगता है कि कुछ गलत है, कुछ पागल है, कुछ बुद्धिहीन है। इस धारणा ने ही लोगों को इस जगत में परमात्मा से वंचित करा दिया है। क्योंकि निन्यानबे प्रतिशत लोग हृदय से ही परमात्मा की तरफ जा सकते हैं। और हृदय स्वीकार नहीं है। हृदय अंगीकार नहीं है। हृदय की भाषा को कोई मानने को तैयार नहीं है। तुम भी जब रोने लगते हो तो तुम भी सोचते हो कोई देख न ले। अपनी आंख जल्दी से पोंछ लेते हो, रोक लेते हो आंसुओं को, पी जाते हो; कोई देख न ले, लोग क्या कहेंगे? पहले तो तुम्हें यह सिखाया गया कि अगर तुम पुरुष हो तो रोना ही मत क्योंकि यह स्त्रैण कृत्य है। छोटे-छोटे बच्चों को हम कहते हैं कि क्या रो रहा है, क्या तू लड़की है? तुम जानकर चकित होओगे, मनोवैज्ञानिक क्या कहते हैं इस संबंध में? उनकी खोजें क्या हैं? उनके खोजें ये हैं कि आदमी, पुरुष भी रोना सीख ले फिर से—सीखना पड़ेगा उसे—तो दुनिया में बहुत-सा पागलपन कम हो जाए।
पुरुष दो गुना ज्यादा पागल होते हैं स्त्रियों की बजाय, यह तुम्हें पता है? और पुरुष दो गुना आत्महत्या करते हैं स्त्रियों की बजाय, यह तुम्हें पता है? और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कारण क्या होगा इतने बड़े भेद का? कारण सिर्फ यही है, स्त्री अभी भी रोना भूल नहीं गयी है। थोड़ा-सा रो लेती है। रो लेती है, हल्की हो जाती है। उसके रोने में कोई बड़ा अध्यात्म नहीं है, क्षुद्र बातों में रोती रहती है, मगर फिर भी हल्की तो हो ही जाती है। काश! उसके आंसुओं को ठीक दिशा मिल जाए, तो वह हल्की ही न हो उसे पंख लग जाएं।
पुरुष को रोना सीखना ही पड़ेगा। और गलत तुम्हें समझाया गया है कि रोना मत, तुम पुरुष हो। क्योंकि प्रकृति ने भेद नहीं किया है। जितने आंसुओं की ग्रंथि स्त्री की आंखों में हैं, उतने ही आंसुओं की ग्रंथि पुरुष की आंखों में हैं। इसलिए प्रकृति ने तो भेद बिलकुल नहीं किया है। तुम्हारी आंखें उतनी ही रोने को बनी हैं जितनी स्त्री की।

इस संबंध में कोई भेद नहीं है। स्त्री रो लेती है तो भार उतर जाता है। मगर भार ही उतारने का काम लिया इतनी महिमापूर्ण घटना से, आंसुओं से, तो कुछ ज्यादा काम नहीं लिया। आंसू तो परमात्मा की तरफ इशारा बन सकते हैं। क्षुद्र के लिए मत रोओ, विराट के लिए रोओ। और कंजूसी मत करो। और छिपाओ मत आंसुओं को। तुम्हारे पास हृदय है, इसमें कुछ अपमान नहीं है, सम्मान है।

एक बात खयाल रखना, मस्तिष्क तो आज नहीं कल मशीन के पास भी होगा—हो ही गया है, कम्प्यूटर बन ही गये हैं, जो आदमी की बुद्धि से ज्यादा ठीक काम कर रहे हैं—एक बात सुनिश्चित है कि मशीन के पास हृदय कभी नहीं होगा। हम ऐसी मशीन कभी भी न बना पाएंगे जो भाव अनुभव कर सके। विचार का गणित बिठानेवाली मशीनें तो बन गयी हैं, तुमसे ज्यादा ठीक से जोड़-घटाना करती हैं, तुमसे ज्यादा अच्छी उनकी स्मृति है, बड़े से बड़े गणितज्ञ जो सवाल घंटों में पूरा करे वह मशीन क्षण मैं पूरा कर देती है। इसलिए विचार तो मशीन भी कर सकेगी, लेकिन भाव मशीन न कर सकेगी।

मनुष्य की महिमा उसके भाव में है। उसके भाव के कारण ही वह मनुष्य है। इसलिए जितनी भावुकता हो, उतने तुम ज्यादा मनुष्य हो। और भाव ही भाव बह जाए तुम्हारे जीवन में तो प्रार्थना का जन्म हो गया।

और फिर परमात्मा के सामने न रोओगे तो कहा रोओगे? अगर उस द्वार पर भी न रो सके तो फिर कहां रोओगे? न रोने का मतलब होता है, अकड़। मैं और रोऊं! परमात्मा के सामने भी अकड़ लेकर जाओगे? वहां तो छोटे बच्चे हो जाओ।

मेरे उर की पीर पुरातन
तुम न हरोगे कौन हरेगा?
किसका भार लिए मन भारी
जगती में यह बात अजानी,
कौन अभाव कि ये मन सुनना
दुनिया की यह मौन कहानी
किंतु मुखर हैं जिससे मेरे
गायन-गायन, अक्षर-अक्षर
मेरे उर की पीर पुरातन
तुम न हरोगे कौन हरेगा?
सर-सरिता, निर्झर धरती के
मेरी प्यास परखने आए,
देख मुझे प्यासा का प्यासा
वे भरमाए, वे शरमाए,
ओरछोर नभमंडल घेरे
हे पावस के पागल जलधर,
मेरे अंतर के सागर को
तुम न भरोगे कौन भरेगा?
मेरे उर की पीर पुरातन
तुम न हरोगे कौन हरेगा?

वहां तो रोओ; वहां तो पुकारो। और ध्यान रखना, आज शायद तुम पीड़ा में पुकारोगे, कल तुम्हारी पीड़ा रूपांतरित हो जाएगी और आनंद के अश्रु तुम्हारे भीतर जन्मने लगेंगे। पीड़ा में पुकार है, उपलब्धि में अंत है।

आंसू दोनों ही तरफ से होंगे। पहले इसलिए कि तुम रिक्त हो, इसलिए कि तुम भर गये हो। बहो आंसुओं में। तुम्हारा कल्मष ले जाएंगे आंसू। तुम्हारी धूल झाड़ देंगे।

वैज्ञानिक से पूछो कि आंसू का उपयोग क्या है? तो वैज्ञानिक कहता है, आंख पर धूल न जमने पाए, यह आंसू का उपयोग है। इसलिए जरा-सी कंकरी चली जाती है आंखों में, तत्क्षण आंसू आ जाते हैं। आंसू का मतलब यह होता है, कि आंख पानी बहा रही है ताकि कंकर बह जाए। प्रतिपल तुम्हारी पलक झपकी है। तुम्हें पता है पलक झपक कर क्या करती है? पल आर्द्र है, उसकी आर्द्रता के कारण वह तुम्हारी आंख को पोंछ जाती है। जैसे गीले कपड़े से कोई चीज पोंछ दी गयी हो। तो आंख जाती रहती है, स्वच्छ रहती है, धूल नहीं जमने पाती है। यह तो वैज्ञानिक कहता है बाहर की बात। भक्त से भीतर की बात पूछो। वह कहता है, भीतर की आंख भी धुल जाती है आंसुओं से। बाहर की आंखें तो धुलती ही है, भीतर की आंख जिसको तीसरा नेत्र हो, शिवनेत्र कहो—वह धुलता है। और सुनते भी कई बार अनुभव किया होगा, अगर हृदयपूर्वक तुम रो लिये तो पत्थर उतर जाते हैं सिर से। कुछ हलका हो जाता है। तुम भार रहित हो जाते हो।

इस कला को फिर जगाओ। तुम्हें भुला दी गयी है कला—संस्कृति के नाम पर, सभ्यता के नाम पर। अकड़ तुम्हें सिखा दी गयी है! काश! तुम रो सको तो तुम पिघलना शुरू हो जाओ। और पिघलने में ही प्रार्थना है।

चौथा प्रश्नः भक्ति को आप प्रेम की उपमा क्यों देते हैं? क्या कोई और सम्यक उपमा नहीं है?

प्रेम भक्ति के लिए उपमा ही नहीं है, प्रेम भक्ति के लिए ऊर्जा है। उपमा ही नहीं है। तुम्हें समझाने के लिए ही नहीं कह रहा हूं कि प्रेम भक्ति है। प्रेम भक्ति है! यह प्रेम की ही ऊर्जा है तुम्हारे भीतर जो आज नहीं कल भक्ति में रूपांतरित होगी। प्रेम बीज है, भक्ति अंकुरण हो गया, बीज टूट गया। जब भी तुमने किसी को प्रेम किया है तो तुम्हें थोड़ी-सी प्रार्थना की झलक मिली ही है। इसीलिए तो प्रेम करनेवालों को लोग पागल समझ लेते हैं। क्योंकि जब तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाता है तो तुम्हें दूसरे में ऐसा कुछ दिखायी पड़ने लगता है जो किसी को दिखायी नहीं पड़ता। एक स्त्री के प्रेम में तुम पड़े, कि एक पुरुष के प्रेम में तुम पड़े, और तुम्हें स्त्री में एकदम देवी दिखायी पड़ने लगती है—जो किसी को दिखायी नहीं पड़ती। स्त्री को एकदम तुममें देवता दिखायी पड़ने लगता है जो तुमको भी दिखायी नहीं पड़ता।

तुम्हें चौंक नहीं हुई कभी-कभी? जब किसी स्त्री ने कहा कि आप तो मेरे देवता हैं और तुम्हारे चरणों में गिर गयी हूं। तुम्हें विचार नहीं उठा कि मैं और देवता! मुझे भी पता नहीं है। तुम जब किसी स्त्री के आगे झुके हो अपने प्रेम की प्रार्थना लेकर, जब तुमने किसी स्त्री को प्रेम से भरकर देखा है, तो तुम्हें उसमें कुछ अलौकिक दिखायी पड़ा है, तभी। तुम्हें कुछ झलक मिली है परमात्मा की। यह झलक जल्दी ही खो जाती है, ज्यादा देर टिकती नहीं, क्योंकि झलक ही है, इसको तुमने कमाया नहीं है; और प्राकृतिक है, आध्यात्मिक नहीं है, इसलिए ज्यादा देर टिकेगी नहीं।

इसलिए सभी प्रेमी अंत में जीवन ने अनुभव करते हैं कि उन्हें धोखा दिया गया। थोड़े दिन तक जिससे तुमने प्रेम किया उसमें परमात्मा दिखायी पड़ता है, फिर जल्दी ही आदमी दिखायी पड़ेगा—कितनी देर तक परमात्मा दिखायी पड़ेगा? कभी-कभी एक स्त्री से मिल लिए, कभी-कभार, तो ठीक, लेकिन जब चौबीस घंटे उसके साथ रहोगे तो असलियत तो जमीन की है। वह कभी नाराज भी होगी, कभी चीखेगी-चिल्लाएगी भी, कभी सामान भी तुम पर फेंकेगी, कभी तुम भी उसे मारने पर उतारू हो जाओगे, क्रोध भी करोगे, झगड़ा-झंझट भी होगा। तब तुम्हें शक होने लगता है कि मामला क्या है? मुझे देवी दिखायी पड़ी थी, यह महादेवी सिद्ध हो रही है। स्त्री को भी शक होने लगता है कि मैंने देवता देखा था और यह तो साधारण आदमी सिद्ध हो रहा है। धोखा दिया गया।

नहीं, किसीने किसी को धोखा नहीं दिया; किसीने किसी को बेईमानी नहीं की है। लेकिन प्रेम में एक झलक मिल जाती है भक्ति की और तुम दूसरे को दिव्य मान बैठते हो। प्रेम में एक झरोखा खुलता है—प्राकृतिक

झरोखा—लेकिन वह ज्यादा देर स्थायी नहीं हो सकता। ऐसा ही समझो कि बिजली कौंधी आकाश में, अब इसमें तुम कोई किताब थोड़े ही पढ़ सकोगे? वही बिजली तुम्हारे घर में भी है, रोशनी कर रही है, फिर तुम किताब पढ़ो, या जो तुम्हें करना हो करो। दोनों बिजलियां हैं, लेकिन आकाश की बिजली प्राकृतिक घटना है, तुम्हारे घर में जो बिजली पंखा चलाती है, दिये जलाती है, उसे तुमने बांध लिया, उसे तुमने अपने बस में कर लिया। उसे बस में करने के लिए तुम्हें बड़ी साधना करनी पड़ी।

प्रेम प्राकृतिक कौंध है। उसी कौंध को जब कोई धीरे-धीरे निरंतर अभ्यास से अपने बस में कर लेता है, तो भक्ति का जन्म होता है। फिर दिया भीतर जलता है, फिर रोशनी उसकी सदा रहती है। फिर ऐसा नहीं होता कि तुम्हें किसी एक स्त्री में भगवान दिखायी पड़े, किसी एक पुरुष में भगवान दिखायी पड़े, फिर तो तुम्हें ऐसा होने लगेगा कि तुम्हें भीतर रोशनी जलती है तो तुम जहां भी देखते हो वही भगवान दिखायी पड़ता है। प्रेम है किसी एक में कभी-कभार भगवान का दिखायी पड़ जाना, भक्ति है सब में सर्वत्र सदा भगवान का दिखायी पड़ना।

लेकिन उपमा ही नहीं है।

और अगर तुम यह सोचो कि सिर्फ उपमा भी है तो भी इससे बेहतर कोई उपमा नहीं हो सकती। क्योंकि प्रेम से ज्यादा और इस जगत में ऐसा कोई तत्व नहीं है जिसके द्वारा हम भक्ति को समझा सकें। तुम्हारे अनुभव में और कोई ऐसी घटना नहीं है जिसके द्वारा हम भक्ति की तरफ इशारा कर सकें। ऐसा ही समझो कि तुम एक देश में रहते हो जहां कमल का फूल नहीं खिलता; कमल का फूल नहीं होता। वहां समझो गेंदे के ही फूल होते हैं। और कोई आया है परदेश से कमल के फूलों की खबर लेकर, वह तुम से पूछता है कि कमल का फूल कैसा होता है? वह क्या कहे तुमसे? गेंदे के फूल और कमल के फूल में बड़ा फर्क है। लेकिन उसके पास एक ही उपाय है कि वह तुमसे कहे कि थोड़ा-सा गेंदे के फूल से तुम्हें अनुभव हो सकता है। ऐसा ही फूल होता है, बहुत बड़ा होता है, बहुत सुगंधित होता है। बहुत कोमल होता है, जल पर तैरता है, और ऐसा तैरता है कि जल पर होता है और जल उसे छू भी नहीं पाता।

लेकिन क्या यह उपमा जिसने दोनों जाने हैं—प्रेम और भक्ति, गेंदे का फूल और कमल का फूल—उसे ठीक मालूम पड़ेगी? उसे ठीक मालूम ही पड़ेगी। लेकिन फिर भी जिन्होंने गेंदे के फूल ही जाने हैं उनको समझाने का और क्या उपाय है। तुमने प्रेम जाना है थोड़ा सा मां से, पिता से, बेटे से, पत्नी से, भाई से, मित्रों से—तुमने प्रेम की थोड़ी-थोड़ी झलकें पायी हैं, तुम्हारे जीवन में जो सबसे ऊंची घटना है वह प्रेम है—भक्ति के लिहाज से प्रेम सबसे नीची घटना है, मगर तुम्हारे जीवन में जो सबसे ऊंची घटना है वह प्रेम है—तो तुम्हारी सबसे ऊंची घटना से ही भक्ति को समझाया जा सकता है। और किसी तरह समझाने से भ्रांति हो जाएगी। अगर तुम प्रेमियों के वचन सुनो तो तुम्हें समझ में आएगा।

यह दूर की वादी से किसने मुझे सदा दी
एक आग मेरे दिल में मुहब्बत की लगा दी
फूलों की बहार और सितारों की जवानी
हर चीज तेरे मस्त तबस्सुम पै लुटा दी
यह कौन मेरे रूह की गहराइयों में झूमा
उजड़ी हुई बस्ती यह मेरी किसने बसा दी
यह बात जिसे दिल ने छिपाया था बामुश्किल
दुनिया को मेरी मस्त निगाहों ने बता दी
फिर उठने लगे रूह से रंगीन शरारे
फिर हिज्र की रूदाद पपीहे ने सुना दी
फिर कर दिया मदहोश मुझे होश में लाकर

फिर मस्त निगाहों ने निगाहों को पिला दी
यह गाया तो प्रेम में है, प्रेम का गीत है। पर क्या इससे तुम्हें भक्ति की थोड़ी झलक नहीं मिलती?
फिर कर दिया मदहोश मुझे होश में लाकर
फिर मस्त निगाहों ने निगाहों को पिला दी
माना अभी और बहुत ऊंचे जाना होगा, यह ऊंची से ऊंची पहाड़ी है जिस पर तुम खड़े हो सकते हो, मगर इस पर अगर तुम खड़े हो जाओ तो तुम्हें दूर का आकाश दिखायी पड़ेगा।
उस निगाहे-मस्त से जब बज्म में आती हूं मैं
कैफोरंगो नूर को दुनिया पे छा जाती हूं मैं
चाहती तो हूं कि मौजों से रहूं दामनकशां
किश्ती-ए-गम हूं भंवर में फिर भी आ जाती हूं मैं
सुबह तक ठहरा नजर आता है दौरे आस्मां
जब तसव्वुर में तेरे रातों को खो जाती हूं मैं
जाम गिर पड़ता है साकी थरथरा जाता हैं हाथ
तेरी आंखें देखकर नशे में आ जाती हूं मैं
यह गीत तो प्रेम का है, लेकिन क्या इससे तुम्हें कुछ खबर नहीं मिलती?
जाम गिर पड़ता है साकी थरथरा जाते हैं हाथ
तेरी आंखें देखकर नशे में आ जाती हूं मैं
यही तो शिष्य और गुरु के बीच घटता है, तब उसे हम श्रद्धा कहते हैं।
जाम गिर पड़ता है साकी थरथरा जाते हैं हाथ
तेरी आंखें देखकर नशे में आ जाती हूं मैं
और यही फिर एक दिन भक्त और भगवान के बीच घटता है, उसे हम भक्ति कहते हैं। रोज-रोज आकाश बड़ा होता जाता है। प्रेम ऐसा है जैसे तुम्हारा छोटा-सा घर का आंगन। अब घर के आंगन से आकाश की क्या उपमा? क्या तुलना मगर फिर भी एक बात तो मानोगे न कि तुम्हारे छोटे-से आंगन में भी जो उतरा है, वह भी आकाश ही है। तुम्हारा छोटा-सा आंगन आकाश नहीं है, आकाश बहुत बड़ा है, और भेद तुम्हारे आंगन और आकाश में परिणाम का ही नहीं, गुण का भी है। लेकिन फिर भी जो उतरा है तुम्हारे छोटे-से आंगन में, वह भी तो आकाश ही है। एक छोटे-से सागर की बूंद, जरा-सी बूंद, माना कि सागर नहीं है और इसमें तुम चाहोगे बड़े जहाज चलाने तो न चला पाओगे, इसमें तुम डुबकी भी लगाना चाहोगे तो न लगा पाओगे, लेकिन फिर भी इसे इनकार नहीं किया जा सकता कि यह छोटी-सी बूंद भी सागर की ही बूंद है और इस छोटी-सी बूंद में सागर का सारा राज छिपा है।
वैज्ञानिक कहते हैं अगर हम सागर की एक बूंद को पूरा-पूरा समझ लें तो हमने पूरे सागर को समझ लिया। एक बूंद को समझ लेने से पूरा सागर समझ में आ जाएगा। निश्चित आ जाएगा। सूत्र तो वहां है, संक्षिप्त है।
प्रेम में सारा राज छिपा है। इसलिए मैं जब प्रेम से तुलना देता हूं भक्ति की, तो तुलना तो है ही, उपमा तो है ही, लेकिन एकमात्र उपमा ही नहीं है, प्रेम में कुछ-कुछ भक्ति का अंश उतरा है। और कुछ-कुछ प्रेम का अंश भक्ति में सदा शेष रहता है। दोनों जैसे जुड़े हैं। प्रेम ऐसा है जैसे जमीन में गड़ा है और भक्ति ऐसी है जैसे आकाश में उड़ती है। प्रेम ऐसा है जैसे तुमने पिंजड़े में पक्षी को बंद कर रखा है, और भक्ति ऐसी है जैसे पिंजड़े से पक्षी उड़ गया। खुले आकाश को फिर उसने पा लिया है।
मगर मैं जानता हूं कि प्रश्न तुम्हारे मन में क्यों उठा है? प्रश्न इसलिए उठा है कि सदियों-सदियों से तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोगों ने प्रेम की निंदा की है, प्रेम को गर्हित बताया है, प्रेम को कुत्सित कहा है। प्रेम पाप है

ऐसी घोषणा की है। इसलिए तुम्हारे मन में यह सवाल उठा है कि मैं कोई और उपमा चुन लूं तो अच्छा। तुम्हारे मन में प्रेम की कहीं निंदा होगी। तुम्हारे मन में प्रेम का कहीं अस्वीकार होगा। तुम्हारे मन में प्रेम से कहीं भय है। और तुम्हारी बात भी मैं समझता हूं, तुम्हारे तथाकथित महात्माओं की बात भी मैं समझता हूं। लेकिन, जिसको प्रेम में भय है उसने प्रेम को समझा नहीं है, प्रेम की नासमझी के कारण भय पैदा हुआ है। जो आंगन से भयभीत है, वह आंगन को समझा नहीं है। आंगन में दीवालें भी थीं और आंगन में आकाश भी था, उसने दीवालों पर ज्यादा ध्यान दे दिया और आकाश को भूल गया। मैं चाहता हूं तुम आकाश पर ज्यादा ध्यान दो, दीवालों को भूलो। दीवालें तो हैं और रहेंगी। आदमी शरीर की दीवाल में है तब तक दीवालें रहती हैं, तब तक दिवालें नहीं मिटती हैं। कैसे मिटेगी, तुम्हारी ही दीवाल नहीं मिट रही है तो और कैसे तुम दीवालें मिटा पाओगे? तुम भाग जाओगे हिमालय में लेकिन शरीर से कहां भाग कर जाओगे?

अच्छा यही हो कि तुम दीवालों को ज्यादा महत्व न दो, उपेक्षा करो। रहने दो दीवालें आंगन के चारों तरफ, कोई चिंता की बात नहीं है, लेकिन आंगन आकाश की तरफ खुला है, आकाश आंगन की तरफ खुला है, उसे स्मरण करो—उसी द्वार से मुक्त हो सकोगे।

मेरे मन में प्रेम का बड़ा सम्मान है। और मैं उस आदमी को अभागा मानता हूं जिसको जीवन में प्रेम का अनुभव नहीं है। जिसने प्रेम ही न जाना वह परमात्मा को नहीं जान पाएगा। लाख करे उपाय। फिर उसके उपाय बुनियादी रूप से गलत होंगे। क्यों गलत होंगे? वह उपाय ही क्यों करेगा? उसके उपाय भय पर आधारित होंगे या लोभ पर।

दुनिया में दो ही चीजें कारगर हैं—या तो प्रेम, या भय। लोभ भय का ही अंग है, दान प्रेम का अंग है। या तो लोग भयभीत होकर परमात्मा की तरफ जाते हैं—महात्माओं को यही सस्ता मालूम पड़ा कि लोगों को भयभीत कर दो, डरा दो। नर्क। कहीं भी नहीं है नर्क। और अगर कहीं है, तो तुम्हारे भीतर है। बाहर तो नहीं है। उसकी कोई भूगोल नहीं है। लेकिन डरा दो कि नर्क में सड़ोगे अगर भगवान की प्रार्थना न की। अगर मंदिर न गये, तो नर्क की आग में डाले जाओगे, नर्क के कीड़े बनोगे। और नर्क के खूब बीभत्स चित्र खींचे। उनसे लोग घबड़ा गये। और जब यह चित्र खींचे गये—आज से पांच हजार साल पहले—जब लोग बड़े भोले-भाले थे, बहुत घबड़ा गये होंगे। आज का आदमी तो इतना भोला-भाला नहीं, वह तो कहेगा—होगा जब देखेंगे। और अभी कौन मरे जा रहे हैं। और मर भी गये तो फिर वहां देख लेंगे। आखिर हम तो वहां रहेंगे, सब नर्क के लोगों को इकट्ठा कर लेंगे, ऐसा कोई आसान थोड़े ही है! कुछ ना कुछ उपद्रव खड़ा करेंगे—हड़ताल, घेराव; उलट देंगे सत्ता को वहां। आज का आदमी तो चालाक है।

लेकिन जब नर्क की कहानियां गढ़ी गयीं तब आदमी बड़ा सरल था। आदमी प्रभावित हो जाता था। निर्दोष था आदमी। सीधा-सादा था, भोला-भाला था। जैसे छोटे बच्चे होते हैं। छोटे बच्चे को भूत की कहानी सुना दो, वह कहता है अब मैं सो नहीं सकता, वह अपनी मां के पास ही बैठा, वह कहता अब मैं जा नहीं सकता अंधेरे में मुझे डर लगता है। अब मां लाख उसे समझाए कि सिर्फ कहानी थी, मगर अब उसकी समझ में नहीं आता कि यह कहानी थी। अब वह कहता है—मैं तेरे ही पास सोऊंगा। अब उसे छोटी-छोटी चीज डराती है। पांच हजार साल पहले लोग भोले-भाले थे, प्राकृतिक थे। तब उन्हें खूब डरवा दिया, चालबाज लोगों ने, बेईमान लोगों ने। इसको मैं बेईमानी कहता हूं। इस भय के कारण वे जाकर थरथर कांपने लगे, मंदिरों की प्रार्थनाएं करने लगे, पूजा करने लगे, अर्चना करने लगे, घुटनों पर खड़े हो गये। लेकिन इसके पीछे भय था। और ध्यान रखना, जहां भय है वहां प्रेम पैदा नहीं होता।

भय और प्रेम विपरीत हैं। तुमने भगवान की प्रार्थना तो की लेकिन यह प्रार्थना के पीछे भय था सिर्फ। तुम जो भगवान को मानते हो वह तुम्हारे भय का ही विस्तार है। और अगर भय का विस्तार है तो परमात्मा से तुम्हारा कभी संबंध न हो सकेगा। उससे संबंध तो प्रेम के कारण हो सकता है। तुम जीवन के दुखों से घबड़ा गये, जीवन

की परेशानियों से घबड़ा गये, चिंताओं से घबड़ा गये, मौत से घबड़ा गये, मौत आती है, इसलिए तुम जाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तुम्हारी प्रार्थना झूठी है। यह प्रार्थना है ही नहीं।

एक और प्रार्थना है जो जीवन के आनंद से पैदा होती है। जो जीवन में सुख, जीवन की शांति, जीवन में खिलते अनेक फूलों के प्रति कृतज्ञता से पैदा होती है। तुम्हें परमात्मा ने जीवन दिया है, इसलिए तुम धन्यवाद देने गये। यह और तरह की प्रार्थना है। और परमात्मा तुम्हें कल मार डालेगा, मौत आ रही है, इसलिए तुम प्रार्थना करने गये, यह और ही तरह की प्रार्थना है। यह बिलकुल अलग-अलग प्रार्थनाएं हैं। पहली प्रार्थना जो तुमने परमात्मा के जाकर की कि तूने मुझे जीवन दिया, मैं धन्यभागी हूं, तूने मुझ पर इतनी कृपा की, इतना प्रसाद बरसाया; तूने चांद-तारे बनाए, तूने इतने फूल खिलाए, तूने जगत को इतनी हरियाली से भरा, तूने इतने प्यारे लोग बनाए, तूने मुस्कुराहट की सुविधा दी, तूने अदभुत आंसू बनाए, इस सब के लिए तुम धन्यवाद देने गये हो, शिकायत करने नहीं गये हो, यह प्रार्थना अलग ही बात है—यही प्रार्थना है! तुम कहने गये हो कि मैं अनुगृहीत हूं; मेरे धन्यवाद, मेरे हजारों धन्यवाद स्वीकार कर; मैं कैसे उऋण हो सकूंगा तुझसे; मेरी कोई पात्रता नहीं थी, तूने इतना अपूर्व जीवन दिया, इतना अमूल्य जीव दिया, मुझे अपात्र पर इतनी अनुकंपा!

इस भेद को फर्क करना। मैं ऐसा ही धर्म सिखाता हूं जो तुम्हारे अहोभाव से उठे।

फिर एक धर्म है जो भय भर खड़ा है। वह कहता है—डरो; सब गलत है; यह भी पाप वह भी पाप, यह भी मत करो, वह भी मत करो; वह तुम्हें इतना संकीर्ण कर देता है और इतना घबड़ा देता है कि तुम जाकर कंपने लगते हो मंदिर में। तुम्हारे कंपन में आनंद नहीं है। कैसे होगा? तुम्हारे कंपन में अहोभाव कैसे होगा? गहरे में तुम ऐसे परमात्मा को प्रेम कैसे कर सकोगे जो मृत्यु दे रहा है, बीमारी दे रहा है, गरीबी दे रहा है; जो नर्क बना रहा है, ऐसे परमात्मा को तुम कैसे प्रेम कर सकोगे? गहरे में तुम घृणा करोगे। कहो कुछ भी लेकिन गहरे में तुम अगर मौका मिल जाए तो ऐसे परमात्मा की गर्दन दबा दोगे। क्यों उसने नर्क बनाया? क्यों इतना दुख? क्यों इतनी कामवासना का जाल फैलाया? क्यों इतने बंधन? नहीं, ऐसे परमात्मा को तुम आनंद से स्वीकार नहीं कर रहे हो। तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं ने शोषण किया है। तुम्हारे भय का शोषण किया है। भय के नाम पर नर्क। और फिर तुम्हें लोभ भी दिया है कि अगर हम जो कहते हैं वैसा करोगे, तो स्वर्ग का पुरस्कार। यह सामान्य प्रक्रिया है लोगों को जबरदस्ती किसी दिशा में लगाने की—विपरीत जाओगे तो दंड पाओगे, अनुकूल रहो तो पुरस्कार पाओगे। यह लोभ और भय के बीच आदमी को फंसाना है।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं—न तो कोई नर्क हैं न कोई स्वर्ग है। नर्क और स्वर्ग चित्त की अवस्थाएं हैं। अगर तुमने प्रेम किया तो तुम स्वर्ग में हो, अगर तुमने घृणा की तो तुम नर्क में हो। अगर तुमने करुणा की तो तुम स्वर्ग में हो, अगर तुमने क्रोध किया तो तुम नर्क में हो। तुम किस नर्क की कल्पना कर रहे हो जहां आग जलेगी! क्रोध में रोज जलती है। यह तो प्रतीक है। और जब तुम किसी को प्रेम से कुछ देते हो, भेंट करते हो, तब तुम स्वर्ग में हो जाते हो। तब स्वर्ग की शीतल हवा बहती है। तब स्वर्ग की पावन सुगंध तुम्हारे पास होती है। दो और देखो। किसी को सताओ और नर्क! किसी को बचाओ और स्वर्ग।

तुमने बचाने का सुख नहीं जाना? कोई नदी में डूब रहा हो और तुम जाकर बचा लेते हो। एक आह्लाद भर जाता है। तुमसे भी कुछ सार्थक हुआ। तुम्हारे जीवन में एक कृतार्थता का भाव होता है। या तुम एक गीत रचो। जो भी इस गीत को गुनगुनाएगा, खुशी से भरेगा, इस कल्पना से ही तुम्हारे भीतर बड़ा आनंद होता है—इसलिए स्रष्टा आनंदित रहते हैं। कोई चित्र बनाता है, कोई मूर्ति बनाता है कोई गीत रचता है, कोई संगीत छेड़ता है। क्या आनंद है। क्या आनंद होगा संगीत छेड़ने का? कोई आनंदित हो जाएगा, कोई डोलेगा मस्ती में। तुम बांट रहे हो कुछ। प्रेम बांटना है, प्रेम दान है। प्रेम देना है। और जब तुम बिना मांगे देते हो, बिना कुछ मांगने की शर्त लगाकर देते हो, तो प्रेम धीरे-धीरे प्रार्थना बनने लगा। जब तुम सिर्फ देते हो, बेशर्त, उस दिन तुम्हारा प्रेम बड़ी ऊंचाइयां लेने लगता है। और इसी प्रेम से एक दिन परमात्मा का अनुभव शुरू होता है।

तुम्हारे प्रश्न का कारण मैं जानता हूं। तुम डर रहे हो। तुम्हारे महात्माओं,ने सिखाया है—प्रेम से बचना, प्रेम बंधन है। प्रेम में फंसे कि गये। प्रेम में उलझे कि संसार में पड़े। मैं तुमसे कहना चाहता हूं—प्रेम बंधन है या मुक्ति, तुम पर निर्भर है। प्रेम अपने में न बंधन है, न मुक्ति है। प्रेम तो ऐसा समझो कि राह के बीच में पड़ा हुआ एक पत्थर है। चाहो तो इसकी वजह से रुक जाओ, और चाहो तो इस पर चढ़ जाओ और इसकी सीढ़ी बना लो। प्रेम को सीढ़ी बनाओगे तो परमात्मा में पहुंच जाओगे। और पत्थर देखकर वहीं बैठ गये रोकर कि अब क्या करना, अब तो अटक गये, तो नर्क में पड़ जाओगे।

प्रेम चुनौती है। बड़ा पत्थर है, समझ चाहिए तो चढ़ पाओगे। लेकिन समझ पैदा की जा सकती है। समझ पैदा करने का ही उपाय धर्म है।

लेकिन गलत धारणाओं को सदियों-सदियों तक दोहराया गया है। तो तुम्हारे मन में ऐसा भाव पैदा हो गया है कि प्रेम तो सांसारिक बात है। और भक्ति असांसारिक बात है, आध्यात्मिक बात है। इसलिए मेरी बातें तुम्हें कभी-कभी अड़चन मालूम पड़ती है।

मैं संसार में और अध्यात्म में कोई विरोध नहीं देखता। एक तारतम्य है। अध्यात्म इसी संसार का आगे फैलाव है। सीढ़ी दर सीढ़ी अध्यात्म इसी संसार का अंतिम शिखर है। जड़ में और फूल में तुम कोई भेद देखते हो? हालांकि भेद तो साफ है। अगर किसी वृक्ष की जड़ें तुम्हारे सामने रख दी जाएं और उसका फूल सामने रख दिया जाए, तो तुम भरोसा न कर पाओगे कि ये फूल इन जड़ों से पैदा हो सकते हैं। जड़ें तो कुरूप होती है, गंदी मिट्टी में दबी होती हैं—कहां फूल, कहां जड़? फूल कैसा सुंदर है, अलौकिक, जैसे उतरा हो परियों के लोक से, इस जगत का नहीं मालूम होता, और जड़ें कुरूप और भद्दी, इरछी-तिरछी, गंदी! जड़ें तो अंधेरे में रहने की आदी हैं और फूल सूरज के साथ गुफ्तगू करता है, जड़ें तो नीचे-नीचे सरकती जाती हैं पाताल की तरफ फूल आकाश की तरफ उठता है, बड़ा भेद है दोनों में—मगर फिर भी क्या तुम्हें यह बात दिखायी नहीं पड़ती कि फूल जड़ों के बिना नहीं हो सकेगा? और अगर फूल न हो तो जड़ों के होने की कोई सार्थकता नहीं है। फूल जड़ों की ही तृप्ति है। जड़ें इसी फूल को लाने के लिए जमीन में सरक रही हैं। इसी फूल को लाने की आकांक्षा में जड़ें कुरूप हो गयी हैं। अंधेरे में रह रही हैं—जमीन से रस पाना है तो जमीन के भीतर जाना पड़ेगा मगर रस पाने की आकांक्षा इसीलिए है कि फूल पैदा हो जाए एक दिन। जड़ों का सौभाग्य जिस दिन फूल खिलता है, जड़ें सार्थक हो गयीं, कृतकृत्य हो गयीं। और यह फूल भी जड़ों के विपरीत नहीं हो सकता क्योंकि जड़ों के बिना इसका क्या अस्तित्व है? जड़ो से ही रसधार पाता है, जीवन पाता है। उन्हीं जड़ों पर निर्भर है।

मैं अध्यात्म को और संसार को ऐसा ही मानता हूं, जड़ और फूल की तरह। संसार जड़ है, अध्यात्म फूल है। ये भिन्न तो बहुत मालूम होते हैं लेकिन भीतर जुड़े हैं। प्रेम को मैं जड़ कहता हूं और प्रार्थना को फूल कहता हूं। काम को मैं जड़ कहता हूं, राम को मैं फूल कहता हूं। और दोनों के भीतर एक ही रसधार बह रही है। एक ही तारतम्य है। एक ही सिलसिला है। वह सिलसिला दिख जाए जिसको उसको मैं समझदार कहता हूं। जिसको वह सिलसिला न दिखायी पड़े, वह जड़ों से लड़ने लगेगा फूलों को पाने की आकांक्षा में। जड़ें काटने लगेगा। इधर जड़ें कटेंगी, इधर फूल कुम्हला जाएंगे। इसलिए तुम्हारे तथाकथित भगोड़े संन्यासी परमात्मा को नहीं पा पाते हैं। जड़ें ही काट दीं तो फूल कहां?

मेरी बात तुम्हें अड़चन की मालूम पड़ती है, तुम्हें समझ में भी नहीं आती है, क्योंकि इतनी बार तुम्हें पुरानी बात कही गयी हैं, इतनी बार कही गयी हैं कि तुम भूल ही गये कि उसमें सचाई है या नहीं?

अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, किसी भी झूठ को दोहराते रहो, दोहराते रहो, दोहराते रहो, वह सच हो जाता है। बस दोहराते रहो, फिकिर ही मत करो कि कोई मानता है कि नहीं मानता, दोहराते रहो, और एक न एक दिन वह सच हो जाएगा। क्योंकि लोग जो बात बहुत दिन दोहरायी गयी है उसीको सच मानते हैं।

तुम हिंदू हो? कैसे तुमने जाना? जन्म के साथ तुम लेकर कोई सर्टिफिकेट न आये थे। मगर किसीने तुम्हारे कानों में दुहराना शुरू कर दिया, पैदा होते ही से कि तुम हिंदू हो। तुम जा भी नहीं सकते थे अपने बल, तुम्हें मंदिर ले जाया गया। तुम हिंदू हो, तुम मुसलमान हो, तुम सिख हो, तुम ईसाई हो, यह बात दोहरायी गयी दोहरायी गयी, दोहरायी गयी, यह प्राणों में उतर गयी। इसके पहले कि बुद्धि पैदा होती उसके पहले ही इस बात ने तुम्हारे भीतर जड़ें जमा लीं। अब तुम सोचते हो—मैं हिंदू हूं। अब तुम सोचते हो—मैं मुसलमान हूं। अब तुम सोचते हो—मैं हिंदुस्तानी हूं, चीनी हूं, जापानी हूं।

एक मित्र ने प्रश्न पूछा है। पंजाब से ही हैं वह भी। मैं थोड़ा हैरान हूं। उन्होंने पूछा है कि अगर कोई देश हमला कर दे तो आप क्या करेंगे? गुरु गोविंद सिंह ने तो तलवार उठायी थी। आप तलवार उठाएंगे? देश की रक्षा कैसे होगी?

देश होने ही नहीं चाहिए। जब तक देश है तब तक उपद्रव है। तब तक रक्षा करो या न करो, उपद्रव जारी रहते हैं। मेरी दृष्टि तुम्हारी समझ में नहीं आती। मैं यह कह रहा हूं—देश होने ही नहीं चाहिए! देश का होना गलत है! अब तक यह तो चलता रहा है कि रक्षा करो, लड़ो, तलवार उठाओ इसके पक्ष में, उसके पक्ष में। हल क्या है? तीन हजार साल में आदमी ने पांच हजार लड़ाइयां लड़ी हैं। फल क्या है? लड़कर भी क्या मिल गया है? तलवार उठाओ तो क्या मिलता है, तलवार न उठाओ तो क्या मिलता है? न तलवार उठाने से कुछ मिला है, न तलवार न उठाने से कुछ मिला है। आदमी वैसा का वैसा तकलीफ में है। एक सीधी बात तुम्हें दिखायी नहीं पड़ती कि ये सीमाएं समाप्त करो! ये सीमाएं उपद्रव है? देश होने नहीं चाहिए। सारी पृथ्वी एक है। तुम देखते नहीं, रोज-रोज यह होता है।

अभी १९४७ के पहले लाहौर पर मुसीबत आती तो हम सब उत्सुक होते, रक्षा के लिए जाते—लाहौर हमारा देश था। अब अगर लाहौर पर बम गिरें तो हम बड़े खुश होंगे कि अच्छा हो रहा है! अच्छा फल मिल रहा है! अब लाहौर हमारा देश नहीं है। लाहौर वहीं के वहीं है। सिर्फ बीच में एक रेखा खिंच गयी। वह रेखा भी जमीन पर नहीं खिंची है, वह रेखा भी नक्शे पर खिंचती है। आदमी नक्शे बनाता हैं, रेखाएं खींच लेता है, उन रेखाओं पर लड़ता है, मरता है।

नहीं, मैं तलवार नहीं उठाऊंगा। तलवार बहुत उठायी जा चुकी। मेरी तलवार किसी और बात के लिए उठी है, किसी बड़ी सूक्ष्म बात के लिए उठी है, इसलिए तलवार भी सूक्ष्म है। स्थूल तलवार मेरे हाथ में नहीं है। लेकिन बड़ी सूक्ष्म तलवार मेरे हाथ में निश्चित है। अब मैं किसी देश के पक्ष और विपक्ष में तलवार नहीं उठाए खड़ा हूं। मैं तो लकीरों के खिलाफ तलवार उठाए खड़ा हूं। लकीरें मिटनी चाहिए। जमीन पर कोई लकीर नहीं होनी चाहिए। न कोई देश अलग होना चाहिए, न कोई जाति अलग होनी चाहिए। यह सारी पृथ्वी हमारी है, हम इसके हैं। जिस दिन दुनिया में यह संभव होगा, उसी दिन युद्ध बंद होंगे। नहीं तो लाख तुम चिल्लाओ कि युद्ध नहीं होने चाहिए युद्ध होते ही रहेंगे। लाख तुम कहो कि हम शांति चाहते हैं। कहोगे शांति चाहते हैं मगर तैयारी युद्ध की करोगे।

अब यह देश तो अहिंसावादी है। लेकिन तैयारी क्या चलती है? कहीं अहिंसक तैयार किये जा रहे हैं? वही फौजें कवायत कर रही हैं, वही 'लेफ्ट-राइट' चल रहा है। अणुबम बनाने की कोशिश चल रही है। गांधीजी का जयजयकार भी चल रहा है। महात्मा गांधी की पूजा चल रही है, अणुबम बनाने का उपाय भी चल रहा है। जहां अणुबम बन रहा है वहां भी महात्मा गांधी की तस्वीर टंगी होगी। उनकी सेवा में ही बन रहा है।

जब तक लकीरें हैं तब तक कठिनाई रहेगी।

मैंने सुना है, जब हिंदुस्तान और पाकिस्तान बंटे तो सारा देश तो बंट गया, एक पागलखाना दोनों देशों की ठीक सीमा पर पड़ता था। और पागलखाने को लेने को कोई भी खास उत्सुक भी नहीं था न इधर के नेता उत्सुक थे, न उधर के नेता उत्सुक थे। कहीं जाए, पागलखाने से किसको लेना-देना था। लेकिन फिर भी कुछ निर्णय तो होना

चाहिए, रेखा कहां से जाएं? रेखा बिलकुल पागलखाने के बीच में जाती थी। अधिकारियों ने कहा—यह पागलखाना कहां जाएगा? फिर यही निर्णय हुआ कि पागलों से ही पूछ लिया जो कि तुम कहां जाना चाहते हो। पागल इकट्ठे किये गये। पागलों को बहुत समझाया गया कि तुम कहां जाना चाहते हो? तुम साफ-साफ कह दो। वो पागल कहें कि हम तो यहीं रहना चाहते हैं। अधिकारियों ने सिर पीट-पीट लिया कि तुम समझो जी। मगर होंगे पंजाबी! उन्होंने कहा, तुम हम तो यहीं रहेंगे। सत श्री अकाल, हम तो यहीं रहेंगे। हमें जाना ही नहीं कहीं। और वे भी ठीक कह रहे थे। क्योंकि वे कहते थे—जाएं क्यों? हम पाकिस्तान क्यों जाएं, हिंदुस्तान क्यों जाएं? हम तो यहां मजे में हैं। फिर उनको समझाया अधिकारियों ने कि कोई कहीं जाएगा नहीं भाई, यह तो सिर्फ लकीर खींचने की बात है। तुम यहीं रहोगे। मगर तुम्हें पाकिस्तान में रहना है कि हिंदुस्तान में। उन्होंने कहा—यह और हद हो गयी! हम तो समझते थे हम पागल हैं, अब तुम पागल मालूम पड़ते हो। अगर रहेंगे यहीं, तो फिर पाकिस्तान क्या, हिंदुस्तान क्या? अब जाना ही कहीं नहीं है तो जाने की बकवास क्यों? न समझा सके पागलखाने के लोगों को।

फिर यही रास्ता था कि बीच से पागलखाना दो हिस्सों में बांट दिया जाए। तो एक दीवाल उठा दी गयी बीच में। तब से आधा पाकिस्तान में चला गया पागलखाना, आधा पागलखाना हिंदुस्तान में आ गया। मगर पागल अभी भी बीच की दीवाल पर कभी-कभी चढ़ जाते हैं और एक-दूसरे से बात करते हैं, और कहते हैं—भाई, बड़ी अजीब बात है, तुम भी वहीं, हम भी वहीं, मगर तुम पाकिस्तानी हो गये, हम हिंदुस्तानी हो गये! यह बड़ा, यह समस्या हल नहीं होती। जहां तुम हो, तुम वहीं हो, जहां हम हैं, हम वहीं हैं, सब वहीं के वहीं हैं, सब वैसा का वैसा है, लेकिन तुम अब हमारे न रहे, हम तुम्हारे न रहे। सिर्फ एक बीच में दीवाल खिंच गयी।

जमीन से देशों की सीमाएं जानी चाहिए। धर्मों की सीमाएं जानी चाहिए। जातियों की सीमाएं जानी चाहिए। सीमाएं जानी चाहिए। मेरी तलवार भी उठी है। मगर वह सूक्ष्म तलवार है। वह तलवार सीमाओं के खिलाफ उठी है। न मैं हिंदुस्तानी हूं, न मैं पाकिस्तानी हूं; न मैं हिंदू हूं, न मुसलमान हूं; न मैं जैन, न मैं बौद्ध। और मैं चाहता हूं इस दुनिया में इस तरह के लोग बढ़ते जाएं, बढ़ते जाएं, जो किसी सीमा में अपने को आबद्ध न मानते हो। इसी तरह के लोगों को मैं संन्यासी कह रहा हूं।

उन मित्रों ने यह भी पूछा है कि आपके ये संन्यासी क्या करेंगे अगर देश पर हमला हो जाए?

तुम्हें पता है ये संन्यासी एक देश के नहीं हैं। यहां करीब-करीब सारी दुनिया से संन्यासी हैं। इनका कौन-सा देश है? इनका कोई देश नहीं है। ये पहली दफा विश्व के नागरिक पैदा हो रहे हैं। ये किसी देश के पक्ष और विपक्ष में नहीं है। लेकिन तुम समझ नहीं पाते, तुम्हारी जड़ता पुराने दिनों से चली आ रही हैं। पहले कभी किसीने तलवार उठायी थी, तो तुम सोचते हो अभी भी तलवार से काम चलेगा। न तब काम चला, न अब काम चलनेवाला है। और अब दुनिया बहुत छोटी हो गयी है, अब दुनिया बहुत करीब आ गयी है अब भाईचारा फैलना चाहिए। और मैं यह नहीं कहता कि 'हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई', क्योंकि वह बकवास भी कुछ काम नहीं आती। मैं कहता हूं—हिंदू भी हिंदू नहीं, मुसलमान-मुसलमान नहीं; तो भाई-भाई हो सकेंगे। 'हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई,' 'हिंदू-हिंदू रहे, मुसलमान-मुसलमान रहे और दोनों भाई-भाई, यह भी काम नहीं चलता। वह तो वही हुआ कि कहीं के वहीं रहे, फिर जाना कहां है!

अभी तुम देखते थे न, पहले चीनी-हिंदी भाई-भाई हुआ करते थे, फिर बीच में आठ-दस साल बंद हो गया भाई-भाई, अब फिर होने लगे। अभी कल अखबार मैंने देखा कि 'चीनी-हिंदी भाई-भाई'!अब फिर, अब झंझट खड़ी करनी है। भाईचारा तभी संभव है जब तुम अपना हिंदूपन छोड़ो, मैं अपना मुसलमानपन छोड़ूं तो भाई-भाई पैदा होते हैं। मैं मुसलमान रहूं, तुम हिंदू रहो, कैसे भाई-भाई? तुम्हारे हिंदू होने की घोषणा में, मेरे मुसलमान होने की घोषणा में भाईपन समाप्त हो गया।

यहां हम एक नयी दुनिया का सपना देख रहे हैं। यह बिलकुल बीज है। यह कब वृक्ष बनेगा, कहना कठिन है। लेकिन तुम पुरानी बातों को यहां बीच में मत लाओ। मैं यहां किसी पुरानी बात को सिद्ध करने के लिए नहीं बैठा हूं। मेरी उत्सुकता भविष्य में है, अतीत में नहीं है। और तुम मुझे न समझ पाते होओ, तो थोड़ा और समझने की कोशिश करो, और ध्यान करो, और प्रार्थना करो। मगर अपनी नासमझी के प्रश्न मेरे पास मत लाओ। उनमें समय खराब मत करो।

अब उन्हीं सज्जन ने पूछा है कि आपने यह कह दिया कि जनता पार्टी में सब असंत हैं। मैंने तो कहा नहीं। उन्होंने सुन लिया होगा। मैं तो कुछ और ही कह रहा था। मैं तो यह कह रहा था कि संतों को इकट्ठा करके क्या कोई जनता पार्टी बनानी है? उन्होंने सुन लिया कुछ और। उन्होंने सुन लिया कि मैं यह कह रहा हूं कि जनता पार्टी में सब असंत हैं। तुम क्या सुन लेते हो!! मैं कैसे कह सकता हूं जनता पार्टी में सब असंत हैं। महात्मा मोरारजी देसाई, असंत हो सकते हैं? और बाबा चरणसिंह असंत हो सकते हैं? बात बिलकुल गलत है, सब महात्मा वहां हैं? अब महात्मा मोरारजी देसाई में कोई भी कमी है महात्मा होने की? परमहंस अवस्था में हैं, स्वमूत्र-पान करते हैं। स्वमूत्र-पान तो सिर्फ परमहंस ही करते हैं। यह तो आखिरी ऊंचाई है ज्ञान की। मैंने कभी कहा नहीं कि असंत हैं कोई। लेकिन तुमने सुन लिया होगा। अब तुम पंजाबी ही नहीं हो, जनता पार्टी में भी हो और झंझट है! दुबले और दो असाढ़! करेला और नीम चढ़ा!

थोड़ी बुद्धि को निखारो। मुझे सुनते समय जल्दी-जल्दी निष्कर्ष मत लो और जल्दी-जल्दी सवाल भी मत खड़े करो। सोचो, विचारो। यहां कोशिश यह है कि तुम्हारे भीतर सोच-विचार का जन्म हो। तुम सोचना-विचारना ही नहीं चाहते। तुम मान लेने को आतुर हो। तुम बुद्धि को जरा-सा भी श्रम नहीं देना चाहते। तुमने अपनी धारणाएं पकड़ रखी हैं, तुम उन्हीं को पकड़े रखना चाहते हो। और मैं यह भी नहीं कह रहा, अगर तुम्हें इन धारणाओं से आनंद मिल रहा हो तो मेरे भाई, यहां आए किसलिए? तुम अपनी धारणाओं में आनंद लो! तुम मस्त हो अपनी धारणा में तो मैं कहता हूं—भगवान तुम्हें सुखी रखे।

तुम यहां आए हो, उसका अर्थ ही यही है कि तुम अपनी धारणाओं में आनंदित नहीं हो। तुम तलाश कर रहे हो। नहीं तो यहां आने की क्या जरूरत थी? तुम यहां आए हो, उसका मतलब ही यह है कि तुम जो अब तक मानते रहे हो उससे तृप्ति नहीं हो रही है। उससे तृप्ति भी नहीं हो रही है लेकिन उसको छोड़ने की भी हिम्मत नहीं कर पाते हो। सोचने का भी साहस नहीं कर पाते हो। तो फिर क्या होगा?

अगर तुम ठीक ही हो तो मैं नहीं कहता कि तुम बदलो। मैं कौन हूं जो तुम्हें बदलूं? तुम्हीं निर्णायक हो। अगर तुम्हें लगता है कि मैं बिलकुल ठीक हूं, तो बात खतम हो गयी, तुम मेरे जैसे आदमियों के पास आओ ही मत। क्योंकि यहां उनको आना चाहिए जो बदलना चाहते हैं। तुम प्रसन्न हो, हम प्रसन्न तुम्हारी प्रसन्नता में। तुम अपने मस्त रहो अपनी मस्ती में। तुम उठाओ अपनी तलवार और अभ्यास करो। तुम्हें जो करना हो करो। यहां क्यों आए हो? इतना कष्ट क्यों किया?इतनी कृपा नहीं करनी चाहिए।! अगर यहां आए हो तो उसका अर्थ ही यह है कि तुम्हारी धारणाएं कहीं तुम्हारे जीवन को रूपांतरित नहीं कर रही हैं। तुम जीवन को जैसा चाहो वैसा नहीं बना पा रही हैं। तुम्हारे जीवन में कहीं कोई कमी रह गयी है। अगर कमी रह गयी है तो फिर मेरी सहायता ले सकते हो। फिर भी मैं यह नहीं कहता हूं कि जो मैं कहूं उसे मान ही लो। इतना ही कहता हूं—उस पर सोचो, विचारो, ध्यान करो। अगर तुम उस पर सोचोगे, विचारोगे, ध्यान करोगे और तुमने यह भी पाया कि जो मैंने कहा था वह गलत था, तो भी काम हो गया। इतना सोचा, विचारा, ध्यान किया, वही असली काम है। असली सवाल यह नहीं है कि तुम मेरी बातें मान लो, असली सवाल यह है कि तुम्हारी बुद्धि धारा प्रवाहित हो जाए।

इस भेद को खयाल में लेना।

जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह तो केवल एक उपाय है ताकि तुम्हारे भीतर अवरुद्ध चिंतन मुक्त हो जाए। इसलिए बहुत बार तुम पर चोट भी करता हूं। उस चोट का केवल इतना ही कारण है कि उसी चोट में शायद तुम आंख

खोलो। उसी चोट में शायद तुम थोड़े जागो। वह चोट तुम मेरे दुश्मन हो इसलिए नहीं कर रहा हूं। मेरा कोई दुश्मन नहीं है। वह चोट इसलिए भी नहीं कर रहा हूं कि मैं कोई किसी धारणा के विपरीत लड़ रहा हूं। उस चोट का मौलिक आधार सिर्फ इतना ही है कि तुम्हारी अवरुद्ध हो गयी है चिंतन की धारा, तुमने सोच-विचार बंद कर दिया है। तुम उधार स्वीकार में पड़ गये हो। अगर तुमने मेरी भी बातें बिना सोचे-विचारे मान लीं तो कोई फायदा न हुआ मेरे पास आने का। क्योंकि उसका मतलब हुआ तुम फिर उधार के उधार रहे।

यहां तीन तरह के लोग मेरे पास आते हैं। एक, जो अपनी धारणाएं छोड़ते ही नहीं। वे खाली के खाली जाते हैं। दूसरे, जो अपनी धारणा बिलकुल एक क्षण में छोड़ देते हैं और जल्दी से मेरी बात पकड़ लेते हैं। वे भी खाली के खाली जाते हैं। जो मुझसे राजी हो जाते हैं बिना झंझट किये, वे भी खाली जाते हैं। और जो मुझसे नाराज ही रहते हैं, बिना सोच समझे, वे भी खाली जाते हैं। तीसरे तरह का व्यक्ति मेरे पास आकर भरता है। वह सोच-विचार करता है कि जो मैंने कहा उसकी कितनी दूर तक महत्ता हो सकती है। वह अपनी धारणाओं को फिर पुनर्परीक्षण करता है, फिर उघाड़ता है अपने हृदय को, फिर खोजता है और ईमानदारी से खोजता है। कोई पक्षपात नहीं करता कि मेरी पुरानी धारणा है इसलिए मैं कैसे छोडूं। न तो पुराने के कारण पक्षपात करता है, न नये को जल्दी मान लेने की अधीरता दिखाता है। शांति से सोचता-विचारता है। बस मेरा काम पूरा हो गया। तुमने मेरी बात मानी कि नहीं मानी, यह सवाल ही नहीं है। तुमने सोचा, विचारा, तुमने ध्यान किया, तुम्हारे भीतर अवरुद्ध चिंतन मुक्त हो गया, तुम्हारी गंगा फिर सागर की तरफ बहने लगी। तुम मेरी मानो न मानो इसमें कुछ रखा नहीं है। मुझे तुम्हें मनाने से कोई रस ही नहीं है। लेकिन तुम जाग जाओ, इसमें जरूर रस है। फिर जागकर तुम्हें जो ठीक लगे, करना।

सोए-सोए जी लिये हो, अब जागकर जीओ। जागकर चलो। और मैं जानता हूं कि जागा हुआ आदमी हिंदू नहीं हो सकता, मुसलमान नहीं हो सकता, भारतीय नहीं हो सकता, अमरीकी नहीं हो सकता। जागा हुआ आदमी सिर्फ आदमी होता है, चैतन्य होता है। और जागा हुआ आदमी सब तरफ एक ही परमात्मा का आवास देखता है, ब्राह्मण नहीं हो सकता, शूद्र नहीं हो सकता। जागा हुआ आदमी धीरे-धीरे अनुभव करता है एक का ही खेल हो रहा है, एक का ही विस्तार है, उस एक के विस्तार में लीन हो जाता है। उसे परम आनंद, परम अमृत का अनुभव होता है। मैं तुम्हें द्वार खोल रहा हूं। तुम उस द्वार में झांको। लेकिन तुम्हारी धारणाएं तुम्हें झांकने नहीं देती। तुम कहते हो—मैं कैसे झांक सकता हूं? मैं तो यह माने पहले से बैठा हूं। अगर तुम्हारे मानने से तुम्हारे जीवन में रस बह रहा है, तो बिलकुल ठीक है। फिर मेरी बातें सुनना ही मत, क्योंकि इनसे और व्याघात हो जाएगा। फिर ऐसे लोगों के पास मत जाना।

लेकिन तुम आए हो, यह इस बात का सबूत है कि तुम जो मानते रहे हो उससे तुम्हारी क्षुधा नहीं मिट रही है। तुमने जो पकड़ रखा है, उससे तुम्हारे जीवन की संपदा नहीं बढ़ी है। इसलिए तुम टटोल रहे हो कि कहीं असली धन मिल जाए। और मैं तुमसे कहता हूं—असली धन मिल सकता है। लेकिन हाथ खाली तो करो। असली धन झेलने के लिए हाथ के कंकड़-पत्थर तो छोड़ो। अगर तुम कहते हो ये कंकड़ पत्थर नहीं हीरे हैं, तो मैं कहता भी नहीं कि छोड़ो। क्योंकि मैं कौन हूं? तुम्हारा नियंत्रण मैं अपने हाथ में नहीं लेना चाहता। जो मेरे संन्यासी हैं, उनका भी नियंत्रण मेरे हाथ में नहीं है। मेरे संन्यासी होने का इतना ही अर्थ है कि उन्होंने अब अपने जीवन को स्वयं जीना शुरू कर दिया है। मैंने उन्हें कुछ आज्ञा नहीं दी है कि तुम यह करो, यह मत करो; ऐसे उठो, वैसे बैठो; यह खाओ, वह पीओ; यहां जाओ, वहां मत जाओ; मैंने कुछ नहीं उनसे कहा है। मैंने उन्हीं कोई अनुशासन दिया ही नहीं है। मैंने उन्हें सिर्फ चिंतन की एक दिशा दी है, ध्यान का एक भाव दिया है। फिर अपना जीवन तुम निर्णय करो।

और सभी बातें सभी के लिए योग्य होती भी नहीं। किसी आदमी को तीन बजे रात जग जाना ठीक पड़ता है, वह दिनभर ज्यादा ताजा रहता है, तो उसके लिए बिलकुल ठीक है। एक दूसरा आदमी तीन बजे रात जग जाता है वह

दिन भर उदास रहता है और दिनभर जंभाई लेता है, उसके लिए बिलकुल गलत है। इसलिए मैं कोई नियम देता भी नहीं। किसी आदमी को एक भोजन स्वास्थ्यकर होता है, किसी को दूसरा भोजन स्वास्थ्यकर होता है। इसलिए मैं कैसे निर्णय करूं कि तुम क्या भोजन करो? इतना ही मैं कह सकता हूं, अपने सुख की परीक्षा करते रहो कि यह भोजन करने से मेरी शांति, मेरा सुख, मेरा स्वास्थ्य बढ़ता है तो यह ठीक है। कितने बजे उठ आने से सुबह मेरा दिन ताजगी में और आनंद में बीतता है, प्रभु का स्मरण सरल होता है? तो ठीक है। नहीं तो अड़चन खड़ी हो जाती है। अगर मैंने बता दिया कि तीन बजे रात सभी को उठना है ब्रह्ममुहूर्त में, तो बहुत लोग दिक्कत में पड़ जाएंगे। कुछ लोग जिनको तीन बजे नींद खुल जाती है, बड़े आनंदित होंगे। वे कहेंगे कि देखो, हम हैं असली संन्यासी! तुम अभी सात बजे तक सो रहे हो? और गुरु ने क्या कहा? तो वे सात बजे सोनेवाले को पापी करार दे देंगे। वह सात बजे सोनेवाला अपराधी समझने लगेगा, वह सोचेगा, मुझे नर्क जाना पड़ेगा। हद हो गयी! कहीं कोई सात बजे तक सोने से नर्क जाता है?

मेरे संन्यासी मुझसे पूछते हैं—हम कब उठें? मैं कहता हूं जब तुम उठो तब ब्रह्ममुहूर्त। सात बजे उठो तो वह तुम्हारा ब्रह्ममुहूर्त है। तीन बजे उठो तो वह तुम्हारा ब्रह्ममुहूर्त है। ब्रह्ममुहूर्त, जब तम जगो तब। जब तुम्हारे भीतर ब्रह्म जगने को कहे, जग जाना। जब तक तुम्हारा ब्रह्म कहे कि अभी और थोड़े पड़े रहो, एक करवट और सही, तो तुम ब्रह्म की सुनना, मेरी मत सुनना। मैं बीच में बाधा नहीं डालना चाहता हूं। मैं तुम्हें अनुशासन नहीं देता हूं, स्वतंत्रता देता हूं।

इसलिए मेरी बातों को सुनो, समझो, मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए न मानने की कोई जल्दी भी न करो। साक्षीभाव से; कुछ काम का मिल जाए, ले लेना, कुछ काम का न मिले, मत लेना। लेकिन इस तरह के व्यर्थ प्रश्न मत उठाओ। इसमें समय मत गंवाओ। क्योंकि समय, तुम चाहो सार्थक प्रश्न पूछ लो और तुम चाहो व्यर्थ प्रश्न पूछ लो। फिर एक आदमी व्यर्थ सवाल पूछ लेता है, इतने सारे लोगों का सब समय खराब होता है। इसलिए इन सबके प्रति भी थोड़ी करुणा रखो, ध्यान रखो।

आज इतना ही।

तद्यजिः पूजायामिरेषां नैवम! ।।६६।।

पादोदकं तु पाद्यमव्याप्तेः ।।६७।।

स्वयमर्पितं ग्राह्यमविशेषातध ।।६८।।

निमित्तगुणानपेक्षपादपराधेषु व्यवस्था ।।६९।।

पत्रोदेर्दानमन्यथा हि वैशिष्ट्यम् ।।७०।।

विराट से मैत्री है भक्ति

सातवां प्रवचनः

कहां सबल तुम, कहां निर्बल मैं, प्यारे, मैं दोनों का ज्ञाता।
तप, संयम, साधन करने का
मुझको कम अभ्यास नहीं है,
पर इनकी सर्वत्र सफलता
पर मुझको विश्वास नहीं है,
धन्य पराजय मेरी जिससे
बचा लिया दंभी होने से,
कहां सबल तुम, कहां निर्बल मैं, प्यारे, मैं दोनों का ज्ञाता।
जो न कहीं भी जीते ऐसों
में भी मेरा नाम नहीं है,

मुझे उड़ा ले जाना नभके
हर झोंके का काम नहीं है,
पर तुम अपनी मुस्कानों में
सौ तूफान लिये आते हो,
कहीं, किधर को भी ले जाओ; सहसा मेरा पर खुल जाता।
कहां सबल तुम, कहां निर्बल मैं, प्यारे, मैं दोनों का ज्ञाता।
वज्र बनायी छाती मैंने
चोट करे घन तो शरमाए,
भीतर-भीतर जान रहा हूं
जहां कुसुम लेकर तुम आए,
और दिया रख उसके ऊपर
टूक-टूक हो बिखर पड़ेगी,
प्रात पवन के छूने पर ज्यों फूल खिला भू पर झड़ जाता।
कहां सबल तुम, कहां निर्बल मैं, प्यारे, मैं दोनों को ज्ञाता।

भक्ति का आविर्भाव है मनुष्य की निर्बलता में। भक्ति का आविर्भाव है मनुष्य की असहाय अवस्था में, मनुष्य की दीनता में। मनुष्य एक छोटा-सा अंश है इस विराट का। संघर्ष करके जीतना भी चाहो तो न जीत सकोगे। जिससे संघर्ष करना है, वह विराट है। जो संघर्ष करने चला है, बूंद से ज्यादा उसकी सामर्थ्य नहीं। हार सुनिश्चित है। जो जीतने चलेगा, हारेगा, भक्ति का शास्त्र इस सूत्र को गहराई से पकड़ लेता है।—जो जीतने चलेगा, वह हारेगा। और इसे रूपांतरित कर देता है। भक्ति कहती है हारने चलो और जीतोगे। क्योंकि देखा हमने—जो जीतने चला, हारा। तुम गणित को उलटा कर दो। जो हारा, सो जीता। जो झुका, वही बचा। जो मिटा, वही बचा।

धन्य पराजय मेरी जिसने
बचा लिया दंभी होने से,

मनुष्य लड़ना चाहता है। अगर कोई और न मिले लड़ने को तो अपने से ही लड़ने लगता है, लेकिन बिना लड़े मनुष्य को चैन नहीं। और जब तक तुम लड़ोगे तब तक भक्त न हो सकोगे। जब तक तुम लड़ोगे, तब तक तुम विभक्त रहोगे। विभाजित रहोगे, खंडों में बंटे रहोगे।

अखंड के साथ एक छंद में बंध जाना है। विराट में लीन हो जाना है। विराट से मैत्री है भक्ति, विराट से प्रेम है भक्ति। लड़ने के बहुत उपाय हैं। सीधे स्थूल उपाय हैं, सूक्ष्म बारीक उपाय हैं, विज्ञान सीधे ही लड़ने चल पड़ता है। विज्ञान को भाषा सीधी-साफ है, लड़ाई की भाषा है। प्रकृति पर विजय पानी है। जैसे कि हम प्रकृति से अलग हैं। हम ही तो प्रकृति हैं। विजय कौन पायेगा, किस पर पायेगा? यहां विजेता होने को दो कहां हैं? यहां एक ही विस्तार है। यहां बाहर भी वही है, भीतर भी वही है। लेकिन विज्ञान स्थूल भाषा बोलता है। कम से कम ईमानदार भाषा बोलता है।

धार्मिक कर्मकांड और भी ज्यादा चालाक है। वे लड़ते भी हैं और दिखलाते हैं ऊपर-ऊपर से जैसे लड़ते नहीं। तुम यज्ञ करते, हवन करते, तप करते, व्रत करते—कोई नहीं कहेगा कि तुम लड़ रहे हो। लेकिन गौर से देखो, तुम लड़ रहे हो। जब तुम व्रत करते हो तब तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे हो—सिद्ध कर दूंगा कि मैं तुझे पाने के योग्य हूं। कि अपने अधिकार की घोषणा कर रहा हूं। कि देखो मैंने कितने उपवास किये, कितने व्रत किये, कितना प्राणायाम, कितना योग, कितने आसन साधे। कितनी कुछ साधना की मैंने! अब और क्या

चाहिए? मूल्य तो मैंने सब चुका दिया है। अब और क्या पात्रता की कमी है! लेकिन यज्ञ हो, व्रत हो, हवन हो, पूजापाठ हो, अगर तुम्हारी वृत्ति अपने को सिद्ध करने की है, तो चूकोगे। अगर तुम दावेदार हो, तो चूकोगे। तुम जो कर रहे हो, अगर मिटने की कला हो तो जरूर पा लोगे। लेकिन अगर पाने चले हो, तो तुम्हारी चूक सुनिश्चित है। इसे प्रथम चरण में ही साफ-साफ समझ लेना—यह चरण किसलिए उठाया है। जीतने चले हो परमात्मा को, प्रकृति को? या परमात्मा और प्रकृति से हारने चले हो?

आज के सूत्र बहुमूल्य हैं। पहला सूत्र—

'तद्यजिः पूजायाम् इतरेषां न एवम्।।

भागवत पूजा के बिना और प्रकार के अनुष्ठान को यजन कहा है। उसे भजन नहीं कहा है। यजन का अर्थ है—यत्न, प्रयत्न, प्रयास। भजन का अर्थ है—प्रसाद। यजन का अर्थ है—छीनाझपटी। तुम परमात्मा से छीनने चले हो। तुमने आयोजन किया है। तुम कहते हो—देखें, कैसे तू बचेगा? तुम कहते हो—हमने धन भी पा लिया, पद भी पा लिया, अब हम तुझे भी पाकर रहेंगे। तुम परमात्मा को भी मुट्ठी में करने चले हो तो यजन। यजन सुंदर शब्द नहीं है। भजन अदभुत शब्द है। यजन भजन के ठीक विपरीत शब्द है। यजन का अर्थ है—विधि-विधान, पद्धतियां, जिनके द्वारा हम परमात्मा को अपनी मुट्ठी में कर लेंगे। भजन का अर्थ है, विश्राम; जिसके द्वारा हम परमात्मा की मुट्ठी में हो जाएंगे। इस भेद को खूब समझ लेना क्योंकि इस भेद पर सारी यात्रा निर्भर है।

शांडिल्य ठीक कहते हैं, भगवत पूजा के बिना और सब यजन है। स्वर्ग पाना चाहते हो, तो तुम जो कर रहे हो वह यजन है। परलोक में सुख पाना चाहते हो, तो तुम जो कर रहे हो वह यजन है। तुम जब तक कुछ पाना चाहते हो तब तक तुम जो कर रहे हो, वह यजन है। यजन निंदा का शब्द है भक्तों की दुनिया में। तुम जिस दिन अकाम होकर प्रेम में तल्लीन हुए हो, निष्काम होकर रस में डूबे हो, कुछ पाने को नहीं है, कहीं जाने को नहीं है, कोई गंतव्य नहीं है, तुम हल्के हो, निर्भार हो, शांत और आनंदित हो, जैसा परमात्मा ने तुम्हें बनाया है, इस क्षण तुम जैसे हो उससे राजी हो, परम संतुष्ट हो, उस संतोष से जो राग उठता है, उस संतोष से जो गंध उठती है, वह भजन है। तुम डोलने लगते हो आनंद में, जितना दिया है परमात्मा ने वह इतना ज्यादा है कि पहले उसका अनुग्रह तो कर लो।

मांगनेवाला कहता है—जो दिया है वह काफी नहीं है। मांगने वाले के मन में शिकायत है। मांगनेवाला नाराज है। मांगनेवाले कह रहा है कि मेरे साथ अन्याय हुआ है। मांगनेवाला परमात्मा को दोषी करार दे रहा है, कि तूने यह कैसी दुनिया बनायी, कि तूने यह मुझे कैसा बनाया? ऐसा ही होना था, ऐसा होना था, और तूने यह क्या कर दिया। इतना दुख, इतने कांटे, इतना अंधेरा, इतना भटकाव! तू दयावान नहीं है। और तूने हमें बिना तैयारी के जगत में भेज दिया, पाथेय भी नहीं दिया। रास्ते का इंतजाम भी नहीं जुटाया। कलेवे तक का आयोजन नहीं किया। दे दिया है धक्का अंधेरे में। तू कैसा पिता है? चाहे तुम साफ कहो या न कहो लेकिन जब भी तुम मांगते हो, तब तुम अनुग्रह के विपरीत जा रहे हो।

अनुग्रह का अर्थ होता है—जो तूने दिया है वह इतना ज्यादा है, मेरी कोई पात्रता नहीं थी और तूने इतना दिया! जीवन दिया, आंखें दी, जगत का सौंदर्य दिया, सूरज-चांद-तारे दिये, इतने प्यारे लोग दिये, इतना रसविमुग्ध लोक दिया। मैं नहीं था, मुझे है किया? मैं शून्य था, मुझमें प्राण फूंके: मुझमें सांसें डाली, मेरे हृदय में धड़कन दी। और हृदय में धड़कन ही न दी, प्रेम के अपूर्व श्रोत दिये। चैतन्य दिया। जागृति की क्षमता दी; ध्यान का बीज डाला, समाधि का उपाय किया, और क्या चाहिए? सब जो चाहिए मिला है, ऐसे भाव से जो उठता है, भजन। जो मिला है वह कम है और मेरी पात्रता उससे ज्यादा है, ऐसे भाव से जो किया जाता है, वह यजन। यजन से बचना। यजन में प्रेम नहीं है। भजन प्रेम है, शुद्ध प्रेम है।

खुशी जो आरजी शै है न मैं कभी लूंगी

जो हो सका तो बस एक सोजे-दायमी लूंगी
जिगर में दर्द, रगों में टीस, आंखों में अश्क
तेरी खुशी है तो मैं इस तरह भी जी लूंगी
निहां है खूने-जिगर में ही गर हयसे-दवाम
तो मुस्कुरा के मैं खूने-जिगर भी पी लूंगी
रमूजे-दिल को छिपाने के वास्ते ऐ दोस्त!
तेरी कसम है कि मैं अपने होंठ सी लूंगी
दलीले-राहे-मुहब्बत खिरद तो बन न सकी
जुनूने-शौक से अब दर्से-रहबरी लूंगी
समझना—
दलीले-राहे-मुहब्बत खिरद तो बन सकी
जो बुद्धि है, यह तो मार्गदर्शक नहीं बन सकी। बुद्धि मार्गदर्शक बन ही नहीं सकती है। बुद्धि से जो पैदा होता है, वह यजन है। विधि-विधान, मंत्र-यंत्र, यज्ञ-हवन, व्यवस्था, जिसके द्वारा हम परमात्मा को फांस लेंगे। व्यवस्था, जैसे कि कोई मछली को फांसने के लिए जाल बनाता है। जैसे मछुआ जाल फेंकता है, ऐसा यजन है। बुद्धि यजन कर सकती है। बुद्धि कहती है, ऐसा करो, ऐसा करे, ऐसा करो; बुद्धि गणित दे सकती है गणित में परमात्मा नहीं आता। विचार में परमात्मा नहीं आता। विचार का जाल उसे न पकड़ पाएगा। उसे तो सिर्फ प्रेम का जाल ही पकड़ पाता है। और मजा यह है कि प्रेम का जाल पकड़ना ही नहीं चाहता। प्रेम का जाल पकड़ा जाना चाहता है। यह ऐसा खेल है, मछुआ तो जाल फेंकता है मछली पकड़ने को, भक्त परमात्मा को पुकारता है कि जाल फेंको और मुझे फांस लो। मैं फंसने को राजी हूं। मैं प्रतीक्षा में हूं कि कब तुम्हारा जाल आए और मुझे फांस ले।
दलीले-राहे-मुहब्बत खिरद तो बन न सकी
प्रेम के रास्ते पर, भक्ति के रास्ते पर बुद्धि तो मार्गदर्शक हो नहीं सकती, न हो सकी कभी।
जुनूने-शौक से अब दर्से-रहबरी लूंगी
अब तो पागलपन से—जुनूने-शौक से—मार्गदर्शन पूछना होगा।
यजन बड़ा बुद्धिपूर्वक है। भजन पागलपन है। पंडित यजन में पड़ जाता है, प्रेमी भजन करता है। ये जो देश भर में यज्ञ होते रहते हैं—ये सब यजन हैं। ये सब आदमी की बुद्धिमानी से निकल रहे हैं। ये आदमी के हृदय से आविर्भूत नहीं हैं। शांडिल्य कहते हैं—एक ही बात खयाल रखना, भगवत-पूजा। 'पूजायाम् इतरेषां'। एक ही बात याद रखना—भगवत-प्रेम।
और प्रेम के अपने अनूठे मार्ग हैं। प्रेम व्यवस्था से नहीं चलता। प्रेम स्वस्फुरणा से चलता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था। और उसने बहुत पत्र लिखे—जैसे प्रेमी लिखते हैं। और बड़े सुंदर पत्र लिखे। उन पत्रों में बड़ा काव्य था, बड़ा संगीत था, सौंदर्य था। फिर प्रेम टूट गया। तो वह प्रेमिका के पास गया और उसने कहा कि कम से कम मेरे पत्र तो लौटा दो। उसकी प्रेमिका ने कहा—यह भी हद हो गयी, पत्रों का तुम क्या करोगे? मुल्ला ने कहा अब तुमसे क्या छिपाना, एक पंडित से लिखवाए थे, पैसे देने पड़े हैं; और फिर अभी मेरी जिंदगी और बाकी है, फिर किसी से प्रेम में पडूंगा ही न, पत्र काम आ जाएंगे। तुम इनका रखकर भी क्या करोगे?
बुद्धि ऐसे ही उपाय खोज लेती है। तुम जब किसी पंडित को बुलाकर कहते हो, तनख्वाह दे देंगे, हमारे घर पूजा कर जाना, तो तुम क्या कह रहे हो? तुम प्रेम पत्र किसी और से लिखवा रहे हो। तुम परमात्मा को भी प्रेम पत्र अपना नहीं लिख सकते! टूटी-फूटी भाषा सही, भाव होने चाहिए। इस पंडित को कैसे भाव हो सकते हैं? जिस

आदमी ने मुल्ला नसरुद्दीन के लिए प्रेमपत्र लिखे, इसके प्रेम पत्र कैसे होंगे? न इसने इसकी प्रेयसी देखी, न इसकी प्रेयसी से इसे कोई प्रेम है, न कुछ लेना-देना है, ये कोरे होंगे, इनके भीतर हृदय कहें भी नाचेगा नहीं। शब्दों का जमाव होगा, शब्द ही शब्द होंगे; राख की तरह, इनके भीतर अंगारा होगा ही नहीं। हृदय हो तो अंगारा दहकता है। लेकिन तुम जब पुजारी को रख लेते हो अपने घर में पूजा के लिए और वह आकर रोज़ घंटी बजाकर घड़ी भरको पूजा कर जाता है, अपनी नौकरी निबटा जाता है—उसे क्या मतलब है परमात्मा से? उसे नौकरी से प्रयोजन है। कल अगर उसे कोई ज्यादा पैसे देने को तैयार होगा तो वह वहां नौकरी करने चला जाएगा। तुम जिस दिन तनख्वाह न दोगे उसी दिन पूजा बंद कर देगा। उसे परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है। और तुम्हें भी क्या परमात्मा से लेना-देना है। अन्यथा तुम बीच में इस बिचवैइए को लेते! तब तुम रो लेते, अपनी टूटी-फूटी भाषा बोल लेते, कुछ दुहराने की जरूरत नहीं है, न ही उपनिषद कंठस्थ होने चाहिए, न कुरान याद करने की कोई जरूरत है, तुम्हें जबान दी है, हृदय दिया है, तुम्हें भाव दिये हैं, अपना गीत खुद बना लो, अपनी प्रार्थना खुद रच लो। रचने की भी क्या जरूरत है, क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भाव पहचानता है, तुम्हारी भाषा से कुछ लेना-देना नहीं है उस तक भाषा पहुंचती ही नहीं। तो भाषाएं तो कितनी हैं! जमीन पर कोई पांच हजार भाषाएं हैं। और यह जमीन कोई अकेली जमीन है, ऐसा नहीं। वैज्ञानिक कहते हैं कम से कम पचास हजार जमीनों पर जीवन है। वह भी कम से कम। इतने पर तो होना ही चाहिए। इससे ज्यादा पर भी हो सकता है। इस छोटी-सी जमीन पर पांच हजार भाषाएं हैं। पचास हजार जमीनों पर कितनी भाषाएं होंगी? तुम्हारी सब की भाषाएं समझते-समझते परमात्मा पागल नहीं हो जाएगा?

भाव समझा जाता है, भाषा नहीं समझी जाती।

मैं एक बार अपने एक मित्र के साथ में बाजार गया। ऐसे बाजार जाने में मुझे कभी रस नहीं रहा। कभी कुछ खरीदने बाजार नहीं गया। मित्र जा रहे थे, उन्होंने कहा कभी तो चलो, तो मैं उनके साथ हो लिया, उनके घर मेहमान था। वह सब्जियां खरीदने लगे। छोटा गांव, तो दुकानदारों से पूछने लगे—इसका भाव क्या है? भाव शब्द सुनकर मुझे बहुत रस आया। मैंने उनसे पूछा कि गजब की बात पूछ रहे हो! दाम पूछने चाहिए, तुम भाव पूछ रहे हो! उन्होंने कहा कि इसमें फर्क है कुछ? मैंने कहा, फर्क तो भारी हो गया। भाव ही पूछा जाना चाहिए असल में। दाम तो ऊपर-ऊपर है, कीमत तो ऊपर-ऊपर है, भाव भीतर है।

परमात्मा तुमसे यह नहीं पूछेगा तुमने कैसे प्रार्थना की? कितनी कीमती प्रार्थना की? कितने कीमती शब्दों का उपयोग किया? यही पूछेगा—क्या भाव? तुम्हारा भाव क्या है? लेकिन तुमने शायद भाव वाली प्रार्थना की ही नहीं कभी। तुम जब गए मांगने गये हो। तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं सकाम हैं। कभी कहते हो, बेटा नहीं पैदा हुआ तो बेटा पैदा हो जाए; कभी कहते हो बेटा पैदा हो गया तो उसकी नौकरी नहीं लगी, नौकरी लग जाए; कभी कहते हो पत्नी बीमार है; कभी कहते हो कुछ, कभी कुछ। तुम जब जाते हो तब क्षुद्र की मांग लेकर जाते हो। उस विराट के सामने तुम क्षुद्र की मांग लेकर खड़े होते हो। अपमानजनक है यह। ऐसे यजन छोड़ो। उसके सामने तो आंसुओं से भरी हुई आंखें ले जाओ। उसके सामने तो झुक जाओ भाव में। उसके सामने तो चुप हो जाओ तो चलेगा, बोलने की इतनी कोई आवश्यकता नहीं है। बोल अपने से आता हो तो ठीक, मगर उधार न हो।

मैं तुम्हें ऐसी ही प्रार्थना सिखाना चाहता हूं जो तुम्हारे भीतर जनमती हो; जो तुम्हारा फूल हो। झुक जाना, अगर कोई भाव उठे तो कह देना, मगर पहले से सोचकर भी मत जाना, अन्यथा झूठ हो जाएगा। परमात्मा के सामने तुम अभिनय मत करना। अभिनय का रिहर्सल होता है, पहले से आदमी तैयारी करता है—क्या कहूंगा, क्या नहीं कहूंगा, सब बिठा लेता है, जमा लेता है, उसीमें तो सब झूठ हो जाता है। तुम सब तय करके गये कि ऐसा-ऐसा कहूंगा, फिर तुमने वही-वही कह दिया। यह तो झूठ हो गया। उस क्षण की भाव-अभिव्यंजना न रही। बासा हो गया। तुम पहले ही इसे कह चुके थे अपने सामने। जब जाकर इसे तुमने दोहराया। यह तो ग्रामोफोन का रेकॉर्ड हो गया। तुम्हारी स्मृति ने दोहरा-दोहरा कर भर लिया था अपने भीतर, जाकर उगल दिया। यह तो एक

तरह का वमन हुआ। परमात्मा के सामने झुको, और कोई भाव उठता हो तो उठने दो, न उठता हो तो न उठने दो—उठाने की कोई जरूरत नहीं है। वह तुम्हारे मौन को समझेगा। टूटे-फूटे शब्द आते हों, आने दो, शब्दों के पीछे छिपे हुए तुम्हारे हृदय की धड़कन को समझेगा। वही समझा जाता है, भाव ही समझा जाता है।

मैंने उन मित्र से लौटकर कहा कि आप साग-सब्जी ले आए, मैं भी कुछ ले आया हूं। मुझे यह भाव शब्द बहुत रुच गया। तुम जो पूछने लगे दुकानदारों से—क्या भाव है? न तुम्हें खयाल था, न दुकानदार को खयाल था कि तुम क्या पूछ रहे हो, लेकिन यह शब्द प्यारा है। तुम मंदिर जाते हो, क्या भाव है? कुछ मांगने जा रहे हो, तो यजन। कुछ चढ़ाने जा रहे हो, तो भजन। कुछ देने जा रहे हो तो भजन, कुछ लेने जा रहे हो तो यजन। जहां तुम लेने जाते हो वह बाजार और जहां तुम देने जाते हो वह मंदिर।

'भगवत-पूजा के बिना और प्रकार के अनुष्ठान को यजन कहते हैं'। केवल भगवत-पूजा ही मुक्ति का उपाय है, शांडिल्य कहते हैं। उसके सिवाय जो नाना प्रकार के यज्ञ, व्रत और सकाम पूजा आदि हैं, वे सब बंधन के कारण हैं। फिर बंधन स्वर्ण के भी हों तो क्या? लोहे की जंजीरें हों कि सोने कि जंजीरें, सब बराबर हैं। तुमने जंजीरें बाजार में ढाली कि मंदिर में ढाली, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। इच्छा मात्र जंजीर बन जाती है। वासना मात्र बंधन बन जाती है। तुमने कुछ भी मांगा—वैकुंठ मांगा, स्वर्ग मांगा, और भूल हो गयी।

प्रेमी कुछ मांगता नहीं। प्रेमी कहता है, मुझे स्वीकार कर लो, मुझे ले लो, मुझे अपना कर लो, मुझे अपना लो, मुझे मिटा दो मेरी तरह, तुम ही तुम फैल जाओ मेरे ऊपर, तुम्हारा ही रंग मेरा रंग हो।

एक मित्र ने कल प्रश्न पूछा था कि संन्यास का क्या अर्थ है? और संन्यास में गैरिक-वस्त्र पहनने क्यों अनिवार्य हैं? संन्यास का अर्थ होता है, तुमने अपना रंग छोड़ा, गुरु जो रंग पकड़ा दे पकड़ा, यह तो प्रतीक है, गैरिक तो प्रतीक है। गैरिक रंग में कुछ नहीं रखा है, असली भीतर एक भाव छिपा है, वह यह कि अब गुरु जो रंग देगा उसी रंग में रहूंगा। यह तो शुरुआत है, कपड़े रंगने से तो शुरुआत है। आत्मा को रंगना है। अगर तुम कपड़ा रंगने से ही डर गये और कपड़ा रंगने की भी हिम्मत न दिखायी, तो और आगे कैसे बढ़ोगे? कपड़ा रंगने से कुछ होनेवाला नहीं है। लेकिन कपड़ा रंगना तो केवल सूचक है, प्रतीक है, तुम्हारी तरफ से इशारा एक है कि मैं राजी हूं रंगो मुझे। उंडेल दो अपना रंग मेरे ऊपर, मैं झेलूंगा। मैं भागूंगा नहीं, मैं तुम्हारे प्रति खुला हूं।

फिर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कौन-सा रंग गुरु दे दे।

बुद्ध ने पीला रंग दिया अपने भिक्षुओं को, चलेगा। जैनों ने सफेद रंग पसंद किया, चलेगा। सूफी हरा रंग पसंद करते हैं, चलेगा। रंग का इतना बड़ा सवाल नहीं है, सब रंग उसके हैं, अगर शिष्य यह कहता है कि अब मैं तुम्हारे रंग में रंगने को राजी हूं, तुम्हारी जो मर्जी हो, तुम मुझे पागल होने को कहोगे तो मैं पागल होने को राजी हूं।

तुमने पूछा है—क्या कपड़े का रंगना अनिवार्य है? कपड़ा है ही नहीं वहां। न रंग का सवाल है, न कपड़े का सवाल है, लेकिन तुम्हारी तरफ से यह इशारा जरूरी है, अनिवार्य है—नहीं तो शिष्य कोई कैसे होगा?—यह इशारा जरूरी है। कि अब जो मर्जी!

इब्राहिम सम्राट था, अपने गुरु के पास गया और गुरु ने ऐसी मांग की जो उसने कभी अपने किसी और शिष्य से न की थी। इब्राहिम झुका तो गुरु ने कहा कि सच में झुक रहे हो? इब्राहिम ने कहा कि नहीं झुकना होता तो आता ही नहीं। कोई मुझे लाया नहीं, अपने से आया हूं; झुक रहा हूं। तो इब्राहिम से पूछा उसके गुरु ने, प्रमाण दे सकोगे? इब्राहिम हाथ फैलाकर खड़ा हो गया और उसने कहा, आज्ञा दें। और बड़ी अजीब आज्ञा दी गुरु ने।

गुरु ने कहा, कपड़े फेंक दो, नग्न हो जाओ। इब्राहिम ने एक क्षण भी सोचा नहीं, पकड़ें फेंक दिये और नग्न हो गया। सम्राट था! और गुरु भी अदभुत था! गुरु ने कहा, उठा लो वह जुता जो पड़ा है, निकल जाओ, बाजार में, मारते जाओ अपने सिर पर जूता, इकट्ठी होने दो भीड़, पूरे गांव का चक्कर लगा कर आ जाओ। और इब्राहिम चला गया। अपनी ही राजधानी में, नंगा, सिर पर जूता मारता!

जो गुरु के पुराने शिष्य थे उन्होंने कहा—यह जरा ज्यादती है। ऐसा आपने हमसे तो कभी नहीं कहा था। और सम्राट के साथ तो थोड़ा सदय होना था, बिचारा आया झुकने को यही क्या कम था? गुरु ने कहा मुझसे मत पूछो, इब्राहिम से ही पूछ लेना।

और इब्राहिम जब लौटा कोई घंटे भर अपनी ही राजधानी में जूता मारते हुए—हजारों की भीड़ इकट्ठी है, लोग पागल चिल्ला रहे हैं, लोग पत्थर फेंक रहे हैं, लोग कह रहे हैं यह हो क्या गया, लोग मजाक कर रहे हैं, सारा गांव हंस रहा है, बच्चे, बूढ़े, स्त्रियां, सब इकट्ठे हो गये हैं, जुलूस चल रहा है उसके पीछे और इब्राहिम हंस रहा है, आनंदित हो रहा है और जूते मार रहा है और नग्न घूम रहा है—लौट आया। जब इब्राहिम लौट कर आया तो वह आदमी ही दूसरा था। गुरु ने अपने शिष्यों को कहा, इब्राहिम से पूछ लो। इब्राहिम ने कहा कि इस एक घड़ी में जो जानने को मिल गया, वह जन्मों-जन्मों में नहीं जाना था। और जो मैं पाने आया था, वह मुझे मिल ही गया। मेरा अहंकार गिर गया। यही बाधा थी। वह गुरु के चरणों में गिर पड़ा और उसने कहा—तुम्हारी कृपा! एक क्षण में मिटा दिया, एक घड़ी भर में मिटा दिया! मैं तो सोचता था वर्षों तपश्चर्या करनी पड़ेगी। सम्राट हूं, अकड़ा हुआ, अहंकार से भरा हुआ, अहंकार में ही जीया हूं, कैसे छूटेगा यह अहंकार—मैं तो यही सोचते-सोचते आया था, कैसे छूटेगा? और तुमने क्षणभर में छुड़ा दिया। और जरा-से उपाय से छुड़ा दिया।

अब तुम यह मत सोचना कि जूते मारने से कोई अहंकार छूट जाता है। नहीं तो एकांत में खड़ा होकर नग्न, तुम अपने को जूते मार लो, कि जब विधि काम करती है तो अपने कमरे में बंद हो गये, जूता लिया, नंगे हो गये और मार लिया जूता। घड़ी भर नहीं, दो घड़ी मारते रहे तो भी कुछ न होगा। न नग्न होने से कुछ होगा। बात समझो। भाव समझो। यह तो सिर्फ उपाय था। लेकिन इब्राहिम ने एक इशारा दे दिया कि अब जो कहोगे! यह बिलकुल पागलपन की बात है। इब्राहिम को कहना चाहिए था कि यह क्या पागलपन करवा रहे हो? नंगे होने से क्या होगा? यही मित्र ने पूछा है—नंगे होने से क्या होगा? गैरिक वस्त्र पहने से क्या होगा? उन्होंने यह भी पूछा है कि क्या आप मुझे बिना गैरिक वस्त्रों के संन्यास नहीं दे सकते? कुल तुम मुझसे कहोगे—ध्यान से क्या होगा? क्या आप मुझे ध्यान के बिना संन्यास नहीं दे सकते? प्रार्थना से क्या होगा? क्या मैं बिना प्रार्थना के संन्यासी नहीं हो सकता? यह तो सिर्फ इशारा है, यह तो इस बात का इशारा है कि आप जो भी कहेंगे, यह पागलपन तो यह पागलपन सही।

भक्त अपने को देने जाता है। इसलिए देनेवाला शर्तें नहीं रख सकता। भक्त समर्पित होता है, समर्पण बेशर्त ही हो सकता है।

कल मैंने धर्मयुग में मेरी एक संन्यासिनी 'प्रीति' पर एक लेख देखा। उसमें एक शब्द मुझे पसंद आया। जिसने रिपोर्ट लिखी है 'प्रीति' के ऊपर धर्मयुग में, उसने शब्द उपयोग किया है 'रंग रजनीशी'। वह मुझे जंचा। वह गैरिक नहीं है, 'रंग रजनीशी'! उसकी तैयारी हो तो ही संन्यास संभव है। उतना छोड़ने के लिए मन राजी हो, तो ही।

और बहुत कुछ छोड़ना पड़ेगा, यह तो शुरुआत है। यह तो ऐसा समझो कि सम्राट से उसके गुरु ने कहा होता, पहले टोपी दौड़ो। और वह कहाता—टोपी छोड़ने से क्या होगा? क्या बिना टोपी छोड़े ज्ञान नहीं हो सकता? वह टोपी छुड़वाना तो सिर्फ शुरुआत थी। फिर वह कहता—अचकन गिराओ, कमीज गिराओ, कोट गिराओ, अब पाजामा भी गिर जाने दो, अब 'अंडरवियर' भी छोड़ दो, ऐसा धीरे-धीरे! मैं जानता हूं कि तुम इकट्ठे नग्न न हो सकोगे। तुम्हारी इतनी हिम्मत नहीं है। तुमसे कहता हूं, टोपी उतारो। चलो जी टोपी ही सही, उतारो तो! कुछ तो उतारो, थोड़ा तो भार हल्का हो!

गुरु के रंग में रंग जाना शिष्यत्व है। और उसी रंग में रंगने से तुम्हें परमात्मा के रंग में रंगने की कला आएगी। सकाम न हो प्रार्थना। सकाम न हो पूजा। कोई वासना न हो पाने की। आह्लाद से हो, आकांक्षा से नहीं। आनंद से हो, अनुग्रह से हो, अपेक्षा से नहीं। बस, वहीं सारा भेद है। तुम सत्यनारायण की कथा करवा लेते हो, कभी

हवन भी करवा लेते हो, कभी यज्ञ करवा लेते हो, और बड़ा आश्चर्य है, करोड़ों रुपये यज्ञ पर फूंके जाते हैं, और यज्ञ धार्मिक अनुष्ठान ही नहीं है। यजन है, भजन नहीं है। घी डालो, गेहूं डालो, जो तुम्हें डालना हो डालते रहो, सब आग खा जाएगी। तुम जब तक अपने को न डालोगे तब तक कोई यज्ञ पूरा नहीं होता। जिस दिन तुम यह गेहूं और घी इत्यादि डालने का पागलपन छोड़ोगे, अपने को डाल दोगे आग में, तुम जिस दिन कहोगे कि मैं जलने को तैयार हूं, उस दिन क्रांति घटती है, उस दिन भक्त का जन्म होता है।

अरबाबे-मुहब्बत ने तराशे है सनम और
बुतखानए-फितरत का न खुल जाए भरम और
करता रहे सैराबे-गमे-दिल कोई ऐ काश!
और मैं यह कहे जाऊं 'दिये जा मुझे गम और'
कुछ कम नहीं तो भी, मगर ऐ गर्दिशे-दौरां!
हम क्या कहें उस बुत का है अंदाजे सितम और
इस राज से वाकिफ नहीं काफिर हो कि मोमिन
दुनियाए-मुहब्बत के हैं दैर और हरम और
जितना कोई मिटता है, रहे-इश्क मैं 'नाहीद'
उनकी निगाहे-नाज का होता है करम और

प्रेम के मंदिर और प्रेम की मस्जिदें अलग ही हैं। तुम्हारे मंदिर और मस्जिदों से उनका कुछ लेना-देना नहीं।

इस राज से वाकिफ नहीं काफिर हो कि मोमिन

—न तो तुम्हारा पंडित परिचित है, न तुम्हारा मौलवी परिचित है इस रहस्य से—

इस राज से वाकिफ नहीं काफिर हो कि मोमिन
दुनिया ए-मुहब्बत के हैं दैर और हरम और

वह जो प्रेम की दुनिया है,उसके मंदिर और, उसकी मस्जिदें और; उसके यज्ञ और, उसके हवन और, उसके विधि-विधान और। परमात्मा से मांगने नहीं जाता भक्त, देने जाता है, अपने को लुटाने जाता है। जितना कोई मिटता रहे, उतना ही होता चलता है। इधर मिटता है, उधर जन्मता है।

जितना कोई मिटता है, रहे-इश्क में 'नाहीद'

यह जो प्रेम का रास्ता है, भक्ति, इस पर जो जितना मिटता है—

जितना कोई मिटता है, रहे-इश्क में 'नाहीद'
उनकी निगाहे-नाज का होता है करम और

परमात्मा की अनुकंपा उसे उतनी ही ज्यादा मिलती है।

उनकी निगाहे-नाज का होता है करम और

और दया बरसती है, और कृपा बरसती है। जिस दिन तुम पूरे मिट जाते हो, उस दिन तुम्हारे भीतर परमात्मा का आविर्भाव होता है। उस दिन भक्त भगवान हो जाता है।

इसलिए शांडिल्य प्रारंभ से ही इस सूत्र में क्रियाकांड को इनकार कर देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि शांडिल्य कह रहे हैं—तुम पूजा भी मत करना। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि वह कह रहे हैं कि तुम्हें अगर मूर्ति प्रिय हो तो तुम मूर्ति के सामने बैठकर गुफ्तगू न करना। वह यह भी नहीं कह रहे हैं कि तुम्हें अगर गीत प्यारा हो और तुम गाना चाहो परमात्मा को तो मत गाना। वह इतना ही कह रहे हैं कि यह सब सहज हो। और आकांक्षा शून्य हो। इस प्रार्थना और पूजा का आनंद प्रार्थना और पूजा में ही हो, किसी और लक्ष्य को पाने में नहीं।

तुम किसी के प्रेम में हो और कोई पूछे कि तुम क्यों प्रेम में हो, किसलिए प्रेम में हो, क्या पाना चाहते हो? अगर तुम उत्तर दे सको, तो तुम्हारा प्रेम गलत। अगर तुम कह सको कि इस स्त्री के बाप के पास बहुत धन है, अकेली

बेटी है, इसलिए प्रेम में हैं, तो तुम प्रेम में हो ही नहीं। तुम अगर प्रेम में हो तो तुम कहोगे—बस प्रेम के कारण प्रेम में हूं। प्रेम की वजह से प्रेम में हूं, इसके पीछे और कोई लक्ष्य नहीं। प्रेम अपने आप में इतना बड़ा पुरस्कार है, और क्या मांगना है?

इसलिए खयाल रखना, शांडिल्य यह नहीं कह रहे हैं कि तुम पूजा मत करना। लेकिन पंडित को बीच में मत लाना। यह भी नहीं कह रहे हैं कि तुम प्रार्थना मत करना। लेकिन प्रार्थना रटी-रटाई तोते की भांति न हो। और यह भी नहीं कह रहे हैं कि तुम झुकना मत मंदिर में, या मस्जिद में, या जहां तुम्हारी मर्जी हो, क्योंकि उन्होंने कहा—जहां तुम्हारी आंखें भर जाएं वहीं झुक जाना। और जिससे तुम्हारे नेत्र तृप्त हो, वहीं झुक जाना। जिससे तुम्हें सुख की झलक मिले, वहीं झुक जाना। जहां शांति का आकाश खुले, वहीं झुक जाना। सिर्फ कह यह रहे हैं कि इस झुकने को अभ्यास मत बनाना। यह झुकना सहज हो, अनायास हो, अप्रयास से हो, इसके पीछे यत्न न हो। तुम झुकने का निरंतर अभ्यास कर-करके अगर झुकोगे, झुकना झूठा हो जाएगा। जिसका भी अभ्यास किया जाता है, वही चीज झूठी हो जाती है।

तुम किसी मित्र से मिलने जा रहे हो और तुम रास्ते भर सोचते गये—क्या कहूंगा, क्या कहूंगा, क्या कहूंगा; अभ्यास कर लिया बिलकुल कि कहूंगा कि बड़ा आनंद हुआ, वर्षों के बाद मिले, आंखें ठंडी हो गयीं, कितना तड़पा, कितना रोया; इसको खूब दोहरा-दोहरा कर तैयार करके पहुंच गये। फिर तुमने यह सब दोहरा दिया। कुछ बात चूक गयी। शब्द आ गये, भाव नहीं रहा। अगर भाव था तो शब्दों की आयोजना करने की जरूरत न थी। जब भाव होते हैं, तो उनके योग्य शब्द अपने-आप पैदा हो जाते हैं। जब प्रेम होता है, तो प्रेम को कैसे निवेदन करना, यह प्रेम जानता है। इसके लिए अभ्यास नहीं करना होता।

स्मरण रखना, जब तुम्हारे भीतर कोई चीज प्रकट होने को पक जाती है तो निश्चित प्रकट होती है। जब फूल खिलने के योग्य हो जाता है, जरूर खिलता है और सुगंध को लुटा देता है। इसके लिए किसी अभ्यास, आयोजन की आवश्यकता नहीं है।

दूसरा सूत्र—

'पादोदकं तुम पाद्यम् अव्याप्तेः।।

भागवत मूर्ति के स्नानजल को ही पादोदक समझना चाहिए। जरूरत नहीं है कि कोई गंगा जाए, यमुना की तलाश करे, कि गंगोत्री खोजे पवित्र जल के लिए। नहीं, अगर तुमने प्रेम से, आनंद से अहोभाव से अपने घर में रखी पत्थर की मूर्ति पर भी अपनी प्रार्थना की वर्षा कर दी, प्रेम और आनंद से अपनी मूर्ति को नहला दिया तो उन चरणों से जो जल गिर रहा है वह गंगा से ज्यादा पवित्र हो गया। लेकिन खयाल रखना, वह गंगा से ज्यादा पवित्र मूर्ति के कारण नहीं हो रहा है। मूर्ति तो पत्थर है! वह गंगा से ज्यादा पवित्र किसलिए हो रहा है? तुम्हारे भाव के कारण हो रहा है। तुमने उस मूर्ति में भगवान का आविष्कार कर लिया है। तुम्हारे लिए वह मूर्ति नहीं है। तुम्हारे लिए वह मूर्ति, मूर्तिं भगवान का प्रतीक हो गयी है।

ऐसा समझो कि किसी प्रेयसी ने तुम्हें एक रूमाल भेंट कर दिया—चार आना उसकी कीमत है। अगर तुम बाजार में जाओगे और लोगों को दिखाओगे कि इसकी कितनी कीमत है, तो कोई शायद चार आने में भी लेने को तैयार न हो। क्योंकि चार आने में तो नया मिल जाता है, इस पुराने रूमाल को कौन लेगा? लेकिन तुमसे अगर कोई कहे कि हम हजार रुपये देते हैं इस रूमाल को हमें दे दो, तो तुम देने को राजी न होगे। इस रूमाल में कुछ है, जो किसी और को दिखायी नहीं पड़ता। इस रूमाल में कुछ है, जिसे तुम ही जानते हो। तुम्हारे भाव का प्रतिष्ठापन हो गया है यह याददाश्त है। इसमें किसी को स्मृति छिपी है। इसमें प्रेम के कोई स्मरण छिपा हैं। इसमें प्रेम की कोई अपूर्व घटना छिपी है। मगर उसका अनुभव सिर्फ तुम्हें हैं। उसे सिर्फ तुम जानते हो। वस्तुतः वह रूमाल में नहीं है, तुम्हारे हृदय में है। रूमाल पर्दे का काम करता है। रूमाल को देखकर हृदय में जो है वह जग जाता है।

इसको खयाल से समझ लेना।

इसलिए जब मुसलमान हिंदू की मूर्ति तोड़ देता है तो वह भगवान की मूर्ति नहीं तोड़ रहा है। भगवान की होती तो तोड़ता कैसे? वह सिर्फ मूर्ति तोड़ रहा है। वह पत्थर तोड़ रहा है। वह नाहक मेहनत कर रहा है। और जब हिंदू उस मूर्ति की पूजा करता है तो वह पत्थर की पूजा नहीं कर रहा है—पत्थर होता तो वह पूजा ही क्यों करता? और अगर पत्थर की ही कर रहा है तो उसमें और मूर्ति तोड़ देनेवाले में कोई भेद नहीं है। जहां भाव आरोपित हो जाता है वहां मूर्ति मूर्ति नहीं रह गयी, जीवंत हो उठी। मूर्ति पर्दा है।

इसे ऐसा समझो कि तुम फिल्म देखने जाते हो, फिल्म पर्दे पर नहीं होती, पर्दा तो खाली है। पर्दा बिलकुल खाली ही होना चाहिए। अगर पर्दे पर कुछ हो तो फिल्म के होने में बाधा हो जाएगी। इसलिए पर्दा बिलकुल शुभ्र होता है, सफेद होता है, उसमें एक रेखा भी नहीं होती। कभी अगर पर्दे पर एक दाग होता है तो वह बाधा बन जाता है। एक रेखा होती है तो वह दिखायी पड़ती है हर चित्र के साथ। पर्दा बिलकुल शून्य होना चाहिए—शुभ्र, रिक्त। फिल्म तो पीछे 'प्रोजेक्टर' मैं छिपी होती है। पर्दा तो सिर्फ उस फिल्म को झेलने का उपाय करता है और झेलकर तुम्हारी आंखों तक लौटा देता है। अगर पर्दा न हो तो भी 'प्रोजेक्टर' चलता रहेगा लेकिन तुम्हारी आंख तक लौटेगी नहीं फिल्म। चली जाएगी जगत में चलती जाएगी, चलती जाएगी, तुम तक कभी लौटकर नहीं आएगी। तुम देख न सकोगे। पर्दा करता क्या है? पर्दा बीच में बाधा बन जाता है, वह जो फिल्म जा रही है, चित्र जा रहे हैं, रोशनी पर चढ़कर, उनको रुकावट डाल देता है, आगे नहीं जाने देता। रुकावट पड़ जाती हैं, वे धक्का खाकर लौट पड़ते हैं, लौटकर तुम्हारी आंख पर पड़ जाते हैं, तुम्हें दिखायी पड़ जाते हैं।

मूर्ति पर्दा है। तुम्हारे हृदय में छिपा है भाव, 'प्रोजेक्टर' वहां है। मूर्ति तो सिर्फ उस भाव को अनंत में नहीं खो जाने देती। मूर्ति पर से लौटकर भाव तुम्हारी आंख में फिर आ जाते हैं। मूर्ति तो ऐसे है जैसे दर्पण। तुम दर्पण के सामने खड़े हो गये। तुम जब दीवाल के सामने खड़े होते हो, तुम्हें कुछ नहीं दिखायी पड़ता। क्यों? क्योंकि दीवाल लौटाती नहीं। दीवाल पर भी तुम्हारी तस्वीर पड़ती है, तुम्हारी तस्वीर तो पड़ेगी ही, तुम खड़े हो तो तस्वीर तुम्हारी दीवाल पर भी पड़ रही है, लेकिन दीवाल लौटाती नहीं, पी जाती है। दर्पण की कला इतनी है, वह इतना चिकना है कि पी नहीं पाता। तुम्हारी तस्वीर सरक जाती है, वापस लौट जाती है, वापस लौटकर तुम्हारी आंखों में पड़ जाती है। तुम अपने को देखने में समर्थ हो जाते हो।

मूर्ति दर्पण है। तुम्हारे भाव, जिन्हें तुम अभी नहीं पकड़ पाते सीधा-सीधा, मूर्ति से लौटकर स्थूल हो जाते हैं, दिखायी पड़ने योग्य हो जाते हैं। जो तुम्हारे भीतर अदृश्य में छिपा है, वह दृश्य बन जाता है।

अब यह ऐसा ही समझो, कि जो मूर्ति को तोड़ देता है वह वैसा ही नासमझ है कि जैसे समझो तुमने कोई फिल्म देखी और तुम्हें बड़ा गुस्सा आ गया—कोई ऐसा दृश्य दिखायी पड़ रहा है कि जिसको तुम देखने को राजी नहीं हो, और उठायी छुरी और जाकर पर्दे को काट दिया। तुम्हें लोग पागल कहेंगे। पर्दे को काटने से क्या होगा? पर्दे को काटने से फिल्म नहीं कटती।

मैं एक गांव में मेहमान था। गांव के मंदिर की मूर्ति किसी ने तोड़ दी, गांव बड़ा पागल था। एकदम पागलपन फैला हुआ था। मुसलमान थोड़े ही थे गांव में, हिंदू ज्यादा थे। और शक यही था कि मुसलमानों ने तोड़ी। यह शक स्वाभाविक हो जाता है। मेरे पास गांव के लोग आए और उन्होंने कहा कि हम क्या करें? हम आग में उबल रहे हैं! हम जला देंगे इन मुसलमानों को! मैंने उनसे कहा, मूर्ति ही तोड़ी है न, तुम्हारा भाव तो नहीं तोड़ा। कि तुम्हारा भाव भी टूट गया? तुम दूसरी मूर्ति रख लो! और फिर यह क्या पक्का है—कि इन्होंने मुसलमानों ने तोड़ी है?

मैं तो नहीं देखता कि ये तोड़ सकते हैं। क्योंकि इनकी संख्या इतनी छोटी है कि ये तोड़कर और मुसीबत में पड़ेंगे। ये नहीं तोड़ सकते। बहुत संभावना तो यह है कि किसी हिंदू ने ही तोड़ी है, मुसलमानों को मारने के लिए, मुसलमानों को जलवाने के लिए। और यही बात सच निकली। तोड़ी थी हिंदुओं ने ही। हिंदुओं को

भड़काने के लिए। लेकिन जब मैंने उनसे कहा—गांव के सीधे-सीधे लोग थे—जब मैंने उनसे कहा कि मूर्ति टूटने से तुम्हारा भाव टूट गया? तो उन्होंने कहा—नहीं भाव तो हमारा नहीं टूटा। मैंने कहा, यह मूर्ति तो पत्थर ही थी न, कभी बाजार से खरीदकर लाए थे न, अब दूसरी खरीद लाओ। मैं तुम्हें पैसे दे दूंगा। तुम दूसरी रख लो—दूसरा पर्दा लगा लो, उस पर अपने भाव को आरोपित कर दो।

और तुम भूल गये हो कि इस देश में तो हमने कितनी सुविधा से मूर्तियां बनायी थीं। गांव के किनारे एक पत्थर पड़ा रहता है, किसी का दिल आ गया, उसी पर जाकर और सिंदुर पोत दिया, दो फूल चढ़ा दिये, मूर्ति हो गयी। यह देश अदभुत है! हर चीज को हम पर्दा बनाना जानते हैं। कोई मूर्ति कीमती होनी चाहिए—ऐसा थोड़ी ही है।

तुम जानकर चकित होओगे, जब पहली दफा अंग्रेजों ने मील के पत्थर लगाए तो बड़ी मुश्किल में पड़ गये वे। क्योंकि गांव के पास से मील का पत्थर लगाया, दूसरे दिन आए तो वहां उन्होंने सिंदुर पोतकर फूल चढ़ा दिये हैं। वे पूजा करने लगे हैं। उन्होंने कहा, हनुमान जी हैं। हनुमान जी प्रकट हो गये। अंग्रेज बड़े परेशान थे, वे समझा-समझा कर हैरान थे कि मिल का पत्थर है! मगर हम तो पत्थरों को मूर्ति बनाना जानते हैं, हम तो कहीं भी अपने भाव को आरोपित करना जानते हैं।

प्रसिद्ध कहानी है झेन फकीर इक्कू की। एक रात एक मंदिर में ठहरा। आधी रात को मंदिर के पुजारी ने देखा कि आग जल रही है बीच मंदिर में तो वह भागा आया कि मामला क्या है? देखा तो और हैरान हो गया। इस इक्कू को ठहरा लिया था क्योंकि प्रसिद्ध फकीर था। शक तो था पुजारी को, क्योंकि पुजारियों को सदा ही जानकारों पर शक रहा है क्योंकि जानकार और पुजारी का मेल नहीं होता। मगर ठहरा लिया था कि इतना प्रसिद्ध आदमी है क्या हर्जा है, रात रुकेगा, सुबह चला जाएगा। मगर उपद्रव हो गया। उसने बुद्ध की मूर्ति जला दी। लकड़ी की मूर्तियां थी मंदिर में।

जापान में लोग लकड़ी की मूर्तियां बनाते हैं। वह बुद्ध की मूर्ति जलाकर आंच ताप रहा था। उस पुजारी ने सिर ठोंक लिया, उसने कहा तुम यह क्या कर रहे हो? तुम होश में हो कि तुम्हारा दिमाग खराब है? इक्कू ने बड़ी शांति से पूछा कि क्या मामला है? इतने उद्विग्न क्यों हो रहे हो? बात क्या है? उसने कहा तुमने बुद्ध को जला दिया है, पूछते हो, उद्विग्न हो रहे हो! पास में पड़े एक लकड़ी के टुकड़े को उठाकर उसने राख में कुरेदा। अब पूछने का मौका था पुजारी का, उसने कहा, अब तुम यह क्या कर रहे हो? उसने कहा, मैं बुद्ध की अस्थियां खोज रहा हूं। पुजारी ने कहा, तुम निश्चित पागल हो। इसमें अस्थियां कहां हैं? यह लकड़ी है। तो इक्कू हंसने लगा और उसने कहा कि जब तुम्हें पता है कि यह लकड़ी है, तो क्यों इतने अद्विग्न हो रहे हो? और एक-दो मूर्तियां मंदिर में हों, उठा लाओ। अभी रात बाकी है और बहुत सर्द है। और तुम भी तापो, मैं तो ताप ही रहा हूं। तुम क्या उद्विग्न हुए जा रहे हो? इस आदमी को ठहरा रखना खतरनाक था। पुजारी ने उसे रात ही बाहर निकाल दिया मंदिर के। सर्द रात थी। बर्फ पड़ रही थी। लेकिन उसने कहा, अब मैं तुम्हें मंदिर में नहीं टिकने दे सकता। या तो मुझे बैठकर रात भर तुम्हारे सामने देखना पड़ेगा, तुम कहीं दूसरी मूर्ति न जला दो। अब जो हो गया हो गया।

सुबह उसने देखा कि वह मंदिर के सामने, वह मील के पत्थर के पास बैठा है, फूल चढ़ा कर प्रार्थना कर रहा है इक्कू। पुजारी ने पूछा, अब यह और क्या कर रहे हो? उसने कहा, पूजा कर रहा हूं। रोज सुबह भगवान की स्मृति करता हूं, तो कर रहा हूं। मगर पुजारी ने कहा, यह मील का पत्थर है! उसने कहा, अगर लकड़ी भगवान की मूर्ति हो सकती है तो मील का पत्थर क्यों नहीं! यह तो भाव की बात है, इक्कू ने कहा। जब जरूरत होती है लकड़ी की तो हम भाव हटा लेते हैं; जब जरूरत होती है भगवान की, हम भाव आरोपित कर देते हैं। अब सुबह पूजा का वक्त है, अब कहां जाएं, किस मंदिर में खोजें? यहीं हमने भगवान का आविर्भाव कर लिया। झुकने की बात है! यहीं झुक गये हैं। यहीं दो बातें प्रेम की उससे कह लीं, बात पूरी हो गयी। रात सर्द बहुत थी, तब हमने भाव हटा लिया था। तब हमने लकड़ी को कह दिया था, तू लकड़ी ही है, अब तू भगवान नहीं है।

जिनके पास समझ है, दृष्टि है, उनके जीवन में यही होगा।

शांडिल्य कहते हैं—

'पादोदकं तू पाद्यम अव्याप्तेः।।

भागवत मूर्ति के स्नान के जल को ही पादोदक समझना चाहिए।' तुमने जहां भगवान का आरोपण कर लिया है, फिर उनको स्नान करवाया है, वह जो जल बह रहा है, वही गंगाजल है। वहीं अमृत है। कहीं और जाने की जरूरत नहीं है। तीर्थ अपना तुम बना ले सकते हो। सब तुम्हारे हाथ में हैं।

मेरे इश्क का ही यह एहसान है

तुम्हें देखिये क्या से क्या कर दिया

हमीं से दैरो-हरम ने फरोग पाया है

न हम सरों को झुकाते न आस्तां होता

हमने ही बनाए हैं मंदिर और मस्जिद

हमीं से दैरो-हरम ने फरोग पाया है

उनके स्त्रष्टा हम हैं।

न हम सरों को झुकाते न आस्तां होता

अगर तुम सर न झुकाते तो मंदिर कहां होता? तुम सर न झुकाते तो मूर्ति कहां होती? तुम्हारे सर झुकाने में सारा राज है। जिसको सर झुकाना आ गया उसके लिए सारा जगत परमात्मा हो जाता है, सारा जगत पर्दा हो जाता है। जिसे सर झुकाना न आया, वह लाख पूजा करे, लाख यज्ञ-हवन करें, उसके यज्ञ-हवन, उसकी पूजाएं, उसकी अकड़ को और अहंकार को और बढ़ाए चले जाते हैं, कम नहीं करते। ध्यान रखना, जो तुम्हें मिटाता हो, वह धर्म है। जो तुम्हें मजबूत करता हो वह अधर्म है। यह मेरी परिभाषा है।

भावना से भगवान का आविर्भाव। स्व-स्फूर्ति से भगवान का आविर्भाव।

समर्पण में, निरहंकारिता में, झुक जाने में भगवान का आविर्भाव

'स्वयम् अर्पितं ग्राहयम् अविशेषात।।

अपनी समर्पण की हुई वस्तु ग्रहण करना उचित है, क्योंकि उसमें कोई भी विशेषता नहीं है।

एक सवाल उठता है, उसका जवाब दिया है। सवाल उठता है कि तुमने परमात्मा को समर्पित किया कुछ, अपना जीवन समर्पित कर दिया समझो। भक्त को करना ही पड़ेगा; इसमें कम में काम भी नहीं चलेगा—अपना जीवन समर्पित कर दिया भगवान को फिर इस जीवन का हम उपयोग कैसे करें? जब उसे दे दिया, तो हम अब इसका उपयोग कैसे करें? इस बात को ही याद दिलाने के लिए एक प्रक्रिया सदियों से चलती रही है—वे सारी प्रक्रियाएं याद दिलाने के लिए हैं, सूचनामात्र हैं। तुम जाकर भगवान को भोग लगा देते हो, फिर वही भोग प्रसाद बन जाता है, फिर तुम उसको ले लेते हो, फिर उसे तुम स्वीकार कर लेते हो। उसमें एक सार का सूत्र छिपा है। भगवान को सब दे दो, सब लौट आता है, ज्यादा होकर लौट आता है। जब तुमने चढ़ाया तब उसे भोग का नाम दिया था और जब लौटता है तो उसका नाम प्रसाद हो जाता है। जो तुम देते हो वह तुम्हीं पर वापस आता है। लेकिन फर्क बहुत है अब। अब तुम लेने वाले हो। अब तुम स्वीकार करने वाले हो। अब तुम ग्राहक हो।

और जब एक बार तुमने चढ़ा दिया, तो चढ़ाते से ही तुम्हारा तो रहा नहीं, इसलिए तुम्हें अब यह चिंता नहीं होनी चाहिए कि अपनी ही चढ़ाई हुई चीज कैसे वापस लूं? तुमने तो चढ़ा दिया, सब से तुम्हारी न रही। अब परमात्मा की मर्जी, वह वापिस देना चाहता है, तो तुम क्या करोगे?

यह सूत्र कहता है—'अपनी समर्पण की हुई वस्तु ग्रहण करना उचित है—कोई चिंता मत लेना—'क्योंकि उसमें कोई भी विशेषता नहीं है'। तुम्हारी रही ही नहीं, विशेषता की बात ही क्या है! तुमने तो दे दी थी, परमात्मा ने लौटा दी है। अगर परमात्मा ने लौटा दी तो अनुग्रह से उसे स्वीकार कर लेना, प्रसाद मानकर स्वीकार कर लेना।

ऐसा समझो, जैसा मैंने कल, या परसों तुमसे कहा, संसार छोड़कर नहीं भागना है, संसार परमात्मा पर छोड़ देना है। सारा संसार समेट कर उसके चरणों में रख देना है कि यह रहा तेरे पास। अगर उसे ले लेना होगा तो वापस नहीं लौटेगा। वह तुम्हें उत्प्रेरणा देगा कि चले जाओ जंगल। मैं ऐसा नहीं कहता हूं कि कोई भी जंगल न जाए। परमात्मा जिसे भेजे वह जाए। अपने से कोई न जाए।

बारीक भेद है। तुमने सब चढ़ा दिया परमात्मा पर, अब तुम प्रतीक्षा करो। अगर तुम्हारे मन में भीतर याद आ जाए बच्चे की और पत्नी की, तो मतलब साफ है कि परमात्मा कह रहा है—घर वापिस जाओ। अब तुम यह मत कहना कि यह बात तो मेरे गंदे मन से आ रही है। यहां गंदा कुछ भी नहीं है। सब उसका है, कैसे गंदा हो सकता है! और तुमने सब चढ़ा दिया। अब परमात्मा तुम्हारे ही मन से तो बोलेगा! और कहां से बोलेगा? तुम्हारी आंख से ही तो देखेगा! तुम्हारे विचार से ही सोचेगा। परमात्मा के पास अपने हाथ नहीं हैं, अपने पैर नहीं हैं। तुम्हारे हाथ ही उसके हाथ हैं, तुम्हारे पैर ही उसके पैर हैं।

इंग्लैड में ऐसा हुआ पिछले महायुद्ध में। एक नगर के चौराहे पर जीसस की मूर्ति थी। जर्मनों के बम गिरे। वह मूर्ति खंड-खंड होकर टूट गयी। टुकड़े-टुकड़े होकर गिर गयी। युद्ध के बाद लोगो ने सारे टुकड़े इकट्ठे कर लिये, और उन सारे टुकड़ों को मिलाकर मूर्ति बनानी चाही। मूर्ति तो बन गयी, सिर्फ दो हाथ के टुकड़े नहीं मिले। जो कलाकार उस मूर्ति को जोड़ रहा था, उसने बड़ी खोज की मगर वे दो हाथ नहीं मिले सो नहीं मिले। उसने एक अदभुत काम किया। उसने मूर्ति के नीचे एक पत्थर लगा दिया—मूर्ति अब भी खड़ी है। उसने एक पत्थर लगा दिया। वह पत्थर बड़ा प्यारा है, वह हाथ से भी ज्यादा काम का पत्थर हो गया है। उसने पत्थर पर लिख दिया है कि मेरे हाथ तुम हो, मेरे पास और कोई हाथ नहीं हैं।

परमात्मा के हाथ तुम हो। इसलिए तो इस देश में हमने परमात्मा को सहस्त्रबाहु कहा है—हजारों हाथ वाला। सब हाथ उसके हैं। सब मन उसके हैं। सब देहें। उसकी हैं। एक बार तुमने सब समर्पण कर दिया, फिर परमात्मा जो इशारा करता हो उसी इशारे से चल पड़ना। अगर कहे—जंगल, तो जंगल। अगर कहे—बाजार, तो बाजार। फिर तुम रहे ही नहीं। अब इसे प्रसाद पूर्वक स्वीकार करना। अब तुम अपनी पत्नी के पास नहीं जा रहे हो, परमात्मा भेज रहा है तो जा रहे हो। अब तुम अपने बेटे के पास नहीं जा रहे हो, यह परमात्मा का ही बेटा है, जिसकी रक्षा के लिए तुम्हें भेज रहा है तो तुम जा रहे हो।

अगर कोई व्यक्ति इतनी मौन और शांति से जीवन को जिए कि जैसा परमात्मा जिलाए वैसा ही जीता चला जाए, तो यह जगत ही मुक्ति हो जाता है। जीवनमुक्ति इसीका नाम है। तुम चढ़ा दो, फिर परमात्मा जो लौटा दे उसे प्रसाद रूप ग्रहण कर लो। अपनी मर्जी बीज में मत लाओ। निर्णायक तुम मत बनो। कर्ता तुम मत बनो। निमित्त मात्र रह जाओ।

'निमित्तगुणानपेक्षणात् अपराधेषु व्यवस्था।।

निमित्त, गुण और अनपेक्षा के अनुसार अपराध की व्यवस्था है।'

तीन भूलें भक्त से हो सकती हैं, उन तीन भूलों से बचना। ये तीन अपराध शांडिल्य ने कहे हैं।

पहला अपराध, निमित्त। निमित्त उस अपराध को कहते हैं, जो अनिच्छा से हो जाए। तुम चाहते भी नहीं थे, तुमने सोचा भी नहीं था, विचारा भी नहीं था और हो गया। आकस्मिक हो जाए। बिना पूर्व योजना के हो जाए। दुर्घटना की तरह हो जाए। यह सबसे छोटा अपराध है। ऐसी बहुत-सी भूलें हमसे हो जाती हैं। जो हम चाहते भी नहीं थे कि हों, हमने सोचा भी नहीं थीं कि हों। हमने उनको बल नहीं दिया था बस हो गयीं।

दूसरा अपराध, गुण। साधक के स्वभाव से हो, आदत से हो। और बार-बार हो। पहली तरह की भूल कभी-कभार होती है, उसे क्षमा किया जा सकता है, वह कोई बड़ी भूल नहीं है। छोटी से छोटी भूल है, उसकी पुनरुक्ति नहीं होती। दूसरी भूल की पुनरुक्ति होती है। वह रोज-रोज दौड़ती है। तुमने कल भी क्रोध किया था, आज भी क्रोध किया, परसों भी क्रोध किया था और क्रोध तुम्हारी आदत बन गयी है। अब तुम आदत के कारण

क्रोध करते हो। अब अगर तुम्हें क्रोध का मौका न मिले तो तुम तलाश करते हो, क्योंकि उसकी तलफ उठती है। अगर मौका बिलकुल भी न मिले तो तुम मौका ईजाद करते हो। कोई न कोई बहाना खोजकर तुम क्रोध कर लेते हो। मगर तुम क्रोध करोगे। यह ज्यादा बड़ा अपराध है।

पहला अपराध तो दुर्घटना मात्र है। तुम राह पर चलते थे, किसी को धक्का लगा गया, जल्दी में थे, धक्का लगा गया किसी को, तुमने धक्का मारा नहीं, है भीड़ में चलते थे, किसीके पैर पर पैर पड़ गया। इसलिए क्षमायाचना कर लेने से ही बात समाप्त हो जाती है। कोई पाप का, अपराध का कोई भार तुम्हारे ऊपर नहीं पड़ता। तुमने कहा कि माफ करें, इतने में बात खत्म हो गयी। तुम जब कहते हो—माफ करें, तो उसका मतलब यह होता है, जानकर नहीं किया है, चेष्टा से नहीं किया है।

मैंने सुना है, एक ग्रामीण आदमी शहर आया। शहर में कोई जलसा हो रहा था, उस जलसे में गया। किसी का पैर उसके पैर पर पड़ गया, उस आदमी ने कहा 'सॉरी'। उस ग्रामीण ने कहा कि हद हो गयी, पता नहीं क्या कह रहा है? एक तो पैर पर पैर मार दिया, ऊपर से गाली दे रहा है या क्या कर रहा है! खैर, उसने कहा कोई बात नहीं; अजनबी जगह है। फिर किसी आदमी का धक्का उसको लग गया। उस आदमी ने भी कहा—'सॉरी' उसने कहा यह तो हद हो गयी। यह खूब तरकीब निकाली है इन लोगों ने। धक्का दिये जाओ, मारे जाओ, पैर पर पैर रखे जाओ और गाली भी दो। फिर कोई तीसरे आदमी से वही बात हो गयी। भीड़-भाड़ थी भारी। उसने निकाला जूता और जो सामने था उसके सिर पर दे मारा और कहा—'सॉरी'। उसने कहा हद हो गयी, जो देखो वही मार रहा है और यह भी तरकीब अच्छी है, पीछे से 'सॉरी' कह दिया और चल दिये। क्षमा मांग लेने का इतना ही अर्थ होता है कि मैंने जानकर नहीं किया है। अगर जानकर किया है तो क्षमा मांग लेने का कोई भी अर्थ नहीं होता।

दूसरा अपराध जानकर किया जाता है, आदत के वश होता है, आकस्मिक नहीं है। पहला अपराध क्षम्य है, दूसरा अपराध क्षम्य नहीं है। तुम अपने भीतर जांच-पड़ताल करना। अगर कोई भूल कभी हो जाती है उसकी चिंता मत लेना बहुत। जीवन है, स्वाभाविक है। लेकिन कोई भूल रोज-रोज होती है, नियम से होती है, आदत का हिस्सा हो गयी, तुम्हारा स्वभाव बन गयी है, उससे सावधान होना। उससे बचना, उससे जागना। वही तुम्हें डुबाएगी।

और तीसरा, अनपेक्षा। पहले से दूसरा पाप ज्यादा घातक है और दूसरे से तीसरा ज्यादा घातक है। अनपेक्षा का मतलब होता है, जो साधक की मूर्च्छा से हो। एक तो अपराध हो रहा है सिर्फ आकस्मिक, एक हो रहा है आदत से और एक हो रहा है मूर्च्छा से।

मूर्च्छा हमें जकड़े हुए है।

जैसे तुम जीवन में क्या कर रहे हो यहां? कोई धन कमाने में लगा है, उससे पूछो क्या करोगे धन का? उसने कभी सोचा नहीं। तुम उससे ज्यादा पूछो, जिद करो तो वह तुम पर नाराज भी होगा कि यह कहां कि फिजूल की बात लगा रखी है? अध्यात्म इत्यादि में मुझे कोई रस नहीं है। मुझे धन कमाने दो। धन ही तो है यहां सार, और क्या है? इस आदमी ने कभी जागकर सोचा भी नहीं एक क्षण को कि धन कैसे सार हो सकता है? धन की भला उपयोगिता हो, लेकिन धन जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। धन कमाकर भी क्या करोगे अगर खुद को गंवा दिया? लेकिन वह दौड़ता रहेगा, दौड़ता रहेगा दौड़ते-दौड़ते गिर जाएगा एक दिन और जीवन भर धन ही इकट्ठा करता रहेगा और मौत आकर उसे उठा ले जाएगी, धन सब पड़ा रह जाएगा। यह मूर्च्छा है। यह कभी-कभी की भूल नहीं है, और ना आदत की भूल है, यह बेहोशी की भूल है। यह ध्यान का अभाव है। यह जागरूकता की कभी के कारण हो रहा है।

कोई आदमी पद के लिए दौड़ में लगा है; वह यह पूछता भी नहीं कि पहुंचकर भी क्या करूंगा? पहुंच भी गया तो क्या होगा? मैं बन भी गया दुनिया का सम्राट तो उसमें सार क्या है? ऊंचे से ऊंचे सिंहासन पर बैठ गया, फिर? फिर क्या होगा? मैं तो मैं ही रहूंगा। कोई सिंहासन तुम्हें ऊंचा नहीं कर सकता, ऊंचा होने का भ्रम दे

सकता है। तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे। ऊंचाइयां भीतर होती हैं, बाहर सिंहासनों पर नहीं होती और धन भी भीतर घटता है, बाहर तिजोरियां में इकट्ठा नहीं होता। इसलिए कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि बुद्ध और महावीर जैसा भिक्षु, नग्न खड़ा, ऐसा धनी होता है कि समृद्ध से समृद्ध आदमी फीके पड़ जाते हैं। और तुम धनियों को देखते हो, उनके चेहरे पर मक्खियां उड़ रही हैं, उन्होंने पाया क्या है? मिला क्या है? एक मूर्च्छा है। और सारे लोग दौड़ रहे हैं, वे भी दौड़ रहे हैं। तुमने कभी खड़े होकर सोचा नहीं रास्ते के किनारे कि जरा भीड़ से हटकर सोच भी तो लूं—मैं कहां जा रहा हूं? इतना समय कहां इतनी फुर्सत कहां, क्योंकि इतनी देर में दूसरे लोग आगे निकल जाएंगे।

सोचने का समय ही नहीं मिलता—दौड़ ऐसी चल रही है। और जहां सब दौड़े जा रहे हैं वहां शिथिल होकर चलना, या किनारे होकर खड़े होना—लोग समझते हैं पागल हो गये हो क्या? क्या कर रहे हो यहां?

ध्यान का इतना ही अर्थ होता है कि दौड़ती भीड़ में से थोड़ी देर को हट जाओ, राह के किनारे बैठ जाओ, थोड़ी देर शांत होकर जीवन को देख तो लो। तुम क्या कर रहे हो, किसलिए कर रहे हो? इससे होगा क्या? हारे तो भी हारोगे, जीते तो भी हारोगे, तो करने का प्रयोजन क्या है? सफल हुए तो भी असफल हो जानेवाले हो, असफल हुए तो असफल हो ही। यहां विषाद ही अंत में हाथ लगने वाला है। जिस व्यक्ति ने थोड़ा-सा राह के किनारे हटकर एकांत में बैठकर सोचा है, समझा है, विमर्श किया है, वह फिर इस दौड़ में सम्मिलित न हो सकेगा। उसे धन और पद की दौड़ मूढ़तापूर्ण मालूम होगी। अज्ञान की दौड़ मालूम होगी। और जिस दिन यह मूर्च्छा टूट जाती है उस दिन व्यक्ति भीतर की यात्रा पर निकलता है अंतयार्त्रा पर निकलता है।

तो तीसरा अपराध है, मूर्च्छा का। शांडिल्य कहते हैं, तीन अपराधों में पहला अपराध तो नाममात्र का अपराध है उसकी बहुत चिंता मत लेना। दूसरा अपराध बड़ा अपराध है, आदतें बहुत जोर से पकड़े हुए हैं। कोई शराब पी रहा है, वह आदत है। कोई सिगरेट पी रहा है, वह आदत है। कोई जुआ खेल रहा है, वह आदत है। कोई चोरी कर रहा है, वह आदत है।

मैंने सुना है कि महाराष्ट्र के एक संत एकनाथ यात्रा पर जाते थे तो गांव के बहुत लोग उनके साथ जा रहे थे। उन दिनों यही रिवाज था कि अगर तीर्थयात्रा पर भी जाना हो तो किसी संत के साथ जाना। क्योंकि संत के साथ जाओगे तो ही तीर्थ पहुंचोगे। अकेले चले जाओगे, तीर्थ आ भी जाएगा मगर तुम पहुंचोगे नहीं, क्योंकि तुम्हें तीर्थ का कुछ पता नहीं है। जो पहुंच गया हो तीर्थ, उसके साथ तीर्थयात्रा पर लोग जाते थे। तो गांव के बहुत लोग एकनाथ के साथ हो लिये। गांव का एक चोर भी—जाहिर चोर; छोटे गांव जब थे दुनिया में तो सभी चीजें जाहिर थीं कि कौन चोर है, कौन जुआरी है, कौन शराबी है; छोटे गांव में बचे क्या, छिपे क्या?

मैं एक बहुत छोटे-से गांव में पैदा हुआ—बचपन में अपने नाना के घर रहा। इतना छोटा गांव था कि मुश्किल से कोई ढाई सौ-तीन सौ आदमी थे। सब परिचित थे। एक रात एक चोर घूस आया। मुझे भलीभांति याद है। मेरे नाना को आदत थी दिन-रात पान चबाने की। छोटा-सा घर। उन्होंने मुझे भी उठा लिया मुझसे बात करने लगे, मेरी नानी को भी उठा लिया और पान लगा-लगा कर वह, चबा-चबा कर थूंकने लगे। वह चोर बैठा है एक कोने में, वह उसी पर थूक रहे हैं, जब वह चोर की बरदाश्त के बाहर हो गया वह भाग गया। दूसरे दिन सुबह वह आया दुकान पर उनकी और कहा कि खूब किया, सारी कमीज खराब कर दी! छोटा गांव, चोर भी जानता है, साहूकार भी जानते हैं, कौन कहां है, कौन क्या कर रहा है? और वह कह भी गया आकर कि हद कर दी, चोरी का तो मौका ही कहां दोगे, रात भर तुम जागते ही रहे, और मेरी कमीज भी खराब कर दी! तो मेरे नाना ने उससे कहा—कोई फिक्र न करो, कमीज तुम यहां से दूसरी ले जाना। मगर सोच-समझ कर आया करो! कहां आ गये? थोड़ा खयाल रखा करो। कमीज तुम ले जाना दूसरी, तुम्हारी कमीज खराब हो गयी है।

वह चोर भी एकनाथ के साथ जाना चाहता था, उसने कहा कि मैं भी चलूंगा। एकनाथ ने कहा, कि भाई, तेरी आदत पुरानी है—वह दूसरे नंबर का अपराधी था—तू चूकेगा नहीं अपनी आदत से। हम तुझे भलीभांति जानते

हैं। क्योंकि मौका आया होगा कि वह एकनाथ तक की चीजें चुरा ले गया होगा। कि तू भाई न ही जा तो अच्छा। क्योंकि कई लोग जत्थे में होंगे, और तू चीजें-मीजें चुराएगा और परेशानी खड़ी होगी। तू बाज न आएगा, लंबी यात्रा है, फिर तुझे बीच से भेज भी न सकेंगे, लोग शिकायत भी करेंगे। पर उस चोर ने कहा, मैं कसम खाता हूं, अब आपके सामने क्या, कसम खाता हूं कि चोरी नहीं करूंगा। जिस दिन से यात्रा शुरू होगी उस दिन से लेकर जिस दिन यात्रा अंत होगी तब तक चोरी नहीं करूंगा, आगे की मैं नहीं कहता। मगर यात्रा में नहीं करूंगा, यह तो आप वचन मेरा स्वीकार करो। एकनाथ ने कहा ठीक! दिन अच्छे थे वे। अब तो तुम साहूकार के वचन का भी भरोसा नहीं कर सकते, तब चोर के वचन का भी भरोसा किया जा सकता था। तब डाकुओं में भी एक भलापन होता था, अब भले आदमियों में भी डाकू हैं।

चोर ने कहा तो एकनाथ ने मान लिया कि ठीक है। और चोर ने अपने वचन का पालन किया। महीनों लगे यात्रा में, लेकिन चोरी न की। लेकिन एक उपद्रव शुरू हुआ। उपद्रव यह हुआ कि एक आदमी के बिस्तर की चीजें दूसरे आदमी के बिस्तर में मिलें। किसी के संदूक की चीजें किसी और के संदूक में मिलें। मिल तो जाएं लेकिन चीजें बड़बड़ होने लगीं। एकनाथ को शक हुआ। उन्होंने पूछा उसको कि भई तू कुछ कर तो नहीं रहा है? उसने कहा कि देखिये, आपसे मैंने कहा कि चोरी नहीं करूंगा, सो मैं नहीं कर रहा हूं। लेकिन मेरा अभ्यास तो मुझे जारी रखना पड़ेगा। रात मुझे नींद ही नहीं आती। तो मैं चुरा तो नहीं रहा हूं, एक चीज मैंने नहीं चुरायी है, अगर इसके खीसे से निकालकर उसके खीसे में कर देता हूं तो मुझसे राहत मिलती है। फिर मैं निश्चिंत हूं, जब दो-तीन बजे रात को कुछ काम कर लिया, तो फिर सो जाता हूं। अब इसमें आप बाधा न दो। चीजें मिल ही जाएंगी उनको, सभी यहीं हैं, कोई कहीं जाता नहीं है, मगर आप जानते ही हो लौटकर फिर मुझे काम तो अपना चोरी का करना ही पड़ेगा, तो अभ्यास। ऐसे अभ्यास चूक जाए! उस चोर ने कहा देखो, आप भी रोज भगवान की प्रार्थना करते कि नहीं, ऐसे मेरा यह काम है।

तो एक अभ्यास, आदत से काम हो रहे हैं। वे ज्यादा घातक हैं पहले से। उनसे भी ज्यादा घातक तीसरे हैं। जो अभ्यास से भी ज्यादा गहरे हैं, आदत से भी ज्यादा गहरे हैं। क्योंकि किसी को सिगरेट पीनी हो, शराब पीनी हो तो सीखनी पड़ती है, लेकिन लोभ अनसीखा है; क्रोध अनसीखा है, किसी को जुआ खेलना हो तो सीखना पड़ता है। सीखोगे तो ही सीख पाओगे। जुआरियों का सत्संग मिलेगा तो सीख पाओगे। चोरों के साथ रहोगे तो चोरी सीख लोगे लेकिन लोभ, क्रोध, काम, मोह, उनको सीखना नहीं पड़ता। उनको हम जन्म के साथ लेकर आए हैं। वह हमारे जन्मों-जन्मों की मूर्च्छा हैं।

शांडिल्य ने ठीक विभाजन किया, ये तीन अपराध हैं। तीसरा अपराध सबसे ज्यादा खतरनाक, उसे तोड़ो। और जब तीसरा टूट जाता है तो दूसरे के टूटने में बड़ी आसानी हो जाती है। जो स्वभाव को बदल दे, उसको आदत बदलने में कितनी देर लगेगी? आदत तो ऊपर-ऊपर है। और जिसका दूसरा समाप्त हो जाता है, उसका पहला भी समाप्त होने लगता है। क्योंकि जितना जागरूक हो जाता है व्यक्ति उतनी ही आकस्मिक घटनाएं घटनी बंद हो जाती हैं। वह सम्हल कर चलता है, किसीके पैर पर पैर नहीं पड़ता। वह होशपूर्वक जीता है। फिर भी पहले तरह की घटनाएं शायद कभी घट सकती हैं। उनको कोई बहुत मूल्य नहीं है। क्षमा मांग लेने से उनकी क्षमा हो जाती है। मगर दूसरे और तीसरे पर ध्यान रखना। सबसे ज्यादा तीसरे पर ध्यान रखना।

'निमित्त, गुण और अनपेक्षा के अनुसार अपराध की व्यवस्था है।

'पत्रादेः दामम् अन्यथा हि वैशिष्टयम्।।

पत्र, पुष्प आदि दान में एक ही फल है।'

जागरूक होकर जियो, फिर परमात्मा को तुम कुछ भी चढ़ा दो, फल एक है। यह बड़ा अदभुत सूत्र है। तुम जाकर कोहिनूर हीरा चढ़ा दो, या बेलपत्री चढ़ा दो; सोने के ढेर लगा दो, या एक फूल चढ़ा दो, या फूल की पंखुड़ी ही सही, फल एक है। जागरूक व्यक्ति के द्वारा कुछ भी चढ़ाया जाए परमात्मा को, फल एक है।

परमात्मा के सामने न तो सोने का ज्यादा मूल्य है, और न फूल का कम मूल्य है। तूने लाखों चढ़ाए कि दो-चार कौड़ियां चढ़ाईं इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुमने चढ़ाया, इससे फर्क पड़ता है।

स्मृतिकारों ने कहा है : 'देवताः भक्तिमिच्छन्ति।'

अर्थात फल उतना ही होगा जितनी भक्ति है। क्या दिया, यह नहीं, वरन कैसे दिया, किस भाव से दिया, किस हृदय से दिया। 'देवताः भक्तिमिच्छन्ति'। देवता तुम्हारा भाव देखते हैं, तुम्हारी भक्ति देखते हैं। तो कभी-कभी ऐसा हो जाता है, एक धनी आदमी हजार रुपये भी देता है जाकर मंदिर में, अगर भाव बिलकुल नहीं होता। उसे हजार से कुछ फर्क नहीं पड़ता, दिये न दिये। और कभी कोई आदमी जाकर दो पैसे चढ़ा देता है; लेकिन तब भी फर्क पड़ता है। हो सकता है जिसने दो पैसे चढ़ाए उसके पास बस दो पैसे ही थे। उसने अपना सर्वस्व चढ़ा दिया। जिसने हजार रुपये चढ़ाए उसके पास करोड़ों थे, उसने कुछ भी नहीं चढ़ाया। परम अर्थों में गुण का मूल्य है, मात्रा का नहीं। 'देवताः भक्तिमिच्छन्ति'।

इस छोटे-से गीत को सुनो। कवि यात्रा पर जा रहा है, मित्र उसे विदा करने आए हैं।

पुष्ट-गुच्छ माला दी सबने तुमने अपने अश्रु छिपाए
एक चला नक्षत्र गगन में
और विदा की आयी बेला,
और बढ़ा अनजान सफर पर
लेकर मैं सामान अकेला,
और तुम्हारे सबसे न्यारा—
पन मैंने उस दिन पहचाना
पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए
रस्म अदा से जो चल आयी
अदा उसे करना मुश्किल क्या,
किसको इसका भेद मिला है
मुंह क्या बोल रहा है, दिल क्या
पिघने मन के साथ मगर था
जारी यह संघर्ष तुम्हारा,
शकुन समय अशकुन का आंसू पलक-पुलों से ढलक न जाए
पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए
पहली ही मंजिल पर सारे
फूल और कलियां कुम्हलायीं,
मुरझाए कुसुमों पर किसने
आज तलक ममता दिखलायी,
कलक बहुत हो उनकी, फिर भी
अलग उन्हें करना पड़ता है,
सुधि के अंग बने वे जलकण जो कि तुम्हारे दृग में आए
पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए

दिया भी नहीं कुछ, सिर्फ आंसू आ न जाएं आंखों में, इन्हें छिपाया। क्योंकि शकुन के क्षण में आंसू कहीं अपशुकन न मालूम पड़े। लेकिन सब दिये गये पुष्प-गुच्छ व्यर्थ हो गये, जल्दी ही सूख गये, कुम्हला गये।

सुधि के अंग बने वे जलकण जो कि तुम्हारे दृग में आए।

पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए
जो छिपाया और दिया भी नहीं, वहीं पहुंचा। भाव परखे जाते हैं। अंतिम कसौटी भाव की है।
किसको इसका भेद मिला है
मुंह क्या बोल रहा है, दिल क्या
तुम मुंह से क्या बोलते हो, वह नहीं है प्रार्थना। तुम्हारा दिल क्या बोलता है, वही है प्रार्थना।
'पत्र, पुष्प आदि दान में एक ही फल हैं'। इसलिए यह चिंता मत करना कि मुझ गरीब के पास क्या है? मैं क्या चढ़ाऊं? भाव की दृष्टि से तुम सभी सम्राट हो। भाव की दृष्टि से भगवान ने सभी को समान बनाया है। वह काव्य भाव का सभी को बराबर दिया है। तुम्हारे पास धन न हो, फिकिर मत करना; तुम्हारे पास पद न हो, फिकिर मत करना; तुम अपने को चढ़ा ही सकते हो। तुम्हीं वास्तविक धन हो। तुम अपने भावों को तो चढ़ा ही सकते हो फिर दो पत्ते भी पर्याप्त हैं।
दो नैन कमल
घूंघट में घनेरी रात लिये
आंचल में भरी बरसात लिये
कुछ पाए हुए, कुछ खोए भी
कुछ जागे भी, कुछ सोए भी
चंचल ऊषा के बान लिये
गंभीर घटा का मान लिये
सावन के सजल संगीत भरे
कुछ हार भरे, कुछ जीत भरे
कुछ बीते दिनों की करवट-सी
कुछ आते दिनों की आहट-सी
किन गलियां दीप जलाये सखी!
ये भंवरे कित मंडलाए सखी!
सपनों से बोझल-बोझल
दो नैन कमल
कुछ घबराएं कुछ शर्माएं
कुछ शर्मा-शर्मा इतराए
सखी! भेदी भेद न पा जाए
कुछ उलझी-सुलझी आशाएं
कुछ बूझी-बूझी भाषाएं
कुछ बिखरे-बिखरे राग लिये
कुछ मीठी-मीठी आग लिये
अनुराग लिये वैराग लिये
कुछ बीते दिनों की करवट-सी
कुछ आते दिनों की आहट-सी
किन गलियों दीप जलाए सखी!
ये भंवरे कित मंडलाएं सखी!
नैनों से ओझल-ओझल

दो नैन कमल

कुछ न भी चढ़ाया, आंखें गीली हो आयीं—दो नैन कमल—पर्याप्त है। प्रार्थना पूरी हो गयी। हृदय भर आया, पर्याप्त है, प्रार्थना पूरी हो गयी। तुम झुक गये। देह झुकी या न झुकी, गौण है। प्राण झुक गये। प्रार्थना पूरी हो गयी।

पुकारो—आंसुओं से, भाव से, प्राणों से। चढ़ाओ अपनी निजता, कुछ और चढ़ाने का प्रयोजन नहीं। तुम्हारा धन परमात्मा के सामने धन नहीं है। परमात्मा के सामने सिर्फ तुम्हारा जीवन ही धन है।

गमे-फिराक में दिल अश्कबार रहता है
न दिन को चैन न शब को करार रहता है
हर-एक लम्हा मुझे इंतजार रहता है
अब इंतजार की घड़ियां मेरी बिता जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ

पुकारो—'मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ'। मेरे मित्र, मुझे ढाढ़स बंधानेवाले, पुकारो—'मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ।

तसव्वुरात पर दिन-रात छाए रहते हो
खयाल-ओ-ख्वाब की दुनिया बसाए रहते हो
अगर्चे रूह के अंदर समाए रहते हो
मगर जो आग है दिल में उसे बुझा जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ
निगाहें ढूंढ़ती हैं तुमको लालाजारों में
तलाश करता है दिल तुमको चांदतारों में
खयाल रहता है हर वक्त कोहसारों में
भटक रही हूं निशां अपना कुछ बता जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ
तुम्हारी याद को दिल लगाऊंगी कब तक
गमे-फिराक के सदमे उठाऊंगी कब तक
उमीदो-दीन की दुनिया बसाऊंगी कब तक
मैं जान हार रही हूं मुझे जिता जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल नवाज आ जाओ

पुकारो, उस परम मित्र को, उस परम प्यारे को। तुम्हारी पुकार तुम्हारा पूरा हृदय हो। तुम्हारी पुकार में तुम्हारे सारे प्राण समा जाएं। तुम्हारी पुकार तुम्हारी समग्रता से उठे। बस वही भक्ति है। और सब आयोजन व्यर्थ हैं। और सब विधि-विधान दो कौड़ी के हैं। शांडिल्य ने उन्हें यजन कहा है, भजन नहीं। बुद्धि से जो होता है, यजन, भाव से जो होता है, भजन। भजन से मिलता है भगवान। यजन से शायद संसार मिलता है। यत्न करोगे, धन कमा लोगे, पद कमा लोगे। लेकिन भगवान न तो यत्न से मिलता है, न प्रयास से। भगवान मिलता है जब तुम झुक जाते हो, परम हार में झुक जाते हो। जब तुम कहते हो, मेरे किये कुछ भी न होगा। जब तुम यह भ्रम ही तोड़ डालते हो कि मैं कुछ कर लूंगा, जब तुम्हारी असहाय अवस्था चरम शिखर पर पहुंचती है। बस उसी क्षण, उसी क्षण प्यारा आ जाता है। अगर नहीं आया है प्यारा, तो तुमने पुकारा नहीं, इतना ही स्मरण रखना। या तुमने पुकारा तो तुम्हारी पुकार झूठी थी। या तुमने पुकारा तो तुम्हारी पुकार हार्दिक न थी। या तुमने पुकारा तो तुमने शास्त्र की भाषा बोली अपने प्राणों की भाषा नहीं बोली।

तुम्हारी प्रार्थना को तुम्हारे भीतर ही जन्मना है। जैसे फूल अपने पौधे पर जन्मता है, वैसे हर एक की प्रार्थना हर एक के जीवन में जन्मती है। और किसी की प्रार्थना तुम्हारी प्रार्थना नहीं बनेगी। मेरी प्रार्थना, मेरी प्रार्थना है, तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारी प्रार्थना है। मेरी प्रार्थना को तोड़कर तुम पर लगा दूंगा, वह फूल तुमसे जुड़ेगा नहीं। वह उधार होगा। उससे तुम चाहे सज जाओ थोड़ी देर को, दुनिया को धोखा हो जाए, लेकिन उससे तुम्हारी रसधार न जुड़ेगी। वह जल्दी ही कुम्हला जाएगा, जल्दी ही गिर जाएगा। वह झूठा है। झूठे से बचो।

आज के सूत्रों का सार है इतना ही कि तुम पराए से बचो, अपने को तलाशो। अपनी निजता से एक इंच भी चलो तो बहुत है और किसी और के कंधे पर चढ़कर हजार मील भी चले तो तुम चक्कर ही काटते रहोगे कोल्हू के बैल की तरह, कहीं पहुंचोगे नहीं। और ऐसा नहीं कि तुमने प्रार्थना नहीं की है, कि तुम मंदिर नहीं गये, मस्जिद नहीं गये, गुरुद्वारे नहीं गये, तुम गये हो मगर पहुंचे कहां? जरूर तुम कोल्हू के बैल की तरह चल रहे हो।

जागो! जागकर अपनी जीवन दशा को ठीक से पहचानो। उस जागरण में, उस समझ में, एक बात तुम्हें स्पष्ट दिखायी पड़ जाएगी—उधार से काम चलनेवाला नहीं है। परमात्मा सिर्फ तुम्हें स्वीकार करेगा। तुम किसी और के चेहरे लगाकर गये तो तुम चूकते जाओगे। तुम्हें अपना ही चेहरा खोजना पड़ेगा। और वह चेहरा अभी उपलब्ध है, जरा मुखौटे हटाने पड़ेंगे। हिंदू का मुखौटा, मुसलमान का मुखौटा, ईसाई का मुखौटा, जैन का मुखौटा, शब्दों के मुखौटे। हटा दो सब। नग्न होकर पुकारो उसे और मिलन सुनिश्चित है।

आज इतना ही।

आपको सुनता हूं तो अपने जीवन की व्यर्थता देखकर बहुत उदास हो जाता हूं।...

आपको पाकर पा रहा हूं कि सब पा गया हूं। हालांकि लोग कहते हैं मैं पागल हो गया हूं।...

परमात्मा को पाने के लिए किस तरह मूल्य चुकाना होगा? क्या सक्रिय ध्यान शरीर को कष्ट देना नहीं है?

सुख से चुकाओ मूल्य परमात्मा को पाने का

आठवां प्रवचनः

पहला प्रश्नः मैं आपको सुनता हूं तो अपने जीवन की व्यर्थता देखकर बहुत उदास हो जाता हूं। मुझे उबारें मुझे बचाएं!

जीवन जैसा है उसकी व्यर्थता समझ में आ जाए तो जीवन जैसा होना चाहिए उसकी खोज शुरू होती है। जब तक व्यर्थ को सार्थक समझा है तब तक सार्थक से वंचित रहोगे। जिस दिन व्यर्थ व्यर्थ की तरह दिखायी पड़ जाएगा, आधी यात्रा पूरी हो गयी। व्यर्थ का व्यर्थ की भांति दिखायी पड़ जाना, सार्थक का सार्थक की भांति दिखायी पड़ने के लिए पहला कदम है, उदास न होओ।

उदासी आती है, स्वाभाविक है। क्योंकि हम एक ढंग से जी रहे हैं। उसी ढंग से हमने अपना अब तक का जीवन बिताया; अपना समय लगाया, अपनी ऊर्जा लगायी। जीवन बहुमूल्य है, उसे हमने एक दांव पर लगाया। अचानक पता लगे कि वह दांव पर लगाया। आज अचानक पता लगे कि वह दांव व्यर्थ था, वहां हारने के सिवाय जीतने की कोई सुविधा नहीं थी, हम धोखे में थे, तो उदासी आनी स्वाभाविक है। लेकिन जितनी जल्दी यह उदासी आ जाए, उतना शुभ है। सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता। मरने के एक क्षण पहले भी अगर यह दिखायी पड़ जाए कि जो जीवन हमने जीया वह व्यर्थ था, तो उस शेष एक क्षण में भी परमात्मा उपलब्ध हो सकता है। परमात्मा को पाने के लिए समय की थोड़ी जरूरत है। दृष्टि के बदलाहट की जरूरत है। जो दृष्टि बाहर देख रही थी, वह भीतर देख ले, बस।

बाहर का व्यर्थ होगा तभी तो तुम भीतर देखोगे। जब तक बाहर तुम्हें सार्थक मालूम हो रहा है तब तक भीतर तुम जाओगे क्यों? कंकड़-पत्थरों में हीरे मालूम हो रहे हैं तो तुम कंकड़-पत्थर बीनोगे। अगर बाहर सब कंकड़ पत्थर है, फिर क्या करोगे? फिर भीतर जाना ही होगा! और जब जाना ही होता है तभी लोग जाते हैं। जब सब

तरफ से हार जाते हैं, तभी लोग जाते हैं। पराजय पूरी होनी चाहिए। उदासी समग्र होनी चाहिए। इसी उदासी से आनंद का जन्म होता है।

यहां सब व्यर्थ हो जाता है।

तुमने धन कमाया, वह भी एक दिन व्यर्थ हो जाएगा। जितनी जल्दी समझ में आ जाए, उतना अच्छा। तुमने यहां प्रेम किया, वह भी उखड़ जाएगा, वह भी टूट जाएगा। जिनसे तुमने प्रेम किया वे भी मरणधर्मा हैं। तुम भी मरणधर्मा हो। यहां के नाते-नदी-नाव-संयोग हैं। क्षणभंगुर के हैं। थोड़ी देर टिकते हैं, पानी के बबूले हैं—पानी केरा बुदबदा। कितनी देर टिकेगा? जब तक है तब तक हो सकता है सूरज की रोशनी में चमके, इंद्रधनुष दिखायी पड़े पानी के बुलबुले में, लेकिन कितनी देर? टूटने को ही है। टूटना सुनिश्चित है। उसके होने में ही टूटना छिपा है। यहां बड़े सपने तुमने देखे हैं—प्रेम के, पद के, प्रतिष्ठा के—वे सब उखड़ जाएंगे।

मेरी बातें सुनकर उदासी आए, यह शुभ लक्षण है। इसके बाद दूसरी घटना भी घटेगी, अगर पहली घटना घट जाने दी तो दूसरी भी घटेगी। आनंद का आविर्भाव भी होगा।

जख्म दिल के छुपाके देख लिया
गम से आंखें चुराके देख लिया
लज्जते-दर्द में निसार तेरे!
तुझसे दामन बचाके देख लिया
दिल का हर जख्म मुसकरा उठा!
नग्मए-ऐश गाके देख लिया
जिंदगी का सकून खो बैठे
गम की दौलत लुटाके देख लिया
बिजलियां सैकड़ों चमक उठीं
फिर नशेमन बनाके देख लिया
कैसी उल्फत, कहां की रस्मे-वफा
सबको अपना बनाके देख लिया
हमनवा कौन? हमनफस कैसा!
नौहए-गम सुनाके देख लिया
जिंदगी एक शराब है 'जेबा'!
खंदए-गुल को जाके देख लिया

जरा फूल को पास से जाकर देखना—खंदए-गुल को जाके देख लिया। मुस्कराते फूल को सुबह जरा पास से जाकर देख लेना। जिंदगी एक शराब है 'जेबा—और तुम्हें समझ में आ जाएगा कि जिंदगी एक मृगमरीचिका है।

जिंदगी एक शराब है 'जेबा'
खंदए-गुल को जाके देख लिया

दूर-दूर से मुस्कुराते फूलों को देखते रहोगे तो धोखा खाते रहोगे। पास से, निकट से देख लेना,। इसलिए मैं जीवन से भाग जाने को नहीं कहता हूं। क्योंकि भाग जाओगे तो जागोगे कैसे? हिमालय की गुफाओं में बैठ जाओगे तो जागोगे कैसे? यह जीवन इतना दुखपूर्ण है, इतना व्यर्थ है, इतना असार है कि अगर इसके बीच रहे, तो आज नहीं कल जाओगे ही। सोओगे कैसे? बीच बाजार में सो रहे हो, नींद टूट ही जाएगी। हां, गुफा में बैठ गये हिमालय की तो शायद नींद लगी भी रह जाए।

इसलिए मैं कहता हूं, छोड़कर मत जाना। इसलिए नानक ने नहीं कहा कि छोड़कर जाओ। इसलिए मुहम्मद ने नहीं कहा कि छोड़कर जाओ। कहां, रहो। जहां हो, वहीं रहो। जैसे हो, वैसे ही राहे। दुकान में, बाजार में,

परिवार में। क्योंकि यह जो शोरगुल है चारों तरफ यही तुम्हें जगाएगा। इसकी व्यर्थता तुम्हें जगाएगी। इससे दूर हट गये तो इसकी व्यर्थता का कांटा चुभेगा नहीं। फिर तुम सपनों में खो जा सकते हो। हिमालय की गुफाओं में बैठे लोग अक्सर भ्रांतियों में पड़ जाते हैं। मन की कल्पनाओं में खो जाते हैं। मन की कल्पनाएं—फिर तुम जो चाहो कर लो। कृष्ण को बांसुरी बजाता हुआ देखना हो तो कृष्ण को बांसुरी बजाते देखो। और राम को धनुषबाण लिए देखना हो तो राम को धनुषबाण लिये देखो। फिर तुम मुक्त हो। तुम्हारी कल्पना मुक्त है। तुम जो लड्डू खाना चाहो कल्पना के, खा लो। लेकिन असली सत्य यहां घटता है, जगत में घटता है, चोट यहां है। व्यर्थ यहां है तो सार्थक भी यहीं छिपेगा, यहीं मिलेगा, यहीं खोजना होगा।

और एक न एक दिन तो उदास होओगे ही। यहां कौन अपना है? हमनवा कौन? यहां कौन एक-दूसरे की भाषा समझता है? हमनवा कौन? हमनफस कैसा! यहां कौन किसका संगी है, कौन किसका साथी है? मन भरमाने की बातें हैं कि पति है, कि पत्नी है, कि मित्र है, कि बेटा है, कि बाप है, कि मां है। यहां कौन किसका संगी, कौन किसका साथी! यहां कौन तुम्हारी भाषा समझता है? तुम किसकी भाषा समझते हो? कुछ का कुछ समझ लेते हो।

एक मित्र ने सवाल भेजा है, कि आप पंजाबियों के दुश्मन क्यों? मैं और पंजाबियों का दुश्मन! मैं पंजाबी हूं। तुम्हें मुझमें पंजाबी होने में कुछ कमी दिखायी पड़ती है? साफा भर बांधने की बात है।...वह गुरुदयाल बैठे हुए हैं, गुरुदयाल से पूछ लेना; वह एक दफा साफा ले आए थे और साफा बंधवाकर मेरा चित्र निकाल लिया। मुझे बिलकुल पंजाबी बना दिया।

मैं पंजाबियों का दुश्मन? तुम समझ ही नहीं पाते। यहां कोई किसी की भाषा नहीं समझ पाता।

उन सज्जन ने लिखा है हम पंजाबी आपके झांसे में आनेवाले नहीं। कुछ कहा जाता है, कुछ समझ लिया जाता है। तुम मजाक भी नहीं समझ सकते। तुम पंजाबियों से भी गये-बीते हो गये! कम से कम मजाक तो समझो। तुम मेरा प्रेम भी नहीं समझ सकते। प्रेम है, इसीलिए चोट करता हूं। तुम चोट से तिलमिला जाते हो। जगाना चाहता हूं, इसलिए चोट करता हूं। तुम जागने के बजाय नाराज हो जाते हो, गालियां बकने लगते हो।

हमनवा कौन? हमनफस कैसा!

नौहए-गम सुनाके देख लिया

सबको अपना दुखड़ा सुनाकर देख लिया। न कोई समझता है, न कोई संगी है, न कोई साथी है। इस जिंदगी में तुमने सब करके देख लिया। क्या बचा है? अक्सर करने को ज्यादा है भी नहीं। थोड़ी-सी बातें हैं, लोग उन्हीं को दुहराए चले जाते हैं। बार-बार वही क्रोध, वही प्रेम, वही घृणा। कोल्हू के बैल जैसा जीवन की गति है। तुमने सब करके देख लिया और बहुत बार करके देख लिया; किस आशा के सहारे बैठे हो अब? किस भविष्य की प्रतीक्षा कर रहे हो? तोड़ दो सब आशाएं, हो जाओ निराश। छोड़ दो सारा भविष्य, हो जाओ उदास। उसी उदासी से तुम्हारे जीवन का फूल खिलेगा जो शाश्वत है।

अभी मुस्कुराएगी यह फजा अभी रोशनी नजर आएगी

यह जो जुल्मते-शबे-यास है यह नवेदे-सुबह भी लाएगी

इस उदासी से घबड़ा मत जाना। इस उदासी को मिटाने की चेष्टा में मत लग जाना। यह उदासी मंदिर है। इसी में परमात्मा का आरोपण होगा।। यह उदासी ही तो वैराग्य का सूत्र है। इसीसे तो परमात्मा का राग जगेगा। संसार से राग टूटे, तो परमात्मा से राग जुड़े।

जब तक संसार से राग है, परमात्मा से विराग है। जब तक संसार में रस है तब तक परमात्मा से तुम विरस रहोगे। जब तक आंखें संसार पर लगी हैं, तुम संसार को सन्मुख किये हो, परमात्मा से विमुख रहोगे। जैसे ही मुड़े संसार से, फिर और कोई बचता नहीं, यहां दो ही तो हैं—एक बाहर है और एक भीतर है; एक चैतन्य है

और एक पदार्थ है। एक व्यर्थ है और एक सार है। व्यर्थ से मुड़े कि सार से जुड़े। संसार से विमुख हुए कि परमात्मा के सन्मुख हुए।

'अभी मुस्कुराएगी यह फजा'। जरा ठहरो। उदासी से घबड़ा मत जाना।इसको दबा मत देना। इसको लीप-पोतकर मिटा मत देना। जल्दी से फिर अपनी मरी हुए आशाओं में सांस मत फूंक देना। मर गयी आशाओं को फिर से पानी मत दे देना। 'अभी मुस्कुराएगी यह फ़ज़ा'। यह जो उदास आखें हो गयी है, यह मुस्कुराएगी जरा रुको। अभी रोशनी नजर आएगी—अभी सब अंधेरा हो गया है, घबड़ाओ मत, इसी अंधेरे से आदमी रोशनी की तरफ पहुंचता है।

झूठे दिये बुझे गये तो अंधेरा हो जाता है। लेकिन इसी अंधेरे में अगर तुम बैठ रहे, बैठे रहे, तो सच्चे दिये जलेंगे। निश्चित जलते हैं। सच्चे दिये जल ही रहे हैं, लेकिन तुम्हारी आंखों की आदत झूठे दीयों को पहचानने की हो गयी है, इसलिए थोड़ी देर लगती है। तुमने देखा नहीं है, बाहर रोशनी में से आते हो घर लौटकर तो घर में अंधेरा मालूम होता है! थोड़ी देर बैठे कि फिर अंधेरा नहीं मालूम होता। बाहर की रोशनी के आदी हो गये, घर लौटे तो आंखों को नया समायोजन करना पड़ता है। आंखों को बदलाहट करनी पड़ती है। थोड़ा समय लगता है। बैठ गये, थोड़े सुस्ता लिये, आराम किये, फिर घर में रोशनी दिखायी पड़ने लगती है।

ऐसे ही तुम जन्मों-जन्मों तक बाहर रहे हो, अपने घर के बाहर रहे हो, आंखें बाहर के लिए बिलकुल ही राजी हो गयी हैं, परिचित हो गयी हैं, भीतर तुम गये नहीं हो, जन्मों-जन्मों, से घर तुम लौटे ही जन्मों-जन्मों से, जब पहली दफा लौटोगे, सब अंधेरा हो जाएगा। घबड़ाना मत। इस अंधेरे में ही गुरु की सहायता की जरूरत है कि वह तुम्हें सम्हाले रखे। तुम्हारा तो मन कहेगा, बाहर चलो, वहां रोशनी तो थी कम से कम। कुछ आशा थी, कुछ भविष्य था, कुछ रस था, जीने का कोई बहाना और उपाय था, यहां तो कोई जीने का बहाना भी नहीं और उपाय भी नहीं, यहां करना क्या है, उठो, बाहर चलो। मन तो कहेगा, दौड़ो फिर, फिर जगा लो अपने पुराने सपने, फिर फैला दो सपनों का वितान।

अभी मुसकराएगी यह फजा अभी रोशनी नजर आएगी
यह जो जुल्मते-शबे-यास है यह नवेदे-सुबह भी लाएगी
घबड़ाओ मत, इस रात के बाद ही सवेरा है।
जो तड़प गयी तो यह बर्क है जो मचल गयी तो यह मौज है
यह तेरी नजर कि है, शोबिदा कोई ताजा गुल ही खिलाएगी
यह उदासी कुछ ताजा गुल खिलाने की तैयारी है।
यह हवाए-यास बजा, मगर तपशे-उम्मीद पै रख नजर
वह जो इक चिराग बुझाएगी तो यह सौ चिराग जलाएगी
घबड़ाओ मत। झूठे दिये बुझ गये तो अच्छा।
वह जो इक किरण बुझाएगी तो यह सौ चिराग जलाएगी
गर दिलो-दिमाग पै छा गयी हैं गमे हयात की तल्खियां
तेरी याद फिर तेरी याद है, तेरी याद दिल से न जाएगी

संसार से उदास हो जाओगे, इतना ही मत देखो, यह आधी कहानी है। इसी के पीछे उठ रहा है दूसरा हिस्सा कहानी का कि परमात्मा की आशा जगेगी; संसार की आशा गिरेगी, परमात्मा की आशा जगेगी।

तेरी याद फिर तेरी याद है, तेरी याद दिल से न जाएगी

और एक बार संसार की याद दिल से चली गयी तो फिर परमात्मा को भुलाने का उपाय नहीं। फिर कैसे भूलोगे? फिर उसके सिवाय कुछ बचता नहीं—जागो तो उसमें जागोगे, सोओ तो उसमें सोओगे, उठो तो उसमें उठोगे,

बैठो तो उसमें बैठोगे, जीओ तो उसमें जीओगे। मरो तो उसमें मरोगे, फिर सब तरफ से वही है। एक बार संसार से हमारा याद का रिश्ता टूट जाए।

यह नसीम नर्म अभी चली है अभी से इसका गिला न कर

जो बहार बनके यह छा गयी तो कली-कली को हंसाएगी

थोड़ी प्रतीक्षा। थोड़ा धैर्य।

तुम नये-नये आए होओगे, तुम मुझे सुनकर उदास हो गये हो। तुम यहां और लोगों की भी देखते हो, जो सुनकर मुझे आनंदित हो रहे हैं? जब वे भी पहली-पहली बार आए थे तो वे भी उदास हुए थे। जब पहली-पहली बार वे भी आए थे, तब वे भी नाराज हुए थे। पहली-पहली बार वे भी आए थे तो उनको भी चोटें लगी थीं, जख्म हुए थे। अब वे ही जख्म फूल बन गये हैं। अब वे ही चोटें जागरण बन गयीं। अब उदासी नहीं है, अब चित्त उनका मगन है। उनका चित्त बड़े आनंद में है।

इस दूसरे प्रश्न से तुम्हें समझ में आ सकेगा—

दूसरा प्रश्नः मैं आपको पाकर पा रहा हूं कि सब पा गया हूं। हालांकि लोग कहते हैं कि मैं पागल हो गया हूं। भगवान, यह मुझे क्या हो गया है?

लोग ठीक ही कहते हैं। तुम पागल हो गये हो। प्रेम पागलपन है। पर जिसने प्रेम जाना, उसके लिए सिर्फ प्रेम ही समझदारी रह जाती है। जिन्होंने प्रेम नहीं जाना, उनके लिए प्रेम पागलपन है। उन्होंने स्वाद ही नहीं चखा उस बात का। उन्हें धन पागलपन नहीं है, पद पागलपन नहीं है, प्रेम पागलपन है। जिन्होंने प्रेम चखा, उनके लिए धन पागलपन है, पद पागलपन है, उन्हें सब पागलपन है, सिर्फ प्रेम ही एकमात्र बुद्धिमानी है।

लेकिन लोग भी ठीक ही कहते हैं। लोग अपने ही हिसाब से तो कहेंगे न! लोग तुम्हारे हिसाब से कैसे कहें! लोगों को लगता है कि तुम कुछ डगमगा गये। क्योंकि लोगों को लगता है, जैसे वे चल रहे हैं तुम अब वैसे नहीं चल रहे हो। तुमने लोगों से अपना ढंग अलग कर लिया। तुम्हें आनंद आ रहा है। तुम मगन हो रहे हो। मगर लोगों को लग रहा है कि तुम बेढंग पर जा रहे हो। भीड़ चाहती है सदा तुम भीड़ के साथ राजी रहो। भीड़ तुम्हें स्वतंत्रता नहीं देना चाहती। भीड़ व्यक्ति को बरदाश्त नहीं करती। भीड़ व्यक्ति की हत्या करती है, व्यक्ति को बिलकुल मिटा देना चाहती है। भीड़ गुलाम चाहती है। फिर वे गुलाम हिंदू हों कि मुसलमान कि सिख कि ईसाई कि जैन, कुछ फर्क नहीं पड़ता। भीड़ की एक ही कला है कि तुम्हें पोंछ दे, मिटा दे। तुम तुम्हारी तरह न रहो, तुम्हारी भीतर भीड़ प्रवेश कर जाए। तुम भीड़ की भाषा बोलो, भीड़ के सिद्धांत मानो, भीड़ का शास्त्र दोहराओ, भीड़ जो कहे वैसा करो, भीड़ जैसा चलाए वैसा चलो, भीड़ मंदिर जाए तो तुम मंदिर जाओ, भीड़ मस्जिद जाए तो तुम मस्जिद जाओ, भीड़ मस्जिद में आग लगाए तो तुम मस्जिद में आग लगाओ, भीड़ मंदिर की मूर्ति तोड़े तो तुम मूर्ति तोड़ो, भीड़ जो करे वही करो।

लोग भीड़ में सम्मिलित हो जाने के लिए उत्सुक भी होते हैं। कारण हैं कई। एक तो जितना तुम भीड़ के साथ हो जाते हो, उतनी ही तुम्हारी चिंता कम हो जाती है। तुम्हारी जिम्मेदारी का भाव, तुम्हारे उत्तरदायित्व का भाव कम हो जाता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो पाप भीड़ करती है, वह व्यक्ति कभी नहीं कर सकता। और अक्सर किसी भीड़ ने कोई पाप भी किया हो—समझो कि किसी भीड़ ने जाकर मंदिर तोड़ डाला हो, कि गुरुद्वारे में आग लगा दी हो, कि मस्जिद जला दी हो—अगर इस भीड़ के एक-एक आदमी से तुम अलग-अलग जाकर पूछो तो वह कहेगा कि मैं कैसे कर पाया, कह नहीं सकता। हो गया। अगर तुम उससे पूछो कि क्या तुम अकेले यह कर सकते थे? तो वह हिचकिचाएगा। अकेले वह नहीं कर सकता था। अकेले में आदमी के पास थोड़ा-सा उत्तरदायित्व का भाव होता है। भीड़ में सब उत्तरदायित्व खो जाता है। भीड़ का नशा पकड़ लेता है। इतने लोग कर रहे हैं तो ठीक ही कर रहे होंगे। फिर इतने लोग कर रहे हैं, तो मेरी कोई जिम्मेवारी भी नहीं है। अगर मंदिर जलेगा तो मैं कोई अकेला जिम्मेवार नहीं हूं। मैंने जलाया, ऐसा सवाल ही नहीं हैं, मैं तो सिर्फ भीड़ में था,

जलानेवाले तो और ही लोग थे। और भीड़ में हर एक आदमी यही सोच रहा है जैसा तुम सोच रहे हो कि जलाने वाली तो भीड़ है, मैं तो भीड़ में हूं सिर्फ।

भीड़ ने जितने बड़े अपराध किये हैं, कभी व्यक्तियों ने नहीं किये। व्यक्तियों के नाम बड़े छोटे-मोटे अपराध हैं। असली अपराध भीड़ के नाम हैं। तो व्यक्ति को आसानी भी मिलती है भीड़ के साथ जुड़-जाने में। तुम्हारे अपराध की वृत्ति को भी सुविधा मिलती है। क्योंकि भीड़ के सहयोग के कारण अपराध पुण्य जैसा मालूम होता है। पाप पुण्य बन जाता है। तुम अकेले करो तो मन कचोटेगा, अंतःकरण पर चोट लगेगी, कांटा गड़ेगा। भीड़ के साथ करो, तुम्हें अंतःकरण की कोई चिंता ही नहीं। अंतःकरण को एक तरफ रख दिया जा सकता है। तुम्हारे भीतर छिपी हुई पशुता को सुविधा से प्रकट होने का मौका मिल जाता है।

भीड़ में तुम परमात्मा से दूर हो जाते हो और पशु के करीब हो जाते हो। अकेले में जितने तुम व्यक्ति होते हो उतने ही तुम परमात्मा के करीब होते हो। क्योंकि उतना ही अंतःकरण उतना ही विचार, उतना ही ध्यान सजग होता है। तुम एक-एक कदम सोचकर उठाते हो कि मैं जिम्मेवार हूं, यह मंदिर जलाऊ? इस दूध पीते बच्चे को मारूं? इसने क्या बिगाड़ा है? इसे कुछ पता भी नहीं है। यह हिंदू है कि मुसलमान है, इसका भी पता नहीं है, इसे मैं मारूं! अकेले तुम पाप करने चलोगे, कुछ सोचना ही पड़ेगा। बड़े से बड़ा पापी भी विचार करता है। लेकिन भीड़ के साथ पाप पुण्य हो जाता है। मजे से कर सकते हो और रात आकर निश्चिंत सो सकते हो। उत्तरदायित्व से मुक्ति मिल जाती है भीड़ में।

जिस आदमी ने हिरोशिमा पर एटमबम गिराया और एक लाख आदमियों को पांच मिनट के भीतर राख कर दिया, वह आदमी रात लौटकर निश्चिंतता से सोया। थोड़ा सोचो! एक लाख आदमी तुमने मार डाले हों और तुम निश्चिंता से सो सकोगे! वह आदमी कैसे सो सका? यह मत सोचना कि वह कोई बड़ा भारी दानव था, तुम्हारे जैसा आदमी था, ठीक तुम्हारे जैसा, साधारण आदमी था। उसकी पत्नी थी, उसका बच्चा था, उसके मां-बाप थे, किसी ने कभी उसे ऐसा नहीं जाना कि इतना महाहत्यारा है वह। लेकिन सुबह जब पत्रकारों ने पूछा कि इतने लोगों के मरने के बाद तुझे कैसा लगा? उसने कहा, कोई सवाल ही नहीं, मैंने आज्ञा का पालन किया! ऊपर से आज्ञा आयी थी। और आकर निश्चिंत सो गया। आज्ञा पूरी कर दी, मेरा काम पूरा हो गया, मैं निश्चिंत सो गया।

अब सवाल यह है, आज्ञा किसने दी? इसके लिए कौन जिम्मेवार था! टरूमैन प्रेसीडेंट था अमरीका का जब यह एटमबम गिरा। जब टरूमैन से पूछा गया तो उसने कहा कि मैं क्या कर सकता हूं? मेरे जनरलों ने सलाह दी थी। टरूमैन भी मजे से सोया, क्योंकि उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं। और जब जनरलों से पूछा गया, उन्होंने कहा—हम क्या कर सकते हैं, राष्ट्रपति की आज्ञा थी।

भीड़ में जब कोई बात होती है तो कोई जिम्मेवार नहीं होता। हर आदमी अपनी जिम्मेवारी दूसरे पर टाल देता है। जिम्मेवारी के लिए कोई राजी नहीं होता कि मैं जिम्मेवार हूं। जिन्होंने एटमबम बनाया, उन्होंने भी जिम्मेवारी अनुभव नहीं की। उन्होंने कहा, हम तो सिर्फ विज्ञान की खोज कर रहे थे। हमने इसलिए थोड़ी ही बनाया था कि तुम लोगों को मारो। हमने तो बड़ी भारी खोज की है। उन्होंने भी अनुभव नहीं किया कि हमारी कोई जिम्मेवारी है। फिर जिम्मेवार कौन था? एक लाख आदमी मरे, यह निश्चित। बम गिराया गया, यह निश्चित; बम बनाया गया, यह निश्चित; किसी की आज्ञा से गिरा, यह भी निश्चित; लेकिन इतनी भीड़ संयुक्त है उसमें कि सब एक-दूसरे पर टाल दे सकते हैं। कोई जिम्मेवार नहीं मालूम होता।

भीड़ में लोग सम्मिलित होना चाहते हैं, क्योंकि आत्मा को खोने का सबसे सुगम उपाय है। और भीड़ भी चाहती है कि तुम भीड़ में रहो, क्योंकि भीड़ का बल उसकी संख्या में है। जब तुम अकेले-अकेले चलने लगोगे, जब तुम व्यक्ति बनोगे—और वही संन्यास का अर्थ है, कि तुम अब अपने अंतःकरण से जिओगे; अब तुम्हें जो ठीक लगता है वह तुम करोगे, नहीं कि भीड़ कहती है कि ठीक है, अब तुम अपना निर्णय स्वयं लोगे; अपने

पाप-पुण्य के लिए स्वयं जिम्मेवार होओगे; अब तुम किसी पर टालोगे नहीं—तो निश्चित ही लोग कहेंगे तुम पागल हो रहे हो।

फिर, अनेक बार तुम्हारे और भीड़ के बीच बड़ा फासला हो जाएगा। भीड़ यजन करेगी, तुम भजन करोगे। बढ़ा फर्क हो जाएगा। भीड़ कहेगी सत्यनारायण की कथा हो रही है, आओ, तुम कहोगे—इस कथा में क्या रखा है! क्योंकि जो कथा कर रहा है, उसे कुछ पता नहीं है। और इस कथा में सत्यनारायण की बात कहीं आती ही नहीं। कथा बड़ी मजेदार है। इससे सत्य का कोई लेना-देना ही नहीं है। तुम शायद मंदिर न जाओ, क्योंकि तुम देखोगे वहां एक पेशेवर पुजारी पूजा कर रहा है। पेशेवर कैसे पूजा करेगा? तुम शायद मस्जिद न जाओ। क्योंकि तुम कहो मस्जिद में भी कोई नहीं है—कोई प्रतिमा तो है नहीं, कोई आधार-आलंबन तो है नहीं—तो जहां सिर झुकाकर बैठ जाऊंगा वहीं मस्जिद हो गयी, मस्जिद जाने की क्या जरूरत है?

एक सूफी फकीर जिंदगी भर मस्जिद जाता रहा। इतने नियम से मस्जिद गया, पांचों बार दिन में नमाज पढ़ने! तो लोग यह सोचना ही भूल गये थे कि कभी ऐसा भी होगा कि वह मस्जिद न आएगा। कभी एकाध-दो बार ऐसा हुआ था, जब कि वह बहुत बीमार था और उठ न सका, तो ही। कभी गांव छोड़कर नहीं गया, कि दूसरे गांव जाए और वहां मस्जिद न हो। लेकिन एक दिन सुबह लोगों ने पाया कि वह नहीं आया, कल शाम तक तो आया था, बिलकुल ठीक था, तो बीमार भी नहीं हो सकता, एक ही शक हुआ कि बूढ़ा आदमी मर न गया हो! मस्जिद के बाद लोग सीधे उसके घर पहुंचे। वह अपने घर के सामने, झोपड़े के सामने एक वृक्ष के नीचे बैठा ढपली बजा रहा था और गीत गा रहा था। उन्होंने कहा, बुढ़ापे में नास्तिक हो गये? बुढ़ापे में कुफ्र सूझा? काफिर हो गये? मस्जिद क्यों नहीं आए? वह फकीर हंसा और उसने कहा कि जब तक अज्ञानी थे तब तक आए। जब तक पता नहीं था कि परमात्मा सब जगह है, तब तक मस्जिद आए। अब तो पता है कि सब जगह है, यहां भी है, वहां भी है, कहां आना, कहां जाना!

अब तो जहां हैं वहीं गीत गाएंगे। अब तो हर गीत नमाज है। मगर भीड़ इससे राजी नहीं हुई। भीड़ ने कहा कि बुढ़ापे में सठिया गया।

तो भीड़ तुमसे कहेगी तुम पागल हो गये हो। तुम्हारा रंग-ढंग समझ में न आएगा। भीड़ ठीक ही कहती है। मगर यह पागलपन इस जगत में सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है। बुद्ध को भी भीड़ ने कहा था—पागल हो गये! कबीर को भी भीड़ ने कहा था—पागल हो गये? क्राइस्ट को भी भीड़ ने कहा था—पागल हो गये! भीड़ सदा से यही कहती रही है। तुम सौभाग्यशाली हो कि भीड़ तुमको भी पागल कह रही है। इस पागलपन को कष्ट मत समझना। इसे भीड़ की तरफ से तुम्हारे व्यक्तित्व का सम्मान समझना।

पूछते हो तुमः मैं आपको पाकर पाता हूं कि सब पा गया हूं। हालांकि लोग कहते हैं मैं पागल हो गया हूं। तुम भी ठीक हो, लोग भी ठीक हैं। अपनी-अपनी दृष्टि, अपने-अपने देखने का ढंग! उन्हें तो कैसे पता चले कि तुम कुछ पा गये हो उन्हें तो तुम्हारे अंतस्थल में प्रवेश का कोई उपाय नहीं है। वे तो कैसे तुम्हारे भीतर झांकें? वहां तो अकेले तुम हो। वहां तो तुम देख सकते हो, या मैं देख सकता हूं तुम्हारे भीतर। तुम ठीक कह रहे हो। सम्पत्ति तुम्हें मिलनी शुरू हो गयी है। तुम संपदा के मार्ग पर हो। तुम्हें अंतर का राज्य धीरे-धीरे उपलब्ध हुआ जा रहा है। पहले कदम उठ चुके हैं, बीज बो दिये गये हैं, फसल भी समय पर आ जाएगी। तुम ठीक दिशा में यात्रा कर रहे हो। लेकिन भीड़ से तुम दूर जा रहे हो। भीड़ पागल कहेगी। इससे तुम चिंता मत लेना। अन्यथा चिंता के कारण तुम्हारी अंतर्यात्रा में बाधा पड़ जाएगी। इसे तुम निंदा भी न समझना। भीड़ को कहने देना। तुम इसका उत्तर देने में भी मत पड़ा। तुम हंसना। जब भीड़ पागल ही मानती है तो अब तुम काहे को फिकर कर रहे हो! भीड़ कुछ कहे, तुम हंसना। तुम धन्यवाद देना। अब जब पागल ही हो गये हो तो पूरे ही पागल हो जाना उचित है। अब तुम समझदारी सिद्ध करने की कोशिश मत करना। क्योंकि उससे भीड़ तो राजी नहीं होगी, तुम्हारी अंतर्यात्रा

में अड़चनें आ जाएगी। तुम अब बुद्धिमानी छोड़ो। तुम्हें बुद्धिमानी से ज्यादा बड़ी बुद्धिमानी हाथ लग गयी है। तुम्हें प्रेम का रास्ता पकड़ में आ गया है।

फिर किसी ने नजर चुराई है
जज्बए-दिल तेरी दुहाई है
जिस तरह बाग में बहार आए
दिल में यू तेरी याद आई है
लुत्फए-सैय्याद जिसमें शामिल हो
वह असीरी नहीं रिहाई है
इश्क जब तक न साजगार हुआ
जिंदगी किसको रास आई है
न तसव्वुर कोई, न कोई खयाल
दिल में तेरी ही धुन समाई है
ऐ सबा दे खबर असीरों को
फिर चमन में बहार आई है
बुलबुलें चुप हैं, गुल खमोश-खमोश
इक उदासी चमन पर छाई है
जब मिली है तेरी नजर से नजर
जिंदगी जैसे मुस्कुराई है
जामे-लबरेज देखकर 'इशरत'
चश्मे-मखमूर याद आई है

तुम्हारी जिंदगी में परमात्मा के शराब की पहली झलक आने लगी। लोग कहने लगे कि तुम लड़खड़ा कर चल रहे हो। लोग कहने लगे कि अब तुम्हारा पुराना ढंग न रहा। लोग कहने लगे कि तुम पागल हो गये हो। 'फिर किसीने नजरें चुराई हैं।' तुम्हारी नजरें कहीं और जा रही हैं। जहां संसार की नजरें लगी हैं वहां तुम अब नहीं देख रहे हो, इसलिए लोग कह रहे हैं कि तुम पागल हो गये हो। 'फिर किसी ने नजर चुराई है'। परमात्मा तुम्हारे ह्रदय को चुराने में लग गया है।

तुम्हें खयाल है, इस देश के पास एक शब्द है परमात्मा के लिए जो दुनिया की किसी भाषा में नहीं है—हरि। 'हरि' का अर्थ होता है, चोर। हर ले जो, चुरा ले जाए जो। परमात्मा सबसे बड़ा चोर है।...अब तुम नाराज मत हो जाना कि मैंने परमात्मा को चोर कह दिया! अब तुम सोचने मत लगना कि इस आदमी के झांसे में नहीं आना है! यह तो हद्द हो गयी, परमात्मा और चोर! लेकिन परमात्मा चोर है, मैं क्या करूं? सच को तो कहना ही होगा। तुम झांसे में आओ कि न आओ, मगर सच को तो सच जैसा है कहना होगा।...परमात्मा चुराता है इस ढंग से जिस ढंग से कोई नहीं चुराता। पैरों की आहट भी नहीं मिलती और कब ह्रदय चुरा लिया जाता है, पता नहीं चलता। किस अंधेरी रात में, कब परमात्मा तुम्हारे द्वार-दरवाजे को तोड़कर भीतर आ जाता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। तुम सोए ही रहते हो और चोरी चले जाते हो।

फिर किसी ने नजर चुराई है
जज्बए-दिल तेरी दुहाई है

तुम लोग क्या कहते हैं इसकी फिक्र छोड़ो। तुम तो अपने दिल, अपनी भावना को धन्यवाद दो। 'जज्बए-दिल तेरी दुहाई है'। है ह्रदय के भाव, तेरा धन्यवाद! तुझे परमात्मा ने इस योग्य समझा कि तेरी नजर चुरा ले, कि तेरा ह्रदय चुरा ले।

जिस तरह बाग में बहार आए
दिल में यूं ही तेरी याद आई है

रेगिस्तान में जहां सब तरफ मरुस्थल होता है, कहीं छोटे-मोटे मरूद्यान होते हैं, सारा मरुस्थल मरूद्यान को पागल समझता होगा। क्योंकि भीड़ तो मरुस्थल की है, विस्तार तो मरुस्थल का है, उसमें कहीं एक छोटा-सा पानी का चश्मा है, दो-चार वृक्ष ऊग आए हैं, थोड़ी हरी घास भी लगती है, मरुस्थल कहता होगा कि यह स्थान पागल हो गया। स्वाभाविक है मरुस्थल को यह कहना। यह मरुस्थल को कहना ही पड़ेगा नहीं तो मरुस्थल को बड़ी आत्मग्लानि होगी। अगर मरुस्थल यह माने कि यही सही होने का ढंग है हरा होना, फूल से भरा होना, नाचते हुए होना, मस्त होना, प्रभु के प्रेम में डुबा हुआ होना—अगर यही होने का ठीक-ठीक ढंग है, तो फिर मैं क्या कर रहा हूं? तो मेरा होने का ढंग गलत है।

अगर तुम अंधों की दुनिया में पहुंच जाओ तो अपनी आंखों की घोषणा मत करना, अन्यथा वे तुम्हारी आंखें निकाल लेंगे। क्योंकि अंधे बर्दाश्त न कर सकेंगे कि तुम आंखवाले हो। तुम्हारी आंखें उनको उनके अंधेपन की याद दिलाएगी। इसीलिए तो जीसस को सूली लगानी पड़ी मंसूर को मार डालना पड़ा, सुकरात को जहर पिलाना पड़ा इसीलिए तो महावीर के कानों में कीले ठोंके गये। इसीलिए तो बुद्ध पर पत्थर पड़े। उनके कारण हमें याद आती है कि हम चूक गये। उनका साम्राज्य देख कर हमें याद आती है कि हम भिखमंगे के भिखमंगे रह गये।

और हमारी भीड़ है। हमें बर्दाश्त के बाहर हो जाती है यह बात। हम ऐसे आदमी को हटा देना चाहते हैं जिसके कारण हमें कष्ट हो रहा है, जिसके कारण हमें अपनी दीनता का बोध हो रहा है। तुम उस आदमी को बर्दाश्त नहीं करते जिसके कारण लगता है कि तुम व्यर्थ हो गये हो। न होता यह आदमी, न व्यर्थता का पता चलता। अगर कुरूप आदमियों का बस चले तो सौंदर्य को वे नष्ट कर दें। कुरूप आदमियों को मौका मिले तो सुंदरों को वे मार डालें। क्योंकि इन्हीं की वजह से वे कुरूप हैं, अन्यथा क्यों? अगर सभी कुरूप होते, तो अड़चन ही क्या थी? अगर झूठों का बस हो तो सच को जीने न दें, फांसी पर लटका दें। लटकाते हैं। क्योंकि सच मिट जाए, पूरी तरह मिट जाए तो फिर झूठ सच जैसा मालूम होता है।

ऐसा ही समझो कि झूठे सिक्के बाजार में चलते हैं। अगर सच्चे सिक्के बिलकुल ही विदा हो जाएं, तो फिर झूठे सिक्के झूठे नहीं रहेंगे। सिक्के अकेले वही रह गये, अब झूठा क्या, सच क्या! सच्चे सिक्के की मौजूदगी झूठे सिक्के के कष्ट का कारण है। और झूठ की भीड़ है!

जिस तरह बाग में बहार आए
दिल में यूं तेरी याद आयी है

यह जो जीवन का बसंत है, यह जो परमात्मा का बसंत है, यह एक साथ नहीं आता—किसी के हृदय में आ जाता है और बाकी सब के हृदय पतझर में होते हैं। किसी का फूल खिल जाता है, और सब तरफ कांटे ही कांटे होते हैं। कांटे नाराज हो जाते हैं। कांटे बदला लेते हैं। कांटे ईर्ष्या से भर जाते हैं।

लोग पागल कहते हैं, वे अपनी आत्मरक्षा में कहते हैं। उनकी तुम चिंता मत करना। वह यह कह रहे हैं कि हम पागल नहीं हैं। जब वे तुमसे कहते हैं तुम पागल हो, तो वे इतना ही कहना चाह रहे हैं कि हम पागल नहीं हैं। इतने लोग पागल नहीं हो सकते।

जार्ज बर्नार्ड शॉ के पास एक दिन एक आदमी गया। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कुछ कह दिया था जो उस आदमी को बड़ी चोट कर गया। उसने जाकर बर्नार्ड शॉ को कहा कि आप जो कहते हैं, कहनेवाले आप अकेले हैं। मैं जो मानता हूं, सारी दुनिया मानती है। सारी दुनिया के करोड़ों लोग गलत नहीं हो सकते पता है बर्नार्ड शॉ ने क्या कहा? बर्नार्ड शॉ हंसा और उसने कहा—इतने लोग जिस बात को मानते हैं, वह बात सही हो नहीं सकती। सत्य तो कभी-कभार मिलता है। वह किरण तो कभी-कभी उतरती है। वह तो दुर्लभ है। झूठ तो सब अपना ईजाद कर

सकते हैं, सत्य तो तुम ईजाद नहीं कर सकते। सत्य तो तब आता है जब तुम विदा हो जाते हो। उतनी हिम्मत बहुत कम लोगों की है। जो अपने को समाप्त कर देता है, सत्य उसे मिलता है।

लेकिन दूसरे लोगों और तुम्हारे बीच खाई बढ़ जाएगी। तुम न तो नाराज होना, न चिंता करना। न जवाब देने जाना। तुम अपनी मस्ती में रहना। यह समय खराब करना ही मत। उत्तर देने की भी कोई जरूरत नहीं है, तर्क करने की भी कोई जरूरत नहीं है।

जिस तरह बाग में बहार आए

दिल में यूं तेरी याद आई है

लुत्फे-सैयाद जिसमें शामिल हो...

अहेरी का आनंद भी जिसमें सम्मिलित हो। यह तुम्हारे आनंद में परमात्मा का आनंद भी सम्मिलित है।

लुत्फे-सैयाद जिसमें शामिल हो

वह असीरी नहीं रिहाई है

वह गुलामी नहीं है, मुक्ति है। यह जो तुम्हारे भीतर घट रहा है, यह मुक्ति का पहला आकाश खुल रहा है।

इश्क जब तक न साजगार हुआ

जिंदगी किसको रास आई है

तब तक जिंदगी रूखी-सूखी है, तब तक जिंदगी मरुस्थल है, जब तक प्रेम का झरना न फूटे इन रूखे-सूखे लोगों के बीच जब तुम्हारे पल्लव फूटेंगे, तुम हरे होओगे, तो उनकी नाराजगी समझ लेना। कबीर ने तो इसीलिए कहा है कि आने पत्तों को छिपा लेना। 'हीरा मिल्यौ गांठ गठियायो, बाको बार-बार क्यों खोले?' बताना ही मत किसी को, नहीं तो लोग एकदम नाराज हो जाएंगे। किसी को कहना ही मत कि मुझे मिल गया है।

सूफी फकीर कहते हैं प्रार्थना भी रात के अंधेरे में करना, जब कोई देखे नहीं। नहीं तो लोग कहेंगे—तुम पागल हो। चुपचाप कर लेना रात के अंधेरे में, चुपचाप बुला लेना परमात्मा को। चुपचाप उससे बात कर लेना, चुपचाप डूब जाना। किसी को कानोंकान खबर मत होने देना। लोग पागल हैं। जब तुम्हारा पागलपन पहली दफे मिटेगा, वे तुम्हें बर्दाश्त न कर सकेंगे। उन्होंने कभी किसी को बर्दाश्त नहीं किया है।

न तसव्वुर कोई, न कोई खयाल

दिल में तेरी ही धुन समाई है

सब कल्पनाएं चली जाती हैं, सब स्वप्न चले जाते हैं, सब विचार चले जाते हैं, बस एक धुन गूंजती रह जाती है। उस धुन का नाम भजन है। उस धुन के अतिरिक्त जो भी किया जाता है, सब यजन है, उसका कोई मूल्य नहीं है।

ऐ सबा दे खबर असीरों को

ऐ हवा! जा और बंदियों को भी खबर पहुंचा दे—

फिर चमन में बहार आई है

स्वाभाविक है वह भाव भी। जब तुम्हें मिलता है, स्वाभाविक मन उठता है, जिन्हें तुम प्रेम करते हो उन्हें भी बांट दो। मगर बहुत सम्हलकर कदम उठाना। क्योंकि यहां कोई किसी की भाषा नहीं समझता। कोई हमनवा नहीं, कोई हमनफस नहीं। न कोई संगी है, न साथी है। जो तुम्हारी बात समझ सके, बस उससे ही कह देना। उतना ही कहना जितना समझ सके। ज्यादा मत उंडेल देना। जितना पचा सके उतना ही कहना। फिर और पचा सके तो और कहना। धीरे-धीरे कहना। धीरे-धीरे अपने आनंद को बताना।

ऐ सबा दे खबर असीरों को

कैदियों को खबर कर दे, ऐ हवा!

फिर चमन में बहार आई है

बुलबुलें चुप हैं, गुल खमोश-खमोश
इक उदासी चमन पै छाई है
जब मिली है तेरी नजर से नजर
जिंदगी जैसे मुस्कुराई है
इसके पहले सब उदास था।
बुलबुलें चुप हैं, गुल खमोश-खमोश
इक उदासी चमन पै छाई है
ऐसा था कि न तो बुलबुल बोलती थी, न कोयल गीत गाती थी, न पपीहा पुकारता था। फूल ही नहीं, तितलियां नहीं उड़ती थीं; न कोई सुगंध थी, न कोई शीतलता थी। सब उदास था, सब जड़ और मुर्दा थी। लेकिन अब बात बदल गयी है।
जब मिली है तेरी नजर से नजर
जिंदगी जैसे मुस्कुराई है
जामे लबरेज देखकर 'इश्रत'
भरे प्याले को देखकर—
चश्मे-मखमूर याद आई है
इस भरे हुए हृदय में, इस आनंद से भरे हुए प्याले को देखकर वह नशीली आंख याद आनी शुरू हो गयी है। जब तुम्हारे भीतर प्रेम का प्याला भरेगा तो उस प्रेम के प्याले में ही परमात्मा की आंखें पहली दफा झलकेंगी। यह भी होगा। अभी तुम उदास हुए हो, घबड़ाओ मत। जल्दी यह घड़ी भी आएगी जब तुम भी यह प्रश्न पूछ सकोगे कि मुझे क्या हो गया है? क्या मैं पागल हो गया हूं? लोग कहते हैं मैं पागल गया हूं। हालांकि मुझे लगता है कि मुझे सब मिल गया है। यह जैसा प्रेम में घटता है, साधारण लौकिक प्रेम में घटता है, उससे अनंतगुना, अनंत-अनंत गुना पारलौकिक प्रेम में घटता है।
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गयी
आएगा मौसम। प्रतीक्षा चाहिए। बस प्रतीक्षा और प्रार्थना
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
लेकिन याद रखना, यह साज बेखुदी का है। यहां तुम मिटोगे तो ही साज मिलेगा। तुम शून्य हो जाओगे तो ही साज मिलेगा। तुम्हारी शून्यता में ही यह संगीत उठनेवाला है।
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
आ गया पीकर बहक जाने का मौसम आ गया
अभी उदास हुए हो, यह पहली बात हुई। चमन उदास-उदास, बुलबुलें खमोश-खमोश। सब ठहरा हुआ। एक दुनिया उजड़ गयी जो तुमने बसायी थी। वे नावें जो तुमने चलायी थीं, कागज की हैं। ऐसा मैंने कहा, ऐसा तुम्हें दिखायी पड़ गया, तुम धन्यभागी हो! जो मकान तुमने बनाये थे वे मकान नहीं थे, केवल ताश के पत्तों के घर थे। मैंने कहा और तुम्हारी समझ में आ गया, तुम धन्यभागी हो! तुम्हें मेरी भाषा पकड़ में आ गयी। इसीलिए तुम उदास हुए हो। अगर भाषा समझ में न आती तो तुम नाराज होते, उदास नहीं।
फर्क समझ लेना।
दो ही तरह के लोग हैं यहां मेरे पास आनेवाले। या तो वे जो उदास हो जाते हैं, या वे जो नाराज हो जाते हैं। जो नाराज हो गये, वे चूक गये। फिर दुबारा उनके आने का कोई कारण न रहा। न केवल वे दुबारा नहीं आएंगे और कोई आता जाता होगा तो उसको भी रोकेंगे। जो उदास हो गया वह तो आएगा। उसे तो आना ही पड़ेगा। अब

उसकी उदासी कहीं और न मिट सकेगी। अब तो वह मेरा बीमार हो गया। अब तो मेरे पास ही उसका उपचार है। अब तो वह तलाशेगा। जैसे भी बन सकेगा, वैसे करीब आएगा। और तब दूसरी घटना निश्चित घटती है।

बेखुदी के साजपर गाने का मौसम आ गया
आ गया पीकर बहक जाने का मौसम आ गया
फिर पयामे-आमदे-जानां सकूने-शाम है
सेज पर कलियों के खिल जाने का मौसम आ गया

प्यारा आने को है, प्रीतम आने को है। प्रीतम के आने का संदेश आ गया।

फिर पयामे-आमदे-जानां सकूने-शाम है

और संध्या की प्रतीक्षा—

सेज पर कलियों के खिल जाने को मौसम आ गया

जैसा साधारण प्रेम में घटता है उससे अनंत-अनंत गुना इस प्रेम में घटता है। जैसे साधारण प्रेम में लोग पागल समझे जाते हैं, इस प्रेम में तो बहुत बड़े पागल समझे जाते हैं।

यह तड़प, यह दर्द, यह रग-रग में हलकी-सी कसक
यह शबाब आया कि मर जाने का मौसम आ गया
तोड़कर हमदम! हर इक रस्मो-रहे-कौनीन को
लगजिशों पर लगजिशें खाने का मौसम आ गया

अब लड़खड़ाओ, अब डगमगाओ, अब पीओ। और बेखुदी हो तो ही पी पाओगे। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि यहां अगर मेरे निकट तुम्हें होना है, अगर सच में ही सत्संग करना है, तो अपने को पोंछो। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन की तरह मत आओ यहां! अन्यथा तुम पाओ ही मत। आने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि तुम्हारी वे धारणाएं, तुम्हारे वे खयाल तुम्हें वंचित कर देंगे। और मैं तुम्हें याद दिला दूं कि मैं वही कह रहा हूं जो महावीर ने कहा था और बुद्ध ने कहा था नानक-कबीर ने कहा था, मुहम्मद ने कहा था। मैं वही कह रहा हूं। और उन्होंने भी यही कहा था तुमसे कि जब आओ तो सब छोड़कर आना। सब बाहर रख आओ। यहां खाली होकर आओ, बेखुद होकर आओ। थोड़े निर-अहंकार भाव से आओ। तो वह जादू हो सकता है।

बेखुदी के साजपर गाने का मौसम आ गया
आ गया पीकर बहक जाने का मौसम आ गया
फिर पयामे-आमदे-जानां सकूने-शाम है
सेज पर कलियों के खिल जाने का मौसम आ गया

वह दूसरी घटना भी सुनिश्चित घटती है। औरों को घटी है, तुमको भी घटेगी।

तीसरा प्रश्नः आपने बताया कि भगवान को पाने के लिए मूल्य चुकाना होगा। और उसी समय आपने यह भी बताया कि शरीर को कष्ट देकर परमात्मा पाया नहीं जा सकता। कृपया समझाएं कि फिर मूल्य किस तरह चुकाना होगा? क्या सक्रिय ध्यान शरीर को कष्ट देना नहीं है?

सुभाष ने पूछा है! सुभाष के लिए है। और जिसके लिए शरीर को कष्ट देना हो, वह सक्रिय ध्यान न करे। कष्ट से परमात्मा का कोई संबंध नहीं है। सुख का भाव चाहिए। तुम अपने को सताकर परमात्मा से जुड़ोगे नहीं, टूट जाओगे

लेकिन खयाल रखना, जो बात एक के लिए कष्ट हो सकती है, दूसरे के लिए आनंद हो सकती है। तुम्हारे लिए दौड़ने में कष्ट हो, किसी दौड़ाक को आनंद है। और जो दौड़ने का आनंद जानता है वह भरोसा ही नहीं कर सकेगा कि दौड़ने में कष्ट कैसा! दौड़ने के क्षणों में ही सुबह की रोशनी में, सागर के तट पर उसने जीवन के सबसे सुखद क्षण जाने हैं। जिसे तैरने में सुख है, वह समझ ही नहीं पाएगा कि तुम कहते हो तैरने में कष्ट है!

लोग अलग-अलग हैं। किसी को ब्रह्ममुहूर्त में उठ जानने में आनंद है—जरूर उठे। लेकिन किसी को कष्टपूर्ण है—जरा भी न उठे। अपने स्वभाव को परखो, पहचानो।

सुख-दुख का अर्थ क्या होता है? इतना ही अर्थ होता है—सुख का अर्थ होता है, तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल पड़ रहा है। और क्या अर्थ होता है! दुख का अर्थ होता है, स्वभाव के प्रतिकूल पड़ रहा है। जो स्वभाव के प्रतिकूल है, वह परमात्मा से कैसे जुड़ेगा, क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही स्वभाव है।

इसलिए मेरी बात को खूब खयाल से समझ लेना।

तुम्हारे भीतर अपने को दुख देने की वृत्ति है। क्योंकि सदियों से तुम्हें यह सिखायी गया है कि उसको पाने के लिए तपश्चर्या करनी है। मैं कह रहा हूं, उसे पाने के लिए आनंदमग्न होना है। तुम्हारी पुरानी धारणा इतनी गहरी बैठी है कि तुम मेरी बात भी सुन लोगे, फिर भी शायद ही समझ पाओ। तुम्हें कहा गया है कि अपने को कष्ट दो। यह किसने कहा है? यह जाननेवालों ने नहीं कहा है। जाननेवाला यह कह ही नहीं सकता। महावीर कैसे कह सकते हैं अपने को कष्ट दो। क्योंकि महावीर तो कहते हैं—स्वभाव धर्म है। महावीर कैसे कह सकते हैं। लेकिन फिर कैसे यह कष्ट की कहानी पैदा हो गयी? फिर जैन-मुनि क्यों कहता है कष्ट दो?

कहानी पैदा होने का राज समझो।

महावीर नग्न हो गये। महावीर के लिए नग्न होना आनंद था। महावीर को वस्त्र से मुक्त होकर सारी सीमाओं से मुक्ति मिली। उनके पीछे जो आया, उसने देखा कि महावीर नग्न हो गये। नग्न होने से यह ज्ञान को उपलब्ध हुए, मैं भी नग्न हो जाऊं, तो मैं भी ज्ञान को उपलब्ध हो जाऊंगा। यह गणित सीधा मालूम होता है। वह भी नग्न हो गया। लेकिन नग्न होने के लिए उसे बड़ा अभ्यास करना पड़ा है। सर्दी थी, धूप थी, फिर लोग थे, लोकलाज थी, उसने सब तरह से अपना अभ्यास किया, कर-कर के किसी तरह अपने को नंगा खड़ा कर लिया। फिर जब नग्न खड़ा किया और अगर यह स्वभाव के अनुकूल न हो, तो कष्ट तो होगा ही। तो उससे समझा कि कष्ट दिये बिना परमात्मा को नहीं पाया जा सकता, यह कीमत चुकानी है। और अगर कष्ट देने से परमात्मा को पाया जा सकता है, तो उसने अपने को कष्ट देने के और नये-नये तरीके ईजाद किये। घास पर सोएगा, कांस पर सोएगा, बिस्तर पर नहीं सोएगा; धूप में खड़ा रहेगा; भयंकर धूप जल रही होगी और वह धूनी रमा कर बैठेगा; बर्फ पड़ रही होगी, कि बर्फ जम रही होगी, तब वह जल में जाकर खड़ा हो जाएगा। उसको यह खयाल में आ गया—अपने को कष्ट देना है।

महावीर ने महीनों तक उपवास किये। लेकिन उन उपवासों में कष्ट नहीं था। तुम महावीर की प्रतिमा देखकर भी इसका प्रमाण पा सकते हो कि उनमें कष्ट नहीं था। क्योंकि महावीर की देह तो बड़ी बलिष्ठ मालूम होती है। अगर महीनों उपवास किया था तो या तो कहानी गलत है महीनों उपवास की, और अगर कहानी सच है, तो महावीर को बिलकुल रास आया होगा, महावीर के शरीर को बिलकुल जमा होगा। ऐसे लोग हैं जिन्हें उपवास रास आ सकता है। जिनको भोजन ही ले जाना भीतर कष्टपूर्ण हो जाता है। जो कम से कम भोजन पर जीने में ज्यादा सुगमता पाते हैं। स्वभाव का भेद है।

तुम यहां भी देख सकते हो चारों तरफ। कुछ लोग हैं जो थोड़ा-सा भोजन लेते हैं, फिर भी चंगे हैं—मस्त हैं! कुछ जो कितना ही खाए चले जाते हैं, फिर भी रूखे-सूखे हैं। फिर भी जीवन में कोई जीवन धारा नहीं मालूम पड़ती, कोई ऊर्जा नहीं मालूम पड़ती, कोई चमक नहीं मालूम पड़ती। जैसे भोजन काम ही नहीं आ रहा है। कुछ लोग जैसे रूखे-सूखे पर जी लेते हैं। और रूखे-सूखे से भी खूब हरे-भरे होते हैं।

महावीर ने महीनों उपवास किया, यह सच है। लेकिन महावीर का उपवास तुम्हारे जैन मुनि वाला उपवास नहीं था। मैं महावीर के बिलकुल पक्ष में हूं, जैन मुनि के जरा भी पक्ष में नहीं हूं। जैन मुनि रुग्ण चित्त से भरा है। महावीर के उपवास का अर्थ था, महावीर इतने आनंदित थे, इतने ध्यान में मग्न थे कि जब कभी दस-पांच दिन में भोजन की याद आती थी तो भीख मांगने चले जाते थे। जब याद नहीं आती थी तो मस्त अपनी मस्ती में रहते

थे। जैसे वायु ही काफी थी। और मस्ती ऐसी थी कि जब याद आए भोजन की तो ही। भीतर रमे थे। यह सुख की अवस्था थी, यह दुख की अवस्था नहीं थी। उपवास शब्द का अर्थ भी यही होता है—अपने भीतर वास, अपने निकट वास। परमात्मा के निकट होने का नाम उपवास है।

उपवास और अनशन में भेद है।

अनशन कष्टपूर्ण है, उपवास आनंदपूर्ण है। अनशन का मतलब होता है, मार रहे हैं भूखा अपने को! जब कोई राजनैतिक नेता अनशन पर चला जाता है, वह अनशन है। उसको उपवास भूलकर भी मत कहना। वह भूखा अपने को मार रहा है। वह दबाव डाल रहा है। वह अपने को सताकर दबाव डाल रहा है लोगों पर कि मेरी बात मान लो, नहीं तो मैं मर जाऊंगा। वह धमकी दे रहा है आत्महत्या की, और कुछ नहीं है। उस पर असल में मुकदमा चलना चाहिए, वह आत्महत्या की धमकी दे रहा है। वह यह कह रहा है—मैं मर जाऊंगा, तुम मेरी बात मानो। फिर मेरी बात गलत हो या सही, इस बात का मौका ही नहीं दे रहा है वह। विचार का मौका नहीं देता। वह तो ऐसे ही है जैसे एक आदमी छुरी लेकर अपनी छाती पर खड़ा हो जाए और कहे कि मैं छुरी मार लूंगा, मेरी बात मानो। इसमें और उसमें कुछ भेद नहीं है। यह हिंसक वृत्ति है।

इसलिए महात्मा गांधी के उपवास को मैं उपवास नहीं कहता, अनशन कहता हूं। उसमें हिंसा की वृत्ति है। और जब महात्मा गांधी के उपवास को अनशन कहता हूं, तो तुम समझ सकते हो कि मोरारजी देसाई के उपवास को तो मैं अनशन भी नहीं कहता सकता। वह तो उससे भी गयी-बीती बात है। इसमें सब दबाव है, जबर्दस्ती है। इसमें दूसरे को बेचैन करने का उपाय है। दूसरा आदमी सोचने लगता है कि अब इतना मामला ही क्या है; कि ठीक है, चलो वोट ले लेना, और क्या करोगे! तुम्हीं को वोट दे देंगे। मगर उपवास तो तोड़ो। चलो यह मुसंबी का रस पी लो! जान न गंवाओ! इतनी-सी बात के लिए मरते नहीं हैं!

महावीर ने अनशन नहीं किया। भूख-हड़ताल भी नहीं थी वह। उपवास था। उपवास बड़ा आह्लादपूर्ण शब्द है। अपने भीतर रमें थे। इतने रमे थे ध्यान में कि याद ही न आया कि भोजन करना है। कभी-कभी तुम्हारे जीवन में भी ऐसी घटना घटती है, अगर पहचानोगे। कभी कोई प्रियजन तुम्हारे घर आ गया है—स्त्रियों को अक्सर घट जाती है। 'सोहन' का मुझे पता है, उसे घट जाती थी। उसके घर जब मैं मेहमान होता था, वह भूल ही जाएगी भोजन करना। इतने आनंद में मगन हो जाएगी, कि अब कहां फुर्सत भोजन इत्यादि की! भूख ही न लगेगी। तुमने खयाल किया कभी? जब प्रेम से चित्त भरा होता है, भूख नहीं लगती।

मैं एक घर में मेहमान था। उस घर की महिला ने मुझे कहा कि एक सवाल मुझे पूछना है, मैं किसी से पूछ नहीं सकी। जैन परिवार था। और अपने मुनियों से तो मैं पूछ ही नहीं सकती क्योंकि वे तो बहुत नाराज हो जाएंगे—बात ही ऐसी है! आपसे पूछ सकती हूं। उसने अपने पति से भी क्षमा मांगी कि आप मुझे क्षमा करें यह प्रश्न मुझे जिंदगी भर से सता रहा है, यह मुझे पूछना ही है। आप बुरा न मानना। पति ने कहा—मैं क्यों बुरा मानूंगा! तू पूछ, क्या सवाल है? उसने कहा, सवाल यह है कि जब मेरी सास मरी तो घर में किसी ने खाना नहीं खाया और मुझे बहुत भूख लगी। मुझे इतनी भूख कभी लगी ही नहीं थी। उस बात को मैं छोड़ नहीं पाती कि वह क्या हुआ? घर में सब रो रहे हैं और मुझे भूख लगी है! नयी-नयी बहू की तरह आयी थी। और उसने कहा कि बात यहीं तक रुक गयी होती। तो ठीक थी, उस दिन किसी ने भोजन किया ही नहीं, करने की सुविधा ही नहीं थी, शाम के वक्त मरी थी सास तो 'अंथऊ' का समय बीत गया। शाम का भोजन तो जैन कर लेते हैं, फिर सूरज डूब गया, फिर तो भोजन हो नहीं सकता। तो मरने में लगे थे, मृत्यु द्वार पर खड़ी थी, मरघट ले जाना था, बात ही खतम हो गयी। और उसको इतनी भूख लगी है! उसने कहा कि मैं इतनी परेशान हो गयी कि रात मैंने चोरी से जाकर चौंके में भोजन किया। मैंने जिंदगी में बस एक ही चोरी की है। और वह भी ऐसी चोरी कि मुझे ऐसा लगे कि मैं कैसा पाप कर रही हूं। सारा घर तो दुखी है और मुझे भूख की पड़ी है! और फिर अपने ही मकान में चोरी कर के रात जो कुछ मिला वह खा-पी लिया। जब ठीक से खा-पी लिया, तब मैं सो पायी। क्या हुआ मुझे?

मैंने उससे कहा, इसमें चिंता की जरा-भी बात नहीं है। सचाई यह है कि दुख में भूख लगती है, सुख में भूख खो जाती है। दुख में शरीर की याद आती है, सुख में शरीर की याद खो जाती है। यह तो सीधा-सा सूत्र है। तुम जब सुखी होते हो, तुम्हें शरीर की याद नहीं आती। बिना सिरदर्द के कभी तुम्हें सिर की याद आयी है? सिर दर्द होता है तो ही सिर की याद आती है। और पेट में दर्द होता है तो पेट की याद आती है। पैर में कांटा चुभता है तो पैर की याद आती है। अगर शरीर समग्ररूप से सुख में हो तो याद नहीं आती। शरीर विस्मृत हो जाता है सुख में, दुख में याद आता है।

वह स्त्री तो मेरे पैर पर गिर पड़ी। उसने कहा, आपने मुझे मुक्त कर दिया। मैं तो मरी जा रही थी कि मैंने कुछ पाप किया है। मैंने कहा, तू फिक्र मत कर, तेरे पति से पूछ, ईमानदारी से वे कहें। वे पति बोले कि अब आप जब पूछते ही हैं और जब बात ही खुल गयी, तो सच तो यह है कि मुझे भी भूख लगी थी। हालांकि मैंने चुराया नहीं, मेरी मां मर गयी, रात भर मैं भूख में तड़पता रहा। मगर वह सहना था; क्योंकि मां मर गयी, यह कोई बात है! लेकिन भूख मुझे भी लगी थी।

दुख में शरीर की याद आएगी, भूख की याद आएगी, सुख में खो जाएगी याद। महावीर महासुख में थे। ध्यान के सुख में थे। भोजन की याद कभी-कभार आती थी। जब शरीर की बिलकुल जरूरत हो जाती तब याद आती थी। तब वे चले जाते थे, गांव में भोजन मांग लेते थे। जैन मुनि जबर्दस्ती भूख-हड़ताल कर रहा है। जबर्दस्ती अनशन कर रहा है। यह कष्ट देना है।

पीछे तर्क क्या है?

तर्क इतना ही है, महावीर को ध्यान फला, ध्यान के पीछे-पीछे उपवास फला। उपवास आया छाया की भांति। उपवास के कारण ध्यान नहीं आया था, ध्यान रखना, ध्यान के कारण उपवास आया था। लेकिन बाहर से जब तुम देखोगे तो ध्यान का तो कुछ पता नहीं चलता है कि हुआ है या नहीं हुआ, पहले तो उपवास का पता चलता है—बाह्य बातें पहले पता चलती हैं। तो तुम्हारी बाहर से देखने के कारण अड़चन खड़ी होती है। तुम्हें उपवास पहले दिखायी पड़ता है कि महावीर उपवास कर रहे हैं। और फिर तुम सोचते हो कि इतने शांत चित हो गये हैं तो ध्यान भी हुआ होगा, समाधि भी लगी होगी। तो उपवास करने से समाधि लगी है। यहीं भूल हो गयी। समाधि लगने से उपवास होता है। महावीर नग्न हो गये, इस कारण समाधि नहीं लगी; महावीर को समाधि लगी—वस्त्र छूट गये। फिर ऐसा भी नहीं है कि सभी की समाधि एक जैसी लगेगी। नहीं तो कृष्ण के भी छूट जाते, बुद्ध के भी छूट जाते, राम के भी छूट जाते। प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। और जब भी तुम किसी की नकल करोगे, कष्ट में पड़ जाओगे। अपनी तरफ ध्यान रखो, अपने स्वभाव का ध्यान रखो।

तो सुभाष के लिए तो मैं कहता हूं—सक्रिय ध्यान करना मत। सुभाष को तो बाबा मलूकदास पर ध्यान करना चाहिए।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करे न काम

दास मलूका कह गये, सबके दाता राम

सुभाष जो है, एक तरह के दास मलूका। अपना स्वभाव खोजो! अपने स्वभाव का अनुशरण करो! भूलकर किसी की नकल में मत पड़ जाना, अन्यथा तुम कष्ट पाओगे—और कष्ट पाने से परमात्मा से दूर हो जाओगे, निकट नहीं आओगे।

मैं तुम्हें आनंद का मार्ग दे रहा हूं। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम जितने सुखी, जितने शांत, जितने आनंदित, उतने ही प्रभु के स्मरण से भरोगे। क्योंकि तभी तो अनुग्रह करने को कुछ होगा तुम्हारे पास, प्रार्थना करने को कुछ होगा। अभी है क्या? जीवन की थोड़ी-सी रसधार बहे तो तुम परमात्मा के चरणों में झुककर कह सको—धन्यवाद! अभी है क्या? अभी धन्यवाद उठे कहां से? अभी धन्यवाद का कोई कारण दिखायी नहीं

पड़ता, अभी शिकायत उठती है, धन्यवाद नहीं उठता और शिकायत से यजन पैदा होता है। और धन्यवाद से भजन पैदा होता है।

तुमने पूछा है—आपने कहा भगवान को पाने के लिए मूल्य चुकाना होगा। यही मूल्य है। सुखी होना होगा। तुम बड़े हैरान होओगे। तुम कहोगे, यह भी कोई मूल्य है? लेकिन मैं तुमसे कहता हूं—यही कठिन बात है। दुखी होना बिलकुल सरल बात है। सारी दुनिया दुखी है। दुखी होने के लिए कोई बुद्धिमत्ता चाहिए? बुद्धु भी दुखी हैं। दुखी होने के लिए कोई कुशलता चाहिए, कोई गणित चाहिए? गंवार से गंवार आदमी भी दुखी है। सुखी होने के लिए गुण चाहिए, कुशलता चाहिए, कला चाहिए।

तुम्हें मेरी बात बड़ी उल्टी लगेगी। इसलिए मैं कहता हूं कि समझोगे तो ही समझ पाओगे। जरा सहानुभूति रखी तो शायद थोड़ी समझ में आ जाए। मैं तुमसे कहता हूं—सुखी होकर मूल्य चुका दो। नाचकर मूल्य चुका दो। गीत गाकर मूल्य चुका दो। आंनद भाव से मूल्य चुका दो। लेकिन तुम्हें लगता है कि दुख हो तो मूल्य चुकाया। तुम दुख से ऐसे जकड़ गये हो कि तुमने दुख को सिक्के मान लिया है। तुमने क्या समझा है? परमात्मा कोई दुष्ट, कोई अनाचारी, कोई दुखवादी, कोई 'सैडिस्ट' है! कि तुम दुखी होओगे तो वह बड़ा प्रसन्न होगा, कि देखो बेटा कितना भूख हड़ताल कर रहा है! अब आजा, पास आजा! तूने काफी भूख हड़ताल कर ली; ले, मुसंबी का रस पी! तुमने परमात्मा को समझा क्या है? कोई एडोल्फ हिटलर? कि तुम अपने को सताओगे तो वह बड़ा आनंदित होगा। तुम कांटों की सेज पर लेटोगे तो वह बड़ा प्रसन्न होगा कि आहा! कैसी तपश्चर्या कर रहे हो!!

परमात्मा तुम्हारा दुश्मन तो नहीं है। तुम्हारा प्यारा है, तुम्हारा प्रीतम है। क्या तुम सोचते हो, छोटा बेटा धूप में खड़ा रहेगा तो मां बड़ी प्रसन्न होगी? कि छोटा बेटा कांटों में लेटा रहेगा तो मां बड़ी प्रसन्न होगी?

तुम फूल की शैय्या बनाओ। कांटों की शैय्या बना-बनाकर तुमने सिर्फ अपने साथ मूढ़ता की है। तुम सुख में पगो। तुम सुख का राग जन्मने दो। तुम सुख की वीणा बजाओ। तुम्हारी मस्ती तुम्हीं उसके पास ले जाएगी। इसीलिए तो तुम्हारे साधु-संन्यासी नाचते हुए, प्रसन्न नहीं दिखायी पड़ते। लेकिन असली साधु-संन्यासी ऐसे नहीं थे। नानक को देखा? साथ ही लिये रहते थे एक शिष्य को कि जब भी उनको गीत गाने की मौज आ जाए तो वह वाद्य बजाने को मौजूद रहे। कबीर को देखा? वे मस्ती के गीत! मीरा को देखा? वह नृत्य! ये साधु हैं। साधु तो सुखी आदमी है। सुख की ही परम अवस्था साधुता है। दुखी रुग्ण है, विक्षिप्त है। उसकी चिकित्सा होनी चाहिए।

मैं दुनिया से चाहता हूं दुखवादी धर्म विदा हो जाए, क्योंकि दुखवादी धर्म दुखवादियों ने ईजाद किये हैं। इनका धर्म-संस्थापकों से कोई संबंध नहीं है। ये तुम्हारी मूढ़ता से पैदा हुए हैं। तुमने देखा कि महावीर नग्न खड़े हैं, मैं भी नग्न खड़ा हो जाऊं। तुमने देखा कि क्राइस्ट सूली पर चढ़े हैं, मैं भी सूली पर चढ़ जाऊं। तुमने जीवन को नाटक बना लिया है, उसमें से असलियत खो गयी है, अभिनय बना लिया है। तुम नकली हो गये हो, तुमने कार्बन कापी हो गये हो। और कार्बन कापियां परमात्मा को बिलकुल पसंद नहीं हैं। परमात्मा चाहता है तुम अपने मूल रूप में प्रकट होओ। तुम्हारा मूल रूप में प्रकट हो जाना ही तो परमात्मा को पा लेना है। और क्या है परमात्मा को पा लेना! सुख अर्थात स्वभाव के अनुकूल जो हो, दुख अर्थात स्वभाव के प्रतिकूल जो हो। सुख से चुकाओ कीमत।

'कल आपने बताया है कि भगवान को पाने के लिए मूल्य चुकाना होगा।' निश्चित चुकाना होगा। 'और उसी समय आपने यह भी बताया कि शरीर को कष्ट देकर परमात्मा नहीं पाया जा सकता।' तुम्हारे मन में सवाल उठा होगा कि मूल्य तो कष्ट से चुकाया जाता है! कष्ट से मूल्य नहीं चुकाया जाता। कभी नहीं चुकाया गया है। धन्यभाग से मूल्य चुकाया जाएगा, महासुख से मूल्य चुकाया जाएगा।

इसलिए अकसर ऐसा हो जाता है, लोग प्रश्न पूछते हैं—एक मित्र ने प्रश्न पुछा है —और ऐसे अकसर प्रश्न आते हैं—कि हम आपकी किताबें पढ़े तो बहुत प्रभावित हो गये। लेकिन फिर हम यहां आए और यहां जो हमने

देखा, उससे हमारा मन बड़ा उदास हो गया है। लोग नाच रहे हैं, लोग गा रहे हैं। लोग मजा-मौज कर रहे हैं! मैं उनकी तकलीफ जानता हूं। वे किताबें इत्यादि पढ़ कर सोचे होंगे कि मुझे पाएंगे बैठा हुआ किसी झोपड़े में, कांटों की शैय्या पर लेटा हुआ, उदास, भूखा-प्यास-उनका चित्त बड़ा शांत होता अगर वे मुझे ऐसा देख लेते। उनके चित्त को बड़ी राहत मिलती कि हां, साधु हो तो ऐसा।

तुम आए थे यहां दुखियों को देखने। यहां हिसाब और है, यहां गणित और है। दुख में मेरा भरोसा नहीं। मैं सुखवादी हूं। मैं चार्वाक से ज्यादा सुखवादी हूं। चार्वाक का सुख तो इसी संसार में समाप्त हो जाता है, मेरा सुख उस संसार तक जाता है। मुझमें आस्तिकता और नास्तिकता मिल रही हैं। नास्तिकता थोड़ी दूर तक सुख की बातें करती है, मैं अंत तक सुख की बातें करता हूं। मेरे लिए परमात्मा सुख की परम अवस्था है। इसलिए तो ज्ञानियों ने उसे सच्चिदानंद कहा है। आनंद, अंतिम अवस्था। लेकिन तुम आए होओगे उपवास करते हुए किसी फकीर को देखने। और फिर तुम्हें लगा कि यहां तो कोई उपवास नहीं हैं, यहां तो कोई फकीर नहीं है, यहां तो लोग आनंदित हैं, लोग मस्त हैं, लोग एक-दूसरे के प्रेम में हैं। यहां तुमने जोड़े चलते देखे होंगे। स्त्री-पुरुषों को हाथ पकड़े देखा होगा, नाचते साथ देखा होगा। तुमने कहा हद हो गयी, भ्रष्ट हो गया सब! सब धर्म भ्रष्ट कर डाला हम कहां फंस गये आकर? यह धर्म है? यह तो सांसारिकता है।

मेरा धर्म संसार के विपरीत नहीं है। यद्यपि मेरा धर्म संसार के पार जाता है। मेरा धर्म ऐसे ही है जैसे कमल कीचड़ से उगता है। कीचड़ में उगता है लेकिन कीचड़ के पार जाता है। संसार में ही उगेगा धर्म—मंदिर तो यहीं बनाना होगा, जमीन पर ही बनाना होगा, देह में ही परमात्मा को पुकारना होगा। और तुम्हारी देह अगर सुख में हो, स्वभाव के अनुकूल हो तो ही परमात्मा आ सकेगा।

दुखी चित्त परमात्मा को अपने भीतर प्रवेश न दे पाएगा। दुखी चित्त में जगह कहां है प्रवेश के लिए। सुखी चित्त में अवकाश होता है। सुखी चित्त आकाश जैसा होता है।

तो मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। तुम धारणाएं लेकर आते हो। तुम्हारी धारणाएं बड़ी जड़बद्ध हैं। और तुम्हारी धारणाओं के पीछे तुम्हें काफी प्रमाण हैं क्योंकि सौ में निन्यानबे साधु तो दुखवादी हैं। वे साधु ही नहीं हैं। उन्हें साधुता का कुछ पता नहीं है। सौ में एकाध कभी सुखवादी होता है। लेकिन वह तो कभी-कभार होता है। और जब भी होता है तभी तुम्हें अड़चन होती है। महावीर को देखकर तुम्हें अड़चन हुई थी। जैन मुनि को देखकर अड़चन नहीं होती। बुद्ध को देखकर तुम्हें अड़चन हुई थी, बौद्ध भिक्षु को देखकर तुम्हें अड़चन नहीं होती। नानक को देखकर तुम्हें अड़चन हुई थी, ग्रंथी महाराज को देखकर तुम्हें अड़चन नहीं होती उनसे क्या अड़चन है! वे तुम्हारे जैसे ही हैं। तुम जैसे दुख में, वैसे दुख में वे। मीरा को नाचते देखकर कितने लोगों को अड़चन नहीं हो गयी थी, याद है? कितने लोग कष्ट में नहीं पड़ गये थे! मीरा के परिवार के लोग इतने कष्ट में पड़ गये थे कि मीरा मर जाए इसके लिए जहर का प्याला भिजवाया था। क्योंकि परिवार को बड़ी बेचैनी हो रही थी। मीरा तो पागल समझी ही जा रही थी, उसके साथ-साथ परिवार बदनाम हो रहा था। राजघराने की महिला थी और नाचने लगी सड़कों पर! और राजस्थान में, जहां घूंघट उठाना मुश्किल था! वहां कपड़े इत्यादि की भी फिकिर छोड़ दी। अब नाचने में कहीं फिक्र रखनी होती है कि पल्लू ठीक है कि नहीं है! पल्लू की फिकर रखो तो परमात्मा छूटता है, परमात्मा की फिकिर करो तो पल्लू गिरता है। मीरा ने सोचा कि पल्लू जाने दो। उसने कहा—लोकलाज खोई। नाचने लगी रास्तों पर। घर के लोग—राजघर के लोग परेशान हुए। उन्होंने कुछ दुष्टता के कारण जहर नहीं भेजा था, सिर्फ अपनी प्रतिष्ठा बचाने को। जगह-जगह से मीरा को खदेड़ा गया।

कहते हैं, काशी में एक बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ पंडितों का। उसमें कबीर को भी बुलाया। बड़ी सोच-विचार से बुलाया। बहुत दिन विवाद हुआ कि कबीर को बुलाना कि नहीं, इस जुलाहे को बुलाना कि नहीं। लेकिन फिर अंततः इस जुलाहे की बातों में कुछ था तो, बुला लिया। लेकिन कबीर ने आकर और एक अजीब शर्त रख दी।

कबीर ने कहा, मीरा को भी बुलाओ। यह जरा जरूरत से ज्यादा था। कबीर कम से कम पुरुष तो थे। अब मीरा! देखते हो बाबा तुलसीदास क्या कह गये हैं?

शूद्र गंवार ढोल पसु नारी।

से सब ताड़न के अधिकारी।

मीरा की तो शूद्रों के साथ गिनती है। पुरुष कबीर—माना कि जुलाहे सही, चलो, मगर कम से कम पुरुष तो हैं। मगर कबीर ने एक अजीब शर्त रख दी कि तुम मीरा को बुलाओ तो ही मैं आऊंगा, नहीं तो मैं नहीं आऊंगा। क्यों कबीर ने यह शर्त रखी होगी कि मीरा को बुलाओ? इसलिए यह शर्त रखी कि इन मूढ़ पंडितों को यह बात साफ हो जानी चाहिए कि परमात्मा को पाने के लिए न तो पुरुष होना जरूरी है, न स्त्री होने से कोई बाधा पड़ती है। परमात्मा को पाने में अगर कोई बाधा है तो सिर्फ अहंकार है। परमात्मा को पाने में अगर कोई बाधा है तो तुम्हारी दुख की ग्रंथियां हैं। मीरा को बुलाओ, क्योंकि उससे ज्यादा नाचता हुआ परमात्मा और कहां मिलेगा?

मीरा आयी तो कबीर आए। और मीरा आयी तो मीरा ने क्या किया? मीरा नाची। पंडितों ने नाक-भौंह सिकोड़ी। उन्होंने कहा—यह सब क्या तमाशा हो रहा है।? कहां वेद की बातें होनी चाहिए वहां यह मीरा नाच रही है। मगर नाच वेद है। लेकिन पंडित तो अंधे होते हैं। वे सोचते थे कि मीरा कुछ संस्कृत के रटे-रटाए सूत्र दोहराए। मीरा ने जीवंत वेद दिखाया—वह नाची। लेकिन पंडितों को तो मन में बड़ा बुरा लगा। पल्लू फिर गिर गया होगा। यह कोई बात हुई! स्त्री को घर में छिपा होना चाहिए। स्त्री को लाज होनी चाहिए।

आनंद की हमारे मन में प्रतिष्ठा नहीं है। इसलिए तुम जब यहां आते हो और यहां एक और ही तरह का जगत पाते हो, तो तुम्हें अड़चन होती है। तुम बेचैनी में पड़ जाते हो। तुम्हें लगता है, यह किस तरह का धर्म? सम्यक धर्म सदा ही इस तरह का रहा है। मगर वह कभी-कभी होता है। मेरे जाते ही दुखवादी आ जाएगा। वह सुभाष से भी सक्रिय ध्यान करवाएगा। वह कहेगा—करो। अगर सक्रिय ध्यान नहीं किया, तो परमात्मा कभी नहीं मिलेगा। इसलिए सुभाष, जब तक मैं हूं तुम विश्राम कर लो। विश्रामपूर्वक ध्यान कर लो। सुख से मूल्य चुका लो। मेरे जाने के बाद तो लोग फिर दुख से मूल्य चुकवाएंगे। यहीं, इसी जगह। क्योंकि पीछे कठिनाई यह खड़ी हो जाती है कि फिर जड़ नियम हाथ में रह जाते हैं। इसी तरह किया जाता था, इसी तरह किया जाना चाहिए। इससे अन्यथा नहीं होना चाहिए। फिर किसी को मेल खाता है कि नहीं मेल खाता, इसकी चिंता कौन करे? और इसका निर्णय भी कौन करे? आज तो मैं तुम्हें देखता हूं, तुम्हारे भीतर क्या ठीक है उसके अनुकूल तुमसे कहाता हूं। इसलिए मेरी बातों में बहुत विरोधाभास भी हो जाता है। किसी को कुछ कहता हूं, किसी को कुछ कहता हूं। क्योंकि मेरे पास भी बंधा सिद्धांत नहीं है। तुम मेरे लिए महत्वपूर्ण हो, सिद्धांत नहीं। तुम्हारे हिसाब से मैं सिद्धांत को काटता हूं—तुम को नहीं काटता।

अक्सर तो यह हो जाता है कि तथाकथित धर्मों के पंडित, पुरोहित, धर्म के वस्त्र तो पहले से तैयार हैं, अगर तुम थोड़े लंबे हो तो वे तुमको छांट देते हैं। अगर तुम जरा छोटे हो, तुमको खींचतान कर, मालिश कर के लंबा कर देते हैं। इसकी फिकिर ही नहीं करते कि यह आदमी मर जाएगा, बचेगा, कि क्या होगा? वे वस्त्र कीमती हैं। सिद्धांत कीमती हैं, तुम्हारा कोई मूल्य नहीं है। मेरे लिए सिद्धांत दो कौड़ी के हैं। तुम्हारा मूल्य चरम है।

प्रत्येक व्यक्ति का मूल्य चरम है। कोई सिद्धांत इतना मूल्यवान नहीं है। सिद्धांत तुम्हारी सेवा करने को हैं। शास्त्र तुम्हारे सेवक हैं। तुम्हारे स्वभाव के जो अनुकूल पड़ता हो, वही करना। अगर तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल नाच पड़ता हो, तो नाचना। तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल बांसुरी बजाना पड़ता हो तो बांसुरी बजाना। तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल योग पड़े तो योग करना। तुम्हें जो अनुकूल पड़े! मगर अनुकूल की परीक्षा, अनुकूल की कसौटी एक ही है कि तुम्हें जिससे सुख मिले।

सुख से मूल्य चुकाओ।

और ध्यान रखना, यह दुखवादी भ्रांति में न रहे कि हमने दो-चार उपवास कर लिया, कि शरीर को थोड़ा सता लिया, कि थोड़ी आंच दे दी, कि थोड़े नंगे बैठ लिये, तो पहुंच जाएंगे। इतना सस्ता नहीं है मामला।

हुआ है चार तिनकों पर यह दावा जाहिदो तुमको,

खुदा ने क्या तुम्हारे हाथ जन्नत बेच डाली है

चार तिनके। जाहिदो के, तपस्वियों के।

हुआ है चार तिनकों पर यह दावा जाहिदो तुमको

खुदा ने क्या तुम्हारे हाथ जन्नत बेच डाली है

परमात्मा प्रत्येक को उसके ही ढंग से आता है। परमात्मा तुम्हारा सम्मान करता है, तुम्हारा अपमान नहीं। तुम जिस मौज में होते हो, उसी मौज में आता है। तुम्हें जो ढंग रास पड़ता है, उसी ढंग में आता है, इसलिए यहां मैंने इतने ध्यानों की प्रक्रियाएं शुरू की हैं, कि कोई तुम्हें रास पड़ जाए। बस एक चुन लो।

लेकिन कष्टवादी कई तरह के हैं। एक मित्र कुछ दिन पहले आए, वह कहने लगे कि यह तो ध्यान से बड़ी मुश्किल हो गयी है। नींद भी खो गयी, काम-धंदा भी नहीं कर पाता, पत्नी नाराज है, बच्चे नाराज हैं, घर के लोगों ने भेजा है कि आप से समझकर जाऊं, और मैं पागल हुआ जा रहा हूं। मैंने कहा कि ध्यान से तो शांति आनी थी। उन्होंने कहा—कहां की शांति! अशांति-अशांति हो गयी हैं। मैं थोड़ा हैरान हुआ। मैंने कहा कि कौन-सा ध्यान करते हो? क्या करते हो? तो उन्होंने कहा—कौन-सा क्या? सुबह से रात तक ध्यान ही ध्यान, पूरे पांच ध्यान करता हूं! नौकरी की फुर्सत ही नहीं। नौकरी करने कहां जाऊं? तो पत्नी जान खाए जा रही है, बच्चे मुश्किल में पड़ गये हैं—और मुझे तो ध्यान करना है।

तुमसे पांच करने को कहा किसने? पांच ध्यान करोगे तो निश्चित जीवन कष्ट में पड़ जाएगा। ये पांच ध्यान यहां शिविर में किये जाते हैं ताकि तुम पांच को कर के अपने अनुकूल को खोज लो।

दुनिया में पांच प्रकार के लोग हैं। जैसे पांच इंद्रियां हैं, ऐसे पांच प्रकार के लोग हैं। उन पांचों को ध्यान में रखकर पांच ध्यान की विधियां विकसित की गयी हैं। एक कोई तुम्हें जम जाए, बस पर्याप्त है। बाकी चार को जाने दो। तुम ध्यान की करते रहोगे तो अशांति तो हो ही जाएगी। और अशांति फिर घर में बैठे चौबीस घंटे तुम ध्यान में लगे हो, पत्नी कब तक बर्दाश्त करेगी? बच्चे कब तक बर्दाश्त करेंगे? लेकिन यह कष्टवादी चित्त। इसने ध्यान में से तरकीब निकाल ली सताने की अपने को। अपने को और औरों को भी।

इस बात को खयाल में रखना। मैं तुम्हें जो भी कह रहा हूं, न तो अपने को सताना उससे, न किसी और को सताना उससे। और उन लोगों से सावधान रहना जिन्होंने कुछ जाना नहीं है। अब यहां ऐसे बहुत-से लोग हैं इस जमीन पर जो ध्यान के संबंध में लिखते हैं, जिन्हें ध्यान का कुछ पता नहीं है।

मैंने एक किताब पढ़ी—एक जैन साध्वी ने किताब लिखी थी, हेमचंद्र आचार्य के सूत्रों पर ध्यान की किताब थी। किताब तो मुझे ठीक लगी। कुछ जगह मुझे लगा कि साध्वी शास्त्र की तो ज्ञाता है निश्चित, भाषा की जानकार है निश्चित, लिखने में कुशल है निश्चित, लेकिन ध्यान नहीं किया है। क्योंकि कुछ जगह ऐसी बात आ ही गयी—वह आएगी ही, आनेवाली ही है, तुम बचाओगे कहां से? जिसने प्रेम का अनुभव नहीं किया, वह प्रेम पर किताब लिखेगा, कहीं न कहीं भूल-चूक हो जाएगी, कहीं न कहीं कुछ बात आ जाएगी जो बता देगी कि यह प्रेम को जाननेवाले का वचन नहीं हो सकता।

संयोग की बात, कोई पांच-सात साल बाद मैं ब्यावर में था—राजस्थान में—तो वह साध्वी मुझे मिलने आयी। मैं तो भूल भी चुका था उसका नाम थी, उसकी किताब भी। उसने मुझे पूछा कि—ध्यान कैसे करूं? मैंने उसे ध्यान के संबंध में समझाया। फिर उसने अपनी किताब निकाली, उसने कहा मैंने एक किताब भी ध्यान पर लिखी है, वह आपके लिए भेंट करने लायी हूं, तब मुझे खयाल आया। तो मैंने उससे पूछा—तूने कभी ध्यान किया?

उसने कहा—मैंने कभी नहीं किया। फिर किताब क्यों लिखी! उसने कहा, शास्त्रों के अध्ययन से, मनन-चिंतन से।

मनन-चिंतन और अध्ययन से ध्यान का क्या लेना देना है? ध्यान अनुभव है। उसे खुद भी पता नहीं है, वह पूछने आयी है कि ध्यान कैसे करूं और ध्यान पर किताब लिखी है! और उसकी किताब के आधार पर कई लोग ध्यान करते होंगे! ऐसा उपद्रव चल रहा है।

तुम जरा सोच-समझकर किसी से सलाह लेना। सलाह देनेवाले लोग हैं, बहुत, एक ढूंढ़ो हजार मिलते हैं। सलाह देनेवाले तैयार ही हैं। ढूंढ़ो भी मत तो भी मिल जाते हैं। खोजो भी मत तो तुम्हारे घर ही आ जाते हैं कि भाई, सलाह तो नहीं चाहिए! सलाह देने में लोग इतना रस लेते हैं। क्योंकि सलाह देने में ज्ञानी होने का मजा। और दूसरे को अज्ञानी सिद्ध करने का मजा है। इसलिए सलाह देने का मौका कोई चुकता नहीं। लेकिन सलाह सोच-समझकर लेना। जिसके जीवन में ध्यान की कोई गरिमा हो, जिसके जीवन में प्रेम की कोई सुवास हो—बैठना, उठना, समझना, सोचना, पीना किसी व्यक्ति को और जब तुम्हें लगे कि हां, कुछ अस्तित्वगत घटा है, तो ही ग्रहण करना, अन्यथा बचना।

वो राह सुझाते हैं हमें हजरते रहबर
जिस राह पर उनकी कभी चलते नहीं देखा

तो सुभाष, अपने स्वभाव, अपने अनुकूल स्वयं को जो प्रीतिकर लगे, वह चुनो। वही कीमत है जो चुकानी है। मैं तुमसे कहता हूं, दुख छोड़ दो, यही त्याग है। मैं तुमसे सुख छोड़ने को नहीं कहता। मैं तुमसे कहता हूं, दुख छोड़ दो—सुख तो तुम्हारे पास है ही कहां जो तुम छोड़ोगे—दुख छोड़ दो। दुख को लोग पकड़े हैं। छाती से पकड़े बैठे हुए हैं। दुख नहीं छोड़ना चाहते, दुख उनकी संपदा है। तुम चौंकोगे यह बात जानकर, बहुत मुश्किल से हिम्मतवर आदमी होता है जो दुख छोड़ने को राजी होता है। दुख छोड़ने को लोग राजी ही नहीं होते।

कुछ ही दिन पहले एक युवक और युवती मेरे पास आए। दोनों दुखी हैं। सात साल से साथ रहते हैं। और सात साल में नर्क के सिवाय कुछ नहीं भोगा है। मैंने कहा, अलग क्यों नहीं हो जाते? अलग नहीं होना चाहते। मैंने पूछा, साथ होने में कुछ सुख मिल रहा है? उन्होंने कहा—साथ होने में सुख तो कुछ भी नहीं मिल रहा; मगर प्रेम है। प्रेम किस बात से? दुख यह नर्क से? न उस युवक को कुछ रस है, न युवती कोई रस है, मगर साथ नहीं छोड़ सकते। साथ कैसे छोड़ दें! वे कहने लगे—हम तो इसलिए आपके पास आए थे कि आप हमें समझा-बुझाकर ठीक-ठाक कर देंगे। समझाने-बुझाने से क्या ठीक-ठाक होगा? सात साल साथ रहकर तुमने एक-दूसरे को कष्ट ही दिया। लेकिन ऐसा हो जाता है कि कष्ट की भी तलब हो जाती है। तुम घर आओ और पत्नी अंटशंट न बोले, या तुम घर आओ और तुम पत्नी के लिए बाजार से फूल ले आओ, तो अड़चन हो जाती है।

एक मनोवैज्ञानिक ने एक आदमी को यह सलाह दी। आदमी ने कहा कि मैं जब भी घर जाता हूं, मेरी पत्नी बड़ा तैयार ही रहती है, बस। मैं डरता हूं दफ्तर से जाने में। लोग तो दफ्तर धीरे-धीरे आते हैं, मैं घर की तरफ बहुत धीरे-धीरे जाता हूं। लोग दफ्तर से घड़ी देखते रहते हैं कब निकल जाएं, और मैं डरा रहता हूं कि कहीं पांच न बज जाएं! पांच बज जाते हैं तो भी फाइलें उलटता रहता हूं; कुछ काम भी नहीं होता तो भी बैठा—जब दफ्तर बंद ही होने लगता है और चपरासी कहता है अब महाराज जाइए, तब मैं जाता हूं। फिर भी रास्ते में कोई मिल जाए तो रुक जाता, हूं, बातचीत करते-करते-डर लगा रहता है कि घर गया कि वह पत्नी!

उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, ऐसा करो थोड़ा प्रेम पत्नी के प्रति दिखलाओ। तुमने कुछ प्रेम नहीं दिखलाया है। उसने कहा—मैं क्या करूं आप जो कहो वह मैं करूं। उसने कहा—तुम आज ऐसा करो, फूल ले जाओ पत्नी के लिए। मिठाइयां ले जाओ। मिठाइयां देना, फूल देना—एकदम गले लगा लेना। उसको मौका ही मत देना। कि वह कुछ बक सके या कुछ कह सके, एकदम गले लगा लेना। उसने कहा अब आप कहते हैं तो करेंगे। वैसे

अपनी पत्नी को कौन गले लगाता है! मगर अब आप कहते हैं तो यह भी करेंगे। ठीक है, फूल भी ले जाएंगे। अपनी पत्नी के लिए कौन फूल ले जाता है? मिठाई उसने कहा, चलो ठीक है, एक दफे करके देख लो। और क्या करना है? और पत्नी के साथ हाथ बंटाना। बर्तन मांज रही हो तो तुम भी बर्तन धोने लगना। टेबल साफ कर देना। बच्चे की नाक बह रही हो, पोंछ देना। कुछ हाथ बंटाना। उसने कहा, चलो यह भी करेंगे। किसी तरह शांति हो जाए।

वह घर पहुंचा। बड़ा प्रसन्न था कि चलो आज कुछ तरकीब हाथ लगी है। फूल देखकर पत्नी को तो भरोसा ही नहीं आया। और मिठाई, और जब उसने गले लगाया—तो किस पत्नी को भरोसा आ सकता है, कि अपना पति और गले लगाएगा! वह बड़ी घबड़ा गयी। हो क्या गया है! मगर एकदम कुछ कह भी न सकी, एकदम सकते में आ गयी। और जल्दी से पति छलांग लगाया और टेबल साफ करने लगा और बर्तन मांजने लगा। उस पत्नी ने एकदम बाल फैला कर और छाती पीट ली और चिल्लाने लगी कि—मर गयी! मर गयी!! मुहल्ले के लोग इकट्ठे हो गये। वह पति भी बोला कि क्या हो गया तुझे? तुम आज पीकर आए हो, या क्या बात है? तुम होश में हो? क्या कर रहे हो? सुबह से नौकरानी नहीं आयी हैं, बच्चे के दांत टूट गये हैं, लड़की अभी तक लौटी नहीं और अब तुम आए हो! तुम नशा करके आए हो या क्या करके आए हो? तुम होश में हो?

लोग दुख की अपेक्षा करने लगते हैं। अपेक्षित दुख न आएं, तो मुश्किल हो जाती है। लोग दुखों को भी सम्हाल कर रखते हैं। वही उनकी संपदा है।

मैं तुमसे कहता हूं—दुख छोड़ो। दुख के साथ क्षण भी रहने की जरूरत नहीं है, दुख छोड़ो। तुमने क्रोध से बहुत बार दुख पाया है। और तुम्हारे ज्ञानियों ने तुमसे कहा है, क्रोध मत करो, इससे दूसरे को दुख होता है। मैं तुमसे कहता हूं, क्रोध मत करो, इससे तुमको दुख होता है। भाड़ में जाने दो दूसरे को, तुम अपने को तो बचाओ! तुम बच गये तो दूसरा भी बच जाएगा। ज्ञानियों ने कहा है, हिंसा मत करो, इससे दूसरे को चोट पहुंचती है। मैं कहता हूं—इससे दूसरे को तो बाद में पहुंचेगी, जो हिंसा करता है, पहले खुद को चोट पहुंचा लेता है। बुरा मत करो—ज्ञानियों ने कहा है कि इससे पाप लगेगा, अगले जन्म में नर्क में पड़ोगे। मैं तुमसे कहता हूं—यह सब तो फिजूल की बातें है, तुम जब बुरा करने की सोचते हो, तभी नर्क पैदा हो जाता है, तभी तुम दुख भोग लेते हो।

तुम अगर एक ही बात कसौटी की तरह सम्हाल लो कि जिस चीज से दुख मिलता है उसका त्याग कर देंगे, तुम अचानक पाओगे, तुम्हारी ऊर्जा धीरे-धीरे सुख की तरफ प्रवाहित होने लगी। सुख बड़े महलों से नहीं मिलता। सुख बहुत सुस्वादु भोजन से नहीं मिलता। सुख जीवन को जीने की कला है। रूखे-सूखे से मिल सकता हैं। झोपड़े में भी मिल सकता है। गरीबी में भी मिल सकता है। और प्रमाण के लिए इतना काफी है कि अमीरों को भी नहीं मिल रहा है। तो गरीब को भी मिल सकता है। जब अमीर को नहीं मिल रहा है, तो अमीरी से मिलता है यह कोई सवाल न रहा।

मेरी देशना एक ही है—दुख का त्याग करो, सुख का वरण करो। इतनी कीमत तुम चुका दो, परमात्मा नाचता हुआ तुम्हारी तरफ चला आएगा। जल्दी ही वह घड़ी आ जाएगी।

बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
आ गया पीकर बहक जाने का मौसम आ गया
फिर पयामे-आमदे जानां सकूने-शाम है
सेज पर कलियों के खिल जाने का मौसम आ गया
यह तड़प, यह दर्द, यह रग-रग में हलकी-सी कसक
यह शबाब आया कि मर जाने का मौसम आ गया
तोड़कर हमदम! हर इक रस्मो-रहे-कौनीन को
...संसार के सब रीति-रिवाजों को तोड़ दो...

तोड़कर हमदम! हर इक रस्मो-रहे-कौनीन को
लगजिशों पर लगजिशें खाने का मौसम आ गया
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
आ गया पीकर बहक जाने का मौसम आ गया
बहको, पीओ, बसंत को ऊगने दो तुम्हारे भीतर, और तुम परमात्मा को रोज-रोज करीब आते पाओगे।
सुख परमात्मा से जोड़ता है, दुख तोड़ता है।
आज इतना ही।

सुकृतजत्वात् परहेतुभावाश्च क्रियासु श्रेयस्यः ।।७१।।
गौणं त्रैविध्यमितरेण स्तुत्यर्थत्वात् साहचर्यम् ।।७२।।
बहिरन्तरस्थमुभयमवेष्टि सर्ववत् ।।७३।।
भूयसामननुष्ठितिरिति चेदाप्रयाणमुपसंहारान्महत्स्वपि ।।७४।।
स्मृतिकीर्त्योः कथादेश्चातौ प्रायश्चितभावात् ।।७५।।
भक्ति अकर्मण्यता नहीं, अकर्ताभाव है
नौवां प्रवचनः
शांडिल्य ने भक्ति को दो खंडों में बांटा। एक साधनरूप भक्ति, एक साध्यरूप भक्ति। साधनरूप भक्ति को उन्होंने गौणी-भक्ति कहा और साध्यरूप भक्ति को परा-भक्ति। उस विभाजन की ही गहराई और विस्तार में आज के सूत्र हैं।
अक्सर यह भूल हो जाती है कि साधन साध्य समझ लिये जाते हैं। तब साधन ही बाधक हो जाता है। जो नाव तुम्हें उस पर ले जाती है, अगर उस नाव को ही पकड़ लिया, तो उस पार तुम कभी न पहुंच पाओगे। उस पार पहुंचना हो तो इस पार तो नाव पकड़नी होगी, उस पार पहुंच कर नाव छोड़ देनी होगी। नाव अगर छोड़ी नहीं, सोचा कि जो नाव इस पर ले आयी, जिसका इतना आभार है, उसे पकड़कर बैठ गये, तो वही नाव बाधा हो जाएगी।
श्री अरविंद ने कहा है, प्रारंभ में जो साधक है वही अंत में बाधक हो जाता है। और यह बिलकुल स्वाभाविक है कि जिससे हमें इतना सहारा मिला हो, जिसके आधार से हमें इतने आनंद की उपलब्धि हुई हो, जिसके कारण हमारी प्यास तृप्ति के करीब आयी हो, उससे हम बंध जाएं, उससे मोह पैदा हो जाए, उससे आसक्ति बन जाए। संसार की ही आसक्ति बाधा नहीं है, आसक्ति कहीं भी हो तो बाधा है। इसलिए इस विवेचन में जाना अत्यंत आवश्यक है।
कीर्तन है, भजन है, श्रवण है, सत्संग है—सब गौणी-भक्ति है। सत्संग ही करते रहे और सत्संग में ही डूबे रहे और कभी उसके पार न गये तो सत्संग का सार न हुआ। तो फिर तुम सत्संग की आसक्ति में पड़ गये। वह भी एक लत हो गयी। और आदत अच्छी हो कि बुरी, आदत बुरी ही होती है। अच्छी-बुरी आदतें नहीं होती, आदत बुरी होती है। कोई आदमी शराब पीने की आदत से भरा है, तो हम कहते हैं बुरी आदत है। और कोई आदमी रोज उठकर प्रार्थना करता है, तो हम कहते हैं अच्छी आदत है। अच्छी आदतें होती ही नहीं। अगर सुबह रोज उठकर प्रार्थना करनेवाला आदमी जिंदगीभर यही करता रहे और ऐसी घड़ी न आ पाए उसके जीवन में जब वह प्रार्थना से मुक्त हो जाए तो समझना कि यह एक और तरह की शराब हुई। कुछ बहुत फर्क न हुआ।
एक दिन तुम प्रार्थना नहीं करते हो तो दिन भर बेचैनी मालूम होती है। प्रार्थना नहीं करते हो तो लगता है कुछ चुक गया, कुछ खो गया, कुछ कमी-कमी, कुछ रिक्त-रिक्त, कुछ अभाव। यही तो शराबी को होता है। यही धूम्रपान करनेवाले को होता है। यही चाय-काफी पीनेवाले को होता है। फर्क तुममें और उसमें क्या हुआ? दोनों

ही आदत के गुलाम हो गये। उसकी आदत शरीर को नुकसान पहुंचाती है, तुम्हारी आदत और भी खतरनाक है, तुम्हारी आत्मा को नुकसान पहुंचा रही है। जिनको तुम बुरी आदतें कहते हो, उनकी सीमा तो शरीर है, और जिनको तुम अच्छी आदतें कहते हो वे तुम्हारी आत्मा को भी विकृत कर जाती हैं।

ध्यान रखना है साधक को, उस अवस्था में पहुंचना है जहां सब आदतें चली जाएंगी। जहां सब आदतें चली जाती हैं वहां स्वभाव का आविर्भाव होता है। जब तक आदत है, स्वभाव दबा रहता है। आदत स्वभाव का धोखा देती रहती है। झूठा सिक्का असली सिक्के को दबाए बैठा रहता है। तुमने देखा, अर्थशास्त्र का नियम है कि झूठे सिक्के असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं। तुम्हारे खीसे में अगर एक दस का नोट है असली और एक दस का नोट है नकली, तो तुम पहले नकली को चलाओगे। स्वाभाविक। असली को बचाओगे। असली तो कभी भी चल जाएगा। नकली निकल जाए! इसलिए असली सिक्के चलने के बाहर हो जाते हैं। तिजोड़ियों में बंद हो जाते हैं। नकली सिक्के बाजार में चलते रहते हैं। तुमने किसी पानवाले को चला दिया, पान वाले को जैसे ही समझ में आएगा कि नकली है, वह जल्दी से चलाने की कोशिश में लग जाएगा। नकली चलता है, असली रुक जाता है।

और यही जीवन की अवस्था है। यह अर्थशास्त्र का ही नियम नहीं है, यह तुम्हारे आत्यंतिक आध्यात्म का भी नियम है। अगर आदत तुम्हें पकड़ गयी, तो स्वभाव का चलन बंद हो जाता है, आदत चलती रहती है। और आदत झूठी है, कृत्रिम है, ऊपर से आरोपित है, सीखी है। किसी ने किसी के साथ रह कर सिगरेट पीना सीख लिया है, तुमने किसी के साथ रहकर प्रार्थना करनी सीख ली है। सिगरेट पीना भी बाहर से आया, प्रार्थना करनी भी बाहर से आयी। तुम्हारे भीतर को कब अवसर दोगे? तुम्हारे भीतर जो पड़ा है, कब उमगेगा? कब उसे अंकुरित होने दोगे? इसलिए साधन को खयाल रखना साधन ही है। उसे छाती से मत लगा लेना। उसी पर मत अटक जाना। साधन कितना ही प्यारा हो!

ऐसा समझो कि तुम बीमार थे और बड़े रुग्ण थे, मरणशैय्या पर पड़े थे और किसी औषधि ने तुम्हारे प्राण बचा लिये। अब क्या इस औषधि को जीवन भर पीते ही रहोगे? बीमारी चली गयी, औषधि भी जानी चाहिए। जब व्याधि ही चली गयी, तो औषधि भी जानी चाहिए। अगर तुम कहो की जिस व्याधि से छुड़ाया इस औषधि ने, इसको अब मैं छोड़नेवाला नहीं; ऐसी कल्याणकारी औषधि को मैं कैसे छोड़ सकता हूं! अब तो इसे छाती से लगा कर रखूंगा; अब तो इसकी पूजा करूंगा; अब तो सुबह-शाम इसका सेवन करूंगा; न खुद ही करूंगा बल्कि औरों को भी कराऊंगा; ऐसी महाकल्याणकारी रामबाण औषधि! अब तुम उपद्रव में पड़े। तुमने औषधि को भी व्याधि बना लिया। साधन से छूटना है। तभी साध्य उपलब्ध होगा। गौणी-भक्ति परा-भक्ति के लिए साधन मात्र है, सीढ़ी मात्र है। उपयोग कर लो, फिर भूल जाओ। जिस क्षण भूल सकोगे, उसी क्षण गीत गाने की बेला आएगी।

बादल घिर आए, गीत की बेला आयी।
आज गगन की सूनी छाती
भावों से भर आयी,
चपला के पांवों की आहट
आज पवन ने पायी,
डोल रहे हैं बोल न जिनके
मुख में विधि ने डाले,
बादल घिर आए, गीत की बेला आयी।
बिजली की अलकों ने अंबर
के कंधों को घेरा,

मन बरबस यह पूछ उठा है
कौन, कहां पर मेरा?
आज धरणि के आंसू सावन
के मोती बन बहुरे,
घन छाए, मन के मीत की बेला आयी।
बादल घिर आए, गीत की बेला आयी।
चातक ने जल की बूंदों में
स्वाद अमृत का पाया,
आकाशी शिखरों से किसने
सुख का राग सुनाया,
आज करुण सबसे पृथ्वी के
आंगन में एकाकी,
बादल घिर आये, प्रीति की बेला आयी।
बादल घिर आये, गीत की बेला आयी।
आज अधर की मधु-मदिरा में
डूब अधर जो पाते,
इन रसहीन पदों को क्योंकर
वे फिर-फिर दुहराते
मैं न जहां पहुंचूंगा, मेरे
शब्द पहुंच जाएंगे,
घन छाये, मन की जीत की बेला आयी।
बादल घिर आये, गीत की बेला आयी।

गीत तुम्हारे भीतर पड़ा है—तुम्हारे स्वभाव का गीत और जब तक तुम गा न लोगे, तब तक तुम छूटोगे नहीं। मुक्ति का अर्थ क्या होता है? मुक्ति का अर्थ होता है, तुमने अपनी नियति पा ली। तुम जो होने को पैदा हुए थे, हो गये। तभी मुक्ति है। मुक्ति कोई निष्क्रिय अवस्था नहीं है, जैसा कि अनेक लोगों ने तुम्हें समझाया है। मुक्ति का अर्थ नहीं है कि तुम पंगु और काहिल होकर और अपने हाथ से अपने जीवन को पक्षाघात लगाकर किसी पहाड़ की गुफा में बैठ गये वह आत्मघात है, मुक्ति नहीं। मुक्ति का मौलिक अर्थ होता है, तुम्हारे भीतर जो गीत पड़ा था, जिसे गाने को तुम आए थे, उसे तुमने गा लिया। मुक्ति सृजनात्मक है, निष्क्रिय नहीं। और जब तक कोई सृजनात्मक रूप से प्रकट न हो जाए तब तक आनंद नहीं उपजता।

स्मरण रखना, जैसे प्रत्येक बीज अपनी छाती में फूलों को छिपाए है और जब तक पौधा न बने और वृक्ष बड़ा न हो और फूल न खिलें, तब तक बीज उदास रहेगा। तब तक बीज बेचैन रहेगा। तब तक बीज को विश्राम कहां?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं चित्त बड़ा बेचैन है, शांति का उपाय बता दें। चित्त बेचैन है क्योंकि तुम्हारा बीज अभी फूटा नहीं। और अगर तुम्हें शांति का कोई उपाय बता रहा हो तो वह तुम्हारा दुश्मन है। तुम्हें उपाय बताया जाना चाहिए सृजन का, शांति का नहीं। शांति तो सृजन की छाया है। लेकिन तुम्हें सदियों से यही सिखाया गया है। तुम्हारे तथाकथित महात्माओं ने तुम्हें यही बताया है—मुड़ जाओ जिंदगी से। बीजों को मंत्र सिखा दिये हैं ताकि वे बीज ही रहने में शांत रहें। बैठ जाओ जाकर पत्थर बनकर। आंख बंद कर लो। विस्मरण कर दो सब।

लेकिन ध्यान रखो, तुम लौट-लौटकर आओगे। परमात्मा तुम्हें तब तक नहीं छोड़ेगा जब तक तुम अपना गीत न गा लो। जब तक तुम्हारे भीतर पड़े हुए फूल, छिपे हुए फूल प्रकट न हो जाएं। जब तक तुम सुगंध न बिखेरो। जब तक तुम्हारे रंग आकाश में आकर खुल न जाएं। जब तक तुम आकाश के साथ नाच न लो। तुम्हारे भीतर जो दबा पड़ा है, उसके पूर्ण प्रकट हो जानने पर मुक्ति है। जब बीज वृक्ष बन जाता है और वृक्ष में फूल लग जाते हैं, बीज मुक्त हो गया। अब कोई बेचैनी न रही। अब सब तरफ शांति छा जाती है।

तुमने भी इसे अनुभव किया है लेकिन तुमने इस पर विचार नहीं किया है। जब भी तुम कुछ सृजनात्मक करते हो तब एक अपूर्व आनंद का भाव उठता है। तुमने एक मूर्ति बना ली, या तुमने एक चित्र रंग डाला, या कुछ और—हजार काम हैं दुनिया में—तुमने कोई काम कर लिया जो तुम करना चाहते थे, तब उसके पीछे एक शांति अपने-आप चली आती है। जब कृत्य का तूफान चला जाता है, तो पीछे से शांति छा जाती है। लेकिन कृत्य का तूफान उठना ही चाहिए।

इसलिए मैं पक्ष में नहीं हूं कि कोई संन्यासी संसार छोड़कर भाग जाए। संसार है अवसर अभिव्यक्ति का। उसे छोड़कर भाग गये तो तुम वही बीज हो जो जमीन छोड़कर भाग गया। बैठ जागा बीज किसी गुफा में, लेकिन पत्थरों में बीज नहीं ऊगा करते। भूमि चाहिए, नर्म भूमि चाहिए। अवसर चाहिए। जहां वसंत आता हो, जहां भूमि कोमल हो, वहां गिरो, वहां टूटो, वहां उमगो। मुक्ति है सृजनात्मक।

मनुष्यजाति के धर्मों ने सृजन को बहुत मूल्य नहीं दिया, इसलिए पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पायी। सृजन का जितना मूल्य बढ़ेगा, उतनी पृथ्वी ज्यादा धार्मिक हो पाएगी। इसलिए जितने सृजनात्मक लोग हैं, आमतौर से मंदिरों और मस्जिदों में नहीं जाते। वहां काहिलों और सुस्तों की भीड़ इकट्ठी हो गयी है। जिन्हें कुछ करना है, वे वहां नहीं जाते। जिन्हें जीवन में कुछ होना है, वे वहां नहीं जाते। और जब काहिल और सुस्त इकट्ठे हो जाते हैं, लंगड़े, लूले, अंधे इकट्ठे हो जाते हैं, मुर्दों की भीड़ लग जाती है, तो जाने-अनजाने हमारे मंदिर-मस्जिद और गिरजे मरघट हो गये हैं। वहां जिंदगी खिलती नहीं, वहां जिंदगी नाचती नहीं, वहां जिंदगी प्रकट नहीं होती। ध्यान रखना।

बादल घिर आए, गीत की बेला आयी।
धन छाए, मन के मीत की बेला आयी।
बादल घिर आए, प्रीति की बेला आयी
घन छाये मन की जीत की बेला आयी।
बादल घिर आये, गीत की बेला आयी।

गीत की बेला कब आएगी? जब तुम्हारा स्वभाव प्रकट होगा। स्वभाव दबा पड़ा है, बहुत-से कूड़े-करकट में। उस कूड़े-करकट को छांटना है।

इस छांटने में दो खतरे हैं।

एक खतरा है कि साधन जिससे तुम इस कूड़ा-करकट को छांटोगे, कहीं साध्य न हो जाए। दूसरा खतरा है, इस डर से कि कहीं साधन साध्य न हो जाए, तुम साधन का उपयोग ही न करो। तो कूड़ा-करकट न छंटेगा।

और इन दो ही खतरों में लोग बंट गये हैं। कुछ हैं जो साधन से डरते हैं; जो कहते हैं, साधन के उपयोग में खतरा है, नाव में बैठना ही मत, क्योंकि जो बैठ गये वे फिर उतरते नहीं। और एक है जो कहते हैं, नाव में बिना बैठे तो हम पार कैसे जाएंगे? नाव ही हमें इस पर ले आयी, अब हम उतरें कैसे! अब हम उतरेंगे नहीं। कुछ हैं जो साधन से बचते हैं—वे इसी किनारे रह जाते हैं। कुछ है जो साधन का उपयोग करते हैं लेकिन नाव में ही अटक जाते हैं—उस पार वे भी नहीं पहुंच पाते। दोनों ही नहीं पहुंच पाते।

उस पर कौन पहुंचाता है? जो साधन का साधन की तरह उपयोग कर लेता है। और जब जरूरत पूरी हो जाती है तो चुपचाप उतर कर चल पड़ता है। पीछे लौटकर भी नहीं देखता। बीमार होता है तो औषधि का प्रयोग करता है,

बीमारी गयी तो औषधि को विदा कर देता है। फिर औषधि को नहीं पकड़ लेता। ऐसा ही समझो कि तुम्हारे पैर में एक कांटा लगा है, उसे निकालने को तुम दूसरे कांटे का उपयोग कर लेते हो, लेकिन जब दोनों कांटे आ गये हाथ में—गड़ा हुआ कांटा भी निकल आया—तो फिर तुम जिस कांटे ने गड़े हुए कांटे को निकाला, उसे बचा थोड़े ही लेते हो! उसे घाव में थोड़े ही रख देते हो कि इसकी बड़ी कृपा है, अब इसको रख लें अपने पैर में। तुम दोनों को फेंक देते हो।

साधन भी फेंका जाना है। इसीलिए उसे गौण कहां है। और जब साधन चला आएगा, तभी साध्य का आविर्भाव है।

इन सूत्रों को खयाल से समझना।

'सुकृतजत्वात् परहेतुभावात् च क्रियासु श्रेयस्यः।।

यह सब कार्य पराभक्ति में पहुंचने के हेतु रूप हैं, एवम् सब प्रकार के पुण्य कार्यों में श्रेष्ठ हैं।

पराभक्ति में पहुंचने के हेतु रूप। पराभक्ति का अर्थ है, वैसी चित्त की दशा जहां भक्त और भगवान में कोई भेद न रह जाएगा। पराभक्ति का अर्थ है, जहां भगवान और भक्ति पिघलकर एक हो जाएंगे। जैसे बर्फ की चट्टान पिघलकर जल से एक हो जाए ऐसे हमारा अहंकार जहां पिघलकर भगवत्ता में लीन हो जाएगा, जहां हम न बचेंगे, जहां हमारी कोई धारणा न बचेगी। हम, जैसे बीज जमीन में टूट जाता है ऐसे ही टूट जाएंगे और बिखर जाएंगे, तभी जो छिपा है हमारे भीतर, प्रकट होगा। तभी सृजनात्मकता अपने शिखर पर पहुंचती है। पराभक्ति का अर्थ है, जहां भक्त विलीन हो जाता है।

और ध्यान रखना, जहां भक्त विलीन होता है वहां भगवान भी विलीन हो जाता है। भगवान भी भगवान की तरह तभी तक मालूम होता है जब तक भक्त है। वह भक्त की धारणा है। जब भक्त ही न रहा तो उसकी धारणा कहां रहेगी? जब गंगा सागर में गिर जाती है तो गंगा ही विलीन नहीं हो जाती, सागर भी गंगा में विलीन हो जाता है। भक्त भगवान में गिरकर नुकसान में नहीं पड़ता—क्षुद्र खोता है और विराट अपना हो जाता है। द्वैत समाप्त हो जाता है, उस स्थिति का नाम है—पराभक्ति।

उस पराभक्ति के लिए ये साधन हैं। श्रवण, मनन, निदिध्यासन, सत्संग, भजन, कीर्तन, नर्तन इत्यादि। इन सब साधनों का उपयोग कर लेना। ये सभी साधन उपयोगी हैं। मगर सतत जागरूकता रखना, कोई साधन ऐसा न पकड़ जाए कि फिर छूटे न। तुम मालिक रहना। साधनों को मालिक मत बन जाने देना।

चीन में एक बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक फकीर के संबंध में खबर उड़ी कि वह परमज्ञान को उपलब्ध हो गया है। तो एक दूसरा फकीर उससे मिलने गया। यह दूसरा फकीर जब पहुंचा तो पहला फकीर अपनी गुफा के द्वार पर एक चट्टान पर बैठा था, बड़ी भयंकर जगह थी। सिंह दहाड़ रहे थे। यह पहला फकीर जाकर पहुंचा वहां और अचानक एक सिंह दहाड़ा। उसकी छाती कंप गयी उसके हाथ-पैर कंप गये। उस गुफा में रहनेवाले फकीर ने कहा, तो अभी तुम्हारा भय गया नहीं? आगंतुक फकीर ने कहा—मुझे बड़ी प्यास लगी है; लंबी यात्रा से पहाड़ चढ़कर आ रहा हूं, पानी मिल सकेगा? तो उस गुफा में रहनेवाला फकीर गुफा के भीतर पानी लेने गया। जब तक पानी लेने गया, इस आगंतुक फकीर ने जिस जगह यह फकीर बैठा था—पहला फकीर बैठा था—उस जगह 'नमो बुद्धाय'—बौद्धों का मंत्र—लिख दिया। बुद्ध को नमस्कार! पत्थर उठकर पत्थर पर लकीर खींच दी, लिख दिया—'नमो बुद्धाय'। गुफा में रहनेवाला फकीर आया और जब वह बैठने को था तब उसकी नजर पड़ी। उसका पैर 'नमो बुद्धाय' पर पड़ गया। वह एकदम कंप गया। आगंतुक फकीर हंसने लगा और उसने कहा; भय तो तुम्हारा भी अभी नहीं गया। मेरा भय तो स्वाभाविक भय है, तुम्हारा भय बड़ा अस्वाभाविक है। और कहते हैं कि यह कहते ही, अतिथि के द्वारा यह कहे जाते ही आखिरी बात टूट गयी वह गुफा में रहनेवाला फकीर हंसा और बैठ गया 'नमो बुद्धाय' पर। और उसने कहा—बस आखिरी बंधन रह गया था, तुम भले आए, तुमने वह भी तोड़ दिया। अब उसका भी भय नहीं।

स्वाभाविक। 'नमो बुद्धाय' जप-जप कर उसे बड़ी शांति मिली थी, बड़ा आनंद हुआ था। 'नमो बुद्धाय' उसकी भित्ति थी, उसका मंत्र था, उसके ही आधार पर सारा भवन खड़ा किया था। स्वाभाविक है कि भय लगे कि कहीं बुद्ध के ऊपर पैर न पड़ जाए। तुम्हारा भी पैर अगर गीता में लग जाता है तो जल्दी से छूकर नमस्कार कर लेते हो न गीता को! मंदिर की मूर्ति से अगर धक्का लग जाए तो एकदम गिर पड़ते हो साष्टांग कि क्षमा करना! एकदम घबड़ाहट हो जाती है। तो साधन मालिक हो गया। मालिक गुलाम हो गया और गुलाम मालिक हो गया।

मूर्ति का उपयोग कर लो, लेकिन गुलाम मत हो जाना। मूर्ति आखिर मूर्ति है और किताब आखिर किताब है और मंत्र आखिर मंत्र है। मंत्र में जो बल है वह मंत्र में नहीं है, मंत्र में जो बल है, वह तुम ही डालते हो। वह तुम्हारा ही बल है, जो मंत्र में प्रतिफलित होता है। असल में यह आदमी 'नमो बुद्धाय' कह-कह कर शांत नहीं हुआ है; क्योंकि दूसरे लोग हैं जो और कुछ कह कर शांत हो गये हैं।

अंग्रेजी के महाकवि टेनिसन ने लिखा है कि मुझे तो दूसरा कोई मंत्र कभी जमा ही नहीं। मैं तो अपना ही नाम दोहराता हूं और बड़ी शांति मिलती है—टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन। उसे बचपन से यह पकड़ गया। जंगल से निकलता था, घबड़ाहट लगी, अकेला था, कुछ और सूझा नहीं क्या करूं, तो जोर-जोर से टेनिसन, टेनिसन—अपने को जगाने लगा कि मत घबड़ा टेनिसन! याद कर अपनी। क्यों डरता है! टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन। और उसे बड़ी शांति मिली। सूत्र हाथ लग गया। फिर जब भी उसे बेचैनी होती, यह बैठकर अपना नाम दोहरा लेता। रात नींद न आती, अपना नाम दोहरा लेता और नींद आ जाती। और बेचैनी होती तो बेचैनी शांत हो जाती। फिर तो हाथ लग गयी कला। फिर तो वह बूढ़ा भी हो गया तो भी उसे दोहराता रहा।

खयाल रखना, राम में कुछ भी नहीं है। न कृष्ण के नाम में कुछ है, न बुद्ध के नाम में कुछ है। नाम में तो तुम डालते हो। तुम जो डालते हो वही तुम्हें मिल जाता है। इसलिए मुहम्मद का नाम लेकर भी लोग पहुंच जाते हैं, महावीर का नाम लेकर भी पहुंच जाते हैं। अब यह मजा देखो, यह टेनिसन को अपना ही नाम लेकर पहुंचना हो गया। तुम जरा किसी एकांत में बैठकर कभी अपना ही नाम दोहराना, बड़ी शांति मिलेगी। तब तुम चकित होओगे कि महर्षि महेश योगी से मंत्र लेने की कोई जरूरत नहीं। कोई भी शब्द। शब्द का मूल्य नहीं है। जब एक शब्द पर तुम आरूढ़ हो जाते हो, उसे आरूढ़ता का मूल्य है—शब्द कौन है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। शब्द का तुम्हें अर्थ भी पता न हो तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। एक ही शब्द रह जाता है, एक ही शब्द घूमता है और सारे शब्दों को हटा देता है। एक ही शब्द पर सारे प्राण केंद्रित हो जाते हैं, एकाग्र हो जाते हैं, उस एकाग्र हो जाने से शांति का अनुभव होता है। उसी एकाग्रता में धीरे-धीरे एक अपूर्व नयी केंद्रित चेतना पैदा होने लगती है। एक समग्र चेतना का आविर्भाव होने लगता है। लेकिन खेल सब तुम्हारा है।

इसलिए ऐसा हो जाता है कि तुम्हारी मूर्ति को अगर तुम पूजते हो जरा पैर लग जाता है तो तुम दिन भर डरे रहते हो कि भूल-चूक हो गयी, अब क्या होगा, क्या नहीं होगा। उसी मूर्ति को आकर कोई तोड़ जाता है, जिसको मूर्ति में भरोसा नहीं, उसको कुछ भी नहीं होता। मूर्ति में कुछ भी नहीं है, तुम्हारे भाव में सब कुछ है।

भक्ति अर्थात मौलिक रूप से भाव। तुम जितना डालते हो उतना पाते हो। यही तो भ्रांति हो गयी।

सोमनाथ पर हमला हुआ। गजनवी आया। बारह सौ पुजारी थे—बड़ा मंदिर था। कहते हैं पृथ्वी का सबसे बड़ा मंदिर था। और सबसे धनी मंदिर था उस समय का। आसपास के राजपूतों ने खबर भेजी मंदिर के महापुजारी को कि हम आ सकते हैं और लड़ सकते हैं। लेकिन पुजारी ने कहा तुम्हारे लड़ने की जरूर क्या! जो भगवान सबकी रक्षा करता है, उसको तुम्हारी रक्षा की जरूरत है? पुजारियों के तर्क में भी बल तो था। राजपूतों को भी लगा कि बात तो ठीक है। सबका रक्षक अगर अपनी रक्षा कर सके, तो फिर हमारी रक्षा क्या करेगा? हम उसकी रक्षा करने जाएं यह बात ही बेहूदा है।

इसलिए गजनवी को कोई अवरोध नहीं हुआ। गजनवी से कोई लड़ा नहीं। गजनवी सीधा मंदिर में प्रवेश कर गया। लेकिन पुजारियों से एक भूल हो गयी। वह भगवान तुम्हारे लिए भगवान था, तुमने उसमें भाव की प्रतिष्ठा

की थी, गजनवी को तो नहीं था। उसने उठायी गदा और भगवान को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। भगवान चारों खाने चित पड़े! पुजारी चौंके कि यह भगवान को क्या हो गया! और उन्होंने भगवान की मूर्ति में छिपा रखे थे बहुमूल्य हीरे-जवाहरात,, वे सब बिखर गये।

खयाल रखना, अगर पुजारी का धक्का भी लग जाता भगवान को, पैर भी लग जाता, तो शायद उसे बड़ा कष्ट होता, प्रायश्चित होता; बीमार हो सकता था—कोढ़ निकल सकता था। और सब उसके ही मन का खेल होता। मर भी सकता था, कि मुझसे ऐसी भूल हो गयी। भूल इतनी गहरी उतर सकती थी, भीतर पश्चात्ताप इतना सघन हो सकता था कि मौत भी हो जाती। गजनवी का कुछ बाल बांका न हुआ, सिर में दर्द भी न हुआ। गजनवी को वहां भगवान था ही नहीं।

इसको बहुत खयाल से समझ लेना।

हम प्रतिष्ठा करते हैं साधन में। और जो प्रतिष्ठा करता है, उसके लिए साधन कारगर है। मैं यही भी नहीं कह रहा हूं कि जिन्होंने प्रतिष्ठा की, उन्होंने गलती की। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि प्रतिष्ठा मत करना। अभी प्रतिष्ठा करनी पड़ेगी तो ही ऊपर उठोगे। लेकिन इतना ध्यान रखना कि एक दिन सारी मूर्तियों से मुक्त हो जाना उचित है। इस्लाम ठीक कहता है कि मूर्ति से मुक्त हो जाना उचित है। और इस्लाम गलत कहता है कि मंदिर में मूर्ति मत रखो। तुम थोड़े चौंकोगे मेरे इन दो वक्तव्यों से। इस्लाम ठीक कहता है मूर्ति से मुक्त होना चाहिए, लेकिन यह साधन की अंतिम अवस्था है। कोई कभी पहुंचता है। और जो पहुंच जाता है वह मंदिरों में पूजा करने नहीं जाता। उसको क्या जरूरत है जाने की! लेकिन जो नहीं पहुंचे हैं, वे सोचते हैं कि मंदिर में मूर्ति की कोई जरूरत नहीं, वे सदा भटकते रहेंगे। वे कभी नहीं पहुंचेंगे। तो इस्लाम ठीक कहता है और इस्लाम गलत कहता है। और हिंदू भी ठीक कहते हैं और हिंदू भी गलत कहते हैं। हिंदू ठीक कहते हैं कि मूर्ति की जरूरत है, मूर्ति के सहारे बिना नहीं हो सकेगा। लेकिन गलती फिर होती है जब मूर्ति छूटती ही नहीं। मूर्ति इतनी मूल्यवान हो जाती है कि छोड़ी ही नहीं जाती। पकड़ जाती है। घबड़ाहट लगती है—मूर्ति को कैसे छोड़ दें?

मूर्ति में स्थापित करो भाव को, लेकिन एक दिन भाव को मुक्त भी कर लेना। भजन में डूबो, लेकिन एक दिन भजन को भी जाने देना। क्योंकि है तो भजन भी शोरगुल। तुम्हें बुरा लगे, भला लगे, मगर है तो भजन भी शोरगुल! है तो भजन भी बाजार। अंतिम अवस्था तो निर्विचार की है। वहां कहां भजन, कहां कीर्तन! वहां तो सब शांत हो जाता है, वहां तो तरंगें ही लीन हो जाती हैं।

शांडिल्य बहुत वैज्ञानिक हैं। वे कहते हैं, ध्यान रखना, इन सबका लाभ है। श्रवण का लाभ है, मनन का लाभ है, अध्ययन का लाभ है; निदिध्यासन, सत्संग का लाभ है; भजन, कीर्तन, नर्तन का लाभ है, सब का लाभ है, लेकिन परम लाभ इनमें नहीं है। इनका उपयोग सीढ़ियों की भांति कर लेना। 'यह सब कार्य पराभक्ति में पहुंचने के हेतु रूप हैं।' और यह भी कहते हैं कि 'सब प्रकार के पुण्यों में श्रेष्ठ हैं।' तुमने किसी को दान दिया, तुमने मंदिर बनवाया, तुमने एक धर्मशाला खुलवा दी; ग्रीष्म के दिन आए और तुमने पानी पिलाने की मुफ्त व्यवस्था करवा दी; सब ठीक है, लेकिन कीर्तन के बराबर इसका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि तुम जो भी करोगे, उसमें कहीं न कहीं तुम्हारा अहंकार परिपुष्ट होगा। मैंने धर्मशाला बनवा दी! मैंने मंदिर बनवा दिया! मैंने इतने लोगों को भोजन करवा दिया! कही सूक्ष्म में 'मैं' मजबूत होगा।

तुम देखते नहीं, अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम्हारा पापी तो विनम्र होता है, तुम्हारा पुण्यात्मा बहुत अहंकारी होता है। अब जिसने मंदिर बनवाया, वह अकड़कर न चले तो कौन चले? जिसने दान दिया वह अकड़कर न चले तो कौन चले? उसकी अकड़ में तर्क मालूम पड़ता है, कारण मालूम पड़ता है, उससे तुम कह भी नहीं सकते की अकड़कर क्यों चल रहे हो? पापी तो विनम्र हो जाता है और पुण्यात्मा अहंकारी हो जाता है। और वहीं चूक हो गयी।

इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि पापी तो कभी-कभी परमात्मा तक पहुंच जाता है, पुण्यात्मा नहीं पहुंच पाता। क्योंकि पापी की विनम्रता ही द्वार बन जाती है। वह कहता है, मैं नाचीज, मैं ना कुछ; सिवाय बुरे के मुझसे कभी कुछ अच्छा नहीं हुआ। चोरी हुई मुझसे, हत्या हुई मुझसे, बेईमानी हुई मुझसे। मुझसे अंधेरा ही अंधेरा फैला है। तो उसका अहंकार खड़ा कैसे हो? उसके अहंकार के खड़े होने के लिए जगह नहीं है। उसको कारण ही नहीं मिलता कि मैं घोषणा कर सकूं कि मैं कुछ खास हूं। वह तो जानता है कि मैं तो दलित से भी दलित, पापी से भी पापी! मुझे तो होना ही नहीं चाहिए। वह तो झुका हुआ है।

लेकिन पुण्यात्मा? वह फेहरिस्त तैयार रखता है। अगर उसको परमात्मा भी मिल जाए कहीं भूल-चूक से—परमात्मा मिलता नहीं पुण्यात्मा को, डरता है परमात्मा पुण्यात्मा से, क्योंकि वह अपनी पूरी बही खोल देगा, वह कहेगा—इतना किया, इतना किया, इतना किया, इस सबका फल कहां है! हमने तो सुना था कि देर है अंधेर नहीं, लेकिन अंधेर हो रहा है। फल कहां है? मुझे फल चाहिए। पापी तो गिर पड़ेगा, वह कहेगा—क्षमा चाहिए मुझे। पुण्यात्मा कहेगा—फल चाहिए मुझे।

फर्क समझ लेना।

पापी को परमात्मा मिल जाए तो वह गिर पड़ेगा पैर में और वह कहेगा—मुझे क्षमा कर दो, मुझे माफ करो, मैंने बुरा ही बुरा किया है, मैं सिर भी उठाऊं तुम्हारे सामने इस योग्य नहीं, मैं आंख भी उठाकर तुम्हें देखूं, इस योग्य नहीं हूं। सिर्फ पापों की गठरी है मेरे ऊपर। मेरा तो एक ही भरोसा है कि तुम करुणावान हो। और कोई भरोसा नहीं है। मुझमें भरोसा नहीं है भीतर, तुम में भरोसा है, तुम्हारी करुणा अपार है। तुम चाहोगे तो मुझ पापी को भी उबार लोगे। मगर तुम चाहोगे तो ही उबार सकोगे। अपने से तो मैं डूबने ही वाला हूं। अपने से तो मैं डूब ही गया हूं। मेरे किये कुछ होनेवाला नहीं है। और इसी में उबरना है। यही विनम्रता परमात्मा से जोड़ देती है।

पुण्यात्मा सोचता है, मेरा अपना किया हुआ है। अपनी बनायी सीढ़ियां हैं। इन्हीं से चढ़-चढ़ कर पहुंच जाऊंगा मोक्ष तक। यही अहंकार उसे नर्क ले जाता है।

इसलिए शांडिल्य कहते हैं कि ये भजन, कीर्तन, नर्तन, सत्संग सभी पुण्यों से श्रेष्ठ हैं। क्यों? क्योंकि भजन की मौलिक शर्त यही है कि तुम करनेवाले नहीं होने चाहिए। भजन हो, किया न जाए, यह उसकी मौलिक शर्त है। तुम डोलो, मगर अपने को डुलाना मत। डुलाया कि चूक गये। डुलाया कि तुमने कृत्रिम कर लिया, अभिनय कर लिया। फिर तुम अभिनेता हो। तुम अच्छी तरह से डोल सकते हो, अच्छी तरह से आंसू भी बहा सकते हो मगर वह सब अभिनय है। भजन की मौलिक शर्त है—होने देना, भाव से उमगने देना, तुम्हारे भीतर से बहने देना। कर्ता मत बनना उसके। सहज हो, स्वाभाविक हो, स्वस्फूर्त हो, तो भजन।

पुण्य करना पड़ता है। अगर भजन भी करना पड़े, और ऐसा हो जाता है, तो फिर चूक हो गयी। वह भजन ही नहीं है। तुमने देखा, कभी तुम मंदिर गये, अगर कोई देखनेवाला नहीं तो तुम पूजा-पत्री जल्दी से कर लेते हो। कोई देखने ही वाला नहीं तो सार भी क्या! दो-दो सीढ़ियां एक साथ चढ़ जाते हो। कुछ लकीरें यहां-वहां छोड़ कर जल्दी आगा-पीछा किया, देख रहे हो कोई देखनेवाला ही नहीं तो फायदा भी क्या! लेकिन अगर सारा गांव इकट्ठा हो।

मैं छोटा था तो अपने गांव के मंदिर जाता था। वहां मैं यही देखने जाता था कि वहां किस-किस ढंग की प्रार्थना होती है। जब कभी मंदिर में कोई उत्सव होता और भीड़ होती तो मैं उन्हीं लोगों को प्रार्थना करते देखता जिनको मैंने अकेले में भी प्रार्थना करते देखा है—लेकिन वे देखते कि एक छोकरा बैठा है, इससे क्या लेना-देना! मैं बैठा रहता। और वे देखते कि यह तो अक्सर बैठा रहता है आकर, इसका क्या लेना-देना!—लेकिन जब भीड़ होती, उत्सव होता गांव में, मंदिर में सारे लोग इकट्ठे होते, तब उनका भाव देखते बनता था! तब मैं सोचता कि बात क्या है? उत्सव के दिन भगवान होता है, जब उत्सव नहीं होता, गांव के लोग इकट्ठे नहीं होते, तब भगवान नहीं होता। तब उनकी आंखों से आंसू गिरते। वे हाथ में थालियां लेकर पूजा की और नाचते और ऐसे मस्त हो

जाते जैसे सब भूल गये संसार! और इनको ही मैंने उस समय भी प्रार्थना करते देखा है जब कोई नहीं होता, मैं ही अकेला वहां बैठा होता। तो ये जल्दी से, देर न लगती इनको, जल्दी से निपटा कर वे गये! और जब भीड़-भाड़ होती तब घंटों लग जाते—गिर-गिर पड़ते! समाधि अवस्था लग जाती।

मुझे छोटे से ही जिज्ञासा रही थी। तो जब भी किसी की समाधि लगती थी तो मैं सुई इत्यादि लेकर वहां मौजूद—जांच के लिए। एक सज्जन को मेरे गांव में अक्सर समाधि लग जाती थी। वे मुझे देखते ही से डरते थे। वे कहते थे, तुम सुई वगैरह मत लाना। क्योंकि जब मैं समाधि में होता हूं, तुम सुई चुभाते हो। और भीड़ में कौन देखता है! भीड़ लगी रहती, मैं उनको सुई चुभाता। मैं देखता कि अब वे हिलने-डुलने लगते हैं, सुई से परेशान होने लगते हैं। वह समाधि वगैरह सब दिखावा था। मुसलमानों के वली उठते, मैं उनके पीछे सुई लेकर चला जाता। मुझसे गांव में लोग डरने लगे—वली, समाधि इत्यादि करने वाले लोग! तुम चकित होओगे, मुझे एक वली मिठाई देते थे। जब उनका वली उठता, उसके एक दिन पहले वह मुझे मिठाई दे जाते कि भैया, तू सुई मत चुभाना। क्योंकि बड़ा दर्द होता है।

लोग देखते हैं—देखनेवाले आए हैं या नहीं? यह सब अभिनय है। यह न तो भजन है, न यह कीर्तन है, न यह समाधि है। इस सब उपद्रव में मत पड़ना। यहां कर्ता आ गया। यहां अहंकार प्रविष्ट हो गया। और जहां अहंकार है, वहां परमात्मा नहीं।

सहज भाव से होने देना। सरलता से होने देना। इसमें कोई प्रयोजन न हो। यह तुम्हारा सहज आनंद हो। फिर अकेले में भी हो, कि भीड़ में हो, कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। कोई देखनेवाला हो कि कोई देखनेवाला न हो, कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। देखनेवाले के लिए थोड़े ही तुम प्रार्थना कर रहे हो। वह जो सदा देख रहा है उसके लिए प्रार्थना कर रहे हो। उस पर ही नजर रखो। और किसी पर नजर नहीं होना चाहिए।

मैंने सुना है, इंग्लैंड की महारानी एक बार लंदन के एक बड़े चर्च में गयी। बड़ी भीड़ थी। रानी बहुत चकित हुई। उसने पादरी को पूछा कि मैं तो सोचती थी लोगों का धर्म में विश्वास उठा जा रहा है, यहां इतनी भीड़ देखकर मुझे संदेह होता है उस बात पर। इतने लोग, इतने भाव से चर्च में आए हुए हैं! उस पादरी ने कहा, आप कभी बिना खबर किए आएं। यहां कोई नहीं आता है। ये सब आप के लिए आए हैं, ये परमात्मा के लिये नहीं आए हैं। आपके आने के पहले हम परेशान हो गये हैं, दो दिन से फोन ही फोन आ रहे हैं, कि रानी निश्चित आ रही हैं? और मैं फोन पर लोगों को समझा रहा हूं कि रानी को तो पक्का नहीं, लेकिन परमात्मा निश्चित रहेंगे। मगर परमात्मा में किसी की उत्सुकता ही नहीं है, वे कहते हैं, परमात्मा ठीक, हम पूछते हैं कि रानी आ रही हैं कि नहीं?

परमात्मा से किसको लेना-देना है? लेकिन रानी अगर आ रही हो तो लोग वहां मौजूद होना चाहते हैं। पहली पंक्ति में होना चाहते हैं। रानी को देखकर एकदम समाधि लगने लगेगी उन्हें! और तुम समझोगे कि भगवान के लिए बड़ा भाव पैदा हो रहा है। सावधान रहना! दूसरों से ही नहीं, अपने से भी सावधान रहना! अपने भीतर परख करते रहना।

सबसे श्रेष्ठ बात तो वही है, सबसे बड़ा पुण्य तो वही है, जब तुम्हारा अहंकार गलता है, और उस गलित अहंकार में से असहाय अवस्था की आह उठनी शुरू होती है। वही आह भजन है। आंसू टपकने शुरू होते हैं। नहीं कि तुम उन्हें गिराते हो। तुम संभालना भी चाहो तो नहीं संभाल पाते हो।

हम क्या करें न तेरी अगर आरजू करें,
दुनिया में और कोई भी, तेरे सिवा है क्या?

भक्त करे क्या? भजन करना नहीं होता, भजन होता है।

हम क्या करें न तेरी अगर आरजू करें
दुनिया में और कोई भी, तेरे सिवा है क्या?

भक्त असहाय होता है। कृत्य की तरह प्रार्थना नहीं निकलती। उसकी असहाय अवस्था की आह है। भक्त भगवान से बातें करता है, वही भजन है। भक्त बिलकुल पागल है, वही पागलपन भजन है।

आप ही कहिये कि फिर आप पै क्या गुजरेगी,

जुल्म ऐसा ही अगर आप पै ढाया जाए?

भगवान भक्त से बातें करता है—

आप ही कहिये कि फिर आप पै क्या गुजरेगी,

जुल्म ऐसा ही अगर आप पै ढाया जाए?

जैसा तुम मुझे छोड़ दिये हो अंधेरे में, जैसा तुम मुझे छोड़ दिये हो इस अंधेरी गर्त में, ऐसा ही तुम्हारे साथ किया जाए तो आप पर क्या गुजरेगी? यह बातें, यह गुफ्तगू, यह वार्तालाप, पागल ही कर सकता है। होशवाला आदमी तो कहेगा, किससे मैं बातें कर रहा हूं? कोई दिखायी तो पड़ता नहीं! इससे तो जाकर अपना दुकान ही चलाओ, उसमें कुछ लाभ है। यहां बैठा किसके लिए रो रहा हूं! यह मैं जो पुकारता हूं, यह सब सूने आकाश में खो जाएगा। भक्त के लिए अस्तित्व सूना नहीं है। यहां सब तरफ जीवंत कुछ छिपा है, जो शायद चमड़े की आंखों से दिखायी न भी पड़े, शायद बाहर के हाथों से स्पर्श जिसका हो भी न सके। लेकिन जब भाव खुलता है, तो तत्क्षण संबंध जुड़ जाता है।

मालूम थीं मुझे तेरी मजबूरियां मगर

तेरे बगैर नींद न आयी तमाम रात

उम्मीद तो बंध जाती, तस्कीन तो हो जाती

वादा न वफा करते, वादा तो किया होता

ऐसी बातें करता है। बाहर से कोई देखेगा भक्त को तो निश्चित समझेगा कि विक्षिप्त हो गया है। बाहर से देखने का कोई उपाय ही नहीं है। भक्त को तो भीतर से ही जाना जा सकता है। कुछ बातें हैं जो भीतर से ही जानी जा सकती हैं। बाहर से जानी कि गलत ही जानोगे। प्रेमी भी इसीलिए पागल मालूम पड़ता है। अब तुम अगर मजनू को देखोगे लैला से बातें करते, तो पागल ही समझोगे। तुमने भी कभी किसी से प्रेम किया है, याद भी करोगे लौटकर अब तो तुम खुद अपने को पागल समझोगे। तुम कहोगे, वह जवानी थी, वह पागलपन के दिन थे। बूढ़े होकर सभी लोग होशियार हो जाते हैं। बूढ़े होकर सोचने लगते हैं—वह जवानी थी, वह पागलपन था। वह न तो पागलपन था, न जवानी थी। वह तुम्हारे भाव में अभी जीवंतता थी, उसका परिणाम था।

रामानुज के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मुझे परमात्मा से मिला दो। रामानुज ने कहा, परमात्मा की बात पीछे करेंगे, मैं तुझसे यह पूछता हूं—तूने कभी किसी से मुहब्बत की? कभी किसी से प्रेम किया? उस आदमी ने कहा, मैं इस झंझट में कभी पड़ा ही नहीं; मुझे तो परमात्मा से मिलना है। रामानुज ने कहा, फिर-फिर कहा कि तू मुझे बता, सोचकर बता—कभी किसी से, मित्र से, मां से, भाई से, पिता से, पत्नी से, किसी स्त्री से, किसी से तो प्रेम किया होगा? उस आदमी ने कहा कि नहीं, मैं इस सांसारिक झंझट में पड़ा ही नहीं। तो रामानुज ने कहा कि मैं असहाय हूं। क्योंकि अगर तूने प्रेम जाना ही नहीं, तो भक्ति तू कैसे जानेगा? क्योंकि भक्त तो प्रेम का ही विस्तार है। वह उसकी पराकाष्ठा है।

प्रेमी तो छोटा-मोटा पागल है। कम से कम जिससे वह बातें कर रहा है वह मौजूद तो है! भक्त बिलकुल पागल है! इसलिए केवल जो पागल होने का साहस रखते हैं, वे ही केवल भक्ति में प्रवेश कर सकते हैं। दीवानों का काम है, मस्तों का काम है! समझदारी से दुनिया मिलती है, समझदारी से परमात्मा नहीं मिलता। मैं तुम्हें याद रखने को कहना चाहता हूं—समझदारी से दुनिया मिलती है, नासमझी से परमात्मा मिलता है। जितने दानव हो जाओगे उतनी दुनिया पा लोगे, लेकिन जितने नादान हो जाओगे, उतने परमात्मा को पा लोगे। जितने निर्दोष हो जाओगे, जितने सरल चित, छोटे बच्चे की भांति हो जाओगे।

सबसे बड़ा पुण्य कहा शांडिल्य ने—भजन, कीर्तन, नर्तन। लेकिन ध्यान रखना, यह सब गौण हैं। यह सब यात्रा के उपाय हैं। मंजिल पर पहुंचकर यह सब चले जाने चाहिए। इनको पकड़ मत लेना। इनका अभ्यास मत कर लेना। इनसे गुजर जाना, इनमें अटक मत जाना।

'गौण तैविध्यम् इतरेण सतुत्यर्थत्वात् साहचर्यम्।।

'गौणी-भक्ति तीन प्रकार की होती है। आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी।' उनके साथ ज्ञानी-भक्ति का नाम मर्यादा बढ़ाने के अर्थ में ही आया है। इस सूत्र में कृष्ण के वक्तव्य का उल्लेख है। कृष्ण ने भगवदगीता में कहा है: भक्ति चार प्रकार की होती है। शांडिल्य अपना भेद जाहिर करते हैं। और भेद मूल्यवान है। कृष्ण ने कहा है: भक्ति चार प्रकार की होती है। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। शांडिल्य कहते हैं तीन तो गौण हैं, तीन साधनरूप हैं, चौथी साध्य है। इन चारों को साथ नहीं गिनाना चाहिए। भक्ति तो गौण तीन ही हैं—आर्त, जिसासु अर्थार्थी। और जो ज्ञानी-भक्ति है, वह तो उपलब्धि है, वह तो सारतत्व है, वह तो साध्य है।

फिर कृष्ण ने इनकी गणना इस तरह क्यों की होगी? तो शांडिल्य कहते हैं, गौणी-भक्ति तीन ही प्रकार की होती है—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, लेकिन उनके साथ ज्ञानी-भक्ति का नाम सिर्फ मर्यादा बढ़ाने के अर्थ में कृष्ण ने उपयोग किया है, ताकि उनको मर्यादा मिले। साथ जोड़ दिया है अंत में, ताकि खयाल रहे। इन तीन से जाना है, चौथे पर पहुंचना है।

लेकिन चौथी बात ही अलग है! जहां तीन का अंत हो जाता है, वहां चौथी का प्रारंभ है।

अब यह बड़े मजे की बात है, इसे समझना।

हमारे पास एक शब्द है—वेदांत। वेदांत बड़ा अनूठा शब्द है। इसके दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ तो होता है, वेद का अंतिम शिखर, वेद की अंतिम मंजिल। जहां वेद अपनी पूर्णता को पाते हैं—वेदांत। और एक अर्थ होता है, जहां वेद समाप्त हो गये, जहां वेद का अंत हो गया। जहां वेद अब व्यर्थ हो गये।

वेदांत के दो अर्थ हुए। एक, जहां वेद पूर्ण हो गये और एक, जहां वेद व्यर्थ हो गये। और दोनों ही अर्थ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां वेद व्यर्थ हो जाते हैं वहीं पूर्ण होते हैं। पूर्णता और व्यर्थता एक ही साथ घटती है। ये जो तीन साधन हैं, ये जब पूर्ण हो जाएंगे, तो वह वही घड़ी होगी जहां ये व्यर्थ हो जाएंगे। इनको अब कोई उपयोग न रहा। इनका काम पूरा हो गया। ये जो चाहते थे, वह घटना घट गयी। अब इनको विदा हो जाना है।

इन तीनों भक्तियों का अर्थ तुम ठीक से खयाल में ले लेना।

आर्त का अर्थ होता है, आंसुओं से भरी भक्ति, रुदन करती हुई भक्ति। जीवन के दुख से आर्त-भक्ति का जन्म होता है। जीवन दुख से भरा है। दुख ही दुख है यहां। बुद्ध ने कहा है, जन्म दुख है, जवानी दुख है, बुढ़ापा दुख है, मृत्यु दुख है—सब दुख ही दुख है। यहां अगर कोई गौर से देखेगा, तो सुख तो सिर्फ आशा है, मिलता कभी नहीं। जो मिलता है वह दुख है। जो मिलने की आकांक्षा रहती है, वह सुख है। मगर आकांक्षा कभी पूरी नहीं होती। तुमने खयाल किया? जरा पीछे लौटकर देखो, तुम्हें कभी सुख मिला? और ईमानदारी से देखना। किसी को धोखा देने का उपाय नहीं है। किसको धोखा देना है? कभी अपने पीछे लौटकर बैठकर देखना कि चालीस साल जी लिए, कि पचास साल जी लिए, सुख मिला? मन तत्क्षण कहेगा—अभी तो नहीं मिला, लेकिन आगे मिलेगा। चले चलो! जूझे रहो!

बर्नार्ड शॉ को एक मित्र ने अपना एक नाटक दिखाने के लिए निमंत्रण किया। नाटक दो ही दृश्य हुए थे और बर्नार्ड शॉ उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा, मैं चला भाई, नमस्कार! उस मित्र ने कहा—अभी चले, अभी नाटक पूरा नहीं हुआ। बर्नार्ड शॉ ने कहा कि दो दृश्य देखकर समझ गया। जिसने दो लिखे हैं उसीने तो आगे के भी लिखे होंगे न! बात खतम हो गयी! इन दो से काफी स्वाद आ गया।

इस बात का नाम ही मेधा है।

पचास साल हो गये, सुख नहीं मिला, लेकिन जिसने पचास साल जीया है। वही तो आगे भी जीयेगा न! और जिस ढंग से पचास साल जिए हैं उसी ढंग से तुम आगे जिओगे। वही जो तुमने पचास साल में किया, आगे भी दोहराओगे—करोगे क्या और! वही क्रोध, वही प्रेम, वही लोभ, वही मोह, वही घर, वही दुकान, वही हार, वही जीत, वही सफलता-असफलता, यश-अपयश, वही तो करोगे न! कोल्हू के बैल की तरह वहीं तो चलोगे। वही वर्तुल में घूमते रहोगे। पचास साल घूम कर तुम्हें यह खयाल नहीं आया। कि सुख केवल एक भ्रांति है। मिलता कभी नहीं, बस मिलने का आश्वासन रहता है। जैसे क्षितिज है, दूर आकाश जमीन को छूता हुआ मालूम पड़ता है, छूता कहीं नहीं है। लगता है कि अगर दौडूं तो घंटे-दो-घंटे में पहुंच जाऊंगा, जहां छू रहा है आकाश पृथ्वी को, लेकिन तुम कभी पहुंचोगे नहीं। जितना तुम क्षितिज के करीब पहुंचोगे, क्षितिज पीछे हटता जाएगा। तुम्हारे और क्षितिज के बीच दूरी सदा उतनी ही रहेगी। उसमें कभी कमी नहीं होती। इंच भर कमी नहीं होती। मनुष्य और सुख के बीच दूरी सदा उतनी ही रहती है। जन्म के वक्त जितनी थी मृत्यु के वक्त उतनी ही रहती है। सुख कभी मिलता नहीं।

जिसे जीवन का यह दुख दिखायी पड़ जाता है, वह क्या करे अब! रोए न तो और क्या करे! उसके भीतर आर्त-भक्ति पैदा होती है। जीवन के दुख-अनुभव से आंसुओं का जन्म होता है, रुदन पैदा होता है। असहाय अवस्था मुखर होती है। तो भक्ति का एक रूप है—आर्त। कुछ लोग इस तरह से जाएंगे।

बहार बन के तू आजा कि जा चुकी है बहार
गुलों को ओस से नहलाके जा चुकी है बहार
मुझे तो खून के आंसू रुला चुकी है बहार
मेरी तो दुनिया मिटाकर ही जा चुकी है बहार
फकत मुझे यही नग्मः लिखा चुकी है बहार
बहार बन के तू आजा कि जा चुकी है बहार
इन अंदलीबों के नग्मों की लोरियों की कसम
नसीमे-सुबह की उन मीठी थपकियों की कसम
वोह तेरी याद की दिल दोज हिचकियों की कसम
तुझे गुलिस्तां की रंगीन तितलियों की कसम
बहार बनके तू आजा कि जा चुकी है बहार

इन पंक्तियों को लिखा तो है किसीने सांसारिक प्रेम के लिए, लेकिन भक्त की भी यही प्रार्थना है कि मैंने देख ली यह बहार! यह बहार सिर्फ बहार का धोखा है—मैंने देख लिया यह सब, दूर से लुभावना है—दूर के ढोल सुहावने। मैंने देख लिये सब रंग-ढंग, मृगमरीचिका है। इंद्रधनुष कैसा प्यारा लगता है। आकाश में खिंचा हुआ! वहां है कुछ भी नहीं। हवा में लटके हुए जलकणों पर सूरज की किरणों की माया का जादू—और कुछ भी नहीं है वहां। तुम पकड़ने जाओगे तो हाथ में कुछ भी न आएगा। लगता बहुत प्यारा है। सतरंगा है, अदभुत है! सारे फूलों को रंग हैं लेकिन हाथ में तो कुछ भी न आएगा, मुट्ठी खाली रह जाएगी। ऐसा है जगत, इंद्रधनुष जैसा! 'पानी केरा बुदबुदा'। और कब टूटा जाएगा बुदबुदा, कुछ पता नहीं। अभी है, अभी मिट जाए; कोई भरोसा भी नहीं।

बहार बन के तू आजा कि जा चुकी है बहार

इस जगत की बहार तो जा चुकी, देख लिया। अब तू आ जाए तो ही बाहर आए।

गुलों को ओस से नहला के जा चुकी है बहार
मुझे तो खून के आंसू रुला चुकी है बहार

जरा गौर से देखना, सब की आंखें खून के आंसुओं से भरी हैं। शायद इसीलिए हम कभी शांत बैठकर अपने जीवन पर विचार भी नहीं करते हैं। विचार से घबड़ाहट लगती है। छाती धड़कने लगती है। क्योंकि लगता है—सब असार है! पैर के नीचे जमीन ही नहीं है, जिए चले जा रहे हैं। जीने का कोई सहारा नहीं, कोई कारण नहीं।

मेरी तो दुनिया मिटाकर ही जा चुकी है बहार
फकत मुझे यही नग्मः लिखा चुकी है बहार
तुम्हारी जिंदगी का सारा सार-निचोड़ इतना है—
फकत मुझे यही नग्मः लिखा चुकी है बहार
बहार बना के तू आजा कि जा चुकी है बहार

आर्त-भक्ति पैदा होती है कि परमात्मा, तू आए तो ही कुछ हो। जिंदगी तेरे बिना सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं है। सुख होगा तो तुझमें। तेरे बिना दुख है। तेरी मौजूदगी सुख होगी। तेरी गैर-मौजूदगी दुख है। मैं अपने से जीकर देख लिया, अकेले-अकेले जीकर देख लिया, अब तू मेरे भीतर आजा। तो यह तो आर्त भक्ति का पहला रूप है।

बीन, आ छेड़ूं तुझे, मन में उदासी छा रही है।
लग रहा जैसे कि मुझ से
आज सब संसार रूठा,
लग रहा जैसे कि सब की
प्रीत झूठी, प्यार झूठा,
और मुझ-सा दीन, मुझ-सा
हीन कोई भी नहीं है,
बीन, आ छेड़ूं तुझे, मन में उदासी छा रही है।

आर्त-भक्ति जीवन की सारी उदासी का अनुभव है, निचोड़ है। इसलिए आंसू, इसलिए रुदन। आर्त-भक्त अपने भजन में रोता है। और जल्दी ही रोने में रूपांतरण हो जाता है। अगर कोई हृदयपूर्वक रोएगा, आंसू आंखों को शुद्ध कर जाते हैं। और आंखों में एक नयी चमक आ जाती है। और ठीक से अगर कोई रो लिया है जीवन के दुख को देखकर, तो सुख की पहली खबर, पहली किरण उतरने लगती है।

था तुझे छूना कि तूने
भर दिया झंकार से घर
और तेरी सांस को भी
सात स्वर के लग चले पर
आ अवनि छू लूं, गगन छू लूं
कि सातों स्वर्ग छू लूं,
सब मुझे आसान मेरे साथ जो तू जो गा रही है।
बीन आ छेड़ूं तुझे, मन में उदासी छा रही है।

तुम्हें भक्तों के हाथ में जो इकतारा दिखायी पड़ा है, अकारण नहीं। इकतारा बड़ा उदास स्वर पैदा करता है। एक ही तार है उसमें। उसका स्वर उदासी का स्वर है। और इकतारा मनुष्य के एकाकी होने का सबूत है। कि हम अकेले हैं। कि उसके बिना हमारा कोई संगी-साथी नहीं है। यह अनुभव जितना प्रगाढ़ तुम्हारे भीतर हो, उतना ही गौणी-भक्ति का पहला रूप जन्म सकता है—आर्त-भक्ति

खयाल रखना, सभी के लिए जरूरी नहीं कि वे आर्त-भक्त हों। दुनिया में तीन तरह के लोग हैं, इसलिए शांडिल्य ने तीन तरह की भक्ति कही है। दुनिया के लोगों को अनेक-अनेक ढंगों से बांटा जा सकता है। पांच कोटियों में बांटा जा सकता है, सात कोटियों में बांटा जा सकता है। और अनेक ढंगों से बांटा जा सकता है। खयाल रखना, इससे तुम दुविधा में मत पड़ना। कल ही मैंने तुमसे कहा था कि दुनिया में पांच तरह के लोग हैं, इसलिए पांच तरह के ध्यान हमने यहां व्यवस्थित किये हैं। अब तुम सोचोगे कि आज मैं कहता हूं—शांडिल्य कहते हैं दुनिया में तीन तरह के लोग हैं! यह विभाजन बहुत तरह से हो सकता है।

ऐसा ही समझो, कोई आदमी यहां आए और खड़े होकर तुमको देखे। वह कह सकता है, यहां दो तरह के लोग हैं, कुछ स्त्रियां हैं, कुछ पुरुष हैं। वह यह भी कह सकता है कि यहां दो तरह के लोग हैं; कुछ गैरिक वस्त्रों में हैं, कुछ गैरिक वस्त्रों में नहीं है। वह और तरह के विभाजन भी कर सकता है। वह कह सकता है, यहां तीन तरह के लोग हैं, कुछ बूढ़े हैं, कुछ जवान हैं, कुछ बच्चे हैं। यह विभाजन बहुत तरह से हो सकता है। वह कह सकता है, यहां कुछ जर्मन हैं, कुछ जापानी हैं, कुछ हिंदुस्तानी, कुछ चीनी। यह विभाजन बहुत तरह से हो सकता है। इसलिए दुनिया में बहुत तरह के विभाजन किये गये हैं, सब उपयोगी हैं और उनमें कोई विवाद नहीं है। हम बहुत तरह से बांट सकते हैं।

शांडिल्य ने तीन तरह से बांटा। एक, जिनके जीवन में दुख का अनुभव बहुत प्रगाढ़ हो सकता है। जिनको दुख का साक्षात्कार हो सकता है। दूसरा, शांडिल्य कहते हैं—जिज्ञासु-भक्ति। सत्य की जिज्ञासा से। पहला व्यक्ति दुख की जिज्ञासा से चलता है, दूसरे तरह का व्यक्ति, जीवन में उसे सत्य क्या है यह दिखायी नहीं पड़ता, जीवन में सब असत्य दिखायी पड़ता है। भ्रम दिखायी पड़ता है, माया दिखायी पड़ती है, ऊपर-ऊपर से कुछ, भीतर-भीतर कुछ और है ऐसा उसे मालूम होता है। भीतर क्या है? सचाई क्या है! असलियत क्या है! हकीकत क्या है? यथार्थ क्या है? यह उसकी जिज्ञासा है। उसे दुख उतना नहीं परेशान कर रहा है। उसकी परेशानी यह है कि जीवन का सत्य क्या है? मैं जीवन के सत्य के कैसे पा लूं? क्योंकि सत्य को पा लूं, तो शाश्वत को पा लूं। सत्य मिल जाए, तो सनातन मिल जाए। वह कहता है, दुख भी अगर हो रहा है तो इसीलिए हो रहा है हमने क्षणभंगुर को पकड़ा है। अगर शाश्वत मिल जाए तो दुख अपने-आप खो जाएगा। यह एक दूसरे-तरह की जिज्ञासा है। यह एक दूसरे तरह की यात्रा है। जिसके जीवन में ऐसा प्रश्न प्रगाढ़ होकर उठता हो...मेरे पास लोग आते हैं, कोई पूछता है कि मैं कौन हूं, यह जानना चाहता हूं। बहुत लोग हैं जो यह नहीं पूछते कि मैं कौन हूं यह जाना चाहता हूं, बहुत लोग पूछते हैं कि बड़ा दुख है, क्रोध है, उदासी है, इससे कैसे छुटकारा हो! चिंता है, बेचैनी है, परेशानी है, संताप है, इससे कैसे मुक्ति हो! उन्हें कोई सवाल नहीं है कि मैं कौन हूं। अगर उनसे कहो कि पहले यह सोचो कि मैं कौन हूं, तो वे कहते हैं, इससे क्या होगा? इससे सार क्या है। और ध्यान रखना, जो आदमी पूछ रहा है कि चिंता है, बेचैनी है, परेशानी है, अगर उसकी सारी चिंता, बेचैनी, परेशानी छूट जाए, तो वह जान लेगा कि वह कौन है। और जो आदमी कह रहा है—मैं कौन हूं, अगर वह यह जान ले, तो उसकी सारी चिंता, परेशानी मिट जाएगी। अंतिम परिणाम एक है। लेकिन यात्रापथ अलग-अलग है।

'मैं कहां जाऊं?'...यह आवाज किधर से आई?
जैसे सागर कोई खून के कोई शीशा टूटे
जैसे शर्मीले मुगन्नी का इरादा टूटे
जैसे सहराओं की तनहाई में नै की आवाज
जैसे लहरों पे हवाओं की थिरकता हुआ साज
'मैं कहां जाऊं?'...यह आवाज किधर से आई?
मैं हूं मगमूम कि यह साज भी मगमूम-से हैं
यह मेरे अश्क हकीकत हैं, कि मौहूम-से हैं

जैसे तन्हाई में इक साज बजाता हो कोई
जैसे खामोश सितारों को रुलाता हो कोई
'मैं कहां जाऊं?'..यह आवाज कहां से आई?
कौन गुमनाम खलाओं में बुलाता है मुझे?
कौन मानूस-सा इक राग सुनाता है मुझे?
जैसे गुजरे हुए लम्हों को पुकारे कोई
जैसे डूबी हुई किश्ती को उभारे कोई
और यह आवाज...यह आवाज किधर से आई?

एक जिज्ञासा, मैं कौन हूं? यह जगत क्या है? इस जगत को बनानेवाला कौन है? हम कहां से आते हैं? हम क्यों आते हैं? हम क्यों हैं? हम कहां जाते हैं? ऐसी जिज्ञासा जिसके मन में हो, उसके लिए जिज्ञासु-भक्ति।

जिज्ञासु-भक्ति में क्या करना होगा?

आर्त तो रोएगा, चीखेगा, पुकारेगा, उसकी भक्ति आह से भरी होगी। जिज्ञासु सत्संग करेगा, श्रद्धा करेगा, ध्यान करेगा, गुरु के पास बैठेगा। जिसको मिल गया होगा उसकी तलाश करेगा। आर्त बिना गुरु के भी चल सकता है लेकिन जिज्ञासु बिना गुरु के नहीं चल सकता। किससे पूछें? जो जिसको जाना गया हो, जिसने जाना हो, उससे ही पूछा जा सकता है। जिसने अनुभव किया हो, उसीसे पूछा जा सकता है, आर्त बिना गुरु के भी चल सकता है। उसको अगर गुरु की जरूरत भी पड़ेगी तो अंत में पड़ेगी। जब भजन छुड़ाने का सवाल आएगा। लेकिन जिज्ञासु को जरूरत शुरू में ही पड़ जाती है। उसके लिए सत्संग के बिना कोई सहारा नहीं है।

जिज्ञासु सदगुरु को खोजता है। फिर बैठता उसकी छाया में, सुनता उसे, गुनता उसे, उसके साथ धीरे-धीरे अपनी तरंगों को एक करता, उसके साथ लवलीन होता और धीरे-धीरे उसकी चेतना के साथ उसके संबंध जुड़ने शुरू होते। शायद आंसू उसे कभी न आएं, इससे कोई चिंता मत लेना। अक्सर ऐसा हो जाता है कि लोग एक-दूसरे की नकल में पड़ जाते हैं। तुम्हारे पड़ोस में बैठा कोई रो रहा है, तुम सोचते हो कि मैं क्या पत्थर हूं? या तो यह उपाय है कि तुम सोचो—क्या मैं पत्थर हूं? क्या मेरा हृदय पाषाण है?...मेरे पास प्रश्न आते हैं बहुत से, कि हमें क्यों नहीं हो रहे हैं इस तरह के भावों के आविर्भाव! हमारे भीतर आंसू क्यों नहीं फूटते? हम रोते क्यों नहीं हैं? लोग तो रो रहे हैं और हम बैठे हैं! हमारी क्या कठिनाई है!...या तो यह भाव, और या फिर वह सोचता है कि यह आदमी जो रो रहा है, पागल है। मैं ठीक हूं, यह पागल है। यह रोना भी कोई बात है! यह आदमी कमजोर होगा। यह आदमी स्त्रैण है। स्त्रियां रो रही हों तो तुम माफ भी कर देते हो कि चलो ठीक है, स्त्रियां हैं, रोने दो। मगर कोई पुरुष रोता है तो तुम्हें बड़ी बेचैनी होती है। तुम सोचते हो, मामला क्या है? यह आदमी प्रौढ़ नहीं हो पाया, बचकाना रह गया!

नहीं, दोनों की बातें मत सोचना। न तो सोचना कि तुम पत्थर-हृदय हो और न सोचना कि दूसरा पागल है या स्त्रैण है। ध्यान रखना, न तो दूसरे से नकल करना है और न अपने को दूसरे पर आरोपित करना है। हम यही करते रहते हैं। दो ही तरह के उपाय हम करते रहते हैं, या तो दूसरे पर हम अपने को आरोपित करते हैं कि मैं रोता हूं तो तुम भी रोओ। नहीं तो तुम पाषाण-हृदय हो। और या, देखो मैं नहीं रो रहा हूं, तुम मत रोओ! नहीं तो इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि तुम कमजोर-हृदय हो। तुम मजबूत नहीं हो। तुम में बल नहीं है। तुम निर्बल हो। ऐसे कहीं जिंदगी चलेगी? या तो यह, और या फिर यह होता है कि दूसरा रो रहा है तो मैं भी रोऊं। असली आंसू नहीं आ रहे तो चलो, नकली आंसू बहाऊं। लेकिन ऐसा तो न हो, अपनी भद्द तो न करवाऊं, लोग क्या कहेंगे? दूसरे लोग शांत बैठे हैं मूर्ति की तरह, तुम भी बैठ जाते हो मूर्ति की तरह शांत होकर।

आदमी एक दूसरे की नकल करता है, इससे मैं डार्विन से सहमत होता हूं कि वह जरूर बंदर से आता होगा? और मुझे कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता आदमी के बंदर से पैदा होने का, लेकिन एक बात जरूर दिखायी पड़ती है कि आदमी नकलची है।

एक सौदागर टोपियां बेचने एक मेले में गया। जब वह लौटता था मेले से टोपियां बेचकर—कुछ बच गयी थीं टोपियां—एक वृक्ष के, बरगद के नीचे उसने विश्राम किया। दोपहर थी घनी, विश्राम करने लेट गया। जब आंख खुली दो घंटे बाद, तो टोकरी खाली पड़ी थी। सारी टोपियां नदारद! उसने देखा, कहां गयीं टोपियां? ऊपर नजर की, तो बंदर बैठ थे। सब टोपियां लगाये बैठे थे। सब बिलकुल नेताजी बने बैठे थे! गांधीवादी टोपी, गांधी टोपी! और बड़ी मजा ले रहे थे। सारी 'दिल्ली' वहां मौजूद थी। वह आदमी बड़ी मुश्किल में पड़ा अब करना क्या है? और बंदर बड़े जंच रहे थे! उसे एक ही खयाल आया कि बंदर नकलची होते हैं। सिर्फ एक टोपी उसके अपने सिर पर रह गयी थी। उसने वह टोपी फेंक दी निकाल कर। उसका फेंकना था कि सब बंदरों ने टोपी फेंक दी निकालकर। उसने सब टोपियां इकट्ठी कीं, अपनी टोकरी भरी और घर आ गया।

कई सालों बाद फिर यह घटना घटी। उसका बेटा मेला गया। अब बाप बूढ़ा हो गया था। और बेटे को जाना पड़ा। बाप ने कहा कि सुन, एक बात खयाल रखना, एक तो उस बरगद के नीचे विश्राम मत करना। उस बरगद पर बंदर रहते हैं। और अगर कहीं विश्राम करना ही पड़े तुझे, थक जाओ और रुकना पड़े और विश्राम करना पड़े—क्योंकि रास्ते पर वही छाया वाला वृक्ष है—तो एक बात खयाल रखना, अगर बंदर तेरी टोपी चुरा लें, तो ऐसा मेरे अनुभव से हुआ था, अपनी टोपी फेंक देना, वे सब फेंक देंगे। बंदर नकलची होते हैं।

बेटा गया और उसने कहा कि जब अपने पास सूत्र है तो डरना क्या! लौटा बाजार से, बरगद का झाड़ देखकर उसका दिल भी छोड़ने को न हुआ—बड़ी छाया थी, और बड़ी दुपहरी और थका-मांदा! और उसने कहा सूत्र अपने पास है, डरना क्या! लेट गया, सो गया और जो होना था वही हुआ! जब आंख खुली, टोकरी खाली पड़ी थी। लेकिन बेटा घबड़ाया नहीं, उसनने कहा अपने पास सूत्र है। सब बंदर बैठे थे टोपी लगाकर, उसने अपनी टोपी निकाल कर फेंक दी, एक बंदर नीचे उतरा और वह टोपी भी लेकर चला गया।

तब तक बंदर भी सीख चुके थे। शायद ये बंदर वे न होंगे, उनके बेटे होंगे। बंदर मरते वक्त कह गये होंगे—बेटे, खयाल रखना, कभी कोई सौदागर यहां ठहरे और टोपी फेंके, तो भूलकर टोपी मत फेंकना, वह भी उठा लाना।

बंदर ही नकलची होते तो ठीक था, आदमी बड़ा नकलची है। नकल से सावधान! कभी भूलकर किसी दूसरे के आचरण को अपना आचरण मत बनाना, अन्यथा तुम नकली हो जाओगे। और यही हुआ है। लोग जो कर रहे हैं, वही तुम करने लगते हो। भीड़ के साथ चलने लगते हो। अपने जीवन को अपनी समझ से जीओ। अपने जीवन को अपने स्वभाव से जीओ। तो जो जिज्ञासु है, उसकी आंख में आंसू नहीं आएंगे। और जो आर्त है, उसकी आंखों में आंसू आएंगे।

तीसरा रूप है—अर्थार्थी। शास्त्रों में तो अर्थार्थी का अर्थ किया गया है—जो कुछ मांगे, जिसकी कोई वासना हो, कामना हो, कि बेटा मिल जाए, कि बेटी मिल जाए, कि धन मिल जाए, कि नौकरी लग जाए, कि बीमार पत्नी ठीक हो जाए। मैं वैसा अर्थ नहीं करता हूं। वह अर्थ ओछा है। उससे कहीं भक्ति होती है! वह तो भक्ति गौणी भी नहीं है! वह तो भक्ति का धोखा है। जहां मांग है वहां भक्ति कैसी! इसलिए मैं वैसा अर्थ नहीं कर सकता हूं। अर्थार्थी का मैं अर्थ करता हूं जिसे जीवन में अर्थहीनता मालूम होती है, व्यर्थता मालूम होती है।

इन भेदों को समझ लेना।

पहले व्यक्ति को जीवन में दुख मालूम पड़ता है। स्पष्ट उसे अनुभव होता है—दुख है। दूसरे व्यक्ति को सिर्फ प्रश्न उठते हैं। विस्मय मालूम होता है, आश्चर्य मालूम होता है। तीसरे व्यक्ति को जीवन में अर्थहीनता मालूम होती है। दुख मालूम नहीं होता और न प्रश्न उठते हैं विस्मय के, सिर्फ इतना मालूम होता हैं कि यहां कुछ अर्थ

नहीं है। किये जाओ, कुछ सार नहीं है। न यहां के सुख में कुछ सार है, न यहां के दुख में कुछ सार है। सपने जैसा है।

रात तुमने सपना देखा, सपने में तुम साधु हो गये। सुबह उठकर पाया, वही के वही! या सपना देखा, रात तुमने किसी की हत्या कर दी। सुबह देखा कि वही के वही हैं। क्या तुम फर्क करोगे इन दो सपनों में। हत्या करनेवाला सपना और साधु बन जानेवाला सपना क्या एक अच्छा और एक बुरा! सपना सपना है। दोनों व्यर्थ हैं। क्योंकि कुछ घटा नहीं है, सिर्फ घटने की भ्रांति हुई है। यथार्थ वैसा का वैसा है, कुछ घटा नहीं है।

जिस व्यक्ति को ऐसा अनुभव होने लगता है कि यहां कुछ घट नहीं रहा है, चीजें वैसी की वैसी हैं, सिर्फ हम सपने देख रहे हैं, कुछ लोग अच्छे सपने देख रहे हैं, कुछ लोग बुरे सपने देख रहे हैं। कुछ लोग रंगीन सपने देख रहे हैं, कुछ लोग गैर-रंगीन सपने देख रहे हैं...

...तुम्हें पता है, कुछ लोग रंगीन सपने भी देखते हैं? थोड़े ही लोग देखते हैं। अधिक लोग तो ब्लैक-व्हाइट देखते हैं। वे पुराने ढंग के लोग हैं। पुरानी फिल्में जब रंगीन नहीं होती थीं। वे अभी भी वही पुराने सपने देख चले जा रहे हैं! कुछ लोग, सौ में से कुछ दो-तीन प्रतिशत लोग रंगीन सपने देखते हैं। ये जो रंगीन सपने देखते हैं, ये भीतर ही रंगीन सपने नहीं देखते रात में, ये बाहर से भी रंगीन सपने देखते हैं। इन्हीं में से कवि पैदा होते हैं, चित्रकार पैदा होते हैं, मूर्तिकार पैदा होते हैं, संगीतज्ञ पैदा होते हैं। ये सब रंगीन सपने देखनेवाले लोग होते हैं। और वे जो ब्लैक-व्हाइट देखते हैं, वही दुकानदार बन जाते हैं; क्लर्क बन गये, स्टेशन मास्टर बन गये, प्रोफेसर बन गये। वह ब्लैक-व्हाइट का मामला है उनका। या तो ऐसा, या वैसा। वहां ज्यादा रंग इत्यादि नहीं हैं, सीधा-साफ गणित है। ऐसे लोग गणितज्ञ बन जाते हैं। ऐसे लोग हिसाब-किताब रखने में बड़े कुशल होते हैं। वह जो रंगीन सपना देखता है, उससे हिसाब-किताब मत रखवाना! वह हिसाब-किताब रख ही नहीं सकता। उसके रंगीन सपने उसे बहुत आह्लादित कर देते हैं, बहुत भर देते हैं। और जब सपना रंगीन होता है, मधुर होता है, तब आदमी भरोसा कर लेना चाहता है।

एक सूफी कहानी है। तीन फकीर यात्रा को निकले। एक गांव में उन्हें सम्राट के महल से अत्यंत सुस्वादु हलुआ भेंट में मिल गया। मगर वह इतना नहीं था कि तीनों का पेट भर जाए। तीनों उस पर कब्जा करना चाहते थे। मगर एक का ही पेट भर सकता उससे, इतना ही था। और कोई उसे छोड़ना नहीं चाहता था। तीनों दावेदार थे। तीनों में बड़ा विवाद होने लगा। फकीर थे। विवादी तो थे ही! तर्क तो कर ही सकते थे। पहले फकीर ने कहा कि देखो, यह हलुआ साधारण नहीं है! हम तीनों मैं जो सर्वश्रेष्ठ है, उसको मिलना चाहिए। मुझे पूरी कुरान याद है; तुम्हें याद है? दूसरे ने कहा, कुरान से क्या होगा? असली बात चरित्र की है। तुममें चरित्र नाममात्र को नहीं है। कुरान तो याद है लेकिन सुबह उस स्त्री को देखकर तुम एकदम दीवाने हुए जा रहे थे। भूल गये? असली निर्णय चरित्र से होता है। मैं चरित्रवान हूं। तीसरे व्यक्ति ने कहा, चरित्र इत्यादि में क्या रखा है? यह सब सांसारिक बातें हैं, यह सब सपना है। न ज्ञान से कुछ होता है, न चरित्र से, असली चीज तो प्रार्थना है। तुमने कभी प्रार्थना की? तुम चरित्र की अकड़ में पड़े हुए हो, अहंकार में पड़े हुए हो कि मैं चरित्रवान हूं। पड़े रह जाओगे इसी अकड़ में! मुझ दीन को देखो!

विवाद इतना बढ़ गया, रात हो गयी। विवाद का अंत न हो तो हलुआ खाए कौन? आखिर एक ने सुझाया कि ऐसा करो, आज हम तीनों सो जाएं। रात को सबसे श्रेष्ठ सपने देखे, वही सुबह हलुआ खाए। उन्होंने कहा—चलो ठीक, यही ठीक। यही ठीक, दूसरा खाए इससे यही बेहतर है कि सुबह तक टालो, देखेंगे सुबह फिर। और फिर रात एक मौका और है—सपना देखेंगे श्रेष्ठ।

सुबह उठे, पहले ने अपना सपना सुनाया। उसने कहा कि मैं जब सोया, तो हजरत मुहम्मद प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि तू ही मेरा असली पैगंबर है, मेरे बाद तू ही मेरा वंशधर है। अब इससे और ऊंचा सपना क्या हो सकता है? दूसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। मैं जब सोया, तो खुद परमात्मा प्रकट हुआ—मुहम्मद से क्या होगा!

मुहम्मद खुद ही संदेशवाहक हैं!—खुद परमात्मा प्रकट हुआ और उसने कहा कि मैं तुझे सीधा संदेश दे रहा हूं, तू मेरी खबर लोगों तक पहुंचा। तीसरे से पूछा—तुम्हें क्या हुआ? उसने कहा कि भई मुझे कुछ पता नहीं, एक आवाज भीतर से आयी कि पड़ा-पड़ा क्या कर रहा है मूरख, उठ हलुआ खा! सो मैं तो हलुआ खा चुका! अब हलुआ बचा ही नहीं है। किसकी आवाज थी, मुझे पता नहीं, मगर बड़ी जोरदार आवाज थी!

सपने हैं। उनमें कुछ बड़े जोरदार सपने होते हैं, बड़े रंगी सपने होते हैं, और बड़ा प्रभावित कर जाते हैं। लेकिन सपने फिर सपने हैं। जिस व्यक्ति को यह दिखायी पड़ता है कि यहां जगत में सब सपना है, अर्थहीनता मालूम होने लगती है। 'मीनिंगलेसनेस' उसे अनुभव होती है। यह भिन्न है, जिसको दुख अनुभव होता है उससे यह भिन्न दशा है। दुखवाले को तो कम से कम दुख अनुभव हो रहा है। कुछ तो सार पकड़ में आया है! जिसको अर्थहीनता मालूम होती है, उसे भी अनुभव नहीं होता। सुख भी अनुभव नहीं होता, दुख भी अनुभव नहीं होता। उसे अनुभव ही कुछ नहीं होता। वह कहता है, सब चीजें पानी पर खींची लकीर की तरह बीती जा रही हैं, कुछ बनता नहीं यहां। यह सब मजाक है। यह सब किसी परमात्मा का व्यंग्य है।

ऐसे व्यक्ति को मैं कहता हूं उसे—अर्थार्थी। उसे जीवन में अर्थ की तलाश पैदा होती है। वह रिक्तता से भरा हुआ, अर्थहीनता से भरा हुआ, अर्थ की खोज में निकलता है। वह परमात्मा से कहता है, मुझे अर्थ दो। जीवन को ऐसा बनाओ कि मुझे लगे कि सपना ही नहीं है, इसमें कुछ यथार्थ है। पानी पर मत खींचो लकीरें पत्थर पर खिंचो लकीरें कि टिक सकें। कुछ स्थायित्व दो, कुछ शाश्वत की प्रतीति दो।

तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।
देखी मैंने बहुत दिनों तक
दुनिया की रंगीनी, किंतु रही कोरी की कोरी
मेरी चादर झीनी,
तन के तार छुए बहुतों ने
मन का तार न भीगा,
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।
तुम अपने रंग में रंग लो तो में
बीती बात भुलाऊं
प्रेम, रूप, जीवन, यौवन का
सब को गीत सुनाऊं
अंतर में वह पैठ सकेगा
जो अंतर से निकला,
मेरी तो मेरे मानस की बोली है।
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।

अर्थार्थी कहता है—हे प्रभु, मुझे अपने रंग में रंग लो। मुझे सत्य नहीं चाहिए, मुझे आनंद नहीं चाहिए, तुम मुझे अपने रंग में रंग लो। थोड़ी-सी भगवत्ता मुझमें उतार दो। मैं तुम्हारे रंग में रंग जाऊं।

तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।
देखी मैंने बहुत दिनों तक दुनिया की रंगीनी,
किंतु रही कोरी की कोरी
मेरी चादर झीनी, तन के तार छुए बहुतों ने
मन का तार न भीगा,
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।

ये तीन उपाय हैं गौणी-भक्ति के। इन तीनों बिंदुओं से चलकर जहां आदमी पहुंचता है, उसका नाम—पराभक्ति। उसको कृष्ण ने ज्ञानी-भक्ति कहा है।

'बहिरन्तरस्थम् उभयम् अवेष्टि सर्ववत्।।

यज्ञ का अवेष्टी और सब की भांति भीतर और बाहर दोनों में समझा जाता है।' शांडिल्य कहते हैं—लेकिन कौन अंतरंग है, कौन बहिरंग, यह कहना मुश्किल है। यह निर्भर करता है भक्त पर। अगर भजन पूरे प्राण से किया गया हो, तो अंतरंग हो जाता है। और ऐसे ही उपचार से किया गया हो, तो बहिरंग रह जाता है। इसलिए भजन बहिरंग है कि अंतरंग, निर्णय करना मुश्किल है। भक्त पर निर्भर हैं। मूर्ति बहिरंग है कि अंतरंग, भक्त पर निर्भर है। अगर भक्त पूरे भाव से डूब जाता है तो मूर्ति भक्त के भीतर प्रवेश कर जाती है, भक्त मूर्ति में प्रवेश कर जाता है। क्योंकि यहां पत्थर में भी भगवान छिपा है, पाषाण में भी परमात्मा छिपा है। देखनेवाली आंख चाहिए, उतरनेवाला हृदय चाहिए।

तो ऊपर से निर्णय नहीं होता कौन-सी बात बहिरंग, कौन-सी बात अंतरंग। वही बात किसी के लिए अंतरंग हो सकती है, वही बात किसी के लिए बहिरंग हो सकती है। इसलिए तुम दूसरे की निंदा में मत पड़ना। इतना सम्मान रखना सदा। कोई आदमी अगर मंदिर की मूर्ति के सामने झुक रहा हो तो भूलकर भी यह बत कह देना कि यह तू क्या कर रहा है, यह तो पत्थर है! तुम्हारे लिए पत्थर होगा तो तुम्हारे लिए पत्थर है! मगर दूसरे के लिए पत्थर हो, यह जरूरी नहीं है। दूसरे के लिए प्राण हो सकते हैं। उस पत्थर में प्राण की प्रतिष्ठा उसने की हो, तो उस पत्थर में उसके लिए सब कुछ है।

ये जो जीवन की आंतरिक दशाएं हैं, इनके संबंध में थोथे नियमों से काम नहीं चलता। और इनके लिए कोई कसौटियां नहीं हैं, और न तराजू हैं। लेकिन अक्सर हम इस तरह की गलतियां कर बैठते हैं। कोई आदमी भजन गा रहा है, हम कहते हैं—उसमें क्या होगा! भजन से क्या होगा? और यह भी हो सकता है, भजन करनेवाला भी जवाब न दे सके—अक्सर तो नहीं दे सकेगा। क्योंकि अगर जवाब देनेवाला होता, तो भजन नहीं करता, जिज्ञासा करता।

इस भेद को खयाल में लेना।

अगर वह जवाब देनेवाला आदमी होता, तो वह भजन करता ही नहीं। वह भजन की तरफ गया ही इसलिए है भाव-प्रवण है, बुद्धि-प्रवण नहीं है। उसके भीतर विचार इतनी महत्ता की बात नहीं है, जितनी भावना। उसके पास कोई उत्तर नहीं है। वह शायद अवाक खड़ा रह जाएगा। तो तुम यह मत सोचना कि तुम जीत गये। क्योंकि तुम्हें उत्तर नहीं दिया जा सका। सभी चीजों के उत्तर होते भी कहां हैं! और यही तो जीवन में रहस्यपूर्ण है कि यहां कुछ चीजें हैं जिनका कोई उत्तर नहीं है।

कौन बहिरंग है, कौन अंतरंग है, प्रत्येक पर निर्भर है। जो आर्त को बहिरंग हैं, वह जिज्ञासु को अंतरंग है। जो जिज्ञासु को बहिरंग है, वह आर्त को अंतरंग है। जिज्ञासु कहेगा—सत्संग करो गुरु का, भजन-कीर्तन से क्या होगा? यह रामधुन क्यों लगा रखी है? यह शोरगुल क्यों मचा रखा है? और आर्त कहेगा—गुरु के पास बैठे ही रहे पत्थर की मूर्ति की तरह, उससे क्या होगा? गुनगुनाओ, गाओ, नाचो, प्रभु को पुकारो, रोओ, चिल्लाओ, चीखो! और दोनों ही अपनी-अपनी तरफ से ठीक कह रहे हैं।

अभी तक मनुष्यजाति में इतना सदभाव पैदा नहीं हुआ कि हम दूसरे की विशिष्टता का सम्मान कर सकें। यह मनुष्यता की कमी है। इसलिए मुसलमान हिंदू का मंदिर तोड़ देता है, हिंदू मुसलमान की मस्जिद जला देता है। यह बड़ी मूढ़तापूर्ण बात है। दूसरे का सम्मान होना चाहिए। हम दूसरे के नियंता नहीं हैं। दूसरा अपना मालिक है। उसे जिससे सुख मिले, जिससे सार मिले, उस दिशा से जाए। उसे रोको मत। उसे बाधा मत दो। सारे लोग तुम्हारे अनुसार चलें, यह बात ही फिजूल है। यह बात ही अमानवीय है। मगर यही कोशिश रही है। ईसाई चाहते हैं सारी दुनिया ईसाई हो जाए। हिंदू चाहते हैं सारी दुनिया हिंदू हो जाए। मुसलमान चाहते हैं सारी दुनिया

मुसलमान हो जाए। यह आकांक्षा गलत है। जगत में वैविध्य रहने दो। अच्छा है कि यहां बहुत फूल खिलते हैं। कमल भी और गुलाब भी, और चंपा और जूही और चमेली भी। यहां गुलाब ही गुलाब खिलेंगे। तो गुलाब बड़ा उबाने वाला हो जाएगा। वैविध्य परमात्मा के प्रकट होने का ढंग है। यहां बहुत सुगंधें हैं और यहां बहुत रंग हैं और यहां बहुत ढंग है और यहां बहुत तरह के लोग हैं।

इसलिए कौन अंतरंग कौन बहिरंग, इस बात पर निर्भर होगा कि व्यक्ति किस ढंग से चीज को ले रहा है। अवेष्टी—यज्ञ का द्रव्यविशेष—कभी-कभी यज्ञ का अंतरंग और कभी-कभी बहिरंग समझा जाता है। तुम पर निर्भर है।

अब जैसे समझो, कोई मेरे पास आता है और वह कहता है—गैरिक वस्त्र क्यों? क्या संन्यास के लिए गैरिक वस्त्र अनिवार्य है? क्या गैरिक वस्त्रों के बिना संन्यास नहीं हो सकता? उसकी बात में बल मालूम होता है। क्योंकि वस्त्र से क्या संबंध संन्यास का। वह संन्यास को अंतरंग बात मान रहा है, वस्त्र को बहिरंग। लेकिन यही आदमी और जगह जाकर यही प्रश्न खड़े नहीं करता! तुम ने फर्क किया है! तुमने खयाल किया है! पुलिसवाला अगर अपनी ड्रेस में खड़ा हो तो तुम्हारा व्यवहार और होता है। और वह अगर सफेद वर्दी में खड़ा हो तो तुम्हारा व्यवहार और होता है। मजिस्ट्रेट अपने वस्त्रों में बैठा हो तो तुम और ढंग से व्यवहार करते हो। और मजिस्ट्रेट अपने वस्त्रों में न हो तो कौन फिक्र करता है? कौन चिंता लेता है? तुमने खयाल किया, तुम वस्त्रों को भला कितना ही कहो कि वह बहिरंग हैं, लेकिन तुम्हारे बहुत अंतस्थल में बैठे हुए हैं।

गालिब को निमंत्रण दिया था बहादुरशाह जफर ने। गालिब गरीब आदमी, ठीक-ठाक वस्त्र भी न थे। मित्रों ने कहा भी कि मियां, ऐसे मत जाओ। हम ला देते हैं मांग कर वस्त्र, अच्छे वस्त्र पहन कर जाओ। गालिब ने कहा, लेकिन मैं जैसा हूं, हूं। उधार वस्त्र क्यों मांगूं? कवि की अकड़! गालिब ऐसे ही चले गये, अपने उन्हीं फटे-पुराने वस्त्रों में—थेगड़े लगे। जूते भी फटे-पुराने। पहरेदार ने भीतर प्रवेश ही नहीं करने दिया। न केवल इतना बल्कि पहरेदार ने धक्का देकर निकाल दिया। उन्होंने अपना निमंत्रण-पत्र भी दिखलाया, उसने कहा कि भाग, किसी का चुरा लाया होगा! अपने रास्ते पर लग!

गालिब लौटे। मित्रों की बात ठीक लगी। उधार वस्त्र पहने, शान से पहुंचे। वही पहरेदार झुका। भीतर गये। सम्राट ने अपने पास बिठाया। और भी मेहमान थे, लेकिन उन्हें अपने पास बिठाया। गालिब की कद्र थी बहादुरशाह के मन में—बहादुरशाह भी थोड़ा कवि-हृदय सम्राट था। लेकिन जब भोजन शुरू हुआ तो सम्राट थोड़ा हैरान हुआ। उसने सुना तो था कि कवि झक्की होते हैं, मगर इतने झक्की होते हैं यह नहीं सोचा था। क्योंकि गालिब उठा-उठा कर बर्फियां और लड्डू पहले अपने कपड़ों को लगाए, कि ले बेटा खा ले! पगड़ी को लगाए, कि तू भी चख ले! जूते को छुलाए! बहादुरशाह थोड़ी देर तो चुप रहा, यह सब देखा उसने, कहा कि आप यह कर क्या रहे हैं! कपड़े, जूते, पगड़ी—इनको भोजन करवा रहे हैं? गालिब ने कहा, मैं तो आया ही नहीं, मैं तो धक्का देकर निकाल दिया गया। इस बार तो कपड़े ही आए हैं। मैं तो पहले आया था, लेकिन तब प्रवेश नहीं हो सका।

तुम भला कितना ही कहो कि कपड़े से क्या होगा, लेकिन तुम कपड़े से जीते हो। कपड़े से बहुत कुछ तुम्हारे जीवन का संबंध है। तुम्हारे कपड़े बदल लेने से सब कुछ बदल जाता है।

एडोल्फ हिटलर ने हजारों लोगों की हत्याएं कीं। और जब उसके कारागृह में लोग लाए जाते थे, तो वह एक काम निश्चित करता था। सब को नग्न कर देता, सबके सिर घोंट देता, मूंछें बना देता, दाढ़ी मिटा देता, सबको एक-जैसे कपड़े पहना देता। एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक फ्रैंकल को भी यही किया गया। फ्रैंकल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब हम सब के वस्त्र उतार दिये गये और हम सबके सिर घोंट दिये गये, मूंछें बना दी गयीं, हमारी घड़ियां, हमारे सामान ले लिये गये और हमें एक-जैसे पकड़े पहना दिये गये, तो हम सब एक ही नगर के लोग थे—कोई डॉक्टर था, कोई इंजीनियर था, कोई मजिस्ट्रेट था, कोई प्रोफेसर था, कोई लेखक था

कोई कवि था, कोई चित्रकार था, लेकिन सब खो गये! एक-दूसरे की शक्ल पहचानी न मालूम पड़े। फ्रैंकल ने लिखा है, मैं खुद आईने के सामने खड़ा हुआ तो अपने को नहीं पहचान सका कि मैं वही हूं। हमारा व्यक्तित्व पोंछ डाला। इसीलिए तो मिलिट्री में एक-सा कपड़ा पहना देते हैं। आदमी का व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है।

ये गैरिक-वस्त्र भी तुम्हारी अस्मिता, तुम्हारे व्यक्तित्व को पोंछ डालने का उपाय है। अगर समझपूर्वक लोगे, तो अंतरंग हो जाएंगे। अगर नासमझीपूर्वक लिया तो ऊपर की वर्दी रह गयी। फिर उसका कोई मूल्य नहीं है। यह तुम्हारी तरफ से सूचना है कि मैं मिटने को तैयार हूं। कि अब मैं अपने होने की घोषणा वापिस लेता हूं। कि अब मैं विशिष्ट होने का दावा छोड़ता हूं। विशिष्ट होने का दावा करके देख लिया, दुख पाया। अब मैं इस विराट में एक बूंद की तरह खो जाना चाहता हूं।

सब निर्भर करता है तुम्हारी दृष्टि पर।

'भूयसाम अनुनिष्ठतिः इति चेत् आप्रयाणम् उपसंहारात् महत्सु अपि।।

'भक्त लोग अधिक कर्म नहीं करते, ऐसा नहीं है। भेद इतना ही है कि वे सब इस नियम के आधीन हो जाते हैं।'

भक्त अधिक कर्म नहीं करता, ऐसा मत सोचना। लेकिन भक्त कर्ता का भाव छोड़ देता है। भक्त से भी कर्म होते हैं, वस्तुतः और भी ज्यादा होते हैं, भक्त की सक्रियता और भी खिलकर प्रकट होती है, भक्त की सृजनात्मकता अपना शिखर छूती, लेकिन एक फर्क पड़ जाता है—अब भगवान कर्ता है, भक्त कर्ता नहीं है। भक्त केवल बांस की पोंगरी है। भगवान जो गीत गाता है, अपने में से बह जाने देता है। भक्त इस नियम के अंतर्गत समाविष्ट हो गया है। उसने अपना समर्पण कर दिया है। अधिक लोग सोचते हैं कि भक्त का अर्थ है, अब तुम कुछ मत करो। तुम भक्त हो गये, अब क्या करना? अब दुकान नहीं करनी अब बाजार नहीं करना, अब बच्चों की फिकिर नहीं करनी, अब पत्नी की देखभाल नहीं करनी, तुम भक्त हो गये अब क्या करा है! भक्ति को लोगों ने काहिली का बचाव समझ रखा है।

सुस्ती, काहिली, अकर्मण्यता भक्ति नहीं है। भक्ति का अर्थ है—अकर्ता भाव; अकर्मण्यता नहीं! कर्म तो जारी रहेगा। कर्म तो जीवन है। लेकिन अब हम करनेवाले नहीं रह गये। अब हम निमित्त हो गये। अब परमात्मा जो कराए।

स्मृतिकीर्त्योः कथादेः च आर्तौ प्रायश्चितभावात्।।

'स्मरण और कीर्तन-कथा-श्रवण आर्त-भक्ति में प्रायश्चित रूप कहे गये हैं।' और कुछ नहीं करना है, असहाय और निरालंब होकर पुकारना है। उस पुकार में ही चित्त निर्मल हो जाता है। प्रायश्चित घटित हो जाता है। लोग पूछते हैं, सिर्फ रोने से क्या होगा? प्रायश्चित के लिए कुछ शुभ कर्म करने होंगे। कुछ यज्ञ, हवन इत्यादि करने होंगे। कुछ कर्मकांड करना होगा। लेकिन भक्त कहते हैं, रोने से ही सब हो जाएगा। अगर तुम हृदयपूर्वक रोए, अगर तुम्हारा रोना तुम्हारी समग्रता से आया, तो वही तुम्हें निर्मल कर जाएगा। आंसू तुम्हारी बाहर की आंख को ही साफ नहीं करते हैं, तुम्हारी भीतर की दृष्टि को भी स्वच्छ कर जाते हैं। प्रायश्चित्त हो गया। या, अगर तुम जिज्ञासु हो, तो गुरु के चरणों में झुक गये, प्रायश्चित हो गया। या अगर तुम अर्थार्थी हो और तुम जीवन में तुम अर्थ की तलाश कर रहे हो, तो तुमने शांत होकर, ध्यानपूर्वक बैठकर परमात्मा को पुकारा कि मुझे अपने रंग में रंग लो! मेरे तारों को तुम छेड़ो। मैं तो छेड़ता हूं तो अर्थ नहीं निकलता, व्यर्थ का शोरगुल होता है। तुम छेड़ो तो संगीत उठे। तुम छेड़ो तो छंद बने। मेरे किये तो केवल उपद्रव होता है, अराजकता फैलती है। तुम छेड़ो मेरा संगीत। यह रही मेरे हृदय की वीणा। तुम उठाओ, तुम जगाओ स्वर। तो प्रायश्चित हो गया।

यह सवाल विचारणीय रहा है सदियों से कि आदमी ने अतीत में बहुत-से बुरे कर्म किये हैं, उनका क्या होगा? मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि जन्मों-जन्मों से हमने पाप किये हैं, उन पापों के फल का क्या होगा! समझा जाता है कि जितने तुमने पाप किये हैं उतने पुण्य करके जब काटोगे, तब मुक्ति होगी। फिर तो मुक्ति कभी होनेवाली नहीं है। फिर तो तुम मुक्ति का खयाल ही छोड़ दो। तुमने इतने पाप किये हैं कि अगर एक-एक पाप

के लिए पुण्य करना पड़ा तो अनंत जन्म लग जाएंगे। एक बात। और इतने पुण्य करने के लिए तुम्हें अनंत जन्मों तक बहुत-से पाप फिर से करने पड़ेंगे। नहीं तो पुण्य कहां से करोगे? समझो एक मंदिर बनाना है। तो पहले 'ब्लैक मार्केट' करनी पड़ेगी। ब्राह्मणों को भोजन कराना है, तो भोजन के लिए कुछ तो जेब काटोगे! तभी तो भोजन होगा! दान देना है, चोरी करोगे तभी तो दान दे सकोगे! चोर हुए बिना दानी तो नहीं हो सकते! इसलिए जब कोई सोचता है कि वह महादानी है, उसे पता नहीं वह क्या कह रहा है! वह यह कह रहा है कि पहले हम चोर थे। असल में ऐसा होता है कि तुम करोड़ की चोरी कर लेते हो, लाख दान कर देते हो। और लाख दान करके फिर तुम करोड़ की चोरी करने के लिए योग्य हो जाते हो। क्योंकि फिर अकड़ आ जाती है कि अब फिर कर सकते हैं। आखिर हर्ज क्या है, फिर लाख का दान कर देंगे। तुम्हारा दान और तुम्हारी चोरी संयुक्त है।

अगर अनंत जन्म लगेंगे तुम्हारे अनंत जन्मों के कर्मों को सुधारने में, तो इस बीच तुम गलत कर्म करते ही चले जाओगे, उनको फिर सुधारना पड़ेगा। फिर गलत होंगे फिर सुधारना पड़ेगा। इस दुष्टचक्र का कोई अंत नहीं हो सकता। इसलिए जो लोग कर्म के गणित से चलते हैं, उन्हें मुक्ति की आशा छोड़ देनी चाहिए।

भक्त कहता है, तुमने जो किया है, वह स्वप्न जैसा है, उसको मिटाने के लिए कुछ नहीं करना है सिर्फ जागना काफी है। तुम रात सोए हो और तुमने हत्या कर दी सपने में और चोरी कर ली सपने में, अब सुबह उठकर तुम यह थोड़े ही कि दान करोगे तब चोरी कटेगी। या अब किसी आदमी को जिलाओगे तब रात की हत्या कटेगी। सुबह जागते ही पता चलता है कि सब सपने में हुआ था। कुछ किया नहीं है, किया ही नही है कुछ! हुआ ही नहीं है कुछ! एक नींद थी, नींद टूट गयी है। भक्त जब रो लेता है तो नींद टूट जाती है। भक्त जब गा लेता है तो नींद टूट जाती है। भक्त जब नाच लेता है तो नींद टूट जाती है।

या आर्त बनो, या जिज्ञासु, या अर्थार्थी, लेकिन हर हालत में नींद टूटती है। कर्मों को नष्ट नहीं करना पड़ता है, नींद के टूटते ही जीवनदृष्टि बदल जाती है। और जीवनदृष्टि बदली तो सब बदला। जागकर जीवन जीने लगे तो शुभ हो जाता है। संक्षिप्त में कहें तो ऐसा; सोए-सोए जीओ तो पाप, जागे-जागे जीओ तो पुण्य। जागकर जो किया वह पुण्य, सोकर जो किया जाए वह पाप।

जागने के ये तीन उपाय शांडिल्य कहे। या तो आर्त बन जाओ; कि तुम्हारा रोना इतना सघन हो कि तुम जाग जाओ। तुम्हें याद है? कभी सपने में ऐसा हो जाता है कि एक सिंह तुम्हारा पीछा कर रहा है और तुम भागे जा रहे हो और मरे जा रहे हो और घबड़ा रहे हो, और तभी एक जोर की पुकार निकल जाती है कि मर गया! उसी पुकार में नींद खुल जाती है। शेर भी गया, नींद भी गयी, तुम जब गये। या कभी तुम देखते हो कि तुम्हारी छाती पर कोई चढ़ा बैठा है और छुरा भोंक रहा है। जैसे ही छुरा भौंका जाता है, एक आह निकल जाती है। उसी आह में नींद टूट जाती है। आर्त का यही अर्थ है। जीवन का दुख इतना है कि उस दुख के कारण ही तुम्हारे भीतर से आह निकल गयी। आह में नींद टूट गयी।—

या, तुमने सोचा, विचारा, कोई उत्तर नहीं मिलता कि सत्य क्या है? और तुम किसी सदगुरु के पास बैठ गये। सदगुरु के पास बैठने का अर्थ यह है कि तुमने किसी ॲलार्म से दोस्ती कर ली। वह तुम्हीं जगाता रहेगा। वह तुम्हें चेताता रहेगा। वह तुम्हें उठाता रहेगा।

और या अर्थार्थी। न तुमने दुख के कारण आह निकाली, न तुमने सत्य की जिज्ञासा, सत्संग किया, बल्कि तुमने पाया कि जीवन में कोई अर्थ नहीं है। तुम एकदम नकार और निषेध और शून्यता से, रिक्तता से भर गये। उसी रिक्तता की चोट में तुम्हारे भीतर से पुकार उठी कि हे प्रभु, अगर तू अपने रंग में रंग ले, तो सब ठीक हो जाए।

तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।

देखी मैंने बहुत दिनों तक
दुनिया की रंगीनी,
किंतु रही कोरी की कोरी

मेरी चादर झीनी,
तन के तार छुए बहुतों ने
मन का तार न भीगा,
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।

लेकिन ये तीनों साधन गौण हैं। पराभक्ति के लिए नाव रूप है। और जैसे जैसे पराभक्ति आने लगे नाव से उतर जाना है। नाव छोड़ देनी है। साधन से मुक्त हो जाना है।

जिस दिन साधन की कोई जरूरत न रहे उस दिन भूल कर एक क्षण भी साधन को पकड़े मत रखना, नहीं तो साधन जकड़ लेगा, फिर तुम संसार में फेंक दिये जाओगे। संसार से मुक्त होने के लिए साधन उपाय है। फिर साधन से मुक्त हो जाना है। जिस दिन संसार और साधन दोनों से मुक्ति हो गयी। संसार से मुक्ति हो गयी, धर्मों से मुक्ति हो गयी; हिंदू न रहे, मुसलमान न रहे, ईसाई न रहे, वे सब साधन हैं, उस दिन तुम वस्तुतः धार्मिक हुए। जिस दिन वेद का अंत हो गया उस दिन वेदांत। जिस दिन वेद पूरे हो गये उस दिन वेदांत।

पराभक्ति तुम्हारा और परमात्मा का अंतिम मिलन है, आत्यंतिक मिलन है।

आज इतना है।

कार्ल मार्क्स के एक प्रसिद्ध वचन पर प्रश्न।

आपके पास बैठने से जितने शून्य व खाली होते हैं उतना ध्यान करने से नहीं होते हैं। फिर भी क्या ध्यान की जरूरत है?

आपको समझने में मुझसे बहुत भूल हुई। क्षमा मांगता हूं। आपकी देखना का सारसूत्र क्या हैं?

परमात्मा की सर्वव्यापकता पर एक मित्र का प्रश्न।

स्वामी ब्रह्म वेदांत के संबंध में प्रश्न।

कुछ भी नया करने में भयभीत होता हूं। इस भय से मुक्त कैसे होऊं?

धर्म है मनुष्य के गीत का प्रकट हो जाना

दसवां प्रवचन

पहला प्रश्नः कार्ल मार्क्स का एक प्रसिद्ध वचन है—धर्म एक भ्रमात्मक सूर्य है, जो मनुष्य के गिर्द तब तक घूमता रहता है, जब तक कि मनुष्य मनुष्यता के गिर्द नहीं घूमता। क्या धर्म और मनुष्यता अलग-अलग है?

धर्म है मनुष्य के पार जाने का विज्ञान। धर्म है अतिक्रमण की कला। धर्म न हो तो मनुष्य मनुष्य रह जाएगा। और मनुष्य का मनुष्य रह जाना ही दुख है, पीड़ा है, संताप है। क्योंकि मनुष्य अधूरा है। अधूरेपन में पीड़ा है। मनुष्य होकर कोई तृप्त नहीं हो सकता। मनुष्य के होने में ही अतृप्ति छिपी है।

मनुष्य ऐसे है जैसे कली। कली जब तक फूल न हो, तब तक परेशान होगी। कली फूल होगी तो ही खुलेगी। और खिलेगी। कली फूल होगी तो ही आनंद को उपलब्ध होगी। कली सिर्फ मार्ग पर है—फूल होने के मार्ग पर है। कली अंत नहीं, कली मंजिल नहीं। ऐसा ही मनुष्य है।

मनुष्य का दुख भी यही है, मनुष्य की गरिमा भी यही है। दुख यह है कि मनुष्य पूरा नहीं है। और पशु-पक्षी पूरे हैं। पूरे से अर्थ, वे यात्रा पर नहीं है। वे जैसे हैं, जहां हैं, वहीं समाप्त हो जाएंगे। कुत्ता कुत्ते की तरह ही रहेगा और मर जाएगा। कुत्ते में कोई प्रगति नहीं है। तुम किसी कुत्ते से यह न कह सकोगे कि तुम कम कुत्ते हो। सब कुत्ते बराबर कुत्ते हैं। लेकिन आदमी से तुम कह सकते हो कि तुम थोड़े कम आदमी हो। क्यों कह सकते हो? क्योंकि कोई आदमी थोड़ा कम आदमी होता है और कोई आदमी थोड़ा ज्यादा आदमी होता है। कोई आदमी इतना पूर्ण आदमी हो जाता है; कोई बुद्ध, कोई महावीर—कि हमें उसे भगवान कहना पड़ता है—वस्तुतः बात इतनी घटी है कि बुद्ध का फूल खिल गया; और कुछ नहीं हुआ है। हमारी कली बंद थी, बुद्ध का फूल खिल गया है।

हम जहां हैं, जैसे हैं, वहां से आगे जाना होगा। आगे जाने की कला का नाम विज्ञान है, धर्म है।

तो धर्म और मनुष्यता एक ही नहीं हैं। अगर साधारण मनुष्य को हम मनुष्य समझें, तो धर्म मनुष्य के पार जाने का विज्ञान है। अगर हम बुद्ध और महावीर को मनुष्य समझें और साधारण आदमी को समझें कि अभी मनुष्य नहीं है, तो फिर धर्म मनुष्य होने का विज्ञान है।

कार्ल मार्क्स की उक्ति बुनियादी रूप से गलत है। लेकिन मार्क्स और साम्यवादियों की यह धारणा रही है कि मनुष्य के पार कुछ और नहीं है; मनुष्य अंत है। यह बड़ी खतरनाक भ्रांति है। अगर ऐसा मान लिया जाए कि मनुष्य के पार कुछ भी नहीं है तो फिर रोटी-रोजी पर सब समाप्त हो जाता है। फिर आजीविका जीवन हो जाती है। फिर सुबह रोज उठो, दफ्तर जाओ, कमा लो, खा लो, पी लो, बच्चे पैदा कर दो और मर जाओ। फिर इसके पार कुछ बचता नहीं। फिर जीवन में कोई गहराई पैदा नहीं हो सकती। जीवन छिछला और उथला रह जाएगा।

धर्म है मनुष्य के भीतर गहराई पैदा करने का उपाय, मनुष्य के भीतर डुबकी। और गहराइयों पर गहराइयां हैं। एक गहराई छुओगे, दूसरी गहराई के दर्शन शुरू होंगे। एक द्वार खोलोगे, नया द्वार सामने आ जाएगा। द्वार-पर-द्वार हैं। इस रहस्य की अनंतता है। धर्म के बिना मनुष्य नाममात्र को मनुष्य होगा। न तो फूल खिलेगा और न सुवास होगी।

लेकिन मार्क्स को धर्म का कुछ पता नहीं था। हो भी नहीं सकता था। कभी ध्यान तो किया नहीं।

मार्क्स का वक्तव्य धर्म के संबंध में ऐसा ही है, जैसे किसी बहरे का वक्तव्य संगीत के संबंध में, या किसी अंधे का वक्तव्य प्रकाश के संबंध में। हां, मार्क्स ने बाइबिल पढ़ी थी, ईसाइयों की किताबें पढ़ी थी, उनसे धर्म का कुछ लेना-देना नहीं है। किताबों में धर्म नहीं है। अगर किताबों के धर्म को धर्म समझा जाए, तो मार्क्स ठीक कहता है कि धर्म एक भ्रमात्मक सूर्य है; अच्छा है कि आदमी इससे मुक्त हो जाए। अगर चर्चों में और मंदिरों में और मस्जिदों में धर्म समझा जाए, तो मार्क्स ठीक कहता है, अच्छा है इनसे मुक्त हो जाया जाए। अगर पुरोहितों और पंडितों में धर्म समझा जाए, तो मार्क्स ठीक कहता है कि इनके जाल के बाहर हो जाना बेहतर है। लेकिन वहां धर्म है नहीं। जिसको मार्क्स धर्म समझ रहा है, वह धर्म नहीं है। धर्म बुद्धों में है। मस्जिद में नहीं है, न मंदिर में है। धर्म तो ध्यानी में है, जहां समाधि फलती है, वहां धर्म है।

मार्क्स को कोई समाधिस्थ व्यक्ति का सत्संग तो मिला नहीं। मार्क्स के धर्म के संबंध में जो भी विचार थे, किताबी थे। उसने संगीत के संबंध में किताबों में पढ़ा था और प्रकाश के संबंध में औरों से सुना था; अपना कोई निजी अनुभव नहीं था। निजी अनुभव न होने के कारण अगर कोई अंधा यह कह दें कि सुर्य की सारी बात बकवास है, मुझे तो दिखाई नहीं पड़ता; और यह संगीत सब झूठ है, मैंने कभी सुना नहीं; जो मुझे नहीं सुनाई पड़ता, वह कैसे हो सकता है? ऐसे ही वक्तव्य हैं मार्क्स के। उनका कोई मूल्य नहीं है।

धर्म के संबंध में मूल्य तो उसके वक्तव्य का है जिसने ध्यान जाना हो। जिसने ध्यान की गहराई छुई हो, ध्यान का अमृत पिया हो, उसके वक्तव्य का कोई मूल्य है जो अपने भीतर गये हों, जिन्होंने भीतर डुबकी मारी हो, जिन्होंने भीतर का रस पिया हो, जिन्होंने भीतर की रोशनी देखी हो, जो अंतर-आकाश में उड़े हों। उन सबने कहा है कि धर्म के बिना आदमी आदमी ही नहीं है। आदमी फिर कली हर जाएगा। और कली कितनी भी सुंदर हो, कुछ कमी है। अभी तक फूल नहीं हुई। और जब तक फूल न हो, तब तक नाचेगी कैसे? और जब तक फूल न हो, तब तक सुवास को लुटाएगी कैसे? और जब तक फूल न हो, तब तक तृप्ति कहां, आनंद कहां?

धर्म मनुष्य के पार जाने की सीढ़ी है। ऐसा कहो, या ऐसा कहो कि असली मनुष्य होने की कला है। दोनों का मतलब एक ही होता है। अगर तुम असली मनुष्य हो, तो मनुष्यता के पार जाने की कला है धर्म। तुम्हारे तो पार जाना ही होगा। तुम जैसे हो इससे ऊपर उठना ही होगा। तुम तो परिधि पर जी रहे हो, तुम्हारे जीवन में कोई केंद्र नहीं है। और अगर बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट को हम मनुष्य की परिभाषा मानें, तो फिर धर्म का अर्थ होगा: पूर्ण मनुष्य होने की कला। यह मनुष्य की परिभाषा पर निर्भर होगी।

लेकिन मार्क्स से पूछने मत जाओ। मार्क्स को कुछ पता नहीं है। ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में बैठ-बैठ कर उसने जो भी जाना था, वह धर्म नहीं है। धर्म जानने के लिए प्रार्थना में उतरना पड़ता है। वह काम हिम्मतवर का है। पागल होना पड़ता है। मस्ती में डूबना पड़ता है। किताबी नहीं है काम, शब्दों का नहीं है, शून्य के अनुभव में जाना होता है। और जो उस अनुभव में जाएगा, वह पाएगा—धर्म के अतिरिक्त मनुष्य के जीवन में कभी सुगंध नहीं आती।

फिर, उस धर्म का अर्थ ईसाइयत, हिंदू, इस्लाम नहीं होता। उस धर्म का अर्थ होता हैः तुम्हारे भीतर छिपे हुए स्वभाव की अभिव्यक्ति; तुम्हारे भीतर पड़ें हुए गीत का प्रकट होना।

दूसरा प्रश्नः भगवान, आपके पास बैठते हैं और जितने शून्य होते हैं, खाली होते हैं, उतना ध्यान करने से नहीं होते हैं। फिर भी ध्यान करने की जरूरत है? और मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। हृदय में जो है, उसे दिखा नहीं पाती हूं।

समाधि! सत्संग और ध्यान अन्योन्याश्रित हैं। ध्यान बढ़ेगा तो सत्संग में रस बढ़ेगा। सत्संग में रस बढ़ेगा तो ध्यान की गहराई बढ़ेगी। दोनों दो पंख की भांति हैं। इनमें एक पंख को भी काट डाला तो नुकसान होगा। एक पंख से फिर आकाश में उड़ न सकोगी। ध्यान में उतरोगी, फिर जब मुझे सुनोगी, मेरे पास बैठोगी, तो नयी गहराई आएगी। ध्यान ने रास्ता बनाया। ध्यान ने सफाई कर दी, मार्ग के पत्थर हटा दिये, अवरोध हटा दिये। फिर मेरे पास बैठना, तो झरना बहेगा। फिर झरना बहेगा तो और नये रास्ते टूटेंगे। नये रास्ते टूटेंगे तो नये पत्थरों का आविष्कार होगा। फिर ध्यान में जाओगी, उन पत्थरों को हटाने का आनंद!

ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

ऐसा अक्सर हो जाता है। कुछ लोग सोचते हैं कि जब यहां आपके पास बैठकर ही आनंद आ जाता है, तो फिर ध्यान क्या करना? उनका आनंद रुक जाएगा। उसमें गति नहीं होगी फिर। फिर रोज-रोज नयी सीढ़ियां तय नहीं होंगी। फिर जहां तक आ गया है, वहीं बात ठहर जाएगी। और वहीं ठहरी नहीं रहेगी, थोड़े दिन में पाएंगे कि वहां से भी पीछे हटने लगी।

कुछ विपरीत सोचनेवाले भी लोग हैं। वे सोचते हैं, ध्यान में तो बड़ा मजा आ रहा है, अब सत्संग में क्या आना? अब सुनने में क्या है? अब तो हम खुद ही ध्यान में उतरने लगे। अब गुरु के पास बैठने की क्या जरूरत है? उनका ध्यान भी जल्दी डगमगा जाएगा। और न डगमगाया तो भी अवरुद्ध हो जाएगा।

स्मरण रहे, जितने प्रयोगों से संभव हो सके, चोट करो, जितनी दिशाओं से हमला हो सके, हमला करो। प्रार्थना भी करो, पूजा भी करो, ध्यान भी, प्रेम भी, सत्संग भी, भजन-कीर्तन भी। सब दिशाओं से हमला करो। इस दुश्मन को मिटा ही देना है। इस अंधेरे को तोड़ ही देना है। इसमें एक ही तरफ से हमला किया, तो शायद जीत संभव न हो। दुश्मन किसी और दरवाजे पर छिप जाए, किसी और कोने में बैठ जाए। अंधेरा कहीं और अपने लिए गुफा बना ले। तुम सब तरफ से रोशनी लाओ। सब द्वार-दरवाजे, खिड़कियां खोल दो। इसमें कंजूसी मत करो। एक ही दरवाजे से रोशनी आए, ऐसा क्या, सब दरवाजों से रोशनी आने दो। ध्यान भी करो, सत्संग भी करो। नाचो भी, गाओ भी। मौन भी बैठो। जितना संभव हो सके, उतना इस रसधार को अनेक-अनेक रूपों में बहने दो। और तुम पाओगे, इसकी सम्मिलित प्रक्रिया का परिणाम गहन होता है।

अच्छा हो रहा है कि सत्संग में शून्यता आ जाती है। 'समाधि' को मैं देख रहा हूं। कोई फल पकने के करीब आने लगा है यहीं खतरा है। जब फल पकने के करीब आने लगता है, तो मन कहता है अब तो सब हो गया, अब और क्या करना है? अक्सर ऐसा हो जाता है कि लोग मंदिर के ठीक द्वार पर आते-आते लौट जाते है। मंजिल जहां पूरे होने के करीब होती है, वहीं ठहर जाते हैं। सोचते हैं—आ तो गया!

जिंदगी बड़ी है। जिंदगी तुम्हारी आकांक्षाओं से बड़ी है। और जिंदगी में ऐसे खजाने पड़े हैं जिनके तुमने सपने भी नहीं देखे। इसलिए इस भ्रांति में तो कभी पड़ना ही मत कि आ गया। कितना ही मिल जाए, यात्रा जारी रहे, यात्रा चलती रहे, क्योंकि और मिलने को है, और मिलने को है।

तुम्हारी आकांक्षाएं भी बड़ी दीन-दरिद्र हैं। तुम सोचते हो, मन थोड़ा शांत हो गया, बस हो गया। अभी बहुत होने को है! और ऐसा तो कभी नहीं होता जब कि कुछ होने को न बचे। इसीलिए तो कहते हैं परमात्मा का रहस्य अनंत है। जानो, और जानो, और जानो, फिर भी अनजाना रह जाता है। पहचानो, और पहचानो, फिर भी पहचान कहां हो पाती है! सागर जैसा विराट है। खोजते-खोजते, खोजी खो ही जाता है; समग्र रूप से लीन हो जाता है।

जब तक तुम समग्र रूप से मिट न जाओ, तुम्हारे भीतर कहीं भी 'मैं' का कोई स्वर न रह जाए, तब तक सत्संग भी चलने दो, ध्यान भी चलने दो, प्रार्थना भी चलने दो। परा-भक्ति का जन्म न हो जाए, तब तक चलने दो गौणी-भक्ति। और इसमें कृपणता की कोई जरूरत नहीं है।

कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि तुम मान लेते हो कि सब हो गया। और अक्सर जब सब होने के करीब होता है, तभी ऐसा होता है। मंजिल सामने दिखायी पड़ने लगती है, आदमी बैठ जाता है। तुमने देखा? यात्रा करके तुम आए हो—दूर लंबी, पहाड़ की यात्रा—चलते रहे, चलते रहे, थके थे तो भी चलते रहे, अब सामने मंदिर आ गया तो तुम बैठ जाते हो। तुम कहते हो, अब तो सुस्ता लें; अब तो यह रहा मंदिर! मंजिल पर आकर लोग सुस्ताने लगते हैं। दूर होते हैं तो चलते रहते हैं।

'समाधि' में कुछ घटने के करीब है, इसीलिए प्रश्न उठा है। प्रश्न महत्वपूर्ण है, औरों के काम का भी है। क्योंकि बहुतों के भीतर बहुत कुछ घटने के करीब आ रहा है। यह जो फसल लगायी जा रही है, इसके काटने के दिन भी करीब आएंगे ही। ये जो बीज बोए जा रहे हैं, ये अंकुर भी हो गये हैं, इनमें फूल भी लगेंगे।

स्मरण रखना, तुम्हें पता ही नहीं है कितने फल लगेंगे? अनंत फल लगेंगे। एकाध फल से राजी मत हो जाना। सच तो यह है, साधक जितने सिद्धि के करीब आता है, उतनी ही साधना और भी गहरानी पड़ती है।

शुभ है कि सत्संग में शून्यता फलती है, मन मौन हो जाता है। लेकिन सत्संग में तुम मेरे साथ जुड़े हो। सत्संग में तुम मेरे पंखों के सहारे उड़ रहे हो। सत्संग में तुम्हारी आंख मेरी आंख से देख रही है। सत्संग में मेरा हृदय तुम्हारे हृदय के साथ धड़क रहा है। ध्यान में भी इतना ही होना चाहिए। नहीं तो कल अगर मैं चला गया, फिर तुम क्या करोगे? कल अगर मैं न हुआ तो फिर तुम क्या करोगे? और एक दिन तो आएगा कि मैं नहीं होऊंगा। तो जिसने सत्संग पर ही निर्भर किया, वह एक दिन कठिनाई में पड़ जाएगा। जिसने सत्संग से लाभ लिया और ध्यान की गहराई को बढ़ाता गया, वही मेरे जाने पर रोएगा नहीं; अनुग्रह से भरेगा।

मेरे साथ एक संगीत सध जाता है। उसमें कितना तुम्हारा है, कितना मेरा है, कहना कठिन है। जब ध्यान में सधता है संगीत, तो तुम्हारा ही तुम्हारा है—सुनिश्चित तुम्हारा है! और जो तुम्हारा है, उसी पर अंतिम भरोसा करना।

ऐसा हो जाता है, हिमालय पर जाओगे, शांत बैठोगे, बड़ी शांति मालूम होगी; मगर उस शांति में बहुत कुछ हिमालय का है, तुम्हारा नहीं है। जब ऐसा ही बीच बाजार में बैठ कर हो सकेगा, तब तुम्हारा है। हिमालय से उतरोगे, जैसे-जैसे पहाड़ से नीचे आने लगोगे, भीड़-भाड़ बढ़ने लगेगी, वैसे-वैसे शांति खो जाएगी। रोज तो लोग पहाड़ जाते हैं और शांति का अनुभव करते हैं और लौट आते हैं—और फिर वही अशांति! तो हिमालय पर बैठ कर जो शांति तुम्हें अनुभव होती है, उसमें निन्यानबे प्रतिशत हिमालय का है, एकाध प्रतिशत तुम्हारा होगा। एक प्रतिशत जरूर तुम्हारा होगा। क्योंकि ऐसे भी लोग हैं, जो हिमालय पर बैठ जाते हैं और वहां भी शांति अनुभव नहीं होती। उनका बाजार जारी ही रहता है। उनकी भीड़ खड़ी ही रहती है। दिखता हिमालय है, मगर वे देखते रहते हैं उन्हीं को जिनको पीछे छोड़ आए हैं। सोचते रहते हैं उन्हीं की।

लोग अखबार लेकर हिमालय चले जाते हैं, रेड़िओ लेकर हिमालय चले जाते हैं ताकि दिल्ली की खबरें वहां बैठकर सुन सकें। फिर तुम गये ही किसलिए? लोग मित्रों को लेकर हिमालय चले जाते हैं, और उनके साथ वही बातचीत जारी रहती है जो यहां जारी थी। वही भीड़-भाड़, वही बकवास! तो ऐसे भी लोग हैं जो हिमालय जाकर भी अनुभव नहीं करते शांति का।

तो एक प्रतिशत तो तुम्हारा होगा।

यहां भी ऐसे लोग हैं, जो सत्संग में बैठेंगे और शांति का अनुभव नहीं करेंगे।

तो जब तुम मेरे साथ शांति में डूब जाते हो, मेरे पास बैठे-बैठे मेरी और तुम्हारे हृदय की धड़कन कभी-कभी एक हो जाती है, तुम मेरे साथ श्वास लेने लगते हो, तुम्हारा मेरे प्रति सारा प्रतिरोध टूट जाता है, तुम अपनी रक्षा नहीं करते, तुम मेरे साथ हो लेते हो—बेशर्त—बिना आगे-पीछे की फिक्र किये, तुम चल पड़ते हो मेरे साथ कि देखें क्या है, तुम हिम्मत कर लेते हो, तुम साहसी होते हो, तुम जुए पर दांव लगा देते हो—कभी-कभी वैसे क्षण आ जाते हैं, जब तुम अपूर्व शांति से भर जाओगे, अपूर्व आनंद से भर जाओगे।

लेकिन ध्यान रखना, उसमें बहुत कुछ मेरा है। जैसे ही तुम घर लौटोगे, वह खो जाएगा। उस पर निर्भर मत रहना। उसका लाभ लो। उससे तुम्हारे भीतर क्या हो सकता है, इसकी झलक मिलेगी। फिर उस लाभ का उपयोग ध्यान में करो। फिर ध्यान में खुदाई करो, फिर अपनी कुदाली उठाओ और अकेले में खोदो। और जब तक वही आनंद न मिलने लगे जो सत्संग में मिला था, तब तक रुकना मत—खोदे जाना, खोदे जाना। जब वही आनंद एकांत अकेले में घर बैठे हुए, मुझसे दूर मिलने लगे, तब फिर तुम समझना कि अब सत्संग के लिए फिर जरूरत आ गयी; अब थोड़ा और आगे के दृश्य देखें, ताकि आगे की यात्रा हो सके।

सत्संग और ध्यान का ऐसा उपयोग करोगे, तो निश्चित पहुंच जाओगे। लेकिन मन ऐसा होने लगता है; मन कहता है जब सत्संग में आनंद आता है, तो सत्संग ही कर लें। या मन कहता है, जब ध्यान में आनंद आता है तो सत्संग क्यों करें?

दो तरह के लोग हैं। जो लोग स्त्रैण-वृति के हैं—सरल, ग्राहक, अंगीकार करनेवाले—उन्हें सत्संग ज्यादा रुचेगा बजाय ध्यान के। यह आकस्मिक नहीं है कि स्त्रियां सत्संग में ज्यादा दिखायी पड़ती हैं। सरल हैं। सरलता से किसी के भी साथ उनका हृदय धड़क सकता है। उन्हें एक कला स्वाभाविक है कि प्रेम में पड़ सकती हैं। और बिना प्रेम में पड़े सत्संग नहीं होता। प्रेम में पड़ते ही तरंगें एक सी हो जाती हैं। गुरु के साथ शिष्य की तरंग एक हो जाती है। दोनों के तार मिल जाते हैं। ऐसे क्षण आ जाते हैं जब दो नहीं रह जाते शिष्य और गुरु। कभी-कभी दोनों बस एक हो जाते हैं। उसी घड़ी अपूर्व शून्यता आ जाती है। अपूर्व पूर्णता आ जाती है। अपूर्व आनंद बरस जाता है। मेघ घिर जाते हैं। मल्हार बज उठती है। वीणा पर टंकार पड़ जाती है। कोई नृत्य भीतर होने लगता है। स्त्रियों को यह आसानी से हो जाएगा।

'समाधि' को हो रहा होगा—आसानी से हो रहा होगा। स्त्री झुकने की कला जानती है। वही स्त्री होने का लक्षण है। वह समर्पण जानती है।

जरूरी नहीं है कि सभी स्त्रियों को हो, क्योंकि स्त्रियों में बहुत स्त्रियां नहीं हैं, पुरुष जैसी हैं। और जरूरी नहीं है कि पुरुषों को न हो, क्योंकि पुरुषों में बहुत हैं जिनके पास उतना ही कोमल हृदय है जितना स्त्रियों के पास। इसलिए स्त्री पुरुष से तुम शारीरिक स्त्री-पुरुष का भेद मत समझना, मैं आंतरिक भेद की बात कर रहा हूं।

लेकिन जो पुरुष है, जो पुरुष है उसी को तो पुरुष कहते हैं। पुरुष यानी कठोर। पथरीला, दंभी, अहंकारी, झुकने को राजी नहीं। टूट जाए, वह कहता है, मगर झुकेंगे नहीं। वह अगर सत्संग में आता भी है तो अपनी म्यान-तलवार लेकर आता है। वह सत्संग में आता भी है तो अपनी ढाल के पीछे छिपा रहता है। कहता है कहीं झुकने न पड़े। वह झुकने से डरा रहता है। उसे ध्यान ज्यादा रुचेगा, क्योंकि ध्यान में वह अकेला है, किसी के सामने झुकना नहीं है।

तो पुरुषों को अक्सर यह हो जाता है कि वे ध्यान की तरफ ज्यादा झुक जाएंगे और सोचेंगे, सत्संग की अब क्या जरूरत है? इतना तो सुन लिया गुरु को, अब सुनने की क्या जरूरत है?अब तो अपने एकांत में ध्यान संभालो! स्त्रियों को अक्सर ऐसा होने लगेगा कि और सुनो और सुनो, ध्यान की क्या जरूरत है? मगर दोनों गलत हैं। दोनों की जरूरत है। दोनों पंख चाहिए उस यात्रा के लिए।

और जब कोई व्यक्ति संतुलित होता है तो वह पचास प्रतिशत स्त्री होता है और पचास प्रतिशत पुरुष होता है। इसलिए तो अर्धनारीश्वर की हमने मूर्ति बनायी है। वह संतुलन की मूर्ति है। देखी है न अर्धनारीश्वर की मूर्ति! आधे शिव पार्वती हैं, और आधे पुरुष हैं। एक स्तन है, आधा चेहरा स्त्री का है, आधे अंग पुरुष के हैं। वह अपूर्व प्रतिमा है, दुनिया में किसी ने वैसी प्रतिमा नहीं गढ़ी, क्योंकि दुनिया में किसी जाति ने मनुष्य के भीतर इतने समन्वय की बात नहीं खोजी। आधा पुरुष, आधी स्त्री। ये दोनों पंख पूरे हो गये—समर्पण और ध्यान। अर्धनारीश्वर का अर्थ हैः समर्पण और ध्यान, स्त्री और पुरुष दोनों साथ-साथ झुको भी कि समर्पण हो जाए; और अपने पर निर्भर भी हो जाओ, ताकि ध्यान हो जाए। दोनों में चुनना नहीं है, दोनों को जोड़ना है। जो रहा है, शुभ है, मगर उसकी वजह से ध्यान को मत छोड़ देना। जो हो रहा है, वह समर्पण है।

शबे-गम सदा उनकी आने लगी है
मेरी रात फिर गुनगुनाने लगी है
गुल उनका तबस्सुम चुराने लगे हैं
सबा उनका पैगाम लाने लगी है
मेरी आह की नारसाई तो देखो
सितारों से आगे भी जाने लगी है
जो डूबी हुई थी अंधेरे में गम के
वह कौसे-कुजह मुस्कुराने लगी है
नयी एक झंकार उठी साजे-दिल से
उम्मीद एक नग्मा-सा गाने लगी है
उलट दी जुनूंने बिसाते-मुहब्बत
खिरद मात पर मात खाने लगी है

इस दशा में है 'समाधि'। इस दशा में यहां बहुत मेरे संन्यासी हैं। दूर की आवाज करीब आने लगी है। कोई गीत भीतर फूटने लगा है। कोई नग्मा जगने लगा है। कोई सुगंध प्रकट होने लगी है। उलट दी जुनूंने बिसाते-मुहब्बत। मस्ती, मादकता, पागलपन का आविर्भाव हो रहा है। धन्यभागी हैं वे, जिनके जीवन में प्रभु का पागलपन आ जाए। और पागलपन के आते ही सारा खेल बदल जाता है।

उलट दी जुनूंने बिसाते-मुहब्बत
खिरद मात पर मात खाने लगी है

बुद्धि हारने लगती है, हृदय जीतने लगता है। भाव जीतने लगते हैं। विचार हारने लगते हैं।

शुभ है। सत्संग का लाभ लो, लेकिन ध्यान को मत छोड़ देना। यह सत्संग का लाभ, समाधि, तू इसीलिए ले पा रही है कि ध्यान किया है। और हर सत्संग के बाद ध्यान की गहराई बढ़ती जाएगी। दोनों एक-दूसरे को सहारा देते हैं। दोनों एक-दूसरे के सहारे ऊपर उठते जाते हैं। इन्हीं दोनों के सहारे किसी दिन गौरीशंकर का शिखर तुम्हारे भीतर प्रकट होता है। इन दोनों को मिलने दो। इस दोनों के मिल जाने का नाम योग है।

तुम्हारे ध्यान और तुम्हारी प्रीति को मिलने दो। तुम्हारे पुरुष और तुम्हारी स्त्री को मिलने दो। अर्धनारीश्वर बनो।

मिलन की मन में जोत लगा ले, मिलन का करले ज्ञान
आप ही अपने दिये बुझाकर, घर को करें जुल्मात

अपने चमन को आप ही फूंकें, आप ही सेंकें हाथ
आप ही खोटी चालें सोचें, आप ही खायें मात
अपने चप्पू आप ही तोड़ें तूफान में दिन-रात
अपनी नैया आप डुबोए बन कर खुद तूफान
मिलन की मन में जोत लगा ले, मिलन का करले ज्ञान

ये चप्पू हैं। तुमने देखा, चप्पू दो रखने पड़ते हैं। एक चप्पू से नाव नहीं चलती। कभी एक चप्पू से नाव चला कर देखी, गोल चक्कर खाने लगेगी। यात्रा नहीं होगी कोल्हू का बैल बन जाएगी। कभी चलाना जा कर नदी में जाकर एक चप्पू से चलाना। बस नाव गोल-गोल घूमने लगेगी अपनी ही जगह पर। उस पार जाना हो तो दो चप्पू चाहिए। सत्संग और ध्यान में चुनना नहीं है, दोनों के पंख बना लेने हैं, दोनों के सहारे उड़ जाना है।

तीसरा प्रश्नः क्षमा करें, आपको समझने में मुझसे बहुत भूल हुई। बहुत बार संदेह ने मेरा पीछा किया। फिर क्षमा मांगता हूं। आपने अनेक मार्गों का प्रतिपादन किया है। क्या मैं पूछ सकता हूं कि आपकी देशना का सार-सूत्र क्या है?

मिटो। किस बहाने मिटते हो, फर्क नहीं पड़ता—बस मिटो। प्रार्थना में मिटो कि पूजा में, कि भजन में कि कीर्तन में, कि ध्यान में कि सत्संग में—मिटो। विधियां अलग हैं। कोई जहर खा कर आत्मघात कर लेता है। कोई गोली मार कर आत्मघात कर लेता है। कोई रस्सी से लटक जाता है, आत्मघात कर लेता है। कोई नदी में कूद जाता है, आत्मघात कर लेता है। कोई रेल की पटरी पर सो जाता है, आत्मघात कर लेता है। वे विधियां अलग हैं, मगर आत्मघात एक है। ऐसे ही ये सब विधियां अलग है, लेकिन मूल में तो आत्मघात है।

मिटो! अहंकार समाप्त हो जाए। यह असली आत्मघात है, जो मैं तुम्हें सिखा रहा हूं। शरीर को मिटा कर तो कुछ खास मिटता नहीं, फिर लौट आओगे—और फिर ऐसे ही शरीर में लौटोगे। क्योंकि तुम्हारी चेतना तो बदली नहीं। चेतना के खास ढंग के कारण ही तो तुमने यह शरीर लिया था। चेतना का ढंग तो बदला नहीं। तुम फिर इसी शरीर में आ जाओगे। तुम फिर ऐसा ही शरीर चुन लोगे, ऐसा ही गर्भ चुन लोगे।

आत्मघात असली आत्मघात नहीं है, असली आत्मघात संन्यास है, इसमें तुम्हारी चेतना ही अपना व्यक्तित्व खो देती है, अपना अहंकार खो देती है। फिर लौटना नहीं है।

जो मिट गया, वह हो गया। जिसने अपने को बचाया, उसने खोया। इसलिए मेरी देशना का सार-सूत्र हैः 'मिटो'।

फिर जो विधि तुम्हें रुच जाए। सारी विधियों की जरूरत नहीं है। एक विधि काफी हो सकती है—सम्यकरूपेण की जाए। यहां इतनी विधियों पर बोल रहा हूं, क्योंकि अलग-अलग लोग है, अलग-अलग विधियां रुचेंगी। किसको कौन ठीक पड़ जाएगी, वह उस ढंग से मर जाए। वह उस ढंग से अपने को मिटा ले। तुम इसकी फिक्र मत करो, क्योंकि मिटना मिटना एक जैसा है। जहर खा कर मरे कि गोली मार कर मरे, मरना एक जैसा है। और सबका इंतजाम मत करना, क्योंकि उसमें कभी-कभी भूल हो जाती है।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन मरने गया। होशियार आदमी! उसने सोचा कि सभी इंतजाम कर लेना चाहिए। उसने ठीक ऊंची एक पहाड़ी चुनी। उसके नीचे नदी भी चुनी, कि ऊपर से कूदूंगा, कूदने में मर गया तो ठीक, नहीं कूदने में मरा तो डूब कर मर जाऊंगा। उस पहाड़ी के ऊपर एक वृक्ष लगा था, उसकी शाखा में उसने रस्सी बांधी, कि अगर इसमें भी चूक हो जाए तो गले में फंदा लगा लूंगा; फंदा लगा कर मर जाऊंगा। मगर इसमें भी चूक हो जाए—गणित वाला आदमी सब हिसाब कर लेता है—तो वह मिट्टी के तेल का एक कनस्तर भी लाया था कि ऊपर उंडेल लूंगा और आग लगा दूंगा। और कौन जाने इसमें भी चूक हो जाए तो पिस्तौल भी ले आया था। और फिर इसी में चूक हो गयी। रस्सी पर लटका, तेल डाला, झूला, गोली मारी। गोली लगी रस्सी में। सो

रस्सी कट गयी। नदी में गिरा सो आग बुझ गयी। मैंने पूछा, जब वह लौटकर चला आ रहा था दुखी, मैंने पूछा—क्यों मुल्ला, क्या हुआ? उसने कहा—क्या करें, अगर आज तैरना न आता होता तो मारे गये थे।

सारे इंतजाम करने की जरूरत भी नहीं है। समग्रता से एक इंतजाम काफी है।

चौथा प्रवचनः यदि परमात्मा सर्वव्यापी है, सबमें हैं, तो कोई भी गलत काम नहीं होना चाहिए। तब क्यों होती है चोरी-डकैती और हत्या और न जाने क्या-क्या? और अगर वही कराता है सब, तो फल भी वही क्यों नहीं भोगता है? अगर शेर में भी परमात्मा है तो फिर शेर हत्या क्यों करता है?

कोई ज्ञानी आ पहुंचे! यहां अज्ञानियों का जमघट है। यहां इतने ज्ञान की बात नहीं पूछनी चाहिए।

इस तरह के बचकाने प्रश्नों का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन पूछा है, तो अब तुम समझो! पूछा है, तो उत्तर मिलेगा।

पहली बात, इस संसार में न कोई गलत काम कभी हुआ है, न होगा। हो ही नहीं सकता। असंभव है। क्योंकि परमात्मा सर्वव्यापी है।

तुम जिसको गलत कहते हो, वह तुम्हारी धारणा है। तुम जिसको सही कहते हो, वह तुम्हारी धारणा है। तुम्हारी धारणा के कारण सही और गलत दिखायी पड़ता है। धारणा को छोड़ो, फिर क्या सही और क्या गलत है! ध्यानी को कुछ गलत नहीं दिखायी पड़ता और कुछ सही नहीं दिखायी पड़ता, क्योंकि ध्यानी की धारणा छूट गयी। एक बात तुम्हें ठीक दिखायी पड़ती हैं, दूसरे को वही गलत दिखायी पड़ती है।

समझो तुम कहते हो—चोरी पाप है। लाओत्सू वजीर हो गया था अपने देश का। एक आदमी चोरी करके पकड़ा गया। उसने चोर को और साहूकार को, दोनों को छह-छह महीने की सजा दे दी। साहूकार चिल्लाया कि तुम होश में हो कि शराब पीए हो, मामला क्या है? साहूकार को सजा! कभी सुनी?

लेकिन लाओत्सु ने कहाः अगर तुम इतना धन इकट्ठा न करते, तो चोरी होती न। तुमने सारे गांव का धन इकट्ठा कर लिया, चोरी न हो तो क्या हो? सच तो यह है कि मैंने खुद ही कई बार सोचा है। यह आदमी तो नंबर दो का कसूरवार है, नंबर एक के तुम कसूरवार हो। न तुम इतना धन इकट्ठा करते, न चोरी होती।

सम्राट के पास बात गयी। सम्राट भी बहुत हैरान हुआ कि इस तरह की सजा! लेकिन लाओत्सू की बात में बल तो था।

चोरी ठीक है या गलत? चोरी गलत—अगर तुम यह मानते हो कि लोगों का धन इकट्ठा करना बिलकुल ठीक है। तो गलत है। अगर लोगों का धन इकट्ठा करना ही गलत है, तो फिर चोरी कैसे गलत होगी? चोरी तो एक तरह का साम्यवाद है। यह व्यक्तिगत रूप से साम्यवाद फैला रहा है आदमी; बांट रहा संपत्ति लोगों की। जहां ज्यादा इकट्ठी हो गयी है, वहां से छुटकारा दिला रहा है।

पश्चिम के बहुत बड़े विचारक पुरूधो ने लिखा हैः सब संपत्ति चोरी है। संपत्ति मात्र चोरी है। तुम्हारे पास इकट्ठी कैसे होती है? किसी न किसी की जेब खाली होगी तो इकट्ठी होगी। तो साहूकार और चोर में फर्क क्या है। पुरूधो के हिसाब से? चोर छोटा-मोटा चोर है, साहूकार बड़ा चोर है—बस इतना फर्क है। क्या ठीक है, क्या गलत है?

हिंदुस्तान में तेरापंथी जैन हैं। वे कहते हैं कि राह में पड़ा हुआ आदमी अगर प्यासा मर रहा हो तो पानी भी मत पिलाना। क्यों? तुम कहोगे यह तो बात बड़ी गड़बड़ हो गयी। पानी पिलाना प्यासे को तो पुण्य है, अच्छा कार्य है न! इसको तो कोई बुरा कार्य नहीं कहेगा। तेरापंथियों से पूछो। वे कहते हैं कि अगर तुमने इसको पानी पिलाया और यह आदमी मर रहा था, पानी की वजह से बच गया और कल अगर इसने किसी की हत्या कर दी तो तुम भी जिम्मेवार होओगे। न तुम इसको पानी पिलाते, न यह बचता, न हत्या होती। तुम्हारा हाथ तो है इसमें, इससे तुम बच न सकोगे। इसलिए झंझट में न पड़ो, अपना रास्ता निकल जाओ, चुपचाप निकल जाओ।

विचार की बात तो है ही। तुमने किसी आदमी को रुपये दिये, कि वह भूखा था, और उसने जाकर शराब पी ली। न तुम रुपये देते, न वह शराब पीता। शराब पी कर आया और अपनी पत्नी को मार डाला। तुम्हारी दया ने बड़ी हानि कर दी।

क्या ठीक है! क्या गलत है!

और एक बात विचारणीय है कि क्या जिसको तुम ठीक कहते हो, वह गलत के बिना बच सकेगा? जरा सोचो! रामायण में से रावण को निकाल दो—वह गलत है—राम को बचा लो। बचेंगे राम? रावण को निकालते ही उनकी जान निकल जाएगी। उनमें कुछ न बचेगा। भूसा रह जाएगा। ऐसा लगता है गेहूं तो फिर रावण ही था। न सीता की चोरी होगी, न राम-रावण युद्ध होगा—कथा आगे ही नहीं बढ़ेगी। कथा को आगे बढ़ाने के लिए रावण एकदम जरूरी है।

यहूदा को हटा लो और जीसस की कहानी बेकार हो जाती है, क्योंकि यहूदा के कारण ही जीसस को सूली लगती है। तो ही कहानी में रस है।

तुम जरा बुरे को अलग कर लो जीवन से, असाधु को अलग कर लो—तुम्हारे साधु कहां बचेंगे? बुरे को अलग करते ही तुम्हारे महात्माओं में कितना महात्मापन रह जाएगा? किस कारण रह जाएगा? संयुक्त है जैसे दिन और रात जुड़े हैं। राम और रावण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।न तो रावण हो सकता है राम के बिना, न राम हो सकते हैं रावण के बिना।

महर्षि रमण ने ठीक उत्तर दिया था। एक जर्मन विचारक ने उनसे पूछा—यही पूछा था, जैसे तुमने पूछा है—कि दुनिया में इतना पाप क्यों है, इतनी बुराई क्यों है? पता है रमण ने क्या कहा? बड़ा अदभुत उत्तर दिया, शायद ही किसीने दिया हो? कोई ज्ञानी ही दे सकता है। रमण ने कहा—'टू थिकेन द प्लॉट।' कहानी को जरा रसपूर्ण बनाने के लिए। सघन करने के लिए। कहानी में थोड़ा मजा लाने के लिए।

तुमने देखा, तुम कोई कहानी बना सकते हो जिसमें बुराई न हो? सच तो यह है, कहा जाता है अच्छे आदमी की जिंदगी में कहानी होती ही नहीं। अच्छा आदमी बिलकुल सपाट कोरे कागज की तरह होता है। बुराई कुछ की नहीं, अच्छाई ही अच्छाई है। बैठकर घर में भजन ही करते रहे; कहानी कहां? तुमने अच्छे आदमी की कहानी देखी है? अगर अच्छे आदमी की भी कहानी होगी तो बुरे आदमी को लाना पड़ेगा, जो उनकी कहानी को जान देगा, प्राण देगा। नहीं तो रामचंद्र जी अपने लेकर सीता जी को और लक्ष्मण जी को घूमते रहते। अभी तक घूम ही रहे होते! वह तो भला रावण का...! तो घूमते रहो सीता जी को लेकर। कहां रुकोगे? कैसे रुकोगे?

इस जगत में बुराई और भलाई विपरीत नहीं हैं—परिपूर्वक हैं। रात के बिना दिन नहीं है, दिन के बिना रात नहीं है। स्त्री के बिना पुरुष नहीं है, पुरुष के बिना स्त्री नहीं है। सर्दी के बिना गर्मी नहीं है, गर्मी के बिना सर्दी नहीं है। यहां जितने द्वंद्व हैं, वे ऊपर से दिखायी पड़ रहे हैं, भीतर जुड़े हैं। यह तुम्हें स्मरण आ जाए, तो तुम समझोगे कि बड़ी प्यारी कहानी चल रही है। फिर बुरे से भी तुम नाराज नहीं हो; तुम जानते हो, वह भी अनिवार्य है। रावण की अनुकंपा है, इसलिए राम इतने प्रगाढ़ होकर प्रकट हुए हैं।

काले ब्लैकबोर्ड पर लिखना पड़ता है न सफेद खड़िया से! ब्लैकबोर्ड न हो तो सफेद खड़िया से लिख न सकोगे। रावण ब्लैकबोर्ड है, राम सफेद खड़िया की तरह उभरते हैं। रावणों को इसलिए तो काला पोता गया है। जितना काला रावण को पोतोगे, उतने ही राम सफेद हो कर प्रकट होते हैं। जीवन की यह अनिवार्यता है। यह खेल है। यहां न कुछ बुरा है न कुछ भला है।

तुम पूछते हो, 'यदि परमात्मा सर्वव्यापी है'...निश्चित सर्वव्यापी है...'सब में है, तो फिर कोई भी काम गलत नहीं होना चाहिए।' हुआ ही नहीं—मैं तुमसे कहता हूं—अभी तक। खेल ही हो रहा है यहां—क्या गलत और क्या सही! नाटक हो रहा है। तुम नाटक में बहुत ज्यादा भ्रम में पड़ गये हो।

बंगाल के एक बहुत बड़े विद्वान, ईश्वरचंद्र विद्यासागर एक नाटक देखने गये। उसमें एक आदमी है जो बड़ा बुरा चरित्र है—भ्रष्टाचारी, बलातकारी। और उसमें एक स्त्री है जो बिलकुल पवित्र है, प्रार्थना की तरह पवित्र है, फूलों की तरह क्वांरी है। वह उस स्त्री को पकड़ लेता है एक जंगल में और बलात्कार करना चाहता है। सन्नाटा छा जाता है सभा में। और अचानक लोग चकित हो जाते हैं, ईश्वरचंद्र छलांग लगाकर पहुंच गये मंच पर, निकाल लिया जूता और लगे पीटने उसको! किसी की समझ में नहीं आया कि यह हुआ क्या, मामला क्या है! उस आदमी ने जूता उनका हाथ में ले लिया और सिर से लगा लिया। जब उसने सिर से लगाया, तब उन्हें होश आया, कि यह नाटक है।

अच्छे-बुरे की आदत! भले आदमी! यह बर्दाश्त के बाहर हो गया। उस आदमी ने कहाः जूता मैं दूंगा नहीं। यह मेरा पुरस्कार है। आप जैसा आदमी धोखे में आ गया, इससे बड़ा प्रमाणपत्र और और क्या होगा मेरे नाटक का? उसने जूता नहीं दिया सो नहीं दिया। वह जूता अब भी सुरक्षित है कलकत्ते में। उसका परिवार उसे संभाल कर मंजूषा में रखे हुए हैं कि ईश्वरचंद्र विद्यासागर धोखा खा गये, यह प्रमाण है कि जरूर यह अभिनेता कुशल रहा होगा, अदभुत रहा होगा! ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि लगा कि बिलकुल सच हो रहा है। इतना सच कि बचाने कि जरूरत आ गयी।

जो जानते हैं उनके लिए यह पृथ्वी बड़ा मंच है। यहां न बुरा कभी हुआ है, न होता है। यहां बुरा-भला सब नाटक का हिस्सा है—'टू थि केन द प्लॉट'। कही को जरा रसपूर्ण बनाने के लिए। राम अकेले-अकेले आएंगे, दिखायी भी न पड़ेंगे, रावण को लाना पड़ता है। रावण अकेला आएगा तो भी राम के बिना कोई रस नहीं होगा उसके जीवन में। जो इस तरह देखेगा, वह मुक्त हो जाएगा—शुभ-अशुभ दोनों से। और शुभ-अशुभ से मुक्त हो जाना संतत्व है। साधु-असाधु से मुक्त हो जाना संतत्व है।

इसलिए ध्यान रखना, संत का अर्थ साधु मत करना। साधु तो संत है ही नहीं। साधु कैसे संत होगा?—अभी असाधु से लड़ रहा है। संत तो वह है, जिसे दिखायी पड़ गया साधु-असाधु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अब न जो साधु रहा, न असाधु रहा, जो दोनों के पार खड़ा हो गया, साक्षी हो गया, द्रष्टा हो गया।

वही द्रष्टा होना मैं तुम्हीं यहां सिखा रहा हूं। इसलिए बहुतों को अड़चन होती है। वे यहां आकर सोचते हैं कि अरे! यहां बुरा-भला सब चल रहा है! वे सोच कर आए थे कि लोग बैठे होंगे झाड़ों के नीचे अपनी-अपनी माला लिये, राम-राम जप रहे होंगे। यहां हजार काम हो रहे हैं। यहां रामचंद्र जी सीता को लिये जा रहे हैं। यहां रावण जी पीछे लगे हैं, यह सीता को भगाने का आयोजन कर रहे हैं! यहां पूरी रामलीला हो रही है!

तुम आते हो, तुम बड़ी बेचैनी में पड़ जाते हो। तुम सोचते थे रामचंद्र जी बैठे होंगे, सीता जी बैठी होंगी—सीता जी चरखा चला रही होंगी, खादी बुन रही होंगी; रामचंद्र जी मक्खी उड़ा रहे होंगे। करेंगे क्या बैठे-बैठे!

मेरी दृष्टि में जीवन जैसा है, स्वीकार्य है। जीवन प्यारा है; उसमें बुरा-भला सब अंगीकार होना चाहिए। उसमें खट्टा-मीठा सब चाहिए। नहीं तो जीवन एक स्वाद का होगा तो उसके आयाम खो जाएंगे। जीवन बहु-आयामी होना चाहिए। हां, इस सब के भीतर साक्षी जगना चाहिए। सब चलता रहेगा ऐसा, साक्षी जग जाना चाहिए।

और निश्चित ही रावण का साक्षी जगा होगा—उतना ही, जितना राम का। इसलिए लक्ष्मण को भेजा है—रावण से शिक्षा लेने! कि जा, मरते रावण से कुछ सीख ले! कहा कि वह महाज्ञानी था। क्या बात होगी? क्या राज होगा? साक्षी था। सीता को चुराकर तो ले गया था, लेकिन सीता के साथ कुछ दुर्व्यवहार किया नहीं। सीता को सुरक्षित रखा था। एक खेल था, जैसे पुरा कर रहा था। एक खेल था, उसका पार्ट निभा रहा था। लेकिन कहीं दूर खड़ा सब देख भी रहा होगा। राम के हाथ से मर कर प्रसन्न था, आनंदित था। कहते हैं राम के हाथ से मरने के कारण मुक्त हो गया। राम के हाथ से मरना यानी गुरु के हाथ से मरना।

जिस आत्महत्या की मैं तुम्हें अभी बात सिखा रहा था, रावण ने राम को उकसा कर, राम के हाथ से अपनी हत्या करवा ली।

इससे शुभ और क्या हो सकता है?

कहानी को जरा नये ढंग से देखो, जरा मेरी आंखों से देखो! और तब तुम पाओगेः यहां कुछ बुरा नहीं है, कुछ भला नहीं है। यहां कांटे फूलों की रक्षा कर रहे हैं, उनके दुश्मन नहीं हैं। यहां फूल कांटों के संगी-साथी हैं, सखा हैं, उनमें कोई शत्रुता नहीं है। यह आदमी की बुद्धि है, जो निर्णय कर लेती है—यह अच्छा, यह बुरा। निर्णय एक दफा कर लिया, तो फिर वैसा दिखायी पड़ने लगता है। फिर वैसा दिखायी पड़ने लगता है, फिर सवाल उठता है कि परमात्मा बुरे-भले को क्यों मौका दे रहा है, भला ही भला होना चाहिए।

परमात्मा तुम्हारी बुद्धि के अनुसार नहीं चल रहा है। तुम्हारी बुद्धि बड़ी छोटी है। तुम्हें क्या बुरे का पता है, क्या भले का पता है?

अब तुम परेशान हो रहे हो कि एक सिंह आया और आदमी को झपट कर खा गया, तो यह बड़ा बुरा हो रहा है। क्यों बुरा हो रहा है? सिंह को भूखा मारना है? सिंह की भी तो सोचो! वह सिर्फ अपना नाश्ता कर रहा है।

अब आदमी बड़ा होशियार है। जब सिंह को मारता है, उसको कहता है—शिकार, खेल। और जब सिंह मारता है तब नहीं कहता शिकार, तब खेल नहीं मानता। यह तो बड़ी बेईमानी हो गयी। तुम सिंह को मारो, तो खेल खेलने गये थे—आखेट, क्रीड़ा! ऐसे तुमने नाम बना रखे हैं। और जब सिंह कभी शिकार कर जाए, तो नर भक्षी है। क्यों साहब, उनको भी कुछ खेलने दोगे कि नहीं!

सब खेल-खेल में हो रहा है। तुम्हारा भी खेल में हो रहा है, उनको भी खेल चल रहा है।

जिस दिन तुम साक्षी-भाव से देखोगे...आदमी की तरह मत देखो, क्योंकि उसमें तो पक्षपात हो गया। तुम जब आदमी की तरह देखते हो, तो पक्षपात हो गया; फिर तुम सिंह की तरह नहीं देखते। पक्षपात छोड़ कर साक्षी-भाव से देखो, तो तुम देखोगे, क्या फर्क पड़ता है, तुमने सिंह खाया है कि सिंह ने तुमको खाया है? राम ही राम को खा रहा है! राम ही राम को पचा रहे हैं! ठीक चल रहा है। कुछ अड़चन नहीं है।

परम ज्ञानी को अगर सिंह खा जाएगा, तो वह यही जानता है कि ठीक है, परमात्मा ने मुझसे आत्मसात कर लिया—सिंह के द्वारा; सिंह के रूप में आया और मुझे ले गया।

अठारह सौ सत्तावन की गदर में ऐसा हुआ। एक संन्यासी तीस वर्ष से मौन था और नग्न भी था। चांदनी रात थी, अपनी मस्ती में घूमता हुआ जा रहा था। वह भूल से अंग्रेजों की छावनी में पहुंच गया। वे तो समझे कि कोई जासूस है। उन्होंने उसे पकड़ लिया। और तब वह बोले नहीं, तब तो पक्का समझ गये कि जासूस है, और नग्न है। उनको तो बड़ा क्रोध आया। किसी ने एकदम संगीन खींच कर उसकी छाती से लगा दी। बस वह आखिरी शब्द एक बोला। जैसे ही उसे मारा गया, उसकी छाती में संगीन भोंक दी गयी, उसने आखिरी शब्द जो बोला,वह महावाक्य था उपनिषद का—'तत्वमसि', तू भी वही है। क्या कह रहा है यह संन्यासी यह कह रहा हैः मैं तुझे पहचानता हूं, तू किसी रूप में आ। तू आज हत्यारे के रूप में आया है, तू मुझे धोखा न दे पाएगा—'तत्त्वमसि'!

उस संन्यासी ने कसम ली थी कि जब परमात्मा से मिलन होगा, तभी बोलूंगा। तीस साल नहीं बोला था, आज बोला। परमात्मा ने खूब ढंग चुना आने का।

साक्षी के लिए कुछ बुरा नहीं, कुछ भला नहीं। सब लहरें है। और सब एक की ही लहरें हैं।

तुम पूछते हो, 'और अगर वही कराता है सब कुछ, तो फल भी वही क्यों नहीं भोगता?' तुम क्या सोचते हो, तुम भोग रहे हो? वही भोग रहा है। कराता भी वही भोगता भी वही। कर्ता भी वही, भोक्ता भी वही। तुम्हारी भ्रांति है कि तुम कर रहे हो और तुम्हारी भ्रांति है कि तुम भोग रहे हो। तुम हो कहां? तुम्हारा होना भ्रांती है, भ्रम है, माया है। तुम तो लहर हो उसीकी। जो कुछ भी हो रहा है, उस पर ही हो रहा है। ऐसा ध्यान जब तुम्हारा खुलेगा, साफ होगी दृष्टि, तो दिखायी पड़ेगा।

लेकिन इस तरह के प्रश्नों को उठाकर तुम कहीं न पहुंचोगे। इन प्रश्नों का कोई बौद्धिक उत्तर नहीं है। अनुभूति ही उत्तर हो सकती है। थोड़े साक्षी बनो। थोड़े ध्यान में जाओ। तुम्हें दिखायी पड़ने लगेगा जो मैं कह रहा हूं। मेरी बात मान लेने से हल नहीं होगा, क्योंकि तुम्हारा अनुभव तो विपरीत ही रहेगा। एक बिच्छू आकर काट जाएगा और सब भूल जाएगा। तुम कहोगे—यह बिच्छू! इसमें कैसे परमात्मा देखें! और फिर परमात्मा ने इसमें जहर क्यों रखा है? 'टू थिकेन द प्लॉट'। नहीं तो मजा ही क्या होता है? वह जो डंक दे गया है तुम्हें जोर से, इसमें मजा ही नहीं रह जाता। तुम क्या सोचते हो उसमें कॉफी या चाय रख देता? सब पोच हो जाता, खेल का मजा ही चला जाता। उसके डंक में रखा है जहर, कि दे जाए मजा तुम्हें! मगर वही है। वही जहर है, वही अमृत है।

जरा-सा कांटा चुभ जाता है और तुम्हें सवाल उठने लगते हैं—बड़े दार्शनिक सवाल तुम सोचते हो—कि कांटा क्यों चुभा? अगर परमात्मा सर्वव्यापी है, तो कांटा क्यों चुभा?

कांटे में भी वही चुभ रहा है, लेकिन हम भेद किये बैठे हैं। हमारा परमात्मा से मतलब कुछ ऐसा होता है कि जो-जो हम चाहें, वही होना चाहिए, तो परमात्मा है। तो सब ईसाई चाहते हैं, हिंदू समाप्त हो जाएं, ईसाई होने चाहिए, तो वे मानेंगे कि परमात्मा है। और हिंदू चाहते हैं, कि सब ईसाई समाप्त हो जाएं, तो परमात्मा है। मस्जिद जो जाता है वह सोचता है, सब मस्जिद जाएं तो परमात्मा है। मंदिर क्यों हैं? ये मंदिर नहीं होने चाहिए। और मंदिर जानेवाला सोचता है, सब मस्जिदें गिर जाएं।

अगर तुम इस तरह सोचोगे, तो तुम पाओगे कि ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसको ठीक मानने वाले सारे लोग राजी हो जाएं, या गलत मानने के लिए सारे लोग राजी हो जाएं। परमात्मा किसकी सुने?

मैंने सुना है कि पहले वह यहीं जमीन पर रहता था। बीच बाजार में ही रहता था। मगर लोगों ने उसे बहुत परेशान कर दिया। लोग सुबह से शाम तक कतार लगाए, उसके सामने खड़े रहें। रात उसको जगा-जगा कर कहें कि इस वक्त ऐसा होना चाहिए, इस वक्त ऐसा होना चाहिए। आज पानी गिराओ! और दूसरा आकर उसी वक्त कहता है कि आज पानी मत गिराना, आज मैंने घड़े बनाए हैं, सूख जाने दो! और एक कहता है, आज मैंने बीज डाले हैं, खेत में, पानी गिराओ। और कोई कहता है, धूप निकालो, आज कपड़े सुखाने हैं। घबड़ा गया होगा—पागल गया होगा! भाग खड़ा हुआ। तब से लौट कर नहीं देखा उसने यहां। और जहां-जहां आदमी पहुंच जाता है, वहां से भाग जाता है। यहां से गया तो हिमालय पर रहने लगा। फिर आदमी हिमालय पहुंच गया, उसने हिमालय छोड़ दिया। फिर वह चांद पर रहने लगा। अब आदमी चांद पर पहुंच गया, उसने चांद छोड़ दिया। तुम यह मत सोचना कि चांद पर वह रहता नहीं था—रहता था, तुम्हारे पहुंचने की वजह से भाग गया। तुम जहां जाओगे, वहीं से भाव जाएगा। तुमसे डरता है। तुम ऐसे सवाल उठाते हो!

इन सवालों का कोई बौद्धिक हल नहीं है। साक्षी बनो। तुम्हारे साक्षी में ये सारे सवाल गिर जाएंगे। और जिस दिन तुम्हें राम और रावण में एक दिख जाएगा, उस दिन जानना कि कुछ हुआ। जब तक रावण तुम्हें दुश्मन दिखायी पड़े और राम तुम्हें प्यारे दिखायी पड़ें, तब तक समझना, अभी कुछ हुआ नहीं। फूल और कांटा जिस दिन एक हो जाएं, सुख और दुख जिस दिन एक हो जाएं, उस दिन जानना, कुछ हुआ है। उसी दिन सारे प्रश्न समाप्त हो जाते हैं।

पांचवां प्रश्नः आपके संन्यासी, स्वामी ब्रह्म वेदांत, दूसरे संन्यासियों तथा लोगों को गुमराह कर रहे हैं। वे अपना वर्चस्व जमाने के लिए आपका दुरुपयोग कर रहे हैं। वे आपकी दी हुई माला भी नहीं पहनते, और न गैरिक वस्त्र ही पहनते हैं, और इसके बचाव में कहते हैं कि भगवान ने ऐसा करने की मुझे आज्ञा दी है, क्योंकि मैं परम-अवस्था को उपलब्ध हो गया हूं, इसलिए माला या गैरिक वस्त्र की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान ने इन्हें मुझसे मुक्त कर दिया है। वे महीने में एक-दो स्थानों पर जाकर शिविर लेते हैं। वहां न आपके प्रवचन सुनाए जाते हैं, न आपके बताए ध्यान ही कराए जाते हैं। श्री ब्रह्म वेदांत जी को देश के अन्य भागों में भी आपके संन्यासी शिविरों में बुलाते हैं। उनके साथ-साथ पोरबंदर के श्री अनंत जी तो और भी गजब ढाते हैं। वे अपना

पेशाब सबके ऊपर छिड़कते हैं। और वहां दारू, गांजा, चरस की महफिल जमती है। और यह सब आपके नाम पर होता है, जिसके बारे में लोगों में गलतफहमी पैदा होती है। क्या हम यह सब चुपचाप देखते रहें? हम क्या करें प्रभु?

समाधि, ब्रह्म वेदांत पर मुझे दया आती है! कुछ होने के करीब ब्रह्म वेदांत की चेतना आती थी और चूक गये। करुणा के पात्र हैं।

इस प्रश्न का उत्तर इसलिए दे रहा हूं कि यह औरों के भी काम का होगा। अक्सर ऐसा हो जाता है, जब ध्यान की थोड़ी-सी भी झलक मिलती है, तो अहंकार उस पर कब्जा कर लेता है। ऐसा निर्मला श्रीवास्तव को हुआ, अब ब्रह्म वेदांत को हो गया है। ऐसा औरों को भी हुआ है। कुछ दो-चार पश्चिम गये है संन्यासी, उनको हो गया है। अब पचास हजार संन्यासी हैं मेरे, यह बिलकुल स्वाभाविक है, दो-चार-पांच को यह झंझट होनेवाली है।

जब ध्यान की पहली झलक आती है तो लगता है, हो गया है। अब क्या करना है और? अब पूजा लेने का क्षण आ गया। अब पूजा करने का वक्त गया। अब घोषणा कर दो कि मैं पहुंच गया हूं, सिद्ध हो गया हूं, भगवत्ता पा ली है।

अहंकार बैठा है पीछे। तुम जो भी पीओगे, अहंकार उसके ही द्वारा अपने को सिद्ध करने की कोशिश करेगा। और दया इसलिए आती है कि ब्रह्म वेदांत सरल व्यक्ति हैं। बेईमान नहीं हैं, धोखेबाज नहीं हैं। लेकिन अहंकार के चक्कर में पड़ गये। और जब अहंकार पीछे से आता है, तो वह सब करवाएगा। वह कहेगा, छोड़ो माला! क्योंकि अहंकार यह बर्दाश्त नहीं कर सकता, कि तुम किसी और की माला पहनो! छोड़ो गैरिक वस्त्र! अब तो तुम परम मुक्त हो गये।

और मैंने कभी उनसे नहीं कहा कि तुम माला छोड़ दो। और न ही कभी कहा कि तुम गैरिक वस्त्र छोड़ दो। और न ही मैंने उनसे कहा है कि तुम पहुंच गये।

मेरी प्रतीक्षा करो थोड़ा। तुम में से भी कई को ये भ्रांतियां आएंगी, तब थोड़ी प्रतीक्षा करना। मैं यहां हूं! जब मैं समझूंगा कि अब तुम अहंकार की सीमा के बाहर हो गये और कोई खतरा नहीं, तो मैं कहूंगा कि तुम पहुंच गये। तुम्हें इतनी जल्दी क्या है? तुम इतना अधैर्य क्यों कर रहे हो? मैं तो चाहूंगा कि तुम सब भगवत्ता को उपलब्ध हो जाओ, एक भी पीछे न छूटे। लेकिन तुम जल्दबाजी करोगे तो चूक जाओगे। और जो मेरे माध्यम से मेरे साथ चलकर भगवत्ता को उपलब्ध होगा, मैं उससे कहूंगा भी कि तू माला छोड़ दे तो नहीं छोड़ सकता। मैं उससे कहूंगा कि अब छोड़ दे ये गैरिक वस्त्र, तो वह मेरी नहीं सुनेगा। वह कहेगा कि जिस सहारे मैं आया हूं, उसके प्रति कृतज्ञता, उसके प्रति अनुग्रह का भाव। बुद्ध के शिष्य सारिपुत्र, मोदगलान, महाकाश्यप ज्ञान को उपलब्ध हो गये, तो बुद्ध ने उनको कहा कि अब तुम जाओ और खबर पहुंचाओ लोगों तक। उन्होंने अपने पीतवस्त्र नहीं छोड़ दिये। सारिपुत्र को जब भेजा तो सारिपुत्र रोता हुआ गया। और जब उसके साथियों ने पूछा, आप रोते क्यों हैं, क्योंकि बुद्ध ने कहा कि तुम भी बुद्ध हो गये—उन्होंने कहा, वह तो ठीक है कि मैं हो गया, लेकिन जिसके द्वारा हुआ हूं, उससे दूर जाना पड़ रहा है। उससे तो अच्छा था, अभी न होता बुद्ध!

सारिपुत्र के वचन बड़े बहुमूल्य हैं! 'इससे तो अच्छा था अभी न होता बुद्ध, अगर मुझे यह पता होता कि बुद्ध को छोड़ कर जाना पड़ेगा मुझे बुद्ध होते ही तो मैंने इसको टाला होता। उनके चरणों में बैठने का मजा ऐसा था, आनंद ऐसा था। बुद्धत्वता एक दफे छोड़ दी होती। यह तो फिर भी हो सकती थी कभी, लेकिन बुद्ध का संग-साथ, उनका सत्संग...

गया—आज्ञा दी थी बुद्ध ने तो गया। लेकिन जहां भी होता था, सुबह-सांझ जिस तरफ बुद्ध होते, उसी तरफ साष्टांग दंडवत करता। उसके शिष्य पूछते, अब आप स्वयं बुद्ध हो गये हैं, आप किसको दंडवत करते हैं? कोई दिखायी तो पड़ता नहीं। तो वह कहता, मेरे गुरु उस दिशा में होंगे, उनके तरफ अनुग्रह का भाव। रोता! जब बुद्ध का शब्द आ जाता उसके मुंह पर उसकी आंखों से झड़ी लग जाती।

तो जिसको हो जाएगा, मैं कहूंगा। तुम जल्दी मत करो।

अब ब्रह्म वेदांत व्यर्थ की झंझट में पड़ गये हैं। उपद्रव में पड़ गये हैं। याद दिलाओ उन्हें, कि इस भ्रांति को छोड़ें। अभी कुछ हुआ नहीं है। होने के करीब था और हो सकता था— और इस उपद्रव ने सारे होने को अवरुद्ध कर दिया है।

पूछा तुमने : आपके संन्यासी स्वामी ब्रह्म वेदांत दूसरे संन्यासियों तथा लोगों को गुमराह कर रहे हैं।

गुमराह वे कर सकते हैं। इससे दूसरों को सावधान होना चाहिए। इस तरह की घटनाएं रोज घटेंगी। ये बिलकुल स्वाभाविक हैं, सदा घटती रही हैं। बुद्ध का चचेरा भाई, देवदत्त, घोषणा कर दिया था। जब उसने देखा सारिपुत्र और मोदगलान और महाकाश्यप जैसे लोग ज्ञान को उपलब्ध हो गये, तो देवदत्त से बर्दाश्त नहीं हुआ—वह चचेरा भाई था। बुद्ध के साथ बड़ा हुआ उसी राजमहल में बड़ा हुआ, उसी राजकुल का था, भाई ही था, और दूसरों की घोषणा हो गयी, और मेरी घोषणा नहीं की बुद्ध ने! अब बुद्ध कैसे घोषणा करें, अभी घोषणा की बात ही नहीं आयी थी! तो उसने खुद ही घोषणा कर दी। वह पांच सौ बुद्ध के भिक्षुओं को अपने साथ लेकर अलग हो गया। पांच सौ भिक्षु उसके साथ चले गये। तो लोग भ्रांति में पड़ सकते हैं। और उसने घोषणा कर दी कि मैं खुद बुद्ध हूं। और बुद्ध के पास जाने की अब कोई जरूरत नहीं है।

फिर उसने इतना ही नहीं किया, उसने बुद्ध को मार डालने की भी चेष्टा की। क्योंकि बुद्ध जब तक मौजूद हैं, तब तक वह कितना ही कहे, दस-पचास, सौ-दो-सौ, पांच सौ लोगों को भी अपने साथ इकट्ठा कर ले, तो भी हजारों लोग तो बुद्ध के पास जा रहे थे। वह उसके कष्ट का कारण था। उसने पागल हाथी बुद्ध पर छुड़वाया।

बड़ी प्यारी घटना घटी—जब पागल हाथी बुद्ध के सामने आया, वह ठिठक कर खड़ा हो गया और झुक गया। उसने सिर बुद्ध के चरणों में लगा लिया। पागल हाथियों में भी इतनी समझ होती है, कहानी का इतना ही अर्थ है। मगर अहंकार पागल हाथियों से भी ज्यादा पागल होता है।

तो सावधान रहें मेरे संन्यासी! इस तरह के लोगों को कोई साथ देने की जरूरत नहीं। इस तरह के लोगों को समझाओ। उनको चूक मत जाने दो; उन पर दया करना, उन पर नाराज मत होना, उनके दुश्मन मत हो जाना, उनको समझाना। भूलों को घर वापस लाना। उनका विरोध नहीं करना है। लेकिन उनको सहयोग भी मत देना, क्योंकि वे खुद भ्रांति में हैं और तुम्हें भ्रांति में डालेंगे।

'वे अपना वर्चस्व जमाने के लिए आपका दुरुपयोग कर रहे हैं, यह होगा। कुछ संन्यासियों की खबरें आती हैं, कोई मेरे नाम पर जाकर पैसे इकट्ठे कर लेता है, कोई मेरे नाम पर जाकर लोगों को समझाता है कि मैंने उसे सिद्धपुरुष घोषित कर दिया है। अब चूंकि संख्या संन्यासियों की बड़ी है—और रोज बढ़ती जानेवाली है, इस पूरी पृथ्वी को गैरिक कर देना है—तो ये सारी कठिनाइयां आएगी। यह बिलकुल स्वाभाविक है। इनके लिए तुम्हारे सामने सूत्र भी होने चाहिए साफ कि तुम क्या करो।

इसलिए 'समाधि' का प्रश्न महत्वपूर्ण है। उसने पूछा है, हम क्या करें?

पहली तो बात : क्रोध मत करना! दया करना। तुम्हारा संगी-साथी कोई भटक जाए तो उसे रास्ते पर वापस लाने की फिक्र लेना। उसे एकांत में प्रेम से समझाना। उसे मेरे पास ले आना।...वह ब्रह्म वेदांत यहां भी आने से बचते हैं। उनको मैंने खबरें भिजवायीं कि तुम यहां आ जाओ, मेरे सामने थोड़ी बात कर लो। तो वह आंख से आंख मिलाने से डरते हैं। वह यहां आएं कैसे? आएंगे तो कहेंगे क्या? उत्तर क्या होगा? जो झूठ वह दूसरों से कह रहे हैं, वह मुझसे तो नहीं कह सकेंगे। मैंने तो उनसे कभी कहा नहीं कि माला छोड़ दो, कि गैरिक वस्त्र छोड़ दो। मैंने कभी कहा नहीं कि तुम पहुंच गये हो।

उनको समझाओ।

और ध्यान रखो कि उनके द्वारा किसी और संन्यासी को व्यर्थ का भटकावा पैदा न किया जाए। उनके शिविर इत्यादि लेना बंद करो! अब मेरे संन्यासी सोचते हैं कि मैंने कह दिया है ब्रह्म वेदांत पहुंच गये हैं, इसलिए अब

इनका शिविर ले लो, इनका सत्संग करो। ब्रह्म वेदांत लोगों को लिखते हैं कि भगवान ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं प्रचार करूं। मैंने उन्हें कोई आज्ञा नहीं दी है।

इस संबंध में स्मरण रखो कि जब भी कोई आदमी इस तरह की बात तुमसे आकर कहे, तो जब तक उसके पास आश्रम का पत्र न हो मेरी तरफ से तब तक तुम कभी सुनना मत। न तो पैसा दो, न सम्मान दो, न किसी तरह के शिविर आयोजित करो। क्योंकि बहुत झंझट खड़ी हो रही है। रोज लोग आकर यहां खबर लाते हैं, कि हमसे फलां संन्यासी दस हजार रुपये ले गया; उसने कहा मैं फाउंडेशन की तरफ से, आश्रम की तरफ से आया हूं, बड़ी जरूरत है। अब यह कठिन होगा इसको तय करना कि कौन, कहां से, किससे मांग कर ले जाएगा।

और लोग सरल है, और लोगों का मुझसे प्रेम है; वे सोचते हैं कि जरूरत होगी, संन्यासी को भेजा है, तो दे दो, पैसे दे दो; चलो ले जाने दो, कोई बात नहीं।

मैंने किसी को पैसा लेने नहीं भेजा है। पैसे के संबंध में तुम चिंता ही मत करो। पैसे से मेरी कुछ दोस्ती है। आ ही जाता है। तुम उसकी फिकिर ही मत करो। तुमसे लेना ही नहीं है। तुमसे कोई लेने आए, उसको देने की जरूरत नहीं है। और न ही मैंने किसी को अधिकार दिया है। हां, जिनको मैं भेजता हूं आश्रम से, उनका खयाल रखो। 'मृदुला' आती है आश्रम की तरफ से, 'चैतन्य भारती'। दो व्यक्ति आश्रम की तरफ से आते हैं; कोई तीसरा व्यक्ति नहीं आता। और जब भी कोई आए, उससे तुम पत्र मांगना; ताकि इस तरह की गलतियों को रोका जा सके।

'श्री ब्रह्म वेदांत जी को देश के अन्य भागों में भी आपके संन्यासी शिविरों में बुलाते हैं। उनके साथ-साथ पोरबंदर के श्री अनंत जी तो और भी गजब ढाते हैं'।

'अनंत जी' मालूम होता है श्री मोरारजी देसाई के शिष्य हो गये। वे अपना पेशाब सबके ऊपर छिड़कते हैं।

अनंत की तो कोई क्षमता नहीं है। अनंत तो व्यर्थ उपद्रवी है। ब्रह्म वेदांत की तो कुछ क्षमता थी। ब्रह्म वेदांत तो ध्यान के करीब आ रहे थे। बात जमी जाती थी कि अपने हाथ से उखाड़ ली। फिर जम सकती है। कुछ बिगड़ा नहीं गया है। और उनकी बात बिगाड़ने में अनंत का हाथ है। अनंत उपद्रवी है। गांजा, चरस, यह सब जमता होगा। इसी को जमाने के लिए ब्रह्म वेदांत को आड़ बना लिया है। ब्रह्म वेदांत सीधे आदमी हैं। अनंत उपद्रवी है। तो वह तो कई खेल करेगा, कई तरह के उपद्रव करेगा।

इस तरह की बातों को सहारा मत दो। इस तरह की बातों के बिलकुल रोक दो। इनको जड़ से काट दो। शुरू से ही काट दो। यह मेरे बाद तो इस तरह की बहुत बातें चलेंगी, तब बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसलिए अच्छा है कि मेरे रहते तुम ये सारे सूत्र खयाल में ले लो। मेरे सामने ही मत चलने दो, ताकि मेरे बाद भी न चल सके।

और जब मैं मौजूद हूं, तो सीधे मुझसे पूछ ले सकते हो। अब यह क्या पागलपन है? किसी मादक द्रव्य से, कोई आदमी समाधि को उपलब्ध नहीं होता। लेकिन सदियों से इस देश में यह भ्रांति रही है, क्योंकि मादक द्रव्यों में एक है बात, कि उनसे झूठी समाधि पैदा हो जाती है। इसलिए सस्ता जिनको प्रचार करवाना हो...अब करते वे यह होंगे...ऐसा बहुत दफे किया गया है, किया जाता रहा है। इस तरह की धोखेधड़ी बड़ी प्राचीन है। साधुओं के अखाड़ों में यह कोशिश रही है, प्रसाद में भांग मिला देंगे। भक्त प्रसाद लेकर भांग खा जाएंगे, और फिर जब भजन होगा तो भक्त मस्ती में आ जाएंगे। और भक्त को पता ही नहीं कि वह भांग खा गया है! वह सोचेगा कि ध्यान की मस्ती है। वह सोचेगा, गुरुकृपा हो रही है। वह सोचेगा, सत्संग का लाभ मिल रहा है।

यह सदा से चलता रहा है। सोमरस से लेकर अभी तक। वेद से लेकर अब तक। साधु इस उपद्रव को फैलाते रहे हैं । यह सस्ता मामला है। किसी को ध्यान में ले जाना तो कठिन प्रक्रिया है। लेकिन किसी को ध्यान में पहुंच जाने का धोखा दे देना बहुत सरल मामला है। अब तो पश्चिम में तो गांजा-चरस से भी और ज्यादा विकसित चीजें पैदा हो गयी हैं— एल. एस. डी.। जरा-सी मात्र एल. एस. डी. की पानी में डाल दी जाए और सैकड़ों लोग मस्ती में आ जाएंगे।

सरकारें विचार कर रही हैं कि जहां लोग उपद्रवी हैं, बगावती हैं, वहां के जलस्रोतों में एल. एस. डी. डाल दिया जाए। तो लोग गड़े मस्त हो जाएंगे, उनका उपद्रव खो जाएगा। उनकी बगावत चली जाएगी। सरकारें विचार कर रही हैं इस तरह का कि आज नहीं कल, जब बच्चा पैदा हो अस्पताल में, तभी उसके भीतर कुछ तत्व डाल दिया जाए, जिसके कारण उसके भीतर कभी बगावत न हो। वह हमेशा 'जी हुजूर' रहे।

ये सारे मादक द्रव्य 'जी हुजूरी, पैदा करवा देते हैं। ये तुम्हारी जीवन-चेतना को निखारते नहीं, और न तुम्हें ध्यान की तरफ ले जाते हैं। और इस तरह के सब उपद्रव चलते रहे हैं। पेशाब छिड़की जाती रही है, पेशाब प्रसाद में दी जाती रही है। और जितनी मूढ़तापूर्ण बात हो, उतनी ही लोगों को जंचती है। कुछ मूढ़ता में भी बड़ा आकर्षण है। इसको समझने की कोशिश करना।

तुम्हारे तथाकथित परमहंस मलमूत्र सेवन भी करते रहे हैं, प्रसाद में भी मिलाते रहे हैं। ये विक्षिप्तता के लक्षण हैं। इसलिए मैं मोरारजी देसाई को फिफ्टी परसेंट परमहंस कहता हूं। ये विक्षिप्तता के लक्षण हैं। ये रुग्णता के लक्षण हैं। यह चित की स्वस्थ दशा नहीं है।

इस तरह का कोई कृत्य कहीं होता हो, तत्क्षण रोकना। इस तरह के कृत्य में मत पड़ना। और इस तरह के कृत्य करनेवाले बड़े उपाय से चलाते हैं व्यवस्था। अब मुझे पता चला है कि वहां वे करते क्या हैं? जो भी पहुंचता है, उसी को कहते हैं—'आओ भगवान!' उसके पैर पड़ते हैं। अब जब तुम्हारा कोई पैर पड़ेगा—कभी तुम्हारा किसी ने पैर पड़ा नहीं—और तुम से कहेगाः भगवान! एकदम से तुम्हें ही भरोसा नहीं आता। और जब तुमसे जो 'भगवान' कह रहा है, और तुम्हारे पैर पड़ रहा है, अब यह बिलकुल स्वाभाविक हो गया कि तुम वहां किसी भी बात में कोई एतराज न उठाओगे। तुम्हें भोजन कराया जाएगा, तुम्हारे हाथ-पैर दबाए जाएंगे, तुम्हारी सेवा की जाएगी। और तुम बड़े प्रसन्न हो गये, तुम बड़े आनंदित हो गये—अब जो भी चल रहा है, चलने दो। अब तुम इसमें विरोध नहीं कर सकते। कैसे विरोध करोगे? जिन्होंने इतना सम्मान तुम्हें दिया है, उत्तर में तुम भी तो सम्मान ही दोगे न!

ये सब चालबाजियां हैं।

और ये उपद्रव सदा आते हैं। हर बुद्धपुरुष के साथ यह उपद्रव खड़ा हो जाता है। नया कुछ नहीं है; मगर सावधानी बरतनी जरूरी है।

पूछा है, 'और यह सब आपके नाम पर होता है। जिससे आपके बारे में लोगों में गलतफहमी पैदा होती है।'

गलतफहमी की कोई चिंता नहीं है, वह तो मैं खुद ही काफी पैदा कर लेता हूं। उसकी कोई चिंता नहीं है। गलतफहमी की फिक्र मत करना। फिक्र इस बात की करना कि मेरे संन्यासियों को कोई भ्रांत दिशा न मिल जाए। लोगों में गलतफहमी की कोई फिक्र नहीं है। लोगों की फिक्र कौन करता है वे क्या कहते हैं! लेकिन संन्यासी, जो कि धीरे-धीरे ध्यान की तरफ उत्सुक हुए हैं, इनको कोई गलत रास्तों पर ले जानेवाले लोग पैदा न हो जाएं, इसका खयाल रखना। इस तरह के लोग कहीं भी हों, उनको पकड़ कर यहां ले आना। उनको कहना, पहले वहां चलो। उनको रास्ते पर लाने की चेष्टा करना सब तरह से। और जाने-अनजाने किसी तरह का सहारा मत देना।

'क्या हम यह सब चुपचाप देखते रहें?'

नहीं, जरा भी चुपचाप देखने की जरूरत नहीं है। इसका मतलब यह नहीं कि तुम डंडे लेकर और ब्रह्म वेदांत या अनंत की कुटाई में लग जाओ। उससे कुछ लाभ नहीं होगा। चुपचाप नहीं देखना है। बड़ी करुणा से, बड़े प्रेम से, कोई साथी-संगी तुम्हारा भटक रहा है, उसे वापस लाना है। करना तो कुछ होगा। और अगर सजग संन्यासी रहे, तो इस तरह के उपद्रव नहीं हो सकेंगे। नहीं होने चाहिए! इनका रोका जाना एकदम अनिवार्य है।

छठवां प्रश्नः मैं कुछ भी नया करने से भयभीत होता हूं। मैं इस भय से मुक्त कैसे होऊं?

नया सदा ही भयभीत करता है। अपरिचित डराता है। लेकिन अपरिचय में ही विकास है। अनजान में ही यात्रा है। रोज-रोज पुराने को छोड़ना है, रोज-रोज नये में गति करनी है।

जैसे रोज नया सूरज उगता है सुबह, रोज नये फूल खिलते हैं सुबह, ऐसे ही तुम्हारे जीवन में भी रोज नयी रोशनी चाहिए, नये फूल चाहिए। किताबों में दबे हुए मुर्दा फूलों को लेकर मत बैठे रहो। तुम्हारी स्मृतियां किताबों में दबे मुर्दा फूल हैं। अतीत के साथ मत उलझे रहो। सुविधापूर्ण है। साहस की कोई जरूरत नहीं है अतीत के साथ जीने में। कमजोर के लिए बड़ी सुरक्षा है। लेकिन अतीत में ही डूबे रहना, तो फिर विकास कैसे करो? विकसित कैसे होओगे?

नया पुकारता है रोज-रोज। परमात्मा नित नया है, नित नूतन है। जो नये में उतर सकता है, वही परमात्मा को जान सकता है। पुराने के प्रति रोज मरना है और नये के प्रति रोज जन्मना है। और यह समय की धारा, जो जा रही है तुम्हारे पास से, फिर नहीं लौट कर आएगी। एक क्षण भी खोना मत। अतीत के साथ, पुराने के साथ गंवाया गया हर क्षण व्यर्थ होगा।

हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे। जल्दी करो, अगर तुम्हारी जीवन एक ज्योति नहीं बन सकता है, अगर अंगार लपट कर लौ नहीं बन सकता है, तो जल्दी ही राख हो जाएगा। फिर एक अवसर गया। ऐसे ही बहुत अवसर तुमने खोए हैं। अब इस अवसर को मत खोओ। मेरे साथ होने का पूरा लाभ ले लो।

हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।

जो न करेगा सीना आगे

पीठ उसे खींचेगी पीछे

जो ऊपर को उठ न सकेगा

उसको जाना होगा नीचे;

अस्थिर दुनिया में स्थिर होकर

कोई वस्तु नहीं रहती है,

हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।

ध्यान रखना, यहां कुछ भी थिर नहीं है। या तो आगे जाओ या पीछे जाओ। जाना तो पड़ेगा ही।

वैज्ञानिक कहते हैंः थिर होना असंभव है। कोई चीत थिर नहीं है। या तो रोज-रोज नये जीवन में प्रवेश करो, या रोज-रोज पुरानी मृत्यु में दबते जाओगे। छोड़ो भय! भय से भर भय करो, और किसी चीज से भय मत करो।

जलना अर्थ उन्हीं का रखता

जो कि अंधेरे में खोयों को

हाथों के ऊपर अवलंबित

आकुल, शंकित दृग कोयों को

आशा का आश्वासन देकर

जीवन का संदेश सुनाते,

जो न किरण की रेख बनोगे, धूल-धुएं की धार बनोगे।

हे मत के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।

हृदय मिला है, उसमें चाहो

तो सारा संसार बसा लो,

जिसका चाहो जी बहलाओ

जिससे चाहो जी बहलाओ

कंठ मिला है, जो भीतर से

उठता है बाहर बिखराओ,

भार बनोगे मन के ऊपर, जो न सहज उदगार बनोगे।

है मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।

राख हुआ जाता है जीवन, प्रतिपल राख की पर्त-पर-पर्त जमी जाती है। अंगार को लपटने दो। अंगार को लौ बनने दो। नये का भय क्या? नया जो जीवन है। नये का भय क्या? नया तो परमात्मा है। लेकिन बहुत लोग राख होने में सुविधा पाते हैं। बहुत लोग मरने के पहले मर जाते हैं। बहुत लोग ऐसे जीते हैं जैसे कब्र में हों।

खोलो द्वार-दरवाजे मन के। परमात्मा रोज दस्तक देता है। उसकी दस्तक सुनो।

नये के साथ जाने में ही तुम्हारा विकास है। नये के साथ ही तुम आकाश में उड़ सकोगे। भूलें होंगी। और वही कारण है डर का।

हर एक आदमी को यही समझाया गया है बचपन से—भूलें मत करना। उसके कारण भय पैदा हो गया है, कहीं भूल न हो जाए। पुराने काम में भूल नहीं होती, क्योंकि जाना-माना है। वही-वही तुम करते रहते हो, करते ही रहे हो, वही-वही करते रहते हो, भूल नहीं होती। एक बात तय होती है कि भूल नहीं होती। मगर सबसे बड़ी भूल हो गयी, कि तुम मुर्दा हो गये, तुम जिंदा न रहे। मैं तुमसे कहता हूं, भूलों से भय मत खाओ। भूलें करने वाले ही जीवन में कुछ सीख पाते हैं। एक ही बात याद रहेः वही भूल बार-बार न हो। नयी भूल रोज करो। नयी भूल ईजाद करो। जाग कर भूल करो, ताकि भूल के कुछ सीख लो और भूल का कुछ परिणाम हो जाए। भूल तो पीछे छूट जाएगी, लेकिन भूल से सीखी जो बात तुमने उसकी सुगंध तुम्हारे साथ सदा रह जाएगी। भूलें करके ही आदमी सीखता है।

परसों एक जर्मन संन्यासी ने मुझसे पूछा...ईसाइयों की कहानी है कि एक बाप के दो बेटे थे। दोनों बेटे आपस में बड़े विपरीत थे। बेटा तो बड़ा पुरातन-पंथी, रूढ़िग्रस्त। छोटा बेटा बड़ा बगावती, विद्रोही। दोनों में बनती भी नहीं थी। बड़ा बेटा तो लीक-लीक चला, लकीर-लकीर चलता; लक्ष्मण-रेखा के बाहर कभी न जाता। छोटा बेटा लक्ष्मण-रेखा के भीतर ही न आता; वह बाहर ही बाहर जाता। आखिर झगड़ा इतना बढ़ गया कि बूढ़े बाप ने उन दोनों को अलग कर दिया।

संपत्ति बांट दी गयी। छोटा बेटा अपनी संपत्ति लेकर शहर चला गया। छोटे गांव में क्या संपत्ति का करोगे? सुविधा नहीं है। चला गया होगा उन दिनों की बंबई, उन दिनों के कलकत्ता। खूब लुटाया, जुआ खेला, शराब पी, वेश्यागमन किया, सब तरह के पाप किये, सब तरह की भूले की। जल्दी ही भिखारी हो गया।

बड़ा बेटा खेत पर काम करता रहा। गायों की देखभाल करता रहा। संपत्ति बढ़ाता रहा। दस साल में बड़े बेटे ने संपत्ति कोई पांच गुनी कर ली। छोटा बेटा बिलकुल भिखारी हो गया, भीख मांगने लगा। एक दिन रास्ते पर भीख मांगते-मांगते उसे याद आया—एक द्वार के सामने खड़ा था, संयोग की बात कि उस मकान का द्वार ठीक वैसा था जैसा उसके बाप के मकान का द्वार, उसे याद आया, कि हद हो गयी, मैं भीख मांग रहा हूं। मेरे घर में सैकड़ों नौकर हैं। यदि मैं जाऊं तो मेरे पिता मुझे अब भी माफ कर सकेंगे, मुझे उनके प्रेम का भरोसा है। और अब मैं यह नहीं चाहता कि मुझे बेटे की तरह स्वीकार करें। वह हक तो मैंने गंवा दिया। अब मैं उसका पात्र नहीं हूं। लेकिन एक नौकर की तरह तो स्वीकार कर ही सकते हैं। जहां और सैकड़ों नौकर हैं, मैं भी एक पड़ा रहूंगा, नौकरी करता रहूंगा। गायों को चरा लाऊंगा, कि खेत पर बीज बो दूंगा, या फसल काट लाऊंगा; या जो भी होगा। इस भीख मांगने से तो बेहतर होगा। अपने पिता के घर तो रहूंगा।

वह उसी दिन लौटा अपने गांव। खबर पहुंच गयी उसके लौटने की। रोज-रोज खबरें पहुंचती थी। पिता पूछता था, क्या हो रहा है? क्या हो रहा है? कहां तक बात पहुंची? कहां तक बात बिगड़ी कि बनी? अब तक दुखद समाचार ही आए थे। आज समाचार आया कि बेटा आ रहा है। बाप ने बड़ा उत्सव किया। सारे गांव को भोजन पर निमंत्रण दिया। बैंड-बाजे बजवाए। फूल लगवाए। दीये जलवाए दीपमाला! सबसे कीमती और महंगी शराब तलघरों से निकाली। बहुमूल्य से बहुमूल्य भोजन तैयार करवाए।

बड़ा बेटा तो खेत में काम कर रहा था, उसे कुछ पता नहीं था। दिन भर की धूप-दोपहरी में काम करके जब वह लौट रहा था, रास्ते पर गांव में उसे किसी ने कहा कि हद हो गयी। अन्याय की भी एक सीमा होती है! तुम्हारे बाप ने बहुत अन्याय किया है तुम्हारे साथ। तुम इसके पास रहे, इसकी सेवा की, आज्ञा का पालन किया—तुम्हारे लिए कभी बैंड-बाजे न बजे। और तुम्हारे लिए कभी गांव को भोज न दिया गया। और तुम्हारे लिए कभी शराब की कीमती बोतलें न निकाली गयीं। आज तुम्हारा छोटा भाई, वह सपूत, वापिस लौट रहा है, उसके स्वागत में यह सारा आयोजन है। और तुझे कुछ पता है?

बेटे ने सुना तो उसकी छाती धक से हो गयी। उसने कहा, यह अन्याय है। आज तक मैंने कभी पिता की किसी बात का विरोध नहीं किया, लेकिन आज बर्दाश्त मैं भी न कर सकूंगा।

यह आया बड़े क्रोध में, अपने बाप से बोला, कि यह क्या हो रहा है? मेरे लिए कभी स्वागत नहीं! बाप ने कहा, तू तो मेरे पास है। लेकिन जो भटक गया था, वह वापिस लौट रहा है। तूने कभी कोई भूल ही नहीं की। लेकिन जिसने बहुत भूलें की, वह भूलों से जाग गया है, वापिस लौट रहा है। इसलिए इसका स्वागत जरूरी है।

जर्मन संन्यासिन ने मुझसे पूछा—वह एक ईसाई पादरी की पत्नी है, वह भी मेरे संन्यासी है—उसने पूछा कि मेरे मन में सदा यह सवाल उठता है कि बड़े बेटे के संबंध में क्या? छोटे बेटे का स्वागत हो रहा है, यह तो ठीक है; मगर बड़े बेटे के संबंध में क्या?

मैंने उससे कहा, बड़ा बेटा सिर्फ कहानी को पूरा करने के लिए है। बड़े बेटे का जन्म ही नहीं हुआ। क्योंकि जिसने भूलें नहीं की, उसने कुछ सीखा ही नहीं। जो कभी दूर नहीं गया, वह पास भी नहीं आ सकता। बड़ा बेटा पास है, मगर पास नहीं आ सकता—क्योंकि दूर ही नहीं गया।

यह जीसस की कहानी बड़ी प्यारी है। यह कह रही है, भूल करो, डरो मत। क्योंकि भूल से ही तो सीखोगे। भूल जब शूल बनकर चुभेगी, तभी तो तुम जागोगे। और हर भूल कुछ सिखा जाएगी। उसी भूल को दोहराना मत। दोहराने में क्या सार है? फिर भूल को ही दोहराने में लकीर के फकीर मत हो जाना।

जो आदमी रोज-रोज नित नयी भूले करता जाए, और साहसपूर्वक करता जाए, और हर भूल से कुछ सीखता जाए। उसकी संपदा विकसित होने लगती है। वही व्यक्ति किसी दिन प्रज्ञा को उपलब्ध होता है। उसी व्यक्ति के जीवन में बुद्धिमत्ता के मेघ घिरते हैं। उसी के जीवन में ज्ञान की वर्षा होती है।

एक तो ज्ञान है,जो किताबों से मिलता है; वह कचरा है। और एक ज्ञान है, जो जीवन से मिलता है; वही बहुमूल्य है।

तुम ध्यान रखना, जिसने पाप ठीक से नहीं पहचाना, वह कभी पुण्य को नहीं पहचान पाएगा। और जिसने संसार को ठीक से नहीं देखा, वह परमात्मा के पास नहीं आ पाएगा। यह संसार परमात्मा के पास आने के लिए ईजाद की गयी भूल है। यह परमात्मा के द्वारा ही ईजाद की गयी भूल है। यह उपाय है, यह अवसर है—तुम्हें भटकाने का, तुम्हें भुलाने का। और तब भूल-भूल कर तुम जब याद करोगे, चूक-चूक कर जब तुम फिर वापस लौट जाओगे, तो हर बार तुम्हारी प्रौढ़ता बढ़ेगी। हर बार तुम्हारा केंद्रीकरण बढ़ेगा। हर बार तुम्हारी चेतना ज्यादा प्रखर होती जाएगी। ध्यान रहे—

हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।

जो न करेगा सीना आगे

पीठ उसे खींचेगी पीछे,

जो ऊपर को उठ न सकेगा,

उसको जाना होगा नीचे

अस्थिर दुनिया में थिर हो कर

कोई वस्तु नहीं रहती है,

हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।
जो न किरण की रेख बनोगे, धूल-धुएं की धार बनोगे।
भार बनोगे मन के ऊपर जो न सफल उदगार बनोगे।
हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।

भूल से भयभीत न होओ। वही भय है, कि कहीं भूल न हो जाए; इसलिए घर के भीतर छिपे रहो। गोबर-गणेश बने बैठे रहो, कहीं भूल न हो जाए।

मैं तुमसे कहता हूंः भय छोड़ो। निकलो घर के बाहर! भूलें होने दो। बस एक भूल दुबारा न हो, इतना स्मरण रहे। जल्दी ही भूलें चुक जाएंगी। और जल्दी ही तुम पाओगे; सद्य-स्नात, ताजे तुम हो गये। अभी-अभी नहाये तुम हो गये। और तब जीवन एक नया ही आविर्भाव लेता है। एक नया रंग! जीवन एक नयी धुन लेता है। एक नया गीत! जीवन आनंद बन जाता है।

जीवन के उस आनंद बन जाने का नाम ही ईश्वर का अनुभव है।

भूल और भूल और भूल, शूल और शूल और शूल, और सब तरह से चुभा हुआ आदमी, और सब तरह से चेष्टा करके हार गया आदमी, सब तरफ से अपने अहंकार को सिद्ध करने की यात्रा में चला आदमी और सिद्ध नहीं कर पाया, विफल हो गया ही समर्पण करने में समर्थ हो पाता है। समर्पण कमजोर की बात नहीं। गोबर-गणेश की बात नहीं है समर्पण। घर में ही जो बैठा रहा, उसकी बात नहीं है। समर्पण उसकी बात है, जिसने जीवन को जाना—सब तरह से जाना। सब तरह से लड़ा, संघर्ष किया; सब तरह से जुझा, युद्ध किया और हारा; और एक दिन पाया हार-हार कर, कि जितने की चेष्टा में हार है। तो अब हार का भी प्रयोग करके देख लूं। अब अपने से हार जाऊं। और तभी जीत फलित होती है।

एक तरफ शाने-खुदी मानए-इजहार भी है
जब्ते-गम दिल की नजाकत पै मगर बार भी है
लुत्फ दोनों से उठाते हैं उठानेवाले
जिंदगी निकहते-गुल भी, खलिशे-खार भी है
फूल भी है और कांटा भी
जिंदगी निकहते-गुल भी, खलिशे-खार भी है
लुत्फ दोनों से उठाते हैं उठानेवाले

लेकिन जो जानता है, वह दोनों से ही रस लेता है। दोनों का ही मजा ले लेता है। दोनों का स्वाद ले लेता है।

एक तरफ शाने-खुदी मानए-इजहार भी है
जब्ते-गम दिल की नजाकत पै मगर बार भी है
लुत्फ दोनों से उठाते हैं उठानेवाले
जिंदगी निकहते-गुल भी, खलिशे-खार भी है
मनहसिर हौसिलए-दिल पै है साबुत कदमी
जादहे शौक तो आसां भी है, दुश्वार भी है
खुद को खोया है तो पाई है मुहब्बत तेरी
जिंदगी में यह मेरी जीत भी है, हार भी है

जीवन का परम विरोधाभास यही है, कि वहां जो जीतने की चेष्टा करता है, करते-करते हार जाता है। सब महत्वाकांक्षाएं विचलित हो जाती है। सब आशाएं एक न एक दिन राख होकर गिर पड़ती हैं। उस दिन एक नया प्रयोग जीवन में उठता है—अब हारकर देख लूं! अब स्वेच्छा से हारकर देख लूं! वही समर्पण है और उसी हार में जीत हैं।

बाण-बिद्ध मराल सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।
बादलों के देश तक जब चढ़ गया था
जानता था लौट आना,
जानता था, है असंभव नीड़ बिजली
की लताओं पर बनाना,
मैं गगन को भूमि की आकांक्षाएं
कुछ बताना चाहता था,
बाण-बुद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।
किंतु पश्चात्ताप करने के लिए तो
मैं नहीं तैयार होता,
नभ न मुझ को खींच लेता तो धरा के
वास्ते मैं भार होता,
सिद्ध गिर कर दिया मैंने कि अपनी
शक्ति भर ऊपर उठा मैं,
आज कमजोरी नहीं, कूअत बड़ी मेरी,
तुम्हारे जो चरण में,
बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं; अब तुम्हारी ही शरण में।
कामना मेरी बड़ी मुझसे कि उससे
मैं बड़ा, यह जानना था,
आदमी के तन नहीं, मन-हौसले का
कद मुझे पहचानना था,
रेख लोहू की लगा कर आ रहा हूं
मैं अधर की मेखला पर,
शक्ति अंबर में परीक्षित, भक्ति की
लूंगा परीक्षा मैं धरणि में
बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।
उड़ो जितने दूर तक उड़ सको। जाओ, जितने दूर परमात्मा से जा सको। एक दिन गिरोगे।
बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।
और तब गिरने का मजा और। जो गया ही नहीं, उसके गिरने में बल नहीं होता। जो लड़ा ही नहीं, उसकी हार में जीवन नहीं होता। जो पास ही बैठा रहा, वह पास हो ही नहीं सकता। पास होने के लिए दूर जाना अनिवार्य है।
बाण-बिद्ध मराल सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।
बादलों के देश तक जब चढ़ गया था
जानता था, लौट आना
जानता था, है असंभव नीड़ बिजली
की लताओं पर बनाना,
साफ है इस जगत में कोई घर नहीं बना सकता। और साफ है, कि बिजली की लताओं पर नीड़ बनाने कोई जाएगा तो हारेगा।
बादलों के देश तक जब चढ़ गया था।

जानता था लौट आना,

लौटना भी पता था। लेकिन तब तक क्या लौटना, जब तक आगे जाने की सुविधा हो। लौटना तो तभी सार्थक होता है, जब आगे जाने का उपाय ही न रहा। आखिरी सीमा तक अहंकार जाता है तो ही टूटता है, गिरता है, समर्पित होता है।

जानता था, है असंभव नीड़ बिजली

की लताओं पर बनाना,

कौन नहीं जानता! पानी पर रेखाएं खींच रहे हैं हम। कागज की नावें तैरा रहे हैं हम। लेकिन तैराना जरूरी है। वे नावें डूबें तो हमें अनुभव हो। वे लकीरें मिटें, तो हमें पता चले।

मैं गगन को भूमि की आकांक्षाएं

कुछ बताना चाहता था,

वह जो दूर उड़ रहा था आकाश में, इस भूमि की आकांक्षाओं की खबर आकाश को देना चाहता था।

किंतु पश्चात्ताप करने के लिए तो

मैं नहीं तैयार होता

समझ लेना यह बात। जो सच में ही जीवन को जीकर, जीवन में जागकर लौटे हैं उन्हें पश्चात्ताप नहीं होता। वे परमात्मा से यह नहीं कहते कि हम पश्चात्ताप कर रहे हैं, हमसे भूलें हुई। पश्चात्ताप क्या? क्योंकि उन्हीं भूलों के कारण तो परमात्मा मिला, पश्चात्ताप कैसा? अंधेरे में गये, अंधेरे को भोगा, उसी से तो प्रकाश की तलाश पैदा हुई, पश्चात्ताप कैसा? पाप किया, उसी पाप से पुण्य की यात्रा शुरू हुई, पश्चात्ताप कैसा?

इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः पश्चात्ताप मत करना। पश्चात्ताप करने की कोई जरूरत नहीं है। पश्चात्ताप का तो मतलब होता है, हमने कोई भूल की थी। नहीं करनी थी, ऐसी कोई बात की थी।

ऐसी कोई बात नहीं है, जो नहीं करनी है। सारी बात कर लेनी है। कर लेने से ही बोध है। बोध से मुक्ति है। पश्चात्ताप नासमझ करते हैं। समझदार जीवन को जीते हैं और जानते हैं, कि जीवन परमात्मा ने दिया है, उसके पीछे राज है। यह पाठशाला है।

किंतु पश्चात्ताप करने के लिए तो

मैं नहीं तैयार होता,

नभ न मुझको खींच लेता तो धरा के

वास्ते मैं भार होता,

वह जो आकाश ने खींच लिया था, उसी ने मुझे पहली बार धरा पर आने की सुविधा दी; अब मैं भार नहीं हूं।

नभ न मुझको खींच लेता, तो धरा के

वास्ते मैं भार होता,

सिद्ध गिर कर कर दिया मैंने कि अपनी

शक्ति भार ऊपर-उठा मैं,

आज कमजोरी नहीं, कूअत बड़ी मेरी

तुम्हारे जो चरण में,

यह कमजोरी के कारण नहीं गिरा हूं; जितनी शक्ति थी, उतना तो मैं उठा था आकाश में। शक्ति चुक गयी। सीमा आ गयी। अब जो गिरा हूं, कमजोरी के कारण नहीं गिरा हूं—शक्ति की उड़ान के कारण ही गिरा हूं। यह जो मेरी समर्पण की दशा है, यह अहंकार की अंतिम निष्पत्ति है।

यह परम विरोधाभास है। जो इसे समझ लेता है, उसे जीवन में समझने की कुछ भी नहीं रह जाता।

बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं

अब तुम्हारी ही शरण में।
कामना मेरी बड़ी मुझसे कि उससे
मैं बड़ा, यह जानना था,
यह जानना ही पड़ेगा।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा धनी एंड्रू कारनेगी मरा तो उसके एक मित्र ने पूछा कि तुम्हें कौन-सी चीज कमाने में लगाए रही? इतना तुमने कमाया! कहते हैं, सबसे बड़ा धनपति था वह सारी पृथ्वी का। कोई दस अरब रुपया छोड़ कर मरा। कौन बात तुम्हें दौड़ती रही? चौबीस घंटे धन में ही लगा था! और एक सीमा आ जाती है, उसके बाद धन का कोई मूल्य नहीं होता, क्योंकि जितना ज्यादा धन होता है, उतना मूल्य कम होता जाता है, खयाल रखना। 'ला ऑफ डिमिनिशिंग 'रिटर्न्स'। 'मनोवैज्ञानिक भी उसे स्वीकार करते हैं—अर्थशास्त्र के नियम को। तुम्हारे पास जब एक रुपया होता है, तो उस एक रुपये की कीमत ज्यादा होती है। जब तुम्हारे पास हजार रुपये होते हैं, और फिर एक रुपया होता है, उस एक रुपये की कीमत बहुत कम होती है। फिर तुम्हारे पास दस लाख रुपये हैं, और एक रुपया होता है, उसकी कीमत न के बराबर होती है। अगर तुम्हारे पास दस अरब रुपये हैं, एक रुपये की क्या कीमत? यह वही रुपया है! लेकिन एक आदमी के पास एक ही रुपया है, उसके पास बड़ी कीमत है। यह उसका सर्वस्व हैं।
एक सीमा आ जाती है, जब रुपये का मूल्य समाप्त हो जाता है। वह सीमा कभी आ गयी और गयी, और एंड्रू कारनेगी कमाने में लगा ही रहा, लगा ही रहा। पूछा किसी ने, कौन-सी चीज तुम्हें दौड़ाती रही? उसने कहा, मैं यह जानना चाहता था कि मेरी कामना हारती है कि मैं हारता हूं? अभी तक मेरी कामना नहीं हारी। और मैं उसके पहले हारने को तैयार नहीं। फिर लौटूंगा। फिर कमाऊंगा।
कामना मेरी बड़ी मुझसे कि उससे
मैं बड़ा, यह जानना था,
आदमी के तन नहीं, मन हौसले का
कद मुझे पहचानना था,
रेख लोहू की लगाकर आ रहा हूं
मैं अधर की मेखला पर,
शक्ति अंबर में परीक्षित
...मैंने अपनी शक्ति, अपने संकल्प को परीक्षा तो आकाश में कर ली है...
शक्ति अंबर में परीक्षित, भक्ति की
लूंगा परीक्षा मैं धरणि में,
अब भक्ति की परीक्षा होगी। शक्ति की परीक्षा के बाद ही भक्ति की परीक्षा है। संकल्प की परीक्षा के बाद ही समर्पण की परीक्षा है।
शक्ति अंबर में परीक्षित, भक्ति की
लूंगा परीक्षा में धरणि में
बाण-गिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं अब तुम्हारी ही शरण में।
भय न करो। जीवन को जीओ। यह परमात्मा का वरदान है। रोज-रोज जीओ, गहनता से जीओ, सघनता से जीओ। जरा भी भय न करो। अभय होकर जीओ। भूलें करो और खूब करो, बस वही-वही भूलें बार-बार मत करो। और जल्दी ही वह घड़ी आ जाएगी, सब भूलें चुक जाएंगी। भूलों की सीमा है।

और जिस दिन सब भूलें चुक जाती हैं, उस दिन तुम लौटोगे। परमात्मा भी तुम्हारे लिए उस दिन दीपमालाएं सजाता है। परमात्मा भी उस दिन तुम्हारे लिए फूल के हार तैयार करता है। उस दिन परमात्मा के द्वार पर तुम्हारा स्वागत है।

मगर जाना तो होगा दूर! दूर जो गया, वही पास आ सकता है।

आज इतना ही।

लघ्वपि भक्ताधिकारे महत्वक्षेपकमपरसर्वहानात्।।
तत्स्थानत्वादनन्यधर्मः खले बालीवत्।।
अनिन्द्ययोन्यधिक्रियतेपारम्पर्यात् सामान्यवत्।।
अतोह्यविपक्कभावानामपि तल्लोके।।
क्रमैकणत्युपपत्तेस्तु।।

पदार्थ : अणुशक्ति : : चेतना : प्रेमशक्ति

मुझे अपना नीड़ बना लो

कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
आज दक्खिन की हवा ने आ अचानक
द्वार मेरे खड़खड़ाए,
हलचली है मच गई उन बादलों में
जो कि थे आकाश छाए,
जो कि सुन सौ प्रश्न मेरे चुप खड़ी थी
आज बारंबार झुक-झुक
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

सूर्य की किरणें प्रखरतम घन तहों के
बीच होतीं, पार करतीं,
कालिमा पर ज्योति का विस्तार करतीं।
चूमतीं जैसे कि धरती;
हे रजत पक्षी, तिमिर को भेदने से,
जो तुम्हारी राह छेंके
अब नहीं रुकते तुम्हारे पांख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
हे रजत पक्षी, तिमिर को भेदने से,
जो तुम्हारी राह छेंके
अब नहीं रुकते तुम्हारे पांख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
आज हीरे ले लहर आती, बिछाती

है कहीं मरकत किनारे,
आज उज्ज्वल मोतियों से हाथ अपने
है कहीं सरसिज संवारे,
पर तुम्हारा मन प्रलोभन दे लुभाना
है असंभव, आज कोई
पंथ में वैभव बिछाए लाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

मैं तुम्हें बुलाता हूं और तुम आ जाते हो। दूर दिशाओं से। दूर नगरों से, दूर देशों से एक प्रीति तुम्हें खींचे लाती है। और मेरे पास देने को सिवाय शून्य के और कुछ भी नहीं है। छीनूंगा तुमसे, मिटाऊंगा तुम्हें; क्योंकि तुम्हारे मिटने में ही परमात्मा के होने की संभावना है। तुम शून्य हो जाओ तो पूर्ण तुम्हारे भीतर उतरे। तुम शून्य बनो तो मंदिर बनो। फिर पूर्ण तो अपने से आ जाता है। अवकाश चाहिए, तुम्हारे हृदय में आकाश चाहिए।

मैं तुमसे छीनता हूं। मैं तुम्हें ही तुमसे छीनता हूं। फिर भी तुम आ जाते हो। तुम्हारा प्रेम गहन होगा। तुम दुस्साहसी हो। पंडित-पुरोहितों के पास जाना एक बात है, मेरे पास आना दूसरी ही बात है। तुम दुस्साहस कर रहे हो। तुम आग से खेलने चले हो। अगर जलने की हिम्मत दिखाई, तो तुम फूल होकर निखरोगे। अगर मिटने का साहस किया, तो तुम पहली बार हो पाओगे। कोई प्रीति तुम्हें खींचे लिए आती है—जनम-जनम की प्रीति। वह आज की नहीं हो सकती। आज की कभी इतनी गहरी नहीं होती। जिसके लिए हम मिटने को तैयार हो जाएं वह प्रीति पुरातन होती है, जनमों-जनमों की होती है।

जीवन से भी जब किसी का बड़ा मूल्य हो जाए, तभी तुमने गुरु पाया। जिसके लिए तुम जीवन भी गंवाने को तैयार हो जाओ, तभी तुमने गुरु पाया। गुरु पाना दुर्लभ है, क्योंकि शिष्य होना अति कठिन है। शिष्य होने के लिए जुआरी चाहिए।

तुम सब जुआरी हो। वहां तुम जाओ जहां तुम्हें कुछ मिलता हो, तर्क समझ में आता है। यहां तुम आओ जहां सब छीन जाता हो, अतर्क्य हो जाती है बात। लेकिन प्रेम सदा से अतर्क्य है।

आए हो तो शून्य लेकर ही जाना। आए हो तो खाली होकर जाना। गुरु इतना ही कर सकता है कि तुम्हारे भीतर स्थान निर्मित कर दे; फिर शेष सब परमात्मा करता है। गुरु भूमि तैयार कर सकता है; फिर शेष अपने से हो जाता है। परमात्मा को खोजने जाना नहीं पड़ता। जिस परमात्मा को खोजने जाना पड़े, वह परमात्मा झूठा होगा। जिस परमात्मा को खोजने एक कदम भी उठाना पड़े, वह परमात्मा सच नहीं रहा।

मनुष्य की सामर्थ्य भी क्या है कि परमात्मा को खोजे? रो सकता है, गिर सकता है, बिलख सकता है, खोजेगा कैसे? खोज तो उसकी हो सकती है जिससे हमारी पहले से ही पहचान हो। अपरिचित की, अनजान की, अज्ञात की खोज कैसी? जिसे कभी देखा नहीं, जिसे कभी छुआ नहीं, जिससे कभी आलिंगन नहीं हुआ, स्पर्श नहीं हुआ, जिससे कभी दरस-परस नहीं हुआ, उसे खोजोगे कहां? उसका पता कहां है? उसका ठिकाना कहां है? तुम जाओगे कहां, किस दिशा में, किस देश? नहीं, परमात्मा को खोजने कोई कभी नहीं जा सकता है।

फिर करना क्या होगा?

भक्त अपने को मिटा लेता है, परमात्मा उसे खोजता आता है। तुम मिटने में थोड़ी कठिनाई अनुभव करते हो, तो गुरु की जरूरत पड़ती है। तुम अपने हाथ से नहीं मिट पाते हो, इसलिए गुरु की जरूरत पड़ती है। गुरु के प्रेम में तुम मिटने का साहस जुटा लेते हो। गुरु को देखकर तुम्हें यह भरोसा आ जाता है कि मिटकर भी मिटना नहीं होता। गुरु को देखकर यह श्रद्धा उमगती है कि मिटकर ही होना होता है। जैसे बीज वृक्ष को देखकर इस श्रद्धा से भर जाए कि मिटूं, कोई फिक्र नहीं, टूटूं भूमि में, बिखर जाऊं। वृक्ष हो जाते हैं बीज, जब टूट जाते हैं। बीज अकेला ही हो, किसी वृक्ष से पहचान न हो, किस भरोसे टूटेगा? किस आशा में टूटेगा? सम्हालेगा अपने को,

बचाएगा अपने को। गुरु तुम्हारी सुरक्षाएं छीन लेता है, तुम्हारे बचाव छीन लेता है, तुमने जो आरक्षण की व्यवस्था कर रखी है, तुमसे छीन लेता है। गुरु तुम्हें असहाय छोड़ देता है—निरालंब, मझधार में। यह किनारा भी गया, वह किनारा भी गया। कोई किनारा कहीं दिखाई भी नहीं पड़ता है। सब तरफ आंधी और तूफान, और नाव डूबने लगी, और पतवार हाथ से छूट गई। गुरु तुमसे सब छीन लेता है।

मगर जो इस मझधार में डूबने को राजी हो जाते हैं, उन्हें किनारा मिल जाता है। किनारा मझधार के विपरीत नहीं, मझधार में छिपा है। जो परिपूर्ण रूप से असहाय हो जाता है, उसे परमात्मा का सहारा मिल जाता है। उसके पहले सहारा मिलता भी नहीं है। तो मुझे छीन लेने दो तुम्हारी पतवार; मुझे डूबा देने दो तुम्हारी नाव। मुझे ले लेने दो तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारे सिद्धांत, तुम्हारे संप्रदाय। तुम्हारा हिंदू धर्म, तुम्हारा मुसलमान धर्म, तुम्हारा जैन धर्म मुझे छीन लेने दो। कर देने दो तुम्हें मुक्त शब्दों से, सिद्धांतों से, तुम्हारे सहारों से। फिर उसी असहाय अवस्था में, दो बूंद आंसू की टपकेंगी तुम्हारी आंखों से, और प्रार्थना पूरी हो जाएगी।

धीरे-धीरे जो बीज बोने शुरू किए थे, अंकुराने लगे हैं। धीरे-धीरे जो गंगोत्री की धार की तरह शुरू हुई थी—गैरिक गंगा—बड़ी होने लगी है, गंगा बनने लगी है। दूर-दूर देशों तक गैरिक संन्यासी दिखाई पड़ने लगा है। कुछ होने को है। तुम्हें शायद पता भी न हो कि तुम किसी एक बड़े, महत आयोजन में हिस्सेदार हो, भागीदार हो। तुम्हें अपने सौभाग्य का भी शायद ठीक-ठीक पता न हो—किसी को कभी नहीं था। जो बुद्ध के साथ चले थे, उनको पता नहीं था कि वे किस महत्वपूर्ण इतिहास के हिस्से हो रहे हैं। जो महावीर के साथ उठे-बैठे थे, उन्हें कुछ पता न था कि सदियों तक मनुष्य की चेतना आंदोलित रहेगी। वे दस-बारह शिष्य जो जीसस के साथ खड़े हुए थे, उन्हें क्या पता हो सकता था?

और फिर उनका मसीहा, उनका गुरु सूली पर चढ़ गया। उन्हें तो लगा कि सब समाप्त हो गया; अब क्या बचा? उन्हें पता नहीं था कि पृथ्वी पर इतना बड़ा आंदोलन इसके पहले कभी हुआ नहीं था। जीसस का सूली पर चढ़ जाना इस पृथ्वी के इतिहास में अपूर्व घटना है। उस दिन समय दो हिस्सों में बंट गयाः जीसस-पूर्व और जीसस-पश्चात। बीच में खड़ा हो गया समय की धार में जीसस का क्रास। उस दिन से आदमी दूसरा हुआ। उस दिन से आदमी ने कुछ नई बात सीखी। चेतना के कुछ नए आयाम खुले, कुछ नए द्वार खुले।

तुम्हें शायद ठीक-ठीक पता भी न हो। मुझे पता है कि तुम एक विराट आयोजन के भागीदार हो रहे हो—अनजाने। तुम जो अपनी छोटी-सी इ□ट रख रहे हो इस मंदिर में, यह किसी विराट मंदिर का हिस्सा बनेगी। तुम्हारी इ□ट के बिना यह मंदिर उठ भी नहीं सकता। तुम्हारी इ□ट कितनी ही छोटी हो, तुम्हारी इ□ट अनिवार्य है। तुम धन्यभागी हो!

जो जितना ज्यादा मेरे पास आकर मिट सकेगा, उतना धन्यभागी होगा, क्योंकि उतनी ही उसकी इ□ट इस उठते हुए मंदिर के काम आ जाएगी।

अहंकार की इ□ट का उपयोग नहीं हो सकता। अहंकार की इ□ट को तो हमें त्यागना होगा। निरहंकार की इ□ट से बनेगा यह मंदिर। और इस मंदिर की बड़ी जरूरत आ गई है। पृथ्वी बेचैन है। मनुष्य की चेतना बहुत बड़े संकट में है। ऐसे संकट में जैसा कि शायद पहले कभी भी नहीं था।

क्या है संकट?

संकट है धर्म की पुरानी भाषाएं इतनी पुरानी हो गई हैं कि मनुष्य के काम की नहीं रहीं। उनके कहने और बताने के ढंग इतने जराजीर्ण हो गए कि मनुष्य और उनके बीच कोई तालमेल नहीं रहा, कोई संवाद नहीं रहा। आदमी प्रौढ़ हुआ है और धर्म अभी भी बचकानी भाषा बोल रहे हैं। वे धर्म बच्चों के लिए विकसित किए गए थे। तो परमात्मा पिता था। या मां था। अब आदमी को पिता और मां की जरूरत नहीं है। अब आदमी के सामने परमात्मा का नया रूप, गहरा रूप प्रगट होना चाहिए। नहीं कि पुराना रूप गलत था—कोई रूप गलत नहीं होता—लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य की चेतना रूपांतरित होती है, नए रूपों की जरूरत पड़ जाती है। अब आज

आकाश की तरफ हाथ उठाकर किसी परमात्मा को, किसी परमपिता को आकाश में बैठे हुए मानने में कठिनाई होती है, कहीं अड़चन आती है। तुम्हारी चेतना गवाही नहीं देती। तुम कर भी लेते हो अगर आदतवश, तो भी तुम आस्तिक नहीं हो पाते।

आज की सदी में नास्तिकता तर्कसंगत मालूम पड़ती है, आस्तिकता तर्क-विपरीत मालूम पड़ती है।

यह बात उचित नहीं है। आस्तिकता जिस दिन तर्क-विपरीत मालूम पड़ने लगे, उस दिन खोने लगेगी। आस्तिकता तर्कातीत जरूर है, लेकिन तर्क-विपरीत होने की कोई जरूरत नहीं है। आस्तिकता नास्तिकता से ज्यादा बड़ा तर्क है। यद्यपि तर्क पर आस्तिकता समाप्त नहीं होती, और आगे जाती है। उसकी यात्रा बड़ी है, तर्क से आगे जाती है—तर्क की सीढ़ी पर चढ़ जाती है—लेकिन तर्क के विपरीत नहीं है। नास्तिकता जब भी तर्क के अनुकूल मालूम पड़ने लगे, तो उसका सिर्फ एक ही अर्थ होता है कि धर्म की भाषा पुरानी पड़ गई। भाषा को नया परिमार्जन चाहिए, नया परिष्कार चाहिए, नई चमक। भाषा को नया ढंग, नई शैली चाहिए। भाषा को नया जीवन चाहिए।

धर्म को प्रतिदिन नया होना पड़ता है—मनुष्य की चेतना के साथ-साथ चलना होगा। तुम बच्चे थे, तुमने जो कपड़े पहने थे वे बिलकुल ठीक थे। लेकिन अब तुम बड़े हो गए। अब तुम उन्हीं कपड़ों को पहने रखोगे तो तुम्हें बंधन मालूम होगा; वे कपड़े तुम्हें जकड़ लेंगे, वे कारागृह बन जाएंगे। अब तुम्हें और अन्य कपड़ों की जरूरत पड़ेगी।

सारी पृथ्वी पर धर्म हैं, लेकिन इस सदी का धर्म कोई भी नहीं। वे सब पुराने हैं। जिन्होंने विकसित किए थे, जिनके लिए विकसित किए गए थे, वे सब जा चुके हैं। उन धर्मों को भी चले जाना चाहिए। कोई धर्म यहां शाश्वत होकर नहीं रह सकता। और ध्यान रखना, धर्म की, आत्यंतिक धर्म की गहराई शाश्वत है, लेकिन धर्म का कोई रूप शाश्वत नहीं हो सकता। आत्मा शाश्वत है, देह शाश्वत नहीं है। धर्म का शाश्वत रूप किसी को पता नहीं है। धर्म का शाश्वत रूप जब भी पता होता है, तब भाषा में बंध जाता है। और जब भाषा में बंध जाता है, तो शाश्वत नहीं रह जाता, सामयिक हो जाता है। समय-समय के धर्म हैं।

और क्रांति इस अर्थ में भी अनूठी होने वाली है। पहले भी नए धर्म पैदा हुए थे। हिंदू धर्म था, फिर बुद्ध धर्म आया। बुद्ध धर्म नया धर्म था। यहूदी धर्म था, फिर ईसाइयत आई। ईसाइयत नया धर्म थी। अब तो एक और नई छलांग घटने वाली है। वह छलांग है: अब धर्म भविष्य में विशेषण वाला धर्म नहीं होगा। हिंदू और मुसलमान और ईसाई, ऐसा नहीं, धार्मिकता होगी। और धार्मिकता विशेषणशून्य हो, यह मेरा प्रयास है। यह जो तुम्हें गैरिक वस्त्रों में रंगे जाता हूं, यह जो गैरिक अग्नि फैलाए चला जाता हूं, इस अग्नि के पीछे एक ही लक्ष्य है कि इस अग्नि में सारे विशेषण जल जाएं—हिंदू के, मुसलमान के, ईसाई के। इस अग्नि में ब्राह्मण के, शूद्र के, क्षत्रिय के विशेषण जल जाएं। इस अग्नि में स्त्री के, पुरुष के विशेषण जल जाएं। यह अग्नि सबको एक रंग में रंग दे। यह पृथ्वी को एक बना दे। यह पहली बार धर्म हो विशेषण से मुक्त; मात्र धार्मिकता का नाम हो।

और समझ लेना बात को—

अगर धर्म विशेषण से मुक्त हो जाए तो नास्तिक भी धार्मिक हो सकता है। सच तो यह है, सभी नास्तिक धार्मिक होने की तलाश में ही नास्तिक हो गए हैं। धर्म उन्हें तृप्त नहीं कर पाते। शायद उनकी प्यास तथाकथित आस्तिकों से ज्यादा गहरी है। जिससे आस्तिक तृप्त हो जाता है, उससे नास्तिक तृप्त नहीं हो पाता। नास्तिक चाहता है अनुभव। नास्तिक मांगता है—जब तक मैं न जान लूं, मानूंगा नहीं। नास्तिक चाहता है कसौटी सत्य की, प्रमाण। तुम्हारे प्रमाण छोटे पड़ गए हैं; तुम्हारे प्रमाण ओछे पड़ गए हैं। तुम्हारे प्रमाण पुराने पड़ गए हैं। वे पुराने नास्तिकों के काम आ गए होंगे, नया नास्तिक, नए तर्क लेकर आया है। नया नास्तिक नए विचार लेकर जनमा है। उन नए विचारों का उत्तर कहां है? उन नए विचारों का उत्तर चाहिए। यह गैरिक अग्नि उस नए विचार को उत्तर देगी।

मेरे पास आकर नास्तिक भी स्वीकृत हो जाता है। अभी कुछ ही दिन पहले किसी ने कहा कि मैं नास्तिक हूं, क्या मैं भी संन्यासी हो सकता हूं? मैंने कहा, नास्तिक के लिए ही यह संन्यास है। मैं नास्तिकों की तलाश में हूं। उसने कहा, मैं ईश्वर को नहीं मानता। मैंने कहा, इस संन्यास में ईश्वर को मानने की कोई शर्त नहीं है। तुम मानते तो गलत होते। बिना जाने जो मान लेता है, वह आदमी बेईमान है। उसको तुम आस्तिक कहते हो? संन्यास जानने की प्रक्रिया है। तो संन्यास लेने के लिए ईश्वर को मानना शर्त कैसे हो सकती है? संन्यास तो प्रक्रिया है ईश्वर को जानने की। संन्यास तो आकांक्षा है, अभीप्सा है ईश्वर को जानने की। जानने की अभीप्सा के पहले मानने की शर्त तो बेईमानी हो जाएगी।

एक आदमी कहता है, मैं प्रकाश को नहीं जानता हूं; हम कहते हैं, पहले मानो। पहले मानो! तो यह आदमी कैसे मानेगा? मान भी लेगा तो ऊपर-ऊपर मानेगा। भीतर इसकी अंतरात्मा तो कहती रहेगी कि मुझे प्रकाश का कोई पता नहीं है; मैं यह क्या कर रहा हूं? तुमने खयाल किया, तुम मंदिर में झुक जाते हो, ऊपर-ऊपर झुकते हो, भीतर तुम्हें कुछ पता नहीं है। भीतर तुम कभी-कभी सोचते भी हो, कभी तुममें भी बुद्धि जगती है, तुम्हें खयाल आता है—मैं क्या कर रहा हूं? मुझे पता है कि ईश्वर है? मैं किसके सामने झुक रहा हूं?

नहीं, संन्यास में कोई शर्त मानने की नहीं है। संन्यास जानने की आकांक्षा है, मानने का भाव नहीं। जानकर मानना। जानकर मानोगे, सत्य-निष्ठा होगी। वही परम आस्तिकता होगी।

नास्तिक मैं उसे कहता हूं जो ईश्वर की तलाश कर रहा है, आस्तिक उसे कहता हूं जिसकी तलाश पूरी हुई। तो तथाकथित आस्तिक मेरे लिए झूठे नास्तिक हैं। वस्तुतः तो नास्तिक हैं, ऊपर से उन्होंने राम-नाम की चदरिया ओढ़ रखी है। उनके प्राणों में गहन नास्तिकता है। अनुभव के बिना स्वीकार हो ही नहीं सकता। जब तक आमने-सामने परमात्मा से मिलन न हो जाए, जब तक जीवन के अमृत का स्वाद न आ जाए, तब तक मानना भी मत। हर व्यक्ति को नास्तिक होना चाहिए, ताकि हर व्यक्ति आस्तिक हो सके। मेरे संन्यास में नास्तिक का स्वागत है।

फिर, परमात्मा की अगर कोई धारणा आरोपित करो कि कृष्ण को मानना, कि क्राइस्ट को मानना, कि राम को, कि बुद्ध को, महावीर को, तो अड़चन खड़ी होनी शुरू हो जाती है। उस धारणा में संकीर्णता है। मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा तुम्हारे सामने जब प्रगट होगा तो सामने-प्रगट नहीं होगा, तुम्हारे अंतस्तल में प्रगट होगा। दृश्य की तरह प्रगट नहीं होगा, द्रष्टा की तरह प्रगट होगा। तुम उसे बाहर खड़ा हुआ नहीं पाओगे, तुम उसे अपने भीतर खड़ा हुआ पाओगे। तुम उसे अपनी तरह पाओगे। अहं ब्रह्मास्मि। तुम उसे पाओगेः मैं परमात्मा हूं। चैतन्य परमात्मा है। तत्वमसि श्वेतकेतु। वह तू है। फिर कोई विवाद नहीं रह जाता। फिर परमात्मा मुसलमान नहीं रह जाता, हिंदू नहीं रह जाता, ईसाई नहीं रह जाता। उसकी कोई प्रतिमा नहीं रह जाती, उसका कोई मंदिर नहीं रह जाता। चैतन्य। चैतन्य कहीं हिंदू हुआ, मुसलमान हुआ? साक्षी, साक्षी कहीं जैन हुआ, बौद्ध हुआ? साक्षी तो बस साक्षी है। दर्पण की भांति झलकाता है। उस दर्पण के अनुभव से ही तुम्हारे जीवन में पहली दफा विशेषणरहित धर्म का जन्म होगा।

यह आग फैले, यह आग तुम्हारी सारी परंपराओं को जला दे, यह आग तुम्हारी सारी रूढ़ियों को तोड़ दे, यह आग तुम्हें शब्दों और संस्कारों से मुक्त कर दे, यह आग तुम्हारे साक्षी को निखार दे, इसलिए तुम्हें बार-बार बुलाता हूं। अनेक बहानों से बुलाता हूं। और तुम आ जाते हो। तुम्हारा आना इस बात की गवाही है कि तुम्हारे हृदय की वीणा मुझसे तरंगित होनी शुरू हुई है। इस संगीत को पूरा होने दो। यह संगीत जब पूरा होगा, तो धर्म की एक अभिनव व्याख्या का जन्म होगा। मैं यह व्याख्या शब्दों में ही नहीं करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं, यह व्याख्या तुम्हारे जीवन में फूले-फले। तुम इसके प्रतीक बनो।

क्या व्याख्या है मेरे हृदय में जो मैं चाहता हूं फैल जाए? और अब समय आ गया है कि मैं तुमसे कहूं। क्योंकि अब समय आ गया है कि तुम बढ़ते जाते हो, तुम फैलते जाते हो। जल्दी ही इस पृथ्वी पर कोई भी संन्यास से अपरिचित नहीं रह जाएगा। क्या मेरी व्याख्या है जो मैं धर्म को देना चाहता हूं?

अतीत के धर्म जीवन-विरोधी धर्म थे। उनकी भाषा जीवन के प्रति शत्रुता की भाषा थी। मैं तुम्हें जीवन-स्वीकार का धर्म देना चाहता हूं। अतीत के धर्म शरीर-विरोधी थे। मैं तुम्हें शरीर को सम्मान करने वाला धर्म देना चाहता हूं। अतीत के धर्म घर और गृहस्थी के विरोधी थे, परिवार और प्रेम के विरोधी थे। मैं तुम्हें एक धर्म देना चाहता हूं जो इतना विराट हो कि सब उसमें समा जाए। छोटे थे अतीत के धर्म। उनमें पत्नी नहीं समा सकती थी, उनमें पति नहीं समा सकता था। संकीर्ण थे। उनमें तुम्हारा बेटा नहीं समा सकता था, तुम्हारी बेटी नहीं समा सकती थी। इसलिए उन धर्मों में वे ही लोग उत्सुक हो सके जो बड़े कठोर थे। मेरी बात को ठीक से समझो तो इसका अर्थ यह हुआ, उन धर्मों में वे ही लोग उत्सुक हो सके जो वस्तुतः धार्मिक नहीं थे, कठोर थे, दुष्ट थे, हिंसक थे।

जो आदमी अपनी पत्नी को बिलखता छोड़कर भाग गया है, इसको तुम अब तक धार्मिक कहते रहे हो, संन्यासी कहते रहे हो। यह एक दिन डोला सजाकर, बैंड-बाजे बजाकर इसे किसी भरोसे पर अपने घर ले आया था। इसने अपना वचन तोड़ दिया है। इसने अपनी प्रतिबद्धता तोड़ दी है। इसने प्रेम का नाता नहीं निभाया है। उसे ले आया था किसी दिन सम्हालकर अपने घर, फिर उसके बच्चे जन्म गए हैं, और अब यह भाग गया है! अतीत में कितने लोग जीवित स्त्रियों को विधवा करके भाग गए। उन विधवाओं के आंसुओं का कुछ हिसाब है? उन विधवाओं के आंसुओं ने इनके मोक्ष में बाधा नहीं डाली होगी, मैं तुमसे पूछता हूं? उनके बच्चे तड़पे होंगे, भूखे सोए होंगे, भीख मांगी होगी—पति तो संन्यासी हो गए थे, शायद पत्नी को वेश्या हो जाना पड़ा हो—यह कैसा संन्यास? इसमें कहीं कोई बुनियादी रोग है, कहीं कोई भ्रांति है।

संन्यास बड़ा होना चाहिए, विराट होना चाहिए, सबको समा ले। संन्यास हार्दिक होना चाहिए, प्रेमल होना चाहिए। संन्यास में कहीं भी कोई कदम ऐसा उठे जो प्रेम के विपरीत जाता हो तो वह संन्यास नहीं है। यह मैं तुम्हें कसौटी देना चाहता हूं। जब तुम प्रेम की तरफ बह रहे हो तो समझना सब ठीक है; और जब तुम प्रेम के विपरीत जाने लगो, समझना कुछ भूल हो गई, कहीं कोई भ्रांति हो गई। अपने को सुधारना, सम्हालना अपने को वापस लौटाना। जीवन का सम्मान चाहिए। यह परमात्मा की देन है। उसकी भेंट है। इसे तुम छोड़कर भाग गए! इसका तुमने तिरस्कार किया!

और मजा यह है कि यही सारे धार्मिक लोग कहते रहे, परमात्मा ने सृष्टि बनाई है, वह स्रष्टा है। उसकी सृष्टि को तुम छोड़कर भागते हो? तुम कवि की कविता का अपमान करोगे, यह कवि का सम्मान होगा? तुम संगीतज्ञ के संगीत का इनकार करोगे, यह संगीतज्ञ का आदर होगा? सृष्टि को छोड़कर भागोगे, यह स्रष्टा के प्रति तुम्हारा समर्पण होगा? अगर चित्रकार का सम्मान करना है, उसके चित्र का सम्मान करो। और अगर मूर्तिकार का सम्मान करना है, उसकी मूर्ति का सम्मान करो। अगर स्रष्टा का तुम्हारे मन में कोई भी सम्मान उठा है, तो उसकी यह विराट सृष्टि, ये फूल, ये पक्षी, ये पत्ते, ये लोग, ये पत्थर, इन सबका सम्मान करो। इस सब पर उसके हस्ताक्षर हैं।

एक जीवन-विधेय का धर्म देना चाहता हूं। एक ऐसा धर्म जो संकीर्ण न हो, आकाश जैसा विराट हो, जिसमें सब समा जाए। एक ऐसा धर्म जिसमें दमन न हो, जिसमें उत्सव हो; जिसमें उदासी न हो, जिसमें नृत्य हो, गीत हो, गायन हो। एक ऐसा धर्म जिसमें लोग सृजनात्मक हों। जाकर गुफाओं में न बैठ जाएं मुर्दों की भांति। वह तो तुम कब्र में कर लेना, अभी जल्दी क्या है?

कनफ्यूसियस से उसके एक शिष्य ने पूछा कि मैं शांत कैसे हो जाऊं? मैं बिलकुल शांत हो जाना चाहता हूं। कनफ्यूसियस ने कहा—जल्दी क्या है, जब तू कब्र में सोए तब शांति से सो जाना। अभी जी ले, अभी नाच ले; अभी जीवन के साथ उत्सव मना ले।

शांति से भी ज्यादा बड़ा मूल्य आनंद का है। और निश्चित ही आनंद के पीछे एक तरह की शांति आती है छाया की भांति। लेकिन तब वह मुर्दा शांति नहीं होती है, मरघट की शांति नहीं होती है। शांति होती है जैसी संगीत को सुनने के बाद आती है। शांति होती है जैसे नृत्य के बाद आती है। एक आनंद का भाव शांति को भी अपने साथ बहा लाता है, लेकिन वह जीवन की तरंग पर चढ़कर आती है।

अतीत के धर्म व्यक्ति-विरोधी धर्म थे। उन्होंने व्यक्तियों को स्वतंत्रता नहीं दी; उन्होंने व्यक्तियों को व्यक्तित्व नहीं दिया। उन्होंने व्यक्तियों को भेड़ बनाने की कोशिश की। मैं तुम्हें स्वतंत्रता देना चाहता हूं। मैं तुम्हें तुम्हारी निजता देना चाहता हूं। तुम अद्वितीय हो। यहां कोई एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति जैसा नहीं है। तुम्हें किसी दूसरे की नकल होने की आवश्यकता नहीं है। तुम तुम जैसे हो, और तुम्हें तुम जैसा ही होना है। ऐसे होकर ही तुम परमात्मा को प्रसन्न कर सकोगे। तुम गुलाब हो तो गुलाब की तरह खिलो, और चमेली हो तो चमेली की तरह खिलो; तुम्हें कमल होने की जरूरत नहीं है। तुम कमल हो तो कमल की तरह खिलो, कमल को गुलाब होने की जरूरत नहीं है। तुम अपने को स्वीकार करो, अपने को अंगीकार करो। न तुम्हें बुद्ध बनना है; न तुम्हें महावीर बनना है; न तुम्हें रजनीश बनना है। तुम्हें तुम ही बनना है और तुम जिस दिन तुम ही बनोगे, उसी दिन तुम्हारे जीवन में उल्लास होगा।

नया धर्म विशेषणमुक्त हो। नया धर्म दमनमुक्त हो। नया धर्म सिद्धांतमुक्त हो। नया धर्म निजता का, व्यक्ति के परम सम्मान का धर्म हो। और नया धर्म सृजन का धर्म हो। परमात्मा स्रष्टा है। तुम भी कुछ रचो, कुछ बनाओ, तो तुम भी उसके साथ हो लोगे। स्रष्टा होकर ही तुम स्रष्टा के साथ अपना सरगम बिठा सकोगे।

फिर स्रष्टा होने के लिए कुछ ऐसा नहीं है कि तुम पिकासो होओ, या वानगाग, या कालिदास, या भवभूति, कि तुम कोई बड़ा महाकाव्य लिखो, कि तुम कोई बड़ा संगीत जनमाओ। बड़े और छोटे का सवाल नहीं है। उसकी महफिल में बड़े और छोटे का हिसाब नहीं हैं। तुम अगर अपने छोटे से फूल को भी चढ़ाने गए तो वहां उतना ही सम्मान है। तुम सोने का ही फूल चढ़ाओ, ऐसी कोई बात नहीं है। वहां सोने में और मिट्टी में कोई फर्क नहीं है। सृजनात्मकता चाहिए। और सृजनात्मकता जीवन का अंग बन सकती है। तुम भोजन पकाओ, लेकिन उसमें सृजनात्मकता हो। तुम बुहारी लगाओ घर में, उसमें सृजनात्मकता हो, उसमें प्रार्थना हो। तुम परमात्मा की पृथ्वी को झाड़ रहे हो। बस तभी फर्क हो जाएगा। तुम्हारा बेटा भोजन करने आ रहा है, तुम्हारा बेटा भी परमात्मा है। तुम्हारा पति भोजन करने आ रहा है, तुम्हारा पति भी परमात्मा है। तुम अपनी पत्नी के लिए कुछ तैयार कर रहे हो, तुम्हारी पत्नी में परमात्मा छिपा है। तुम ऐसे जीओ कि सब तरफ से परमात्मा के प्रति तुम्हारा समादर प्रगट हो। मंदिरों-मस्जिदों में जाओ या न जाओ, फर्क नहीं पड़ता। यहां चलते-फिरते मंदिर हैं चारों तरफ। यहां हर आंख में परमात्मा छिपा है। झांको थोड़ा, और इस ढंग से जीओ कि तुम्हारा पूरा जीवन परमात्मा की सेवा बन जाए। उसे मैं सृजनात्मकता कह रहा हूं।

कुछ करो। भाव से, समग्रता से। और हर समग्रता तुम्हें परमात्मा के करीब लाने लगेगी।

मैं तुम्हें एक ऐसा धर्म देना चाहता हूं जो मधुशाला का धर्म हो। रस का। रसो वै सः। वह परमात्मा रसरूप है, आनंदरूप है। तुम रस में निमग्न होओ। सुनो इन शब्दों कोः

हंसने का वक्त है, यह हंसाने का वक्त है
यानी चमन में फूल खिलाने का वक्त है
आई है, फिर बहार-ब-अंदाजे-दिलबरी
सर को हुजूरे-दोस्त झुकाने का वक्त है
माना, खिरद है, शमए-रहे-जिंदगी मगर
ऐ बेखबर! यह होश में आने का वक्त है
कब से है इंतजार नजर को न पूछिए

काशानाए-हयात बसाने का वक्त है
अब बन रही है, अपनी यह धरती ही आस्मां
खुर्शीदो-माहताब उगाने का वक्त है
छिटकी है फिर चमन में बहारों की चांदनी
तारीकिए-हयात मिटाने का वक्त है
ले आ गए हैं, बज्म में मीना-बदोश वह
हर-हर कदम पै जाम लुढ़ाने का वक्त है
कब तक रहेगी ईद मुहर्रम बनी हुई
आओ कि जश्ने-शौक मनाने का वक्त है
नजरों के साथ दिल भी करो फर्शे-राह तुम
'रख्शां'! यह उनके बज्म में आने का वक्त है
हर घड़ी परमात्मा के आने का समय है।
'रख्शां'! यह उनके बज्म में आने का वक्त है
हंसने का वक्त है, यह हंसाने का वक्त है

यह पूरा जीवन हंसने और हंसाने का जीवन होना चाहिए। रसो वै सः। वह रसरूप है। तुम भी रसरूप हो जाओ। उदास मत बैठो।

कब तक रहेगी ईद मुहर्रम बनी हुई
आओ कि जश्ने-शौक मनाने का वक्त है

धर्म मुहर्रमी हो गए हैं। वहां उदासी छा गई है। वहां लोग मुर्दों की भांति बैठे हैं। वहां समय के पहले मर गए हैं। मंदिरों में फिर से नाच को ले आओ। मंदिरों में फिर गीत को ले आओ। फिर बजने दो वीणा, फिर थिरकने दो पांव। फिर ताल पड़ने दो। देखते नहीं चारों तरफ परमात्मा सदा उत्सव में है? तुम उदास होकर इस महोत्सव से टूट जाते हो।

ले आ गए हैं, बज्म में मीना-बदोश वह

परमात्मा सदा ही मधु की मटकी भरे हुए आ रहा है।

ले आ गए हैं बज्म में मीना-बदोश वह
हर-हर कदम पै जाम लुढ़ाने का वक्त है

तुम जरा आंख खोलकर देखोगे तो फूलों में दिखाई पड़ेगा उसका मधु। सूरज में दिखाई पड़ेगा, चांद-तारों में दिखाई पड़ेगा। सब तरफ दिखाई पड़ेगा। मगर तुम्हारी आंखों पर धूल जम गई है। तुम्हारी आंखों को उदासी के पाठ पढ़ाए गए हैं। उन पाठों ने तुम्हारे जीवन को विकृत कर दिया है। तुम्हें इतने कांटों के पाठ पढ़ाए गए हैं कि तुम्हें फूल दिखाई पड़ने बंद हो गए हैं। इस जमीन को आसमान बनाना है। यह मेरा संदेश है आज के दिन।

अब बन रही है, अपनी यह धरती ही आस्मां
खुर्शीदो-माहताब उगाने का वक्त है

अब चांद-तारों को उगाने का समय आ गया है। धरती को आसमान बनाना है। बहुत दिन खोज चुके हम आसमान में स्वर्ग को, अब स्वर्ग को यहीं उतार लाना है।

और परमात्मा प्रतिपल तैयार है। तुम जरा मौका दो। तुम जरा अपने हृदय की वीणा को उसके सामने करो, तुम जरा पुकारो। और अचानक तुम पाओगे, एक दिन तुम्हारी वीणा पर किन्हीं अज्ञात अंगुलियों ने आकर अपना रास रचाना शुरू कर दिया है। कोई आ गया अज्ञात, चुपचाप, कब किस गली-कोने से, कब किस गली-द्वार से और तुम्हारी वीणा बजने लगी! मगर पुकारो।

शांडिल्य के सूत्रों का यही सार है। भक्ति का शास्त्र इतने में ही निचोड़ा जा सकता है कि वीणा मेरी पड़ी है, मैं पुकारता हूं, वीणावादक, तू आ और इसे बजा!

तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती।
बंद किवाड़े कर-कर सोए
सब नगरी के वासी,
वक्त तुम्हारे आने का यह,
मेरे राग-विलासी,
आहट भी प्रतिध्वनित तुम्हारी
इस पर होती आई,
तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती।
इसके गुण-अवगुण बतलाऊं?
क्या तुमसे अनजाना?
मिला मुझे है इसके कारण
गली-गली का ताना,
लेकिन बुरी-भली, जैसी भी,
है यह देन तुम्हारी,
मैंने तो सेई एक तुम्हारी थाती।
तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती।
तुम पैरों से ठुकरा देते
यह बलि-बलि हो जाती,
कहां तुम्हारी छाती की भी
धड़कन यह सुन पाती,
और चुकी हैं चूम उंगलियां
मधु बरसाने वाली,
अचरज क्या इतनी आज बनी मदमाती।
तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती।
मेरी उर-वीणा पर तुम जो
चाहो राग उतारो,
उसके जिन भावों-भेदों को
तुम चाहो उदगारो,
जिस पर्दे को चाहो खोलो,
जिसको चाहो मूंदो,
यह आज नहीं है दुनिया से शरमाती।
तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती।

प्रत्येक व्यक्ति एक वीणा है, जो कसी है, तैयार है, जनमों-जनमों से, रस से भरी है। पर वीणावादक को तुमने बुलाया नहीं; तुमने पुकारा नहीं। और वीणावादक न आए तो जीवन संताप रह जाता है।

मैं तुम्हें वीणावादक को पुकारने के लिए कहता हूं। भक्ति का इतना ही सारसूत्र है। जिस दिन तुम कह सकोगे अनन्यभाव से—तुम छेड़ो मेरी बीन कसी रसराती, उसी क्षण क्रांति घटनी शुरू हो जाती है।

अथातो भक्ति जिज्ञासा भाग-२

आज के सूत्र—

'लघु अपि भक्ताधिकारे महत्क्षेपकम अपर सर्वहानात्।।'

अपूर्व सूत्र है।

'थोड़ी-सी भक्ति उदय होने पर भी महापातक का नाश हो जाता है।'

थोड़ी-सी! अंधेरे को मिटाने के लिए कोई सूरज ही थोड़े चाहिए? एक मोमबत्ती भी, एक छोटा-सा मिट्टी का दीया भी। शांडिल्य कहते हैं, तुम इस फिक्र में मत पड़ो कि बहुत आयोजन करना पड़ेगा, तब तुम्हारे पाप कटेंगे, तब तुम्हारा अंधेरा मिटेगा। शांडिल्य कहते हैं, थोड़ी-सी भक्ति उदय होने पर भी महापातक का नाश हो जाता है।

भक्ति आणविक शक्ति है। एक छोटे से अणु में छिपी विराट शक्ति है। प्रेम से बड़ी कोई शक्ति इस जगत में नहीं है। प्रेम से ही घूमती है पृथ्वी, प्रेम से ही चांद-तारे चलते हैं। प्रेम के धागों से ही बंधा है अस्तित्व। तुम यहां हो, प्रेम की अनंत धारा के कारण। तुम्हारे बच्चे यहां होंगे, प्रेम की अनंत धारा के कारण। अनंत काल तक जीवन बहता रहता है। प्रेम सम्हाले है उसे, कोई और सम्हालने वाला नहीं। भक्ति उसी प्रेम की अपूर्व ऊर्जा का उपयोग है। तुम्हारे पास जो सबसे बड़ी शक्ति है, वह प्रेम है। तुम्हारे प्रेम को ही ईश्वर के उन्मुख कर देने का नाम भक्ति है।

शांडिल्य कहते हैं, थोड़ी-सी भक्ति उदय हो जाने पर भी महापातक का नाश हो जाता है। कैसे यह होता होगा? क्योंकि तुमने जनम-जनम तक न मालूम कितने पाप किए हैं, न मालूम कितने कर्म किए हैं, उन सबका बोझ है। गणित जो बिठाते हैं, हिसाब जो लगाते हैं, दुकानदार जो हैं, वे कहते हैं—यह कैसे होगा? भक्ति मात्र से कैसे होगा? अशुभ कर्मों का इतना जाल है, उसे तोड़ना पड़ेगा। लेकिन तुमने सुनी न कहावत, 'सौ सुनार की, एक लोहार की।' सुनार को समझ में भी नहीं आता कि एक चोट से कैसे कुछ होगा? वह तो खटखट-खटखट-खटखट करता ही रहता है। उसे भक्ति का सार पता नहीं है। एक चोट काफी है!

तुम्हारे घर में अंधेरा है, सदियों पुराना अंधेरा है। क्या तुम सोचते हो जब तुम दीया जलाओगे तो अंधेरा कहेगा—मैं बहुत पुराना हूं, इतनी जल्दी नहीं जा सकता हूं? एक छोटे से मिट्टी के दीए को जलाकर तुम समझ क्या रहे हो? अपने को समझ क्या लिया है! सूरज चाहिए। और जन्मों-जन्मों तक लाओगे, जलाओगे, तब हटूंगा। नहीं, अंधेरा तो हट जाता है। अंधेरा कहने के लिए समय भी नहीं पाता कि नहीं हटना चाहता हूं। इधर दीया जला, उधर अंधेरा गया।

ठीक वैसी ही घटना भक्त की है। यहां प्रेम का दीया जला, वहां सब पातक गिर गए।

सारे पापों का सार क्या है?

सारे पापों का सार अहंकार है। कोई और पाप नहीं है। अहंकार की छायाएं हैं पाप। 'मैं हूं', यही पाप की जड़ है। दूसरे लोग जो कर्मों का हिसाब-किताब रखते हैं, वे पत्ते काटते रहते हैं। वे लेकर कैंची लगे रहते हैं पत्ते काटने में, शाखाएं छांटने में। उनके छांटने और काटने का एक ही परिणाम होता है—वृक्ष और घना होता जाता है। वे एक पत्ता काटते हैं, तीन पत्ते निकल आते हैं। आखिर वृक्ष भी जवाब देना जानता है! कि तुमने समझा क्या है? इसीलिए तो वृक्ष को घना करने के लिए कलम करते हैं। कलम करते ही से वृक्ष घना होने लगता है। लेकिन अगर जड़ काट दो, तो बस बात समाप्त हो गई। जड़ छिपी है, पत्ते दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए लोग पत्ते काटने में जल्दी उत्सुक हो जाते हैं। भक्त जड़ काटता है भक्त कहता है, मुझसे भूलें हुइ, मुझसे बहुत पाप हुए, लेकिन इन सारे पापों के होने का मूल कारण क्या है, मूल जड़ क्या है? सारे पापों के भीतर घूमकर, खोजकर पाओगे, 'मैं' बैठा हुआ है। क्रोध किया था वह भी 'मैं' से पैदा हुआ था। जितना अहंकार, उतना क्रोध। लोभ किया था, वह भी अहंकार से हुआ था। जितना अहंकार, उतना लोभ। आसक्ति थी, वह भी अहंकार से थी। जितना अहंकार, उतनी आसक्ति।

तुम जरा अपने जीवन के सारे पापों का लेखा लो। तुम अचानक पाओगे, सबके भीतर एक ही छिपा बैठा है। रूप अनेक हैं, ढंग अलग हैं, लेकिन सबके भीतर सारसूत्र एक है। परिधि पर बड़ी बातें दिखाई पड़ती हैं—क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर—लेकिन बहुत गहरे में सिर्फ एक ही दिखाई पड़ता है केंद्र पर बैठा हुआ—अहंकार। वह जड़ छिपी हुई है।

भक्ति का अर्थ इतना ही है: अब मैं नहीं हूं, परमात्मा तू है। अहंकार के कटते ही सारा वृक्ष सूख जाता है, सारे कर्म-संस्कार गलित हो जाते हैं।

'तत् स्थानत्वात् अनन्य धर्मः खले बालीवत्।।'

'भागवत भक्तों की भक्ति क्षुद्र होने पर भी अनन्यता के कारण खरल में बाला की भांति महापाप भी नष्ट कर देती है।'

तुमने वैद्य को देखा? खरल लिए कूटता रहता है अपनी औषधि। उसमें जो भी पड़ जाता है, पिस जाता है। छोटी औषधि हो, बड़ी औषधि हो, सब पिस जाता है। शांडिल्य कह रहे हैं, ठीक वैसे ही भक्ति का खरल है, उसमें सब पाप पिस जाते हैं, सब पाप जीर्ण-शीर्ण होकर मिट जाते हैं। सबका चूर्ण बन जाता है।

भक्ति छोटी दिखाई पड़ती हो, छोटी नहीं है।

तुम देखते, दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ है हिरोशिमा पर। अणु बम का विस्फोट हुआ। अब अणु छोटी से छोटी चीज है। विज्ञान को इसके पहले पता नहीं था कि छोटे में इतना विराट छिपा हो सकता है। अणु आंख से दिखाई नहीं पड़ता। अगर हम एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक रखते जाएं तो बाल की मोटाई के होंगे। एक बाल की मोटाई बनेगी—एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक रखने से। इतना छोटा अणु, और हिरोशिमा में एक लाख आदमियों को क्षण में राख कर दिया! यह मामला क्या है?

जिन्होंने परमात्मा को तलाशा है, उन्हें यह राज बहुत पहले से पता रहा है। जैसे पदार्थ में अणु की शक्ति विराट है, ऐसे ही चेतना में प्रेम की शक्ति विराट है। प्रेम चेतना का अणु है। जैसे पदार्थ विद्युत से बना है, ऐसे चेतना प्रेम से बनी है। अगर हम उस अणु को पा लें, तो हमारे हाथ में विराट शक्ति आ गई।

इसलिए कृष्ण ने कहा है गीता में अर्जुन को: 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'। तू सब छोड़-छाड़; तेरे धर्म इत्यादि, कर्म इत्यादि, जप-तप, योग-याग, सब छोड़। तू मुझ एक की शरण आ जा। 'मामेकं शरणं व्रज।' मुझ एक की। यह कौन एक है? यह कृष्ण किसकी तरफ से बोल रहे हैं? यह उस परम एक की तरफ से बोला गया वक्तव्य है। यह कृष्ण अपने लिए नहीं बोल रहे हैं। यह कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं, कि तू मेरी शरण आ। कोई सदगुरु यह नहीं कहता, तुम मेरी शरण आओ। और जब कोई सदगुरु कहता है, तुम मेरी शरण आओ, तो उसका मतलब यही होता है कि अब वह नहीं है, अब उसके भीतर से परमात्मा बोल रहा है—'मामेकं शरणं व्रज'। कृष्ण तो बांसुरी हो गए हैं, अब जो स्वर आ रहा है वह परमात्मा का है। कृष्ण शुद्ध हो गए हैं, शांत हो गए हैं, मौन हो गए हैं। अब उनके भीतर से वह परमवाणी सुनाई पड़ रही है। जब कृष्ण ने यह कहा अर्जुन को, 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज', तब यह कृष्ण के संबंध में नहीं कहा है, यह उस परम अवस्था के संबंध में कहा है जो भीतर कृष्ण के सघन हो गई है।

उस एक की शरण आते ही सब हो जाएगा? फिर किसी धर्म, योग इत्यादि की कोई जरूरत नहीं है? कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि उस एक के शरण जाने में जड़ कट जाती है। उसके शरण जाने का मतलब है, तुमने अपने अहंकार को पोंछा, अलग किया।

और कृष्ण ने यह भी कहा: 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः'। हे अर्जुन, तू वैध और अवैध, सब कामों का त्याग करके मेरी शरण आ जा; मैं तुझे सब पापों से मुक्त करूंगा। मैं तुझे मोक्ष दूंगा। कृष्ण मोक्ष देंगे? इतना ही अर्थ है कृष्ण के कहने का कि अगर तू सब छोड़कर आ जाए, गिर जाए एक की शरण में, तो मोक्ष हो गया। कोई देता थोड़े ही है। यहां लेना-देना कहां? लिया-दिया मोक्ष किसी बड़े मूल्य का हो भी नहीं सकता।

कृष्ण को आज मौज आ गई, दे दिया और कल दिल फिर गया, ले लिया। क्योंकि जो दिया जा सकता है, वह लिया जा सकता है। नहीं रही दोस्ती, कह दिया कि अब बहुत हो गया, वापस कर दो; या मैं लिए लेता हूं। नहीं, मोक्ष न दिया जाता है, न लिया जाता है। फिर कृष्ण का अर्थ क्या है?

कृष्ण इतना ही कह रहे हैं, अगर तू अपने को छोड़ दे तो मोक्ष हो गया। और एक बार तुझे समझ में आ जाए कि 'मैं' के छोड़ते ही मोक्ष हो जाता है, फिर कोई पागल है जो कारागृह में जाए 'मैं' की वापस? फिर कौन उस अंधेरी कोठरी में बंद होगा? 'अहं त्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामि मा शुचः'। आ जा, मुक्त हो जा। एक ही काम कर ले। एक जड़ काट दे।

भक्त से इतनी ही अपेक्षा है, और कुछ ज्यादा नहीं, कि वह इस मैं भाव को छोड़ दे।

मैं खुद फरेब सही, दिल उम्मीदवार तो है

वफा हो, या न हो वादे पै ऐतबार तो है

बला से पाएं न मंजिल मगर यह क्या कम है

भटकते फिरने में इस दिल को कुछ करार तो है

छोटी-सी भक्ति। भक्त कहता है, न मिले सूरज, छोटी-सी किरण। न पहुंच पाएं मंजिल तक, लेकिन मंजिल की तलाश में भटक रहे हैं, इससे भी बड़ी राहत है।

तुम धन पा लो तो भी कुछ सार नहीं। और ध्यान को पाने वाला, ध्यान न भी पा सके, लेकिन पाने की यात्रा पर लगा रहे, तो काफी है। इसे मैं फिर से तुमसे कह दूं, ध्यान के रास्ते पर तुम हार जाओ तो भी जीत गए, और धन के रास्ते पर जीत भी गए तो क्या जीते? जीतकर भी हार हो जाती है धन के रास्ते पर। ध्यान के रास्ते पर हारकर भी जीत हो जाती है। मैं खुद फरेब सही, दिल उम्मीदवार तो है।

उसकी आकांक्षा, इतना ही क्या कम है? उसकी आशा, 'दिल उम्मीदवार तो है।' परमात्मा की आकांक्षा का अंकुरण हुआ है, इतना ही बहुत है। उतनी आकांक्षा भी रूपांतरकारी है।

मैं खुद फरेब सही, दिल उम्मीदवार तो है

वफा हो, या न हो वादे पै ऐतबार तो है

बला से पाएं न मंजिल मगर यह क्या कम है

भटकते फिरने में इस दिल को कुछ करार तो है

गुमाने-तर्के-तअल्लुक न कीजियो नासेह

जो उनकी बज्म नहीं, उनकी रहगुजर तो है

नहीं पहुंचे उनकी महफिल तक, कोई फिक्र नहीं, लेकिन उनके रास्ते पर हैं। जिस रास्ते से वे आते-जाते हैं, उस रास्ते पर हैं। इतनी भक्ति भी काफी है। इतनी भक्ति भी क्रांतिकारी है।

जो उनकी बज्म नहीं, उनकी रहगुजर तो है

गिला नहीं मुझे बेकैफिए-हयात का अब

खटकते रहने को सीने में कोई खार तो है

अब कोई फिक्र नहीं है, शिकायत भी नहीं। एक कांटा चुभ गया है परमात्मा को पाने का, एक उसके वियोग का कांटा चुभा है, वह भी काफी है। उसकी याद तड़पाती है, वह भी काफी है।

विदाए-मौसमे-गुल का न गम कर ऐ बुलबुल

वह इक नवा कि जो है रुकसे-बहार तो है

चमक के कहती है, जुल्मत से इक यकीं की किरन

सहर न आई तो क्या, उसका इंतजार तो है

रात के अंधेरे से आस्था की, श्रद्धा की एक छोटी-सी किरण कहती है:

चमक के कहती है, जुल्मत से इक यकीं की किरन
सहर न आई तो क्या, उसका इंतजार तो है

सुबह न आई तो भी चलेगा; सुबह का इंतजार भी तो सुबह है। छोटी-सी भक्ति, थोड़ी-सी आस्था, जरा सा बीज, और विराट फल होता है।

हुए जो अश्क रवां उन पर इख्तियार न था
तो उनको तुझसे छुपाने पै इख्तियार तो है

मनुष्य परमात्मा की यात्रा पर दो ढंग से निकल सकता है। एक तो अकड़ से, कि पाकर रहूंगा; संकल्प से; वह अहंकार की ही यात्रा है। वह अहंकार का ही सूक्ष्म रूप है। और दूसरा मार्ग है कि अपने को मिटा दूंगा, तेरी राह पर अपने को मिटा दूंगा, तेरी राह पर गर्दे-गुबार होकर मिट जाऊंगा; वह समर्पण का मार्ग है। और जो समर्पण करने को राजी है, उनके हाथ में वह विराट ऊर्जा लग जाती है जो प्रेम में छिपी है।

इस दिल की कायनात है तेरी नजर के साथ
गुंचे की जिंदगी है नसीमे-सहर के साथ
आएगी हाथ मंजिले-मकसूद खुद-ब-खुद
देखो तो चलके चार कदम राहबर के साथ

सिर्फ चार कदम भी चलकर देखो।

इस दिल की कायनात है तेरी नजर के साथ

भक्त की तो सारी दुनिया उसकी एक नजर में है। उसकी एक दृष्टि हो जाए, सब हो गया। ज्यादा की उसकी मांग नहीं है। उसकी मांग बड़ी छोटी है। छोटी है, इसीलिए जल्दी पूरी हो जाती है। सिर्फ मांगता है इतना, एक दफा मेरी तरफ देखभर लो—दूर से सही, पलभर को सही, एक बार खयाल कर लो कि मैं भी यहां हूं। और तुम्हें पुकारता हूं और तुम्हारी चाहत में मर रहा हूं।

इस दिल की कायनात है तेरी नजर के साथ
गुंचे की जिंदगी है नसीमे-सहर के साथ

जैसे सुबह की हवा के साथ फूल की जिंदगी है, ऐसे परमात्मा की एक नजर के साथ भक्त की जिंदगी है।

आएगी हाथ मंजिले-मकसूद खुद-ब-खुद

भक्त कहता है, मुझे फिक्र नहीं है आखिरी मंजिल की, मुझे अंतिम लक्ष्य की कोई चिंता नहीं है। मुझे मोक्ष की कोई चिंता नहीं है।

आएगी हाथ मंजिले मकसूद खुद-ब-खुद

वह अंतिम मंजिल तो अपने आप आ जाएगी। मुझे तो फिक्र तेरी दृष्टि की है। तू एक बार देख ले!

देखो तो चलके चार कदम राहबर के साथ

किसी पथप्रदर्शक के साथ चार कदम भी चलकर देख लो, किसी गुरु के साथ थोड़ा सत्संग कर लो, और तुम्हारे भीतर भी यह भक्ति का बीज पड़ जाएगा। और यह छोटा-सा बीज बड़े विराट को अपने में छिपाए हुए है। जैसे एक छोटी-सी बूंद में पूरा सागर छिपा है। ऐसे ही भक्ति की छोटी-सी बीज में पूरा भगवान छिपा है।

'आनिंद्ययोनि अधिक्रियते पारंपर्यात् सामान्यवत्।।'

'भक्ति में चांडाल आदि का भी अधिकार है, क्योंकि भक्त भक्ति की मर्यादा से सब समान हैं।'

उन पुराने दिनों में जब शांडिल्य ने ये अपूर्व सूत्र लिखे, बड़ी मूढ़ता थी। अब भी समाप्त नहीं हो गई है। शूद्र को मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं था। और चांडाल तो शूद्र से भी गया-बीता है। तुमने चार वर्ण सुने हैं: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। एक पांचवां वर्ण भी है जिसको वर्णों में गिना नहीं गया है। उसको चांडाल कहते हैं। वह इतना बाहर है कि उसकी गिनती भी नहीं की है। वह गिनने के योग्य भी नहीं है। लेकिन शांडिल्य की हिम्मत

देखते हो! हजारों साल पहले यह कहने की हिम्मत कि भक्ति के मार्ग पर हम कोई भेद नहीं करते—कौन ब्राह्मण है, कौन शूद्र है, कोई भेद नहीं करते। भक्ति के मार्ग पर सब मनुष्य समान हैं। भक्ति के मार्ग पर चांडाल भी उतना ही अधिकारी है जितना कोई और।

भगवान की करुणा अपरंपार है। ब्राह्मण पर कुछ ज्यादा होगी, शूद्र पर कुछ कम होगी, चांडाल पर बिलकुल न होगी, तो यह तो करुणा की सीमा हो जाएगी। करुणा का अर्थ ही यह होता है कि जिसे जितनी ज्यादा जरूरत है उतनी ज्यादा उसे उपलब्ध होगी। ब्राह्मणों को न भी मिले तो चलेगा, चांडाल को तो मिलनी ही चाहिए। पुण्यात्मा को न मिले, चलेगा, लेकिन पापी को तो मिलनी ही चाहिए। पुण्यात्मा को तो पुण्य भी है सहारे के लिए, पापी के लिए तो सिर्फ परमात्मा ही है सहारे के लिए। इसलिए अक्सर ऐसा हो गया है कि पापी तो पहुंच गए हैं और पुण्यात्मा भटक गए हैं। अकड़ है पुण्यात्मा को कि मेरा किया-धरा, मैंने इतना किया, इतना किया, इतना किया, उसके सहारे जीना चाहता है। पापी कहता है, मेरे किए तो सब गलत हुआ। मैं ही गलत हूं तो मेरे किए कुछ ठीक कैसे होगा? मैं अंधकार हूं, तेरी किरण उतरेगी—करुणा से उतर सकती है, मेरी पात्रता से नहीं।

'भक्ति में चांडाल आदि का भी अधिकार है, क्योंकि भक्त भक्ति की मर्यादा से सब समान हैं।'

भक्ति की मर्यादा, मर्यादा ही नहीं मानती। सब समान हैं। कोई सीमा नहीं मानती।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, ज्ञान के और कर्म के मार्ग क्षुद्र हैं भक्ति का मार्ग विराट है। ज्ञान और कर्म के मार्ग पर बड़ा हिसाब-किताब है। कौन अधिकारी? कौन अनधिकारी? भक्ति के मार्ग पर कोई अधिकार-अनधिकार का हिसाब नहीं है। जो रोएगा, जो पुकारेगा, जो झुकेगा, वही अधिकारी है। झुकने के पहले अधिकार नहीं है। यह नहीं पूछा जाएगा कि तू पहले झुकने का अधिकारी है या नहीं; कि ऐसे ही झुक रहे हो; पहले पुण्य तो करो, फिर झुकना; पहले व्रत-उपवास करो, फिर झुकना! सच तो यह है, व्रत-उपवास और पुण्य करने वाला झुक ही नहीं पाता। वे व्रत-उपवास ही लोहे की तरह उसकी छाती में समा जाते हैं, झुकने नहीं देते। उसकी रीढ़ मजबूत हो जाती है, झुकती नहीं।

झुकने के लिए अपनी असहाय अवस्था का बोध चाहिए। पापी से ज्यादा किसको होगा? परमात्मा के पास तुम अपनी पात्रता से नहीं पहुंचते हो, अपनी असहाय अवस्था की पुकार से पहुंचते हो। तुम्हारी आह तुम्हें पहुंचाती है, तुम्हारा अहंकार नहीं।

'अतः हि अविपक्वभावानां अपि तल्लोके।।'

'इस कारण पराभक्ति का लाभ नहीं होने पर भी साधक का निवास भागवत लोक में ही हुआ करता है।'

बड़े अपूर्व सूत्र हैं। सम्हालकर रख लेना हृदय में। शांडिल्य का वक्तव्य यह कह रहा है, पराभक्ति का लाभ होगा तब होगा, अंतिम मंजिल जब मिलेगी तब मिलेगी, परमात्मा जब पूरा-पूरा उतरेगा तब उतरेगा, लेकिन भक्त जिस दिन से आंसू गिराना शुरू करता है, उसी दिन से उसका निवास भागवत लोक में हो जाता है।

इस भेद को थोड़ा खयाल में लेना, भेद थोड़ा बारीक है।

भक्त के भीतर भागवत लोक कब आएगा, यह तो पराभक्ति में होगा, लेकिन भक्त तो पहले दिन से ही भागवत लोक में प्रवेश कर जाता है।

ये दो बातें हुइ।

तुम यहां बैठे हो, दो घटनाएं घट सकती हैं। मेरा तुममें प्रवेश हो सकता है, एक घटना। तुम्हारा मुझमें प्रवेश हो सकता है, दूसरी घटना। तुम्हारा मुझमें प्रवेश उसी क्षण हो जाता है जिस क्षण तुम आकांक्षा करते हो। मेरा प्रवेश होते-होते होगा। तुम जिस दिन से पहला कदम उठाते हो अपनी यात्रा का, उसी दिन से तुम मंजिल के हिस्से हो गए। मंजिल तो पीछे मिलेगी, मंजिल आते-आते आएगी—आ जाएगी जब आनी होगी; भक्त को उसकी चिंता भी नहीं है कि आज आ जाए कि कल आ जाए; भक्त को भरोसा है, आएगी तब आएगी—लेकिन जिस दिन

तुमने पहला कदम उठाया परमात्मा की तरफ, तुम परमात्मा के हिस्से हो गए। तुम्हारे भीतर भागवत लोग कभी आएगा, लेकिन तुम भागवत लोक के हिस्से हो गए। भक्त पहले दिन से ही भगवान में लवलीन हो जाता है। ज्ञानी को तो अंत में ही मिलता है—इसलिए ज्ञानी उदास दिखाई पड़ते हैं, स्वाभाविक है। अभी चल ही रहे हैं, चल ही रहे हैं, धक्के खा रहे हैं, परेशान हो रहे हैं, पहुंचेंगे जब कहीं आखिर में आनंद शायद हो; लंबी यात्रा है, और यात्रा बिलकुल निर्जन है, और रास्ते पर कहीं फूल नहीं खिलते, और कोई पक्षी गीत नहीं गाते, जिस दिन उनकी पात्रता पूरी होगी, तब उनके जीवन में आनंद होगा। लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है—तब तक उदासी की आदत इतनी सघन हो जाती है कि आनंद भी हो जाता है मगर होंठ नहीं मुस्कुराते। भूल ही गए भाषा मुस्कुराने की। मीरा पहले दिन से ही नाचने लगती है। महावीर अंतिम दिन नाचते हैं। मगर तब तक नाचना भूल गए! तो फिर नाच भीतर ही भीतर होता है। फिर बाहर किसी को दिखाई नहीं पड़ता। फिर चेतना का ही होता है, फिर देह तो जड़ हो गई। देह तो भूल गई भाषा। देह को तो याद ही नहीं रही कभी नाचने की—कभी नाची नहीं।

तुम समझते हो न बात को?

जब परमात्मा उतरेगा तब तुम्हारे भीतर उतना ही तो प्रगट होगा जितना तुम्हारा अभ्यास होगा। जो आदमी हंसने का अभ्यास करता रहा था पूरे रास्ते पर, परमात्मा उतरेगा तो शायद खिलखिलाकर हंसेगा। बोधिधर्म को ऐसा ही हुआ था। जब परमात्मा उतरा तो वह खिलखिलाकर हंसा। हंसने का बड़ा अभ्यास रहा होगा। हंसता रहा था; जिंदगी को गंभीरता से नहीं लिया था। जिंदगी एक बहुमूल्य मजाक थी, एक प्यारा मजाक थी। हंसता रहा था। तो आखिर में जब परमात्मा उतरा तो हंसी में फूटा। महावीर नहीं नाचे। रास्ता ज्ञान का है। रास्ता कर्मशुद्धि का है। रास्ता आत्मशुद्धि का है। तो जिस दिन परमात्मा उतरा, उस दिन हाथ-पैर में कोई लहर न उठी। उठ नहीं सकती! मीरा पहले दिन से नाची और अंतिम दिन तक नाची।

भक्त के लिए मार्ग भी मंजिल है। पहले ही कदम से मंजिल शुरू हो जाती है। यह अपूर्वता है भक्ति की, यह विलक्षणता है।

'इस कारण पराभक्ति का लाभ नहीं होने पर भी साधक का निवास भागवत लोक में हुआ करता है।' यह सूत्र अपूर्व है। इसलिए फिर कहता हूं, इसे सम्हालकर हृदय में रख लेना और पहले दिन से ही आनंदित हो जाओ। परमात्मा है, मिलन जब होगा तब होगा; उसकी राह पर चल पड़े, मगन हो जाओ, मस्त हो जाओ!

सब्रो-जब्त के लेके बेशुमार नजराने
तेरी याद आई थी आज मुझको समझाने
पा गए हैं मंजिल को खुद-ब-खुद ही दीवाने
अक्ल के दोराहे पै खो गए हैं फरजाने।

समझदार तो अक्ल के दोराहे पर खो गए हैं, और दीवाने पहुंच गए हैं।

पा गए हैं मंजिल को खुद-ब-खुद ही दीवाने
अक्ल के दोराहे पै खो गए हैं फरजाने
तुमने बात कह डाली, कोई भी न पहचाना
हमने बात सोची थी, बन गए हैं अफसाने
उन नई बहारों पर उन नए नजारों पर
एक रिंद ही क्या हैं, रो रहे हैं मैखाने
हाय क्या मुसीबत है, हाय क्या कयामत है
हम ही खा गए धोखा, हम चले थे समझाने

यहां समझने-समझाने को कुछ भी नहीं है। यहां नाचने-गाने को बहुत कुछ है, समझने-समझाने को कुछ भी नहीं है।

पा गए हैं मंजिल को खुद-ब-खुद ही दीवाने
अक्ल के दोराहे पै खो गए हैं फरजाने

बुद्धिमान बनकर मत चलना। पागल बनो, दीवाने बनो, मस्त बनो। ऐसे चलो जैसे पीए हो। परमात्मा के रास्ते पर पहला कदम ही पीने वाले का कदम होना चाहिए, लड़खड़ाकर उठना चाहिए। डोलकर चलो। परमात्मा तो है, सब तरफ है, जब हमारी समझ होगी, जब हमारी पहुंच होगी, तब समझ लेंगे। मगर नाच तो हम अब भी सकते हैं। नाच तो अज्ञानी भी सकता है न! नाचने के लिए कोई ज्ञान तो शर्त नहीं है। और नाच तो पापी भी सकता है न! नाचने के लिए पुण्य तो कोई शर्त नहीं है। तो नाचो। और जो नाचते-नाचते नाच में खो जाता है, वह पहुंच जाता है।

'क्रमैकगत्युपपत्तेः तु।।'

'ऐसा मानने से क्रमगति और एक-गति का प्रतिपादन करने वाले वचनों की संगति होती है।'

शांडिल्य कह रहे हैं, भक्ति में दोनों बातें मिल गयीं। दुनिया में दो तरह के विचार रहे हैं। क्रमिक-गति, धीरे-धीरे मिलता है निर्वाण, 'ग्रेजुअल,' क्रमशः—एक। और दूसरा, 'सडन एनलाइटेंनमेंट, तत्क्षण, अक्रम से, एक गति से, एक ही छलांग में मिल जाता है। शांडिल्य कहते हैं कि भक्ति में दोनों बातें पूरी हो गयीं, दोनों में संगति हो गई, दोनों का विरोध जाता रहा। ऐसे तो मिल जाता है पहले ही कदम पर, और वैसे मिलता है आखिरी कदम पर। भक्त नाचना तो शुरू कर देता है पहले ही कदम पर, फिर नाच का ही सिलसिला है; अंतिम पर भी नाचता है। अगर तुम्हें मीरा से मिलन हो जाए, तो तुम पहचान न सकोगे कि मीरा कब अज्ञानी थी कब ज्ञानी हुई। वह घटना तो भीतरी है, मीरा ही जानेगी। नाच बाहर चल रहा है सो चल रहा है। और बाहर के नाच में कोई फर्क न पड़ेगा। पहले दिन भी नाच में वही माधुर्य और अंतिम दिन भी नाच में वही माधुरी। पहला कदम अंतिम कदम भी है। भीतर बहुत फर्क पड़ जाएगा।

पहले कदम पर मीरा भागवत लोक का हिस्सा हो गई। अंतिम कदम पर भागवत लोक मीरा का हिस्सा हो जाएगा। बस इतना ही फर्क है। और यह फर्क बारीक है। और यह फर्क भीतरी है। बाहर से पकड़ में भी न आएगा। आने की कोई जरूरत भी नहीं है।

शास्त्र कहते हैं:

अनेक जन्मसंसिद्धिस्ततोयाति परां गतिं।।

अनेक जन्मों के साधन, अति साधन से सदगति की प्राप्ति होती है। भक्ति उस शास्त्र को उलट देती है। भक्ति कहती है, यह क्या बकवास लगा रखी है? समय का कोई संबंध सत्य से नहीं है। पहले ही कदम पर हो जाती है और अंतिम कदम पर भी होती है। दोनों में थोड़ा अंतर है। वह अंतर आंतरिक है। बाहर से उसको तौलने का कोई उपाय नहीं है। और कब तराजू दूसरी तरफ डोल जाता है, यह भीतर भी पहचानना बड़ा मुश्किल होता है। नाचने वाले को फुरसत भी कहां?

इसलिए तुम देखते हो, महावीर को कब निर्वाण उपलब्ध हुआ, हमें मालूम है तारीख। मुझे कब निर्वाण उपलब्ध हुआ, उस तारीख पर आज तुम इकट्ठे हो गए हो। मीरा को कब निर्वाण उपलब्ध हुआ, तुम्हें कोई तारीख मालूम है? वहां तारीख नहीं है। तारीख का पता मीरा ही को नहीं है! कब बात होते-होते हो गई, कब चुपचाप यह भीतर घटना घट गई, कब पेंडुलम संसार से सत्य में डोल गया, यह नाचने वाले को पता भी नहीं हो सकता है। यह ध्यान करने वाले को पता हो सकता है। वह जो ध्यान में बैठा है, सजग होकर देख रहा है एक-एक चीज को, जांच रहा है एक-एक चीज को, उससे कोई चीज चूकेगी नहीं। उसको साफ पता चल जाएगा कि यह गई रात, यह सुबह हुई। अब जो नाच रहा है मस्ती में, रात भी नाचा था, सुबह भी नाच रहा है, उसे कहां पता चलेगा कब सुबह हो गई, कब सूरज निकल आया? इसलिए भक्तों को कब ज्ञान उपलब्ध हुआ, इसका कोई उल्लेख नहीं

है। इसका राज यही है। पहले कदम पर ही वे आखिरी कदम जैसे हो गए थे। और आखिरी कदम पर भी पहले कदम ही जैसे थे। वहां एक गहरा तारतम्य है।

'क्रमैकगत्युपपत्तेः तु।।'

'ऐसा मानने से क्रमगति और एक-गति का प्रतिपादन करने वाले वचनों की संगति होती है।'

अदभुत किया शांडिल्य ने। इन दोनों के बीच कोई संगति कभी बिठा पाया नहीं!

झेन में दो परंपराएं हैं। बड़ा विवाद है उनमें। जो मानते हैं कि क्रमिक है, वे मानते हैं क्रमिक ही होगा। एक-एक कदम, एक-एक कदम उठाकर ही तो मंजिल पर पहुंचोगे। और जो मानते हैं 'सडन' है, अक्रमिक है, एक ही छलांग में हो जाता है, वे मानते हैं—एक ही छलांग में हो जाता है। कदम उठाकर पहुंचने का मतलब तो यह हुआ कि सत्य भी खंड-खंड किया जाएगा। थोड़ा-सा मिला, फिर थोड़ा-सा मिला, फिर थोड़ा-सा मिला। सत्य के कोई खंड नहीं हो सकते, इसलिए कदम नहीं हो सकते। बस एकबारगी मिल जाता है। या तो आदमी अज्ञानी होता है, या ज्ञानी बीच में कोई और स्थितियां नहीं होतीं।

इन दोनों का विवाद ऐसा है कि हल नहीं हो सकता। क्योंकि जो कहता है धीरे-धीरे मिलेगा, वह भी पूछता है उससे जो कहता है एकबारगी में मिल जाता है, कि फिर तुम बीस साल तक ध्यान क्यों कर रहे थे? अगर एकबारगी में मिल जाता है तो पहले ही दिन छलांग क्यों नहीं लगा गए थे?

झेन में इस तरह की कथाएं हैं कि किसी साधक ने गुरु के पास जाकर कुछ पूछा और गुरु ने चांटा मार दिया और चांटा मारते ही वह निर्वाण को उपलब्ध हो गया। इस तरह की कहानियां पश्चिम में इस समय बहुत प्रचलित हो गई हैं, क्योंकि पश्चिम में बड़ी जल्दबाजी है। कहते हैं, यह बड़ा अच्छा है, कोई मिल जाए गुरु और मार दे एक चांटा, चलो एक दफा, झंझट मिटी। मगर तुम्हें मालूम नहीं है कि वह कहानी अधूरी है, उसके पहले वह सज्जन छब्बीस साल तक ध्यान कर रहे थे, जिनको चांटा मारा गया है। यह मत सोचना कि यह चले आ रहे थे अभी उठकर बिस्तर से और मारा एक चांटा और ध्यान को उपलब्ध हो गए। वे छब्बीस साल से ध्यान कर रहे थे। यह चांटा तो बस आखिरी—कहते हैं न, ऊंट पर आखिरी तिनका—चढ़ाई तो बहुत दिन से चल रही थी, सामान चढ़ाया जा रहा था, आखिरी तिनके ने ऊंट बिठा दिया।

लेकिन पश्चिम में जो कहानियां प्रचलित हो रही हैं झेन के संबंध में, वे पूरी नहीं हैं। क्योंकि पूरी कहानी में कौन राजी होगा? सुनते ही से कि छब्बीस साल पहले ध्यान करना पड़ेगा, उन्होंने कहा कि छोड़ो, एक तो चांटा खाओ, छब्बीस साल के बाद! किसी तरह राजी थे कि चलो, एक चांटा लग जाए एक दफा, झंझट मिटे। पहले छब्बीस साल ध्यान करो! इतनी देर के लिए कोई राजी नहीं है।

तो वे जो कहते हैं क्रमिक होती है उपलब्धि, उनकी बात में भी बल मालूम होता है—फिर छब्बीस साल तक क्या कर रहे थे? लेकिन जो कहता है कि अक्रमिक है गति, उसकी बात में भी बल है। वह कहता है, छब्बीस साल तक ध्यान कर रहे थे, मगर ध्यान हुआ नहीं था। हो ही जाता तो फिर जरूरत क्या थी करने की? हुआ तो जब चांटा मारा तब हुआ। ऊंट पर चढ़ाया जा रहा था सामान, लेकिन बैठा नहीं था। और जब तक बैठा नहीं है तब तक खड़ा ही है न, यही कहोगे। तब तक यह नहीं कह सकते कि बैठ गया। इतने सेर बैठ गया, अब इतने सेर बैठ गया, अब इतने सेर, अब इतने मन बैठ गया। वह तो खड़ा ही है। वह जो आखिरी तिनका पड़ा, एक चांटा लगा, तब बैठा। जब बैठा तभी बैठा न। तो दोनों की बात में बल है।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि जीवन के सत्य विरोधाभासी हैं और इसलिए जब उस विरोधाभास के एक-एक अंग को दो तरह के पक्ष पकड़ लेते हैं तो उनमें विवाद सदियों तक चलता है, और हल नहीं होता। लेकिन शांडिल्य ने अदभुत किया। शांडिल्य कहते हैं, यह विवाद समाप्त करो। भक्त के जीवन में यह विवाद उठता ही नहीं है। उसने दोनों को एक साथ अपने बीच जोड़ लिया है। उसका पहला कदम अंतिम भी है—और अंतिम पहला कैसे हो सकता है? भक्त विरोधाभासी है। वह अज्ञान में भी नाचता है, वह ज्ञान में भी नाचता है। उसका नाचना एक

है। अंधेरे में भी नाचता है, रोशनी में भी नाचता है। घनी अमावस की रात थी तब भी वह नाच रहा था, और उसके नाचने में कोई फर्क न था। और फिर पूर्णिमा की रात आ गई, और वह अब भी नाच रहा है। उनका नाचना सतत है। वह गंगा की धारा की तरह अविच्छिन्न बह रहा है। उसे कहां फिक्र है कि कब अमावस और कब पूर्णिमा हो गई? कौन है हिसाब लगाने को वहां? वहां कोई अहंकार पीछे बैठा हुआ हिसाब-किताब नहीं कर रहा है। नाच में सब खो गया। और जब नाच में नाचने वाला खो जाए, तो कैसी अमावस? अमावस ही पूर्णिमा हो जाती है। फिर कैसी पूर्णिमा? फिर भेद कहां? सब भेद अहंकार से पैदा होते हैं। जड़ ही कट गई।

किस कदर हुस्ने-नजर है तेरे दीवानों में
कलियां दामन की सजाई हैं गरेबानों में
हुस्न को खींच के ले आई मुहब्बत की कशिश
आके खुद शमअ को जलना पड़ा परवानों में

'हुस्न को खींच के ले आई मुहब्बत की कशिश।' परमात्मा को खोजने नहीं जाता है भक्त। 'हुस्न को खींच के ले आई मुहब्बत की कशिश, उसका प्रेम ही बुला लाता है, खींच लाता है।

हुस्न को खींच के ले आई मुहब्बत की कशिश
आके खुद शमअ को जलना पड़ा परवानों में

परवाने की तरह भक्त नहीं जाता है परमात्मा को खोजने, शमा ही परवाने को खोजती हुई आती है—यह अपूर्व घटना घटती है। 'आके खुद शमअ को जलना पड़ा परवानों में।'

क्या खबर हमको हरम क्या है, कलीसा क्या है
जिंदगी हमने गुजारी इन्हीं मैखानों में

भक्त कहता है कि हम तो मधुशाला में ही रहे, हमें मंदिर और मस्जिद का कुछ पता नहीं। 'क्या खबर हमको हरम क्या है, कलीसा क्या है'! काबा क्या और गिरजा क्या, हमें कुछ पता नहीं। हमें भेद नहीं है। हमें समझ नहीं है। हम बेहोश हैं। हम मस्त हैं। 'जिंदगी हमने गुजारी इन्हीं मैखानों में।' भक्त तो भक्ति की शराब पीता है।

हमने देखी है तेरी मस्त जवानी की अदा
हंसते फूलों में, छलकते हुए पैमानों में
फूल खिलता है जो कोई तो खयाल आता है
यह भी शायद है तेरे चाक गरेबानों में
दिले-नाकाम के उजड़े हुए गेसू तौबा
एक महफिल भी थी शायद उन्हीं दीवानों में
हमको 'बिलकीस' तकल्लुफ की जरूरत क्या है
पी लिया करते हैं टूटे हुए पैमानों में

भक्त को इसकी बहुत फिक्र नहीं कि पैमाना टूटा है या पूरा है। भक्त को मतलब पीने से है। भक्त को पात्रता से मतलब नहीं है, पात्र से मतलब नहीं। 'पी लिया करते हैं टूटे हुए पैमानों में'। भक्त को अंधेरे से मतलब नहीं है, नाच लिया करता है। भक्त को एक ही बात से मतलब है। कि मैं जैसा हूं, जहां हूं, वैसा ही तुझको अर्पित हूं, समर्पित हूं।

भक्त हो सको तो फिर कुछ और होने की जरूरत नहीं है। भक्त न हो सको तो मजबूरी में कोई और रास्ता चुनना पड़ता है। भक्त हो सको तो धन्यभागी हो! मैं तुम्हें भक्त बना सकूं! और ध्यान रहे कि मैं भक्त नहीं था, इसलिए सारी तकलीफ मैं जानकर तुमसे कह रहा हूं। मुझे रेगिस्तान का अनुभव है, इसलिए तुमसे कह रहा हूं। इसलिए तुमसे कह सकता हूं कि बच सको रेगिस्तान से तो बच जाना। प्रेम के मरूद्यान से उपलब्ध हो सकता हो तो

मरुस्थल में क्यों जाना? मुझे कोई कहने को नहीं था, इसलिए भटकना पड़ा। तुम्हें भटकने की कोई जरूरत नहीं है। तुम जैसे हो, जहां हो, वहीं से पुकारो। अब आ ही गए हो तो पूरे आ जाओ!

कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
मुझे अपना नीड़ बना लो। मुझे अपना बसेरा बना लो।
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
आज दक्खिन की हवा ने आ अचानक
द्वार मेरे खड़खड़ाए,
हलचली है मच गई उन बादलों में
जो कि थे आकाश छाए,
जो कि सुन सौ प्रश्न मेरे चुप खड़ी थी आज बारंबार झुक-झुक
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
सूर्य की किरणें प्रखरतम घन तहों के
बीच होतीं, पार करतीं,
कालिमा पर ज्योति का विस्तार करतीं
चूमतीं जैसे कि धरती;
हे रजत पक्षी, तिमिर को भेदने से
जो तुम्हारी राह छेंके
अब नहीं रुकते तुम्हारे पांख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
हे रजत पक्षी, तिमिर को भेदने से
जो तुम्हारी राह छेंके
अब नहीं रुकते तुम्हारे पांख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
आज हीरे ले लहर आती, बिछाती
है कहीं मरकत किनारे,
आज उज्ज्वल मोतियों से हाथ अपने
है कहीं सरसिज संवारे,
पर तुम्हारा मन प्रलोभन दे लुभाना
है असंभव, आज कोई
पंथ में वैभव बिछाए लाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

आज इतना ही।

धर्म क्या है? और आप कैसा धर्म पृथ्वी पर लाना चाहते हैं?

तेरे ही इशारे पर मैंने अपना पूरा प्यार उंडेल दिया। तुझमें उसीको और उसमें तेरे ही रूप को देखती हूं। क्या मेरी आंखें धोखा खा रही हैं, प्रभु?

आगरा से निकलनेवाले एक पत्र 'रजनीश-प्रेम' के बाबत एक मित्र का अजीब-सा प्रश्न!

संन्यास लेने के संबंध में अनिर्णय में पड़े एक मित्र की समस्या!

अभीप्सा व प्रतीक्षा की एक साथ पूर्णता-प्रार्थना की पूर्णता

बारहवां प्रवचन

पहला प्रश्नः धर्म क्या है? और आप कैसा धर्म पृथ्वी पर लाना चाहते हैं?

धर्म का अर्थ हैः स्वभाव की स्फुरणा। जो छिपा है, उसका प्रकट हो जाना। जो गीत तुम्हारे हृदय में पड़ा है, वह गाया जा सके। जो तुम्हारी नियति है, वह पूरी हो सके।

और प्रत्येक की नियति थोड़ी-थोड़ी भिन्न है। इसलिए ऊपर से आरोपित कोई भी आचरण धर्म नहीं हो पाता। धर्म की आधारशिला यही है—अंतःस्फूर्त हो। और यही भूल हो गयी है। और इसी भूल को मैं सुधारना चाहता हूं। बहुत बार धार्मिक चेतना का जन्म हुआ है, लेकिन ज्योति खो-खो गयी। बुद्ध में जला दीया और बुझ गया। महावीर में जला और बुझ गया। कृष्ण में और क्राइस्ट में, जरथुस्त्र और मुहम्मद में जला और बुझ गया। दीया जलता रहा है, बार-बार जलता रहा है। परमात्मा मनुष्य से हारा नहीं। मनुष्य हारता गया और परमात्मा की आशा नहीं टूटी है। परमात्मा ने फिर-फिर कोशिश की है—मनुष्य तक पहुंचने की, मनुष्य को खोज लेने की। मनुष्य कितने ही गहन अंधकार में हो, उसकी किरण आती रही है, उसका इशारा आता रहा है, उसके पैगंबर आते रहे, उसका पैगाम आता रहा है। लेकिन कहीं कोई एक बुनियादी भूल होती रही। उस भूल को समझोगे, तो मैं क्या करना चाहता हूं, वह तुम्हें स्पष्ट हो जाएगा। उस भूल को सुधारने की ही तरफ सारा आयोजन है।

भूल ऐसी हुई—सहज है, होनी ही चाहिए थी, बचा नहीं जा सकता था; इसलिए जिनसे हुई उन्हें दोषी नहीं दे रहा हूं करार। होनी ही थी; अपरिहार्य थी। महावीर को ध्यान उपलब्ध हुआ। स्वभावतः ध्यान व्यक्ति के आचरण को बदल देता है। बदलेगा ही। अगर ध्यान आचरण को न बदलेगा तो कौन बदलेगा? सब बदल जाता है। ध्यान के साथ ही उठना-बैठना, सोना-जागना सब बदल जाता है। लेकिन हमें ध्यान दिखायी पड़ता नहीं—वह तो अंतर्तम में घटता है, वैसी तो आंख हमारे पास नहीं, वैसी गहरी तो परख हमारे पास नहीं—हमें दिखायी पड़ता है आचरण। आचरण बाहर है। आचरण ध्यान का बहिरंग है। ध्यान के साथ आचरण रूपांतरित होता है, लेकिन हमें दिखायी पड़ा है आचरण रूपांतरित होता हुआ। स्वाभाविक, हमारे अहंकार की भाषा में, जहां हम कर्ता बने बैठे हैं, यह प्रतिध्वनि उठती है कि हम भी ऐसा ही आचरण बना लें। हम भी महावीर जैसे हो जाएं। बस वहीं भूल हो जाती है।

महावीर की अहिंसा स्वतःस्फूर्त, तुम्हारी अहिंसा ऊपर से आरोपित। दोनों में जमीन-आसमान का भेद हो गया। महावीर की अहिंसा पैदा हो रही है भीतर जन्मे प्रेम के कारण। तुम्हारी अहिंसा पैदा हो रही है नरक के भय के कारण, स्वर्ग के लोभ के कारण। महावीर में न तो नर्क का भय है, न स्वर्ग का लोभ है। महावीर में कैसा नर्क का भय, कैसा स्वर्ग का लोभ? नर्क का भय और स्वर्ग का लोभ ही तो संसार की दशा है। सांसारिक चित्त की आकांक्षा है—कष्ट न हो, सुख हो। यही तो नर्क और स्वर्ग। दुख से बचूं और सुख को पा लूं; दुख कभी न आए और सुख ऐसा आए कि कभी न जाए, यही तो सांसारिक मन की मनोकांक्षा है, यही तो महत्त्वाकांक्षा है। कहो इसे वासना, तृष्णा, या और कोई नाम दो।

महावीर में कोई न तो नर्क का भय है, न स्वर्ग की कोई आकांक्षा है। चित्त शांत हो गया, चित्त मौन हो गया, तरंगें उठतीं नहीं अब, समाधि फलित हुई है, वहां केवल साक्षीभाव रह गया है, वहां केवल द्रष्टा विराजमान है। इस द्रष्टा में कोई तरंग नहीं है—कोई विचार नहीं, कोई भाव नहीं, कोई वासना नहीं, कोई तृष्णा नहीं। न कहीं जाना है, न कुछ होना है। कोई भविष्य नहीं, कोई अतीत नहीं। सब ठहर गया है। संसार ठहर गया है। इस ठहरेपन का नाम कृष्ण ने कहा—स्थितप्रज्ञ, जिसकी प्रज्ञा थिर हो गयी है। 'स्थिर धीः', जिसकी धी स्थिर हो गयी है। जैसे कोई दीया जलता हो, ऐसे स्थान में जहां वायु का कोई झोंका न आए, निर्वात भवन में दीया जलता हो, कोई कंप न उठता हो; लहर न उठती हो, ज्योति अकंप हो।

इस अकंप ज्योति का परिणाम यह है कि महावीर के जीवन में अहिंसा है। प्रेम का प्रतिफल है। यह भीतर जो बोध हुआ है यह जो अनुभव हुआ है जीवन का, इस जीवन के अनुभव के साथ ही सारा जीवन सम्मानित हो गया है। यह मेरा ही जीवन है। इसमें कहीं भेद नहीं। जब भी तुम किसी को मारते हो, अपने को ही मारते हो। और जब भी किसी को दुख देते हो, अपने को ही दुख देते हो। ऐसा महावीर को दिखायी पड़ा है। क्योंकि मैं ही मैं हूं। पत्थर में, पहाड़ में, चांद-तारों में एक का ही विस्तार है। ऐसी प्रतीति का परिणाम है, अहिंसा।

लेकिन बाहर से जिन्होंने देखा, उन्हें तो यह प्रतीति दिखायी नहीं पड़ी कि प्रेम का आविर्भाव हुआ है, कि एकात्म-बोध हुआ है, कि परमात्मा की अनुभूति हुई है, कि समाधि फली है—यह तो कुछ भी न दिखा—उन्हें दिखा कि महावीर पैर फूंक-फूंक कर रखते हैं, चींटी भी न मर जाए। पानी छान कर पीते हैं। कच्चा फल नहीं खाते। पका फल जो वृक्ष से अपने से गिर जाए। कच्चे फल को तोड़ो तो पीड़ा तो होगी। कच्चा है, अभी जुड़ा है, अभी टूटने का क्षण नहीं पाया है। इसलिए महावीर पके फल का ही भोजन लेते हैं।

यह तो महावीर की अंतर्दशा का बहिर्प्रतिफलन है। हम जो बाहर से देखते हैं, उनको लगता है कि यह आदमी पैर फूंक-फूंक कर रखता है, रात करवट भी नहीं लेता है कि कहीं कोई कीड़ा-मकोड़ा न दब जाए, गीली भूमि में नहीं चलता—क्योंकि गीली भूमि में कीटाणु होते हैं—पानी छानकर पीता है, रात भोजन नहीं करता, हमें ये बातें दिखायी पड़ी। हमने इस पर सारा धर्म खड़ा कर लिया। बस धर्म झूठा हो गया। महावीर का धर्म पैदा हुआ था समाधि से, ध्यान से। हमारा धर्म पैदा हुआ है महावीर को बाहर से देखने से। हमने सोचा, चींटी पर पैर न पड़े, पानी छान कर पीओ, रात भोजन न करो, हिंसा न करो, मांसाहार मत करो—बस, हम भी उसी अवस्था को उपलब्ध हो जाएंगे जिसको महावीर हुए हैं। तुम इस तरह उपलब्ध न हो सकोगे।

ध्यान रहे यह सूत्रः भीतर के अनुसार बाहर को चलना पड़ता है; बाहर के अनुसार भीतर नहीं चलता है। भीतर मालिक बैठा है, बाहर तो सब छाया है।

ऐसा समझो, मैं जहां जाता हूं, मेरी छाया भी मेरे पीछे आती है। लेकिन इससे उलटा नहीं हो सकता कि मेरी छाया जहां जाएं, उसके पीछे मैं जाऊं। छाया तो जाएगी कहां? छाया छाया है। तुम मेरी छाया को कहीं ले जाओगे, उससे तुम मुझे न ले जा सकोगे। लेकिन अगर तुम मुझे ले जाओ तो छाया भी चली जाएगी। छाया को जाना ही होगा। महावीर के भीतर तो समाधि फली, आचरण में छाया झलकी। हमने छाया पकड़ी। वही धर्म झूठा हो गया।

फिर तुम महावीर जैसे नहीं हो। कोई महावीर जैसा नहीं। इसलिए तुम्हारे ऊपर आचरण जबर्दस्ती हो गया। उससे तुम्हारे भीतर तालमेल भी नहीं बैठा। जबर्दस्ती होने के कारण तुम दुखी और उदास हो गये। दुखी-उदास होने के कारण धर्म का उत्सव समाप्त हो गया। धर्म रुग्णचित्त लोगों कि बात हो गयी। धर्म ऐसे लोगों की बात हो गयी जो अपने को सताने में रस लेते हैं; या फिर ऐसे लोगों की बात हो गयी जो अपने को सता कर तुम्हारा सम्मान लेते हैं।

तुम्हारे मंदिर, गिरजों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में बैठे हुए लोग—जो तुम्हारे सम्मान के पात्र हो गये हैं—तुम खयाल रखना, वे सम्मान के पात्र होने के लिए ही सारा आयोजन किये हैं और कुछ भी नहीं हैं।

तुम चाहते हो, उपवास वाले को हम सम्मान देंगे—क्योंकि तुम्हारी धारणा है, जो उपवास करेगा, वह महावीर जैसा हो जाएगा। निश्चित महावीर ने उपवास किये थे; लेकिन किये थे, यह कहना महावीर के संदर्भ में ठीक नहीं, उपवास हुए थे। मुनि कर रहा है। बस वहीं फर्क हो गया। होने और करने में जमीन-आसमान का फर्क है। भीतर ऐसी तल्लीनता बंध गयी थी कि कभी-कभी उपवास हो गया था। याद ही न आयी थी। मुझसे भी हुए हैं, इसलिए तुमसे कहता हूं। मैंने कभी उपवास नहीं किया, लेकिन हुए जरूर। कभी ऐसी बंध गयी लौ भीतर कि याद ही न आयी बाहर भोजन करने की। मन ऐसा मुग्ध हुआ भीतर, कि बाहर के सारे द्वार-दरवाजे अपने से बंद

हो गये! उपवास हुआ। पता भी नहीं चला कब हो गया। जब टूटा तभी पता चला। जब भीतर की चेतना फिर बाहर लौटी, तब याद आया कि दो दिन निकल गये हैं, भोजन नहीं हुआ।

फिर उपवास करनेवाले लोग हैं। वे थोप लेते उपवास को। वे जबर्दस्ती शरीर को सता लेते हैं। फिर उनके सताने में एक ही रस हो सकता—भीतर का तो कोई रस नहीं है—अब उनके सताने में एक ही रस हो सकता है: उनके अहंकार को बाहर से आदर मिले, सम्मान मिले। कोई कहे कि तपस्वी हैं, कोई घोषणा करे कि महात्मा हैं।

तो धर्म, जो स्वभाव है, वह धीरे-धीरे आचरण का रूप ले लेता है। वह नीति बन जाता है। धर्म नीति का पतन, धर्म का पतन है—नीति। नीति धर्म नहीं है। और ध्यान रहे, धार्मिक व्यक्ति नैतिक होता है, लेकिन नैतिक व्यक्ति धार्मिक नहीं होता। अंतस के पीछे आचरण चलता है, आचरण के पीछे अंतस नहीं चलता।

धर्म का अर्थ है: स्वभाव। और प्रत्येक में थोड़ा-थोड़ा भेद है। इसलिए प्रत्येक की धर्म की यात्रा थोड़ी-थोड़ी भिन्न होगी। व्यक्ति को ध्यान में रखना। लेकिन जब बाहर से आचरण के नियम बनाये जाते हैं, तो फिर कोई ध्यान में नहीं रखा जाता। बाहर से जो नियम बनाये जाते हैं, वे तो सभी के लिए एक-से होंगे। उनमें फिर किसी का ध्यान न रखा जाएगा। वे व्यक्ति के अनुकूल नहीं होते, व्यक्ति को ध्यान में रखकर नहीं होते, सार्वजनीन होते हैं। सभी सार्वजनीन नियम घातक होते हैं।

इसलिए मैं यहां किसी को कोई नियम नहीं दे रहा हूं, सिर्फ बोध दे रहा हूं। आंख दे रहा हूं, आचरण नहीं दे रहा हूं। इशारे दे रहा हूं, जड़ मंतव्य, वक्तव्य नहीं दे रहा हूं। उपदेश दे रहा हूं, आदेश नहीं दे रहा हूं। समझने की क्षमता दे रहा हूं, फिर जीना तुम अपने ढंग से। चंपा चंपा के ढंग से खिलेगी और कमल कमल के ढंग से खिलेगा। कमल पानी में खिलेगा और चंपा को पानी में खिलाना चाहोगे—मार डालोगे, सड़ा डालोगे। और कमल को चंपा की जगह खिलाना चाहोगे—कैसे खिलेगा?

इतने ही भेद हैं व्यक्तियों में। खिलना सब को है। खिलने का अर्थ एक ही है। परम अवस्था में जो खिलाव होता है, वह तो एक ही है; लेकिन उस तक पहुंचने की जो यात्राएं हैं, वे बड़ी भिन्न हैं।

और फूलों के रंग अलग होंगे, फूलों के ढंग अलग होंगे, फूलों की गंध अलग होगी—खिलाव एक होगा। उस खिलाव का नाम परमात्मा है। लेकिन और सब अलग होगा।

जो लोग बाहर से नियम और आचरण बनाते हैं, उन्हें यह बात याद ही नहीं रह जाती। फिर आचरण के नियम इतने महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि हर एक को उन नियमों के अनुसार होना चाहिए।

ऐसा समझो कि दर्जी ने कपड़े पहले बना लिये। उसने एक हिसाब से कपड़े बना लिये। उसने पता लगा लिया कि पूना में औसत लंबाई कितनी है। सब आदमियों की लंबाई नाप ली गयी, औसत लंबाई पा ली उसने; औसत मोटाई पा ली उसने। अब इस औसत में बड़ा धोखा है। इसमें छोटे बच्चे भी हैं, इसमें बड़े बूढ़े भी हैं; इसमें लंबे आदमी भी हैं, इसमें ठिगने आदमी हैं; इसमें मोटे आदमी हैं, इसमें दुबले आदमी हैं—इसमें सब तरह के आदमी हैं। इन सबका हिसाब लगा लिया, सब का जोड़ लिया; सबकी लंबाई जोड़ ली, फिर सब का भाग दे दिया; सब की मोटाई जोड़ ली और सब का भाग दे दिया; फिर औसत आदमी के कपड़े बना लिये। अब औसत आदमी कहीं होता नहीं, खयाल रखना। औसत आदमी सिर्फ गणित में होता है, जीवन में नहीं होता। अब औसत आदमी आ गया। इस औसत आदमी की ऊंचाई चार फीट छह इंच। उसने कपड़े तैयार कर लिये। इस औसत आदमी की एक मोटाई है, उसने कपड़े तैयार कर लिये। अब तुम गये; तुम औसत आदमी नहीं हो। तुम छह फीट के लंबे आदमी हो। चार फीट छह इंच के कपड़े हैं। वह कहता है: तुम गलत हो। तुम औसत से भिन्न! तुम नियम के विपरीत! आओ तुम्हें मैं छांट दूं।

या हो सकता है, तुम चार ही फीट के हो, ठिगने हो बहुत; तो वह कहता है: आओ तुम्हें जरा खींच-तान कर बड़ा कर दूं। कपड़े महत्वपूर्ण हो गये, आदमी का कोई ध्यान न रहा।

मेरे लिए व्यक्ति का मूल्य है। मेरा मन व्यक्ति के प्रति परम सम्मान से भरा है। मैं तुम्हारे लिए कोई कपड़े नहीं बनाता। तुम्हें बिना सिला कपड़ा दे रहा हूं। तुम अपने कपड़े बना लेना। वह बिना सिला कपड़ा समझ है। फिर समझ के अनुसार तुम अपने कपड़े बना लेना। कपड़े तुम्हीं बनाना! किसी और के आधार पर बनाये गये कपड़े कभी तुम्हें ठीक न आएंगे—या तो ढीले होंगे, या चुस्त होंगे, या लंबे होंगे, या छोटे होंगे, कुछ न कुछ गड़बड़ रहेगी; और तुम हमेशा बेचैनी अनुभव करोगे।

इसलिए तुम्हारे तथाकथित धार्मिक आदमी बेचैन मालूम होते हैं। महावीर का कपड़ा पहने हुए हैं। महावीर जैसा व्यक्तित्व नहीं है। बैठे हैं—आंख बंद किये, आंख बंद नहीं होती। खड़े हैं—नग्न, और सकुचा रहे हैं, और भीतर बड़ी ग्लानि हो रही है, और बड़ी घबड़ाहट भी हो रही है कि यह मैं क्या कर रहा हूं! कोई देख न ले! कोई क्या कहेगा? पागल न समझे! या तुम मंदिर में पूजा कर रहे हो, प्रार्थना कर रहे हो—और प्रार्थना में तुम्हारा हृदय नहीं है। लेकिन कर रहे हो; तुम्हारे परिवार में होती रही है। तुम सिर्फ औपचारिकता निभा रहे हो। धर्म झूठा हो जाता है औपचारिकता में।

धर्म होना चाहिए—तुम्हारे अंतःकरण से निष्पन्न। तुम अपना धर्म खोजो। न तो हिंदू धर्म तुम्हारा धर्म है, न ईसाई धर्म तुम्हारा धर्म है। ईसाई धर्म है जीसस के आधार से बनाये गये कपड़े। और हिंदू धर्म है कृष्ण के या राम के आधार से बनाये गये कपड़े। और जैन धर्म है महावीर के आधार से बनाये गये कपड़े। इसलिए तुम इतने बेहूदे और बेढंगे मालूम हो रहे हो। इसीलिए पृथ्वी धर्मशून्य हो गयी है। सब कपड़े पहने हैं, लेकिन सब गलत कपड़े पहने हुए हैं। तुम अपने कपड़े बनाओ!

समझ तुम्हें देता हूं—दृष्टि तुम्हें देता हूं, ध्यान तुम्हें देता हूं, भक्ति, प्रेम तुम्हें देता हूं—फिर तुम अपने जीवन का आचरण खुद ही निर्मित करो। और तब तुम्हारे भीतर एक उत्फुल्लता होगी। नहीं तो बड़ी छोटी-छोटी बातें बड़ा कष्ट देती हैं।

एक सज्जन मेरे पास आए। वह कहते हैं कि मुझसे क्या होगा? मैं बड़ा पापी हूं, अपराधी हूं! मैंने कहाः तुम्हारा अपराध क्या? पाप क्या? आदमी भले मालूम पड़ते हो। तुम्हारी आंखें देखता हूं तो ऐसी कोई पापी की आंखें नहीं मालूम पड़ती। तुम्हारे चेहरे पर पाप का कोई निशान भी नहीं मालूम पड़ता।

उन्होंने कहा, नहीं आपको साहब पता नहीं! आठ बजे सोकर उठता हूं।

अब इस व्यक्ति के किताबें पढ़ ली हैं, जिनमें लिखा है कि ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए; ब्रह्ममुहूर्त में उठना पुण्य है। अब आठ बजे सो कर उठता हूं, इसलिए ग्लानि से भरा है। पांच बजे सोकर उठने में कोई ऐसी धार्मिकता नहीं है। क्या धार्मिकता होगी? सब समय समान है। अब इसकी अड़चन यह है कि इसको दो बजे रात तक तो नींद ही नहीं आती। अब जो आदमी दो बजे तक सो न सके, वह अगर आठ बजे तक सोए, तो कुछ हैरानी तो नहीं है। जिन गुरुओं के पास जाता रहा होगा, वे कहते हैं कि नौ बजे सो जाओ। वह कहता है मैंने कोशिश भी कर ली, मैं पड़ भी जाता हूं बिस्तर पर, मगर नींद जब आती है तब आती है। और वह दो बजे आती है नींद, और वह नौ बजे से लेकर दो बजे तक पड़े रहना और भी कष्टपूर्ण हो जाता है। करवटें बदलता हूं, परेशान होता हूं—और ग्लानि भरती है कि मुझ जैसा पापी कौन! नींद भी नहीं आती समय पर! सुबह उठता हूं तो आठ बजे, नौ बजे। तब चित्त प्रसन्न रहता है। अगर जल्दी उठ आता हूं तो दिन भर उदासी और तनाव और मस्तिष्क में बोझ बना रहता है।

अब इसको पापी करार दे दिया। वह शिवानंद का शिष्य था। शिवानंद के पास गया, उन्होंने कहा, यह नहीं चलेगा। ब्रह्ममुहूर्त में तो उठना ही चाहिए। अब कुछ लोग ऐसे हैं जिनको तीन बजे के बाद नींद नहीं आती। जिनको दो बजे के पहले नींद नहीं आती, उनको तुम पापी बना देते हो; और जिनको तीन बजे के बाद नींद नहीं आती, उनको तुम पुण्यात्मा बना देते हो! ऐसे लोग हैं, जो तीन बजे के बाद तड़पते हैं, उठने के लिए। उन्हीं कोई बहाना मिल जाए तो वे जल्दी से उठ आएं। उनकी नींद पूरी हो गयी है।

मेरे हिसाब में कोई पापी नहीं, कोई पुण्यात्मा नहीं। यह भी कोई बात है! आठ बजे उठे तो आठ बजे उठे। जो सुगम मालूम होता है, जो शरीर को स्वाभाविक मालूम होता है, जो तुम्हारी प्रकृति को अनुकूल आता है, वही धर्म है। और यही हर चीज के संबंध में मैं तुमसे कहना चाहता हूं। जीवन में किसी भी चीज से अकारण पाप इत्यादि की धारणाएं मत पकड़ लेना। क्षुद्र बातों में मत उलझ जाना। यहां बड़ा विराट कुछ करने को तुम्हारा होना हुआ है। तुम छोटी-छोटी बातों में मत उलझ जाना।

दुनिया के सारे धर्म छोटी-छोटी बातों के विस्तार में उलझ गये हैं। विस्तार इतना हो गया है कि मूल खो गया है। मुझे जैन मुनियों ने कहा कि हमें फुरसत ही नहीं ध्यान करने की। क्योंकि और सब नियम का पालन करते-करते समय कहां बचता है? यह तो हद हो गयी! ध्यान करने को आदमी मुनि होता है। मुनि का अर्थ होता है, जो मौन सीखने गया, जो मौन होने गया। वह ध्यानी का ही एक रूप है। लेकिन ध्यानी होने गये थे, और दूसरी चीजों में उलझ गये। 'गये थे राम-भजन को, ओटन लगे कपास' और वे कहते हैंः फुरसत नहीं मिलती! यही तो दुकानदार कहता है—फुरसत नहीं मिलती। और यही अगर मुनि कहे कि फुरसत नहीं मिलती ध्यान को...! क्योंकि और नियम ऐसे हैं। उन नियमों में ही झंझट खड़ी हो जाती है। उन नियमों में ही सारा समय चला जाता है। थोड़ा-बहुत समय बचता है, वह उपदेश में लगाना पड़ता है।

खुद पाया नहीं है, उपदेश क्या दे रहे हो, किसको दे रहे हो? खुद भटके हो, औरों को भटकाओगे? यह तो सुनिश्चित पाप है। यह बड़े से बड़ा पाप है कि तुमने न जाना हो और किसी को तुम उपदेश दो। इससे बड़ा पाप और क्या होगा? एकाध दिन अगर रात पानी पी लो, तो मैं नहीं समझता इतना बड़ा पाप है; कि एकाध दिन भूख लग आए और रात एकाध फल खा लो, तो कोई इतना बड़ा पाप है! मगर बिना जाने, बिना अनुभव किये तुम सैकड़ों लोगों को समझा रहे हो, मार्ग दे रहे हो, चला रहे हो—जिन मार्गों पर तुम कभी चले नहीं—इससे बड़ा पाप क्या होगा?

तुम देखते हो, जिस आदमी के पास डॉक्टर का प्रमाणपत्र नहीं है और वह दवाइयां बांटता हो, तो खतरनाक है। मगर उसकी दवाइयां तो ज्यादा से ज्यादा शरीर को नुकसान पहुंचा सकती हैं। लेकिन जिन्होंने ध्यान नहीं जाना है, ये मार्गदर्शन दे रहे हैं। इनकी औषधियां जन्मों-जन्मों तक तुम्हें भटका सकती हैं। भटका रही हैं। और इन्हें ग्लानि भी नहीं पकड़ती, इन्हें अपराध का भाव भी नहीं पकड़ता—क्योंकि ये सिर्फ नियम का पालन कर रहे हैं। साधु को कहा गया है कि उसे इतना उपदेश देना चाहिए; उसे इतने नियम तो पालन करने ही चाहिए; उसे इतने बजे उठ आना चाहिए; उसे इतने बजे मलमूत्र विसर्जन को जाना चाहिए; उसे इतना अध्ययन करना चाहिए; उसे इतना शास्त्र का पाठ करना चाहिए। इसी सबमें उलझा डाला है।

मैं तुम्हें कोई आचरण नहीं देना चाहता। मैं तुम्हें कोई अनुशासन नहीं देना चाहता। मैं तुम्हें स्वतंत्रता देना चाहता हूं। मैं तुम्हें समस्त सिद्धांतों से स्वतंत्रता देना चाहता हूं। मैं तुम्हें उत्तरदायी बनाना चाहता हूं।

तुम मेरा बात समझना।

स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं होता कि मैं तुम्हें उच्छृंखल बनाना चाहता हूं। मैं तुम्हें उत्तरदायी बनाना चाहता हूं। मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि तुम्हारा जीवन मूल्यवान है। इसको ऐसे मत गंवा देना। इसे हर किसी की बात मानकर मत गंवा देना। इसे हर किसीके कपड़े पहन कर मत गंवा देना। तुम्हारा जीवन कीमती है। परमात्मा तुमसे पूछेगाः क्या किया जीवन का? तो तुम उत्तरदायी होओगे, तुम्हारे मुनि महाराज नहीं; और न तुम्हारे साधु, और न तुम्हारे महात्मा; कोई उत्तर नहीं देगा, तुम्हें उत्तर देना पड़ेगा। तुम्हारे लिए तुम्हीं जी रहे हो, तुम्हारे लिए तुम्हीं मरोगे, और तुम्हारे लिए तुम्हीं उत्तरदायी हो। इसलिए अपने जीवन को इस ढंग से जीना कि तुम उत्तर दे सको।

और कौन निर्णय करेगा कि तुम कैसे जीओ? तुम कब उठो, क्या खाओ, क्या पीओ? कौन निर्णय करेगा? किसी को हक भी नहीं है। यह गुलामी छूटनी चाहिए।

मेरे लिए धर्म है: स्वभाव और स्वभाव की परम स्वतंत्रता। तू अपना छंद स्वयं बनो। मुक्ति पहले कदम से शुरू हो जानी चाहिए। यह पहला कदम है। और यही मुक्ति बढ़ते-बढ़ते मोक्ष बन जाएगी।

फिर, जो अब तक दुनिया में धर्म के नाम पर समझा गया, पकडा गया, वह अनिवार्य रूपेण जीवन-विरोधी था। हो ही गया जीवन-विरोधी। महावीर नहीं थे जीवन विरोधी, न बुद्ध थे जीवन-विरोधी। कोई ज्ञानी कभी जीवन-विरोधी नहीं हो सकता। क्योंकि इसी जीवन से तो परम जीवन पाया जाता है। यह जीवन तो परम जीवन का द्वार है। इस संसार से ही तो हम सत्य की तरफ जाते हैं। इस संसार में अगर कांटे भी गड़ते हैं तो वे कांटे भी तुम्हारे मित्र हैं; अगर न गड़ते तो तुम कभी सत्य की तरफ न जाते। इस संसार के दुख भी ऐसे है कि तुम उनके प्रति जिस दिन जागोगे, उस दिन आभार प्रकट करोगे। क्योंकि उन्हीं के द्वारा तो तुम परमात्मा तक पहुंचे। उन्हीं के द्वारा तो तुम समाधि तक पहुंचे।

जरा थोड़ा सोचो! इस जगत में कोई दुख न हो, कोई पीड़ा न हो, कोई परेशानी न हो—तुम सोचोगे समाधि की बात? समाधि की तुम्हें याद कौन दिलाएगा? ये कांटे जो चारों तरफ से चुभते हैं, तुम्हें सजग रखते हैं। ये तुम्हें समाधि की तरफ ले जाते हैं।इन कांटों का प्रयोजन है। इस जगत के दुख सिर्फ दुख नहीं हैं, उन दुखों के भीतर बड़ा आयोजन है, उन दुखों में बड़े इशारे छिपे हैं। वे दुख तुम्हें याददाश्त दिलाने के लिए हैं। वे दुख अभिशाप नहीं, वरदान हैं।

इसलिए मैं एक ऐसा धर्म पृथ्वी पर देखना चाहता हूं, जो जीवन-विरोधी न हो। क्योंकि इस लोक में ही परलोक छिपा है। इन्हीं वृक्षों, पौधों, पत्थरों, पहाड़ों में परमात्मा छिपा है। इन्हीं लोगों में, जो तुम्हारे पास बैठे हैं, परमात्मा का आवास है। पड़ोसी में परमात्मा छिपा है। तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है। तुम्हारी पत्नी में, तुम्हारे पति में, तुम्हारे बेटे में, तुम्हारे पिता में परमात्मा छिपा है। तुम ऊपर-ऊपर से देखते हो, इसलिए चूक जाते हो। लेकिन ऊपर-ऊपर से देखने के कारण चूक जाओ, तो इस फल को फेंक मत देना, क्योंकि इस फल के भीतर रस छिपा है, जो तुम्हें तृप्त कर सकता था।

लेकिन अड़चन इसलिए आ गयी, महावीर समाधि को उपलब्ध हुए, बुद्ध समाधि को—लोगों ने आचरण पकड़ा, लोग आचरण के अनुसार चले। उन्हें भीतर का तो कुछ पता न चला, थोथे हो गये। बाह्य क्रियाकांड में उलझ गये। यत्न में उलझ गये, भजन का पता नहीं चला। उसी क्रियाकांड में डूब गये। उससे अहंकार और बढ़ा। उससे अहंकार और सूक्ष्म हुआ। और उस अहंकार के कारण उन्हें कुछ भी दिखायी न पड़ा सब अंधापन छा गया; और अंधेरा हो गया।

मेरे देखे, संसारी इतने अंधे नहीं हैं जितने तुम्हारे तथाकथित संन्यासी। और न संसारी इतने दंभी हैं, जितने तुम्हारे महात्मा।

जीवन का एक अपूर्व अवसर है। इस अपूर्व अवसर का उपयोग करो—चुनौती की तरह। इससे भागना नहीं है। इस अग्नि में खड़े होना है। यही अग्नि तुम्हें निखारेगी। इसी अग्नि में निखरकर तुम कुंदन बनोगे। तुम्हारा कचरा भर जलेगा, और कुछ जलनेवाला नहीं है। इसलिए भागो मत, भागे तो कचरा बच जाएगा।

पूछा तुमने, कैसा धर्म इस पृथ्वी पर आप लाना चाहता हैं? जीवन-स्वीकार का धर्म। परम स्वीकार का धर्म।

चूंकि जीवन-अस्वीकार की बातें बहुत प्रचलित रही हैं, इसलिए स्वभावतः लोग देह के विपरीत हो गये। अपने शरीर को ही सताने में संलग्न हो गये। और यह देह परमात्मा का मंदिर है। मैं इस देह की प्रतिष्ठा करना चाहता हूं। और चूंकि लोग संसार के विपरीत हो गये, देह के विपरीत हो गये, इसलिए देह के सारे संबंधों के विपरीत हो गये। भूल हो गयी।

देह के ऐसे संबंध हैं, जिनसे मुक्त होना है। और देह के ऐसे संबंध हैं, जिनमें और गहरे जाना है। प्रेम ऐसा ही संबंध है। प्रेम में गहराई बढ़नी चाहिए। घृणा में गहराई घटनी चाहिए। घृणा से तुम मुक्त हो सको, तो सौभाग्य। लेकिन अगर प्रेम से मुक्त हो गये तो दुर्भाग्य।

और मजा यह है कि अगर तुम्हें घृणा से मुक्त होना हो तो सरल रास्ता यह है कि प्रेम से भी मुक्त हो जाओ। और तुम्हारे अब तक के साधु-संन्यासियों ने सरल रास्ता पकड़ लिया। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी! लेकिन बांस और बांसुरी में बड़ा फर्क है। बांसुरी बजनी चाहिए। बांस से बांसुरी बनती है, लेकिन बांसुरी बड़ा रूपांतरण है। बांसुरी सिर्फ बांस नहीं है। बांसुरी में क्रांति घट गयी। तुम अभी बांस जैसे हो, बांसुरी बन सकते हो।

घृणा से भयभीत हो गये लोग। क्रोध से भयभीत हो गये भाग गये जंगलों में। जब कोई रहेगा ही नहीं पास, तो न घृणा होगी, न क्रोध होगा। यह तो ठीक, लेकिन प्रेम का क्या होगा? प्रेम भी नहीं होगा। इसलिए तुम्हारे तथाकथित महात्मा प्रेमशून्य हो गये, प्रेमरिक्त हो गये। उनके प्रेम की रसधार सूख गयी। वे मरुस्थल की भांति हो गये। और वहीं चूक हो गयी। परमात्मा तो मिला नहीं, संसार जरूर खो गया। सत्य तो मिला नहीं, इतना ही हुआ कि जहां सत्य मिल सकता था, जहां सत्य को खोजा जा सकता था, जहां चुनौती थी पाने की, उस चुनौती से बच गये। एक तरह की शांति मिली—लेकिन वह मुर्दा, मरघट की। एक और शांति है—उत्सव की, जीवंत उपवन की। मैं उसी शांति के धर्म को लाना चाहता हूं।

तुम जीवन को अंगीकार करो, देह को अंगीकार करो। परमात्मा ने जो दिया है, सब अंगीकार करो। उसने दिया है तो कुछ उसमें राज छिपा होगा ही! इस वीणा को फेंक मत देना, इसमें संगीत छिपा है। इसे बांस मत समझ लेना, इसमें बांसुरी बनने की क्षमता है। जल्दी छोड़-छाड़कर भाग मत जाना। तलाश करना। हालांकि तलाश कठिन है। होनी ही चाहिए। क्योंकि तलाश के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। जो खोजेगा, वह पाएगा। इसी जीवन में खोजना है।

परमात्मा ने संसार बनाया कभी, ऐसा मत सोचो। परमात्मा संसार रोज बना रहा है, प्रतिपल बना रहा है। ऐसा कोई बना दिया एक दफा और खत्म हो गया काम! तो फिर नये पत्ते कैसे आ रहे हैं? फिर नये फूल कैसे खिल रहे हैं? फिर चांद-तारे कैसे चल रहे हैं? फिर नये बच्चे कैसे पैदा हो रहे हैं? रोज नये का जन्म हो रहा है।

तो यह धारणा तुम्हारी गलत है कि परमात्मा ने सृष्टि की। परमात्मा सृष्टि कर रहा है। और अगर तुम मेरी बात और भी ठीक से पकड़ना चाहो, तो मैं कहता हूंः परमात्मा सृष्टि की प्रक्रिया है। परमात्मा कोई अलग व्यक्ति नहीं है कि बैठा है और बना रहा है चीजों को। कुम्हार नहीं है कि घड़े बना रहा है। नर्तक है—नाच रहा है। उसका नाच उसका अंग है। इन सब फूलों में, पत्तों में, सागरों में, सरोवरों में—उसका नाच है। तुम में, मुझ में, बुद्ध-महावीर में—उसका नाच है। उसकी भावभंगिमाएं हैं। उसकी अलग-अलग मुद्राएं हैं। इनमें पहचानो!

तो मैं भगोड़े धर्म से छुटकारा दिलाना चाहता हूं। देह स्वीकृत हो—देह मंदिर बने। प्रेम स्वीकृत हो—प्रेम पूजा बने। संसार का सम्मान हो, क्योंकि उसमें स्रष्टा छिपा है। अभी भी उसके हाथ काम कर रहे हैं। अगर तुम जरा संसार में गहरा प्रवेश करोगे तो उसके हाथ का स्पर्श तुम्हें मिल जाएगा, उसका हाथ तुम्हारे हाथ में आ जाएगा। किसी फूल में कभी उतरे हो गहरे? तुम्हें उसका हाथ पकड़ में आ जाएगा। किसी आंख में उतरे हो गहरे? तुम्हें उसकी झलक पकड़ में आ जाएगी। किसी हृदय में गये हो गहरे? तुम्हें उसका घर मिल जाएगा वह कहां छिपा है।

तो मूल्यों का एक पुनर्मूल्यांकन करना है। सारे मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करना है। और पृथ्वी आज तैयार हो गयी है इस घटना के लिए। क्योंकि पांच हजार साल के दमनकारी धर्मों ने, पलायनवादी धर्मों ने मनुष्य को काफी सजग कर दिया है। मनुष्य तैयार है अब कि कुछ नया आविर्भाव होना चाहिए। लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, लोग आतुरता से राह देख रहे हैं, कि परमात्मा का कोई नया अवतरण होना चाहिए। कोई नयी भाषा मिलनी चाहिए धर्म को। और चूंकि ऐसी भाषा नहीं मिल पा रही है, और ऐसा नया अवतरण नहीं हो पा रहा है, और लोगों को दिखायी नहीं पड़ रहा है कि कैसे धार्मिक हों, तो गलत धर्म पैदा हो रहे हैं। वे भी खोज की वजह से पैदा हो रहे हैं।

आदमी और धर्म के बीच कोई सांयोगिक संबंध नहीं है, जैसा कि मार्क्स और कम्यूनिस्ट सोचते हैं। अनिवार्य संबंध है। आदमी बिना धर्म के हो ही नहीं सकता। आदमी और धार्मिक न हो, यह असंभव है! फिर एक ही उपाय बचता हैः ठीक ढंग से धार्मिक हो कि गलत ढंग से धार्मिक हो। तुम चकित होओगे जानकर कि रूस में जहां कि क्रांति कम्यूनिस्टों के हाथ से घटी और मंदिर-मस्जिद और गिरजे करीब-करीब समाप्त कर दिये गये, वहां भी लोग धर्म से मुक्त नहीं हो गये हैं। धर्म की आकांक्षा इतनी प्रबल है कि अगर असली धर्म न मिलेगा तो लोग नकली से चलाएंगे। वे जाकर लेनिन की कब्र पर ही फूल चढ़ाने लगे। लेनिन ही अवतार मालूम होने लगे। क्रेमलिन मंदिर बन गया। मार्क्स की किताब 'दास कैपिटल' उनकी कुरान, उनकी बाइबिल बन गयी। उनकी नयी त्रिमूर्ति पैदा हो गयी—मार्क्स, एंजिल्स, लेनिन। ब्रह्मा, विष्णु, महेश गये, मगर ये नये...! जर्मनी में हिटलर करीब-करीब लोगों के लिए ऐसा हो गया जैसे वही पूजनीय है।

लोग पूजा का कोई स्थल चाहते हैं। अगर तुम सब स्थल छीन लोगे , तो वे अपने ही स्थल बना लेंगे—कुछ भी बना लेंगे, कुछ भी खड़ा कर लेंगे, जो मिल जाएगा उसी की पूजा करेंगे। लेकिन पूजा, प्रार्थना, प्रेम मनुष्य के भीतर छिपी हुई कोई अनिवार्य आवश्यकता है।

मेरे पास पत्र आते हैं। कल ही एक पत्र आया है रूस से एक महिला का, कि वह आना चाहती है, लेकिन सरकार आज्ञा नहीं देती। तो उसने लिखा है, यहां से मैं निमंत्रण दिलवाऊं। कोई यहां से 'गारंटी' लेने को हो तीन महीने के लिए, तो शायद स्वीकृति मिल जाए। लेकिन उसका पत्र इतना प्यारा है कि 'लक्ष्मी' डरी! किसी से स्वीकृति तो दिलवा दे, लेकिन वह फिर न जाए तो क्या करें? उसके पत्र से ऐसा लगता है कि फिर वह जानेवाली नहीं। तो जो स्वीकृति लेगा, वह झंझट में पड़ जाएगा; जो निमंत्रण देगा, वह झंझट में पड़ जाएगा। उसके पत्र से लगता नहीं कि एक दफा वह आ जाए रूस के बाहर से, तो फिर भीतर जाएगी।

आदमी के भीतर अनिवार्य तड़प है। और तड़प गहरी हो गयी है। क्योंकि सब पुराने धर्म फीके पड़ गये हैं। और सब नये तथाकथित कम्यूनिस्ट और फॉसिस्ट धर्म झूठे हैं, थोथे हैं, उनसे आत्मा तृप्त नहीं होती। तो मनुष्य बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा हैः कोई नयी किरण उतरे।

इसलिए मैंने कहा कि यह गैरिक आग फैलती जाए सारी दुनिया में तो नयी किरण उतर सकती है। और इस तरह का संन्यास ही अब भविष्य का संन्यास हो सकता है। भगोड़ा संन्यास नहीं हो सकता। जीवन को अंगीकार करनेवाला संन्यास ही भविष्य में स्वीकृत हो सकता है।

और मैं कोई कारण नहीं देखता हूं कि कहीं भागकर जाने की जरूरत है। तुम जहां हो, वहीं अगर तुमने हृदयपूर्वक पुकारा तो परमात्मा आता है। असली बात हृदयपूर्वक पुकारने की है। असली बात न तो पवित्रता की है, न शुद्धता की है, न योग की है, न त्याग की है, असली बात इतनी ही है, कि तुम परिपूर्ण असहाय होकर, निर-अहंकार होकर, उसके चरणों में गिर जाओ। तुम थोड़े भी बचे तो रुकावट रहेगी। तुम बिलकुल चले गये, उसी क्षण रुकावट टूट जाती है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, तेरे ही इशारे पर मैंने अपना पुरा प्यार उंडेल दिया और जब तेरी तस्वीर के सामने होती हूं तो तुझमें उसी को देखती हूं। और उसके पास होती हूं तो तेरा ही रूप उसमें झलकता है। तो क्या ये मेरी आंखें धोखा खा रही हैं? प्रभु बताने की कृपा करें।

नहीं चेतना, आंखें खुल रही हैं, धोखा नहीं खा रही हैं। आंखें पहली बार उपलब्ध हो रही हैं। धीरे-धीरे ये आंखें और गहराएंगी, इनकी धुंध और कटेगी। तब चित्र की भी जरूरत न रह जाएगी। तब वृक्ष में भी और पत्थर में भी, सब तरफ वही दिखायी पड़ने लगेगा। यह शुरुआत है।

जो गुरु में दिखायी पड़ता है, उसे एक दिन सारे संसार पर फैला देना है। गुरु तो सिर्फ द्वार है। इसलिए नानक ने बिलकुल ठीक मंदिर को नाम दिया—गुरुद्वारे। वह मुझे पसंद है। गुरु द्वार है। उससे तो सिर्फ विराट आकाश की तरफ यात्रा शुरू होती है।

शुभ हो रहा है। ऐसी ही आंखें चाहिए। ऐसी ही आंखों को दर्शन होता है। ऐसी ही आंखों को दृष्टि उपलब्ध होती है।

मैंने सुना है, एक झेन कहानी—

ए मांक सेड, 'आइ एम टोल्ड दैट आल बुद्धाज एंड आल द बुद्धा-धर्माज ईसू फ्रॉम वन सूत्रा। व्हाट कुड दिस सूत्रा बी?' दि मास्टर रिप्लाइड, 'रिवाल्विंग ऑन फॉर एवर; नो चेकिंग इट; एंड नो आर्गूइंग, नो टाकिंग कैन कैच इट।' 'हाउ शेल देन आइ रिसीव एंड होल्ड इट?' दि मास्टर लाफ्ड एंड सेड, 'इफ यू विश टु रिसीव एंड होल्ड इट, यू शैल हियर इट विद योवर आईज।'

एक भिक्षु ने पूछा अपने गुरु को : 'मैंने सुना है कि समस्तबुद्ध और समस्त बुद्धों के धर्म, एक ही संक्षिप्त सूत्र से पैदा हुए हैं। वह सूत्र क्या है?

सदगुरु ने कहा : सदा घूमता रहता वह, सदा प्रवाहमान! उसे पकड़ा नहीं जा सकता। वह ठहरता नहीं। वह सदा गतिमान। उसे रोका नहीं जा सकता और कोई तर्कों के द्वारा भी उसे पकड़ा नहीं जा सकता। और कोई शब्द उसे प्रकट करने में समर्थ भी नहीं हैं।

स्वभावतः भिक्षु ने पूछा : 'तब मैं उसे किस तरह ग्रहण करूं? और किस तरह आत्मसात करूं? और किस तरह भीतर संभालूं? कैसे उसे अपनी आत्मा में वास करने को पुकारूं?'

सदगुरु हंसा और उसने कहा, 'यदि तुम चाहते हो उसे स्वीकार करना, ग्रहण करना और अपने भीतर बसा लेना, तो तुम्हें एक कला सीखनी होगी। कानों से सुनना तुम जानते हो, अब तुम्हें आंखों से सुनना सीखना पड़ेगा।'

आंखों से सुनना! चेतना, वही तुझे हो रहा है।

एक दृष्टि, एक नयी दृष्टि का जब जन्म होता है, तो बेचैनी भी होती है, परेशानी भी होती है। क्योंकि सब पुराना अस्तव्यस्त हो जाता है। फिर पुराने से कोई समायोजन नहीं रह जाता। नयी दृष्टि का आविर्भाव एक अराजकता पैदा करता है। नयी दृष्टि के साथ नये जीवन की शुरुआत है—नयी आत्मा की।

शुभ हो रहा है। भयभीत न होना। और सोचना भी मत कि क्या मैं धोखा खा रही हूं।

मेरा तुम्हारे पास होना और तुम्हारा मेरे पास होना इसीलिए है कि मैं तुम्हें धोखा न खाने दूं। और बहुत बार तुम्हें ऐसा लगेगा कि जब तुम धोखा खाओगे तब तो लगेगा कि सच हो रहा है—क्योंकि तुम्हारी आंखें धोखा खाने की जन्मों-जन्मों से आदी हैं। उन्होंने धोखा ही खाया है। इसलिए धोखा तो सच लगेगा। और बहुत बार इससे उल्टा भी होगा, जब सच होने लगेगा तो तुम्हारा मन कहेगा—कहीं धोखा तो नहीं हो रहा है? इसलिए सदगुरु की जरूरत है, कि कोई तुम्हें कह सके कि यह धोखा है और यह धोखा नहीं है।

एक बात खयाल रखना, जो तुम्हारे पुराने अतीत से समायोजन पाता हो, उसमें धोखा हो सकता है। जिससे तुम्हारा मन राजी हो सकता है, उसमें धोखा है। जिससे तुम्हारा मन राजी न हो, बेचैनी होने लगे, जिसे तुम्हारा मन आत्मसात न कर सके और जिसके साथ मन सोचने लगे—क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है? मैं पागल तो नहीं हो रहा? कोई भ्रम तो नहीं खा रहा? तब तुम समझ लेना, बहुत संभावना इस बात की है कि सत्य करीब आ रहा है। मन असत्य से इतना रच-पच गया है कि जब सत्य करीब आता है तो उसे धोखे जैसा मालूम होता है।

पूछा तूमने, 'तेरे इशारे पर मैंने अपना पूरा प्यार उंडेल दिया।' यह सच है। चेतना को मैं देख रहा हूं। थोड़े ही दिनों में उसका पौधा खूब हरा हुआ है। सब भांति उसने अपने को उंडेलना शुरू किया है। कृपण नहीं है। अपने को रोकने की कोई आकांक्षा भी नहीं है। यहां वैसे भी लोग हैं, जो पाना सब चाहते हैं, लेकिन खोना बिलकुल नहीं चाहते। ऐसे भी लोग हैं, जो बड़ी छोटी-छोटी बातों में भी मुझसे धोखा कर जाते हैं। यहां आते हैं तो गैरिक वस्त्र पहन लेते हैं, और यहां आते हैं तो बड़े रोते हैं और आंखों से आंसू गिराते हैं। और वे सब आंसू बेकार है,

क्योंकि घर जाकर वे गैरिक वस्त्र भी छोड़ देते हैं। वे आंसू सब दिखावा हैं। वे सोचते हैं कि इन आंसुओं से मुझे धोखा हो जाएगा!

इस तरह नहीं चलेगा। तुम मुझे धोखा नहीं दे सकोगे—न तुम्हारे आंसुओं से, न तुम्हारे नाच-गान से, न तुम्हारे भजन-कीर्तन से। तुम अगर मेरे साथ हो, तो मेरे साथ होने से जो तकलीफ होती है, उसे भोगना होगा। मेरे साथ होने से जो अड़चन आती है, वह भी झेलनी होगी। तुम्हारे गांव में लोग हंसेंगे, तो वह भी स्वीकार करना होगा। लोग पागल समझेंगे, तो वह कीमत चुकानी है। मेरे साथ अगर पागल होने को राजी नहीं हो, तो यह दृष्टि तुम्हें कभी उपलब्ध न हो सकेगी। तुम अपनी होशियारी से मेरे पास अगर हो, तो खो दोगे, चूकोगे अवसर।

अपनी होशियारी छोड़ ही दो। संन्यास का वही अर्थ है; तुम घोषणा करते हो कि अब मैंने अपनी होशियारी छोड़ी। लेकिन तुम बड़े चालबाज हो। तुम ऐसी-ऐसी तरकीबें निकाल लेते हो कि तुम्हें शायद खुद भी पता न चलता है। ऐसा नहीं कि तुम मुझे ही धोखा देते हो, तुम्हारी चालबाजियां ऐसी हैं कि तुम अपने को भी धोखा देते हो।

एक मित्र ने पूछा है कि 'हम बड़े प्रेम में कभी-कभी आपको गालियां भी देते हैं। आपका इस संबंध में क्या कहना है?' इतना ही कहना है कि इतना प्रेम मैं नहीं सोचता कि अभी तुम्हारे पास होगा। गालियां जरूर देते होओगे, लेकिन प्रेम का तुम धोखा खा रहे हो। प्रेम का तुम अपने को धोखा दे रहे हो। तुम अपने को समझा रहे हो कि प्रेम में दे रहे हैं। जरा गौर से देखना, देने के कारण दूसरे होंगे। देने का मौलिक कारण तो यही होगा कि तुम्हें मेरे साथ झुकना पड़ा है। उसका तुम बदला ले रहे होओगे। और बदला लेने का यही उपाय है।

प्रेम से दे रहे हो तो बड़ा अच्छा है। लेकिन प्रेम में देने को सिर्फ तुम्हारे पास गालियां हैं, कि कुछ और है? फिर अगर प्रेम से दे रहो हो, और तुम्हारे पास सिर्फ गालियां है, तो मुझे स्वीकार हैं। लेकिन प्रेम में गाली बचती नहीं। गाली में कहीं न कहीं विरोध है। विरोध को तुम लीप-पोत लेना चाहते हो। मगर तुम्हारे भीतर गाली तो है ही कहीं, तो ही आ रही है।

एक फकीर एक गांव में गया। और उस गांव के लोगों को उससे बड़ा विरोध था। तो उन्होंने एक जूतों की माला बना कर उसको पहना दी। वह फकीर खूब हंसने लगा। गांव के लोग बड़े हतप्रभ हुए। उन्होंने पूछा, मामला क्या है? आप हंस क्यों रहे हैं? उसने कहा कि हंस इसलिए रहा हूं कि आज पता चला कि अभी तक मैं सिर्फ मालियों के गांव जाता रहा, चमारों के गांव पहली दफे आया। यही तो मैं सोचता था कि बात क्या है! जिस गांव में जाता हूं, लोग फूल की माला चढ़ा देते हैं! क्या माली ही माली रहते हैं? आज अच्छा हुआ आ गया। मेरे जूते भी फट गये हैं। तो तुम सब चमार हो?—उस फकीर ने कहा—नहीं तो जूते की माला बनाने की सोचते भी कैसे? यह तुम्हें विचार कैसे आया?

अब तुम कहो कि हम जूते की माला बड़े प्रेम में चढ़ा रहे हैं। माला तो प्रेम में ही चढ़ायी जाती है, सो सच है। लेकिन जूते की माला! तो कहीं तुम्हारा चमारपन प्रकट हो रहा है। गाली मिली तुम्हें देने को प्रेम में? लेकिन होगा कहीं विरोध! और विरोध भी स्वाभाविक है। जिसके सामने झुकना पड़ता है, उससे भीतर एक विरोध हो जाता है, बदला लेने की आकांक्षा हो जाती है।

यह कुछ आकस्मिक थोड़े ही है कि यहूदा ने—उनके प्रमुख शिष्य ने—जीसस को धोखा दिया और सूली पर चढ़वाया। यह बदला था। झुकना पड़ा था इस आदमी के सामने। इस बात को वह कभी माफ नहीं कर सका। पढ़ा-लिखा आदमी था। जीसस के शिष्यों में सबसे ज्यादा पढ़ा-लिखा आदमी वही था। बर्दाश्त नहीं कर पाया। जीसस से ज्यादा पढ़ा-लिखा था और जीसस से ज्यादा संभ्रांत था, ज्यादा सुसंस्कृत था। झुक तो गया, किसी क्षण में झुक गया होगा—चुंबक के क्षण होते हैं। कभी किसी प्रभाव में, जीसस की किसी आभा में, किसी मुख-मुद्रा में, जीसस की आंख की किसी पुकार में झुक गया होगा। लेकिन पीछे पछताने लगा होगा, कि मैं और

झुक गया एक आदमी के सामने, जो सिर्फ बढ़ई का बेटा है। कहीं भीतर बात सुलगती रही। वह जीसस की कई घटनाओं में भूलें निकालता रहा।

और तुम अगर उन भूलों को सोचोगे, तो तुम भी यहूदा से राजी होओगे। जैसे एक स्त्री आयी और उसने बड़ा बहुमूल्य इत्र जीसस के पैरों पर डाला। वह इतना बहुमूल्य इत्र था कि हजारों रुपये उसकी कीमत थी, उन दिनों भी! जीसस बैठे रहे। उस स्त्री ने अपने बालों से उनके पैर पोंछे। इत्र से पैर धोए, बालों से पोंछे। और उसकी आंखों से आंसू गिर रहे हैं। और यहूदा ने कहा कि यह व्यर्थ की खर्चीली बात है। आपने रोका क्यों नहीं? इतने पैसे से तो न-मालूम कितने गरीबों के पेट भर जाते।

अब तुम किससे राजी होओगे? जीसस से या यहूदा से? तुम्हारी बुद्धि भी कहेगी कि बात तो यहूदा ही ठीक कह रहा है। तर्कयुक्त है।

लेकिन जीसस ने क्या कहा? जीसस ने कहाः मेरे जाने के बाद भी गरीब रहेंगे, तुम उनकी सेवा पीछे कर लेना। अभी दूल्हा घर में है, उत्सव होने दो।

यह बात किसी और तल की हैः अभी दूल्हा घर में है, उत्सव होने दो। गरीब तो सदा से हैं और सदा रहेंगे, सेवा तुम पीछे कर लेना, मेरे बाद कर लेना—मैं ज्यादा दिन यहां नहीं रहूंगा।

और जीसस ज्यादा दिन रहे भी नहीं। इस बात के कहने के तीन महीने बाद ही सूली लग गयी। जीसस ने कहाः ज्यादा दिन मैं यहां रहूंगा भी नहीं। जल्दी ही मेरे विदा का क्षण आ जाएगा। हो सकता है इस स्त्री को वह विदा का क्षण दिखायी पड़ रहा था। क्योंकि जीसस को जब सूली से उतारा गया, तो यही स्त्री सूली से उतारते वक्त मौजूद थी, बाकी सब शिष्य भाग गये थे। यहूदा ने तो जीसस को तीस चांदी के टुकड़ों में बेच दिया और बाकी शिष्य भाग गये डर से, कि कहीं अब हम को भी न पकड़ा जाए। जो स्त्री जीसस को सूली से उतारते वक्त मौजूद थी, जो नहीं भागी, वह वही स्त्री थी। वह एक वेश्या थी—मेरी मेग्दलीन—जिसने वह हजारों रुपये का कीमती इत्र जीसस के पैरों में डाला था।

फिर जीसस ने कहाः उसका प्रेम देखते हो, कि तुम सिर्फ इत्र ही देखते हो? और उसे रोकना उसके हृदय को तोड़ना हो जाएगा।

यहूदा भूलें निकालता रहा। आगे-पीछे जीसस के खिलाफ भी बोलता रहा होगा। क्योंकि कोई अचानक एक दिन जाकर और सूली पर नहीं लटका देता अपने गुरु को। अचानक! यह भीतर पकती रही होगी बात। भीतर इकट्ठा होता रहा होगा मसाला।

तुम्हारे भीतर भी गालियां हो सकती हैं और तुम अनेक तरकीबों से उन गालियों को निकालने का उपाय भी खोज लेते हो। फिर अपने को बचाने के लिए तुम सोचते होओगे, कि यह तो मैं प्रेम में दे रहा हूं। काश तुम्हारे पास प्रेम होता! तो गालियां खो गयी होती, पिघल गयी होती, प्रेमपूर्ण हृदय को गालियां देने का उपाय कहा रहेगा?

तुम मुझे भी धोखा देते हो, अपने को भी धोखा देते हो। तुम्हारा धोखा गहरा है। लेकिन 'चेतना' के संबंध में यह बात कही जा सकती है, न तो वह खुद को धोखा दे रही है, न मुझे धोखा दे रही है। उसने अपने को उंडेला है।

पूछा है, 'जब तेरी तस्वीर के सामने होती हूं तो तुझमें उसी को देखती हूं उसी को देखना है। जब तक तुम्हें मुझमें मैं ही दिखायी पड़ता रहूं, तब तक तुमने मुझे नहीं देखा। जिस दिन तुम्हें मुझमें वह दिखायी पड़ने लगे, उसी दिन तुमने मुझे देखा।

इस विरोधाभास को खयाल में रखना।

जब तक मैं तुम्हें मैं ही दिखायी पड़ूं, तब तक तुमने मुझे नहीं देखा। जब तक मैं में तुम्हें वह न दिखायी पड़े, तब तक तुमने मुझे नहीं देखा। मैं द्वार बन जाऊं और वह विराट आकाश तुम्हें मुझमें से दिखायी पड़े। और धीरे-धीरे मुझे भूल जाओ और उस विराट आकाश में लीन हो जाओ—तो ही तुम मेरे पास आए!

मेरे पास आने का मतलब है, मुझसे गुजर जाओ। मेरे पास आने का अर्थ है, मेरी सीढ़ी का उपयोग कर लो। यह द्वार खुला है। इस द्वार से अगर तुम झांके, तो तुम परमात्मा को देख पाओगे।

ठीक हो रहा है, चेतना! यह धोखा नहीं है। लेकिन इतनी बड़ी बात घटनी जब शुरू होती है। शंकाएं शुरू होती हैं कि पता नहीं क्या हो रहा है? कोई कल्पना तो नहीं, कोई भ्रमजाल तो नहीं, कोई सपना तो नहीं?

नहीं, आंखें धोखा नहीं खा रही, आंखें पैदा हो रही हैं, पहली बार आंखें पैदा हो रही हैं। दृष्टि का जन्म हो रहा है।

उनकी याद, उनकी तमन्ना, उनका गम,

कट रही है जिंदगी आराम से

शिष्य जैसे-जैसे गुरु के निकट होता है, वैसे-वैसे पीड़ा भी होती है—विरह की—मिलन का सुख भी होता है। हंसी भी आती है, आंसू भी गिरते हैं। जिंदगी एक नया पर ले लेती है, नये पंख ले लेती है। अब उदासी में भी एक रौनक होती है। अब विरह में भी मिलन की आभा होती है।

सब्र पर दिल को आमादा किया है लेकिन

होश उड़ जाते हैं अब भी आवाज के साथ

आवाज सुनायी पड़नी शुरू होगी। आंख से सुनी जाती है वह आवाज, खयाल रखना!

क्यों इस झेन फकीर ने कहा कि आंख से सुनोगे तब सुनायी पड़ेगा! बात बड़ी बेबूझ है। सुनता आदमी कान से है, आंख से तो नहीं।

एक और फकीर से किसी ने पूछा—बाबा फरीद से किसीने पूछा—कि सत्य और झूठ में कितना अंतर है? उसने कहाः चार इंच का। पूछनेवाले ने पूछाः सिर्फ चार इंच का? तो फरीद ने कहाः कान और आंख में जितना अंतर है, बस उतना ही।

कान से सदा दूसरे की बात सुनायी पड़ती है, सदा उधार होती है। और कान से सुनी बात पर भरोसा मत कर लेना। उसी के कारण तो लोग शास्त्रों में उलझ गये हैं, शब्दों में उलझ गये हैं। वह कान ने सुनी गयी बात है। आंख पर भरोसा करना। देखे पर भरोसा करना। सुने पर भरोसा मत करना। सुने का कोई प्रमाण नहीं है कि ठीक हो कि न ठीक हो। सुना सुना है।

इसलिए झेन फकीर ने ठीक कहा कि जब तू आंख से सुनने लगेगा, तब। तब देख पाएगा उस परमसूत्र को, जिससे सारे बुद्ध पैदा होते हैं, सारे बुद्धों के धर्म पैदा होते हैं!

बस इतनी आरजू है वादे-फना जनाजा

निकले मेरे मकां से, ठहरे तेरी गली तक

बस भक्त की इतनी ही आरजू है—

बस इतनी आरजू है वादे-फना जनाजा

निकले मेरे मकां से, ठहरे तेरी गली तक

इस आरजू को चेतना की आंखों में मैंने देखा है। तुम सब की आंखों में देखना चाहता हूं।

उनकी तस्वीर जब आंखों में उतर आई है

मैंने तारीक फजाओं में जीया पाई है

बस एक तस्वीर उतर आए आंखों में, फिर अंधेरी रातों में रोशनी हो जाती है।

उनकी तस्वीर जब आंखों में उतर आई है

मैंने तारीक फजाओं में जीया पाई है

हुस्न जब होने लगा माइले-इल्फातो-करम

इश्क की जान पै कुछ और भी बन आई है

आज तक मेरी निगाहों को मयस्सर न हुई
लोग कहते हैं कि गुलशन में बहार आई है
अब जमाने की खबर है न खुद अपना ही पता
मेरी वहशत मुझे क्या जाने कहां लाई है
ऐ निगाहे-गलत अंदाज तेरी उम्र दराज
जिंदगी अब गम-ओ-आलाम की शैदाई है
अब तो आ जाए गमे-हस्ती को मिटानेवाले
बस तेरी याद है, मैं हूं, शबे-तन्हाई है

शिष्य की इतनी ही पुकार है, भक्त की इतनी ही पुकार है। भक्त और शिष्य में कुछ भेद नहीं है। जो शिष्य नहीं, वह भक्त नहीं। भक्ति के पाठ गुरु के पास ही सीखे जाते हैं। भक्ति का चरम फल परमात्मा है, लेकिन भक्ति के पाठ गुरु के पास सीखे जाते हैं। गुरु पाठशाला है। उस पाठशाला से उत्तीर्ण हुए बिना कोई परमात्मा को उपलब्ध नहीं होता।

क्या आकांक्षा है शिष्य की? क्या आकांक्षा है भक्त की? बस एक ही कि यह जो उदास रात है, अब टूटे। सुबह हो, किरण फूटे। यह आकांक्षा तो है, यह अभीप्सा तो है, लेकिन कोई अधीरता नहीं है, प्रतीक्षा है।

प्रार्थना उसी दिन पूरी होगी, जिस दिन अभीप्सा भी पूर्ण हो और प्रतीक्षा भी पूर्ण हो। जिस दिन मांग भी हो और मांग एक अर्थ में न भी हो। एक तरफ भक्त पुकारता है कि आओ अब और नहीं सहा जाता। और दूसरी तरफ भक्त कहता है जब भी आओगे, तब तक प्रतीक्षा करने की मेरी तैयारी है। अनंतकाल में भी आओगे, तो भी मैं प्रतीक्षा करता रहूंगा। तब उसी क्षण घटना घट जाती है।

शुभ हुआ है। पहली दफा आंख खुलनी शुरू हुई है। इस आंख पर भरोसा करो। इस आंख को पूरा बल दो। इस आंख में पूरी ऊर्जा डाल दो। यही आंख दर्शन है।

तीसरा प्रश्नः मैं यह जानकर अत्यंत दुखित हूं कि मेरे एक मित्र जो आगरा से 'रजनीश-प्रेम' नाम का अखबार निकालते हैं, उन्हें आश्रम की ओर से अखबार बंद करने के लिए कहा जा रहा है। क्या आश्रम की आप पर मालकियत है? मेरे मित्र तो आपके प्रेम में ही अखबार निकालते हैं। उनकी इच्छा तो बस आपके विचार-प्रसार के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। हमने तय किया है कि हम आश्रम के विरुद्ध संघर्ष करेंगे और अखबार निकालना जारी रखेंगे।

कुछ बातें समझ लेना उपयोगी होंगी। और-और संदर्भों में भी उनका काम आएगा।

पहली तो बात खयाल रखना कि मेरे अतिरिक्त यहां कोई आश्रम इत्यादि नहीं है। लड़ोगे तो मुझसे। यह आश्रम का बहाना भी सिर्फ तुम्हारी लड़ने की वृत्ति के कारण है। यहां मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं है। यह आश्रम मेरी देह है। यहां जो भी हो रहा है, वह मेरे इशारे से हो रहा है। अच्छा हो, बूरा हो—सबकी जिम्मेवारी मेरी है। सोए लोगों की जिम्मेवारी हो भी क्या सकती है!

जो काम में लगे हैं आश्रम में, वे सोए हुए लोग हैं। वे केवल मेरे इशारे पर चल रहे हैं।

इसलिए खयाल रहे। लड़ना हो तो मजे से लड़ना लेकिन सब लड़ाई तुम मुझसे ही कर रहे होओगे। और अपने को यह धोखा मत देना कि तुम आश्रम से लड़ रहे हो। तुम मुझे आश्रम से अलग करना ही मत। और आश्रम अलग नहीं है, तो मुझ पर आश्रम का कब्जा क्या होगा? आश्रम मेरा खेल है!

रही बात अखबार निकालने की, तो तुम समझो ठीक से; क्यों रोका जा रहा है? मैं जो कहता हूं, उसे ठीक प्रामाणिक रूप से लोगों तक पहुंचना चाहिए। संदर्भ के बाहर टुकड़े निकाल-निकाल कर तुम कुछ छाप देते हो, उनका अर्थ बदल जाता है, उनका प्रयोजन बदल जाता है। उनका प्रयोजन उन टुकड़ों को चुनने वाले का प्रयोजन होता है, मेरा प्रयोजन नहीं होता।

इसलिए मैं नहीं चाहता हूं कि कहीं भी देश में कोई प्रकाशन हो, जो मेरी देख-रेख में नहीं हुआ; अन्यथा वह गलत होगा। उससे नुकसान होगा। उसके परिणाम घातक पहले हुए हैं, अब भी होंगे। पहले तो रोका नहीं जा सकता था, अब रोका जा सकता है, इसलिए रोका जाना चाहिए।

महावीर के पीछे इतना उपद्रव क्यों खड़ा हुआ? क्योंकि दो तरह के लोगों ने शास्त्र लिख लिये थे। बुद्ध के मरते ही छत्तीस संप्रदाय हो गये बुद्ध के। क्योंकि छत्तीस तरह के शास्त्र उपलब्ध थे। बुद्ध ने तो एक ही बात कही थी, लेकिन लिखने वाले अपने-अपने मन से लिख लिये थे। किसी ने कुछ छोड़ दिया था, किसी ने कुछ जोड़ दिया था। किसी को कोई बात महत्वपूर्ण पड़ी थी मालूम, उसने लिख ली थी। किसी को वह बात महत्वपूर्ण नहीं मालूम पड़ी, उसने नहीं लिखी थी। किसी ने कोई अंश लिख लिया था—जो महत्वपूर्ण उसे मालूम पड़ा था—शेष छोड़ दिया था।

बुद्ध के बाद छत्तीस संप्रदाय खड़े हुए, जिनमें संघर्ष चलता रहा; जिनके संघर्ष में बुद्ध-धर्म के प्राण निकल गये। बौद्धों को हिंदुस्तान से मर जाना और मिट जाना, हिंदुओं के कारण नहीं हुआ; उनके ही आपसी छत्तीस उपद्रवों के कारण हो गया।

मैं नहीं चाहता कि इस आश्रम के अतिरिक्त कहीं भी कोई और प्रकाशन हो। पहले प्रकाशन यहां होना चाहिए। जो मैं कहता हूं, वह ठीक वैसा ही जाना चाहिए जैसा मैंने कहा है; जितना मैंने कहा है; जिस संदर्भ में कहा है। इसलिए रोका जा रहा है, कोई और कारण नहीं है। और तुम कहते हो कि 'मेरे मित्र तो आपको प्रेम करते हैं, इसलिए अखबार निकालते हैं।' अगर मुझको प्रेम करते हैं, तो मेरी सुनेंगे। 'रजनीश-प्रेम' अखबार का नाम रख लेने से कोई रजनीश से प्रेम नहीं हो जाता। फिर अगर वे चाहते हैं कि मेरे विचार और प्रसार का काम करें, जरूर करें। इतना साहित्य आश्रम प्रकाशित कर रहा है, उसे लोगों तक पहुंचाएं। और अलग साहित्य की कोई जरूरत नहीं है। मैंने उनका अखबार भी देखा है। वह एकदम गलत-सलत है।

उसमें कुछ का कुछ लिखा जा रहा है। टुकड़े कहीं-कहीं से निकाल कर रख देते हैं।

स्मरण रहे, मैं जो भी कह रहा हूं, उसका एक संदर्भ है, एक प्रसंग है। उस प्रसंग के बाहर उसका अर्थ कुछ और जो जाएगा, अनर्थ हो जाएगा। इसलिए इस तरह की कोई प्रवृत्ति नहीं चलने दी जाएगी।

और यह सदा के लिए खयाल रख लो कि यहां जो भी हो रहा है, आगे जो भी होगा, जब तक मैं हूं, तब तक सब मेरे इशारे से हो रहा है। तुम्हें कई बार लगता है कि ऐसा क्यों होगा? तुम्हें कई बार लगता है कि भगवान ऐसा क्यों करेंगे? तुम्हारा लगना और मेरी दृष्टि मेल न खाए, तो तुम यह मत समझना कि कुछ गलत हो रहा है।

उदाहरण के लिए: एक मित्र ने लिखा है पत्र कि मैं आया था—बड़ी आशाओं से, कि आपके चरणों में बैठूंगा, सेवा करूंगा, और यहां आकर आप से मिलने भी नहीं दिया जाता है। आपको क्या बंदी बना लिया गया है?

ऐसा अनेक मित्रों को लगता है। मैं किसी का बंदी नहीं हूं। सिर्फ तुम मेरे चरण न दबा सको ज्यादा—तुमसे मुझे छुटकारा दिलवाया गया है, और कुछ भी नहीं है। सिर्फ तुमसे मुझे स्वतंत्र किया गया है। लेकिन तुम समझते हो, मैं बंदी बना लिया गया हूं। मैं काफी परेशान आ गया हूं पैर दबाने वालों से। क्योंकि वे न समय देखते, न सुविधा देखते। काफी अनुभव के बाद यह इंतजाम करना पड़ा।

वे जो पहरेदार खड़े हैं द्वार पर, वे मुझे बंदी बनाने को नहीं खड़े हैं—मुझे तो जब बाहर जाना होता है तो कोई रोकने को नहीं है—वे सिर्फ तुम्हें नहीं भीतर घुसने देते। लेकिन तुम्हें घुसने दिया नहीं जाना चाहिए। जब जरूरत हो तब तुम्हें जरूर अवसर है। और अवसर की प्रतीक्षा करनी सीखनी चाहिए। नहीं तो मैं बहुत परेशान हो लिया हूं। मैं ज्यादा काम कर सकूं, इसलिए यह व्यवस्था की गयी है।

मैं एक दफे ट्रेन में था। रात दो बजे एक आदमी भीतर आ गया। मैं तो सोया था। शिविर से लौटता था उदयपुर से, सोया था—कोई बारह बजे तो वहां से ट्रेन चली, तो बस सोया था; कोई दो ही घंटे सो पाया होऊंगा कि

देखा कि कोई मेरे पैर दाब रहा है, तो नींद खुली। मैंने पूछाः भई क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि चरण-सेवा कर रहा हूं।

मगर मेरे चरण हैं, कम से कम मुझसे पूछ तो लेना चाहिए। मुझे इस समय चरण-सेवा करवानी या नहीं करवानी? वह मुझसे बोलेः आप सोइए! अब मुझे कोई नहीं रोक सकता। मैं वहां भी गया था, उदयपुर शिविर में भी, मगर मुझे घुसने ही नहीं दिया। आज की रात है, मैं हूं, आप है! उस आदमी ने रात भर मुझे जगाए रखा। वह सुबह छह बजे तक मेरे पैर दबाता रहा। उसे कई बार समझाया कि भई, तू थक गया होगा। कहा आप बिलकुल बेफिक्र रहिये। आज तो मन भर कर सेवा करूंगा।

अब तुम जानते हो मेरे पचास हजार संन्यासी हैं, अगर ऐसे सब मेरी सेवा करने को उत्सुक हो जाएं, तो बड़ी अड़चन हो आएगी। ऐसी अड़चन बहुत बार हो चुकी है।

एक नगर में शिविर ले रहा था। दोपहर को सोया, दिन भर का थका-मांदा, दोपहर को सोया, देखा कि कोई आदमी ऊपर से खप्पड़ उठा लिया है, वह वहां से झांक रहा है। पूछाः भई, क्या कर रहे हो? कहाः दर्शन कर रहे हैं!...यह स्वतंत्रता थी मेरी! अब मैं कैदी हूं! अब वह सज्जन यहां भी आते हैं, वह बड़ी तकलीफ पाते हैं! वह कहते हैं कि यह क्या है? और वह कोई गैर पढ़े-लिखे गंवार नहीं, वकील हैं।...कि नहीं, मैं तो दर्शन कर रहा हूं! मैंने कहाः दर्शन तुम कभी और कर लेते। उन्होंने कहाः मुझे जब आप सोते हैं तब दर्शन करने हैं। सोते में दर्शन करने हैं।

मैं कोई बंदी नहीं हूं। कौन मुझे बंदी बनाएगा? कैसे मुझे बंदी बनाएगा! मुझे कोई कारागृह में भी डाल दे तो भी अब मैं बंदी नहीं हो सकता हूं। अब मैंने उसे जान लिया है जो बंदी होता ही नहीं है।

इसलिए तुम इस विचार में मत पड़ जाना कि कोई मुझे रोक रहा है। तुम्हें रोक रहा है—सच। तुम यह मत सोचना मुझे कोई रोक रहा है। और तुम्हें जो रोका जा रहा है, वह मेरे ही इशारे से रोका जा रहा है।

यहां इतने लोग हैं, अगर तुम सब को पूरे समय सुविधा रहे, जब तुम्हें आना हो आ जाओ, तो फिर किसी को भी आने का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। ऐसी ही हालत थी। सौ-पचास आदमी मुझे घेरे ही रहते थे, किसी को कुछ पूछना है, पूछ ही नहीं सकता था। एक बोलता, दूसरा बोल देता, तीसरा जवाब भी दे देता! कोई डांटने लगता कि तुम चुप रहो जी, तुम्हें कुछ पता ही; पहले कुछ सोचो-समझो, क्या पूछ रहे हो? या कोई उत्तर देता है कि कृष्ण ने गीता में ऐसा कहा है। मुझे अवसर ही नहीं था। यह सत्संग कहते थे लोग इसको।

उस सबको मुझे तोड़ना पड़ा है। उसकी वजह से मुझे यात्रा भी बंद करनी पड़ी। क्योंकि कोई उपाय न था। जिनके घर मैं ठहरता, वे मुझे परेशान कर देते। दिन भर के बाद मैं घर आया हूं, अब उनकी पत्नी को सत्संग करना है, कि उनकी मां को सत्संग करना है, कि उनके पिता को सत्संग करना है। अब उनका परिवार मेरे पास बैठा है। वे मुझे सोने नहीं देंगे। या उन्होंने पड़ोस के लोगों को इकट्ठा कर लिया है। उनके लिए विशेष आयोजन है। क्योंकि हमारे घर रुके हुए हैं, ये हमारे रिश्तेदार हैं, इन सबको आपसे मिलना होगा। यह सब फिजूल समय खराब करना है, शक्ति व्यय करना है।

यहां सब मेरे इशारे से हो रहा है। अगर तुम्हें मुझसे मिलना होता है, और तीन दिन रोका जाता है, तो उसका भी प्रयोजन है। यह मेरे अनुभव में आया, कि तुम जब मिलना चाहो, तभी तो तुम्हें मिलने ही नहीं देना। क्योंकि अक्सर तुम्हारे प्रश्न इतने फिजूल होते हैं कि दो-तीन दिन टिकते ही नहीं; अपने-आप चले जाते हैं, उनके जवाब की कोई जरूरत ही नहीं थी। तीन दिन बाद जब तुम मुझसे मिलने आते हो, मैं पूछता हूं कि कहो, क्या कहना है? तो तुम कहते हो, वह तो मामला खत्म ही हो गया। उसमें कुछ सार नहीं है। अब तो पूछना भी व्यर्थ मालूम होता है। तो जिसका पूछना तीन दिन में ही व्यर्थ हो गया, तीन दिन पहले तुम मेरा समय ही खराब करते। वह उस दिन भी व्यर्थ था। अगर तीन दिन पहले सार्थक था, और सच में सार्थक था, तो तीन जन्मों तक भी सार्थक रहेगा; तीन दिन में व्यर्थ कैसे हो जाएगा?

लेकिन कुछ भी उल-जुलूल तुम्हारे दिमाग में उठा, पहुंच गये! तो तुम्हारे दिमाग की खुजलाहट मिटाने के लिए मैं यहां नहीं हूं। कि तुम्हें जरा-सी खुजलाहट उठी कि तुम गये सत्संग करने। थोड़ा धैर्य, थोड़ी प्रतीक्षा!

स्मरण रहे, यहां जो भी हो रहा है, मेरे इशारे से हो रहा है। और कभी भी अगर तुम्हें ऐसा लगे कि तुम्हारी मंशा के विपरीत हो रहा है तो तुम यही सोचना कि तुम्हारी मंशा ठीक नहीं होगी। और यहां तुम आए हो मेरी मंशा से राजी होने, न कि मुझे तुम्हारी मंशा से राजी करवाने। यहां तुम आए हो मेरे साथ चलने और मेरे साथ बहने, न कि मुझे अपने साथ चलाने। तुम्हारे साथ मैं चलूंगा तो तुम्हें रस बहुत आएगा, आनंद बहुत आएगा, लेकिन मैं तुम्हारे किसी काम न आ सकूंगा; तुम्हारे जीवन में निर्वाण की कोई किरण न उतार सकूंगा। तुम अगर मेरे साथ चलोगे तो शायद उतना रस न भी आए, शायद अड़चन भी मालूम पड़े; चढ़ाई का रास्ता होगा, लेकिन तुम कहीं पहुंचोगे।

मेरी नजर तुम्हारी क्षुद्र आकांक्षाएं पूरी करने की नहीं है। मेरी नजर तुम्हारी विराट अभीप्सा को पूरा करने की है। इन दोनों में चुनना पड़ा है। तुम्हारी क्षुद्र आकांक्षाएं बड़ी फिजूल हैं—कि मेरे घर चलिये, हमारे घर भोजन स्वीकार करिये। तुम्हारी ये फिजूल की आकांक्षाएं हैं। इससे सिर्फ तुम्हारे अहंकार को रस मिलता है, और कुछ भी नहीं, कि मेरे घर भोजन करने आए।

मैं तकलीफ में पड़ गया था। सुबह किसी के घर चाय पीनी पड़ती, दोपहर किसी के घर भोजन करना पड़ता, शाम को फिर किसी के घर चाय पीनी पड़ती, रात फिर किसीके घर भोजन करने जाना पड़ता। और सब जगह भीड़-भाड़! भोजन से किसी का प्रयोजन नहीं। चाय पीना भी दुश्वार! मैं चाय पी रहा हूं, तुम सत्संग कर रहे हो। भीड़ इकट्ठी है! मैंने देखा कि इसमें तुम्हें मजा तो खूब आ रहा है, लेकिन लाभ कुछ भी नहीं हो रहा है। मनोरंजन हो रहा है, मनोभंजन नहीं हो रहा है। मनोरंजन से मुझे क्या लेना-देना है! मनोरंजन के तो बहुत उपाय हैं तुम्हारे लिए।

मैं तुम्हारा मनोभंजन करना चाहता हूं। तुम्हारा मन टूट जाए, मिट जाए—ऐसी कीमिया तुम्हें देना चाहता हूं। उस कीमिया देने के लिए सारा विशेष आयोजन किया गया है।

तुमने बुद्ध और महावीर का पूरा उपयोग नहीं उठाया। तुम उठा नहीं सकते थे, क्योंकि तुम इन्हीं फिजूल बातों में उनका समय भी खराब करते रहे। तुम चाहो तो मेरा पूरा उपयोग उठा सकते हो। एक ही आकांक्षा मैं तुम्हारी पूरी करना चाहता हूं कि तुम परमात्मा को जान लो, कि तुम समाधिस्थ हो जाओ; बाकी सब गौण है, बाकी सब फिजूल है। बाकी का कोई मूल्य नहीं है। बाकी तुम्हारे क्षुद्र प्रश्न इत्यादि किसी सार के नहीं है, उठते हैं चले जाते हैं। हवा के झोंके हैं—आएंगे, चले आएंगे। उनमें इतने परेशान मत हो जाओ, न उनमें इतने चिंतित हो जाओ।

यह आश्रम मेरी काया है। ये मेरे हाथ हैं। यहां जो लोग काम में लगे हैं, उनकी अपनी कोई मर्जी नहीं है, इसीलिए उन्हें काम के लिए चुना है। उनसे बेहतर लोग मौजूद हैं, लेकिन उनकी अपनी मर्जी है, इसलिए उन्हें मैं नहीं चुन सकता।

यह भी तुम खयाल में रखना।

जिनको मैंने काम के लिए चुना है, जरूरी नहीं है कि उनसे बेहतर लोग मौजूद नहीं है, उनसे बेहतर लोग हैं, लेकिन उनकी एक ही खराबी है कि उनकी अपनी मर्जी है। उनको चुनो तो वे मेरी मर्जी से कम, अपनी मर्जी से ज्यादा चलेंगे। होशियार हैं, कुशल हैं, जानकार हैं।

अब तुम सोचते हो, 'लक्ष्मी' को बिठाना काम के लिए—जहां धन-पैसे का उपद्रव है; जहां बाजार, राज्य की हजार तरह की झंझटें हैं, 'लक्ष्मी' को क्या पता है इन सब का? मेरे पास बेहतर लोग हैं, व्यवसाय में कुशल लोग है, लखपति लोग हैं, जो सब कलाएं जानते हैं, सब तरह से होशियार हैं, कुशल हैं। जिंदगी भर का जिनके पास अनुभव है; 'लक्ष्मी' बिलकुल गैर-अनुभवी, उसको बिठाया है। कुछ कारण होगा। अनुभवियों को नहीं बिठाया है। अनुभवी को बिठाते ही से यह मुझे अनुभव हुआ हमेशा कि वह अपनी चलाता है। वह इतना

अनुभवी है कि वह कहता है कि आप को कुछ पता नहीं। वह मुझसे ही आकर कहता है कि आप को कुछ पता नहीं! यह काम ऐसे ही होता है। इसमें रिश्वत देनी पड़ेगी। यह बिना रिश्वत के होगा नहीं। अगर रिश्वत न दी गयी तो यह चूक जाएगा। और मैं जानता हूं, वह ठीक कह रहा है। जहां तक संसार का अनुभव है, वह ठीक ही कह रहा है। लेकिन उसे मेरे साथ पूरा तादात्म्य नहीं है। वह इतना नहीं कर सकता कि वह मेरी सुन कर चले। मैं कहता हूंः ठीक है, डूबेगा तो डूबेगा, रिश्वत मत देना। तब वह ऐसी कोशिश करेगा कि मुझे पता ही न चले और रिश्वत दे दे। उसकी भली ही आकांक्षा है। वह कुछ मेरे खिलाफ नहीं है, मेरे पक्ष में ही करने की सोच रहा है, लेकिन फिर भी कहीं मुझसे उसका तालमेल नहीं बैठ रहा है। उसका समर्पण पूरा नहीं है उसकी समझदारी इतनी है कि समर्पण में बाधा बन रही है। उसे मैं जो भी कहूंगा, उसमें वह अपनी समझ डाल ही लेगा।

इसलिए बहुत मेरे पास संन्यासी हैं, जो ज्यादा काम के हैं; लेकिन एक अड़चन उनके साथ है—उनका अनुभव ही बाधा बन जाता है। इसलिए मुझे ऐसे लोग चुनने पड़े हैं जिनका कोई अनुभव नहीं है। जिन्होंने कभी व्यवसाय किया है, न राजकीय काम-धंधा किया है। जिन्होंने कुछ किया ही नहीं है इस तरह का। उसको चुनने का कारण है। कारण यही है कि उनके लिए मेरे अतिरिक्त कोई और समझ नहीं है। मैं उनकी समझ हूं। मैं गलत करने को कहूंगा तो वे गलत करने को राजी हैं, सही करने को कहूंगा तो सही करने को राजी हैं। मैं उनको कुएं में कूदने को कहूंगा तो कुएं में कूदने को राजी हैं। उनका राजीपन!

तुम्हें बहुत बार लगेगा कि वे तुम्हारे जीवन में बाधा डाल रहे हैं। और तुम्हें बहुत बार लगेगा कि तुम उनसे कोई काम ज्यादा ठीक से कर सकते हो। मगर तुम एक बात खयाल रखना कि वे सब बांस की पोंगरी की तरह हैं; उन्होंने छोड़ दिया है। स्वर मेरे हैं; बहते उनसे होंगे। इसलिए तुम उन पर नाराज भी मत होना। उनके साथ व्यर्थ के संघर्ष में भी मत पड़ जाना। क्यों? उनके साथ संघर्ष करने में तुम मुझसे टूट जाओगे, तुम मुझसे अलग हो जाओगे।

और यह काम अब बड़ा होने को है। अब यह काम विराट होने को है। अब यह काम छोटा नहीं है। अब जल्दी ही हजारों और लाखों लोग आनेवाले हैं। और मैं चाहता हूं कि यह सारी व्यवस्था ऐसी हो कि इसमें जो भी हो, वह मेरे इशारे से हो। नहीं तो जितनी यह बड़ी व्यवस्था हो जाएगी और इसमें अगर बहुत समझदार लोग जगहों पर बैठ गये और जिन्होंने कहा कि इस तरह होना चाहिए, इस तरह होना चाहिए और मैं सिर्फ एक पूजा का पात्र हो गया, तो नुकसान हो जाएगा। तो तुम्हारी सारी कुशलता इस सारे अवसर को नष्ट कर देगी।

इसलिए तुम अपनी कुशलताएं लेकर मत आओ। जिन्हें मेरे उपकरण बनना हो, वे अपना सारा अनुभव, सारी कुशलता छोड़ दें। उन्हें बिलकुल दिखायी पड़ता हो कि यह ठीक है, यही किया जाना चाहिए, तो भी अगर मैं कहूं तो न करें। क्योंकि मुझे कुछ और दिखायी पड़ता है, जो तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता। तुम्हें संसार का अनुभव है। मुझे संसार से पार का अनुभव है। तुम्हें इस दुनिया का अनुभव है, मुझे उस दुनिया का अनुभव है। मुझे उस दुनिया की तरफ तुम्हें ले चलना है। तुम्हारा अनुभव बाधा बन जाएगा।

तो अगर तुम चाहते हो कि मेरे विचार-प्रसार में सहयोगी बनो, तो मेरे अनुकूल बनना पड़ेगा। मेरे प्रतिकूल कोई उपाय नहीं है।

आखिरी प्रश्नः सोचता हूं संन्यास लूं, लेकिन निर्णय नहीं कर पाता हूं। आप ऐसा समझाएं कि इस बार बिना संन्यास लिये न जा सकूं। आपका आकर्षण प्रबल है और बार-बार यहां खिंचा चला आता हूं। पर फिर बुद्धि सक्रिय हो जाती है और वैसा का वैसा लौट जाता हूं।

सोचने से किसी ने कभी संन्यास लिया है? सोचनेवाले संन्यास कैसे ले सकते हैं? संन्यास और सोचने में विरोध है। संन्यास सोचने की निष्पत्ति नहीं है। संन्यास सोचने का त्याग है। वही अर्थ है संन्यास शब्द काः सम्यक न्यास।

पुराना संन्यास कहता थाः संसार को छोड़ना संन्यास है। मैं तुमसे कहता हूंः विचार को छोड़ना संन्यास है; क्योंकि विचार ही संसार है। तुम सोच-सोच कर तो कभी न ले पाओगे। यह तो पागलों का काम है। इसमें सोचना इत्यादि कहां? सोच-सोच कर तो तुम बार-बार आओगे और लौट जाओगे।

राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

बीत गया युग एक तुम्हारे
मंदिर की ड्योढ़ी पर गाते,
पर अंतर के तार बहुत-से
शब्द नहीं झंकृत कर पाते,
एक गीत का अंत
दूसरे का आरंभ हुआ करता है,
राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।
भाषा के उपहार करेंगे
व्यक्त न मेरी आश-निराशा,
सोच बहुत दिन तक मैं बैठा
मन को मारे, मौन बना-सा,
लेकिन तब थी हालत मेरी
उस पगलाई-सी बदली की
बिन बरसे-बरसाए नभ में जो उमड़ी ही रह जाती है।
राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।
चुप न हुआ जाता है मुझसे
और न मुझसे गाया जाता,
धोखे में रखकर अपने को
और नहीं बहलाया जाता,
शूल निकलने-सा सुख होता
गान गुंजाता जब अंबर में,
लेकिन दिल के अंदर कोई फांस गड़ी ही रह जाती है।
राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

तुम्हारी बीन चढ़ी रह जाएगी, राग बार-बार उतर जाएगा। विचार से राग चढ़ता ही नहीं। विचार से संगीत कहां? विचार से सत्य का अनुभव कहां?

और तुम पूछते हो कि 'सोचता हूं संन्यास लूं!' अब सोचना छोड़ो। संन्यास लो या न लो, मगर सोचना छोड़ो। सोचना छूटते ही संन्यास घटित होगा। और तब संन्यास की महिमा अपार है। अगर तुमने सोच-सोच कर किसी दिन ले भी लिया तो वह दो कौड़ी का संन्यास होगा। सोच-सोच कर किसी दिन ले भी लिया तो वह दो कौड़ी का संन्यास होगा। सोच-सोच कर लिये गये संन्यास का कोई मूल्य हो सकता है? उससे क्रांति नहीं होगी। तुम वैसे के वैसे रह जाओगे। फिर तुम सोचने लगोगेः क्या फायदा हुआ? संन्यास ले लिया, कुछ तो नहीं हुआ। फिर तुम नाराज होओगे कि संन्यास से कुछ सार नहीं है, क्योंकि मैंने संन्यास ले लिया और कुछ नहीं हुआ।

संन्यास में सार नहीं है। संन्यास से गहरा सार विचार के त्याग में है। जो विचार छोड़कर संन्यास लेता है, जो प्रेम में पागल होकर संन्यास लेता है--तो सार है।

'सोचता हूं संन्यास लूं।' सोचो मत। संन्यास मैं तुम्हें दूंगा। संन्यास होगा। मगर तुम सोचो मत। और रही बात, तुम कहते होः 'आप ऐसा समझाएं कि इस बार बिना संन्यास लिए न जा सकूं। मैं तुम्हें समझाऊंगा नहीं। संन्यास लेने के लिए मैं समझाता नहीं। और हजार बातें समझाता हूं, संन्यास लेने के लिए नहीं समझाता। उन सारी बातों के सार-रूप में संन्यास की छलांग घटनी चाहिए। और सब समझाता हूं, सिर्फ संन्यास को छोड़ देता हूं। क्योंकि अगर संन्यास को मैंने समझाया, तो मैं वकालत कर सकता हूं संन्यास की, उसमें कुछ अड़चन नहीं है। वकालत करनी मुझे आती है। असल में, मेरे परिवार के लोग बचपन से ही मुझे वकील बनाना चाहते थे, क्योंकि मैं विवादी बचपन से ही था। सारा गांव मुझसे परेशान था— विवाद के कारण। गांव में कोई सभा नहीं हो पाती थी जहां मैं खड़ा न हो जाऊं, और जहां विवाद खड़ा न कर दूं। गांव में कोई महात्मा आता था, तो महात्मा को लानेवाले मेरे पिता को आकर समझा जाते थे—इसको मत छोड़ देना आज घर से! नहीं तो वहां उपद्रव हो जाता है! मुझे भी रिश्वत दे देते थे, मिठाई दे देते थे;...आज महात्मा जी आए हैं, तुम उस तरफ मत आना और किसी को लेकर मत आना। क्योंकि मैं अकेला नहीं जाता था, दस-पांच को साथ ले जाता था। मैं उपद्रव करता अगर, विवाद खड़ा करता, तो दस-पांच ताली बजानेवाले भी चाहिए न! और फिर जब दस-पांच ताली बजाते हों, तो वे जो और लोग बैठे हैं, वे भी बजाने लगते कि भई, कुछ, जब इतने लोग साथ है तो कुछ मामला होगा।

वकालत मुझे आती है। तर्क भी मुझे आता है। मैं तर्क का ही अध्यापक था। इसलिए उसमें कुछ बहुत अड़चन नहीं है। तुम्हें समझा दे सकता हूं। समझा-बुझाकर तुम्हें संन्यास पकड़ा भी दे सकता हूं। मगर वह दो कौड़ी का होगा। उसका कोई मूल्य नहीं है। यह तो प्रेम की छलांग है। यह तो पागलपन की अभिव्यक्ति है।

कहते होः 'आपका आकर्षण प्रबल है और बार-बार यहां खिंचा चला आता हूं।' तो उसी आकर्षण को और प्रबल होने दो। यहां खिंचे चले आते हो, धीरे-धीरे और पास आओगे, और पास आओगे। बैठते-बैठते मेरे पास, यह शराब रंग लाएगी। यह मधुशाला है, यहां इतने पियक्कड़ बैठे हैं। तुम कब तक, तुम कब तक ऐसे बिना पीए चले जाओगे? यहां इतनी ढल रही है, लुंढ़ रही है! इधर लोग मस्त हो रहे हैं! तुम कब तक ऐसे सिकुड़े-सिकुड़े बैठे रहोगे? एक न एक दिन तुम प्याली हाथ में ले लोगो। झिझकोगे, सोचोगे, विचारोगे—मगर पी जाओगे।

संन्यास शराब जैसा है। फिर लग गयी लत तो लग गयी। संक्रामक है। इन गैरिक व्यक्तियों के बीच बैठते रहो, उठते रहो, आते रहो, जाते रहो। जल्दी कुछ भी नहीं है। पकने दो।

यह घटना ऐसी घटनी चाहिए जैसा प्रेम में घटती है। देखा एक स्त्री को—पहली नजर का प्रेम कहते हैं! देखा कि बस हो गया! देखा एक पुरुष को कि हो गया! पूछा नहीं नाम, पूछा नहीं पता, पूछा नहीं गांव, पूछा नहीं ठांव—बस कुछ हो गया!

ऐसी ही कुछ बात मेरे-तुम्हारे बीच हो तो गयी है—नहीं तो खिंचे कैसे चले आते? मगर ज्यादा बुद्धिमान मालूम होते हो। आते हो, बुद्धि की आड़ लेकर आते हो। बैठते भी होओगे—दूर-दूर, वहां जहां मुझे दिखायी न पड़ो। अब मैं तुम को देख रहा हूं, कहां बैठे हो? ऐसे बच न सकोगे। अब नाम तुम्हारा नहीं लूंगा, नहीं तो ये लोग बहुत हंसेंगे और तुम्हें पकड़ेंगे। हालांकि मैं जहां देख रहा हूं, वे लोग भी देख लेंगे कि कौन है।

धार थी तुम में कि उसको आंकते ही, हो गया बलिहार था मैं
शौक खतरों-जोखिमों से खेल करने
का नहीं मेरा नया था,
किंतु चुंबक से खिंचा जैसा तुम्हारे
पास क्यों आ गया था,
कुछ समझने, खयाल करने का कहां था
तब समय, अब सोचता हूं,

धार थी तुममें कि उसको आंकते ही हो गया बलिहार था मैं
आग उसकी है, उसे जो बांह में ले
दाह झेले, गीत गाए,
धार उसकी, जो बुझाए प्यास उसकी
रक्त से औ' मुस्कराए
वक्त बातों में नहीं आता, परीक्षा
सख्त लेता हर किसी की,
और उसके वास्ते तो जिंदगी में सर्वदा तैयार था मैं
धार थी तुममें कि उसको आंकते ही, हो गया बलिहार था मैं।

धार तो है यहां। बिजली-सा यह जो मैं क्रौंध रहा हूं तुम्हारे सामने, तुम कब तक आंखें चुराओगे? तुम कब तक भागे-भागे रहोगे? कब तक आंख बंद रखोगे?

आते रहो, जाते रहो! यह घटना घटनेवाली है। इसकी मैं भविष्यवाणी किये देता हूं। संन्यास मेरी तरफ से तो हो ही गया है, इसीलिए तो तुम आते हो। मैंने तुम्हें चुन ही लिया है, इसीलिए तो तुम आते हो। तुम्हारी तरफ से देर हो रही है, मेरी तरफ से देर नहीं है।

आज इतना ही।

उत्क्रांतिस्मृतिवाक्यशेषाच्च ।।८१।।
महापातकिनां त्वातौं ।।८२।।
सैकान्तभावो गीतार्थप्रत्यभिज्ञानात् ।।८३।।
परां कृत्वैव सर्वेषां तथाह्याह ।।८४।।
भजनीयेनाद्वितीयमिदं कृत्स्नस्य तत्स्वरूपत्वात् ।।८५।।

विकास, क्रांति और उत्क्रांति

तेरहवां प्रवचन

जुस्तजू-ए-राह बाकी है न मंजिल की तलाश
मुझको खुद है अब मेरे खोए हुए दिल की तलाश
रोक ऐ हमदम! न मेरी अश्क-अफशानी को तू
महफिले-हस्ती को है इक शाम-ए-महफिल की तलाश
अब नजर आए जहां अपने सिवा कोई न हो
दिल को राहे-शौक में है ऐसी मंजिल की तलाश
दीदए-जाहिर से कब तक देखिए अंदाजे-दोस्त
कीजिए ऐ 'शमए'! अब इक दीदए-दिल की तलाश

एक तो आंख है हमारे पास जो बाहर देखती है। और एक आंख हमारे पास और भी है जो भीतर देखती है। उस भीतर की आंख का हमें कुछ अनुमान नहीं है। उस भीतर की आंख को खोज लेने का नाम ही धर्म है। और जो आंख भीतर की है वह भीतर ही नहीं देखती है, वह बाहर के पीछे छिपा जो भीतर है उसे भी देखती है।

संसार और परमात्मा दो नहीं हैं। संसार का अर्थ है, परमात्मा अभी केवल बाहर की आंख से देखा गया है। परमात्मा अभी बाहर-बाहर से देखा गया है, तो संसार। जिस दिन संसार को हम भीतर की आंख से देख लेते हैं उसी दिन संसार विलीन हो जाता है, परमात्मा ही शेष रह जाता है। परमात्मा संसार की अंतरंग भूमिका है। परमात्मा संसार की आत्मा है। परमात्मा और संसार दो नहीं हैं, हमारे देखने के दो ढंग हैं।

दीदए-जाहिर से कब तक देखिए अंदाजे-दोस्त
बाहर की आंख से कब तब उस प्यारे को देखने की कोशिश करोगे?
दीदए-जाहिर से कब तक देखिए अंदाजे-दोस्त
कीजिए ऐ 'शमए'! अब इस इक दीदए-दिल की तलाश
अब एक ऐसी आंख चाहिए जो दिल में ऊगे। एक हृदय की आंख चाहिए। उस हृदय की आंख चाहिए। उस हृदय की आंख से ही परमात्मा देखा जा सकता है। लोग पूछते हैं—परमात्मा कहां है? उन्हें पूछना चाहिए—मेरा हृदय कहां है? मेरा हृदय कैसे खुले? उन्हें पूछना चाहिए कि मैं भीतर देखने में समर्थ कैसे हो पाऊं? जो अपने भीतर देख लेगा वह समस्त के भीतर भी देख लेता है, ध्यान रखना। बाहर से हम अपने को भी देखते हैं, संसार को भी देखते हैं। न हमारी अपने से सीधी पहचान है, न संसार से सीधी पहचान है। भक्ति उस भीतर की आंख को खोलने का सुगमतम उपाय है।

योग भी खोलता है उस आंख को, पर लंबी प्रक्रियाएं हैं। बड़ा यतन है, बड़ी चेष्टा है। जबर्दस्ती है। भक्ति भी खोलती है उस आंख को; पर न चेष्टा है, न जबर्दस्ती है। यतन नहीं है, भजन है। भक्त सिर्फ परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ देता है—खोलो मेरी भीतर की आंख! फिर जिसने जीवन दिया है, जिससे अस्तित्व उमगा है, उससे सब हो सकता है—सब असंभव संभव है।

तुम इस छोटी-सी बात को ठीक समझ लेना।

जिस ऊर्जा से सारा जगत चलता है, जिस ऊर्जा से चांद-तारे बनते हैं, जिस ऊर्जा से तुम जन्में हो, वृक्ष जन्में हैं, पहाड़-पर्वत जन्मे हैं, उस ऊर्जा से तुम्हारी भीतर की आंख न खुल सकेगी? अगर तुम संसार को भी ठीक से देखो, तो एक बात साफ हो जाती है—इतना विराट विस्तार इतनी सुगमता से चल रहा है, तो क्या इतनी विराट ऊर्जा के बस में यह बात न होगी कि तुम्हारे हृदय की कली खुल जाए? सूरज निकलता है करोड़ों-करोड़ों कलियां खिल जाती हैं।

भक्ति का यही भरोसा है, कि हमारे किये नहीं होता है, हमारे किये बाधा पड़ती है, हमारे करने से ही बाधा पड़ जाती है। सहजता से होता है। उस पर भरोसे से होता है। श्रद्धा से होता है।

आज के सूत्र बड़े बहुमूल्य हैं। पहला सूत्र—

'उत्क्रांतिः स्मृतिवाक्यशेषात् च।।

क्योंकि श्री भगवान ने कहा है कि उनके भक्तगण सब कर्मों का उल्लंघन करके एक ही बार में सिद्धिलाभ करने में समर्थ होते हैं।'

एक-एक शब्द समझने जैसा है।

उत्क्रांति स्मृतिवाक्यशेषात् च।।

स्मरण करो उन भगवान के वचनों का। वे वचन बिखरे पड़े हैं। वेदों में, उपनिषदों में, गीता में, कुरान में, बाइबिल में, सारे जगत के शास्त्रों में वे वचन बिखरे पड़े हैं। भगवान बहुत बार बोला है। जब भी किसी भक्त ने पुकारा है तो भगवान बोला है। गीता बोली गयी अर्जुन की प्यास के कारण। न अर्जुन प्यासा होता, न गीता का जन्म होता। जब भी कोई भक्त प्यासा हुआ है, तो उसका मेघ बरसा है। खूब बरसा है। वचन बिखरे पड़े हैं। मनुष्यजाति के चेतना के इतिहास में जगह-जगह मील के पत्थर हैं। भगवान बहुत बार बोला है। तुम भी पुकारोगे, तुमसे भी बोलेगा। तुमसे नहीं बोला है तो सिर्फ इसीलिए कि तुमने पुकारा ही नहीं। तुमने प्यास ही जाहिर नहीं की। तुमने प्रार्थना निवेदन नहीं की। तुमने पाती ही नहीं लिखी। और तुम नाहक शिकायत कर रहे हो कि मुझसे कभी नहीं बोला। मुझे कैसे भरोसा आए? बोला होगा अर्जुन से, अर्जुन जाने, मुझे कैसे भरोसा आए? अर्जुन की भांति तुमने पुकारा है, निवेदन किया है? तुम निवेदन करोगे और तत्क्षण तुम पाओगे—उतरने लगे उसके वचन, किरणें आने लगीं, कली खिलने लगी।

उत्क्रांतिःस्मृतिवाक्यशेषात् च।।

यह उत्क्रांति शब्द भी समझ लेने जैसा है। तीन शब्द समझोगे तो उत्क्रांति शब्द समझ में आएगा।

एक शब्द है, विकास। विकास का अर्थ होता है, ओ अपने-आप हो रहा है। करना नहीं पड़ता। बच्चा जवान हो जाता है। जवान बूढ़ा हो जाता है। बीज पौधा हो जाता है, पौधा वृक्ष बन जाता है, वृक्ष में फूल आ जाते हैं। यह विकास। इसे कोई कर नहीं रहा है। यह हो रहा है। विकास को ठीक से समझो। भक्त की आस्था इसी विकास में है, इसी विकास के परम रूप में है। अब वृक्ष को खींच-खींच कर थोड़े ही बीज से निकालना पड़ता है। और निकालोगे तो क्या निकाल पाओगे! बीज का नाश हो जाएगा। कली को पकड़कर खोलना थोड़े ही पड़ता! खोलोगे, तुम्हारे खोलने में ही मुर्झा जाएगी, कभी फूल न बन पाएगी। बच्चे को खींच-खींच कर थोड़े ही जवान करना पड़ता है। सौभाग्य है कि लोग खींच-खींच कर बच्चों को जवान नहीं करते। नहीं तो बच्चे कभी के समाप्त हो गये होते। सब अपने से हो रहा है। इतना विराट अपने से हो रहा है! इस अपने से होने पर भरोसा करो।

विकास का अर्थ होता है, जो अपने से हो रहा है। क्रांति का अर्थ होता है, जो करनी पड़ती है। जोर-जबर्दस्ती, हिंसा। इसीलिए क्रांति में तो मौलिक रूप से हिंसा छिपी हुई है। अहिंसक क्रांति होती ही नहीं। क्रांति का अर्थ ही जोर-जबर्दस्ती है। फिर तुमने जोर-जबर्दस्ती कैसे की, इससे फर्क नहीं पड़ता। किसी की छाती पर छुरा रखकर कर दी, कि उपवास रखकर कर दी, मगर जोर-जबर्दस्ती है। अपने को मारने की धमकी दी, कि दूसरे को मारने की धमकी दी, इससे भेद नहीं पड़ता। क्रांति का अर्थ ही होता है—तुमने भरोसा खो दिया विकास पर, तुम जल्दबाजी में पड़े गये। क्रांति में अश्रद्धा है। इसलिए यह आकस्मिक नहीं है कि क्रांतिकारी अक्सर नास्तिक होते हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि क्रांतिकारी अधार्मिक हो जाते हैं। यह आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे तारतम्य है। क्रांति का अर्थ ही होता है, किसी व्यक्ति ने अब भरोसा खो दिया विकास पर। अब वह कहता है, हमारे बिना किये नहीं होगा। कुछ करेंगे तो होगा। ऐसे तो चलता ही रहा है, कभी कुछ नहीं होता। क्रांति का अर्थ होता है—जोर-जबर्दस्ती से लाया गया उलट-फेर। उसमें खून के धब्बे तो रहते ही हैं। दाग तो छूट जाते हैं जो फिर मिटाए नहीं मिटते।

उत्क्रांति का क्या अर्थ है?

उत्क्रांति बड़ा अनूठा शब्द है। उत्क्रांति में कुछ तो क्रांति का हिस्सा है—इसलिए उसको उत्क्रांति कहते हैं—और कुछ विकास का हिस्सा है इसलिए उसको क्रांति मात्र नहीं कहते, उत्क्रांति कहते हैं। विकास अपने से हो रहा है। बड़ी धीमी आहिस्ता गति है। तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता। तुम सोते रहो, बैठे रहो, तुम जवान होते रहोगे। तुम सोते रहो, बैठे रहो, तुम बूढ़े होते रहोगे। कुछ करो न करो, बुढ़ापा आता रहेगा। अपने से हो रहा है। उसके विपरीत करना कुछ संभव नहीं है। जल्दबाजी भी क्या करोगे, जल्दबाजी भी कुछ हो नहीं सकती। अवश हो। तुम्हारी प्यास की भी जरूरत नहीं है, तुम्हारी प्रार्थना की भी जरूर नहीं है, तो विकास।

और क्रांति का अर्थ है—तुम्हारे पूरे अहंकार की जरूरत है। तुम अपने अहंकार के हाथ में सब ले लो, सारी व्यवस्था ले लो, जगत के नियम अपने हाथ में ले लो, तोड़-मरोड़ करो, जबर्दस्ती करो, अपनी मंशा पूरी करने की चेष्टा करो।

उत्क्रांति का अर्थ है, इतना तुम करो—प्रार्थना, प्यास—और शेष परमात्मा को करने दो। प्रार्थना तुम्हें करनी होगी, इसलिए थोड़ी क्रांति उसमें है। क्योंकि इतनी तो तुम्हें चेष्टा करनी होगी—प्रार्थना की, प्यास की, पुकार की। लेकिन फिर शेष अपने-आप होता है; बाकी सब विकास है।

इसलिए उत्क्रांति बड़ा अदभुत शब्द है। उसमें विकास और क्रांति का समन्वय है। उसमें जो भी शुभ है विकास में, वह सब ले लिया गया है; और जो अशुभ है वह छोड़ दिया गया है। क्या शुभ है विकास में? शुभ है कि सब अपने से होता है। अशुभ है कि लोग काहिल और सुस्त हो जाते हैं। मुर्दा हो जाते हैं। जो क्रांति में शुभ है

वह भी ले लिया है, और जो अशुभ है वह छोड़ दिया है। शुभ क्या है क्रांति में? कि लोग मुर्दा नहीं होते। सजग होते हैं, सचेत होते हैं। अशुभ क्या है? हिंसक हो जाते हैं, अहंकारी हो जाते हैं। उत्क्रांति ने दोनों में जो सुगंध थी इकट्ठी कर ली है, दोनों में जो दुग□ध थी वह छोड़ दी है। प्रार्थना तुम करना, भजन तुम करना, कीर्तन तुम करना, पुकारना तुम, आंसू तुम बहाना, मगर शेष उसे करने देना। बस पुकार तुम्हारी तरफ से पूरी हो जाए, फिर सब कुछ-प्रसाद उसकी तरफ से बरसेगा। उत्क्रांति में मनुष्य और परमात्मा का मिलन है। विकास में अकेला परमात्मा है, क्रांति में अकेला मनुष्य है, उत्क्रांति में मनुष्य और परमात्मा का मिलन है। संघ साथ हो लिए, हाथ में हाथ हो गया। उत्क्रांति बड़ा प्यारा शब्द है। शांडिल्य ने इस शब्द का उपयोग करके गजब किया। शांडिल्य कहते हैं—

उत्क्रांति समृतिवाक्यशेषात् च।।

याद करो परमात्मा ने कितनी बार कहा है—उत्क्रांति से होगा। 'श्री भगवान ने कहा है, उनके भक्तगण सब कर्मो का उल्लंघन कर एक बार ही सिद्धिलाभ करने में समर्थ होते हैं।' सब कर्मों का उल्लंघन कर! यह बात गणित को पकड़ में नहीं आती। सो-विचारशील आदमी इससे बड़ी बेचैनी में पड़ जाता है। सोच-विचारशील आदमी सोचता है कि जितने हमने पापकर्म किये हैं उतने हमें पुण्यकर्म करने पड़ेंगे, तब तराजू बराबर, पलड़े दोनों एक वजन के होंगे। बुरा किया, अच्छा करना होगा चोट किसी को पहुंचायी तो सेवा करनी होगी। किसी को लूट लिया तो दान देना होगा। यह बात बिलकुल गणित की है। यह बात बिलकुल न्याययुक्त मालूम होती है कि बुरे को साफ करना होगा। फिर बुरा करने में जनम-जनम लगे हैं, तो साफ करने में भी जनम-जनम लगेंगे। उत्क्रांति कैसे हो जाएगी! एक क्षण में कैसे हो जाएगा? तत्क्षण कैसे हो जाएगा? लेकिन भक्त जानता है कि तत्क्षण भी होता है। तत्क्षण होने की कला है, कीमिया है।

क्या कीमिया है?

पहली बात, तुमसे बुरा कभी हुआ है, वह इसीलिए हुआ है कि तुम सजग न थे, सचेत न थे तुमसे बुरा अगर कभी हुआ है, तो तुमने जानकर बुरा नहीं किया है। तुम ऐसा आदमी नहीं खोज सकोगे जो जानकर बुरा करता है। बुरे से बुरा करनेवाला भी अनजाने करता है। या सोच कर करता है कि ठीक ही कर रहा हूं। या सोचता है कि इससे कुछ न कुछ ठीक होगा। और बुरा से बुरा आदमी भी पछताता है कि ऐसा मैंने क्यों किया? एकांत क्षण में, अपनी निर्जनता में, अपने मौन में सोच-विचार करता है, प्रायश्चित करता है। नहीं करना था। हो गया। अब न करूंगा। अब दुबारा नहीं होने दूंगा।

तुम बुरे मन की स्थिति समझो।

बुरा मन बुरा है ऐसा सोचकर नहीं करता, पहली बात। अगर लगता भी है कि बुरा होगा तो यह अपने को समझा लेता है कि इससे कुछ भला होने वाला है, इसलिए कर रहा हूं। करने के बाद कभी भी इसको अंगीकार नहीं कर पाता कि मैंने क्यों किया। प्रसन्नता से, प्रफुल्लता से स्वीकार नहीं कर पाता। पछताता है। चाहे औरों के सामने न भी कहे, अकड़ और अहंकार की वजह से रक्षा भी करे, लेकिन एकांत में जानता है कि भूल हुई है और नहीं होनी थी। अपने ही आंखों के सामने पतित हो जाता है। अपने ही आंखों में श्रद्धा खो जाती है, अपने ही प्रति। और सोचता है कि अब नहीं करूंगा, अब कभी नहीं करूंगा। सबके जीवन में ऐसी घटना घटती है। छोटे पाप हों कि बड़े पाप हों।

भक्ति की उदघोषणा यह है कि आदमी से पाप इसलिए हो रहा है—बहुत पाप हों कि कम, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता—हो इसलिए रहा है कि आदमी अभी सचेत नहीं है। और उसके सचेत होने में बाधा क्या है? उसके सचेत होने में अहंकार बाधा है। मैं हूं, यही उसकी मूर्च्छा है। भक्ति का शास्त्र एक ही मूर्च्छा मानता है—'मैं'। और जब तक 'मैं' है तब तक बुरा होता ही रहेगा। तुम चाहे पुण्य करो तो भी पाप होगा। तुम भला करो तो भी बुरा होगा। जिस दिन 'मैं' चला जाएगा उस दिन तुम बुरा करना भी चाहोगे तो नहीं कर पाओगे। क्योंकि 'मैं' के

बिना बुरा नहीं होता। और जहां 'मैं' जाता है, वहां परमात्मा तुम्हारे भीतर से सक्रिय हो जाता हैं। 'मैं' के कारण परमात्मा सक्रिय नहीं हो पाता है। इसलिए सवाल यह नहीं है कि हम एक-एक कर्म को शुद्ध करें, सवाल यह है कि कर्मों का जो मूल है, अहंकार उसको समर्पित कर दें। जड़ को काट दें। फिर पत्ते अपने-अपने ऊगने बंद हो जाते हैं।

आमतौर से लोग पत्ते काटते रहते हैं और वृक्ष बढ़ता रहता है। जड़ को पानी सींचते रहते हैं। तुम्हें ये बात लगेगी कठिन, लेकिन तुम अगर परीक्षा करोगे चारों तरफ, अवलोकन करोगे—अपना, औरों का—तो बात साफ हो जाएगी। लोग जड़ को तो पानी देते रहते हैं और पत्ते काटते रहते हैं। एक आदमी सोचता है कि मंदिर बनवा दूं—पुण्य का कृत्य! मंदिर तो बनवा देता है, लेकिन मंदिर बनाकर अकड़ से भर जाता है कि मैंने मंदिर बनवाया। भगवान का मंदिर। आदमी कैसे बनाएगा? और आदमी का बनाया हुआ मंदिर भगवान का मंदिर कैसा होगा? कम से कम मंदिर बनाते वक्त तो यह स्मरण रखना चाहिए था कि वही बना रहा है; शायद 'मैं' उपकरण हूं—निमित्त मात्र। उसके अपने हाथ नहीं हैं, मेरे हाथों का उपयोग कर रहा है। मेरे सहारे बना रहा है। मेरे द्वारा बना रहा है। मुझसे उसकी ऊर्जा बह रही है। लेकिन मैं बना रहा हूं! मंदिरों पर भी पत्थर लग जाते हैं कि बनानेवाला कौन है। 'दानवीर, महादानवीर'। अकड़ आ गयी। अहंकार आ गया। तो अहंकार तो जड़ है, उसको तो पानी सींच रहे हो, और सोचते हो कि तुम पुण्य कर रहे हो?

बोधिधर्म चीन गया। सम्राट ने पूछा चीन के उससे कि मैंने बहुत बुद्ध के मंदिर बनवाए, और हजारों प्रतिमाएं प्रतिष्ठित करवायी हैं, और न-मालूम कितने विहार और आश्रम बनवाए हैं, और लाखों भिक्षु राजमहल से रोज भोजन पाते हैं, इस सबका पुण्य क्या है? बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं। और अगर जल्दी न चेते तो महानर्क में पड़ोगे? सम्राट वू तो नाराज हो गया। स्वाभाविक। उसके पहले और भी बौद्ध भिक्षु आए थे, बड़े बौद्ध भिक्षु आए थे, सबने कहा था—आप धन्यभागी, आप महापुण्यात्मा, आपने इतना अपूर्व किया है कि कोई सम्राट अब तक नहीं कर पाया। सम्राट वू ने चीन को बौद्ध बनाया। तो काम तो उसने बहुत बड़ा किया था। इस देश से बौद्ध धर्म उखड़ गया था, चीन में जमा दिया उसको। करोड़ों लोग बौद्ध हुए सम्राट वू के कारण। तो स्वभावतः बौद्ध भिक्षु उसके गुणगान में स्तुतियां लिखते थे, पत्थर खोदे गये थे, तामपत्र पर उसका नाम लिखा गया था, पहाड़ों पर उसकी स्तुति गायी गयी थी। फिर बोधिधर्म आया।

बोधिधर्म अदभुत प्रज्ञापुरुष था। बुद्ध की प्रतिभा का पुरुष था। बाकी जो आए थे साधु-संन्यासी थे, बोधिधर्म ज्ञानी था। अनुभव से उपलब्ध द्रष्टा था। भगवत्ता को उपलब्ध था। सम्राट वू ने सोचा था कि बोधिधर्म भी मेरी प्रशंसा करेगा। लेकिन बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं पुण्य; और अगर जल्दी यह सब भूल न गये तो महानर्क में पड़ोगे। सुनकर चोट लगती है लेकिन बोधिधर्म क्या कह रहा है? बोधिधर्म यही कह रहा है, तुमने जो सब किया सो ठीक, मगर 'मैंने' किया है, ये अकड़ को अब पानी मत दो, नहीं तो नर्क का रास्ता तय कर रहे हो। अच्छा करके नर्क जाओगे।

कर्ता नर्क जाता है। न तो अच्छा नर्क ले जाता, न बुरा, कर्ता का भाव नर्क ले जाता है। भक्ति का शास्त्र कहता है—सिर्फ कर्ता भाव चला जाए। वही कृष्ण ने अर्जुन से गीता में कहा है, कि तू निमित्तमात्र हो जा। यह गांडीव तू उठा लेकिन उठाने दे उसे; युद्ध में तू लड़ लेकिन लड़ने दे उसे; तू बीच से हट जा; वह तेरा जो काम लेना चाहे ले लेने दे, तू निमित्त मात्र है, और इस चिंता में भी मत पड़ कि तू लोगों को मार रहा है। तू क्या मारेगा? जिसे उसे मारना है, वह मार रहा है; जिसे मारना है, वह मार ही चुका है। मैं तुमसे कहता हूं अर्जुन, कि मैं देखता हूं यहां अनेक मुर्दे खड़े हैं, जिनको सिर्फ धक्के की जरूरत है, वे गिर जाएंगे। धक्का कोई और दे देगा तू न देगा तो। इसलिए तू चिंता में मत पड़। तू निश्चिंत हो जा। हे कौंतेय, तू निश्चिंत होकर युद्ध में उतर जा। न कोई पाप है, न कोई पुण्य है। एक ही पाप है कि मैं करनेवाला हूं, और एक ही पुण्य है कि परमात्मा करनेवाला है।

इसलिए उत्क्रांति संभव है। बस इतनी ही बात बदल जानी चाहिए। और यही कठिन मालूम पड़ता है। अच्छे काम करने को हम राजी हैं, लेकिन यह अहंकार छोड़ने को हम राजी नहीं हैं।

'श्री भगवान ने कहा है कि उनके भक्तगण सब कर्मों का उल्लंघन कर के एक ही बार में सिद्धिलाभ करने में समर्थ होते हैं'।

'है कौंतेय—कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—जो अनन्यचित्त होकर आराधना करते हैं, वे यदि अत्यंत दुराचारी भी हों तो भी उन्हें साधु जानना, क्योंकि पापीजन भी यदि मेरी भक्ति करें तो शीघ्र ही शांति की उपलब्धि कर लेते हैं। भगवान की कृपा से भक्तगण सब अवस्था में कल्याण को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई भी संदेह नहीं है।' जब पहली बार इस तरह के वचनों का पश्चिम की भाषाओं में अनुवाद हुआ, तो विद्वज्जन चौंक गये थे। कैसे वचन हैं? हे कौंतेय! जो अनन्यचित्त होकर मेरी आराधना करते हैं वे यदि अत्यंत दुराचारी भी हों तो भी उन्हें साधु जानना। ये कैसे वचन हैं! जिन्होंने इनके अनुवाद किये थे उनको भरोसा नहीं होता था कि वह अनुवाद ठीक कर रहे हैं; क्योंकि धर्मशास्त्र ऐसा कहेगा! उन्होंने तो मूसा कि दस आज्ञाएं पढ़ी थीं। ऐसा मत करना ऐसा मत करना, ऐसा मत करना। ऐसा करना, ऐसा करना। उन्होंने तो करना और न करना ही सुना था। उन्हें इस अपूर्व बात का कुछ पता ही न था कि जड़ भी काटी जा सकती है। करना-न करना तो पत्तों की बातें हैं। जड़ काटी जा सकती है। जड़ कैसे कटती है? अनन्यचित्त होकर। जो मेरे साथ एक भाव हो जाता है, अनन्यचित्त हो जाता है कृष्ण कहते हैं। जो अपनी दूरी समाप्त कर देता है जो मेरे और अपने बीच किसी तरह का व्यवधान नहीं रखता। जो सब भांति मेरी तरंग में तरंग बन जाता है। फिर वह पापी भी हो तो उसको साधु जानना।

इससे उलटा भी सच है।

जो मेरे साथ अनन्यचित्त न हो—यह गीता में कहा नहीं है, लेकिन मैं तुमसे कहता हूं—वह अगर पुण्यात्मा भी हो तो उसे साधु मत जानना। वह तो सीधा तर्क है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क्यों साधु मत जानना? क्योंकि जहां अहंकार है, वहां साधुता नहीं है। साधुता का जन्म ही निर-अहंकार-भाव में होता है। वह निर-अहंकारिता की सुवास है। वह निर-अहंकार का फूल जब खिलता है तो जो सुवास उठती है, उसीका नाम साधुता है।

अनन्यभाव बहुमूल्य शब्द है। अन्य नहीं हो तुम, सो अनन्य। अलग नहीं हो तुम, भिन नहीं हो तुम—अभिन्न। हम हैं ही नहीं भिन्न, हम सब संयुक्त हैं, एक ही प्राण हममें प्रवाहित है, हम एक ही धारा की तरंगें हैं, बस मान बैठे हैं कि हम अलग हैं, हर लहर सोच बैठी है कि हम अलग हैं, वहीं अड़चन हो गयी है। उस अलग होने के खयाल में ही तुम्हारे जीवन का सारा संकट है। जिस दिन तुम समझ लोगे कि अलग नहीं हो, उसी दिन सारे संकट विलीन हो जाएंगे। एक क्षण में विलीन हो जाएंगे, इसीलिए उत्क्रांति सब कर्मों का उल्लंघन कर एक ही बार में सिद्धिलाभ करने में समर्थ हो जाता है, भक्त।

आरजूएं एक ही मरकज पै रहकर मिट गयीं,

मैं जिसे आगाज समझा था वही अंजाम।

जिसे भक्त प्रारंभ समझता है, अंत में पाता है कि वही अंत है।

मैं जिसे आगाज समझा था वही अंजाम।

जिसे समझा था कि यात्रा की शुरुआत है...समर्पण मैं तुमसे कहता हूं यात्रा की शुरुआत है। लेकिन समर्पण ही यात्रा का अंत भी है। जब तक तुमने समर्पण नहीं किया है तब तक यात्रा की शुरुआत है, जिस दिन किया, उसी दिन यात्रा की पूर्णता हो गयी। फिर उसके पार जाने को बचा कौन? जानेवाला ही न बचा। यात्री ही खो गया तो यात्रा कैसे बचेगी? समर्पण का अर्थ होता है—यात्री समाप्त हो गया। यात्री ने अपने हथियार डाल दिये। अपने को डाल दिया।

थोड़ा सोचो, इस महिमापूर्ण भाव को थोड़ा विचारों, इसे थोड़ा भीतर गुनगुन होने दो—अगर तुम नहीं हो, कौन जाएगा? कहां जाएगा? फिर कैसी अतृप्ति? फिर कैसा पाना, कैसा खोना? कैसा निर्वाण, कैसा मोक्ष? किसका मोक्ष, किसका निर्वाण? फिर तुम इसी क्षण पहुंच गये। सब हो गया।

इस एक छोटे-से अहंकार को गिरा देने से सब हो जाता है। इस अहंकार के कारण तुम अन्य मालूम हो रहे हो परमात्मा से। अन्य होने के कारण तुम तड़प रहे हो, परेशान हो रहे हो। अन्य होने के कारण मछली सागर के बाहर पड़ गयी है। अनन्य हो जाओ, फिर सागर में डुबकी लगा लो, फिर कोई पीड़ा नहीं है। फिर कोई संताप नहीं, कोई चिंता नहीं। फिर तुम घर लौट आए। फिर यह अस्तित्व तुम्हारा शत्रु नहीं है। फिर यह अस्तित्व तुम्हारा मित्र है। पहले कदम पर मंजिल पूरी हो जाती है। और अगर पहले ही कदम पर मंजिल पूरी हो जाती है, तो ही समझना तुम भक्त हो। दूसरा कदम उठाने को बचे, तो उसका मतलब समर्पण अभी पूरा नहीं हुआ था। और समर्पण आधा-आधा होता ही नहीं। या तो होता है तो पूरा होता है, या नहीं होता है। ये समर्पण जैसी महत्वपूर्ण चीजें बांटी नहीं जा सकतीं, काटी नहीं जा सकती; कि थोड़ा-सा अभी किया, फिर थोड़ा-सा कल करेंगे, फिर थोड़ा-सा परसों करेंगे। बड़ी हिम्मत चाहिए एक कदम में छलांग लगा लेने की। बड़ा पागलपन चाहिए।

मुझसे पहले कोई शायद इतना दीवाना न था,
गौर से तकता है हर इक जर्रए-सेहरा मुझे।

और जब भक्त पहली छलांग लगाता है, तो सारी दुनिया उसे गौर से देखती है कि यह पागल हुआ! कहीं ऐसे होना है! धीरे-धीरे चलो। नियम पालन करो, व्रत साधो, मंदिर जाओ, पूजा करो, प्रार्थना करो। ऐसे कहीं होना है! मुझसे लोग कहते हैं कि आप हर किसी को संन्यास दे देते हैं! मैं कहता हूं 'हर किसी को'? यह बात ही अपमानजनक है। यहां किसी को भी 'हर किसी को' मत कहना। यहां परमात्मा के सिवाय कोई भी नहीं है। 'हर किसी को?' उनका मतलब, ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरों को। यहां ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा कोई भी नहीं है। हुआ भी नहीं कभी। हां, किसी ने अपने को खुद ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा मान लिया हो, यह उसकी भ्रांति है, मगर यहां कोई है नहीं। यहां उसके सिवाय कोई भी नहीं है। इसलिए किसी को भी संन्यास दे देता हूं। अनन्यभाव। अन्य तुम हो नहीं। परमात्मा से भिन्न तुम हो नहीं। किसी और पात्रता की जरूरत नहीं है...लोग मुझसे पूछते हैं—आप पात्रता नहीं पूछते?

एक पुराने ढब के संन्यासी कुछ दिन पहले आ गये थे, काफी उम्र है, कोई होंगे पैंसठ-सत्तर साल के, बीस साल से संन्यासी हैं, पूछते थे कि आप हर किसी को संन्यास दे देते हैं! पात्रता? मैंने उनसे पूछा, बीस साल के संन्यास के बाद भी अभी यह खयाल तुम्हें नहीं आया कि यहां सब एक ही परमात्मा का वास है? परमात्मा से पात्रता और क्या मांगनी है? रोज पढ़ते हो—तत्त्वमसि। तू वही है। वह तू ही है। रोज उपनिषद दोहराते हो। रोज गीता भी दोहराते हो। यह वचन भी कई बार पढ़ा होगा कि हे कौंतेय, जो अनन्यचित्त होकर मेरी आराधना करता है, वह दुराचारी भी हो तो भी साधु हो गया। नहीं कि नहीं पढ़ा होगा, बीस साल से संन्यासी हैं, गीता और उपनिषद और वेद ही पढ़ रहे हैं। उनके ज्ञाता हैं। लेकिन बात कहीं उतरती नहीं हृदय में, ऐसा मालूम होता है। पढ़ भी लेते, सुन भी लेते, कंठस्थ भी कर लेते—तोतों की तरह। बात कहीं भीतर उतरती नहीं, उसका जीवन में कोई प्रभाव नहीं दिखायी पड़ता।

अगर यह बात सच है कि हम सब एक ही परमात्मा के हिस्से हैं, तो फिर कौन पात्र, कौन अपात्र? फिर कौन रावण, कौन राम? फिर कौन बुरा, कौन भला? जो जागा, उसे न कोई बुरा है, न कोई भला है। हां, यह सब सोए के भेद हैं। सोए में एक आदमी सपना देख रहा है कि मैं साधु हो गया और एक आदमी सपना देख रहा है कि मैं चोर हो गया, मगर यह सब सोए के भेद हैं। जागकर दोनों पाएंगे—न तो कोई साधु था, न कोई चोर था। न किसी ने हत्या की थी और न किसी ने दान दिया था। जागकर पता चलेगा सब सपने थे।

इस जगत में लोग अलग-अलग तरह के सपने देख रहे हैं। अस्तित्व सबका एक है, सपने अलग-अलग हैं। अपने 'प्राइवेट' हैं। सत्ता सार्वलौकिक है, सार्वभौम है। इस भेद को खूब गहरे बैठे जाने दो। और अगर तुम सपने पर विचार करोगे तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि सपना बिलकुल निजी होता है, बहुत 'प्राइवेट' बात है। तुम किसी मित्र को भी निमंत्रण नहीं कर सकते अपने सपने में, इतना निजी है। तुम्हारे बिस्तर पर ही तुम्हारे साथ सोयी हो पत्नी, वह अपना सपना देखेगी, तुम अपना देखोगे, ऐसा नहीं है कि दोनों एक ही सपना देख रहे हैं। इतना निजी है। देह से देह छू रही है लेकिन मन अपने-अपने सपने देख रहे हैं। तुम लाख उपाय करो, किसी मित्र को कहो कि बहुत ऊंचा सपना देखा रात...।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र से बात कर रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि कल तो बड़ा मजा किया। सपने में पेरिस गया था। और पेरिस की रातें रंगीन रातें। और पेरिस के जुआघर और शराबघर! बड़ा मजा आया। मित्र ने कहा—यह कुछ भी नहीं। मैंने भी कल सपना देखा। हेमामालिनी को लेकर मैं कश्मीर चला गया। मुल्ला एकदम नाराज हो गया। मुल्ला ने कहा, तो फिर मुझे क्यों नहीं बुलाया? यह कैसी दोस्ती! उस मित्र ने कहा, बुलाया था, मैं तो तुम्हारे घर गया, लेकिन तुम्हारी पत्नी ने कहा कि मुल्ला तो पेरिस गया है। ये सपने में हो रही हैं बातें!

सपने में तुम किसी को सहयोगी नहीं कर सकते हो। न निमंत्रण कर सकते हो। सपना। बिलकुल निजी है। दूसरा तो क्या होगा सपने में, तुम स्वयं भी नहीं होते। अगर गौर से देखोगे तो सपने में तुम नहीं होते। सपना होता है, तुम कहां? सुबह तुम होते हो, तब सपना टूट जाता है। क्योंकि जागने में ही तुम हो सकते हो, सपने में तुम कैसे हो सकते हो? सपने में अगर तुम्हें याद भी आ जाए कि मैं कौन हूं, तो उसी वक्त सपना टूट जाएगा।

गुर्जिएफ अपने शिष्यों को कहता था, अगर तुम अपना नाम भी याद रख सको सपने में तो सपना टूट जाएगा। और तुम कोशिश करना, गुर्जिएफ का प्रयोग सफल प्रयोग है, छः महीने लगेंगे कम से कम। तुम अपना नाम ही याद रखने की कोशिश करना कि मेरा नाम अ, ब, स,—जो भी नाम हो—बस यह सपने में मुझे याद रहे, कि मेरा नाम रामदुलारे है, कि मेरा नाम कृष्णमुरारी है, याद रहे। रोज सोते वक्त यही खयाल करके सोना कि मेरा नाम कृष्णमुरारी, कृष्णमुरारी। सोचते रहना, सोचते रहना, मेरा नाम कृष्णमुरारी, भूलूं नहीं। तीन से लेकर छः महीने लग जाएंगे, एक रात यह घटना घट जाएगी कि तुम्हें ठीक बीच सपने में याद आ जाएगा—मेरा नाम कृष्णमुरारी उसी वक्त सपना विदा हो जाएगा। एक सेकेंड नहीं लगेगा, आंख खुल जाएगी। इतनी-सी कुंजी सपने को तोड़ देगी। तुम आए कि सपना टूट जाता है, दूसरे को बुलाना तो बहुत मुश्किल मामला है। सपना निजी है।

इस जगत में हमारे सपने भर अलग-अलग हैं, हमारी सत्ता अलग-अलग नहीं है। सपनों से जागकर जिसने सत्ता जानी है, उसके लिए न तो कोई बुरा है, न कोई भला है; न साधु, न असाधु; उसके लिए एक का ही विस्तार है, एक का ही नर्तन चल रहा है। वही वृक्ष में, वही पशुओं में, वही पक्षियों में, वही मनुष्यों में। अनेक-अनेक रूपों में उस एक की ही लीला है।

'महापातकिनां तुम आर्त्तौ।।

महापातकियों की भक्ति की आर्त भक्ति में समझना चाहिए। 'बड़े से बड़ा पापी भी भक्ति को उपलब्ध हो सकता है। भक्ति में कोई दरवाजों पर पात्रता पूछी नहीं जाती। भक्ति तो औषधि है, पात्रता क्या पूछनी है? अपात्र हो, इसीलिए भक्ति की जरूरत है। सब अंगीकार हैं। महापातकी भी। लेकिन महापातकी की भक्ति आर्त भक्ति होगी। आर्त भक्ति का अर्थ होता है, दुख से जन्मी, जीवन के कटु अनुभव से जन्मी, कांटों की पीड़ा से जन्मी। पाप का क्या अर्थ होता है? पाप का अर्थ होता है, दुख-स्वप्न। पाप का अर्थ होता है, ऐसा सपना तुम देख रहे हो जिसमें बड़ा दुख उठा रहे हो। है सपना। नर्क का सपना देख रहे हो।

अधिक लोग जीवन में दुख ही पा रहे हैं। वह उनका ही निर्मित दुख है। किसी आदमी के पास पांच हजार रुपये हैं, वह कहता है—दस हजार होने चाहिए जब तक दस हजार न हों, मैं सुखी नहीं हो सकता। अब यह शर्त उसने ही लगा दी अपने सुख पर। अब वह कहता है, मैं सुखी हो ही नहीं सकता जब तक दस हजार न हों। तुमने खयाल किया, लोगों ने सुख पर तो शर्त लगा दी है, दुख पर शर्त नहीं लगायी है। कोई नहीं कहता कि मैं तब तक दुखी न होऊंगा जब तक एक लाख रुपये न हों। तुमने सुना कभी किसी को कहते, कि जब तक एक लाख रुपये नहीं होंगे, मैं दुखी होने वाला नहीं! और ऐसे आदमी को तुम दुखी कर सकोगे? इतने हिम्मतवर आदमी को जो कहे कि एक लाख होंगे तभी दुखी होऊंगा। अभी क्या दुख? अभी हैसियत ही नहीं दुखी होने की।
नहीं लोग दुख पर शर्त नहीं लगाते, इसीलिए दुखी हैं। और सुख पर शर्त लगाते हैं, इसलिए सुखी नहीं हो पाते। खयाल करना, यह तुम्हारा ही आयोजन है। तुम कहते हो—यह स्त्री मिलेगी तो सुख होगा। छोड़ो इसको; कहो कि यह स्त्री जब तक नहीं मिलती जब तक दुखी क्यों हो? यह मिलेगी तो तभी दुखी होंगे जब तक यह स्त्री न मिले, यह कार न मिले, यह मकान न मिले, यह धन न मिले, यह पद न मिले, तब तक हम दुखी होनेवाले नहीं हैं। तब तक तो मौज कर लें। फिर तो यह सब मिलनेवाला है! कोशिश करोगे तो मिल ही जाएगा।

लेकिन जिस आदमी ने दुख पर शर्तें लगा दी, उसे तुम दुखी नहीं कर सकते। कैसे करोगे।
हमने सुख पर शर्त लगायी हैं। लोग कहते हैं, पहले इतनी चीजें हो जानी चाहिए तब हम सुखी होंगे। एक तो वे उतनी चीजें कभी हो नहीं पाती, इसलिए दुखी रहते हैं। फिर अगर कभी हो भी जाएं, तो शर्तें आगे सरक जाती हैं। शर्तों का कोई भरोसा है! तुम कहते थे, दस हजार जब होंगे तब सुखी होंगे। जब तक तुम दस हजार पर पहुंचते हो, तब तक तुम्हारी शर्त भी आगे सरक जाती है। वह कहती है, अब दस हजार में क्या होता है, चीजों के दाम भी बढ़ गये, हालतें भी सब बदल गयीं, अब तो पचास हजार से कम से सुख हो नहीं सकता। और तुम यह मत सोचना कि पचास हजार मिल जाने से तुम सुखी हो जाओगे। हो सकता है एकाध क्षण को तुम्हें भ्रांति हो सुख की, बस भ्रांति ही होगी। क्योंकि तुम दुख का अभ्यास कर रहे हो। एक आदमी पचास हजार रुपये कमाते-कमाते-कमाते-कमाते इतना दुख का अभ्यास कर लिया है कि जब उसे पचास हजार मिलेंगे तो उसकी समझ में ही नहीं आएगा कि अब सुखी कैसे हों? दुख का अभ्यास जड़ बद्ध हो गया। दुखी होने में वह कुशल हो गया।
इसीलिए अक्सर तुम पाओगे, धनी आदमी गरीब से भी ज्यादा दुखी हो जाते हैं। गरीब और अमीर में इतना ही फर्क है कि गरीब आदमी ज्यादा दुख नहीं खरीद सकता। उसकी खरीदने की सीमा है। अमीर आदमी ज्यादा दुख खरीद सकता है, उसकी सीमा बड़ी है। इसलिए अगर अमरीका में लोग ज्यादा दुखी हैं तुम हैरान मत होना, उसका कुल कारण इतना है—उनके दुख खरीदने की सीमा काफी बड़ी हो गयी है। वे एक ही गांव में रहकर दुखी नहीं होते, वे सारी दुनिया में जाकर दुखी होते हैं। चक्कर मारते हैं दुनिया का! इस राजधानी से उस राजधानी में दुखी होते हैं। वे एक स्त्री के साथ दुखी होते नहीं, एक स्त्री से अब क्या दुखी होना, वह पुराना ढब हो गया।, एक आदमी आठ-दस स्त्रियों के साथ जिंदगी में दुखी होता है। एक ही धंधे में दुखी नहीं होते, धंधे बदल-बदल कर दुखी होते हैं। अमरीका में प्रत्येक आदमी के औसत धंधे की सीमा तीन साल है। तीन साल से ज्यादा कोई टिकता नहीं है। वही विवाह की भी औसत उम्र है। तीन साल से ज्यादा विवाह भी नहीं टिकता। अब लोग दुखी होने के लिए खूब उपाय...उनके पास सुविधा है। गरीब आदमी की वही तकलीफ है।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन का बाप जब मरा तो उसने मुल्ला को बुलाकर कहा कि देख बेटा, एक मेरे जीवन का अनुभव है कि जितना धन बढ़ता है, उतनी चिंताएं, बेचैनियां, परेशानियां बढ़ती हैं। यह मैं तुझे अपने सारे-अनुभव की बात कह रहा हूं। कम में संतुष्ट होना ठीक है। शांति रहती है। ज्यादा में अशांति बढ़ जाती है। मुल्ला ने जल्दी से उसके पैर पकड़ लिये और कहा कि यह सब समझ गया, मगर आशीर्वाद दो, अशांति बढ़े तो अशांति बढ़े मगर ज्यादा हो। बाप ने कहा कि मैं यही समझा रहा हूं तुझे और तू यह कह रहा है—आशीर्वाद दो!

मुल्ला ने कहा—माना मैंने कि कम होता है तो आदमी संतुष्ट होता है; क्योंकि असंतुष्ट होने की क्षमता नहीं होती। संतुष्ट होना पड़ता है। करोगे क्या संतोष नहीं करोगे तो? और उपाय क्या है? स्वतंत्रता मर जाती है। मुझे तो आप ऐसा आशीर्वाद दें कि दुखी तो होना ही है संसार में मगर दुख के चुनाव की तो सुविधा रहे, कि जो भी चुनना हो वह दुख हम चुन सकें। इस स्त्री के साथ दुखी होना हो तो इसी के साथ हो सकें। इस मकान में होना हो तो इसमें हो सकें। स्वतंत्रता तो हो पास। मुझे आशीर्वाद दो जाते वक्त कि मैं अपने दुख चुनाव कर सकूं। दुखी तो होना ही है!

खयाल रखना, लोगों ने यह मान ही लिया है कि दुखी तो होना ही है। तो अमीर ही होकर दुखी हो लें, फिर गरीब होकर दुखी होना? तो प्रसिद्ध होकर दुखी हो लें, फिर गैर-प्रसिद्ध होकर क्या दुखी होना? फिर महलों में दुखी हो लें, झोपड़ों में क्या दुखी होना? दुखी तो होना ही है।

नहीं लेकिन यह बात सच नहीं है कि दुखी होना ही है। दुख तुम्हारा सृजन है। और सुख भी तुम्हारा सृजन है। तुम्हारी दृष्टि के विस्तार हैं। दुख भी तुम्हारा सपना है, सुख भी तुम्हारा सपना है। सपने के तुम मालिक हो। लेकिन तुम यह भरोसा नहीं कर पाओगे।

एक दूसरा प्रयोग भी गुर्जिएफ अपने शिष्यों को करवाता था। वह था अपनी स्वेच्छा से स्वप्न पैदा करने की प्रक्रिया। वह भी कीमती प्रयोग है। तुमने अब तक सपने देखे जो हुए। तुमने कोई सपना अपनी मौज से देखा? देखना चाहिए मौज से सपना। सपने में भी गुलामी! अब जिस फिल्म में बिठा दिया, बैठे हैं रात भर। यह भी बड़ी परतंत्रता हो गयी। कम से कम सपने में स्वतंत्रता रखो। गुर्जिएफ अपने शिष्यों को यह प्रयोग करवाता था, यह प्रयोग कीमती है, क्योंकि इस प्रयोग से जीवन के संबंध में दिशा सूचित हो जाती है। कोई साल भर लगता है—कभी दो साल भी लग सकते हैं, लंबा प्रयोग है, क्योंकि बड़ी गहरी पकड़ है सपने की। लेकिन तुम अपने मन का सपना देख सकते हो। रोज-रोज वही सपना सोच कर सोओ। सोते वक्त जब तुम्हारी चेतना खो रही है और नींद उतरने लगी है, तब तुम वही सपने का प्लॉट रचते रहो। वही सपना। रोज-रोज। रोज बदल मत लेना, नहीं तो उसकी कोई छाप ही न पड़ेगी। रोज वही सपना। एक सपना तय कर लो बस, उसी को रोज सोचते हुए सो जाओ। रोज-रोज दिन-रात, महीनों-वर्षों बीत जाएं एक दिन तुम अचानक पाओगे, वह सपना तुम्हारे सपने में आ गया। वह दृश्य सामने खड़ा हो गया। उसी दिन तुम्हें एक अपूर्व अनुभव हो जाएगा कि अब तक जो सपने देखे वह भी तुम्हारी भ्रांति थी कि अपने-आप हो रहे हैं, अनजाने अचेतन मन से तुम उन्हें पैदा कर रहे थे। तुम उन्हें पैदा किया था। होश में नहीं थे। अब तुमने होश से एक सपना पैदा करके देख लिया। उस दिन के बाद तुम जो सपने देखना चाहो, देख सकते हो।

और उसके बाद का प्रयोग है, फिर तुम सपने न देखना चाहो तो मत देखो। पहले तो सपने पर स्वतंत्रता चाहिए कि जो तुम देखना चाहो देख सको। फिर दूसरा कदम यह है कि फिर तुम रात यह तय करके सो जाओ कि अब सपना नहीं देखना है आज, आज नहीं जाएंगे किसी फिल्म में, तो तुम निश्चित होकर रात भर सो सकोगे। और अगर रात में यह संभव हो जाए, तो दिन में भी संभव हो जाएगा क्योंकि रात और दिन में कुछ भेद नहीं है।

तुम अपने मन के मालिक हो। मगर मालकियत की तुमने घोषणा नहीं की है। तुम घिसटे चले जा रहे हो। तुम्हारा मन जो तुम्हें दिखाता है, तुम देखे चले जा रहे हो।

तुम कभी इस तरह के छोटे-छोटे प्रयोग करो।

तुम क्रोध में बैठे हो। कोशिश करो क्रोध को बदलने की। पहले तो बहुत मुश्किल लगेगा। पहले तो लगेगा, यह कोई आसान बात है क्रोध को बदल लेना! अब क्रोध है तो इसको बदलो कैसे? तुम जरा कोशिश करना। एकांत में बैठकर हंसना, उछलना-कूदना, जरा क्रोध को बदलने की कोशिश करना। पांच-सात मिनट में तुम पाओगे कि क्रोध गया, तुम हंस रहे हो—शायद इस पर ही हंसने लगो कि मैं भी क्या बुद्धूपन कर रहा हूं, ऐसे

उछलने-कूदने से क्या होगा? लेकिन तुम पाओगे कि भीतर क्रोध बदल गया। अब क्रोध की वही प्रगाढ़ता नहीं रह गयी।

तुम उदास बैठे हो। इसे बदलने की कोशिश करना। कभी तुम प्रसन्न बैठे हो, इसको उदास करने की कोशिश करना। कभी तुम आनंदित बैठे हो, इसको क्रोध में ले जाने की कोशिश करना। इस तरह के प्रयोग अगर तुम करोगे, तो तुम्हें एक बात दिखायी पड़नी शुरू हो जाएगी कि सब तुम्हारे हाथ में हैं। क्रोध को आनंद में बदला जा सकता है, आनंद को उदासी में बदला जा सकता है, उदासी को हंसी में बदला जा सकता है। हंसी को आंसू में बदला जा सकता है। और जब तुम यह बदलने की कीमिया सीख लोगे, जैसे कि तुम रेडियो स्टेशन बदलते हो। इस तरह ही बदला जा सकता है।

पश्चिम में यंत्र पैदा किये जा रहे हैं—'बायोफीड बैक'। उन यंत्रों का बड़ा बहुमूल्य उपयोग होनेवाला है भविष्य में। उनके माध्यम से बड़ी अनूठी बातें प्रतीत हुई हैं। कि आदमी अपनी भावदशाएं बदल सकता है। भावदशाएं बदल सकता है, अपने रक्तचाप की गति बदल सकता है। यंत्र से जोड़ दिया जाता है। जैसे हृदय को यंत्र से जोड़ दिया, हृदय की धक-धक यंत्र पर आने लगी, यंत्र बता रहा है कि इतनी धक-धक है प्रति सेकेंड, या प्रति मिनिट। अब आदमी को कहा जाता है कि तुम कोशिश करो कि कम हो जाए। अब तुम कहोगे—कैसे कोशिश करें कम हो जाए? हृदय पर तुमने कभी कोशिश तो की नहीं। मगर प्रयास तुम करते हो, और तुम चकित हो जाते हो—सामने अंक गिरने लगते हैं। इधर तुम कोशिश करते हो, वहां अंक गिरने लगे। जब दो-चार अंक गिर जाते हैं, तुम्हें भरोसा आ जाता है कि अरे, एक कुंजी हाथ लग गयी! हालांकि तुम किसी को बता नहीं सकोगे कि कैसे तुम कर रहे हो भीतर, मगर तुम कर लेते हो। तुम गिरा सकते हो। रक्तचाप कम-ज्यादा हो जाता है।

और अभी तो बड़ा चमत्कार हुआ, जब कुछ मरीजों ने इन यंत्रों के साथ जुड़कर अपने खून में बहनेवाली शक्कर को भी कम कर लिया। बता नहीं सकते वह कैसे किया, क्योंकि कैसे का तो बड़ा कठिन मामला है—कैसे किया? मस्तिष्क में कई तरह की तरंगें होती हैं, उन तरंगों को बदलने में लोग सफल हो जाते हैं यंत्र के सामने बैठकर। कह नहीं सकते कैसे। तुम भी कैसे कह सकते हो? तुमने बायां हाथ ऊपर उठाया, तुम बता सकते हो कैसे उठाया? क्या घटना भीतर घटी? कैसे तुमने बाया हाथ ऊपर उठाया? रोज कर रहे हो यह, लेकिन बायां हाथ तुम ऊपर कैसे उठाते हो? किसको आज्ञा देते हो पहले? कहां से आज्ञा शुरू होती है? कुछ तुम्हें पता नहीं है। मगर तुम इसके मालिक हो, अचेतन में मालिक हो।

'बायोफीड बैक' यंत्रों के द्वारा एक बात प्रमाणित हो गयी कि मनुष्य अपने भीतर की सारी भावदशाएं बदल सकता है। और यही सारसूत्र है सदा से ज्ञानियों का कि सब तुम्हारे हाथ में है। दुख तुम निर्मित करते हो। मत चिल्लाओ, मत चीखो, मत कहो कि दुनिया तुम्हें सता रही है। तुम अपने को सता रहे हो। अपनी मालकियत की घोषणा करो। अपना उत्तरदायित्व अपने हाथ में ले लो। और इसे थोड़ा बदलने की कोशिश करो। और तुम चकित हो जाओगे कि तुम बदल सकते हो। और जिस दिन यह कुंजी हाथ लगती है कि मैं बदल सकता हूं अपनी जीवन की भावदशाओं को, उस दिन तुम इतने आनंद से भर जाओगे, जिसकी आज तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। तुम मुक्त हो गये। और जिस दिन तुम यह अनुभव कर लेते हो कि क्रोध प्रेम में बदला जा सकता है, प्रेम उदासी में बदला जा सकता है, उदासी हंसी में बदली जा सकती है—जैसे कि रेडियो पर तुम स्टेशन लगा रहे हो—उस दिन एक बात साफ हो गयी कि तुम इन सबसे अलग हो, तुम सिर्फ साक्षी मात्र हो। तुम रेडियो स्टेशन नहीं हो, न तुम रेडियो हो, तुम बाहर बैठे हुए व्यक्ति हो जो कि रेडियो स्टेशन लगा रहा है, जो चाभी घुमा रहा है। तुम अलग हो, तुम पृथक हो। तुम्हारी सारी भावदशाओं से। जिस दिन आदमी जानता है कि मैं अपनी सारी भावदशाओं से पृथक हूं, उसी दिन अहंकार विलीन हो जाता है। और उस दिन पता चलता है कि मैं परमात्मा से अनन्य हूं, एक हूं।

तुमने अपने को क्षुद्र सीमाओं में बांध रखा है, इसलिए तुम विराट से टूटे हुए मालूम पड़ते हो। तुम्हारी आंखें छोटी-छोटी बातों में उलझ गयी हैं। तुम सोचते हो, यही मैं हूं—मेरा धन, मेरी देह, मेरी पत्नी, मेरा पति, मेरे बच्चे, मेरा मकान। तुमने बड़ी छोटी बातों में अपने को संकुचित कर लिया है। जैसे-जैसे यह मैं-भाव गिरेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे—आकाश भी तुम्हारी सीमा नहीं। तुम विराट हो।

जीवन के दुख से महापातकी को आर्त-भक्ति पैदा होती है। और कौन है ऐसा जो जीवन में दुखी नहीं हैं? सुखी आदमी मिलते कहां हैं ? दुखियों का संसार है। और इन दुखियों के संसार में सुखी बच्चे पैदा भी होते हैं तो जल्दी ही दुख का अभ्यास सीख जाते हैं। क्योंकि बाप दुखी, मां दुखी, बहन दुखी, भाई दुखी, शिक्षक दुखी, सब तरफ दुखी ही लोग हैं, बच्चे को हंसने में भी लज्जा आने लगती है। बच्चा आनंदित होना चाहता है क्योंकि सब परमात्मा के घर से आते हैं। वहां की खबर लेकर आते हैं। वहां का नांच लेकर आते हैं। उन्हें कुछ पता नहीं होता, लेकिन यहां सबको दुखी देखते हैं, उदास देखते हैं, यहां सब परेशान हैं, बच्चे भी धीरे-धीरे इस परेशानी में संक्रमित हो जाते हैं। यह परेशानी उन पर भी थुप जाती हैं। फिर उतारे नहीं उतरती। इसी को फिर से उतारकर रख देने का नाम पुनर्जन्म है। द्विज हो गये तुम।

जीवन में दुख है, जीवन में पाप है, जीवन में भ्रांति है, लेकिन सब सपने जैसी है।

तुम को छोड़ कहीं जाने को आज हृदय स्वच्छंद नहीं है।

रोमराजि पहले गिन डालूं

तब तन के बंधन बतलाऊं

नाम दूसरा मन का बंधन

कैसे दोनों को अलगाऊं,

नित्य वचन की गांठ जोड़ती

मेरी रसना-मेरी रचना,

तुम को छोड़ कहीं जाने को आज हृदय स्वच्छंद नहीं है।

मेरी दुर्बलता के पल को

याद तुम्हीं करुणा कर आते,

अपनी करुणा के क्षण में तुम

मेरी दुर्बलता बिसराते,

बुद्धि बिचारी गुमसुम हारी,

साफ बोलता पर चित मेरा—

मेरे पाप तुम्हारी करुणा में कोई संबंध नहीं है।

तुमको छोड़ कहीं जाने में आज हृदय स्वच्छंद नहीं है।

इसकी फिक्र छोड़ दो कि तुम्हारे पाप इतने बड़े हैं कि तुम परमात्मा को कैसे पा सकोगे। तुम्हारे पापों में और उसकी करुणा में कोई संबंध नहीं है। तुम्हारे पाप थोड़े है कि ज्यादा, बड़े हैं कि छोटे, ऐसे हैं कि वैसे, कुछ फर्क नहीं पड़ता, तुम पापी हो कि पुण्यात्मा, कुछ फर्क नहीं पड़ता, उसकी करुणा तो बरस ही रही है। उसकी करुणा तुम्हारे पापों के अनुसार नहीं बरसती, न तुम्हारे कृत्यों के अनुसार बरसती है। देखते नहीं तुम, जब बादल घना होता है आकाश में, असाढ़ के मेघ आते हैं, तो फिक्र थोड़े ही करते हैं कि पापी के खेत में न बरसें, कि पुण्यात्मा के खेत में बरसे; फिक्र थोड़े ही करते हैं कि चोर के खेत में न बरसें और दानी के खेत में बरसें। ऐसे ही उसके करुणा के मेघ भी कोई चिंता नहीं करते।

मेरे पाप तुम्हारी करुणा में कोई संबंध नहीं है।

तुम को छोड़ कहीं जाने में आज हृदय स्वच्छंद नहीं है।

जिस दिन तुम यह सत्य समझ लोगे, तब तुम यह फिक्र भी छोड़ दोगे कि अच्छा करके पहुंचूंगा; बुरा करके कैसे पहुंच पाऊंगा? तुम पहुंचे ही हुए हो। उसकी करुणा चिंता ही नहीं करती इसकी। करुणा बेशर्त होती है। करुणा में शर्त हो तो करुणा ही नहीं। सशर्त करुणा करुणा कैसे कहीं जाएगी? अगर वह कहे कि हां, तुमने इतने पाप किये तो इतनी करुणा मिलेगी; तुमने इतना पुण्य किया तो तुमको इतनी ज्यादा मिलेगी; तो करुणा में शर्त हो गयी। फिर उसकी जरूरत ही क्या है? इसीलिए तो जिन विचार पंथों ने कर्म के सिद्धांत को जोर से पकड़ा, उन्हें अंततः परमात्मा को इंकार कर देना पड़ा।

जैनों-बौद्धों ने परमात्मा को इंकार किया। उसका कारण नास्तिकता नहीं है। उसका कारण कर्म का सिद्धांत और गणित है। जैनों का तर्क यह है कि अगर हमारे ही कर्म के अनुसार हमें अच्छा और बुरा मिलता है तो फिर परमात्मा को और होने की जरूरत क्या है? मैं बुरा करूंगा तो बुरा पाऊंगा, और अच्छा करूंगा तो अच्छा पाऊंगा, फिर परमात्मा की और बीच में होने की जरूरत क्या है? ये नियम पर्याप्त है। ये नियम ही परमात्मा है।

कर्म का सिद्धांत अगर सच में पूरी तरह पकड़ा जाए तो परमात्मा के होने की कोई जगह नहीं रह जाती। बल्कि उसके होने से अड़चन होगी, बाधा होगी। एक आदमी ने पाप किया, उसको दंड मिलता है। एक आदमी ने पुण्य किया, उसको पुरस्कार मिलता है। यह नियम से ही हो जाता है। अब अगर इसके पीछे हम किसी एक जीवंत शक्ति को स्वीकार करें, तो खतरा है। क्योंकि हो सकता है कभी पापी पर दया आ जाए, तो फिर अन्याय होगा। और कभी ऐसा हो सकता है कि पुण्यात्मा पर क्रोध आ जाए, तो अन्याय हो जाएगा। फिर परमात्मा की मौजूदगी खतरनाक हो जाएगी। कोई जरूरत नहीं, जैन कहते हैं, परमात्मा की, कर्म का सिद्धांत पर्याप्त है।

मेरे हिसाब में यह बात है कि जो लोग कर्म का सिद्धांत जोर से मानेंगे, उनको परमात्मा कोई इंकार करना ही होगा। वह तार्किक निष्पत्ति है। और जो लोग परमात्मा को मानेंगे, उनको कर्म के सिद्धांत को एक तरफ हटा कर रखना होगा—वह भी तार्किक निष्पत्ति है। इसीलिए कृष्ण गीता में कर्म के सिद्धांत को हटा कर रख देते हैं; कहते हैं—हे कौंतेय! जो अनन्यचित होकर मेरी आराधना करता है, वह अत्यंत दुराचारी भी हो तो भी साधु है। जैन शास्त्र इसके लिए स्वीकृति नहीं देंगे। यह तो हद्द हो गयी। फिर तो दुराचारी सब आराधना करके पहूंच जाएंगे, फिर सदाचार का उपयोग क्या है? फिर कोई सदाचारी होने के लिए कष्ट क्यों झेले? इसलिए जैनों ने अगर कृष्ण को नर्क में डाल दिया अपने शास्त्रों में इन्हीं वक्तव्यों के कारण, क्योंकि ये वक्तव्य कर्म के सिद्धांत के विपरीत जाते हैं। मगर ये वक्तव्य बड़े अनूठे हैं।

कर्म का सिद्धांत बुद्धि का सिद्धांत है। गणित का सिद्धांत है। उसमें करुणा की कोई जगह नहीं है। इसलिए जैन मुनि कठोर हो जाता है। उसमें करुणा की जगह नहीं बचती। रूखा-सूखा हो जाता है। उसमें दया भाव नहीं बचता। हालांकि बातें वह दया की करता है और अहिंसा की। मगर उसकी अहिंसा भी रूखी-सूखी हो जाती है। तुमने फर्क देखा?

जैन करुणा शब्द का उपयोग नहीं करते, अहिंसा शब्द का उपयोग करते हैं। नकारात्मक शब्द। अहिंसा का कुल इतना मतलब होता है, दूसरे को चोट न पहुंचाना, बस इतना। लेकिन किसी को चोट लगी हो, उसमें मलहम-पट्टी करना कि नहीं, वह अहिंसा में नहीं आता। अहिंसा का मतलब इतना होता है—चोट नहीं पहुंचाना। लेकिन चोट लगी हो किसी को, फिर? अहिंसा उस संबंध में चुप है। करुणा कहती है—किसी को चोट लगी हो तो मलहम-पट्टी करना। करुणा विधायक है, अहिंसा नकारात्मक है। अहिंसा केवल तुम्हें बचाती है बुरे काम करने से! करुणा तुम्हें भले की तरफ प्रेरित करती है। जैनों के हिसाब से, जगत में अहिंसा हो जाए तो पर्याप्त है। कृष्ण के हिसाब से, जब तक जगत में करुणा न बरसे, तब तक पर्याप्त नहीं है। लोग एक दूसरे को चोट न भी पहुंचाएं तो भी क्या होगा? एक-एक आदमी बैठ कर, मुनि बनकर बैठ जाए अपनी-अपनी जगह, कोई किसी को चोट नहीं पहुंचाता, कोई किसी को झगड़ा-झांसा नहीं करता, सब बैठे हैं गुमसुम कि बोलो तो कोई झंझट न हो जाए, किसी की निंदा न हो जाए, कोई शब्द किसी को चोट न कर दे, सब बैठे हैं अपनी-अपनी

कब्रों में बंद, अस्तित्व बड़ा उदास हो जाएगा। कृष्ण से उनकी नाराजगी ठीक है। क्योंकि कृष्ण ने कर्म के सिद्धांत को तोड़ दिया, कहा जो मेरी आराधना करते हैं, वे अगर पापी भी हों तो साधु जानना। और मैं और जोड़ रहा हूं उसमें, कि जो मेरी आराधना नहीं करते, अगर वे पुण्यात्मा भी हों तो उनको पापी जानना।

कर्म सिद्धांत और करुणा का कोई तालमेल नहीं बैठ सकता। करुणा के अर्थ यह होता है कि बेटे ने कितना ही बुरा किया हो, जब वह मां के पास आता है तो मां उसे छाती से लगा लेती है। वह यह नहीं कहती कि इसे मैं कैसे छाती से लगाऊं? तू चोर था, तूने बेईमानी की, तू शराब पी कर आ रहा है। सच तो यह है कि जो शराब पी कर आ रहा है, और जुआ खेल कर आ रहा है, मां उसे और जोर से हृदय से लगा लेती है। उस पर और दया आती है। यह बेचारा! इसको बोध कब आएगा? इसको समझ कब होगी? करुणा का अर्थ होता है, यह जगत तुम्हारे प्रति मां जैसा हृदय रखता है। तुम क्षमा किये जाओगे।

उसका यह मतलब मत ले लेना कि तुम्हें बुरा करना है। करो मजे से। इसका यह मतलब नहीं है। वही भ्रांतियां हो जाती हैं। इसका मतलब यह मत ले लेना कि अब क्या फिक्र पड़ी है, फिर मजे से करो बुरा, जितना बुरा करना हो करो। इसका कुल मतलब इतना है कि बुरा तो तुम कर ही चुके हो, काफी कर चुके हो, जितना करना है उतना कर ही चुके हो, अब और करने की जरूरत नहीं है, अब जीवन-ऊर्जा को आराधना बनने दो।

'सा एकान्तभावः गीतार्थ प्रत्यभिज्ञानात्।।

पराभक्ति का नाम ही एकांत भाव है, क्योंकि गीता में भी ऐसा लेख है।'

शांडिल्य गीता का उल्लेख अक्सर कर रहे हैं। क्योंकि गीता में निश्चित ही कर्म से मुक्ति के और भक्ति के अनूठे वचन उपलब्ध हैं। वैसे वचन न तो कुरान में हैं, न बाइबिल में हैं। गीता इस अर्थ में अनूठी है। उसमें करुणा पूरी तरह प्रकट हुई है परमात्मा की। मनुष्य की क्षुद्रताओं का हिसाब नहीं रखा गया है। तुम्हारे पाप भी तो दो कौड़ी के हैं, उनका क्या हिसाब रखना है? किसी ने किसी की जेब से दो पैसे चुरा लिये! क्या फर्क पड़ता है? इस जेब से उस जेब में रख दिए। सब जेबें उसकी हैं। और सब हाथ उसके हैं। अब इसको ज्यादा शोरगुल मत मचाओ कि बड़ा भारी पाप हो गया। कि तुम किसी सुंदर स्त्री को देखे और तुम्हारे मन में कामना जग गयी। मगर उस सुंदर स्त्री में भी वही बैठा है। और तुम्हारी कामना में भी वही जग रहा है। अब इसको इतना परेशान मत हो जाओ। इसको इतना तूल मत दो!

लोग तिल का ताड़ बना रहे हैं। और खास कर साधु-महात्मा तो बड़े ही कुशल हैं तिल का ताड़ बनाने में। उसको इतना बढ़ा-चढ़ा कर बता देते हैं कि तुम्हारी छाती पर हिमालय रख देते हैं, फिर तुम सरक ही नहीं पाते। अब अगर तुम अपने चौबीस घंटे में हिसाब रखोगे कि तुमने कितने पाप किये, तो मर ही जाओगे, दब ही जाओगे! कुछ किये, कुछ सोचे, कुछ नहीं कर पाए तो रात सपने में किये, अगर इन सब पापों का तुम हिसाब रखोगे—और वही तुम्हारे महात्मा कह रहे कि हिसाब करो; उनको बड़ी बेचैनी हो रही है कि हिसाब करो, अपने पापों का हिसाब रखो।

एक सज्जन मेरे पास आए। बड़े उदास थे! बड़े परेशान थे! जैसे बड़ा बोझ ढो रहे हों। मैंने कहा मामला क्या है? उन्होंने कहा—मैं बड़ी पापी हूं, यह मेरी डायरी देखिये—डायरी ले आए थे साथ—इसमें सब लिखता हूं। मैंने उनकी डायरी देखी, मैंने कहा, तुम्हारी डायरी पढ़कर मैं उदास हुआ जा रहा हूं! इसको काहे के लिए लिख रहे हो? कि नहीं, मेरे गुरु ने कहा है कि अपने सब पाप का हिसाब रखना चाहिए।

परमात्मा की करुणा का हिसाब रखो! एक कोरी डायरी अपने पास रखो, उसमें कुछ मत लिखो, और जब भी कुछ पाप-माप हो, अपनी डायरी खोलकर देखो उसकी करुणा—कोरी करुणा! तुम्हारे हिसाब-किताब से कुछ लेना-देना नहीं। तुम इसमें हिसाब क्या कर रहे हो? दुकानदारी लगा रखी है। उसमें दो-दो पैसे का हिसाब लिखा हुआ है। कि मैंने फलां आदमी को दो पैसे का धोखा दे दिया; कि फलां आदमी से मैंने यह कह दिया, नहीं कहना था; यह बुराई हो गयी, वह बुराई हो गयी; उपवास किया था और भोजन की याद आ गयी। भोजन किया

नहीं, मगर याद आ गयी! अब भोजन की याद उपवास में न आएगी तो कब आएगी? आदमी हो कि पत्थर हो? उपवास करोगे, भोजन की याद आने ही वाली है! यह बिलकुल स्वाभाविक है, अब इसको भी पाप बना रहे हो! कि किसीने गाली दे दी और चिंता पैदा हो गयी। कि किसीने गाली दी और उसका जवाब दे दिया। यह सब स्वाभाविक है, इसको इतना तूल मत दो। और इसको अगर तुम बांध के जाओगे, गठरी में रखते जाओगे, रखते जाओगे, इसी के साथ डूबोगे।

उसकी करुणा पर भरोसा करो। राम रहीम है, रहमान है, करुणावान है। तुम उसके प्रेम पर भरोसा करो। तुम अपने पाप पर इतना भरोसा मत करो। तुम्हारा पाप ऐसे बह जाएगा जैसे बाढ़ में तिनके बह जाते हैं। उसकी करुणा की बाढ़!

शांडिल्य के सूत्रों का सार है: उसकी करुणा पर भरोसा करो। उसकी करुणा पर भरोसा आ जाए, तुम्हारी जिंदगी में निखार आने लगेगा। तुम्हारे पैरों में नाच आने लगेगा। तुम्हारी वाणी में फिर गुनगुनाहट आ जाएगी। फिर तुम पक्षियों की तरह...यह कोयल को सुनते हो? इसको पाप इत्यादि का कुछ पता नहीं है। इसका महात्माओं से मिलना नहीं हुआ। नहीं तो यह गा नहीं सकती थी, याद रखना, अभी तक मर गयी होती, फांसी लगा ली होती। उपवास कर रही होती, व्रत कर रही होती, और डायरी लिख रही होती। यह कुहू-कुहू! महात्मा तो कहेंगे कि बंद करो यह कुहू-कुहू, इसमें कामवासना छिपी है। इस कुहू-कुहू में यह अपने प्रेमी को बुला रही है। यह निमंत्रण भेज रही है। यह कह रही है—कहां हो? आओ! यह प्रतीक्षा कर रही है। यह धन्यभागी है, इसको कोई महात्मा नहीं मिले!

तुम भी ऐसे ही कुहू-कुहू कर पाओगे जिस दिन तुम परमात्मा की करुणा की स्मृति करोगे, अपने पापों का बोझ छोड़ोगे। तुम भी गुलाब के फूल की तरह खिल पाओगे। गुलाब का फूल भी नहीं खिल सकता, अगर महात्मा का उपदेश सुन ले। वह भी सकुचाएगा कि क्या खिलना? खिलने में नर्क। जीवन पाप। और खिलने में कई तरह की झंझटें हैं, बंद ही रहना ठीक है। और वह भी सोचेगा कि है प्रभु, आवागमन से कैसे मुक्त हों! मुक्ति, आवागमन से मुक्ति चाहिए मुझे।

इस जगत में आदमी को छोड़कर तुम्हें कहीं उदासी दिखायी पड़ती है? क्या कारण है? इस जगत को महात्माओं के उपदेश नहीं मिले, सिवाय तुमको। तुमको मिले हैं उपदेश। तुम्हारे महात्माओं से तुम्हारा छुटकारा हो जाए तो तुम परमात्मा से मिल सकोगे। यह बात इतनी कठिन है तुम्हें समझनी, तुम मेरी बात सुनकर इसीलिए अक्सर नाराज भी हो जाते हो, मैं तुमसे कहता हूं जब तक तुम अपने महात्माओं से न छुटोगे तब तक तुम्हारा परमात्मा से मिलना नहीं हो सकता। यह कोयल अभी भी परमात्मा में कुहू-कुहू कर रही है। यह आवाज परमात्मा से ही उठ रही है। इसको कुछ पता नहीं है, कल का कुछ हिसाब नहीं है, कल क्या किया था, किससे कुछ कह दिया था, किससे कुछ सुन लिया था, कल क्या हुआ, कल का कल गया। कल की आने वाले की भी कोई चिंता नहीं है। न नर्क की कोई फिक्र है, न स्वर्ग की कोई फिक्र है। मनुष्य अगर परमात्मा की करुणा में आश्वस्त हो जाए, तो फिर गीत उठेगा, फिर नाच उठेगा।

इक निगाहे-तबस्सुम असर मिल गयी
रोशनीए-बहारे-सहर मिल गयी
फिर मुस्कुराहट पैदा होगी। फिर सुबह की रोशनी मिल जाएगी।
इक निगाहे-तबस्सुम असर मिल गयी।
रोशनीए-बहारे-सहर मिल गयी
जब चमक दर्द की कुछ सिवा हो गयी
अपने ही दिल से उनकी खबर मिल गयी
वह समुंदर की वुसअत को समझें भी क्या

जिनको मौजे-सदफ सतह पर मिल गयी
जब फरोजां हुए अपने दागे-जिगर
शामे गम को नवेदे-सहर मिल गयी
मरहबा! अज्मे-नौ-रहरवे-शौक को
जिंदगी की नयी रहगुजर मिल गयी
नग्मए-जा फिजा छेड़ ऐ मुतरिबा!
आज 'शबनम' की गुल से नजर मिल गयी

फिर गा गीत, नग्मए जा फिजा छेड़ ऐ मुतरिबा, फिर छेड़ प्राणदायक संगीत, आज 'शबनम' की गुल से नजर मिल गयी। जिस दिन तुम्हारी परमात्मा की करुणा की तरफ जरा-सी भी दृष्टि चली जाएगी, एक क्षण को भी तुम्हें उसकी महाकरुणा का स्मरण आ जाएगा, उसी क्षण गये सब पाप उसी पल उत्क्रांति हो जाती है। एक क्षण में हो जाती है। एक क्षण भी ज्यादा है। क्षण के किसी अंश में ही हो जाती है। यहीं बैठे-बैठे हो सकती है। याद करो उसकी करुणा को।। उसकी क्षमा अपार है, और बेशर्त है। वह तुमसे नहीं पूछेगा तुमने क्या किया और क्या नहीं किया।

मेरे हिसाब में तो अगर वह तुमसे पूछेगा तो यही कि नाचे कि नहीं नाचे? गाए कि नहीं गाए? मुस्कुराए की नहीं मुस्कुराए? भेजा था तुम्हें संसार में, जीए कि नहीं जीए? एक ही पाप है, इस जगत में मुर्दे की भांति जीना। और एक ही पुण्य है।, इस जगत में नृत्य-गीत-आनंद को उपलब्ध होना, उत्सव को उपलब्ध होना।

'पराभक्ति का नाम ही एकांत भाव है'। जब तुम्हारे और परमात्मा के बीच एकांत भाव आ जाए, एक का ही अनुभव होने लगे, मैं वह, वह मैं भक्त और भगवान दो न रह जाएं, यह लक्ष्य है। पराभक्ति का नाम ही एकांत भाव है। पराभक्ति की तरफ ही ये सारे इशारे चल रहे हैं। ये गौणी भक्तियां पराभक्ति की तरफ इशारे हैं। अनन्यभाव, एकात्मभाव, भक्त और भगवान के बीच सारी दूरी का अंत—पराभक्ति।

कृष्ण ने कहा है: 'यो मां पश्यति सर्वत्र'। जो मुझे सब जगह देखने लगे, जिसे मैं सब जगह दिखायी पड़ने लगूं, जब भक्त को भगवान के अतिरिक्त और कुछ भी दिखायी न दे—न बाहर, न भीतर—तब अनन्यभाव, तब पराभक्ति।

गौणी-भक्ति में भेद रहता है। भगवान होता है आराध्य, भक्त होता है आराधक उधर दूर भगवान, इधर भक्त। इधर भक्त रोता हुआ, प्रार्थना करता हुआ, वहां भगवान करुणा बरसाता हुआ। मगर फासला होता है, दूरी होती है, विरह होता है। पराभक्ति का अर्थ है, भक्त भगवान में डूब गया, भगवान भक्त में डूब गये; अब न कोई आराधक है, न कोई आराधना। अब सब शांत हो गया अब एक का आविर्भाव हो गया। गये द्वंद्व। गयी दुई।

'परां कृत्वा एव सर्वेषां तथा हि आह।।

गीता के वाक्य पराभक्ति के साधन के अर्थ ही है।' और गौणी-भक्ति, भजनकीर्तन आदि से मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति तो पराभक्ति से मिलती है। फिर गौणी-भक्ति से क्या मिलता है? गौणी-भक्ति से पराभक्ति मिलती है। भजन-कीर्तन इत्यादि से पराभक्ति का रस धीरे-धीरे बढ़ता है। जिस दिन पराभक्ति मिल जाती है, उस दिन गौणी-भक्ति विदा हो गयी। और पराभक्ति से मोक्ष का आविर्भाव होता है।

परमात्मा से अलग होने में हमारा बंधन है। और परमात्मा के साथ एक हो जाने में हमारी मुक्ति है। हम हम की तरह रहेंगे, तो बंधन में रहेंगे, जंजीरों में रहेंगे। 'मैं' कारागृह है। और हम हम की तरह न रहे, 'मैं' विदा हो गया, कारागृह गिर गया। फिर सारा खुला आकाश है स्वातंत्र्य का। फिर स्वच्छंदता है। उस परम आनंद की तलाश ही चल रही है। और जब तक उसे न पा लोगे तब तक तृप्ति नहीं होगी; और कुछ भी पा लो, तृप्ति नहीं होगी। सारा संसार तुम्हारा हो जाए, तृप्ति नहीं होगी।

और अंतिम वचन तो अदभुत है।

'भजनीयेन अद्बितीयम् इदं कृत्स्नस्य तत् स्वरूपत्वात्।।
यह सभी भगवान का स्वरूप है, इस कारण सेवन (भजन) करने के योग्य हैं।' यह सारा जगत परमात्मा का स्वरूप है। तुमने सुना है, शास्त्र कहते हैं—जगत मिथ्या, माया; शांडिल्य नहीं कहते। शांडिल्य कहते हैं, जगत कैसे माया? कैसे असत्य? सत्य से कहीं असत्य का आविर्भाव हो सकता है? अगर परमात्मा सत्य है, तो उससे असत्य का कैसे आविर्भाव होगा? अगर परमात्मा सत्य है, तो संसार माया कैसे होगा? एक बहुमूल्य सवाल उठाते हैं। बुनियादी सवाल उठाते हैं। वे कहते हैं, सत्य से सत्य का ही आविर्भाव हो सकता है। लहर भी सत्य है, क्योंकि सागर सत्य है। लहर अलग होकर सत्य नहीं है—वहां भ्रांति शुरू होती है—मगर लहर की तरह तो सत्य है ही। लहर में सागर ही तो लहरा रहा है। लहर को तुम सागर से अलग नहीं ले जा सकोगे, कि लहर को अपने घर ले चलें, लहर मिट जाएगी। लहर सागर में ही हो सकती है।

जगत की भ्रांति इसलिए पैदा नहीं हो रही है कि जगत भांति है जगत की भ्रांति इसलिए पैदा हो रही है कि तुमने अपने को अलग मान लिया; तुमने लहर को अलग मान लिया; तुमने लहर को केंद्र दे दिया है जो कि झूठ है। तुम अपने केंद्र बन गये हो जो कि झूठ है। केंद्र तो एक ही है। इस सारे अस्तित्व का। इस सारे अस्तित्व का प्राण एक है। इस सारे अस्तित्व का सूर्य एक है। किरणें हम अनेक हैं। मगर सारी किरणें उसी सूर्य से जुड़ी हैं, उसी सूर्य का विस्तार हैं। शांडिल्य कहते हैं—संसार असत्य नहीं है वरन् सच्चिदानंद भगवान का ही विस्तार है। इसलिए सेवन करने योग्य है, भोगने योग्य है। और भजन करने योग्य भी। यह क्रांति वचन है।

दो बातें कह रहे हैं। भजनीय का दोहरा अर्थ है। भोगनीय और भजन करने योग्य, आदरणीय। भोग्य और आराध्य। ये बड़ा गहरा इशारा है। वह यह कह रहे हैं—भागो मत; भोगो। यह परमात्मा ही है। जब तुम भोजन कर रहे हो, तब तुम परमात्मा को ही अपने में आत्मसात कर रहे हो। इसलिए उपनिषद कहते हैं—अन्नं ब्रह्म। इसलिए इस देश में हम आदर से पहले प्रणाम करते हैं, भगवान का स्मरण करते हैं, फिर भोजन लेते हैं। समादरपूर्वक। भोजन के रूप में भगवान ही हैं। वह जो फल की तरह आया है वृक्ष से, उसमें उसीकी जीवनधारा है, उसी का रस है। वह जल जो तुम पी रहे हो वह तुम्हारी तृषा को मिटाएगा, तुम्हारे कंठ को ठंडा, करेगा, तृप्त करेगा, उसमें उसी का ही रूप है। तुम्हारी पत्नी में भी वही बैठा है। तुम्हारे बेटे में भी वही बैठा है। जब तुम पत्नी को गले लगा रहे हो, तो घबड़ाना मत—तुम्हारे महात्मा बीच में खड़े हो जाएंगे और वे तुम्हें घबड़ाने की पूरी कोशिश करेंगे कि यह क्या कर रहे हो? पाप कर रहे हो? बचो! फिर भटकोगे, फिर नर्क में सड़ोगे।

छोड़ो सारी बकवास उस पत्नी में भी उसी को देखो। जरा भी भयभीत न होओ। जीवन तुम्हारा है। और जीवन परमात्मा का है और तुम परमात्मा अंततः एक है। यह सारा विस्तार उसका है। वह सारा संगीत उसका है। इसे सुनो। इसे गुनो। यह सारा रस उसका है, रसमग्न हो जाओ।

तो एक तो सेवन करो। जगत से भागना मत! और दूसरा, सेवन करते समय भी स्मरण रखना—इसे साधन मत समझ लेना; इसके प्रति आराधना का भाव रहे, क्योंकि भगवान है। दुनिया में दो तरह के लोग है। शांडिल्य चाहते हैं। तुम तीसरे तरह के आदमी बनो—मैं भी चाहता हूं तुम तीसरे तरह के आदमी बनो। एक तो दुनिया में वह लोग हैं जो कहते हैं, यहां सिर्फ भोग है और कुछ भी नहीं। हर चीज को भोगो और फेंक दो। भौतिकवादी। एक स्त्री को भोग लेता है, फिर फेंक देता है। वह कहता है, सब क्या है! अब मैं दूसरी स्त्री खोजूंगा। उसके मन में कोई आदर नहीं है, कोई आराधना नहीं है। वह व्यक्तियों का उपयोग वस्तुओं की तरह करता है। वहां असम्मान है। वह व्यक्तियों का उपयोग साधन की तरह करता है। जबकि प्रत्येक व्यक्ति साध्य है।

तुमने कभी अपनी पत्नी के चरण छुए? अगर नहीं छुए, तो तुम भौतिकवादी हो। तुमने कभी अपने बेटे के चरण छुए, अगर नहीं छुए तो तुम भौतिकवादी हो। तुमने कभी अपने नौकर को सम्मान दिया? अगर नहीं दिया, तो तुम्हारी सब बकवास है परमात्मा इत्यादि को मानना। उसमें कोई मूल्य नहीं है।

एक तो भौतिकवादी है, जो चीजों का भोग करता है, जो कहता है कि मैं भोगने के लिए बना हूं, हर चीज मेरे भोग के लिए बनी है। तो वह जाकर जंगल में शिकार कर लाता है। न-मालूम कितने जीवन को पोंछ डालता है, सिर्फ इसलिए कि स्वाद थोड़ा-सा मिले। उसे कोई चिंता नहीं है। उसे बोध ही नहीं हैं कि वह क्या कर रहा है? वह सारी दुनिया को मिटा सकता है, बस उसे अपना भोग ही एकमात्र लक्ष्य है। उसके मन में अस्तित्व का कोई सम्मान नहीं है। 'रिवरेंस फॉर लाइफ' उसके भीतर नहीं है। वह हिंसक होगा, दुष्ट होगा, कठोर होगा। वहां येन-केन प्रकारेण, किसी भी तरह शोषण कर लो, चूस लो। उसका सारा अस्तित्व शोषक का अस्तित्व है। उसके मन में न दया होगी, न प्रेम होगा, न करुणा होगी।

एक तो भौतिकवादी है। वह कहता है, ऋणं कृत्वा धृतंपिबेत। अगर ऋण लेकर भी घी पीना पड़े तो लेकर पी लो। वह कहता है, फिक्र क्या है? धोखा देना पड़े धोखा दे दो। बेईमानी, चोरी कुछ भी करना पड़े, करते रहो। बस अपना भोग सब कुछ है। किसका छिनता है, किसका जाता है, कोई चिंता नहीं। लोगों के सिर पर पैर रख कर चढ़ने को मौका मिले, दिल्ली पहुंचने का, तो पहुंच जाओ। लोगों की सीढ़ियां बना लो। जब सीढ़ियां बनाओ तब हाथ जोड़कर खड़े हो जाना। सब नेतागण हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते हैं जब तुम्हें सीढ़ियां बनाना चाहते हैं। और जब सीढ़ी बन गये तुम, फिर तुम्हें तुम्हारी याद नहीं आती। फिर वे तुम्हारे सिर पर पैर रखकर निकल गये। वे पहुंच गये जहां उन्हें पहुंचना था। उन्होंने तुम्हारा उपयोग कर लिया। बस उपयोग तक तुम्हारी कीमत थी। तुम्हारी कोई निजी कीमत नहीं है, तुम्हारा कोई मूल्य नहीं है। तुम्हारा इतना ही मूल्य है जितना तुम उनके काम आ जाओ। तुम्हारे प्रति कोई सम्मान नहीं, समादर नहीं है। यह भौतिकवादी है।

एक दूसरे तरह का आदमी है, जो इतने सम्मान से भर गया है कि वह कहता है कि मैं कैसे भोजन करूं, उपवास करूंगा। मैं कैसे अपने बेटे को प्रेम करूं, मैं तो जंगल जा रहा हूं। मैं यहां रुक नहीं सकता। इस भोग की दुनिया में मैं कैसे रुक सकता हूं? यहां तो सब भोग ही है। यहां सब शोषण चल रहा है। यहां सब एक-दूसरे की गर्दन काटने में लगे हैं। मैं यहां नहीं रुक सकता। मैं जाऊंगा, पहाड़ पर बैठूंगा, मैं तो एकांत में बैठूंगा। यह अध्यात्मवादी है।

ये भौतिकवादी और आध्यात्मवादी दुनिया में सदा से पाये गये हैं। तीसरे आदमी की जरूरत है, जो संसार में हो और आध्यात्मिक हो। जो भोगे और भजे। जो भागे नहीं। जो जीवन का पूरा सम्मान भी करे और जीवन का पूरा रस भी ले। जो डर कर भाग न जाए। जो डर कर भाग रहा है, वह भौतिकवादी का ही उलटा रूप है। वह डरा इसीलिए है कि वह जानता है अगर वह यह पत्नी के पास रहा, तो वह पत्नी का शोषण करेगा। इसलिए भाग गया है। उसे यह भरोसा नहीं है अपने पर कि मैं पत्नी का शोषण करने से बच सकूंगा अगर पत्नी के पास रहा। वह डरा है कि अगर में दुकान पर बैठा तो मैं ग्राहक की जेब काट ही लूंगा। इसलिए पहाड़ जा रहा हूं। न रहेगा ग्राहक, न झंझट होगी। अगर ग्राहक सामने रहा, फिर मैं नहीं रुक सकता। फिर तो मैं जेब काट ही लूंगा।

वह भगोड़ा जो है, वह डरा हुआ भोगी है। वह जानता है कि संसार में तो वह भौतिकवादी हो ही जाएगा। उसके बचने का एक ही उपाय वह सोचता है कि दूर, इतनी दूर चला जाऊं, न कोई होगा शोषण करने को, तो मैं कैसे शोषण करूंगा? शोषण करने को ही कोई नहीं होगा! मगर यह कोई क्रांति हुई? यह कोई बदलाहट हुई?

जंगल में बैठ जाएगा, क्योंकि वहां कोई है ही नहीं जिससे झूठ बोलना है। सच बोलना हुआ यह? जहां झूठ बोलने की सुविधा न रही, वहां सच बोलने की सुविधा भी न रही। दोनों सुविधाएं समाप्त हो गयीं। सच और झूठ दोनों के लिए कोई और चाहिए। अकेले में न तो सच होता, न झूठ होता। सच तो और झूठ तो संबंध में होता है। जंगल में बैठ गये, घृणा नहीं करते किसी से—प्रेम भी नहीं है। दोनों साथ ही समाप्त हो गये। घृणा और प्रेम के लिए दूसरे की मौजूदगी चाहिए। आराधना, सम्मान-असम्मान, दोनों के लिए किसी की मौजूदगी चाहिए।

भौतिकवादी एक तरह की गलती है, अध्यात्मवादी दूसरे तरह की गलती है। भोगवाद एक भूल, त्यागवाद दूसरी भूल। शांडिल्य जैसे महाज्ञानी तीसरी तरह की बात कहते हैं। वे कहते हैं—त्यागपूर्ण भोग, भोगपूर्ण त्याग। उपनिषदों का वचन तुम्हें याद है? 'तेन त्यक्तेन भुग्जीथाः।' जिन्होंने त्यागा, वे वही हैं जिन्होंने भोगा। 'तेन त्यक्तेन भुग्जीथाः।' जिन्होंने भोगा, वे वही हैं जिन्होंने त्यागा। त्याग और भोग अलग-अलग नहीं हैं। त्याग भोगपूर्ण हो, भोग त्यागपूर्ण हो, तब क्रांति घटती है। तब उत्क्रांति घटती है। तब जीवन में महोत्सव आता है। इस बात की तरफ इशारा है इस वचन में—

'भजनीयेन अद्वितीयं इदं कृत्स्नस्य तत् स्वरूपत्वात्।।

यह सभी भगवान का स्वरूप है, इस कारण सेवन और भजन करने के योग्य है।' इस पर खूब मनन करना इस वचन पर। दोनों के योग्य हैं। भगवान ने अवसर दिया है, पुरस्कार दिया है, भोगो भी। फूल दिये हैं, नासापुटों में जाने दो उनकी गंध। और हाथ जोड़ कर फूल के सामने झुको भी। धन्यवाद भी दो। जो व्यक्ति जगत का भोग भी कर सके और जगत का समादर भी कर सके, वही भक्त है। भक्त में अपूर्व घटना घटती है। त्याग और भोग का मिलन हो जाता है। भक्त भगोड़ा नहीं होता। न ही मात्र भोगी होता है। भक्त सम्मानपूर्वक सब तरफ परमात्मा को देखता है, सब तरफ उसका सिर झुका होता है। लेकिन परमात्मा जो भी देता है, उसे अंगीकार करता है। उसे प्रसादरूप स्वीकार करता है। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं—कहीं जाना मत, छोड़कर कहीं मत जाना, परमात्मा यहां है। तुम्हारे होने का ढंग बदलना चाहिए। तेन त्यक्तेन भुग्जीथाः। भगोड़े वंचित हो जाते हैं।

ले ली जीवन ने अग्नि-परीक्षा मेरी।
मैं आया था जग में बनकर
लहरों का दीवाना,
यहां कठिन था दो बूंदोंसे
भी तो नेह लगाना,
पानी का है वह अधिकारी
जो अंगार चबाए,
ले ली जीवन ने अग्नि-परीक्षा मेरी। सुनते हो?
पानी का है वह अधिकारी
जो अंगार चबाए,
अंतरतम के शोलों को था
खुद मैंने दहकाया,
अनुभवहीन दिनों में मुझको
था किसने बहकाया,
भीतर की तृष्णा जब चीखी
सागर, बादल, पानी,
बाहर की दुनिया की लपटों ने घेरी।
ले ली जीवन ने अग्नि-परीक्षा मेरी।

जीवन अग्नि-परीक्षा है। और कहीं जाने की जरूरत नहीं है, यहीं निखार है। यहीं तुम्हारा स्वर्ण आग से गुजर कर कुंदन बनेगा।

काठ कोयला जल कर बनता
और कोयला, राखी,

छिपा कहीं मेरी छाती में
था स्वर्गों का साखी,
दो आगों के बीच बना कर
नीड़ रहा जो गाता,
ज्वाला के दिन में, निशि में धूम्र-अंधेरी।
ले ली जीवन ने अग्नि-परीक्षा मेरी।

जीवन की अग्नि-परीक्षा से भागो मत। यहीं कुछ घटने को है। घटने को है, इसीलिए जीवन दिया गया है।

काठ कोयला जल कर बनता
और कोयला, राखी,
छिपा कहीं मेरी छाती में
था स्वर्गों का साखी,

वह जो स्वर्ग का साक्षी है, वह तुम्हारे भीतर छिपा है। त्याग को भी देखो और भोग को भी देखो, साक्षी बनो। न त्याग को चुनो, न भोग को चुनो, दोनों को नाचने दो तुम्हारे चारों तरह। तुम साक्षी रहो। तुम तीसरे रहो। सुख भी देखो, दुख भी देखो; दिन भी देखो; रात भी देखो; मगर किसी से तादात्म्य मत करो।

छिपा कहीं मेरी छाती में
था स्वर्गों का साखी,
दो आगों के बीच बनाकर
नीड़ रहा जो गाता,
ज्वाला के दिन में, निशि में, धूम्र अंधेरी।
ले ली जीवन ने अग्नि-परीक्षा मेरी।
पीड़ा को मधुमय, क्रंदन को
छंदों की मृदुवाणी,
अशुचि अमंगल को मैं मंगल
करने का अभिमानी
स्वप्न चिता की भस्म जहां थी
फैली, उस पर मैंने
बिखरा दी अपने कलि-कुसुमों की ढेरी।
ले ली जीवन ने अग्नि-परीक्षा मेरी।

इस अग्नि का रंग ही गैरिक रंग है। इस अग्नि-परीक्षा से गुजरना ही गैरिक वस्त्रों का अर्थ है। तुम्हारा संन्यास तुम्हें जगत का सेवन और जगत का भजन सिखाए, तो तुम्हारा संन्यास भक्ति की महिमा बन जाएगा, भक्ति की गरिमा बन जाएगा। तुम्हारे संन्यास से गीत उठना चाहिए। तुम्हारे संन्यास से नृत्य जगना चाहिए। तुम्हारा संन्यास महोत्सव हो। तभी जानना कि तुम्हें प्रभु ने जो अवसर दिया था उसका पूरा-पूरा उपयोग किया और तुम उत्तीर्ण हो गए हो।

आज इतना ही।

क्या धरती पर स्वर्ग उतारा जा सकता है? क्या इस बार हम कुछ नये की आशा संजो सकते हैं?
कान्हा! क्या होली नहीं खेलोगे?
कुंडलिनी या सक्रिय ध्यान में ऊर्जा जाग्रत होने पर उसे नाचकर क्यों खत्म कर दिया जाता है?
क्या राजनीति अध्यात्म के विपरीत है?

एक ध्यान-अनुभव पर प्रकाश डालने हेतु भगवान से निवेदन।

आपसे और आश्रम से मेरे दूर रखे जाने में राज क्या है?

आपको सुन-सुनकर भक्ति का रोग लग गया है। अब धैर्य नहीं रखा जाता है। आकांक्षा होती है सब अभी हो जाए।

जागरण है द्वार स्वर्ग का

चौदहवां प्रवचन

पहला प्रश्नः क्या धरती पर स्वर्ग उतारा जा सकता है? क्या भविष्य में कभी एक स्वस्थ, महत्वाकांक्षाओं और उत्तेजनाओं से मुक्त और प्रेमपूर्ण समाज का निर्माण हो सकता है? अतीत का अनुभव तो यही कहता है कि मुक्त पुरुषों के पास कुछ मुट्ठी भर लोग मुक्ति को प्राप्त हुए और शेष समाज वैसा का वैसा ही बना रहा। आप कुछ अनूठे अवश्य हैं, आपका प्रयोग भी बहुत मौलिक और क्रांतिकारी है। आप कहते हैं मनुष्यता भी प्रौढ़ हुई है। क्या इस बार हम कुछ नये की आशा संजो सकते हैं?

अरुण, पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने की कोई जरूरत नहीं है, पृथ्वी स्वर्ग है। बस जागने की जरूरत है। स्वर्ग कहीं से लाना नहीं है, न ही स्वर्ग निर्मित करना है, स्वर्ग में हम जी रहे हैं; लेकिन सोए हुए हैं। हमारे चारों तरफ स्वर्ग का उल्लास प्रवाहित है। स्वर्ग की रंगरलियां चल रही है। लेकिन आदमी मूर्छित है। वह अपने मन में खोया है।

मन यानी नींद। मन यानी मूर्च्छा। चूंकि हम मन में खोए हैं, इसलिए उसे नहीं देख पाते हैं जो मौजूद है। जो सामने खड़ा है, उससे वंचित रह जाते हैं। नहीं तो ऐसे कैसे हो सकता था कि कुछ लोग—कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई कबीर, कोई शांडिल्य, कोई नारद, यहीं रहते हुए स्वर्ग को उपलब्ध हो गए! ऐसा तो नहीं हो सकता कि एक टुकड़ा स्वर्ग का बुद्ध के लिए उतरा होगा पृथ्वी पर। बुद्ध के लिए उतरता तो कम से कम जो बुद्ध के पास थे उनको भी दिखायी पड़ता। नहीं, ऐसा हुआ कि और सब सोए रहे, कोई एक व्यक्ति जाग गया। जो जाग गया, वह स्वर्ग में प्रविष्ट हो गया।

जागरण स्वर्ग का द्वार है।

जागो तो तुम पाओगे कि स्वर्ग में ही थे। सदा से स्वर्ग में थे। और यह अनुभव तुम्हें रोज भी होता है। रात सो जाते हो, याद भी नहीं रह जाती कि कहां सोए हो, किस घर में सोए हो; कौन पत्नी है, कौन पिता है, कौन मां है, कौन भाई, कौन बहन; क्या धंधा, क्या व्यवसाय, शिक्षित, अशिक्षित, अमीर, गरीब? सब खो जाता है। सो गये तो बिलकुल भूल गये। सुबह जाग कर फिर सब याद आ जाता है।

स्वर्ग पुनर्स्मरण है।

हर बच्चा स्वर्ग में पैदा होता है। फिर हम उसे भुलाने की कोशिश करते हैं। फिर हम उसे अपने नर्क की दीक्षा देते हैं। उस दीक्षा को हम संस्कार कहते, संस्कृति कहते, समाज कहते, धर्म कहते। हमने बड़े प्यारे नाम रखे हैं उस दीक्षा के। दीक्षा का मूल सार इतना है कि बच्चे से उसका स्वर्ग छीन लो। उसकी सरलता छीन लो। उसका निर्दोष-भाव छीन लो। उसकी आंखों की ताजगी छीन लो। उसके चित्त का जो दर्पण जैसा निश्छल रूप है, उसे नष्ट कर दो; भर दो कूड़े-करकट से।

बच्चा पैदा होता है तो न हिंदू होता है, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन। बनाओ उसे जल्दी हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई, बौद्ध। कहीं देर न हो जाए! उसे कुछ पता नहीं होता क्या बुरा, क्या भला। जल्दी उसे सिखाओ कि उसे बुरे-भले का पता हो जाए! उसे कुछ पता नहीं है—भविष्य का, अतीत का। उसे समय की भाषा सिखाओ! उसे अतीत की याददाश्तें सिखाओ, उसे भविष्य की आकांक्षाएं दो। उसे कुछ पता नहीं है कि महत्वाकांक्षी होना चाहिए। उसे दौड़ में लगाओ। उससे कहो—तुझे प्रथम आना है। उसे सिखाओ कि दूसरों की गर्दन काटनी है। उसे सिखाओ कि अपने जीने के लिए यह बिलकुल जरूरी है कि दूसरों की गर्दन काटी जाएं। उसे सिखाओ कि दूसरों के सिरों की सीढ़ियां बनाओ और चढ़ते जाओ। उसी सीढ़ी चढ़ना सिखाओ। कहां पहुंचेगा, यह कुछ पता

नहीं है—कोई कभी उस सीढ़ी से कहीं पहुंचा है, इसका भी पता नहीं है—मगर चढ़ते जाओ और चढ़ते जाओ। धन तो और धन, पद तो और पद। और की दीक्षा हम देते हैं।

और की दीक्षा नर्क की दीक्षा है।

जितना है, उससे तृप्त मत होना। जो पास हो, उसकी फिक्र मत करना, जो दूर है, उसकी फिक्र करना। जो मिले, उसको भूल जाना, जो न मिले, उसके सपने देखना। और क्या नर्क है! असंतोष नर्क है। संतोष स्वर्ग है। जो है, बहुत है; जो है, बहुत खूब है; जो है, बहुत से ज्यादा है, जरूरत से ज्यादा है। और की जहां आकांक्षा नहीं है, जो मिला है उससे जो अनुगृहीत है, वह स्वर्ग में है। हर बच्चा स्वर्ग में है। इसलिए तुम देखते हो, कोई बच्चा कुरूप नहीं होता। सब बच्चे सुंदर होते हैं। स्वर्ग में कोई कुरूप कैसे हो सकता है?

सब बच्चे सुंदर पैदा हो जाते हैं। सुंदर ही पैदा होते हैं। फिर धीरे-धीरे कुरूप होने लगते हैं। फिर हिंदू, फिर मुसलमान, फिर ईसाई; फिर हजार तरह के अहंकार और हजार तरह की सीमाएं और हजार तरह के बंधन और उनका चित्त संकीर्ण होता है, संकीर्ण होता जाता है। फिर एक कारागृह रह जाता है। फिर सभी लोग कुरूप हो जाते हैं। उस कुरूपता का नाम नर्क है।

तो पहली बात तो तुम्हें याद दिला दूं कि स्वर्ग कहीं से लाना नहीं है, स्वर्ग आया हुआ है। हम स्वर्ग में पैदा हुए हैं। यह सारा अस्तित्व स्वर्ग है। नर्क कहीं है ही नहीं। सिवाय आदमी की भ्रांति के नर्क कहीं भी नहीं है। दुख आदमी का सृजन है। परमात्मा से केवल सुख की धारा ही बह रही है। हम बड़े कुशल हैं, हम सुख को दुख बना लेने में कुशल हैं। हम फूलों से कांटे ढाल लेते हैं। जहां अहोभाव होना चाहिए, वहां हम शिकायतें खड़ी कर लेते हैं। जहां झुकने की धारा बहनी चाहिए वहां हम अकड़ कर खड़े हो जाते हैं और सूख जाते हैं। गलती हमारी है, पृथ्वी की कोई गलती नहीं है। पृथ्वी सवा□ग सुंदर है।

इसीलिए यह हो सका कि जो जाग गया, वह स्वर्ग में प्रविष्ट हो गया। बुद्ध यहीं स्वर्ग में रहे। मैं यहीं स्वर्ग में हूं। तुम भी उसी दुनिया में हो, मैं भी उसी दुनिया में हूं, हम कहीं अलग-अलग दुनियाओं में नहीं हैं, पर मेरे देखने का ढंग और, तुम्हारे देखने का ढंग और। तो स्वर्ग देखने के ढंग की बात है। नर्क भी देखने के ढंग की बात है। हमारी दृष्टि बदलनी चाहिए। दृष्टि ही सृष्टि है। उससे ही हम सृजन करते हैं।

जाओ और तुम स्वर्ग में प्रविष्ट हो जाओगे। और स्वर्ग तुममें प्रविष्ट हो जाएगा।

दूसरी बात, समाज कभी स्वर्ग में हो पाएगा या नहीं, कहना मुश्किल है। होना चाहिए, मगर हो पाएगा या नहीं, कहना मुश्किल है।

क्यों?

क्योंकि मनुष्य स्वतंत्र है। स्वर्ग जबरदस्ती थोपा नहीं जा सकता। यह ऐसी कोई बात नहीं है कि आज्ञा दे दी कि बस अब स्वर्ग हो जाए! यह प्रत्येक व्यक्ति को निर्णय लेना पड़ता है कि मैं दुखी जीना चाहता हूं या सुखी जीना चाहता हूं। यह आत्म-निर्णय है। यह कोई सरकारी आज्ञा नहीं हो सकती कि एक दिन तय कर लिया—जैसे कि हमने तय कर लिया कि इस दिन स्वतंत्रता हो गयी, देश स्वतंत्र हो गया; इस दिन देश लोकतंत्र बन गया और देश लोकतंत्र बन गया; ऐसी कोई बचकानी बात नहीं है कि एक दिन हमने तय कर लिया कि फलां तारीख को फलां सन एक जनवरी को घोषणा हो जाएगी कि अब हम स्वर्ग में प्रवेश कर गये। इस तरह घोषणाओं से नहीं होनेवाला है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी अस्तित्व में निर्णय लेना पड़ता है कि मैं क्या चुनूं—स्वर्ग या नर्क? यह प्रत्येक व्यक्ति की आंतरिक स्वतंत्रता है। इस स्वतंत्रता में गरिमा है। और खतरा भी है।

थोड़ा समझो—

अगर स्वर्ग अनिवार्य हो, तो स्वतंत्रता नष्ट हो जाएगी। अगर स्वर्ग ऐसा हो कि उससे अलग होने का उपाय ही न हो, कि तुम्हें स्वर्ग में होना ही पड़े, तुम लाख उपाय करो तुम दुखी न हो सको, तो वह सुख भी सुख नहीं रह जाएगा। उसमें स्वतंत्रता खो गयी। और स्वतंत्रता सुख की एक अनिवार्य आधारशिला है।

जो स्वर्ग जबर्दस्ती मिल जाएगा, वह कैसा स्वर्ग होगा? इसलिए स्वर्ग की संभावना में ही नर्क भी छिपा है। समझ लेना बात को। स्वतंत्रता का अर्थ ही यह होता है। अगर तुमसे कोई कहे कि तुम्हें अच्छे काम करने की स्वतंत्रता है, तो इसका क्या मतलब होगा? इसका कोई मतलब नहीं होगा। अच्छे काम की स्वतंत्रता में बुरे काम की स्वतंत्रता सम्मिलित है। कोई कहे कि तुम्हें राम होने की स्वतंत्रता है। लेकिन राम होने की स्वतंत्रता में रावण होने की स्वतंत्रता सम्मिलित है। अगर तुम रावण हो ही न सको, तो फिर राम होने की स्वतंत्रता का अर्थ क्या हैं? रावण भी हो सकते हो, इसलिए राम होने का मजा है। नर्क में हो सकते हो, इसलिए स्वर्ग में होने का मजा है। बीमार हो सकते हो, इसलिए स्वास्थ्य में रस है। मर सकते हो, इसलिए जीवन प्यारा है। घृणा घेर सकती है, इसलिए प्रेम में आनंद है। स्वतंत्रता विपरीत की स्वतंत्रता है। प्रत्येक व्यक्ति को हर बार—बार-बार निर्णय लेना पड़ता है। यह व्यक्ति की निर्णायकता पर निर्भर है।

इसलिए समाज की भाषा में पूछो ही मत कि समाज कभी स्वर्ग में होगा या नहीं होगा? हां, इतना मैं जरूर कह सकता हूं कि लोग अब ज्यादा से ज्यादा स्वर्ग में होंगे। संख्या बढ़ती जाएगी।

क्यों?

उसके कुछ कारण हैं। पहले क्यों नहीं हो सका, उसके भी कारण हैं। बुद्ध जैसा व्यक्ति स्वर्ग में प्रवेश कर सका। बड़ी प्रतिभा की जरूरत थी। क्योंकि पूरा समाज बड़ा संकीर्ण था, बड़ा छुद्र था। उस क्षुद्रता और संकीर्णता से मुक्त होना करीब-करीब असंभव कृत्य था। चमत्कार था! सब समाज उतना संकीर्ण नहीं है। तुम देखते हो, मैं अभी भी जिंदा हूं, मुझे सूली नहीं लगा दी गयी है। और जो मैं कह रहा हूं, उसके मुकाबले जीसस ने जो कहा था वह कुछ भी नहीं है। लेकिन जीसस को सूली लग गयी। समाज बड़ा संकीर्ण था। बड़ा छुद्र था। मैं जो कह रहा हूं, वह बुद्ध भी तुमसे कहना चाहते थे लेकिन कहा नहीं। तो तुम मत सोचना कि जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह बुद्ध नहीं कहना चाहते थे। बुद्ध भी कहना चाहते थे। बुद्धत्व का स्वाद लेकर तुमसे कह रहा हूं कि कहना ही चाहा होगा उन्होंने भी। क्योंकि उस घड़ी में जो मुझे दिखायी पड़ रहा है, उन्हें भी दिखायी पड़ा होगा। लेकिन नहीं कहा। तुम्हारे कान उसे झेल न पाते। तुम्हारी आत्माएं उसे अंगीकार न कर पाती। मनुष्य का हृदय थोड़ा विस्तीर्ण हुआ है।

तुम देखते हो, यहां हिंदू बैठे हैं, मुसलमान बैठे हैं, जैन बैठे हैं, बौद्ध बैठे हैं; ईसाई हैं, सिक्ख हैं, पारसी हैं; यहां शायद ही कोई दुनिया में ऐसा धर्म हो जिसका प्रतिनिधि मौजूद नहीं है। ऐसा कभी हुआ था? ऐसा कभी नहीं हुआ था। जीसस को सुननेवाले यहूदी थे। बुद्ध को सुनने वाले हिंदू थे। मुहम्मद को सुननेवाले, एक दायरा था, एक सीमा थी। ऐसा संगम कभी घटा है? घट ही नहीं सकता था। असंभव था। मनुष्य इतना प्रौढ़ नहीं था। आज घट सकता है। आज घट सकता है तो संभावनाएं बड़ी हो गयी। मैं यह नहीं कहता कि सारा समाज स्वर्ग में प्रवेश कर जाएगा, पर इतना जरूर कहता हूं कि अधिक से अधिक लोग प्रवेश कर सकेंगे। रोज द्वार बड़ा होता जाएगा।

ऐसा समझो कि हर चीज के पीछे एक क्रमबद्ध श्रृंखला होती है। जैसे समझो, हम चांद पर पहुंच गये। चांद पर पहुंचने की आकांक्षा सदियों पुरानी है। जितना मनुष्य पुराना है, उतनी आकांक्षा पुरानी है। हर बच्चा पैदा हो कर चांद की तरह हाथ बढ़ाता है। चंदामामा को पकड़ लाना चाहता है। रोता है कि चंदा को पकडूंगा।

पुरानी कथा है कि कृष्ण रो रहे हैं चांद को पकड़ने के लिए। और यशोदा ने एक थाली में पानी भर कर रख दिया। और चांद का प्रतिबिंब थाली में पड़ने लगा और कृष्ण ने थाली में बने चांद के प्रतिबिंब को हाथ डालकर पकड़ने की कोशिश की है।

चांद को पकड़ने की कोशिश बड़ी पुरानी है। लेकिन पहुंच हम पाए। अब तक नहीं हो सका था यह, अब हो सका। इसके पीछे एक क्रमबद्ध श्रृंखला है। जिनके पास बैलगाड़ी नहीं थी, उनके पास हवाई जहाज तो नहीं हो सकता, इस बात को समझ लेना। बैलगाड़ी हो, फिर कार बने, फिर ट्रेन बने, फिर हवाई जहाज बने, फिर कहीं अंतरिक्षयान बन सकता है। कोई आदिम समाज अंतरिक्षयान नहीं बना सकता। इसलिए मैं कहता हूं कि तुम्हारी जो कहानियां हैं कि रामचंद्र जी पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या आए, सब कहानियां हैं। क्योंकि साइकिल का भी उल्लेख नहीं है। मोटर का भी उल्लेख नहीं है। बिना कार के हवाई जहाज नहीं बन सकता। और जो हवाई जहाज बना लेंगे, उन्होंने उसके पहले कार बना ही ली होगी—तो ही हवाई जहाज बन सकता है। एक क्रमबद्ध श्रृंखला है। एक सीढ़ी है। कोई भी घटना आकस्मिक नहीं घट जाती है। अंतरिक्षयान बन सकता है तभी, जब हवाई जहाज अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाए।

ठीक ऐसा ही जीवन के और तलों पर भी सच है। महावीर ने जो कहा, वह अकेला काफी नहीं हैं बहुत बड़ी संख्या को स्वर्ग में ले जाने के लिए। उसमें फ्रॉयड का जुड़ जाना जरूरी है। कृष्ण ने जो कहा, वह अकेला काफी नहीं बहुत बड़ी संख्या को स्वर्ग में ले जाने के लिए। उसमें मॉर्क्स का जुड़ जाना जरूरी है। और बुद्ध ने जो कहा, वह काफी नहीं है बहुत बड़ी संख्या को स्वर्ग में ले जाने के लिए। उसमें आइंस्टीन का हाथ अनिवार्य है।

आज हम एक अनूठी घड़ी में हैं। सारे उपकरण मौजूद हैं। पृथ्वी चाहे तो अब स्वर्ग की घोषणा कर सकती है। बहुत बड़ी संख्या में लोग आंखें खोल सकते हैं, ध्यान में उतर सकते हैं, प्रार्थनापूर्ण हो सकते हैं। अब बाधा उपकरण की दृष्टि से नहीं है, सब तो बाधा सिर्फ पुरानी आदतें तोड़ने की है।

फर्क समझ लेना!

तुम्हारे लिए कार भी दे दी जाए, तो जरूरी नहीं है कि तुम उसमें बैठोगे। तुम कहोगे—बैल कहां? बिना बैल के यह चलेगी कैसे?

जब पहली दफा रेलगाड़ी बनी तो तुम जानकर हैरान होओगे, लंदन में उसमें कोई बैठने को राजी नहीं था। मुफ्त बिठाया जा रहा था। एक तीस मील की यात्रा करवायी जा रही थी, कोई रेलगाड़ी में बैठने को राजी नहीं था। लोग चारों तरफ देखकर जाते, वे पूछते—घोड़े कहां है? बिना घोड़े के यह चलेगी कैसे? बड़ी मुश्किल से समझाया जाता उन्हें कि यह भाप से चलेगी। वे कहते-ठीक, चलो चल भी गयी, फिर रुकेगी कैसे? और नहीं रुकी तो फिर? हम तो बैठ जाए इसमें, फिर यह न रुके! कभी रोक कर देखी? उसके पहले गाड़ी चली ही नहीं थी, इसलिए किसीने रोक कर देखी भी नहीं थी। और बड़ी अफवाहें उड़ गयी।

और छोटे-मोटे लोगों ने नहीं उड़ायीं, चर्च के बड़े पुरोहित ने भी घोषणा कर दी चर्च में रविवार को कि जो बैठेगा इस रेलगाड़ी में, वह ध्यान रखे कि वह ईसाई नहीं रहा। क्योंकि कोई ईसाई कभी रेलगाड़ी में नहीं बैठा। और फिर परमात्मा ने रेलगाड़ी क्यों नहीं बनायी? अगर रेलगाड़ी बनानी ही थी तो परमात्मा बनाता। उसने तो प्रकृति पूरी बना दी, छः दिन में, फिर सातवें दिन आराम किया, छः दिन में सब बना दिया, उसने हर चीज बना दी, रेलगाड़ी क्यों नहीं बनायी? यह रेलगाड़ी जरूर शैतान की ईजाद है। यह तर्क जंचा लोगों को। फतवा मिल गया ऊपर से कि कोई रेलगाड़ी में न बैठे। कोई बैठने को राजी नहीं था।

तुम हैरान होओगे कि लोगों को पैसे देने पड़े! और जो बैठने को राजी हुए वे इस तरह के लोग थे...अपराधी, जुआरी, शराबी! जिन्होंने कहा कि चलो ठीक है, रहे तो रहे, न रहे तो भी क्या? ईसाई न रहे तो भी क्या? और शैतान की गाड़ी चलो ठीक है! हम तो पुराने ही शैतान के शिष्य हैं। वे बैठ गये। सिर्फ आठ आदमी। जिस गाड़ी में तीन सौ लोगों के बैठने की व्यवस्था थी, सिर्फ आठ आदमी बैठे। पूरे लंदन में आठ हिम्मतवर आदमी मिले। वे भी छाती कड़ी करके बैठे थे कि पता नहीं क्या होनेवाला है? रेलगाड़ी मौजूद है, लेकिन बैठने को कोई राजी नहीं।

आज ऐसी ही घड़ी है।

मैं तुमसे जो कह रहा हूं, लेकिन उसको तुम सुनने को राजी नहीं। सुन भी लो तो करने को राजी नहीं। तुम्हारी पुरानी आदतें, तुम्हारे पुराने विश्वास, तुम्हारी पुरानी श्रद्धाएं बाधा बन रही हैं। उपकरण तो मौजूद है। लेकिन कितनी देर तक ये बाधा बनेगी? आठ आदमी भी बैठ गये अगर...वही आठ आदमी मेरे संन्यासी हो गये हैं...आठ आदमी भी अगर बैठ गये तो यह रेलगाड़ी चल पड़ेगी। और एक बार चल पड़ी तो संख्या बैठनेवालों की बढ़ती जाएगी। सब सारी दुनिया बैठ रही है, अब किसी को चिंता नहीं है। अब कोई पूछता ही नहीं कि रेलगाड़ी रुकेगी कि नहीं रुकेगी? इसको रोकोगे कैसे? इसमें घोड़े कहां, बैल कहां, कौन चला रहा है, इसके भीतर कोई भूत-प्रेत तो नहीं है, शैतान का हाथ तो नहीं है?...और शकल भी रेलगाड़ी की और इंजिन की कुछ शैतान जैसी लगती है! यमदूत जैसा मालूम होता है इंजिन। और इतनी ताकत से चलता है, धड़धड़ा के चलता है, पता नहीं क्या होगा परिणाम इसका?

मनुष्यजाति ने पिछले पांच हजार सालों में वह सब खोज लिया है—धीरे-धीरे करके। कुछ बुद्ध ने खोजा, कुछ पतंजलि ने खोजा, कुछ मुहम्मद ने खोजा, कुछ क्राइस्ट ने, कुछ मूसा ने, कुछ लाओत्सू ने, कुछ जरथुस्त्र ने; अनेक-अनेक, अन्वेषियों ने, अनेक-अनेक जाननेवालों ने सारे खंड खोज लिये हैं। उन खंडों को बिठा देने की बात है। उनको मैं बिठाने की कोशिश कर रहा हूं। इसलिए मुझसे लोग पूछते हैं कि आप एक ही धारा पर क्या नहीं बोलते? जैन मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, अगर आप सिर्फ महावीर पर बोलें तो हम आपके साथ हैं। लेकिन आप कृष्ण पर भी बोल देते हैं। तब हमें बड़ी चोट लग जाती है। कृष्ण को मानने वाला कहता है, अगर आप कृष्ण पर ही बोलते रहें, तो सारे हिंदू आपके साथ खड़े हो जाएंगे। लेकिन आप मुहम्मद को बीच में ले आते हैं, कि ईसा को बीच में ले आते हैं। कि अगर आप योग पर ही बोलें तो ठीक, मगर आप तंत्र पर भी बोल देते हैं।

मेरी कोशिश और तरह की है। वैसी कोशिश की नहीं गयी है। मैं सारी दुनिया में सत्य के जितने दर्शन हुए हैं, जिन-जिन झरोखों से सत्य की झलक देखी गयी है, उन सारी झलकों को तुम्हारे सामने इकट्ठा कर देना चाहता हूं। क्योंकि उनके इकट्ठे हो जाने पर ही भविष्य निर्भर है। उनके इकट्ठे होते ही मनुष्यता के इकट्ठे होने का आधार बन जाएगा। जब तक तुम्हें मुहम्मद और महावीर में भेद दिखायी पड़ता रहेगा, तब तक आदमी इकट्ठा नहीं हो सकता। जब तक तुम्हें कृष्ण और क्राइस्ट में शत्रुता मालूम पड़ेगी, तब तक तुम कैसे ईसाई के साथ हाथ मिला सकते हो, और ईसाई तुमसे हाथ मिला सकता है? मिलाओगे भी तो धोखाघड़ी होगी, चालबाजी होगी, पीछे इरादे कुछ और होंगे, मुख में राम बगल में छुरी होगी। लेकिन जिस दिन यह बिलकुल साफ हो जाएगा कि इन सारे लोगों ने सत्य के ही अलग-अलग पहलुओं की चर्चा की है, और सारे पहलू मिलकर पूरा सत्य प्रकट हो जाता है, जैसे सारे पहलू मिलकर एक हीरा चमक उठता है। एक-एक पहलू से तो हीरा कमजोर होता है; सारे पहलू, अनंत पहलुओं से जब चमक आती है, अनंत पहलुओं से जब सूरज की किरणें लौटती हैं; प्रतिफलित होती हैं, रंग-बिरंगे इंद्रधनुष बन जाते हैं। वही प्रयास कर रहा हूं।

मनुष्यजाति अब ज्यादा सुगमता से इस पृथ्वी पर स्वर्ग बसा सकती है। स्वर्ग बसाने का मतलब—स्वर्ग है, उसका आविष्कार कर लेना। उसको देख लेना। यह अब तक नहीं हो सकता था, क्योंकि बिना मार्क्स के महावीर अधूरे हैं। आदमी देह भी उतना ही है, जितनी आत्मा। सिर्फ आत्मा आत्मा की बात करो और देह को विस्मरण कर दो, तो ज्यादा देर आत्मा की बात करनेवाले लोग जिंदा नहीं रहेंगे।

वही भारत में हुआ। हमने जरूरत से ज्यादा आत्मा की बात कर दी—और करने का कारण था। क्योंकि हमने देखे महावीर, हमने देखे कृष्ण, हमने देखे बुद्ध, हमने वह अपूर्व ज्योति देखी आत्मा की कि हम एकदम विमोहित हो गये, सम्मोहित हो गये और हमने कहा कि छोड़ो फिक्र पदार्थ की, बस आत्मा ही सब कुछ है—जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य—बस हमने कहा कि अब सब छोड़ो, अब तो बस आत्मा की ही खोज कर लेनी है। लेकिन महावीर को भी भोजन की जरूरत पड़ती है, बुद्ध को भी भिक्षा मांगने जाना पड़ता है, यह हम भूल ही

गये। यह हम भूल ही गये कि बुद्ध को भी रोटी की उतनी ही जरूरत है जितनी तुम्हें है। उन्हें भी वस्त्र की जरूरत पड़ती है, जितनी तुम्हें है। उन्हें भी रात छप्पर की जरूरत पड़ती है। जितनी तुम्हें है। आत्मा से हम ऐसे ज्यादा प्रलोभित हो गये—और जो जाने का स्वाभाविक कारण था, हमने इतनी जगमगाती आत्माएं देखीं, ऐसे रौशन लोग देखे, ऐसे चमकते दीये देखे, कि ज्योति से हमारी आंखें बंध गयीं, हम भूल ही गये कि ज्योति दीये में है। मिट्टी का दीया, उसमें भरा हुआ तेल और फिर ज्योति है।

हम ज्योति से ऐसे सम्मोहित हुए कि हम दीये की बात भी भूल गये, तेल की बात भी भूल गये और बिना दीये और बिना तेल के ज्योति बुझ जाएगी, यह हमें स्मरण न रहा—और ज्योति बुझ गयी। यह देश गरीब से गरीब होता चला गया है, दीन से दीन होता चला गया है, रुग्ण से रुग्ण होता चला गया है। इसमें वही ज्योति के साथ जो अति आग्रह पैदा हो गया है, कारण है। हमने इंकार ही कर दिया देह का। और देह के बिना आदमी कहां? भूमि के बिना वृक्ष कहां? देह के बिना आदमी कहां? इस संसार के बिना परमात्मा कहां? यह संसार उसकी देह है, उसकी काया है—यह दिव्य काया है। यह तुम्हारी देह, तुम्हारी काया, तुम्हारे भीतर छिपे हुए परमात्मा का मंदिर है।

इसका स्वाभाविक परिणाम हुआ, दूसरी अति पैदा हुई, मार्क्स ने कह दिया—न कोई आत्मा है, न कोई परमात्मा है; सब बकवास है। उसके भी पीछे कारण है। जब देखा कि इसी बकवास के कारण लोग दीन और दरिद्र हो गये हैं और सड़े जा रहे हैं, तो स्वाभाविक यह प्रतिक्रिया पैदा हुई कि न कोई ईश्वर, न कोई आत्मा, बस आदमी सिर्फ देह है। और चेतना पदार्थ का ही एक आविर्भाव है। जैसे पान चबाते हो न—चार्वाकों ने कहा—चार-पांच चीजों से मिलकर पान बन जाता है, फिर ओंठ लाल हो जाते हैं। उन चार-पांच चीजों को अलग-अलग चबा लो, ओंठ लाल नहीं होते। चार्वाकों ने कहा कि यह जो लाली है, कोई अलग चीज नहीं है, उन पांचों के मिलने से पैदा हो जाती है। ऐसे ही पांच तत्वों के मिलने से जो लाली दिखायी पड़ती है—आत्मा—वह कोई अलग चीज नहीं है। बस वह पान की लाली है।

शराब जिन चीजों से मिल कर बनती है, उनको अलग-अलग खा लो, तुम्हें नशा नहीं चढ़ेगा। उनको मिला कर लोगे, तब नशा चढ़ेगा। तो नशा उन चीजों के मिलन से पैदा हो रहा है—अलग नहीं है। उन चीजों से अलावा नशा जैसी कोई चीज नहीं है, ऐसा नहीं है कि तुम शराब से उसके बनानेवाले तत्वों को अलग कर लो, पीछे नशा बचा रह जाएगा। शुद्ध नशा नहीं बचेगा। ऐसे ही कोई शुद्ध आत्मा नहीं है।

तो चार्वाक से लेकर मार्क्स तक बगावत हुई। नास्तिक ने इंकार कर दिया, भौतिकवादी ने इंकार कर दिया। उसने भी एक तरह की दुनिया बनाने की कोशिश की रूस में, चीन में—जहां आदमी सिर्फ देह है। वहां दीया तो बड़ा सुंदर बन गया है, लेकिन उसमें ज्योति नहीं है। तेल भी खूब भरा है, मगर बाती नहीं है—और बाती को जलाने का सवाल नहीं है, ऐसी कोई चीज होती ही नहीं।

तो एक तरफ देह मर गयी, आत्मा बची। और जब देह मर जाए तो बहुत दिन आत्मा नहीं बच सकती। दूसरी तरफ आत्मा मर गयी, देह बची और जब आत्मा मर जाए तो देह कितने दिन बच सकती है? देह सड़ जाएगी लाश हो जाएगी। तुमने देखा नहीं, जब तक आत्मा है देह में तब तक सब सुंदर है, सब सुवासित है। इधर आत्मा उड़ी, इधर पक्षी उड़ा, कि देह सड़ी। फिर घर में घर के ही लोग जो तुम्हें जरा-सा कांटा गड़ जाता था तो रोते थे, तड़पते थे, वे ही तुम्हें ले चले मरघट जलाने! कितनी जल्दी पड़ती है, तुमने देखा, कोई मर जाता है तो कितनी जल्दी होती है! रोकना ही नहीं चाहते लोग एक घड़ी में मुर्दे को। अब सिवाय दुग□ध के और कुछ नहीं है। अगर घर के लोग रोने-धोने में लगे होते हैं। तो पास-पड़ोस के लोग सहायता करते हैं, वे जल्दी से अर्थी बनाने लगते हैं। मगर चलो, ले चलो, अब जल्दी करो! सारा गांव बस एक ही बात में उत्सुक होता है—जल्दी जलाओ, निपटाओ, खतम करो मामला! अब इसको घर में नहीं रखना है। यह तुम्हारी प्यारी मां थी, तुम्हारी

प्यारी पत्नी थी, तुम्हारे प्यारे पिता थे, तुम्हारा बेटा था, एक क्षण रोकने को राजी नहीं हो तुम। क्या हो गया? दीया बचा, ज्योति नहीं है अब। दीये का क्या मूल्य है?

ये दो भ्रांतियां हो चुकी हैं, इसलिए पृथ्वी पर स्वर्ग नहीं बन पाया।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, अब संभव है। और मैं तुम्हें जो जीवनदृष्टि दे रहा हूं, वह न तो आध्यात्मिक है और न भौतिक है। मैं तुम्हें एक ऐसी जीवनदृष्टि दे रहा हूं जिसमें भौतिकता और अध्यात्म, दोनों का समन्वय है। जिसमें दीया भी है और ज्योति भी हैं। इसलिए मुझसे सभी नाराज हैं। मुझसे—कम्यूनिस्ट आता है, वह नाराज है। उसकी नाराजगी यह है कि आप कुछ बातें तो ठीक कहते हैं, जहां तक दीये की बात करता हूं वह कहता है—आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं, मगर यह ज्योति की बात क्यों छेड़ देते हैं? यह नहीं जंचती। इससे हम आपसे नाराज हैं। और मेरे पास आध्यात्मिक व्यक्ति आते हैं, वे कहते हैं—और सब तो ठीक है, आप जब ज्योति की बात करते हैं तो हम भी तल्लीन हो जाते हैं, मगर आप देह की बात क्यों छेड़ देते हैं; उससे सब खराब हो जाता है! सिर्फ समाधि की बात करें संभोग की बात क्यों उठा देते हैं? अगर आप समाधि की ही बात करें, तो सब सुंदर है। मेरे पास फ्रॉयड को माननेवाले लोग आते हैं, वे कहते हैं—संभोग की बात करते हैं वह तो बिलकुल ठीक है, यह समाधि को कहां से लाते हैं? यह समाधि बिलकुल झूठी बात है।

तो मेरी अड़चन तुम समझना। मुझसे सब नाराज हैं। भौतिकवादी नाराज है, क्योंकि मैं अध्यात्म की बात करता हूं। अध्यात्मवादी नाराज हैं क्योंकि मैं भौतिकवाद की बात करता हूं। लेकिन मैं दोनों की बात कर रहा हूं। और मैं चाहता हूं कि तुम दोनों की बात समझ लो, क्योंकि तुम दोनों के जोड़ हो। और यह पृथ्वी आकाश और पृथ्वी का जोड़ है। और पृथ्वी पर स्वर्ग का आविर्भाव हो सकता है तभी, जब हम दोनों को सम्हाल पाएं। इसकी सम्हालने की संभावनाएं बड़ी हो गयी हैं अब। इतनी बड़ी कभी भी नहीं थी। इसलिए बहुत लोग प्रवेश पा सकते हैं। मगर फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि समाज सामूहिक रूप से प्रवेश पा जाएगा। समाज के पास कोई आत्मा नहीं होती। प्रवेश तो व्यक्ति पाता है।

सुख और दुख व्यक्ति में घटते हैं, समाज में नहीं घटते। समाज के पास संवेदना का कोई आधार ही नहीं है। समाज तो केवल संज्ञा मात्र है, नाम मात्र है। जैसे तुम यहां बैठे हो, पांच सौ लोग मेरे सामने बैठे हैं, यह पांच सौ लोगों का समाज है इसमें से एक-एक आदमी उठकर चला जाएगा, जब सब चले जाओगे तो यहां पीछे कुछ भी नहीं बचेगा, कोई समाज नहीं बचेगा। तो समाज तो केवल एक नाम मात्र था, पांच सौ लोगों के इकट्ठे मौजूद होने का नाम था। असलियत तो व्यक्ति थे। वे पांच सौ व्यक्ति थे, पांच सौ आत्माएं थीं। अब तुम मुझे सुन रहे हो, यहां कोई समाज ही सुन रहा है मुझे, पांच सौ व्यक्ति सुन रहे हैं, प्रत्येक व्यक्ति सीधा मुझे सुन रहा है, मेरे और व्यक्ति के बीच में कोई समाज नहीं है। समाज कामचलाऊ शब्द है। उसका उपयोग करो, मगर ध्यान रखना—समाज की कोई सत्ता नहीं है। समाज का कोई अस्तित्व नहीं है। संज्ञामात्र है।।

ऐसी ही जैसे हम कहते हैं—जंगल। जंगल का कोई अस्तित्व थोड़े ही होता हैं, अस्तित्व तो वृक्षों का होता है। जंगल का तो इतना ही मतलब है—बहुत वृक्ष खड़े हैं। जंगल का और कोई अर्थ नहीं होता। एक-एक वृक्ष को अलग कर लो, जंगल सफाचट हो जाएगा। कहीं खोजे से न मिलेगा।

तो मैं यह नहीं कह सकता कि समाज की तरह जीवन में क्रांति आ जाएगी। मगर अधिक से अधिक लोग बड़ी से बड़ी संख्याओं में स्वर्ग में प्रवेश कर सकते हैं। ऐसा इसके पहले कभी भी समायोजन न था, जैसा आज है।

दूसरा प्रश्नः कान्हा! आज अंतिम होली है; क्या होली नहीं खेलोगे?

राधा! होली ही खेल रहा हूं। कभी होली, कभी होला। चौबीस घंटे वही चल रहा है, तुम्हें रंगने के ही धंधे में लगा हूं। रंगरेज ही हो गया हूं। काम ही कुछ और नहीं कर रहा। जो आदमी मुझे दिखता है, बस मैं उसे रंगने में

लग जाता हूं। इसलिए जो रंगे जाने से डरते हैं, वे मेरे पास ही नहीं आते। वे दूर-दूर रहते हैं। कहीं रंग की कोई बूंद उन पर न पड़ जाए!

मैं अपने रंग में ही तुम्हें रंग रहा हूं। यहां होली वर्ष में एकाध दिन नहीं आती, होली ही चलती है। सब दिन एक से हैं। और सब दिन रंगने का काम ऐसे ही चलता रहता है। एकाध दिन होली क्या खेलनी!

एकाध दिन होली खेलने के पीछे भी मनोविज्ञान है।

यह जो दिन की होली है, इस तरह के उत्सव सारी दुनिया में हैं—अलग-अलग ढंग से, मगर इस तरह के उत्सव हैं। यह सिर्फ इतना बताता है कि मनुष्यता कितनी दुखी न होगी। एक दिन उत्सव मनाती है, और तीन सौ पैंसठ दिन शेष—दुखी और उदास। यह एक दिन थोड़े मुक्त भाव से नाच-कूद लेती है। गीत गा लेती है। मगर यह एक दिन सच्चा नहीं हो सकता। क्योंकि बाकी पूरा वर्ष तो तुम्हारा और ही ढंग का होता है। न उसमें रंग होता है, न गुलाल होती है। तुम पूरे वर्ष तो मुर्दे की तरह जीते हो और एक दिन अचानक नाचने को खड़े हो जाते हो! तुम्हारे नाच में बेतुकापन होता है। तुम्हारे नाच में जीवंतता नहीं होती। जैसे लंगड़े-लूले नाच रहे हों। बस वैसा तुम्हारा नाच होता है। या जिनको पक्षाघात लग गया है, वे अपनी-अपनी बैसाखी लेकर नाच रहे हैं, ऐसा तुम्हारा नाच होता है। तुम्हारा नाच जब मैं देखता हूं, होली इत्यादि के दिन, तो मुझे शंकर जी की बरात याद आती है। तुम्हें नाच भूल ही गया है। तुम्हें उत्सव का अर्थ ही नहीं मालूम है। इसलिए तुम्हारा उत्सव का दिन गाली-गलौज का हो जाता है।

जरा देखो, तुम्हारे गैर-उत्सव के दिन औपचारिकता के दिन होते हैं, शिष्टाचार-सभ्यता के दिन होते हैं। और तुम्हारे उत्सव का दिन गाली-गलौज का दिन हो जाता है! यह गाली-गलौज तुम भीतर लिए रहते होओगे, नहीं तो यह निकल कैसे पड़ती है? यह होली के दिन अचानक तुम गाली-गलौज क्यों बकने लगते हो? और रंग फेंकना तो ठीक है, लेकिन तुम नालियों की कीचड़ भी फेंकने लगते हो। तुम कोलतार से भी लोगों के चेहरे पोतने लगते हो। तुम्हारे भीतर बड़ा नर्क है। तुम उत्सव में भी नर्क को ले आते हो। और तुम्हारा उत्सव जल्दी ही गाली-गलौज में बदल जाता है। देर नहीं लगती! तुम्हारी असलियत प्रकट हो जाती है। तुम्हारा शिष्टाचार, तुम्हारी औपचारिकताएं सब थोथी हैं। ऊपर-ऊपर हैं। गाली ज्यादा असली मालूम होती है। क्योंकि जैसे ही तुम्हें मौका मिलता है, जैसे ही तुम्हें सुविधा मिलती है, तुम्हारे भीतर से गाली निकल आती है। कांटे निकलते हैं जब तुम्हें सुविधा मिलती है। वैसे तुम बड़े भले मालूम पड़ते हो। वह भलापन तुम्हारा पुलिस के डर से है। वह भलापन तुम्हारा स्वर्ग-मोक्ष-नर्क इत्यादि के भय और लोभ से है। तुम्हारा परमात्मा भी एक बड़े पुलिसवाले से ज्यादा और कुछ भी नहीं है तुम्हारी आंखों में। वह तुम्हें डरा रहा है, डंडा लिए खड़ा है, कि सताऊंगा।

लेकिन फिर भी इन सभी रुग्ण समाजों ने एकाध दिन छोड़ रखा है, क्योंकि नहीं तो आदमी पागल हो जाएगा। निकास के लिए ये दिन छोड़े गये हैं। नहीं तो गंदगी इतनी इकट्ठी हो जाएगी कि आदमी बर्दाश्त न कर सकेगा। और एक सीमा आ जाएगी जहां गंदगी अपने ही से बहने लगेगी। एक सीमा है, उसके बाद मैं ऊपर से बहने लगेगी। ये निकास के दिन हैं। ये असली उत्सव नहीं है। रंग वगैरह फेंकना ऊपर है, भीतर हिंसा है। तुमने देखा जब रंग एक-दूसरे पर लोग चुपड़ते हैं? तो उसमें कोमलता नहीं होती, न हार्दिकता होती, न प्रेम होता। एक तरह की दुष्टता होती है। तुम जाकर देख सकते हो! जैसे दूसरे को सताने की इच्छा है, रंग तो बहाना है। और रंग ऐसा पोत देना है कि बच्चू को याद रहे! दो-चार दिन छुड़ा-छुड़ा कर मर जाएं तो न छुटे! तुम्हारे भीतर कुछ गंदा, कुत्सित भरा हुआ है।

मेरी दृष्टि में जीवन पूरा उत्सव होना चाहिए। तो फिर होली इत्यादि की जरूरत न रहेगी। दीवाली एक दिन क्या? साल भर दिवाला, एक दिन दिवाली, यह कोई ढंग है जीने का? साल भर अंधेरा, एकाध दिन जला लिए दिये! साल भर मुहर्रम, एकाध दिन मना लिया जश्न; पहन लिये नये कपड़े चले मस्जिद की तरफ! मगर तुम्हारी शकल मुहर्रम हो गयी है। तुम लाख उपाय करो, तुम्हारी शकल पर मुहर्रम छा गया है। तुम्हारे सब उत्सव इत्यादि

थोथे मालूम पड़ते हैं, उपर से मालूम पड़ते हैं। उत्सव का आधार नहीं है, बुनियाद नहीं है। उत्सवपूर्ण जीवन होना चाहिए। इसलिए मेरे इस आश्रम में न तो कभी दिवाली है, न कभी होली है। यहां सदा होली है, सदा दीवाली है। यहां चल ही रहा है, यहां नृत्य शाश्वत है। यहां जो भी नाचना चाहे उसे निमंत्रण है। और ख्याल रखना, एकाध दिन कोई नाच ही नहीं सकता। नाचता ही रहे, नाचता ही रहे, तो उसे नाचने का प्रसाद होता है, उसके नाचने में गुणवत्ता होती है, उसके नाचने में अपूर्व भाव होता है। और उसके नाचने में कोमलता, सरलता। उसके नाच में हिंसा नहीं होती। नहीं तो तांडव नृत्य बन जाता है जल्दी ही नाच। तुम्हारे सब उत्सव तांडव नृत्य हो जाते हैं। जल्दी ही गाली-गलौज पर नौबत उतर आती है। तुम्हारे सब उत्सवों में हिंदू-मुस्लिम दंगे हो जाते हैं।

यह बड़ा आश्चर्य की बात है!

उत्सव के दिन दंगा क्यों? मारपीट क्यों? एक-दूसरे को सताने की इच्छा क्यों? गाली-गलौज क्यों? गंदे-अश्लील नाच क्यों? 'कबीर' के नाम से गालियां दी जा रही हैं—हद्द हो गयी! गालियां बकते हो, उसको कहते हो—'कबीर'! कबीर को तो बख्शो!

पीछे कारण है।

तुम्हारा जीवन दमित जीवन है। एकाध दिन के लिए तुम्हें छुट्टी मिलती है, जैसे साल भर को कारागृह में बंद रहते हो, एकाध दिन के लिए छुट्टी मिलती है, सड़कों पर आकर शोरगुल मचा कर फिर अपने कारागृहों में वापिस लौट जाते हो। अब जो आदमी कभी-कभी सड़क पर आता है साल में एकाध बार, अपने काल-कोठरी से छुटता है, वह उपद्रव तो करेगा ही! उसके लिए स्वतंत्रता उच्छृंखलता बन जाएगी। लेकिन जो आदमी सदा ही रास्तों पर है, खुले आकाश के नीचे वह उपद्रव नहीं करेगा।

मैं चाहता हूं, तुम्हारा पूरा जीवन उत्सव की गंध से भरे, तुम्हारे पूरे जीवन पर उत्सव का रंग हो, इसलिए तुम्हें रंग रहा हूं। यह मेरा गैरिक रंग तुम्हारे जीवन को उत्सव में रंगने के लिए प्रयास है। यह गैरिक रंग सुबह ऊगते सूरज का रंग है। यह गैरिक रंग खिले हुए फूलों का रंग है। यह गैरिक रंग अग्नि का रंग है। जिससे गुजर कर कचरा जल जाता है और सोना कुंदन बनता है। यह गैरिक रंग रक्त का रंग है—जीवन का, उल्लास का; नृत्य का, नाच का। इस रंग में बड़ी कहानी है। इस रंग के बड़े अर्थ है।

तो राधा! जिस रंग में मैं तुम्हें रंग रहा हूं उसमें पूरी तरह रंग जाओ। तो होली भी हो गयी, दीवाली भी हो गयी। और यही पृथ्वी तुम्हारे लिए स्वर्ग बन जाएगी।

तीसरा प्रश्नः जब कुंडलिनी या सक्रिय ध्यान में ऊर्जा जाग्रत होती है, तो उसे नाचकर क्यों खत्म कर दिया जाता है?

अरे कंजूस! तुम भारत के सच्चे प्रतिनिधि मालूम होते हो! यह भारतीय बुद्धि का इतिहास है। कुछ खर्च न हो जाए! बस खर्च न हो, बचा-बचाकर मर जाओ!

हर चीज में यह दृष्टि है, तुम इसे थोड़ा समझने की कोशिश करना।

यह भारत के बुनियादी रोगों में से एक है—कंजूसी, कृपणता। कहीं खर्च न हो जाए। और मर जाओगे! तब यह कुंडलिनी और यह ऊर्जा और यह सब पड़ा रह जाएगा। इस देश में अधिक लोग कब्जियत से परेशान हैं। डाक्टरों से पूछो, वे भी यही कहते हैं। भारत जितना कब्जियत से परेशान है, दुनिया का कोई देश इतना कब्जियत से परेशान नहीं है। यह कब्जियत आध्यात्मिक है। इसमें मनोविज्ञान है। हर चीज को पकड़ लो! मल-मूत्र को भी पकड़ लो! और अगर ज्यादा आगे बढ़ जाओ, तो मोरारजी जैसा पी जाओ उसे वापिस। वह भी कंजूसी का हिस्सा है। कहीं निकल न जाए! कोई सारतत्व खो न जाए! 'रि-साइक्लिंग'। फिर डाल दो भीतर फिर-फिर डालते रहो। उसको बिलकुल चूस लो। कुछ निकल न जाए! इसलिए तुम मल तक को पकड़ लेते हो भीतर उसको छोड़ते ही नहीं कुछ खर्चा हुआ जा रहा है। सड़ गये हो इसी में। इसलिए जीवन यहां फैल नहीं सका, सिकुड़ गया। हर बात में एक कृपणता छा गयी।

तुम जिसको ब्रह्मचर्य कहते हो, मेरे देखे, तुम्हारे सौ ब्रह्मचारियों में निन्यानबे सिर्फ कृपणता की वजह से ब्रह्मचर्य को स्वीकार कर लिये। कहीं वीर्य ऊर्जा खर्च न हो जाए! कंजूस हैं। एक ब्रह्मचर्य है जो आनंद से फलित होता है, ब्रह्म के ज्ञान से फलित होता है, वह तो बात अलग। मगर जिनको तुम आमतौर से ब्रह्मचारी कहते हो, ये ब्रह्मचारी सिर्फ कृपण हैं, कंजूस हैं। इनका सिर्फ भाव इतना ही है कि कहीं कुछ खर्च न हो जाए। ये मरे जा रहे हैं, हर चीज को रोक लो—और सब पड़ा रह जाएगा! तुम्हारा वीर्य, तुम्हारी ऊर्जा, तुम्हारी कुंडलिनी सब पड़ी रह जाएगी! सब मरघट पर जलेगी। और मजा यह है कि जो जितना रोकेगा उतना ही कम उसके पास ऊर्जा होगी, इस विज्ञान को ठीक से खयाल में ले लेना, क्योंकि कुछ चीजें हैं जो बांटने से बढ़ती हैं और रोकने से घटती हैं।

परमात्मा तुम्हारे साधारण अर्थशास्त्र को नहीं मानता। ऐसा समझो कि एक कुआं है, उसमें तुम रोज पानी भर लेते हो ताजा-ताजा, तो नया ताजा पानी आ जाता है, झरनों से नया पानी आ रहा है। तुम अगर कुएं से पानी न भरोगे, तो तुम यह मत समझना कि कुएं में पानी के झरने बहते रहेंगे और कुआं भरता जाएगा भरता जाएगा और एक दिन पूरा भर जाएगा। कुएं में उतना ही पानी रहेगा। फर्क इतना ही रहेगा अगर तुम भरते रहे तो ताजा पानी आता रहेगा, कुएं का पानी जीवंत रहेगा। और अगर तुमने न भरा, तो कुएं का पानी सड़ जाएगा, मर जाएगा, जहरीला हो जाएगा। और जो झरने कुएं को पानी दे सकते थे, तुमने भरा ही नहीं, उन झरनो की कोई जरूरत नहीं रही, वे झरने भी धीरे-धीरे अवरुद्ध हो जाएंगे। उन पर पत्थर जम जाएंगे, कीच जम जाएगी, मिट्टी जम जाएगी; उनका बहाव बंद हो जाएगा। तुमने हत्या कर दी कुएं की।

मनुष्य एक कुआं है। जैसे हर कुआं सागर से जुड़ा है, नीचे झरनों से, दूर विराट सागर से जुड़ा है, जहां से सब झर-झर कर आ रहा है, ऐसे ही मनुष्य भी कुआं है और परमात्मा के सागर से जुड़ा है। कंजूसी की यहां जरूरत ही नहीं है। लेकिन प्रेम में आदमी डरता है कि कहीं खर्चा न हो जाए। छोटे-मोटे आदमियों की तो बात छोड़ दो, सिग्मंड फ्रॉयड जैसा आदमी भी यह लिखता है कि बहुत लोगों को प्रेम मत करना नहीं तो प्रेम की गहराई कम हो जाएगी। जैसे एक को प्रेम किया तो ठीक; फिर दो को किया तो आधा-आधा बंट गया, फिर तीन को किया तो एक बटा तीन मिला एक-एक को। ऐसे पचास-सौ आदमियों के प्रेम में पड़ गये कि बस फैल गया सब। बहुत पतला हो जाएगा, गहराई न रह जाएगी।

फ्रॉयड बिलकुल नासमझी की बात कह रहा है।

फ्रॉयड यहूदी था। वह यहूदी कंजूसी उसके दिमाग में सवार है! तुम जितना प्रेम करोगे, उतना ज्यादा तुम प्रेम पाओगे। उतना प्रेम करने की क्षमता बढ़ेगी। उतनी प्रेम की कुशलता बढ़ेगी। और जितना तुम प्रेम लुटाते रहोगे, उतना तुम पाओगे परमात्मा से नये-नये झरने फूट रहे हैं और प्रेम आता जाता है। दो और तुम्हारे पास ज्यादा होगा। रोको और तुम कृपण हो जाओगे और कंजूस हो जाओगे और सब मर जाएगा, सब सड़ जाएगा। और ध्यान रखना, जो चीज बड़ी आनंदपूर्ण है बांटने में, अगर रुक जाए, सड़ जाए, तो वही तुम्हारे लिए रोग का कारण बन जाती है। जिन लोगों ने प्रेम को रोक लिया है, उनका प्रेम ही रोग बन जाता है, कैंसर बन जाता है।

अब तुम आ गये हो यहां—भूल से आ गये। तुम गलत जगह आ गये। यहां मैं उलीचना सिखाता हूं। यहां मैं बांटना सिखाता हूं। यहां मैं खर्च करने का आनंद तुम्हें सिखाना चाहता हूं। और तुम पूछते हो, जब कुंडलिनी या सक्रिय ध्यान में ऊर्जा जाग्रत होती है तो उसे नाचकर क्यों खत्म कर दिया जाता है? नाचने से ऊर्जा खत्म नहीं होती है। नाचने से ऊर्जा निखरती है। नाचने से ऊर्जा बंटती है। और जितनी बंटती है, उतनी तुम्हारे भीतर पैदा होती है। जितना सृजनात्मक व्यक्ति होता है उतना शक्तिशाली व्यक्ति होता है। तुमने अगर एक गीत गाया तो तुम दूसरा गीत गाने में समर्थ हो जाओगे। और दूसरा गीत पहले से ज्यादा गहरा होगा। फिर तुम तीसरा गीत गाने में समर्थ हो जाओगे, वह उससे भी ज्यादा गहरा होगा। जैसे-जैसे गीत गाते जाओगे वैसे तुम पाओगे—नयी तलें उघड़ने लगी, नयी गहराइयां प्रकट होने लगीं, तुम्हारे भीतर नये आयाम छूने लगे।

लेकिन तुम डर से पहला ही गीत रोके बैठे हो कि कहीं गाया और कहीं गान की ऊर्जा खत्म हो गयी, और कुंडलिनी फिर सो गयी, तो मारे गये। तो तुमको सिखाया गया है कि शक्ति जगाकर और बस पकड़े रहना भीतर उसको! पकड़े रख सकते हो, मगर वहीं अटके रह जाओगे। ये पकड़ने का भाव भी तो यही कह रहा है कि मैं संसार से अलग, मैं अस्तित्व से अलग, मुझे अपनी फिक्र करनी है। अलग हम हैं नहीं। 'त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये।' उसीसे मिलता है, उसीको लौटा देते हैं। अब तुम ऐसा समझो कि गंगा अपने पानी को रोक ले, कि ऐसे सागर में गिर जाऊंगी तो मारी गयी! सब पानी खत्म हो जाएगा, ऐसे रोज-रोज गिरती रही सागर में। ये जो करोड़ों-करोड़ों गैलन पानी रोज सागर में डाल रही हूं, खत्म हो जाएगा तो बस सूख जाऊंगी। बिलकुल रोक ले अपने पानी को। तो क्या परिणाम होगा? सड़ जाएगी।

सागर में देने से सड़ती नहीं। सागर में पानी उतर जाता है, फिर मेघ बन जाते हैं। फिर हिमालय पर बरस जाते हैं, फिर गंगोत्री में बह आते हैं, एक वर्तुल है। गंगा सागर को देती है, सागर गंगा को दे देता है। यहां तुम जितना दोगे उतना पाओगे। यहां देना पाने की कला है। नाचो, गाओ, सृजनात्मक होओ।

इस पीड़ा से भारत बहुत ज्यादा परेशान रहा है। यहां के तथाकथित योगी भी दुकानदार की भाषा बोलते हैं। खर्चा न हो जाए! अपनी ऊर्जा, सम्हाल कर रखो। नाचना तो दूर, तुम्हें सिखाया जाता है कि जब ध्यान करने बैठो तो शरीर हिले भी नहीं। क्योंकि जरा ही हिले और छलक गयी ऊर्जा, फिर! हिलना ही मत, पत्थर की तरह बैठ जाना। मैं तुमसे कहता हूं—नाचो। मैं कहता हूं—तुम बांटो। उंडेला दो सागर में ऊर्जा को। जिसने दी है, वह और देगा। इतनी घबड़ाहट क्या? इतना भी भरोसा नहीं है परमात्मा पर कि जिसने अब तक दिया है वह आगे भी देगा! तुम इतने डरे हुए आदमी मालूम होते हो कि तुम अगर सांस भीतर ले लोगे तो बाहर न निकालोगे। क्योंकि अगर बाहर निकाल दी, फिर न आयी तो! फिर न लौटी, फिर क्या करेंगे? शक्ति खत्म हो गयी। अपने हाथ से चली गयी। ले लो सांस और सम्हाल कर बैठ जाओ भीतर, बस मर जाओगे उसी सांस के साथ!

तुम देते रहो, जिसने दी है, वह देगा। इतने दिन तक दिया, अब तक दिया, सब रूप में दिया, इतने घबड़ाते क्यों हो? यह आस्था की कमी है। यह श्रद्धा की कमी है। श्रद्धालु तो कहेगा कि ले लो मेरा जो काम लेना हो। जितना लेना हो!

और तुमने एक मजे की बात देखी? जितना सक्रिय आदमी होता है, उसके पास उतना ही समय होता है। और जितने काहिल और सुस्त होते हैं, उनके पास बिलकुल समय नहीं होता है। सुस्त और आलसी से पूछो, वह कहता है, भई, समय नहीं है। और सक्रिय आदमी को पूछो, जो बहुत कामों में लगा है, वह हमेशा समय निकाल लेता है।

पश्चिम के एक बड़े विचारक श्वीत्जर ने लिखा है कि मेरे जीवन का अनुभव यह है कि जितने रचनात्मक, सृजनात्मक, सक्रिय लोग होते हैं, जितना ज्यादा करने वाले लोग होते हैं, उनके पास उतना ही ज्यादा समय होता है। और अगर कोई काम करवाना हो तो ऐसे आदमी से कहना जो बहुत काम कर रहा हो। वह समय निकाल लेगा। सुस्त और काहिल, जो बिस्तरों में पड़े रहते है, उनसे अगर तुम कहो कि भई, जरा कर देना यह काम, वे कहेंगे भाई, समय कहां है? वह अपनी शक्ति बचाए पड़े हैं बिस्तर में। अपनी रजाई ओढ़े। कि कहीं शक्ति खर्च न हो जाए! वहीं रजाई में मर जाओगे।

यह कंजूसी छोड़ो। इस कंजूसी से मेरी जरा भी सहमति नहीं है। मैं तुमसे कहता हूं—जीवन की उत्फुल्लता से जीओ। और यह अनेक अर्थों में समझ लेने की बात है। ब्रह्मचर्य आना चाहिए, थोपा नहीं जाना चाहिए। कंजूसी के कारण नहीं थोपा जाना चाहिए। ब्रह्मचर्य आना चाहिए प्रेम की विराटता से। तुम्हारा प्रेम इतना फैले, इतना फैले, इतना गहरा हो जाए कि उसमें से कामवासना समाप्त हो जाए—गहराई के कारण। तुम इतना प्रेम दो

कि उसमें कामवासना शून्य हो जाए। इतने शुद्ध प्रेम की धाराएं बहने लगें कि उसमें कामवासना न रह जाए। तब एक ब्रह्मचर्य आता है। वही ब्रह्मचर्य है। वही ब्रह्मचर्य शब्द का ठीक-ठीक द्योतक है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ होता है। ईश्वर जैसी चर्या। ईश्वर कंजूस है? तुम देखते ईश्वर की कंजूसी कहीं भी इस प्रकृति में? एक बीज से करोड़ों बीज पैदा होते हैं। एक-एक वृक्ष में करोड़ों बीज पैदा होते हैं। उन करोड़ों बीज में से दस-पांच बीज शायद वृक्ष बन पाएंगे। जब जरा सोचो तुम, परमात्मा कितना फिजूलखर्च है! दस-पांच वृक्ष बन पाएंगे और करोड़ों बीज पैदा कर रहे हो? वैज्ञानिक कहते हैं, एक आदमी—सिर्फ एक आदमी, एक पुरुष—के वीर्य में इतने जीवाणु होते हैं कि वह सारे पृथ्वी को भर सकता है आबादी से। एक पुरुष में। एक संभोग में कम से कम एक करोड़ जीवाणु तुम्हारे भीतर से विदा हो जाते हैं। बच्चे तो तुम्हारे कितने होंगे? इंदिरा का वक्त होता तो थोड़े कम, अभी मोरारजी का है, थोड़े ज्यादा हो सकते हैं, बाकी कितने दर्जन, दो दर्जन, कितने? इस समय पृथ्वी की जितनी आबादी है, उतने जीवाणु एक पुरुष में होते हैं। उतने बच्चे पैदा हो सकते हैं। और फिजूलखर्ची देखोगे भगवान की? दस-पांच बच्चों के लिए इतना, इतने जीवाणु पैदा करना!

यह मामला क्या है?

भगवान कंजूस नहीं है। फिजूलखर्च है। आनंद है उसका, उल्लास है उसका। हिसाब-किताब से नहीं चलता, मस्ती से चलता है। अब ये सज्जन अगर कुंडलिनी जग रही होगी तो यह बड़े घबड़ाते होंगे कि अब थोड़ी-सी ऊर्जा आ रही है, अब जल्दी से मार कर कब्जा इस पर बैठ जाओ; कहीं खर्चा न हो जाए। बस तुम्हारे कब्जा मार कर बैठने में ही मर जाएगी। होने दो प्रकट। यह जो उठ रहा है फन तुम्हारी कुंडलिनी का, इसे फैलने दो। इसे बंटने दो। ये जाएगी कहां? कहीं कुछ जाता नहीं है, सब यहीं है, क्योंकि हम सब एक हैं। हम सब संयुक्त हैं। कुछ खोता नहीं है। कुछ मरता नहीं है। सब शाश्वत रूप से यहीं है। लेकिन जब तुम देने में कुशल होते हो, जब तुम्हारे भीतर बहाव होता है, तब तुम्हारे भीतर जीवन अपने परम रूप में प्रकट होता है। तुम्हारे भीतर ब्रह्मचर्य फलेगा। लेकिन ब्रह्मचर्य कंजूसी से नहीं फलेगा। ब्रह्मचर्य दान से फलेगा। प्रेम से फलेगा। और तुम्हारे भीतर विराट ऊर्जा आएगी। लेकिन वह तभी आएगी जब तुम उलीचते रहोगे, उलीचते रहोगे, उलीचते रहोगे। कबीर ने कहा है—'दोनों हाथ उलीचिए यही सज्जन को काम'। उलीचते रहो। रुकना ही मत उलीचने से।

तुम मेरा प्रयोग करके देख लो! कंजूस की तरह तुमने रहकर जी लिया है, अब तुम उलीचकर भी देख लो। और तुम चकित हो जाओगे, इतना आता है! मगर देनेवाले के पास ही आता है। धन्य हैं वे, जो बांटने में शर्तें नहीं लगाते। जो दिये चले जाते हैं।

चौथा प्रश्नः आप मोरारजी देसाई की आलोचना क्यों करते? क्या राजनीति अध्यात्म के विपरीत है?

कौन मोरारजी देसाई? कभी नाम सुना नहीं! आपका मतलब मगरूरजी भाई देसाई से तो नहीं है? या एक नाम और मैं सुना है—मॉरल जी भाई देसाई। 'एम ओ आर ए एल, मॉरल—

आलोचना मैंने उनकी कभी की नहीं, आलोचना करने योग्य उनमें कुछ है नहीं। आलोचना करने योग्य कुछ होना तो चाहिए। राजनीतिज्ञों में क्या हो सकता है आलोचना करने योग्य? उनके वक्तव्यों का मूल्य क्या है? दो कौड़ी मूल्य नहीं है। आलोचना मैंने उनकी कभी नहीं की। हां, कभी-कभी मजाक करता हूं। उससे ज्यादा मूल्य नहीं मानता। कभी-कभी तुम्हें हंसाने को! तो जब भी मैं उनकी मजाक करूं, भूल कर भी आलोचना मत समझना। और जब भी उनकी मजाक तुम सुनो, या पढ़ो, कोष्ठक में जोड़ लेना, अपनी तरफ से—'होली है, बुरा न मानो!'

लेकिन तुम्हें आलोचना लगती होगी। क्योंकि तुम आदमी नहीं हो। तुम तो जिनके पास राजसत्ता है, उनकी प्रशंसा सुनने के ही आदी हो। प्रशंसा करके के आदी हो और प्रशंसा सुनने के आदी हो। तुम राजसत्ता से ऐसे मोहित हो गये हो कि जिन व्यक्तियों का कोई भी मूल्य नहीं है, वह पद पर बैठने से ही एकदम महामूल्य के हो जाते हैं। और मजा यह है कि पद से उतरते ही फिर निमूल्य हो जाते हैं। फिर कोई नहीं पूछता उन्हें। पद पर

होते हैं तो एकदम आकाश में उठ जाते हैं। और पद गया कि फिर कोई नहीं पूछता उन्हें। फूलमालाएं तो दूर लोग जूते इत्यादि भी नहीं फेंकते। बिलकुल ही भूला देते हैं।

तुम्हें आदत नहीं है। शायद इसीलिए मैं बार-बार मजाक में उनके नाम ले लेता हूं जो सत्ता में हैं। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं कि सत्ता एक मखौल है। एक झूठ है। जिससे आदमियत मुक्त हो जाए तो अच्छा। राजनेताओं से आदमी मुक्त हो जाए तो अच्छा। राजनीति का इतना प्रभाव नहीं होना चाहिए। ठीक है, उसकी उपयोगिता है। मगर उसकी उपयोगिता इतनी नहीं है कि सारे अखबार उसी से भरे रहें। और सारे देश में उसीकी चर्चा चलती रहे। जिंदगी में और भी काम की बातें हैं। जिंदगी में और भी बहुमूल्य कुछ है। राजनीति यानी महत्वाकांक्षा। पदलोलुपता। लेकिन तुम्हारे मन पदलोलुप हैं। इसलिए जो पद पर पहुंच जाते हैं, उनके प्रति तुम्हारे मन में बड़ी प्रशंसा होती है। ध्यान रखना, क्यों होती है? तुम भी पदलोलुप हो। तुम भी चाहते थे। कि पहुंच जाते, लेकिन नहीं पहुंच पाए, दूसरा पहुंच गया, तुम सम्मान में सिर झुकाते हो। तुम कहते हो, हम तो हार गये, लेकिन आप पहुंच गये। कोशिश हम अभी जारी रखेंगे, कि किसी दिन हम भी पहुंच जाएं।

तुम खयाल रखना, तुम उसीका सम्मान करते हो जो तुम होना चाहते हो। तुम्हारे सम्मान में कसौटी है। वे दिन अदभुत दिन रहे होंगे, जब लोगों ने बुद्ध का सम्मान किया, और राजाओं की फिकिर न की।

बुद्ध एक गांव में आए। उस गांव के वजीर ने अपने राजा से कहा कि बुद्ध का आगमन हो रहा है—वजीर बूढ़ा था, सत्तर साल की उम्र का था; राजा अभी जवान था, अपनी अकड़ में था, अभी-अभी उसने कुछ जीत भी की थी और राज्य को बढ़ा लिया था—वजीर ने कहा कि बुद्ध आ रहे हैं, आप स्वागत को चलें। उस राजा ने कहा—मैं क्यों जाऊं स्वागत को? आखिर बुद्ध एक भिखारी ही हैं न! एक संन्यासी ही हैं न! आना होगा मिलने तो मुझसे मिलने आ जाएंगे, मैं क्यों जाऊं मिलने को? उस वजीर ने यह सुना, इस्तीफा लिखने लगा। राजा ने पूछा, क्या लिख रहे हो? उसने कहा—यह मेरा इस्तीफा है। अब तुम्हारे पास बैठना उचित नहीं। अब मैं इस महल में नहीं रुक सकता। क्यों, राजा ने पूछा। उस वजीर ने कहा—जिस राजा को यह खयाल आ जाए कि वह बुद्धों को भिखारी कह सके, उसकी छाया में भी बैठना पाप है, गुनाह है। क्षमा करें मुझे। मुझे मुक्ति चाहिए।

राजा को बोध आया, बात तो ठीक थी। उसने पूछा—लेकिन तुम मुझे समझाओ तो। उस वजीर ने कहा—समझाना क्या है? बुद्ध भी राजा थे, तुमसे बड़ी उनकी हैसियत थी, तुमसे बड़ा उनका राज्य था, और चाहते बढ़ाना तो बहुत बढ़ा सकते थे। उस सबको छोड़ दिया, लात मार दी। तुम अभी पदलोलुप हो, तुम अभी धन के पीछे पागल हो, यह आदमी उस पागलपन के बाहर हो गया, यह तुमसे बहुत आगे है। इसका सम्मान तुम्हें करना ही चाहिए।

ऐसे दिन थे! राजा फकीरों का सम्मान करते थे।

मुहम्मद ने तो कुरान में कहा है; कोई फकीर कभी किसी राजा के घर न जाए। जब भी आना हो, राजा फकीर के घर आए।

तब ऋषियों का एक सम्मान था। क्योंकि लोग ऋषि ही होना चाहते थे। ध्यान रखना, तुम जो होना चाहते हो, उसी का सम्मान तुम्हारे मनन में होता है। तब संन्यासियों का सम्मान था। अब नेताओं का और अभिनेताओं का सम्मान है। या तो नेता आए तो भीड़ इकट्ठी होती है, या अभिनेता आए तो भीड़ इकट्ठी होती है। बुद्ध आए तो और अगर तुम उस रास्ते जाते होते हो तो दूसरे रास्ते निकल जाते हो। कौन झंझट में पड़ें? वहां क्या जाना? अभी तो जिंदगी बहुत पड़ी है। अभी प्रार्थना नहीं करनी है, अभी ध्यान नहीं करना है। अभी ये और ऊंची बातें हमें सुननी नहीं हैं। अभी तो नीची बातों का पूरा भोग कर लेना है। अभी तुम बुद्ध के पास नहीं जाते। अभी तुम नेता, राजनेता के पास जाते हो।

यह मनुष्य की बड़ी विकृत स्थिति हुई।

क्यों जाते हो तुम अभिनेता के पास? तुम फर्क देख लेना। अभिनेता के पास तुम्हें युवक और युवतियों की भीड़ मिलेगी। क्यों? क्योंकि वे सब अभिनेता होना चाहते हैं। और राजनेताओं के पास तुम्हें उन लोगों की भीड़ मिलेगी जो राजनेता होना चाहते हैं। छोटे-मोटे सही! सरपंच हो जाएं! कि मेयर बन जाएं। कि मिनिस्टर हो जाएं। कि कुछ भी हो जाएं। चार आदमियों की गर्दन पर हाथ आ जाए अपना। कब्जे में आ जाएं।

किसीने आज मुझे अखबार की एक 'कटिंग' भेज दी है, कि गणेशपूरी के मुक्तानंद मोरारजी देसाई का दर्शन करने पहुंचे हैं। अब मुक्तानंद को मोरारजी देसाई के दर्शन करने जाने की क्या जरूरत है? और फिर जो बातचीत हुई है, वह और भी बड़ी महत्वपूर्ण है। मुक्तानंद ने कहा कि यह देश साधुओं का देश। साधुओं के कारण ही यहां की सब उन्नति होती रही है। और हम बड़े सौभाग्यशाली हैं कि एक साधु ही आपके रूप में हमारा प्रधानमंत्री है। इस तरह के 'खुशामदानंद' इस देश को विकृत करते रहे हैं।

लेकिन तुम भी इस तरह कि बातें सुनने के आदी हो गये हो, इसलिए जब मैं कभी किसी राजनेता की मजाक में कुछ कह देता हूं, तुम्हें भी बड़ी हैरानी होती है! तुम सोचते हो आलोचना कर रहा हूं। आलोचना नहीं कर रहा हूं, सिर्फ इतना ही कह रहा हूं कि ये बातें मजाक से ज्यादा मूल्य नहीं रखतीं। उपेक्षा चाहिए। जीवन किसी और बड़े सत्य की खोज के लिए हैं।

मगर यह चलता है। तुम्हारे साधु-संन्यासी सब दिल्ली की तरफ जाते हैं। राजनेताओं से मिलने पहुंचते हैं। राजनेता उनसे मिलने नहीं आते। राजनेताओं का दर्शन करने जाते हैं। किस तरह के साधु-संन्यासी है? क्या प्रयोजन तुम्हें? लेकिन साधु-संन्यासी नहीं हैं, साधु-संन्यासी के रूप में छिपे हुए राजनीतिज्ञ हैं। इसलिए तो राजनीतिज्ञ को भी साधु कह पाते हैं। बात बिलकुल ठीक कही मुक्तानंद ने। मुक्तानंद में कहीं राजनीति होगी। उसी राजनीति के कारण गये होंगे। नहीं तो जाने की कोई जरूरत न थी। मुक्तानंद ऊपर से साधु हैं, भीतर कहीं राजनीति पड़ी है। कहीं कुछ लाभ की दृष्टि होगी, खुशामद से कुछ पा लेने का इरादा होगा। और राजनेता को साधु कहना! तो फिर असाधु कौन होगा? फिर तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर असाधु कोई हो ही नहीं सकता। राजनेता तो आखिरी दर्जे का असाधु है।

एक सज्जन मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि मैं शराब पीता हूं, मांसाहार भी करता हूं, कभी दीवाली इत्यादि को जुआ भी खेल लेता हूं। और आप कहते हैं आप सबमें परमात्मा देखते हैं, क्या आप मुझमें भी परमात्मा देखते हैं? मैंने कहा—मैं मोरारजी देसाई तक में परमात्मा देखता हूं! तुम्हारी तो हैसियत ही क्या है? तुम तो हो किस गिनती में! राजनेता तो आखिरी है। उसके कारण तो मनुष्यजाति बड़े कष्टों में पड़ी है। सारे युद्ध, सारी हिंसाएं, सारी जालसाजियां, सारी चालबाजियां। पद का आकांक्षी और साधु? लेकिन खुशामद करनी है।

मैं किसी की स्तुति नहीं कर रहा हूं। आलोचना भी नहीं कर रहा हूं। मैं तो जैसा है वैसा कह रहा हूं। मैं सिर्फ इसलिए यह कभी-कभी मजाक कर देता हूं ताकि तुम्हें खयाल रहे कि राजनीति का मूल्य इससे ज्यादा नहीं है। लेकिन आलोचना करने योग्य मैं कुछ नहीं पाता हूं उनमें। साधारण मनोदशा है। वक्तव्य साधारण है। होंगे ही साधारण। पदलोलुप असाधारण कभी होता ही नहीं। पदलोलुपता साधारण रोग है। इस दुनिया में हर आदमी पद पर होना चाहता है। यह बड़ा साधारण रोग है। इसमें कुछ विशेषता नहीं है। विशेषता तो तब है जब कोई आदमी पद पर नहीं होना चाहता। तब कुछ असाधारणता घटती है।

और राजनीति, अध्यात्म बिलकुल विपरीत हैं। राजनीति का अर्थ है, दूसरों पर कैसे मेरा कब्जा हो जाए? मैं दूसरों का मालिक कैसे हो जाऊं? अध्यात्म का अर्थ है, अपना मालिक कैसे हो जाऊं? ये बड़ी विपरीत बातें हैं। इसलिए तो हम संन्यासी को स्वामी कहते हैं। स्वामी का मतलब, अपना मालिक। स्वयं का मालिक। ये दो अलग यात्राएं हैं। राजनीति बहिर्यात्रा है। दूसरों का मालिक कैसे हो जाऊं? कितने बड़े समूह का मालिक हो जाऊं? अध्यात्म का अर्थ होता है, अपने जीवन में मेरी मालकियत कैसे हो जाए? मैं मन का गुलाम न रह जाऊं। मैं मन का मालिक हो जाऊं। मेरे भीतर अंतर्साम्राज्य पैदा हो।

ये बड़ी भिन्न बातें हो गयी।

राजनीति ले जाएगी भीड़ में अध्यात्म ले जाएगा एकांत में। राजनीति उलझाएगी दूसरों से, अध्यात्म सुलझाएगा दूसरों से। अध्यात्म है—आत्मसाक्षात्कार। राजनीति में तो सब उपद्रव करने ही पड़ेंगे। राजनीतिज्ञ तभी तक साधु मालूम पड़ते हैं जब तक सत्ता में होते हैं। सत्ता गयी कि उनकी सब साधुता खुल जाती है। सत्ता चाहिए तो साधुता बनी रहती है क्योंकि सब अखबार उनके हाथ में, ताकत उनके हाथ में, पुलिस उनके हाथ में, व्यवस्था उनके हाथ में, कौन पता लगाए कि वे क्या कर रहे हैं?

अब जुल्फिकार भुट्टो जब तक सत्ता में, तब तक साधु। अब पाया गया है कि वे हत्यारे हैं। मगर मजा बड़ा जटिल है। अब कोई नहीं कह सकता कि वे सच में हत्यारे हैं या नहीं? क्योंकि अब जो सत्ता में हैं वे चाहते हैं कि उनको हत्यारा सिद्ध करें। आज जो सत्ता में हैं। पाकिस्तान, कल अगर वे सत्ता से नीचे उतर गये, तो हो सकता है कोई अदालत फैसला दे कि उन्होंने भुट्टो की हत्या करवा दी।

अभी इंदिरा मुजरिम मालूम पड़ती है, क्योंकि सत्ता नहीं है। सत्ता में थी तो मुजरिम मालूम नहीं पड़ती थी। लेकिन कोई नहीं कह सकता कि जो उसे मुजरिम सिद्ध करने की कोशिश कर रहें हैं, वे सत्ता में से उतर जाने के बाद सही साबित होंगे। वे खुद भी मुजरिम पाए जा सकते हैं। यहां सब चचेरे भाई-बहन हैं। मोरारजी भाई, कि इंदिरा बहन! सब चचेरे भाई-बहन हैं। कुछ भेद नहीं है। राजनीतिज्ञ भिन्न हो ही नहीं सकते।

इसलिए तो तुम देखते हो, इतनी पार्टी अदल-बदल होती रहती है। क्योंकि राजनीतिज्ञ भिन्न होते ही नहीं। इस पार्टी या उस पार्टी में फर्क कुछ नहीं पड़ता; राजनीतिज्ञ को एक ही आकांक्षा है—पद पर कैसे हो? पार्टी कौन हो, इससे क्या लेना? झंडा कौन हो, इससे क्या लेना? डंडा अपना होना चाहिए। झंडा कोई भी लगा लेंगे। बस डंडा अपने हाथ में होना चाहिए।

तो राजनीतिज्ञ तो अवसरवादी होगा ही। उसको तो एक ही जोड़-तोड़ बिठानी है। और जोड़-तोड़ में वह अकेला नहीं है, बड़ी प्रतिस्पर्धा है। इसलिए बेईमानी भी होगी, धोखाधड़ी भी होगी, लोगों के पैर भी काटे जाएंगे, लोगों को गिराया भी जाएगा, लोगों को हटाया भी जाएगा, यह सब होगा।

और इस सबके लिए तुम जिम्मेवार हो, ध्यान रखना! क्योंकि तुम इस तरह के लोगों को मूल्य देते हो। इस मूल्य के कारण ये लोग पागल की तरह उस तरफ दौड़ते हैं। अब तुम यह मत सोचना कि अगर कोई आदमी प्रधानमंत्री होकर दूसरों को परेशान कर डालता है, रिश्वत ले लेता है, लोगों की टांगे तोड़ देता है, लोगों की गर्दनें गिरवा देता हैं, लोगों को जेलों में डाल देता है, वह जिम्मेवार है। तुम भी जिम्मेवार हो। तुम्हीं असली जिम्मेवार हो, तुम इतना मूल्य देते हो पद को कि एक आदमी को लगता है कि इस पद को पाने के लिए कुछ भी करना योग्य है।

पद को मूल्य देना कम करो! ताकि लोगों को ऐसा साफ होने लगे कि इस सड़े पद के लिए जिस पर लोग सिर्फ हंसते हैं, मजाक करते हैं, इसके लिए इतना पाप करना उचित भी है?

मेरी बात समझ में आ रही है तुम्हें?

राजनीति से मूल्य को खींच लो। राजनीति को मूल्यहीन कर दो। मूल्यहीन हो जाए राजनीति, तो इतना उपद्रव नहीं होगा। कौन फिक्र करेगा फिर? अगर रोज अखबार में प्रधानमंत्री की तस्वीर न छपती हो और रोज व्याख्यान न छपता हो, सारा अखबार उन्हीं से न भरा रहता हो, तो आदमी सोचेगा की सार क्या है? इतने से पद के लिए इतनी मेहनत, इतनी परेशानी, और लोग कोई मूल्य नहीं देते! रास्ते से निकल जाते हैं और लोग नमस्कार भी नहीं करते। सार क्या है? राजनीति को अतिमूल्य दोगे तो फिर सभी चीज सार्थक हो जाती है—एकाध की हत्या भी करनी पड़े तो चलता है। करने योग्य मालूम होता है और फिर पद पर पहुंच गये तो सब छिप जाएगा।

इसलिए जो पद पर पहुंच जाता है, फिर पद नहीं छोड़ना चाहता। क्योंकि छोड़ते से ही फिर सारा पाखंड खुलेगा, सारी धोखाधड़ी खुलेगी। पद जब तक है तब तक सुरक्षा है। एक दफा जो पद पर पहुंच गया वह फिर

ऐसा जोर से पकड़ता है कि वह चाहता है पद पर रहते हुए ही मर जाऊं, तो ही बचाव है। नहीं तो पद पर सब उपद्रव वही के वही होते हैं। वही का वही खेल, जरा भी फर्क नहीं पड़ता। इंदिरा चली जाती है, उनके साथ ही संजय गांधी चले जाते हैं। मोरारजी आ गये, उनके पीछे ही कांति देसाई आ गये। कुछ फर्क नहीं पड़ता। सब वही खेल हैं। सिक्के बदल जाते हैं, रंग बदल जाता है, मगर भीतर की असलियत वही की वही। वही जाल चलता रहता है।

मैं आलोचना करने योग्य नहीं मानता राजनीतिज्ञों को, सिर्फ मजाक करने योग्य मानता हूं। जब कभी मुझे तुम्हें हंसाना होता है, तो मैं उनका नाम ले लेता हूं। जब मैं देखता हूं तुम सोने गले, या नींद आने लगी, या देखता हूं कोई जम्हाई ले रहा है, तब मैं सोचता हूं कि अब सिवाय मोरारजी देसाई के इन सज्जन की जम्हाई नहीं रुकनेवाली! तो उनके खुले मुंह में मोरारजी देसाई को डाल देता हूं। उससे वह चौंक कर बैठ जाते हैं। सोचने लगते हैं—मोरारजी देसाई की बात आयी, कुछ मतलब की बात आयी होगी। जैसे ही वे जाग जाते हैं।, मैं मोरारजी को भूल जाता हूं, फिर अपनी बात पर आ जाता हूं।

इससे ज्यादा मूल्य नहीं है।

पांचवां प्रश्नः भगवान, पहली ही बार आपके सान्निध्य में 'आजोल शिविर' में ध्यान करते ही चेतना में ऐसी चिनगारी प्रकट हुई कि मेरे पूर्व व्यक्तित्व का विस्फोट हो गया। मेरी चेतना में कई महीनों तक भूकंप आते रहे और पागल-सी स्थिति में मैं कांपता रहा। उन दिनों मैं रोज-दो रोज तक अपनी मातृभाषा गुजराती भी न बोल सका, और बोलने में हिंदी या अंग्रेजी आती रही। पेड़ को स्पर्श करते ही विद्युत का झटका लगता। आंख बंद होने पर भी परवश होकर शरीर आपके चरणों में आ गिरता। सूरज से भी शक्ति-संचार का अनुभव होता। बिना सोचे हाथ भारी हो जाते और प्रभु-चिकित्सा अपने-आप होने लगती। भगवान, बताने की कृपा करें कि यह सब क्या हो रहा था? अब मैं ज्यादा शांत और आनंदित हूं। और आपके साथ होने पर अपने को कृतकृत्य अनुभव करता हूं

पूछा है स्वामी कृष्ण सरस्वती ने।

मुझे भलीभांति याद है आजोल में उन्हें जो हुआ था कोई महत्वपूर्ण घटना घटी थी। उनका अहंकार विदा हो गया था कुछ दिनों के लिए। विराट ने उन्हें पूरी तरह आपूरित कर लिया था। समझ के बाहर स्वभावतः ऐसी घटना होती है। पूछना उचित है कि क्या हुआ था?

झरोखा खुला था, एक द्वार खुला था। और उस द्वार के खुलने के बाद फिर कृष्ण सरस्वती दुबारा वही व्यक्ति नहीं हो सके जो पहले थे। वह व्यक्ति तो गया। एक नये व्यक्ति का आविर्भाव हुआ। मगर अभी यात्रा पूरी नहीं हो गयी है, ऐसा और बहुत बार होगा। कम से कम ऐसा सात बार होगा।

मनुष्य के भीतर सात केंद्र हैं। और जब भी एक केंद्र से ऊर्जा दूसरे केंद्र पर जाती है तो ऐसा होता है। फिर दूसरे से तीसरे पर जाती है तो फिर ऐसा होता है। हर केंद्र पर यह विस्फोट घटित होगा। घबड़ाना मत। और हर विस्फोट के बाद शांति बहुत गहरी हो जाएगी। फिर और विस्फोट होगा और भी शांति गहरी हो जाएगी। और अंतिम विस्फोट के बाद शांति ही रह जाती है; कोई व्यक्ति भीतर शांत है ऐसा नहीं बचता, सिर्फ शांति बचती है। मुक्त कोई नहीं बचता, मुक्ति बचती है। कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो गया है ऐसा नहीं, बस ज्ञान ही शेष रह जाता है। रोशनी रह जाती है। शुद्ध प्रकाश रह जाता है।

शुभ घटना घटी थी। और-और घटेगी। लेकिन घटाने की अपनी तरफ से चेष्टा मत करना, अन्यथा नकली होगी। प्रतीक्षा करना धैर्यपूर्वक। ध्यान जारी रखो और धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करो। और जब भी ऐसा घटे तो रुकावट मत डालना। उसे घट जाने देना। दो-चार दिन में फिर सब शांत हो जाएगा। और हर घटना तुम्हारे जीवन को नयी रोशनी, नया अर्थ, नयी संजीवनी दे जाएगी।

और दूसरा प्रश्न भी कृष्ण सरस्वती का है—

बंबई में आपके साथ रहने पर आपसे इतना लगाव हो गया था कि आप कहीं भी दूर भेजते थे तो बस इतना दुख होता था बहाना बना कर आपके सान्निध्य में आ जाने की इच्छा होती थी। जब नैरोबी (अफ्रीका) भेजा तो निरुपाय होकर चेतना ने आपसे दूर रहना स्वीकार कर लिया। फिर जब अमरीका भेज दिया, तब वहां रहने पर आपसे लगाव कम हो गया ऐसा अनुभव हुआ और मैं इतने दिनों तक आपसे दूर रह सका। मुझे भय लग रहा है कि आपके प्रति मेरा प्रेम भी साथ में कम नहीं होता जा रहा है? प्रभु, कृपया बताइये क्या मैं सही दिशा में जा रहा हूं? मेरा आपसे और आश्रम से दूर रहने में राज क्या है? क्योंकि मैं ध्यान तो कर लेता हूं, किंतु आपसे दूर रहने से ऐसा भय है कि मैं सत्संग से वंचित हो जाता हूं।

मैं कृष्ण सरस्वती को दूर-दूर भेजता रहा हूं और यह भाग-भाग कर वापिस भी आते रहे हैं नैरोबी भेजा था कुछ ज्यादा देर रुके। फिर अमरीका भेजा तो कोई दो साल रुके।

जानकर ही ऐसा कर रहा हूं। यह तुम्हारे हित में है, इसलिए ऐसा कर रहा हूं। मेरे पास रहोगे तो वह जो विस्फोट घटा है, वह इतनी शीघ्रता से घटेगा, इतनी बार-बार घटेगा कि विक्षिप्त हो जाने का डर है। उसके लिए समय चाहिए। अंतराल से घटना चाहिए।

भटक नहीं रहे हो, किसी गलत दिशा में नहीं जा रहे हो। मैं भेज रहा हूं, इसलिए जा रहे हो। और जब मैं पाऊंगा कि अब आवश्यकता नहीं है भेजने की, तब यहां रोक लूंगा। अभी वैसी घड़ी नहीं आयी है। और तुम सौभाग्यशाली हो, क्योंकि ऐसे बहुत कम लोग हैं जिनको इतनी तीव्रता से घटना घट सकती है कि मुझे खयाल रहे कि कहीं वे पागल न हो जाएं! तुम जितना समा सकते, जितना पचा सकते हो, उतना ही घटना उचित है। तुम अगर जरूरत से ज्यादा खुल जाओ, तो टूट जाओगे, बिखर जाओगे। पागलपन भी हो सकता है, मृत्यु भी हो सकती है।

इसलिए जानकर तुम्हें थोड़े दिन यहां रहने देता हूं; फिर वापिस भेज देता हूं। अब फिर तुम्हें अमरीका वापिस भेजता हूं। फिर अमरीका चले जाओ। मेरे काम में लगे रहो। मुझे खयाल है। ध्यान भर न छूटे, सत्संग की जब जरूरत होगी, तुम बुला लिए जाओगे। जितनी जरूरत होगी, उतना तुम्हें मिल जाएगा। जिसकी जितनी जरूरत है, उतना मैं दूंगा ही। जरूरत से ज्यादा कभी कोई ले ले तो नुकसान हो सकता है।

और कभी-कभी आध्यात्मिक अनुभव का लोभ ऐसा पकड़ता है कि जरूरत से ज्यादा ले लेने का मन हो जाता है। मुझे खयाल रखना पड़ेगा कि तुम्हें जरूरत से ज्यादा न मिल जाए। नहीं तो अपच होगा।

और इसका भय मत करो; लगाव कम हो रहा है, यह अच्छा है। लगाव कम हो, आसक्ति कम हो, तो ही प्रेम शुद्ध होता है। प्रेम के मार्ग में लगाव ही बाधा है। आसक्ति ही बाधा है। आसक्ति और प्रेम विपरीत हैं। इसलिए आसक्ति के कम होने को तुम प्रेम का कम होना मत समझना।

आमतौर से ऐसा ही हम समझाते हैं कि आसक्ति प्रेम है। तो आसक्ति कम हो रही है तो कहीं प्रेम तो कम नहीं हो रहा है। चिंता समझ में आने जैसी है। पर भय मत करना। प्रेम बात ही और है। आसक्ति के परिपूर्ण चले जाने पर उदय होता है प्रेम का। आसक्ति अशुद्धि है प्रेम में। सब आसक्ति बिलकुल नहीं रह जाती, तब प्रेम परिपूर्ण शुद्ध होता है, तब प्रेम प्रार्थना हो जाता है।

अच्छा है, आसक्ति कम होती चली जाए। आसक्ति कम होनी ही चाहिए।

आखिरी प्रश्नः आपको सुन-सुन कर भक्ति का यह रोग लगता है मुझे भी लग गया है। अब धैर्य नहीं रखा जाता है। आकांक्षा होती है बस सब अभी हो जाए।

रोग तो अच्छा हुआ लग गया। लगने दो। सौभाग्य है यह। इस रोग को महारोग बनने दो। यह रोग इतना बड़ा हो कि इसमें ही तुम लीन हो जाओ। इस रोग के ही द्वार से परमात्मा तुममें प्रवेश करेगा।

तुम्हारा मन परमात्मा में अटक रहा है, उलझ रहा है, यह अच्छी बात है। पीड़ा भी बहुत होगी। संताप भी बहुत होगा। क्योंकि जिनको परमात्मा का कुछ पता नहीं हैं, उन्हें गहरी पीड़ा का भी पता नहीं है। उनके सुख भी

उथले हैं, उनके दुख भी उथले हैं। अब जिसको धन मिलने से सुख मिलता हो, उसका सुख भी उथला है; उसको धन न मिलने से दुख मिलेगा, उसका दुख भी उथला है। इस संसार के सुख-दुख, दोनों ही उथले हैं। परमात्मा के साथ सुख भी गहरा होता है, दुख भी गहरा होता है। विरह भी गहरा होता है। तभी तो मिलन गहरा हो पाता है। अच्छा हुआ। तुम अब अटके हो, इससे पीड़ा होगी।

झुरमुठ में अटका चांद, कहीं अटका मन मेरा भी।
दिन डूबा, दिन के साथ जगत
का कोलाहल डूबा,
कुछ मतलब रखता है अब तो
मेरा भी मंसूबा,
तारे मेरे मन की गलियों में
दीप जलाते हैं।
मेरे भावों में रंग भरता गोधूलि अंधेरा भी।
झुरमुठ में अटका चांद, कहीं अटका मन मेरा भी।

जैसे झुरमुठ में चांद अटक जाता है, ऐसे ही मन आकाश में अटकने लगता है। तब अड़चन होती है। तब बेचैनी होती है। क्योंकि कैसे पहुंचे उस दूर परमात्मा तक जिसमें मन उलझ गया है? कैसे पहुंचें उस चांद तक जो झुरमुठ में अटका मालूम होता है? मालूम तो होता है पास है, पर बहुत दूर है। और दूरी खलती है। तब स्वाभाविक आकांक्षा उठनी शुरू होती है—जल्दी हो जाए। अभी हो जाए। अब देर न करो। अब देर न लगाओ।

मगर जब जो होना है तभी होता है। और जब जो होना चाहिए तभी होना चाहिए। कच्चा फल गिर जाए तो सड़ जाएगा। पकना चाहिए। कच्ची कली तोड़ लो, फूल न बन पाएगी। फूल बनना चाहिए। हर चीज की प्रौढ़ता है। हर चीज के पकने का एक क्षण है। और हर चीज का एक मौसम है। इस प्रतीक्षा को आनंदपूर्ण बनाओ। आकांक्षा छोड़ो, प्रतीक्षा करो।

प्रार्थना का रोग लग गया, अच्छा हुआ। अब एक रोग और लगाओ, प्रतीक्षा का। क्योंकि प्रार्थना अगर अकेली हो और प्रतीक्षा न हो, धैर्य हो, तो फिर बड़ी बेचैनी हो जाती है। उस बेचैनी को सम्हालना असंभव हो जाता है। प्रार्थना के साथ-साथ प्रतीक्षा की कला भी सीखो। वह रोग भी लग जाएगा, यहां आते रहो।

मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी, प्रिय, तुम आते तब क्या होता
मौन रात इस भांति कि जैसे
कोई गत वीणा पर बजकर
अभी-अभी सोई-खोई सी
सपनों में तारों सिर घर
और दिशाओं से प्रतिध्वनियां
जाग्रत सुधियों-सी आती हैं,
कान तुम्हारे तान कहीं से यदि सुन पाते, तब क्या होता
मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी, प्रिय, तुम आते तब क्या होता।
बैठ कल्पना करता हूं पग
चाप तुम्हारी मग से आती,
रग-रग से चेतनता खुलकर
आंसू के कण-सी झर जाती

नमक डली-सा गल अपनापन

सागर में धूल-मिल-सा जाता,

अपनी बाहों में भरकर, प्रिय, कंठ लगाते तब क्या होता।

मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी, प्रिय, तुम आते तब क्या होता।

प्रतीक्षा को मधुर बनाओ। प्रतीक्षा का माधुर्य समझो। इंतजार का मजा है। परमात्मा की याद है। परमात्मा की प्रतीक्षा है। पुकारो, रोओ, राह देखो। राह भी मधुर है। विरह भी प्यारा है। इस भाव को संजोओ। इस भाव को जगाओ। इस भाव में रचो-पचो। और जितनी गहरी प्रतीक्षा होगी उतनी जल्दी घटना घट जाती है। और जीतना अधैर्य होगा, इतनी देर लग जाती है।

इस सूत्र को स्मरण रखना।

जितना अधैर्य, उतनी देर। जितना धैर्य, उतनी जल्दी। अगर अनंत प्रतीक्षा हो कि अनंत काल में भी आओगे तो मैं राह देखूंगा, तो इसी क्षण भी आना हो सकता है। मगर अनंत धैर्य हृदय में जब खिलता है तो फिर परमात्मा को और देर करने का कोई कारण नहीं रह जाता। अनंत धैर्य खबर है कि पक गये तुम।

कहते हो—'आपको सुन-सुनकर भक्ति का यह रोग लग गया, अब धैर्य नहीं रखा जाता। आकांक्षा होती है, बस सब अभी हो जाए। 'मैं समझता हूं। ऐसा ही होता है। लेकिन समझ को और निखारो ऐसा होना स्वाभाविक तो है, लेकिन यही स्वाभाविक बाधा बन जाएगा।

फिर क्या होता है आदमी जब बहुत अधीर हो जाता है?

तो दो ही बातें हैं। या तो एक सीमा आ जाती है, अधैर्य को सहना मुश्किल हो जाता है, वह सोचता है—छोड़ो, यह सब होता-जाता नहीं; न कोई परमात्मा है, न कोई प्रार्थना है, मैं भी कहां झंझट में पड़ गया? या तो यह होता है। और या फिर अधैर्य इतना हो जाता है कि आदमी टूट जाता है, बिखर जाता है, विक्षिप्त हो जाता है। दोनों हालत में बात चूक जाती है। शक्ति को प्रार्थना में लगाओ, और कब आना, यह उस पर छोड़ दो। इसको ही मैंने कल उत्क्रांति कहा। तुम प्रार्थना करो—उतना प्रयत्न—और फिर परमात्मा पर छोड़ दो—जब जो होना हो! फलाकांक्षा न करो। उतना प्रसाद। प्रार्थना, प्रयास; और फिर प्रतीक्षा, फिर उसका प्रसाद। जब देगा। जब योग्य समझेगा तब देगा। शिकायत मत करो।

ऐसा कभी नहीं हुआ है कि जब भी कोई व्यक्ति योग्य हुआ हो और क्षण भर की भी देरी हुई हो। तुमने कहावत सुनी है, उसके घर देर है अंधेर नहीं, मैं तुमसे कहता हूं— न अंधेर है, न देर है। जिसने यह कहावत रची होगी, वह अधैर्य में पड़ गया होगा। तो उसने कहा होगा—बड़ी देर हो रही है। अभी आस्था नहीं खोयी है, तो कहता है—अंधेर नहीं है; अभी आशा है, कहता है—कभी न कभी मिलेगा, लेकिन बड़ी देर हो रही है! मगर 'देर' में सिर्फ तुम्हारा अधैर्य प्रकट हो रहा है। कभी देर नहीं होती। सब समय पर घट जाता है इस भाव को गहरा होने दो।

एक रोग लग गया, अब दूसरा और लगा लो। वे दोनों रोग एक-दूसरे को संतुलित कर देंगे। और तुम्हारी शांति खंडित न होगी। और तुम्हारी प्रार्थना निरंतर बढ़ती रहेगी। और तुम्हारी प्रार्थना विक्षिप्त न होगी। तुम्हारी प्रार्थना एक दिन विमुक्ति बन जाए, उसके लिए यह जरूरी है कि तुम धैर्य का पाठ भी सीखो।

आज इतना ही।

तत्छक्तिर्माया उड़सामान्यात् ।।८६।।

व्यापकत्वाद्व्याप्यानाम् ।।८७।।

न प्राणिबुद्धिभ्योऽसम्भवात् ।।८८।।

निर्मायोच्चावचं श्रुतीश्च निर्मिमीते पितृवत् ।।८९।।

मिश्रोपदेशान्नेति चेन्न स्वल्पत्वात् ।।९०।।

सदगुरु शास्त्रों का पुनर्जन्म है

पंद्रहवां प्रवचनः २५ मार्च १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

स्मरण करें पूर्वसूत्र का। यह संपूर्ण विश्व भजनीय है; से अभिन्न है; क्योंकि सब कुछ उसका ही स्वरूप है।

'भजनीयेन अद्वितीयम् इदं कृत्स्नस्य तत् स्वरूपत्वात्।।'

यहां जो भी है, वही है। यहां प्रत्येक वस्तु आराध्य है। यहां और मूर्तियां बनाने की जरूरत नहीं है, सभी मूर्तियां उसकी हैं। यहां मंदिर खड़े करना व्यर्थ है, सारा अस्तित्व मंदिर है।

मनुष्य अधार्मिक हुआ इसी भ्रांति के कारण कि उसने मंदिर खड़े किये, मस्जिद बनायीं, गिरजे बनाये। गिरजों-मंदिर-मस्जिदों ने एक भ्रम पैदा किया कि भगवान मंदिर में है। भगवान जगह है, मंदिर के बाहर भी है, मंदिर में भी है। मंदिर भगवान में है। और सारा अस्तित्व भगवान में फण।

पूजा का खयाल उठता है जब तुम मंदिर जाते हो। और यह शेष सब कौन है? इस सबको तुम झुकते नहीं। इस शेष सबके आनंद से तुम भरते नहीं। फिर मंदिर कितने होंगे? यह सारा जीवन वंचित हो गया तुम्हारे मंदिरों के कारण। परमात्मा सिकुड़ गया, छोटा हो गया। तुमने उसकी मूर्तियां बना लीं, तुमने पवित्र तीर्थस्थल बना लिये। यह सारा स्थान ही तीर्थ है। यह सारा आकाश तीर्थ है। सब नदियां गंगाएं हैं। और सारी पृथ्वी पवित्र है। सब रूपों में वही है। इस पूर्वसूत्र का स्मरण करें। यह सूत्र अपूर्व है—

'भजनीयेन अद्वितीयम् इदं...

अब दूसरे और किसका भजन करने जाते हो? भजन करने और कहीं जाने की जरूरत कहां है? तुम जहां हो, आंख खोलो। जिस पर आंख पड़ जाए, वही भजनीय है। तुम जहां हो, सुनो। जो सुनायी पड़ जाए, वही ओंकार का नाद है। छुओ किसी को, जो छने में आए, वह वही है। जिसे तुम अछूत कहते हो, उसमें भी तुम उसीको छूते हो। अस्पृश्य में भी उसी का स्पर्श होता है। जिसको तुम जड़ कहते हो, उसमें भी वही सोया है। जिसको तुम चेतना कहते हो, उसमें भी वही जागा है। इस विराट की प्रतीति जितनी सघन हो जाए, उतना शुभ।

और देखो, तुम्हारे मंदिर-मस्जिद ने न केवल परमात्मा को सिकोड़ कर छोटा कर दिया, तुम्हें सिकोड़ कर छोटा कर दिया। मंदिर जानेवाला हिंदू हो गया। मस्जिद जानेवाला मुसलमान हो गया। काश, हमने परमात्मा को ऐसा देखा होता जैसा शांडिल्य देखते हैं, तो कोई हिंदू न होता, कोई मुसलमान न होता। अगर तुम प्रत्येक वस्तु में परमात्मा को देखते, तो कैसे हिंदू होते, कैसे मुसलमान होता। कैसे एक-दूसरे की हत्याएं करते? धर्म के नाम अधर्म फैला। मंदिरों-मस्जिदों के नाम पर कितना खून बहा! परमात्मा को संकीर्ण किया इतना ही नहीं, तुम भी संकीर्ण हो गये। होना ही था। जितना परमात्मा तुम्हारा संकीर्ण होगा, उतने ही संकीर्ण तुम हो जाओगे।

तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे हृदय की खबर देता है। तुम्हारा परमात्मा मंदिर में बंद है। तो तुम भी किसी कारागृह में बंद हो गये। हिंदू हो उस कारागृह का नाम, जैन हो, ईसाई हो, यहूदी हो, इससे फर्क नहीं पड़ता—ये कारागृहों के अलग-अलग नाम हैं। लेकिन जिस दिन तुम्हारा परमात्मा मुक्त होकर विचरण करेगा आकाश में, सूरज की किरणों में बहेगा, चांद-तारों में झलकेगा, लोगों की आंखों में दिखायी पड़ेगा, उस दिन तुम्हारी सारी सीमाएं टूट जाएंगी। असीम परमात्मा को जानेगा, पहचानेगा, वह स्वयं भी असीम हो जाएगा।

तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे होने की कीमिया है। इसलिए परमात्मा की धारणा क्षुद्र मत कर लेना। वह धारणा साधारण धारणा नहीं है, उस पर तुम्हारा सारा भविष्य निर्भर है। उस पर तुम्हारा सारा जीवन बदलेगा, बनेगा, मिटेगा।

छोटे-छोटे घर-घुले बना लिये लोगों ने!

इन पक्षियों की आवाज में वही है। सुनो। वृक्षों की हरियाली में वही है। आंख साफ करो और देखो! तुम्हारी पत्नी में, तुम्हारे पति में, तुम्हारे बेटे में, तुम्हारे पिता में वही है। फिर से तलाशो। अगर नहीं मिला है, तो कहीं

तलाश में भूल हो गयी है। तुमने पत्नी को पत्नी मान लिया, उसीमें भूल हो गयी। पत्नी मान लिया, अब तो तुम सोच ही कैसे सकते हो कि परमात्मा हो सकता है। और तुम सोचोगे भी तो पत्नी राजी न होगी; कि मैं तुम्हारी पत्नी हूं, यह तुम क्या कर रहे हो?

मेरे पास एक सज्जन आते थे। थोड़े झक्की स्वभाव के थे। ऐसे एक दिन चर्चा चल रही थी, और मैंने शांडिल्य का यह सूत्र उल्लेख किया और मैंने कहा कि यहां सभी परमात्मा हैं। पति में भी वही, पत्नी में भी वही। वह कुछ भाव में आ गये—झक्की थोड़े थे—भाव में आ गये, घर जाकर एकदम साष्टांग दंडवत, उन्होंने झुक कर पत्नी के चरण छू लिये। पत्नी ने तो चीख मार दी कि यह पागल हो गये! घर के लोग इकट्ठे हो गये, पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये कि तुम्हें हो क्या गया? और वह खूब हंसें। उन्हें आनंद बहुत आया। और लोगों का यह पागलपन देखकर उन्हें और भी बहुत हंसी आयी, उन्होंने कहां, इसमें भूल क्या है? सारे शास्त्र यही कहते हैं कि सबमें परमात्मा है। तो मेरी पत्नी में नहीं है? लोगों ने कहा—वे शास्त्र ठीक कहते हैं, मगर यह व्यावहारिक नहीं है। और शास्त्रों को बीच में मत लाओ, तुम गृहस्थ आदमी हो! तुम कहां की इन ऊंची बातों में पड़ गये! मगर वे मानें नहीं।

दूसरे दिन उन्हें मेरे पास लाया गया। और लोगों ने कहा, आप समझाइये इनको। मैंने कहा, इनको समझ आ गयी है। नहीं, उन्होंने कहा...उनकी पत्नी रोने लगी मेरे पैर पकड़ कर कि आप किसी तरह इनको समझाइये, मेरे पैर न पड़े! और सबके पड़े। मैं इनकी पत्नी हूं!

हमने एक धारणा मान ली है। किसी को तुम पत्नी बना लिये हो, किसी को पति बना लिये हो! जरा कुरेदो, जरा राख के भीतर प्रवेश करो और तुम अंगारा पाओगे उसी का जलता हुआ। उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। तुम्हारे बेटे में वह तुम्हारे घर मेहमान हुआ है। तुम्हारी बेटी में फिर तुम्हारे घर आया है। अतिथि है तुम्हारा। लेकिन तुमने मान लिया है कि मेरा बेटा है, बस वहीं भूल हो गयी। अब परमात्मा दिखना मुश्किल हो जाता है।

इसलिए ज्ञानियों ने कहा है—मेरे-तेरे को गिरा दो। क्योंकि मेरे-तेरे के गिरते ही जो पीछे छिपा है वह प्रकट हो जाएगा। मेरे-तेरे की राख ने उसके अंगार को बहुत बुरी तरह ढक लिया है। जरा सोचो; मेरा-तेरा हटने दो। मेरे-तेरे को छोड़ कर देखो। मेरे-तेरे के वस्त्र अगल कर दो, नग्न सत्य को देखो। फिर कौन पत्नी है, कौन पति है, कौन बेटा है, कौन मां है? एक का ही खेल है।

शांडिल्य कहते हैं—वह संपूर्ण में छाया हुआ है। भगवान सबमें है। इसलिए विश्व भजनीय है। भजन करो विश्व का। अब विश्व का भजन क्या करना होगा।

तुम जहां तल्लीन हो जाओगे, वहीं भजन हो जाएगा। आयी हवा, गिरने लगे वृक्षों से पत्ते, सरसराती हवा बह गयी वृक्षों से, तुम मग्न होकर उसे सुन लेना और तुम पाओगे वह आया, उसके पदचाप सुनायी पड़े। उसने वृक्षों से ही पुराने पत्ते नहीं गिरा दिये, तुम्हारे पुराने पत्ते भी गिरा दिये। वह तुम्हें भी झकझोर गया, निखार गया, साफ कर गया। तुम्हारी धूल झाड़ गया। तुम्हें निर्मल कर गया। मेघ घिरें आकाश में, देखना उसे। कितने रूपों में घिरता है? कितने रूपों में तुम्हारी प्यास को तृप्त करता है? यह भजन।

इसलिए मैं कहता हूं—यह सूत्र बड़ा अदभुत है। ऐसी भजन की परिभाषा किसी ने भी नहीं की जैसी शांडिल्य ने की है। और सब भजन छोटे पड़ जाते हैं। कोई बैठा है, राम-राम, राम-राम जप रहा है। और चारों तरफ खड़े हैं। और तुम राम-राम, राम-राम जप रहे हो! अगर राम भी आ जाएं, खुद राम सामने आकर खड़े हो जाएं, तो तुम उनसे कहोगे—बाधा न दो। अभी मैं राम-राम जप रहा हूं। अभी आगे जाओ!

राम आए ही हुए हैं। लेकिन हमने एक आकार में सीमा बना ली है। हमने पकड़ लिया है कि धनुर्धारी राम! तो जब तुम्हारे सामने एक छोटा बच्चा किलकारी करता आ जाता है, तो तुम नहीं पहचान पाते। किलकारी करते राम तुम्हारे खयाल में नहीं हैं। जब एक पक्षी तुम्हारे सामने से उड़ जाता है तो तुम्हें खयाल नहीं आता क्योंकि

पक्षी धनुर्धारी नहीं होता। न मोर-मुकुट बांधता है। लेकिन पक्षियों को बांसुरी की जरूरत क्या है? उनके कंठ उनकी बांसुरी हैं। और उनके कंठ परमात्मा को समर्पित हैं। और वृक्षों को मोर-मुकुट बांधने की जरूरत क्या है? उनके फूल उनके मोर-मुकुट हैं। कीमती से कीमती ताज फीके हैं। एक छोटे-से फूल के सामने। तुम जरा फिर से देखना शुरू करो। तुमने अब तक जो सीख लिया है, उसे अनसीखा करो। और तुम फिर तलाश शुरू करो। अ, ब, स, से शुरू करनी पड़ेगी खाज। भगवान से अभिन्न है यह विश्व। सब कुछ उसका स्वरूप है। तत स्वरूपतवात्। उसी सूत्र को और आगे आज के सूत्रों में शांडिल्य ने बढ़ाया है।

पहला सूत्र—

'तत्छक्तिः माया जड़ सामान्यात्।।

भागवत-शक्ति का नाम ही माया है; वह चैतन्य-शून्य होने पर जड़वत है।'

बार-बार तुमसे कहा गया है—माया असत्य है। माया से छूटो। माया से मुक्त होओ। माया पाप है। माया बंधन है। माया ही आवागमन है। जितनी गालियां दी जा सकती थीं, माया को दी गयी हैं। सुनो शांडिल्य क्या कहते हैं? शांडिल्य कहते हैं—भागवत-शक्ति का नाम ही माया है। वह झूठ नहीं है। वह झूठ कैसे हो सकती है? भगवान की ऊर्जा का नाम माया है। भगवान से जो निष्पन्न हो रही है वह असत्य नहीं हो सकती। हमारे शब्दकोशों में तो माया का अर्थ ही झूठ हो गया है। असत्य, मिथ्या। जो नहीं है और दिखायी पड़ता है। माया को हम सोचने ही लगे—भ्रम का पर्यायवाची। इतनी बार हमें समझाया गया है कि माया, माया, माया, झूठ है; यह संसार सब माया है।

कुछ भी माया नहीं है। शांडिल्य का क्रांतिकारी उदघोष सुनो। वे कहते हैं, माया परमात्मा की ऊर्जा है। उसको शक्ति है। इसलिए परमात्मा से अदभुत है; असत्य तो कैसे हो सकती है? और यह बात समझ में पड़ती है, सीधी-साफ है। यह सारा जगत असत्य है। लाख शंकराचार्य समझाएं कि यह सारा जगत असत्य है, शंकराचार्य को भी मानकर यही जीना पड़ता है कि यह जगत सत्य है।

एक शूद्र ने उनको छू लिया था काशी में, तो चौंककर खड़े हो गये थे। और चिल्लाकर कहा था कि तुझे समझ नहीं है? मैं स्नान करके गंगा से आ रहा हूं और तूने मुझे छू लिया? अब मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा। उस शूद्र ने पता है क्या शंकर को कहा!

उस सुबह बड़ी अदभुत वार्ता हुई। एक अज्ञानी ने ज्ञानी को चेताया! अज्ञानी अज्ञानी नहीं था। और ज्ञानी ज्ञानी नहीं था—तब तक।

उस शूद्र ने कहा, यह तो बड़ी ऊंची बात कह दी। तुम तो कहते हो—सब माया है। तो मैं सत्य हूं? और अगर माया तुम्हें छू गयी, तो अपवित्र कैसे हो जाओगे? झूठ छू गया, अपवित्र कैसे हो जाओगे? किस गंगा में नहा कर आ रहे हो? और अब फिर उसमें नहाने जाना चाहते हो? फिर कौन-सी चीज तुम्हें छू गयी? मेरी देह ने तुम्हें छुआ है कि मेरी आत्मा ने? दे तो तुम कहते हो—झूठ है। असत्य है। तो असत्य तो कैसे छुएगा?

फिर मेरी देह हो कि तुम्हारी, दोनों असत्य हैं। दो असत्यों ने एक-दूसरे को छुआ तो कौन पवित्र हो जाएगा, कौन अपवित्र हो जाएगा! असत्य तो असत्य होते हैं। क्या पवित्र, क्या अपवित्र? तुम कहते हो—आत्मा सत्य है, आत्मा ब्रह्म है। तो मेरे ब्रह्म ने अगर तुम्हारे ब्रह्म को छुआ तो इसमें कौन-सा पवित्र और अपवित्र होने वाला है? ब्रह्म तो ब्रह्म है। ब्रह्म तो सदा पवित्र है।

कहते हैं शंकर झुक गये थे लाज से। सिर झुका लिया था। और कहा, धन्यवाद कि मुझे चेताया। मैं दर्शनशास्त्र में ही उलझा हुआ हूं।

बात तो ठीक है। शब्दों के जाल घेर लेते हैं। लोगों ने तोतों की तरह सीख लिया है कि संसार माया है, इसमें क्या पड़े हो? लेकिन संसार माया है! ये वृक्ष झूठ है! ये लोग झूठ हैं! यह जो दिखायी पड़ रहा है सारा विस्तार, यह झूठ है! यह झूठ तो नहीं है। यह हो सकता है कि तुम्हारी इसके संबंध में धारणाएं गलत हैं, मगर इससे यह

झूठ नहीं है। रस्सी पड़ी है, तुमने सांप समझ लिया। शंकर ने उसका उल्लेख बार-बार किया है, कि रस्सी पड़ी है तुमने सांप समझ लिया, बा ऐसा ही यह संसार है।...लेकिन रस्सी तो सच है न! सांप की समझ तुम्हारी है। सांप नहीं है वहां, ठीक। मगर समझ झूठ हुई, रस्सी तो झूठ नहीं हुई! रस्सी तो वहां है ही। उस रस्सी पर ही तुमने अपने झूठ को आरोपित कर दिया है। तुमने अपनी पत्नी को मान लिया कि मेरी पत्नी है, यह झूठ होगा, लेकिन पत्नी में जो परमात्मा पड़ा है, जो उसकी किरणें उतरी हैं, वह तो झूठ नहीं है। रस्सी तो है न! तुमने जिसको पत्नी मान लिया है, वह है न! तुम्हारा पत्नी मानना झूठ होगा!

तुमने जिस जमीन के टुकड़े को मान लिया है—मेरा, वह टुकड़ा झूठ नहीं है, तुम्हारा मेरा मानना झूठ है। क्योंकि तुम नहीं थे, तब भी टुकड़ा था। तुम नहीं होओगे, तब भी टुकड़ा रहेगा। तुम्हारा क्या है? तुम क्या ले आए हो और क्या ले जाओगे? सब यहीं था, सब यही रह जाएगा। तुम आए और तुम चले जाओगे। मेरा है, यह मान लेना झूठ था। लेकिन, जमीन? का टुकड़ा तो झूठ नहीं है। वह तो सत्य है।

संसार सत्य है। संसार के संबंध में हम जो ओछी धारणाएं बना लेते हैं, वे झूठ हैं। जिस दिन हमारी धारणाएं गिर जाती हैं और हम निर्धारणा होकर जगत को देखते हैं, उस दि ब्रह्म का दर्शन हो जाता है। ब्रह्म ही है, हमारी धारणाओं के कारण हमें कुछ का कुछ दिखायी पड़ रहा है। सांप तुमने देख लिया है, सांप वहां है नहीं। मग रस्सी है।

शंकर ने अपने उदाहरण में रस्सी है इसकी बात ही नहीं की। सांप नहीं है, इसकी चर्चा को इतना फैलाया कि किसी ने पूछा ही नहीं कि रस्सी का क्या हुआ? रस्सी सत्य है।

शांडिल्य ज्यादा व्यावहारिक बात कर रहे हैं। ज्यादा तर्कयुक्त, ज्यादा सीधी-साफ, तथ्यगत, कि यह सारा विस्तार इस परमात्मा की ऊर्जा का विस्तार है। माया उसकी छाया है।

माया...ऐसा समझें हम कि माया और ब्रह्म का जोड़ा है। इसलिए भक्तों ने राधा और कृष्ण का जोड़ा बनाया है। सीता और राम का जोड़ा बनाया है। ये जोड़े प्रतीक हैं। भक्तों को महावीर अकेले खड़े अधूरे मालूम पड़ते हैं। कुछ कमी है। ब्रह्म तो जरूर हैं। लेकिन माया कहां है? ऊर्जा कहां है। लेकिन शिव तो हैं, लेकिन शक्ति कहां है? यह आकस्मिक नहीं है कि भक्तों ने जोड़े पूजे हैं। भक्तों ने भगवा को जोड़ मग पूजा है। वह प्रतीक है जोड़ा। पुरुष और नारी। ऐसे ब्रह्म और माया। सीता झूठ है? जितने सच राम हैं, उतनी ही सीता सच है।

और इस बात को बहुत प्रगाढ़ता से घोषणा करने के लिए भक्तों ने क्या किया देखते हो? सीता पहले रखा। सीताराम। राधाकृष्ण। इस बात को प्रगाढ़ता से प्रकट करने के लिए कि माया न केवल सत्य है, बल्कि ब्रह्म के भी आगे है। क्योंकि पहले तो उसकी ऊर्जा का अनुभव होता है। पहले तो संसार का अनुभव होता है, फिर ब्रह्म का अनुभव होता है। इसलिए राधा पहले, कृष्ण पीछे। राधा में ही कहीं कृष्ण छिपे हैं। राधा के पीछे ही कहीं छिपे हैं। राधा के ही खोज में तुम निकल जाओगे तो कृष्ण को एक दिन पा लोगे। राधा कृष्ण की परिधि है।

यह देखा न, रास का चित्र देखा? कृष्ण बीच में हैं और गोपियां चारों तरफ नाच रही हैं। यह सारा अस्तित्व कृष्ण—या जो भी नाम तुम देना पसंद करो, ब्रह्म—के केंद्र पर नाच रहा है। यह सारा जगत एक नृत्य है। चांद नाच रहे, तारे नाच रहे, सूरज नाच रहे, पृथ्वी नाच रही; वृक्ष-पक्षी, मनुष्य, सारा जीवन, सारा अस्तित्व नाच में मग्न है। यह रासलीला है। बीच में कहीं केंद्र पर जो खड़ा है, जिसके सहारे यह सब सम्हला है—यह सारा रास उजड़ जाएगा, कृष्ण न हों तो सारा रास उजड़ जाएगा। लेकिन गोपियां न हो तो भी रास उजड़ जाएगा। ये दोनों अनिवार्य हैं। ये दोनों इतने अनिवार्य हैं कि दोनों को अलग-अलग करके देखने में ही भ्रांति हो जाती है। हम दोनों को एक ही सिक्के के दो पहलू समझें।

और यह सब जगह सत्य है।

तुम हो, तो तुम्हारी देह है और देह के भीतर तुम्हारी चेतना है। देह परिधि पर है—राधा पहले। इसलिए स्त्री को हमने प्रकृति कहा है। परमात्मा को पुरुष कहा है, स्त्री को प्रकृति कहा है। तुम्हारी देह तुम्हारे चारों तरफ नाच

रही है। और तुम्हारे देह के केंद्र पर कहीं विराजमान है ब्रह्म। लेकिन तुमने कहीं आत्मा देखी? देह के बिना आत्मा खो जाती है। और आत्मा के बिना देह बिखर जाती है। यह रास दोनों साथ होते हैं तो चलता है। दोनों जुड़े होते हैं तो चलता है। दोनों के आलिंगन में चलता है। दोनों की ऊर्जा चाहिए ही। और यह ऊर्जा का सत्य जीवन के सब पहलुओं पर सत्य है।

तुम पूछो वैज्ञानिक से, वह कहेगा विद्युत तभी हो सकती है जब पॉजिटीव और निगेटिव हों। नहीं तो बिजली खो जाएगी। वहीं शिव-शक्ति, वही राधा-कृष्ण। विज्ञान की भाषा में वह पाजिटिव-नेगेटिव। जरा सोचो, पृथ्वी पर पुरुष ही पुरुष हों, स्त्रियां न हों, कितनी देर पृथ्वी बचेगी? असंभव है। या स्त्रियां ही स्त्रियां हों और पुरुष न हों तो कितनी देर बचेगी? इससे एक बात साफ होती है कि स्त्री और पुरुष दो हैं, ऐसा मानने में ही भ्रांति हो रही है। किसी एक ही वर्तुल के दो हिस्से हैं। चीनियों के पास ठीक प्रतीक हैं—-यिन-यांग'। किसी एक ही वर्तुल के दो हिस्से हैं। या हमारे पास जो मूर्ति है अर्धनारीश्वर की, वह ठीक प्रतीक है।

देखी है शिव की मूर्ति जिसमें शिव आधे स्त्री हैं, आधे पुरुष? वह अस्तित्व की सूचना है। वह खबर है इस बात की कि यह अस्तित्व आधा स्त्रैण है, आधा पुरुष। आधी प्रकृति, आधा परमात्मा। और दोनों से मिलकर एक निर्मित हो रहा है। दोनों का जहां मिलना है, वहीं अद्वैत है।

'भागवत-शक्ति का नाम ही माया है; वह चैतन्य-शून्य होने पर जड़वत है।' इसे हम ऐसा समझें। जैसे तुम ठंढा और गर्म को समझते हो। सापेक्ष। 'रिलेटिविटी' की बात है। किसी चीज को गरम कहें या ठंढा, यह सापेक्षता पर निर्भर है।

कभी एक छोटा-सा प्रयोग करो। एक हाथ को बर्फ पर रख लो और एक हाथ को सिगड़ी पर आंच दे दो और फिर दोनों हाथों को सामने रखी बाल्टी में भरे पानी में डुबा दो। और तुमसे कोई पूछे कि पानी गरम है कि ठंढा? तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। एक हाथ कहेगा—ठंढा और एक हाथ कहेगा—गरम। सापेक्ष है। जिस हाथ को तुमने अंगीठी पर गरम कर लिया, वह कहेगा—पानी ठंढा। उसकी तुलना में पानी ठंढा है। हाथ गरम है। और जो हाथ तुमने बर्फ पर ठंढा कर लिया है, उसको तुम पानी में डालोगे, उसको पानी कुनकुना मालूम पड़ेगा। क्योंकि हाथ ठंढा हो गया है, उसकी तुलना में पानी कुनकुना है।

पानी फिर क्या है? ठंढा है या गरम है?

पानी दोनों है। तुम कहां से देखते हो, वैसे दिखायी पड़ जाता है। तुम अगर बेहोशी से देखोगे, तो माया दिखायी पड़ती है, होश से देखोगे तो ब्रह्म दिखायी पड़ता है, बस! तुम्हारे देखने के ढंग पर सब निर्भर करता है। जिन्होंने जाग कर देखा, उनको ब्रह्म दिखायी पड़ा।

भजनीयेन अद्वितीयम् इदं कृत्स्नस्य तत् स्वरूपत्वात्।।

उस एक का ही सब विस्तार है—जिन्होंने जाग कर देखा। जिन्होंने सोकर देखा, उन्हें वे एक नहीं दिखायी पड़ा—कृष्ण नहीं दिखायी पड़ा, गोपियां नाचती हुई दिखायी पड़ती हैं। उन्हें संसार दिखायी पड़ता है।

इसको ऐसा समझो कि चट्टान है और मनुष्य है...उदाहरण के लिए। चट्टान को तुम जड़ कहते हो। क्यों? मनुष्य को तुम चेतन कहते हो। क्यों? भेद केवल माया का है। वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं, वे कहते हैं—चट्टान को भी कुछ-कुछ अनुभव होते हैं, संवेदना होती है। वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं, वे कहते हैं—वृक्षों को भी संवेदना होती है, अनुभव होता है। चेतना वहां भी है। लेकिन कुछ धूमिल है। कुछ सोयी हुई है।

ऐसा समझो, तुम रात सो गये हो, एक मच्छर काटता है, तो ऐसा नहीं कि तुम्हें पता नहीं चलता। बड़ा धुंधला-धुंधला पता चलता है। नींद मग ही तुम हाथ से मच्छर को हटा देने हो। शायद सुबह तुमसे पूछा जाए तो तुम याद भी न कर सको कि रात मच्छड़ ने काटा। लेकिन तुमने मच्छर हटाया था रात। एक कीड़ा तुम्हारे पैर पर चढ़ रहा है, पैर झटक देते हो। तुम्हें पता भी नहीं है। लेकिन कुछ तो पता हो ही रहा होगा।

तुम नींद में हो। इसलिए बोध साफ नहीं है, साफ-सुथरा नहीं हैं, नींद से भरा हुआ है।

शांडिल्य कहते हैं, परमात्मा और प्रकृति में इतना ही फर्क है—प्रकृति सोया हुआ परमात्मा है और परमात्मा जागी हुई प्रकृति। बस भेद और सोने का है। चेतना धूमिल होती जाती है तो जड़ और चेतना प्रगाढ़ होती जाती है, उज्जवल होती जाती है तो चैतन्य। चैतन्य का आखिरी शिखर परमात्मा और चैतन्य की आखिरी तारतम्य है। चट्टान सोयी हुई चेतना है, आदमी जाग गयी चट्टान है।

पूरा नहीं जाग है—अधूरा-अधूरा जागा है। क्योंकि जब कोई बुद्धपुरुष होता है, तो वह हमसे बहुत जागा हुआ है, उसके सामने हम चट्टान-जैसे हो जाते हैं। इसलिए बुद्धों को भगवान कहा है। सिर्फ इसी प्रतीक के अर्थ में कि वहां चेतना पूरी हो गयी है। बुद्ध को भगवान कहने का यह अर्थ नहीं होता कि उन्होंने दुनिया बनायी है। इतना ही अर्थ होता है कि भगवत्ता का जो लक्षण है—चैतन्य—वह उनमें पूरा हो गया है। वह पूरी तर जाग गये हैं। उसका अंतस्तल रोशन हो गया है। अब वहां कोई भी अंधेरे का टुकड़ा नहीं बचा है। जरा-सा भी द्वीप अंधेरे का नहीं बचा है। कोई कोना-कांतर अंधेर से भरा हुआ नहीं है, रोशनी पूरी तरह व्याप्त हो गयी है। सब रोशन हो गया है। इसलिए बुद्ध को, महावीर को भगवान कहा है। इसलिए नहीं कि उन्होंने दुनिया बनायी। सिर्फ इसीलिए कि भगवत्ता का जो परम लक्षण है—चैतन्य—वह उसमें प्रकट हुआ है। उसका प्राकटय हुआ है।

शांडिल्य के हिसाब से चैतन्य और जड़ सापेक्ष हैं। चैतन्यशून्य होने पर जड़ता रह जाती है। और जड़ता के खो जाने पर चैतन्य का आविर्भाव हो जाता है। इसे इस भ्रांति देखोगे, तो फिर संसार से विरोध छुप जाएगा। तब संसार से भागने की भी कोई जरूरत नहीं है। जागने की जरूरत है, भागने की जरूरत नहीं है। भागने से कैसे जाओगे? संसार का उपयोग कर लेने की जरूरत है। यहीं कहीं घूंघट में छिपा परमात्मा खड़ा है। घूंघट उठाओ। भागकर कहां जाते हो? पहाड़ पर जाकर बैठ जाओगे, वहां क्या करोगे? वहां भी घूंघट उठाना पड़ेगा। वहां चट्टानों का घूंघट उठाना पड़ेगा, जो कि ज्यादा कठिन है। क्योंकि चट्टानों में परमात्मा बहुत गहरा सोया हुआ है। यहां पत्नी में काफी जाओ हुआ था, बेटे में काफी जागा हुआ था, पति में काफी जागा हुआ था। यहां तुमसे घूंघट न उठ सका, तुम चट्टानों पर घूंघट उठा पाओगे? तुम चट्टानों में देख पाओगे परमात्मा को?

लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है कि चट्टानों में लोग आसानी से देख लेते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं—यह बहुत आसान है चट्टान में देख लेना, आदमी में देखना बहुत कठिन है। क्यों? क्योंकि चट्टान में तुम अकेले ही होते हो, अपनी कल्पना का फैलाव कर सकते हो। चट्टान कुछ बाधा नहीं डालती। तुम कहते हो—हे चट्टान, तू ब्रह्म स्वरूप है। चट्टान नहीं कहती—मैं नहीं हूं। चट्टान कहती है, तुम्हारी मर्जी! चट्टान कुछ बोलती ही नहीं। तुम्हें जो मर्जी हो, तुम मान लो, चट्टान को तुम्हारी चिंता नहीं है। लेकिन अगर पत्नी से तुम कहते हो, तो वह जवाब देती है। झगड़ा खड़ा हो जाता है, विवाद खड़ा हो जाता है। हर छोटी बात में विवाद हो जाता है। तुम अपने बेटे से कुछ कहते हो, वह कहता है नहीं करेंगे। या यह हमें जंचता नहीं है। यह बात ठीक नहीं है।

यहां संसार में तुम्हारी अड़चन क्या है? तुम्हारी अड़चन यह है कि तुम अपनी कल्पना करने को पूरी तरह स्वतंत्र नहीं मालूम होते। बस इतनी ही अड़चन है। तुम जो कल्पना करते हो, दूसरे लोग उसको तोड़ देते हैं। उसे खंडित कर देते हैं। जंगल में तुम अकेले बैठ जाते हो गुफा में जाकर, वहां तुम्हारी कल्पना को खंडित करनेवाला कोई नहीं होता। तुम जो कल्पना करो! तुम कहो, कृष्ण कन्हैया, खड़े हैं। तो कृष्ण कन्हैया खड़े कर लो। तुम्हारी कल्पना है। तुम जो बात करना चाहो, कर लो फिर अगर ज्यादा दिन रह गये पहाड़ पर, तो धीरे-धीरे तुम्हीं बात नहीं करते, तुम्हीं कृष्ण कन्हैया की तरफ से जवाब भी देने लगते हो। फिर पागलपन पूरा हो गया। फिर विक्षिप्तता पूरी हो गयी। यही तो पागल का लक्षण है। अब वह अपनी तरफ से भी बोल लेता है, उस तरफ से भी बोल लेता है।

वैज्ञानिक कहते हैं—मनोवैज्ञानिक—कि अगर एक व्यक्ति को तीन सप्ताह तक एकांत में रखा जाए, तो वह अपने से ही बात करना शुरू कर देता है। और अगर तीन महीने तक रखा जाए तो विक्षिप्त हो जाता है।

तो तुम्हारे साधु-संन्यासी जो पहाड़ों पर भाग गये थे, वे कर क्या रहे थे?

मनोविज्ञान की सारी शोध यह कहती है कि वे विक्षिप्त हो रहे थे। अपने सपने फैला रहे थे। अपने सपनों में रस ले रहे थे। कोई सपने तोड़नेवाला नहीं था। जो मानना था मान लेते थे। मान कर जी लेते थे। और अगर तुमने बहुत देर तक कोई बात मानी, तो वह सच हो जाती है।

बुद्ध ने कहा है अपने शिष्यों को कि अगर तुम्हारी समाधि में मैं तुम्हें दिखायी पडूं, तो समझना कि अभी समाधि पूरी नहीं हुई। क्योंकि मैं फिर तुम्हारी कल्पना ही रहूंगा। झेन फकीर कहते हैं कि जब तक कृष्ण, बुद्ध, महावीर, कोई भी दिखायी पड़ें, तब तक समझना कि अभी संसार जारी है। जब कोई भी दिखायी न पड़े और परमशून्य हो जाए, जब कोई विचार न रह जाए, तभी जानना कि तुम घर आ गये हो। नहीं सोचना कि अभी भटकाव कायम है।

इसी भटकाव के लिए लोग जंगल भाग जाते हैं। जंगल में सुविधा है कल्पना में उतने की और कल्पना को मजबूत करने की, संसार में सुविधा नहीं। संसार में जगह-जगह लोग तुम्हारी कल्पना को तोड़ देते हैं। तुम तो मान रहे थे कि यह आदमी...चले शांडिल्य का सूत्र पढ़ लिया सुबह ही सुबह कि सब में भगवान है, और कोई ने तुम्हारा जेब काट लिया। अब इसमें कैसे भगवान देखो? चले तो सुबह से यही मानकर कि भगवान ही देखेंगे, और एक आदमी तुम्हें गालियां देने लगा। इसमें कैसे भगवा न देखो? भूल गये, शांडिल्य एक क्षण में भूल जाएंगे। जब कोई जेब काट लेगा, तुम कहोगे, अब फिर पीछे देखेंगे शांडिल्य को, पहले इस आदमी को देखें!

मैंने सुना है, एक ईसाई पादरी को एक आदमी ने चांटा मार दिया। उस पादरी ने बाइबिल में पढ़ा—था पढ़ा ही नहीं था, रोज लोगों को भी पढ़ाता था—कि जब तुम्हारे गाल पर कोई एक चांटा मारे, तो दूसरा उकसे सामने कर देना। दिल तो हुआ कि इसका सिर तोड़ दो, मगर अब गांव में प्रतिष्ठा थी! मजबूरी में उसने दूसरा गाल उसके सामने कर दिया। वह आदमी भी खूब था। उस आदमी ने सोचा, यह भी ठीक है, यह मौका भी क्यों चुको? उसने दूसरे गाल पर और एक जोर का चांटा जड़ दिया। पुरोहित ने सोचा था कि अब दूसरे गाल पर यह चांटा नहीं मारेगा। इतनी भलमनसाहत तो करेगा। लेकिन आदमी जैसे आदमी होते हैं, वह भी था, उसने दूसरे पर भी और जोर से लगा दिया। उसने कहा यह मौका अच्छा है, अपने-आप तुम मौका दे रहे हो, मैं क्यों छोडूं? वह प्रसन्न ही हो रहा था दूसरा चांटा मारकर कि वह पुरोहित उसके ऊपर झपटा, उसकी गर्दन दबाने लगा। उसने कहा, भई, यह क्या करते हो? उसने कहा कि बाइबिल में इतना ही लिखा है कि एक गाल पर कोई चांटा मारे, दूसरा कर देना; उसके आगे फिर हम स्वतंत्र हैं। इसके आगे बाइबिल में कोई निर्देश नहीं है।

और ऐसा नहीं है कि जीसस के सामने ऐसे सवाल नहीं उठे थे। एक शिष्य ने पूछा है। जीसस ने कहा कि कोई तुम्हें चोट करे, अपमान करे, क्रोध करे, निंदा करे, क्षमा कर देना। एक शिष्य ने पूछा—कितनी बार? स्वाभाविक। क्योंकि आखिर एक सीमा होनी चाहिए। जीसस ने कहा—सात बार। उस आदमी ने कहा—ठीक है! मगर उसने इस ढंग से कहा ठीक है, कि जीसस को लगा कि वह आठवीं बार सातों का इकट्ठा बदला ले लेगा। उसने जिस ढंग से कहा कि अच्छा ठीक है, देख लेंगे, कोई बात नहीं; सात बार का ही मामला है न! तो जीसस ने बदला और कहा कि नहीं, सतहत्तर बार। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, सतहत्तर बार के बाद भी तो उठहत्तर बार आएगा।

शास्त्र काम नहीं पड़ेंगे, जब तक कि तुम्हारी अपनी अंतःप्रज्ञा न जगी हो। शांडिल्य काम नहीं पड़ेंगे, जीसस काम नहीं पड़ेंगे, मैं काम नहीं पडूंगा, जब तक कि तुम्हारी अंतःप्रज्ञा जाग्रत न हो। जब तक कि तुम्हारी भीतर से सूत्र का आविर्भाव न हो, तब तक कोई काम नहीं पड़ेगा। तब तक छोटी-मोटी चीजें तोड़ देंगी। जरा-सी बात सब खराब कर देगी।

जरा-जरा सी तो बातें ही हैं जीवन में, बड़ी-बड़ी बातें कहां हैं?

तुम घर आए दिन भर के थके-मांदे और पत्नी ने चाय की प्याली इस ढंग से रखी कि बस सब शांडिल्य इत्यादि भूल गये! कुछ नहीं उसने, सिर्फ प्याली इस ढंग से रखी, इस बेरुखी से रखो! और जब तुमने चाय चखी तो वह ठंढी है। अब तुम उस वक्त याद न कर सकोगे कि पत्नी में परमात्मा है। उस वक्त सब भूल जाओगे। इससे लोग भागे हैं। इससे भागे हैं। क्योंकि यहां प्रतिपल तुम्हारे सूत्रों की परीक्षा हो रही है, अग्निपरीक्षा हो रही है। तुम्हारे सिद्धांतों की यहां प्रतिपल परीक्षा है। ऐसा नहीं है कि कभी साल में एकाध बार परीक्षा होती है, रोज हो रही है, प्रतिपल हो रही है, उठते-बैठते, सोते-जागते परीक्षा चल रही है। इस परीक्षा से लोग भागे हैं। मैं उनको कमजोर कहता हूं। उनको मैं भगोड़ा कहता हूं।

संसार से भागना नहीं है, न संसार को माया कहकर गाली देनी है। संसार परमात्मा की ऊर्जा है। परमात्मा की ऊर्जा का यह जो विस्तार है, इसी में तलाशो। इसी में तलाशते-तलाशते मिला है, और मिलेगा। क्योंकि इसी में है। और यहां पा लोगे तो हिमालय पर भी पा सकते हो। अगर यहां नहीं पाया, तो हिमालय पर भी नहीं पा सकोगे। फिर हिमालय पर इतना ही होगा कि तुम कल्पना कर लोगे। कल्पना में कोई बाधा देनेवाला नहीं होगा। कल्पना में तुम मुक्त भाव से बहते रहोगे।। कल्पना करते-करते तुम विक्षिप्त हो जाओगे। कल्पना से कोई सत्य की उपलब्ध नहीं होता। कल्पना छोड़ कर आदमी सत्य को उपलब्ध होता है। सारी कल्पनाओं का विसर्जन करने से सत्य को उपलब्ध होता है। संसार नहीं छोड़ना है कल्पना छोड़नी है।

बड़ा मजा है लेकिन, संसार छोड़ते हैं, कल्पना नहीं छोड़ते। मेरा-तेरा छोड़ना, है, पत्नी नहीं छोड़नी है, पति नहीं छोड़ना है, बच्चे नहीं छोड़ने हैं, मेरा-तेरा छोड़ना है। किसी के प्रति पत्नी भाव, पति भाव छोड़ना है। परमात्म भाव का उदय होने देना है। इससे सुंदर अवसर और कहीं नहीं हो सकता है जैसा जगत में है। माया में ही परमात्मा छिपा है।

'भागवत-शक्ति का नाम माया है।' इसलिए शांडिल्य ने कहा, सेवनीय है, भजनीय है। इसका सेवन करो, इसका भजन करो। इस ऊर्जा को पीओ। इस ऊर्जा को पचाओ। इस ऊर्जा से संबंध जोड़ो, सेतु बनाओ। इस ऊर्जा में और तुम्हारे बीच विरोध न रह जाए। संगति बिठाओ। इस ऊर्जा में और तुम्हारे बीच विरोध न रह जाए। संगति बिठाओ। इस ऊर्जा के साथ नाचो और गाओ। इसको इन्होंने भजन कहा है। बड़ी अनूठी परिभाषा की भजन की। इस ऊर्जा के साथ तल्लीन होने का नाम भजन है।

इधर वृक्ष नाच रहा है हवाओं में, हवाएं आयी हैं और वृक्ष को एक नर्तकी बना दिया है, तुम भी नाचो, वृक्ष के साथ। दोनों का नाच कहीं एक तल पर जड़ जाएगा। एक ऐसी घड़ी आती है जब तुम्हारे और वृक्ष के बीच नाच इतना एकात्म हो जाएगा, ऐसा अनन्य भाव पैदा हो जाएगा कि तुम भूल ही जाओगे कौन वृक्ष है, कौन तुम हो। तब तुम्हें पहली दफें घूंघट उठेगा। वृक्ष में परमात्मा छिपा हुआ दिखायी पड़ेगा।

और यह कहीं भी घट सकता है। तुम अपनी हर जीवन दशा में इस भजन को खोज सकते हो। सेवन की कला आनी चाहिए। भोगने की कला आनी चाहिए। लोग भोग से भागते हैं। शांडिल्य कहते हैं—भोग की कला सीखो। ठीक से भोगो। जिन्होंने ठीक से भोगा है, उन्होंने परमात्मा को यहीं पा लिया है।

और जो ठीक से भोग ही नहीं सकते, वे ठीक से त्यागेंगे क्या खाक! जो भोग भी न सके, जो भोग में भी हार गये, वे त्याग में कैसे जीतेंगे? त्याग तो भोग के आगे की कला है। सच पूछो तो त्याग भोग के ही अनुभव से पैदा होता है। 'तेन त्यक्तेन भुग्जीथाः'। उन्होंने ही त्यागा, जिन्होंने भोगा। जिन्होंने इतना भोगा कि भोग में ही त्याग फलित हो गया।

जरा जटिल सूत्र है। और तुम्हारे ऊपर जो सिद्धांतों के हजारों-हजारों पर्दे पड़े हैं उनके कारण और कठिन हो गया है समझना। अगर किसीने ठीक से भोगना सीख लिया, तो उसी भोगने में त्याग छिपा है। जैसे पाया में ब्रह्म छिपा है, वैसे भोगे में त्याग छिपा है। तो वैसे बाह्य में आंतरिक छिपा है। वैसे लहर में सागर छिपा है। वैसे सतह में गहराई छिपी है। यह सब जुड़े हैं सेवन करो। अनेक-अनेक रूपों में परमात्मा का सेवन करो। सुबह तुम जाते

हो, कहते हो—वायुसेवन को जा रहे हैं। शांडिल्य कहेंगे कि वायुसेवन जरूर करो, लेकिन याद रखो, कि वायु में वही है। उसको भगवान का सेवन होने दो। यह कहो कि वायु के रूप में भगवान का सेवन करने जा रहे हैं। कहो ही मत, ऐसा जानो भी, ऐसा जीओ भी। जब तुम्हारे नासापुट सुबह की ताजी हवाओं को भरें, तो ऐसा भी अनुभव करो—परमात्मा को तुम पी रहे हो नासापुटों से। वायु में छिपा है प्राण—प्राणतत्व। वायु में छिपी है संजीवनी। वायु के बिना तुम जरा देर भी न जी सकोगे।

इसलिए समस्त भाषाओं में वायु के जो नाम हैं अलग-अलग, वे सोचने जैसे हैं। योगी उसको कहते हैं—प्राणायाम। प्राण का आगमन। हिब्रू में उसके लिए जो नाम हैं, उसका अर्थ होता है—आत्मा। अंग्रेजी में तुम देखते हो, भीतर जब हम वायु को ले जाते हैं उसको कहते हैं, 'इंस्पिरेशन'। वह स्प्रिट से बना है शब्द। प्राण को भीतर ले जा रहे हैं। उससे हम पुनरुज्जीवित हो रहे हैं। उससे फिर जीवन में लौ आ रही है। फिर दीये में तेल पड़ रहा है। आदमी भी एक ज्योति है। वैज्ञानिक से पूछे तो वैज्ञानिक कहता है—ज्योति नहीं जलेगी अगर वायु न हो। ज्योति वायुरिक्त स्थान में नहीं जल सकती। तुम प्रयोग करके देखो। एक मोमबत्ती के ऊपर कांच का एक बर्तन ढांक दो। बस थोड़ी देर मोमबत्ती जलेगी। जितनी देर भीतर वायु जलने के लिए उपलब्ध रहेगी। जैसे ही भीतर की वायु खत्म हुई, मोमबत्ती बुझ जाएगी। जीवन को भी प्रतिपल वायु की जरूरत है।

बिना भोजन के आदमी तीन महीने तक रह सकता है। बिना पानी के कुछ दिन रह सकता है। लेकिन बिना श्वास के कुछ सेकेंड या कुछ मिनिट। और जितनी देर बिना श्वास के रहता है उतनी देर भी उसके भीतर की जो श्वास है, वह काम देती है, इसलिए रहता है। अगर सारी श्वास बाहर निकाल ली जाए तो उतनी देर भी नहीं रह सकता। परमात्मा आ रहा है श्वास में। सुबह जब वायु बहती हो ताजी और तुम घूमने निकले होओ, तो स्मरण रखना, प्रति श्वास में परमात्मा को भीतर बुलाना, निमंत्रण देना। और तुम चकित हो जाओगे। तुम चकित हो जाओगे, प्रार्थना करके लौटे। और ऐसी प्रार्थना इसके पहले कभी न हुई थी।

तुम्हारी मुर्दा प्रार्थनाएं मंदिरों में तुम जो करते हो, उनका दो कौड़ी मूल्य नहीं है। मैं तुम्हें जीवंत प्रार्थना के लिए कह रहा हूं। तुम एक घड़ी भर सुबह टहल आना;सुबह की ताजगी में, रोशनी में, पक्षियों के गीत में नयी हवाओं को परमात्मा की तरह सेवन कर लेना। तुम घर लौटना। तुम पाओगे, तुम्हारे पैर जमीन पर हनीं पड़ रहे हैं। तुम हल्के हो गये, निर्भर हो गये। जमीन की कशिश का प्रभाव तुम पर काम है। तुम्हारे भीतर बड़ा उत्फुल्ल भाव होगा। जैसे फूल खिल गया हो। तुम्हारे भीतर बड़ी कोमलता होगी, सहृदयता होगी। तुम कठोरता का उपयोग न कर सकोगे। इतना परमात्मा सेवन किया हो, तो कैसे कठोर हो सकोगे? तुमसे सहज ही सुंदर होगा, शुभ होगा।

और ऐसा ही जीवन के प्रत्येक पहलू पर अगर तुम फैला हो, तब तुम समझे शांडिल्य का अर्थ। भोजन करते वक्त स्मरण रखना, परमात्मा का ही भोजन कर रहे हो। तब भोजन का सार अदल जाएगा। क्योंकि भोजन का मनोविज्ञान बदल जाएगा। तुम्हें पह पता है कि अगर कोई तुमसे कह दे कि माफ मरना भाई, तुमने जो भोजन किया है उसमें एक मक्खी गिर गयी थी—झूठ कह दे—मनोविज्ञान बदल गया। अब तुम्हें उबकाई आने लगेगी। तुम्हें उल्टी हो जाएगी। मक्खी गिरी हो कि न गिरी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मक्खी गिर गयी थी और तुम्हें किसी ने बताया, तुम भोजन कर गये, शायद मक्खी को भी ले गये अपने साथ भोजन में भीतर, तो भी उल्टी नहीं होगी। उल्टी मक्खी से नहीं होती, मनोविज्ञान से होती है। मक्खी नहीं भी गिरी थी और किसीने कह दिया कि क्षमा करना, बड़ी भूल हो गयी, एक मक्खी गिर गयी थी। बस, तुम अचानक पाओगे कि सारा शरीर भोजन को बाहर फेंक देना चाहता है। अब तुम बेचैन हो जाओगे। और जब तक वमन न हो जाएगा, तब तक तुम्हें राहत न मिलेगी।

हुआ क्या? भोजन वही था, मजे से बैठे थे।

मैं एक घर में मेहमान था। जिनके घर मेहमान था, रात को उनको एक चूहा काट गया। वे एकदम घबड़ा गये। एक ही कमरे में हम दोनों सोये थे। मैंने उसका पैर देखा, मैंने उनसे कहा—कुछ घबड़ाने की बात नहीं है,

चूहा चोंच मार गया है! आर चूहे यहां काफी हैं तुम्हारे घर में! कोई बात नहीं है! वह सो गये मजे से। कोई अड़चन न थी, कोई बात न थी। दूसरे दिन सुबह हो गयी, मेरे साथ घूमने गये, हम नदी पर स्नान करने गये, लौट कर हम आए, सब ठीक था। घर आते पत्नी ने कहा कि तुम्हारे कमरे में एक सांप निकला। बस उनका चेहरा मैंने देखा एकदम एक हो गया। उन्होंने कहा—सांप! कहीं वही न काट गया हो? वह वहीं बैठ गये सीढ़ी पर! मैंने उनसे कहा कि इतनी देर हो गयी, रात बारह बजे काटा था, अगर सांप ने काटा होता तो सब बारह बज गये, बारह घंटे बीत गये, परिणाम अब तक हो गया होता! मगर परिणाम शुरू हो गया! वह तो लेट गये। इसका चेहरा एकदम काला पड़ने लगा। उनके मुंह से फसूकर आने लगा। डाक्टरों को बुलाया। डाक्टरों ने कहा कि कोई शराबी नहीं मालूम पड़ती।

मनोविज्ञान बदल गया।

कई बार मौत भी हो जाती है, सिर्फ मनोविज्ञान के बदल जाने से। और कई बार मरता हुआ आदमी बच जाता है सिर्फ मनोविज्ञान के बदल जाने से।

मनोविज्ञान का तुम ठीक से अर्थ समझो। एक सूफी कहानी है।

एक फकीर गांव के बाहर बैठा था। उसने एक काली-सी छाया को अंदर आते देखा—फकीर था, अंतर्दृष्टि का आदमी होगा—उसने कहा, रुक, कहां जाती है? कौन है? उस छाया ने कहा कि मैं प्लेग हूं। और भगवान की आज्ञा हुई है कि इस गांव से पांच सौ आदमी मारकर ले जाना है। उसने कहा, कोई बात नहीं जा, आज्ञा हुई तो पूरा कर।

पंद्रह दिन बाद वह लौटती थी। फकीर ने उसको पकड़ा और कहा कि तू झूठ बोली। पांच हजार मर गये। और तूने कहा—पांच सौ। उसने कहा; मैं क्या करूं? मैंने पांच सौ ही मारे, साढ़े चार हजार घबड़ाहट में मर गये! उनमें मेरा हाथ नहीं है। वे क्यों मरे, मैं खुद चमत्कृत हूं।

मनोविज्ञान

एक आदमी मेरे पास लाया गया। उसको वहम हो गया था कि रात सोए हुए दो मक्खियां उसके भीतर घुस गयी हैं। कुछ दिमाग उसका खराब था! अब वह बताए कि अभी हाथ में चल रही हैं अंदर, अब इधर छाती में आ गयी, अब इधर पैर में आ गयीं। उसको कई डाक्टरों ने इलाज किया, उसका कुछ इलाज नहीं था। एक्स-रे लिये गये, कोई मक्खी नहीं—और कोई मक्खी हुई तो ऐसे चल सकती है! मगर वह कहे, चल रही है, यह जा रही है! हाथ पकड़ कर बताए चमड़ी को कि यह अंदर जा रही है।

मैंने उसे कहा, तू लेट। उसे मैंने लिटाया। और मैं भागा मक्खी पकड़ने को! पहले कभी पकड़ी नहीं थी, कोई मुश्किल से दो मक्खी पकड़ पाया। उनको एक बोतल में बद करके—उसकी आंख पर पट्टी बांध कर उसको लिटा दिया था, कि मैं मंत्र-तंत्र करता हूं, तेरी मक्खी के पकड़ने की कोशिश करे! जब उसने दो मक्खियां देखीं, एकदम खुश हो गया। और उसने कहा कि मैं कितना उन लोगों को कहता था, डाक्टरों को, वैद्यों को, मगर कोई मेरी माने न! अब यह बोतल मुझे दो! मैं उनको दिखाता हूं जाकर! वह घूमा, सब डाक्टरों के, वैद्यों के पास गया। और उसके भीतर थी नहीं।

इलाज से काम नहीं हो सका। उसका मनोविज्ञान बदलना पड़ा।

तुम्हारी जिंदगी में तुम्हारी नब्बे प्रतिशत बीमारियां तुम्हारे मन के करण होती है। और तुम्हारे इलाज भी नब्बे प्रतिशत तुम्हारे मन के कारण होते हैं। दवा से ज्यादा तुम्हारा डाक्टर सार्थक होता है। अगर तुम्हारा डाक्टर पर भरोसा है, तो दवा काम कर जाती है। अगर डाक्टर पर भरोसा नहीं है, तो दवा काम नहीं करती है। जिसका जिस पर भरोसा है। किसी को होमियोपैथी पर भरोसा है, तो होमियोपैथी काम कर जाती है, हालांकि होती सिर्फ शक्कर की गोलियां हैं। और कुछ भी नहीं। मगर काम करती है। क्योंकि मनोविज्ञान बदलता है असली बात।

होमियोपैथी शुद्ध मनोवैज्ञानिक इलाज है, महत्वपूर्ण है लेकिन, काम तो करता है! सच नहीं है, लेकिन काम करता है।

अभी पश्चिम में इस पर बहुत प्रयोग चल रहे हैं। दस मरीज एक अस्पताल में एक ही बीमारी के होते हैं। पांच को दवा दी जाती है, पांच को शुद्ध पानी दिया जाता है। और वे बड़े हैरान हैं कि दोनों का परिणाम बराबर होता है। पानी से भी उतनी ही संख्या में लोग ठीक हो जाते हैं। और दवा से भी उतनी ही संख्या में ठीक हो जाते हैं। और एक और हैरानी की बात है कि दवा का कभी-कभी दुष्परिणाम भी होता है, पानी का कोई दुष्परिणाम नहीं होता। ठीक हो गये तो ठीक, नहीं हुए तो कोई हर्ज नहीं। पानी ही पीआ।

लेकिन मरीज को बताना नहीं पड़ता है कि तुम पानी पी रहे हो। मरीज को ही नहीं, डाक्टर भी जो उसको देता है दवा उसके भी पता नहीं होना चाहिए कि वह पानी दे रहा है। नहीं तो उसके भाव, उसका ढंग उसकी झिझक, उसकी आंखें वह सब मरीज पकड़ रहा है। दवा से ज्यादा वह महत्वपूर्ण है। इसलिए जो आदमी यह विभाजन करता है कि पांच को पानी देना, पांच को दवा देना, उसको पता होता है, लेकिन यह स्वयं दवा देने नहीं जाता। वह डाक्टर को दवा दे देता है, दवा डाक्टर पहुंचाता है; जिसको कुछ पता नहीं है कि कौन-सा पानी है और कौन-सी दवा है। दोनों पर एक से लेबल लगे हैं। कोई भेद करना संभव नहीं है। तब परिणाम बड़े सार्थक होते हैं। मरीज को भरोसा आ जाना चाहिए।

शांडिल्य जो कह रहे हैं, भगवान का सेवन, वह बड़ा अदभुत मनोवैज्ञानिक प्रयोग है। भोजन करते वक्त सोचना—अन्नं ब्रह्म। यह मैं ब्रह्म का भोजन कर रहा हूं। आदर से, समादर से। एक-एक कौर में ब्रह्म को ही चबाना। और तुम पाओगे कि तुम्हारे भोजन की गुणवत्ता बदल गयी। भोजन वही है, लेकिन तुमने उसमें महिमा डाल दी। तुमने उसमें प्रार्थना सम्मिलित कर दी।

स्नान कर रहे हो, स्मरण रखना कि यह परमात्मा की जलधार तुम पर पड़ रही है। यह फव्वारे के नीचे खड़े हो, यह उसी का फव्वारा है। और तुम पाओगे, बूंदों की ठंढक और है। और बूंदों का रस और है। वे तुम्हें प्राण दे जाएंगी। तुम्हें ताजा कर जाएंगी। जैसा उन्होंने कभी भी न किया था। ऐसे कोई चौबीस घंट भगवान का सेवन करता रहे, तो इस सारी प्रक्रिया का नाम भजन है।

जगत सेवनीय है, भजनीय है। परमात्मा और प्रकृति एक ही ऊर्जा के दो नाम हैं। चैतन्य के आधिक्य के कारण परमात्मा कहते हैं, मूर्च्छा के आधिक्य के कारण प्रकृति। भेद इतना ही है, जागृति और निद्रा का।

भगवान की शक्ति का नाम माया अर्थात वह उनका स्त्रैण रूप है। अर्धनारीश्वर को फिर स्मरण करो। वह मूर्ति घर-घर में रखने जैसी है। ताकि तुम्हें सदा यह याद रहे कि जगत विपरीत छोरों से मिलकर बना है। विपरीतता जगत में अपरिहार्य है। नहीं तो जगत बिखर जाता है। एक ने अपने को दो विपरीत में बांट लिया है। उन्हीं के बीच सारी लीला चल रही है।

लेकिन माया का इतना विरोध किया गया है कि तुम्हें बड़ी कठिनाई होगी स्वीकार करने में कि संसार भी ब्रह्म का रूप है; कि दुकान भी मंदिर है। दुकान भी मंदिर है। क्योंकि ग्राहक में जो जाता है, वह प्रभु ही है। और दुकान इस ढंग से की जा सकती है कि वह मंदिर हो जाए। और जिस दिन दुकान इस ढंग से होगी, उसी दिन दुनिया का रूपांतरण होगा। जिस दिन दुकानदार कबीर की तरह होगा।

कबीर बैठते थे अपना कपड़ा बेचने काशी के बजार में—बुनते थे, फिर बेचने जाते थे। जुलाहे थे। जो भी आता उसको खूब समझाते, उसको ओढ़ा कर कपड़ा दिखाते: और पता है उसे संबोधन क्या करते थे? कहते थे—राम। राम, यह देखो! इसको जरा ओढ़कर देखा। यह बड़ी मेहनत से बुना है। इसमें बड़ा भजन भरा है। इसका एक-एक ताना-बाना बनते वक्त मैं भजन ही गुनगुनाता रहा हूं। तुम्हारे लिए ही चुना है, राम! यह खूब टिकेगा। जितनी मेहनत-मजूरी होती, वह मांग लेते? फिर इस पर चार पैसे मजूरी मुझे मिल जाए, इतना इस पर खर्च हुआ है।

लोग प्रतीक्षा करते थे कबीर का कपड़ा मिल जाए। वह कपड़ा कपड़ा नहीं था, झीनी झीनी बीनी रे चदरिया, राम रस भीनी रे चदरिया! कबीर गुनगुनाते, गीत गाते, भजन करते, बुनते रहते। राम नाम भी कहीं न कहीं उन धागों के साथ बन जाता था। उस चादर का गुणधर्म बदल जाता था। उस चादर में भजन सम्मिलित हो जाता था। भजन करने वाली व्यक्ति जो भी करता है उसमें भजन सम्मिलित हो जाता है।

तुमने भी यह फर्क देखा है, लेकिन खयाल नहीं करते हो। जिंदगी में सब चीज उपलब्ध हैं लेकिन तुम खयाल नहीं करते, अवलोकन नहीं करते। जब तुम्हारे प्रति कोई बहुत प्रेम से भरकर भोजन तैयार करता है, तुमने भोजन में कुछ फर्क देखा या नहीं देखा? भोजन का कुछ गुणधर्म बदल जाता है या नहीं बदल जाता है? मनोवैज्ञानिक अब स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार करते हैं कि क्रोध में कोई भोजन बनाए। और अक्सर ऐसा होता है, स्त्रियां क्रोध में भोजन बनाती हैं। और जब पति बीमार पड़ जाता है तो वह परेशान होती है। लेकिन क्रोध में भोजन बनाती है। बच्चे को भी पीटे जा रही है, पति के खिलाफ भी विचार किये जा रही है, और किसी तरह बना रही है। बर्तन भी फेंके जा रही है, प्लेटें भी तोड़े जा रही है, किसी तरह भोजन बना रही है। अत्यंत क्रोध में! यह सम्मिलित हो जाएगा भोजन में। इस क्रोध की तरंग भोजन को पकड़ जाएगी। यह क्रोध वास्तविक घटना है, इस स्त्री के चारों तरफ क्रोध की हवा है, यह भोजन में प्रवेश हो ही जाएगा। भोजन इससे अछूता न रह सकेगा। यह भोजन विषाक्त हो गया। इस भोजन का गुणधर्म विकृत हो गया। इस भोजन को करने का मतलब बीमारी है। अगर यही हो रहा है।

जब कोई प्रेम से नाचता हुआ, गीत गाता हुआ, आनंदमग्न, मेरा बेटा आता है, कि मेरा पति आता है, कि मेरा भाई आता है, कि मेरे पिता आते हैं, भोजन को तैयार करता है, उस भोजन की गुणवत्ता और है। फिर वह रूखा-सूखा भी बहुत स्वादिष्ट है। और यह मैं केवल कविता की बात नहीं कह रहा हूं, इसके पीछे पूरे मनोविज्ञान का सहारा है। प्राचीन मनोविज्ञान तो सदा से यह कहता रहा है, लेकिन आधुनिक मनोविज्ञान भी इसके साथ संयुक्त हो गया है।

इस देश में हम स्त्रियों का मासिक धर्म के समय भोजन नहीं बनाने देते थे। अब तो जरा मुश्किल हो गया, अब तो धीरे-धीरे चलने लगा, कम से कम शिक्षित घरों में तो चलने ही लगा है; सुसंस्कृत, आधुनिक घरों में तो चलने ही लगा है; लेकिन सदियों से हमने इस देश में स्त्रियों को मासिक धर्म के समय भोजन नहीं बनाने दिया। उसका कारण? उसका कारण यह नहीं था कि मासिक धर्म में जो खून बहता है वह अपवित्र है। नहीं, वह तो गौण बात है। वह कोई खास बात नहीं है। वह तो खून ही, खून जैसा खून है, उसमें कुछ अपवित्रता नहीं है। लेकिन मासिक धर्म के समय स्त्री का चित्त तनावपूर्ण होता है। उद्विग्न होता है, परेशान होता है; प्रफुल्लित नहीं होता। वह असली बात है। वह चार दिन स्त्री थोड़ी बेचैनी होती है, पीड़ित होती है, उसका पूरा अस्तित्व एक तरह की उद्विग्न दशा में होता है, एक तरह की ज्वरग्रस्तता उसके भीतर होती है, स्वाभाविक नहीं होता उसका उन चार दिनों का अस्तित्व। उसका भोजन बनाना घातक है।

अभी इस पर कुछ प्रयोग किये गये हैं दुनिया की अनेक प्रयोगशालाओं में। और यह बात पायी गयी, इसमें सचाई है। और कोई काम स्त्री करे भला, लेकिन भोजन उन चार दिनों में न बनाए। क्योंकि भोजन साधारण बात नहीं है। उससे पूरे परिवार का जीवन जुड़ा है। मगर मूल बात इतनी है कि आनंदमग्न का परिणाम होता है।

तुम भी दुकान पर मंदिर ला सकते हो। और मैं उसी पक्ष में हूं। मंदिर अलग नहीं होना चाहिए; दुकान से संयुक्त होना चाहिए। मंदिर अलग नहीं होना चाहिए, तुम्हारे घर में ही होना चाहिए। तुम्हारा घर मंदिर होना चाहिए।

माया का इतना विरोध किया गया है, वह वस्तुतः माया का विरोध नहीं है, हमारी धारणाओं का, हमारे मेरे-तेरे का विरोध है। इस मेरे-तेरे के कारण हम उलझ गये हैं और जो है, वह हमें दिखायी नहीं पड़ता। हमारा मेरा इतना बड़ा हो जाता है उसमें सब छिप जाता है।

कौन हंसिनियां लुभाए हैं तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला हुआ है? कभी-कभी हंस भी आ जाता है और उलझ जाता है? डबरों में कीचड़ के डबरों में।

कौन हंसिनियां लुभाएं हैं तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला हुआ है?

कौन लहरें हैं कि जो दबती-उभरती

छातियों पर हैं तुझे झूला झुलाती?

कौन लहरें हैं कि तुझ पर फेन का कर

लेप, तेरे पंख सहला कर सुलाती?

कौन-सी मधुगंध बहती है पवन में

सांस के जो साथ अंतर में समाती?

कौन हंसिनियां लुभाए हैं तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला हुआ है?

कौन श्यामल, श्वेत ओ'रतनार नीरज

के निकुंजों ने तुझे भरमा लिया है?

कौन हालाहल, अमीरस और मदिरा

से भरे लबरेज प्यालों को पिया है

इस कदर तूने कि तुझको आज मरना

और जीना और झुक-झुक झूमना सब

एक सा है? किस कमल के नाल की

जादू-छड़ी ने आज तेरा मन छुआ है?

कौन हंसिनियां लुभाए हैं तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भुला हुआ है?

किसने लुभाया है? तुम्हारे पुराने साधु-संन्यासी कहते हैं, स्त्रियों ने लुभा लिया है पुरुषों को; धन ने लुभा लिया है पुरुषों को। वह बात व्यर्थ है।। वह बीमारी को न पकड़ना, लक्षण को पकड़ लेना है। मेरे-तेरे ने लुभा लिया है, मैं तुमसे कहता हूं। मेरा-तेरा चला जाए और सारा जीवन रूपांतरित हो जाता है। तुम मेरे-तेरे की भाषा भर भूल जाओ कि लक्ष्मण तुम पाओगे, कोई यहां लुभा नहीं रहा है, यहां लुभाने वाला एक ही है, वह परमात्मा है। स्त्री से भी वही झांका है।

जब तुमने किसी सुंदर स्त्री में आकर्षण अनुभव किया है, तो दो उपाय हैं। या तो तुम समझो कि यह देह सुंदर है, इसको भोग लूं, इसको अपना बना लूं, यह स्त्री मेरी हो—या यह पुरुष मेरा हो—इस पर मैं कब्जा कर लूं, कहीं कोई और कब्जा न कर ले, इसके हाथों में मैं सोने की जंजीरें डाल दूं। इसको घर ले आऊं, इसको एक कटघरे में बिठा दूं। तुम जिसको घर कहते हो, वह कटघरा है, वह पिंजड़ा है, फिर उसमें चाहे सोने की ही सींखचे क्यों न लगे हों। और तुमने जिनको आभूषण समझ कर स्त्रियों को भेंट किया है, वे सिर्फ जंजीरें हैं। कीमती हैं। बहुमूल्य हैं, इसलिए उनसे इंकार भी नहीं किया जा सकता।

एक और ढंग है। सुंदर स्त्री दिखायी पड़े तो तुम्हें उसमें परमात्मा के सौंदर्य की झलक मालूम पड़े। तुम समझो कि यह स्त्री भी एक दर्पण है जिसमें परमात्मा झलका है। और अनंत दर्पण हैं, उनमें यह भी एक प्यारा दर्पण है। लेकिन मालकियत का कोई सवाल नहीं है। यहां मालिक कौन किसका? यहां मालिक तो सिर्फ एक है। या मालिक! यहां मालिक तो बस एक है। उस मालिक की याद करो। तुम मालिक बन बैठे हो, यहीं भूल हो गयी। तुम मालिक बन बैठे, बस वहीं तुमसे चुक हो गयी। तुम अपनी मालकियत छोड़ दो। कहीं जाना नहीं है, सिर्फ मालकियत छोड़ देनी है, मेरे का भाव छोड़ देना है। वह मेरे का परिग्रह गया कि जीवन में एक क्रांति हो जाती है। सब ऐसा ही होता है, लेकिन फिर भी सब बदल जाता है। तब फूल में सिर्फ नहीं दिखायी पड़ता; फूल की देह होती है, परमात्मा का प्राण होता है। सुंदर स्त्री में सुंदर स्त्री नहीं दिखायी पड़ती; सुंदर स्त्री में सिर्फ

परमात्मा का प्रतिबिंब होता है। उसकी झलक होती है। तब चारों तरफ हर सौंदर्य में, हर संगीत हर रस में उसी की याद आने लगती है। तब हर तरफ से उसी का इशारा आने लगता है। और हर इशारा उसका ही तीर बनकर हृदय में चुभने लगता है। उस स्थिति को शांडिल्य ने भजन कहा है।

'व्यापकत्वात व्याप्यानाम।।

व्यापक की सत्यता के कारण व्याप भी सत्य है।' परमात्मा समाया है सब में, ऐसा शास्त्र, सभी शास्त्र कहते हैं। कहते हैं, कण-कण में परमात्मा है। तो जिसमें परमात्मा समाया है, वह झूठ नहीं हो सकता। झूठ में सत्य कैसे समाएगा? तुम सत्य पानी को झूठे घड़े में कैसे भरोगे? या भर सकते हो?

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक पिटारी अपने सिर पर लिये आ रहा था। रास्ते में कोई साथ हो लिया, उसने पूछा कि यह पिटारी बड़ी अजीब है! उसने कहा—ये छेद भी बने हैं, क्या ले जा रहे हो, नसरुद्दीन? नसरुद्दीन ने कहा, इसमें एक नेवला पकड़ लाया हूं। नेवला, उस आदमी ने पूछा! नेवला क्या करोगे? सुना नहीं कभी कि लोग नेवला पकड़ कर घर ले जाते हैं। उसने कहा, मामला ऐसा है, तुम जानते हो कि मैं कभी-कभी रात ज्यादा पी जाता हूं। जब ज्यादा पी जाता हूं तो मुझे सांप दिखायी पड़ते हैं। मैंने सुना है कि नेवला रखो घर में, सांपों को पकड़ कर खा जाता है, टुकड़े-टुकड़े कर देता है, इसलिए नेवला ले जा रहा हूं। पर उस आदमी ने कहा कि तुमने मुझे और उलझने डाल दिया। वह सांप जो तुम्हें दिखायी पड़ते हैं जब तुम ज्यादा पी जाते हो, वह सब झूठे होते हैं, कल्पना के होते हैं। तो मुल्ला ने कहा, यह नेवला कौन सच है? सिर्फ टोकरी सच है, भीतर कुछ नहीं है।

झूठ को काटना हो तो झूठ से काटा जा सकता है। सत्य को मिटाने के लिए झूठ से नहीं काटा जा सकता है। सत्य और झूठ का कहीं मिलन ही नहीं हो सकता। अगर सच्चा पानी है, तो नकली घड़े में कैसे भरोगे? झूठे घड़े में कैसे भरोगे? जो घड़ा है ही नहीं, उसमें कैसे भरोगे?

यह सूत्र खयाल में रखने जैसा है।

'व्यापक की सत्यता के कारण व्याप्य भी सत्य है।' शांडिल्य कहते हैं, सारे शास्त्र कहते हैं परमात्मा कण-कण में समाया हुआ है, सब में समाया हुआ है, तो जिसमें समाया हुआ है वह भी सत्य हो गया उसके कारण जो समाया हुआ है। अगर संसार झूठा है तो फिर परमात्मा भी झूठ हो जाएगा! शंकराचार्य की बात अगर सच है, कि संसार माया है तो तुम्हारा ब्रह्म भी माया हो गया।

और यही बौद्ध दार्शनिकों ने प्रश्न उठाया है। नागार्जुन ने यही प्रश्न उठाया है कि संसार माया है—इसको स्वीकार कर लिया और बड़ा अनूठा निष्कर्ष निकाला—अगर संसार माया है तो इसमें जो समाया है, ब्रह्म, वह भी माया हो गया। शांडिल्य ने एक निष्कर्ष निकाला, ठीक उससे दूसरा निष्कर्ष नागार्जुन ने निकाला है, लेकिन दोनों का तर्क एक है। तर्क का आधार एक है। शांडिल्य कहते हैं, अगर परमात्मा सच है तो संसार भी सच हो गया। दूसरी तरफ से नागार्जुन चलते हैं, वे कहते हैं, हम मान लेते हैं कि संसार झूठ है, जैसा वेदांत कहते हैं, अगर संसार झूठ है तो उसको झूठ को बनाने वाला भी झूठ हो गया। उस झूठ में समाया भी झूठ हो गया। इसलिए ब्रह्म भी झूठ है। संसार भी माया, ब्रह्म भी माया। मगर तर्क का आधार एक ही है।

लेकिन मुझे लगता है शांडिल्य का चुनाव नागार्जुन से ज्यादा बेहतर है। क्योंकि नागार्जुन भी विवाद में पड़े हैं। किससे विवाद कर रहे हो? किसको समझा रहे हो कि संसार भी झूठ, ब्रह्म भी झूठ। किसको समझा रहे हो? यहां कोई है ही नहीं। और जब यहां कोई भी नहीं है, जब सब दृश्य झूठ हैं तो द्रष्टा भी झूठ हो जाएगा। फिर ये शास्त्र किसके लिए लिखे जा रहे हैं? ये विवाद किससे किया जा रहा है? इसका उत्तर नागार्जुन के पास नहीं है।

शांडिल्य की बात ज्यादा व्यावहारिक, ज्यादा वैज्ञानिक मालूम पड़ती है। परमात्मा सबमें छिपा है, इसलिए जिसमें छिपा है वह भी सत्य है। दोनों सत्य हैं। और ध्यान रखो, दुनिया में दो सत्य नहीं हो सकते। सत्य तो एक ही हो सकता है, सत्य कैसे दो हो सकते हैं? क्योंकि अगर दो होंगे तो एक-दूसरे की सीमा बना देंगे। दो होंगे तो

बीच में एक रेखा खींचनी पड़ेगी। दो सत्यों के बीच कैसे रेखा खींचोगे? दो सत्य नहीं हो सकते। सत्य तो एक ही हो सकता है। तो फिर सत्य के दो ढंग हैं, सत्य के प्रकट होने के दो ढंग हैं। कभी की तरह प्रकट होता है, कभी वृक्ष की तरह प्रकट होता है, पर एक ही सत्य है। वही संसार की तरह प्रकट है—जब परमात्मा सोया होता।

तुम्हारी अमुक्त दशा क्या है? परमात्मा तुम्हारे भीतर सोया हुआ है। तुम्हारी मुक्त दशा क्या है? परमात्मा उठ गया, जाग गया। इतना ही भेद है। तुममें और बुद्धपुरुषों में कोई बुनियादी भेद नहीं है। इतना ही भेद है—तुम जाग रहे हो, तुम्हारे पास में कोई सोया हुआ है। वह भी जाग सकता है, तुम भी कभी सोये थे। बुद्ध ने कहा है, मैं भी कभी अज्ञानी था, अब ज्ञानी हो गया, तुम अभी अज्ञानी हो, कभी भी ज्ञानी हो सकते हो। मेरे और तुम्हारे बीच कोई मौलिक भेद नहीं है। मेरे पास एक क्षमता थी जिसका मैंने उपयोग कर लिया है, तुम्हारे पास क्षमता पड़ी है जिसका तुमने उपयोग नहीं किया है। तुम कभी भी कर सकते हो। किसी भी क्षण कर सकते हो। अभी कर सकते हो। इसी क्षण कर सकते हो। सोए और जागे आदमी में फर्क ही क्या है? जरा-सा फर्क है। उतना ही फर्क है बुद्ध और अबुद्धों में।

'न प्राणि बुद्धिभ्यः असम्भवात्।।

यह कोई मनुष्य की बुद्धि से कल्पित भी नहीं है।' फिर शांडिल्य कहते हैं, शायद कुछ लोग कहें—कुछ लोग कहते हैं—कि यह संसार मनुष्य की बुद्धि की कल्पना है। शांडिल्य कहते हैं, यह बात सच नहीं हो सकती। क्यों सच नहीं हो सकती? क्योंकि इस संसार में इतना विराट फैला हुआ है, मनुष्य की बुद्धि इतनी क्षुद्र है! इस सारे संसार का फैलाव मनुष्य की बुद्धि से तो असंभव ही है, मनुष्य की बुद्धि से तो इस पूरे फैलाव को जानना भी संभव नहीं है। अभी हमें पता भी नहीं है कि यह अस्तित्व कितना बड़ा है। यह पृथ्वी इतनी बड़ी मालूम पड़ती है! यह कुछ बड़ी नहीं है, यह बहुत छोटी है। सूरज इससे साठ हजार गुना बड़ा है। और सूरज कुछ खास बड़ा सूरज नहीं है, यह बड़ा छोटा सूरज है। महासूर्य हैं। जिनको रात में तुम तारों की तरह देखते हो, वह सब महासूर्य हैं। वे इस सूरज से करोड़ों गुने बड़े हैं।

इस पृथ्वी से सूरज तक फासला है! सूरज की किरण को आने में साढ़े नौ मिनिट लग जाते हैं। और सूरज की किरण बड़ी रफ्तार से चलती है—उससे बड़ी कोई रफ्तार नहीं है। एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील चलती है। साढ़े नौ मिनिट लगते हैं सूरज से पृथ्वी तक आने में। मगर यह कोई बड़ा फासला नहीं है। क्योंकि सबसे करीब का जो तारा है, उससे किरण ओ में हमको चार साल लग जाते हैं। और सबसे दूर का जो तारा है, उससे हमारे तक किरण आने में अस्सी करोड़ वर्ष लग जाते हैं। और उसके पार भी तारे हैं, जिनको हमें कुछ पता नहीं, क्योंकि उनकी किरण आयी ही नहीं कभी। कभी आएगी भी, इसका भी कुछ पक्का नहीं है। और भी आगे तारे होंगे, जिनकी किरण कभी भी नहीं आएगी। उनका हमें पता नहीं चलेगा! हमें पता ही तब चलता है जब कोई किरण आ जाती है। नहीं तो हमें पता नहीं चलता।

इतना विस्तीर्ण लोक है यह!

अभी तारों की पूरी गिनती भी नहीं हो सकती। रोज गिनती होती जाती है, रोज तारे बढ़ते जाते हैं, और अब तो वैज्ञानिक कहने लगे हैं, गिनती कभी पूरी नहीं हो पाएगी, अनगिन तारे हैं। एक-एक तारा एक-एक सूरज है। एक-एक सूरज के पास बहुत-सी पृथ्वियां हैं। चांद हैं, ग्रह-उपग्रह हैं। यह हमारी पृथ्वी तो एक छोटा-मोटा तिनका है। एक छोटा-सा कण, जिसका कहीं कोई पता नहीं है। इतने विस्तीर्ण जगत की कल्पना मनुष्य से हो सकती है, यह मनुष्य है, यह मनुष्य की बुद्धि का विस्तार हो सकता है? मनुष्य की छोटी-सी बुद्धि। नहीं, इस विराट के आयोजन का कारण नहीं हो सकती। इसको तो समझाना भी मुश्किल है।

इसलिए जो दार्शनिक कहते हैं कि यह सब मनुष्य की बुद्धि का ही फैलाव है, गलत समझते हैं। पर इसके पीछे बुद्धि है, इतना निश्चित है। मनुष्य की बुद्धि तो नहीं है, मगर कोई बुद्धि इसके पीछे है। क्योंकि इतनी व्यवस्था है। इतना सुसंयोजित है सब। इतना तारतम्य बंधा है। इतना संगति है। कहीं कोई दुर्घटना नहीं हो रही।

इतना विराट विस्तार और इतनी सुगमता से चल रहा है। इतनी शालीनता चल रहा है। इतना सहजता से चल रहा है। उसके पीछे कोई महाबुद्धि होनी चाहिए। परम बुद्धि होनी चाहिए। इस महाबुद्धि के तत्व का नाम ही परमात्मा है। इस अस्तित्व के पीछे छिपा हुआ जो...जो बुद्धि का चरम रूप है, 'कास्मिक इंटेलिजेंस' जो ब्रह्मबुद्धि है, वही परमात्मा है।

हमारी बुद्धि उस परमात्मा की ही बुद्धि की एक छोटी-सी किरण है। हम सूरज नहीं है, हम किरणें हैं। लेकिन अगर किरण हमारी पकड़ में आ जाए तो हम सूरज तक पहुंच सकते हैं। उसी किरण के धागे को पकड़कर हम सूरज तक जा सकते हैं। उसी किरण के सहारे हम सूरज में लीन हो सकते हैं।

ऐसे लोग हुए जो सूरज में लीन हो गये हैं। राम हैं, कृष्ण हैं, क्राइस्ट हैं, मुहम्मद हैं, जरथुस्त्र हैं, लाओत्सु हैं; ऐसे लोग हुए जो इसी किरण के सहारे को पकड़ कर धीरे-धीरे-धीरे आदमी की बुद्धि को जगा कर धीर-धीरे परम बुद्धि तक पहुंच गया हैं। उस परम समाधिस्थ अवस्था में लीन हो गये हैं। जहां उनका और ब्रह्मांड का भेद समाप्त हो जाता है।

'निर्माय उच्चावचं श्रुतिः च निर्मिमीते पितृवत्।।

समस्त भत-रचना की भांति वेद भी प्रकाशित हुआ है, जैसे पिता संतान को जन्म देकर शिक्षा का उपाय करता है। और शांडिल्य कहते हैं, उस परमात्मा से यह सारा जगत ही नहीं पाया है, इस जगत को जीने के ढंग भी उस परमात्मा से आए हैं। इस जगत को कैसे हम सेवन करें, उसका विज्ञान भी दिया है। उस विज्ञान का नाम ही वेद है।

याद रखना, वेद से सिर्फ हिंदुओं के वेद का संबंध नहीं है। मूल में जो शब्द है वह है, श्रुति। वह प्यारा शब्द है। लेकिन हिंदू जब इसका अनुवाद वेद से कर बैठते हैं, वे हमेशा श्रुति का अनुवाद वेद से कर देते हैं। हिंदू-बुद्धि आ जाती है। श्रुति का अर्थ है, सुन गया उनसे जिन्होंने जाना। श्रुति का अर्थ है, जिन्होंने जाना उसे हमने सुना। कुरान भी श्रुति है, बाइबिल भी श्रुति है, धम्मपद भी श्रुति है। वेद पर ही समाप्त नहीं हो गया है। वेद आता रहा है। आते रहे हैं। आते रहेंगे। क्योंकि जैसे-जैसे आदमी बदलता है वैसे-वैसे आदमी को नये वेदों की जरूरत हो जाती है।

वैसे वेद शब्द प्यारा है। अगर ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद अथर्ववेद पर हम उसको खत्म न कर दें तो वेद शब्द प्यारा है। वेद शब्द बनता है विद से। विद। का अर्थ होता है—ज्ञान, जानना। जिन्होंने जाना, उनके वचन संगृहीत किये गये हैं। परमात्मा उतरता रहा है। परमात्मा की महाप्रतिभा मनुष्य की प्रतिभा में झलक मारती रही है, कौंधती रही है। सदा से। यह स्वाभाविक है। क्योंकि जिससे हम उत्पन्न हुए हैं, जिससे हम आए हैं, वह हमें जीवन निर्देश भी दे, यह वैसा ही स्वाभाविक है शांडिल्य कहते हैं, जैसे पति संतान को जन्म देकर शिक्षा का उपाय करता है।

'समस्त भूत-रचना की भांति वेद भी प्रकाशित हुआ है।' तो वेद से मेरा अर्थ खयाल में ले लेना। जब भी कहीं कुछ जाना गया है, तभी वेद जन्मा है। अनंत वेद हैं। हिंदुओं के वेद पर वेद समाप्त नहीं हो जाते। यह वेद का एक ढंग है। और-और वेद है। और-और भाषाओं में प्रकट हुए हैं। श्रुति शब्द ज्यादा बेहतर है। हमने सुना। बौद्धों के सब शास्त्र शुरू होते हैं—'दस हैव आइ हर्ड'। ऐसा मैंने सुना है। क्योंकि बुद्ध ने कहा है, बुद्ध जानते हैं, लेकिन जिन्होंने लिखा है, उन्होंने तो सिर्फ सुना है। उन्होंने बुद्ध को कहते सुना है। उन्होंने लिख लिया है, संगृहीत कर लिया है, ताकि काम आ सके उन सबके जो शायद अभी जानने में समर्थ नहीं हैं, शायद अभी जानने की जिनमें क्षमता नहीं है, पात्रता नहीं है। शायद जानने का अभी साहस भी नहीं है। शायद जानना घट जाए तो झेल भी न सकेंगे। उनके लिए संगृहीत कर लिये हैं। उनके लिए शिलालेख आबद्ध कर लिये हैं।

श्रुति प्यारा शब्द है। मैं तुमसे कुछ कह रहा हूं, तुम्हारे लिए श्रुति है। तुम्हें प्रीतिकर लगे, सम्हाल लेना। और ध्यान रखना, श्रुत पर रुकना नहीं है। एक दिन तुम्हारे लिए जो तुमने सुना है वह तुम्हारी अपनी आंख का देखा

हुआ हो जाना चाहिए। श्रुति का अर्थ है, सत्य कान से आया है। जो कान से आया है, वह पराया है। आंख से आना चाहिए। जब आंख से आता है तो अपना होता है। सत्य में और झूठ में फर्क इतना है। कान और आंख का फर्क है। इसलिए तो हम सुनी बात को नहीं मानते। अदालत भी कहती है—चश्मदीद गवाह। जिसने देखा हो आंख से।

मुल्ला नसरुद्दीन को अदालत में ले जाया गया, एक मुकदमा था। उससे मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम कितने दूर थे इस से जहां यह हत्या की गयी? मुल्ला ने कहा, कोई दो-तीन फलांग दूर। और अमावस की रात थी और अंधेरा था और तुमने देख लिया कि हत्या की गयी? तुम्हें कितनी दूर तक अंधेरे में दिखायी पड़ता है? मुल्ला ने कहा—अब यह मत पूछो, ऐसे तो हमें चांद-तारे भी दिखायी पड़ते हैं। दूरी की मत पूछो।

चश्मदीद। आंख से जिसने देखा है।

रोशनी में ही दिखायी पड़ सकता है, अंधेरे मग दिखायी नहीं पड़ सकता भीतर जब परम रोशनी फैल जाती है ध्यान की, तब दिखायी पड़ता है। इसलिए कहा है—प्रकाशित होता है। तब उसके वचन उतरते हैं। तब उसकी वाणी उतरती है। इसको मुसलमान' हल्हाम' कहते हैं। ठीक शब्द है। 'हल्हाम' का मतलब होता है, तुम सिर्फ ग्राहक होते हो, कोई चीज उतरती है। हिंदू इसको अवतरण कहते हैं। तुम सिर्फ ग्राहक होते हो, तुम पात्र होते हो, कोई चीज उतरती है आकाश से और तुममें भर जाती है। ईसाई इसको 'रिविलेशन' कहते हैं। ठीक शब्द है 'रिविलेशन,' तुम्हारे किये कुछ नहीं होता, तुम जब शांत होते हो, तब प्रकट होता है। प्राकट्य होता है, 'रिवील' होता है, तुम्हारे सामने खड़ा हो जाता है। शायद सदा से खड़ी ही था, तुम्हारी आंख बंद थी, तुमने आंख खोल ली है। सत्य का अनावरण हो गया। सत्य नग्न खड़ा हो गया। घूंघट गिर गया।

'समस्त भूत-रचना की भांति वेद भी प्रकाशित हुआ है, जैसे पिता संतान को जन्म देकर शिक्षा का उपाय करता है।' परमात्मा ने तुम्हें छोड़ नहीं दिया है, परमात्मा तुम्हें विस्मृत नहीं कर पाया है, परमात्मा तुम्हें भूल नहीं गया है, भेजता रहा है अपने संदेशवाहक, अपने पैगंबर, अपने तीथ□कर, अपने अवतार। मगर मतलब क्या है अवतार भेजने का, तीथ□कर भेजने का, 'पैगंबर भेजने का? इतना ही अर्थ है, जो व्यक्ति भी समर्थ हुआ है ध्यान में उसके भीतर परमात्मा उतर आया है। उसके माध्यम से उसने फिर तुम्हारी तलाश शुरू कर दी, तुम्हें फिर पुकारने लगा है कि तुम कहां खो गये हो? कि तुम कहां छिप गये हो? कि जागो, तुम कितनी देर सो लिये! सुबह हो गयी, उठो। उन्हीं सारे वचनों के संकलन किये गये हैं, वेद धम्मपद, कुरान, बाइबिल, ताओ-तेह-किंग—वे सब वेद हैं। वेद पहले भी आते रहे, अभी भी आ रहे हैं। आगे भी आते रहेंगे। क्योंकि परमात्मा ने तुम्हें कभी छोड़ नहीं दिया है। तुम्हारे ऊपर आशा समाप्त नहीं हो गयी है परमात्मा की।

रवींद्रनाथ ने अपने एक गीत में लिखा है कि जब भी कोई बच्चा पैदा होता है तब मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूं, क्योंकि हर बच्चे की पैदाइश से मुझे खबर मिलती है कि परमात्मा अभी आदमी से ऊब नहीं गया है अभी फिर आदमी पैदा करता है। अभी आदमी में भरोसा है। अभी आशा उसने छोड़ नहीं दी है। हालांकि आदमी ने सब किया है कि आशा छोड़ दे। आदमी ने जो किया है, वह ऐसा है कि कोई भी पिता आशा छोड़ दे। भूल ही जाए सुपुत्र को! लेकिन रवींद्रनाथ कहते हैं; उसने अभी आशा नहीं छोड़ी, अभी वह आदमी बनाए जाता है। वह सोचता है, अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है, सुबह का भूला शायद सांझ को घर आ जाए।

आशा का कारण क्या हो सकता है?

आशा का कारण कुछ थोड़े-से लोग हैं। क्योंकि कुछ लोग शाम तक आ गये हैं। कोई बुद्ध किसी दिन आ जाता है। करोड़ों नहीं आते, अगर एक आ जाता है। मगर एक के आने से खबर मिलती है कि बाकी करोड़ भी इस जैसे ही तो हैं, शायद वे भी किसी दिन आ जाएंगे। इसलिए आशा नहीं टूटती। कोई कृष्ण एक दिन जाग जाता है, फिर आशा सघन हो जाती है। अगर एक बीज में वृक्ष आ गया है, फूल खिल गये हैं, तो सब बीज भी तो परमात्मा ने ऐसे ही बनाए हैं। उनमें जरा-भी भेद नहीं है। उनकी भी इतनी ही क्षमता है। उनकी भी इतनी ही

शक्ति है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, किसी न किसी दिन उनमें भी बीज फूटेगा, पल्लव निकलेंगे, फूल खिलेंगे, उनकी सुवास भी लुटेगी।

'मिश्रोपदेशात् न इति येत् न स्वल्पत्वात्।।

उसमें मिश्रित उपदेश है, इस कारण आशंका मत करो। और वे थोड़े ही है।'

इस सूत्र को समझना—

शांडिल्य कहते हैं, अगर हम इस बात को मान लें कि हिंदुओं के वेद की ही तरफ उल्लेख है, तो वेद में बड़े विपरीत वक्तव्य हैं, मिश्रित वक्तव्य हैं, उनका क्या किया जाए? वेद एक ही बात नहीं बोलते, अनेक बातें बोलते हैं, एक दूसरे से विपरीत बातें भी बोलते हैं। अब जैसे, वेद में हिंसक यज्ञ इत्यादि का स्वीकार है कि यज्ञ में हिंसा कि जा सकती है। और वेद में यह अपूर्व वचन भी है—'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि। किसी प्राणी की कभी हिंसा न करे।' और दूसरी तरफ अश्वमेघ यज्ञ में घोड़े की हत्या करनी पड़े। और नरमेघ यज्ञ भी होते थे। जिसमें मनुष्य की हत्या करनी पड़े। तो सवाल यह उठता है कि वेद में तो बड़े विपरीत वचन हैं, ये एक ही परमात्मा से कैसे आ सकते हैं? और अगर एक ही पिता ने दिये हैं, तो इतने विपरीत वचन कैसे हो सकते हैं?

और जैसा अर्थ मैं कर रहा हूं अगर वैसा अर्थ है, तब तो और भी अड़चन हो जाएगी। क्योंकि फिर वेद और कुरान बाइबिल और धम्मपद एक ही से उतरे हैं। फिर इनके वचनों में तो बड़ा विरोध है! वेद में बड़ा विरोध है, फिर वेद और धम्मपद में तो बहुत विरोध है। फिर बाइबिल और कुरान में तो बहुत विरोध है। वेद के ऋषि एक-दूसरे से सहमत नहीं हैं। तो फिर वेद के ऋषियों और बुद्ध और लाओत्सु में तो जमीन-असमान का फर्क है। फिर क्या होगा?

शांडिल्य कहते हैं, उसमें मिश्रित उपदेश है, इस कारण आशंका मत करो। किस तरह शांडिल्य समझाते हैं। कुछ बातें खयाल में ले लेनी चाहिए।

एक, निश्चित उपदेश हैं वेद में। क्योंकि एक ही पुत्र के लिये दिये गये उपदेश नहीं हैं। इतने पुत्र हैं परमात्मा के। और पत्रों में बड़ा भेद है। जो एक के लिए उपदेश लागू है, वह दूसरे के लिए लागू ही है। और जो एक के लिए औषधि है वह दूसरे के लिए जहर हो जाएगा। किसी की बीमारी कुछ है, किसी की बीमारी कुछ और है। औषधि भिन्न होगी। तुम डाक्टर के पास जाते हो तो डाक्टर सभी मरीजों को एक-से ही 'प्रेस्क्रिश्न' देता जाता नहीं है। नहीं तो डाक्टर की जरूरत नहीं है। डाक्टर की जरूरत क्या है? डाक्टर की जरूरत यही है कि यह बीमारी को परखे, निदान हरे, 'डायग्नोसिस करे और फिर उपचार की व्यवस्था दे।

इसलिए वेद अकेले सार्थक नहीं हैं। बिना गुरु के सहारे तुम वेद में जाओगे, झंझट में पड़ जाओगे। वह वैसे ही है जैसे अकेले ही केमिस्ट की दूकान पर पहुंच गये, अपनी दवा तैयार करने लगे। केमिस्ट की दुकान पर तो लाखों दवाएं रखी हैं। उसमें टी. बी. की दवा है, उसमें कैंसर की दवा है, उसमें दवाएं ही दवाएं हैं। अब तुम अपने हाथ से ही पहुंच कर अगर दवाएं तैयार करने लगे, तो तुम दवाएं कैसे तैयार करोगे? तुम्हारे दवाएं तैयार करते के सब कारण गलत होंगे। शायद सबसे सुंदर शीशियों में से चुन लो। या सबसे ज्यादा रंगीन दवाएं चुन लो। या सबसे मीठी दवाएं चुन लो। कुछ इस तरह के तुम्हारे चुनाव होंगे। तुम्हारे चुनाव सब गलत होंगे। तुम ठीक चुन ही नहीं सकते। क्योंकि पहले तो तुम्हें यही पता नहीं कि तुम्हारी बीमारी क्या है? बीमारी का भी शायद पता हो तो तुम्हें यह पता नहीं कि इस बीमारी पर दवा क्या है? एक गुरु चाहिए, सदगुरु चाहिए। जो वेद के हजारों-हजारों उपचारो में से तुम्हारे लिए क्या उपचार है, तुम्हें दे सके।

इसलिए शास्त्र सदगुरु के बिना किसी मूल्य का नहीं है। और लोग शास्त्रों को पकड़े बैठे हैं। इसलिए फिर शास्त्र का कोई उपयोग ही कर सकते, वे सिर्फ पूजा कर सकते हैं। रख ली दवा की बोतल और उसकी पूजा कर ली। फूल चढ़ा दिये, मंत्र पढ़ दिया, घंटा बजा दिया, माला उतार दी, मगर दवा पीना मत नहीं तो खतरा हो

जाएगा। पूजा ही हो सकती है। फिर लोग वेद की पूजा कर रहे हैं। और वेद में अगर उलट-पलट कर देखेंगे तो बेचैनी बढ़ जाएगी, क्योंकि वहां जरूर विपरीत वक्तव्य हैं। अलग-अलग लोगों के लिए दिये गये वक्तव्य हैं।

अब थोड़ा सोचो! जिससे कहा होगा वेद के ऋषि ने—मा हिंस्यात् सर्वभुतानि, किसी भी प्राणी की हिंसा न करे, यह कोई बड़ा शुद्ध व्यक्ति रहा होगा। आखिरी घड़ी में आ गया होगा, जहां से सब तरह की हिंसा छोड़ी जा सकती है। फिर किसी को कहा कि सिर्फ यज्ञ में हिंसा करे। यह बड़ा हिंसक आदमी रहा होगा। इससे कहा कि सिर्फ यज्ञ में हिंसा कर लेना। इसकी हिंसा को सीमा दे दी। अब यज्ञ रोज नहीं किये जा सकते—खर्चीला यज्ञ है, रोज तो कर ही नहीं सकते। कभी जन्म में एकाध-दो बार हिंसा होगी, बाकी शेष जन्म छुटकारा हो गया। यह हिंसक व्यक्ति के लिए इतनी सुविधा बनायी होगी। फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे हिंसा छूटती जाएगी, वैसे-वैसे दूसरा उपदेश काम में आता जाएगा। आज जो दवा काम की है, शायद कल जब बीमारी कम हो जाए, तो बदलनी पड़े। दूसरी दवा देनी पड़े जिसमें कम मात्रा हो। फिर और बीमारी कम हो जाए, तो उसे तीसरी दवा देनी पड़े जिसमें और कम मात्रा हो।

शांडिल्य कहते हैं कि वेद में जो विपरीतता है, वह पात्रों की भिन्नता के कारण है। और यही मैं तुमसे कहना चाहता हूं, उसी कारण विपरीतता वेद में और कुरान में है। कुरान के पात्र तो दूर थे। अलग सदी, अलग देश, अलग रीति-रिवाज, अलग लोग, कुरान वेद जैसा नहीं हो सकता। बाइबिल वेद जैसी नहीं हो सकता। बुद्ध के वचन वेद जैसे नहीं हो सकते। क्योंकि बुद्ध वेद के बीच कोई पांच हजार साल का फासला है। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, वह वेद जैसे कैसा हो सकता है? कोई दस हजार साल का फासला। दस हजार साल में आदमी एकदम बैठा नहीं रहा है मुर्दे, की तरह। आदमी चट्टान ही है, बहती हुई धारा है। बहुत कुछ बदला है। बहुत कुछ रूपांतरित हुआ है। आज के आदमी की जरूरत अलग है। तब के आदमी की जरूरत अलग थी। आज के आदमी का इलाज भी अलग होगा।

इसलिए बहुत बार जब तुम्हें मेरे वचनों में कुछ लगे जो तुम्हारे शास्त्र के विपरीत जा रहा है, तो उसको सिर्फ इसलिए मत छोड़ देना कि वह शास्त्र के विपरीत जा रहा है। जब भी तुम्हें मेरे वचनों में कोई चीज शास्त्र के विपरीत जाती मालूम पड़े, तब खयाल रखना कि जरूर उस चीज पर ध्यान देने का है। नहीं तो मैं भी शास्त्र के विपरीत जाने की कोई आकांक्षा नहीं रखता हूं। जहां तक बनता हैं, वही कहना चाहता हूं जो शास्त्र ने कहा है। लेकिन जब देखता हूं अब शास्त्र का कहा अगर कहता हूं तो तुम्हारी फांसी लगेगी, तभी उसे बदला हूं। और अक्सर ऐसा होता है, तुम उन्हीं बातों को मेरी मान लेते हो जो शास्त्र के अनुकूल हैं और उन बातों को छोड़ देते हो जो शास्त्र के अनुकूल नहीं हैं।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम आपकी उतनी बातें मानते हैं जितनी हमारे शास्त्र के अनुकूल हैं। जितनी अनुकूल नहीं हैं, वह हम नहीं मानते। और वही असली बात हैं, जो तुम्हारे काम की हैं। जो शास्त्र के अनुकूल ही हैं, वही तुम्हारे लिए कही गयी हैं। विशिष्ट तुम्हारी दशा के लिए संगत हैं।

तो भेद है शास्त्रों में। लेकिन शत्रुता नहीं है। भिन्नता है, विपरीतता नहीं है। और फिर शांडिल्य हैं, 'उसमें मिश्रित उपदेश है इस कारण आशंका मत करो। और वे थोड़ हैं।' और वे जो मिश्रित उपदेश हैं, वे बहुत थोड़े है, क्योंकि मनुष्य जाति ही अलग-अलग देशों में हो, अलग-अलग समय में हो, उसका अधिक हिस्सा तो एक जैसा ही है। फिर अरब में पैदा हो, कि चीन में, कि हिंदुस्तान में; थोड़े-थोड़े फर्क होंगे; रीति-रिवाज और होंगे, संस्कार और होंगे, हवा और होगी, प्रकृति और होगी, लेकिन मौलिक भेद तो क्या होंगे? मौलिक रूप से तो आदमी आदमी है। मौलिक वृत्ति तो वही की वही है। इसलिए शांडिल्य कहते हैं, भेद बड़े थोड़े-से हैं। वे भेद लड़ने जैसे नहीं हैं। उन भेदों के संबंध में सदगुरुओं से पूछ लेना कि तुम्हारे लिए क्या लागू है। तुम उसके अनुकूल चल पड़ना।

बिना सदगुरु के शास्त्र खतरनाक है। सदगुरु के साथ शास्त्र का मूल्य परम है। सदगुरु के जीवन से अगर शास्त्र की ध्वनि तुम्हें फिर सुनायी पड़ जाए तो सदगुरु के माध्यम से शास्त्र पुनरुज्जीवित होता है। और उस ढंग से पुनरुज्जीवित होता है जो तुम्हारे काम का है। तुम्हारे योग्य, तुम्हारे अनुकूल, तुम्हारी परिस्थिति की संगति में शास्त्र का पुनर्जन्म होता है। सदगुरु अर्थ ही यही है। शास्त्र का फिर-फिर जन्म। दुबारा-दुबारा। बार-बार।

लोग अत्यंत विवाद में पड़े हुए हैं, कि गीता में ऐसा कहा हुआ है और कुरान में ऐसा कहा हुआ है, हम किसको मानें? इसी भय के कारण गीता चढ़नेवाला कुरान नहीं पढ़ता। वह गीता से ही काफी परेशान है, वह कहता है गीता में ही इतनी बातें कही हुई हैं। कहीं भक्ति का वर्णन, कहीं कर्म का वर्णन, कहीं ज्ञान का वर्णन, गीता ही हमें उलझाने को काफी है!--कौन ठीक है? फिर कुरान और पढ़ो तो और झंझट हो जाती है। इसलिए तथाकथित धार्मिक लोगों ने निर्णय कर रखा है कि दूसरे के शास्त्र को पढ़ना ही मत, नहीं तो तुम और बिबूचन में पड़ जाओगे।

मैं तुमसे कहता हूं--सब शास्त्र पढ़ो। क्योंकि तुम ठीक से बिबूचन में पड़ जाओ और शास्त्रों में से तुम्हें मार्ग न मिले, तो तुम सदगुरु को खोजोगे; अन्यथा तुम सदगुरु को नहीं खोजने वाले हो। इसीलिए इतने शास्त्र पर बोल रहा हूं कि तुम्हारी सारी भ्रांति तुमसे छीन लूं कि तुम्हें पता है। तुम्हें बिलकुल स्पष्ट हो जाए कि हमें कुछ भी पता नहीं है, तुम्हारे पास पकड़ने को कुछ भी रह जाए, वेद न कुरान, न बाइबिल। मैं सारे शास्त्र तुम्हारे सामने खड़ा कर दे रहा हूं, तुम्हारे भीतर यह बात बिलकुल साफ हो जानी चाहिए कि अब मैं क्या पकडूं, अब मैं कहां जाऊं, कि अब मुझे कोई मार्ग नहीं सूझता! जब तुम्हें यह स्पष्ट हो जाएगा कि मुझे कोई मार्ग नहीं सूझता, तभी तुम किन्हीं चरणों में झुकोगे और कहोगे कि मुझे मार्ग दो। अन्यथा तुम न झुकोगे। किताब से काम चल जाता हो तो सदगुरु के पास कोई जाए क्यों? किताब सस्ती चीज है।

फिर किताब के तुम मालिक होते हो। सदगुरु तुम्हारा मालिक हो जाता है। किताब के सामने समर्पण करने में कोई हर्जा नहीं है एकांत में सिर झुका लेते हो। सदगुरु के सामने झुकने में दूसरा आदमी सामने मौजूद है, जिसके सामने तुम झुक रहे हो, वहां अहंकार को बाधा पड़ती है। इसलिए मुर्दा गुरुओं को लोग पूजते हैं, जिंदा गुरुओं की हत्या करते हैं। जिंदा गुरु तुम्हारे अहंकार का दुश्मन है। मुर्दा गुरु से तुम्हारे अहंकार की कोई दुश्मनी नहीं है।

पढ़ो सारे शास्त्र! वही रास्ता है शास्त्रों से मुक्त होने का। और वही रास्ता है सदगुरु की तलाश का। और धन्यभागी हैं वे, जिन्हें सदगुरु मिल जाता है।

आज इतना ही।

संसार में ही परमात्मा के छिपे होने का प्रमाण क्या हो?

पूर्वजन्म के पाप या प्रारब्ध क्षणमात्र में कट जाते हैं या भोगने पड़ते हैं?

मैं पचपन वर्ष का। तीन बार विवाह हुआ और हर बार पत्नी की मृत्यु। अभी भी स्त्री के प्रति मन ललचाता हूं। मैं क्या करूं?

मैं शांत हो रही हूं या उदास? कृपया मार्ग बताएं।

मैंने सब ध्यान बंद कर दिया है। कृपा कर इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन करें।

यह संभावना भी तो है कि आप के जाने बाद आपका संन्यास धर्म एक वृहत संगठन का रूप लेगा जिसमें पद-शृंखला और राजनीति भी प्रविष्ट हो जाएगी।

दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति के समय, भोजन के समय ध्यान भूल-भूल जाता है।

पूरे समय ध्यान की स्थिति क्यों नहीं बनी रहती?

मौजूदगी ही उसकी है

सोलहवां प्रवचनः २६ मार्च १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्नः आप कहते हैं संसार में ही परमात्मा छिपा है। इसका प्रमाण क्या है?

संसार में परमात्मा छिपा है, ऐसा मैंने कभी कहा नहीं। संसार परमात्मा है!

छिपे का तो अर्थ हुआ, संसार से कुछ भिन्न है, संसार से कुछ अलग है, संसार की ओट में है, संसार की आड़ में। कोई बाड़ ही नहीं फण। संसार ही परमात्मा है। सिर्फ तुम्हारी आंखें अंधी हैं। परमात्मा ही छिपा है, परमात्मा प्रकट है। सिर्फ तुम आंखें बंद किये हो। परमात्मा का नाद गूंज रहा है, लेकिन तुम बहरे हो। तुम्हारा हृदय धड़क नहीं रहा, इसलिए उसके छंद को तुम अनुभव नहीं कर पाते हो। सूरज निकला हो तो भी आंख बंद किये खड़े रहो, तो क्या कहोगे सूरज छिपा है? सिर्फ तुमने आंख अपनी छिपा रखी है, परमात्मा नहीं छिपा है। परमात्मा पर ओट नहीं सिर्फ तुम्हारी आंख पर ओट है। आंख पर पर्दा है, परमात्मा पर पर्दा नहीं है। आंख खोलो।

ये जो आंखें तुम्हारी हैं, ये केवल शूद्र को देख सकी हैं। एक और भी आंख है तुम्हारी भीतर, जो विराट को देखने में समर्थ है। ये जो आंखें हैं, सतह को छू सकती हैं। एक और आंख है तुम्हारे जो गहराई में प्रवेश कर सकती है। परमात्मा उस गहराई का नाम है। प्रेम की आंख खोलो। भजन में उतरो। नाचो। आनंद में डूबो। परमात्मा की तलाश में जाने की जरूरत नहीं, परमात्मा तुम्हारी तलाश करता आएगा। पुकारो! प्रार्थना करो!

तुम पूछते हो, प्राण क्या है? क्या नहीं है जो प्रमाण नहीं है? हर चीज उसका प्रमाण है। ये पक्षियों का गान, वृक्षों का सन्नाटा, ये सूरज की नाचती किरणें, ये हरियाली, ये लोग, तुम—सब प्रमाण हैं। इतना रहस्यपूर्ण जीवन है। और तुम पूछते हो—परमात्मा कहां है। प्रमाण क्या है? इतना अनंत उत्सव चल रहा है और तुम पूछते हो—प्रमाण क्या है?

यह रसीली सहर, यह भीगी फजा
यह धुंधलका, ये मस्त नजारे
मय में गल्तां है डूबता महताब
रस में डूबे हैं मलगजे तारे
बेतुकल्लुफ समां यह जंगल का
हूर देखे तो खुल्द को वारे
ये घने नख्ल, ये हरे पौधे
जिनमें टांके हैं ओस ने तारे
हाय, ये सुर्ख-सुर्ख ढाक के फूल
ठंढे ठंढे दहकते अंगारे
मुस्कुराया वह तिफ्लके-मशरिक
जगमगाये वह दश्तोदर सारे
ली शुजाओं ने तन के अंगड़ाई
रेंगकर नूर के बहे धारे
किरनें चलकीं, वह रंग-सा बसा
वह छूटे सुर्ख व जर्द फव्वारे
वह गुलों की धड़क उठी छाती
वह खुश-अल्हान बाग चहकारे

तुम और पूछते हो प्रमाण क्या है! कहां नहीं है प्रमाण? प्रत्येक? प्रत्येक घटना पर, प्रत्येक वस्तु पर उसके हस्ताक्षर हैं। पढ़ना आना चाहिए। गीता सामने रखी है, गान चल रहा है लेकिन तुम्हें पढ़ना नहीं आता। तुम्हें गीत की समझ नहीं है। लेकिन समझ नहीं है, ऐसा मानना तुम्हारे अहंकार के विपरीत पड़ता है। तुम तो मानकर चलते हो समझ है, मैं आंखवाला हूं, तब परमात्मा कहां है?

मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं—परमात्मा है, समझ नहीं है। इसलिए परमात्मा मत खोजो, समझ खोजो। निखारो अपने को। थोड़े ध्यान की दिशा में कदम उठाओ। प्रेम और ध्यान के दो पंख तुम्हारे ऊग आएं, फिर परमात्मा का आकाश ही आकाश है। उड़ना तुम्हें आ जाए, आकाश सदा से है। कुछ करना है तुम्हारे भीतर, बाहर कुछ नहीं करना है।

रामकृष्ण से किसी ने पूछा, परमात्मा का प्रमाण क्या है? रामकृष्ण ने कहा—मैं हूं। मैं भी तुमसे कहता हूं—मैं हूं प्रमाण। और मैं तुमसे यह भी कहता हूं, तुम भी हो प्रमाण। प्रमाण ही प्रमाण हैं। कण-कण पर प्रमाण हैं और क्षण-क्षण प्रमाण हैं।

मगर प्रमाण को समझने की कला तुम्हें आती है? हम उतना ही समझ पाते है जितना हमारी समझने की पात्रता होती है। छोटा बच्चा है। अभी तुम उसके सामने कामशास्त्र की कीमती से कीमती किताब रख दो, तो भी रस उसे नहीं आएगा। तुम वात्स्यायन के कामसूत्र रख दो, वह सरका देगा। उसे अभी परियों की कहानियों में रस है। अभी भूत-प्रेतों की कहानियों में रस है। अभी तुम उसे कोहिनूर हीरा दे दो, वह एक तरफ कर देगा, और दो पैसे के खिलौने को, घुनघुने को बजाने लगेगा। क्या कोहिनूर कोहिनूर नहीं है। लेकिन बच्चे की समझ अभी खिलौने की समझ है। छोटे बच्चे के सामने तुम सौ रुपये का नोट करो और एक चमकता हुआ तांबे का पैसा, बच्चा तांबे के पैसे को चुन लेगा। सौ रुपये का नोट कागज है, उसका कोई मूल्य नहीं है उसके सामने। चमकदार सिक्का उसे लुभा लेगा।

हम अपनी समझ के अनुकूल देख पाते हैं।

यदि तुम्हें परमात्मा नहीं दिखायी पड़ता, तो एक बात सुनिश्चित है कि तुम्हारे भीतर अभी परमात्मा को देखने की क्षमता और पात्रता नहीं है। उस पात्रता को जगाओ। लेकिन लोग उलटा काम करते हैं, वे कहते हैं—परमात्मा का प्रमाण चाहिए। लोग उल्टी बात पूछते हैं, वे कहते हैं—परमात्मा कहां हैं, हमें दिखला दें।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप हमें परमात्मा दिखला दें तो हम मान लें। उन्होंने एक बात स्वीकार ही कर लीं है कि उनके पास आंखें तो हैं ही; बस परमात्मा मौजूद हो जाए तो वे देख ही लेंगे। परमात्मा मौजूद ही है। परमात्मा कभी गैर-मौजूद नहीं होता। जो गैर-मौजूद हो जाए वह परमात्मा नहीं है। मौजूदगी ही उसकी है। सारा अस्तित्व उसका है। अस्तित्व और परमात्मा दो नहीं हैं।

इसलिए मैं तुम्हें फिर याद दिला दूं, मैंने कभी नहीं कहा कि संसार में परमात्मा छिपा है। मैं कह रहा हूं यही कि संसार परमात्मा है। तुम्हारे लिए छिपा है, क्योंकि तुम्हारी आंख छिपी है, ओट में है।

दूसरा प्रश्नः प्रश्न पूछने का दुस्साहस किया, इसके लिए क्षमा करें। आपकी ही कृपा-अनुग्रह से हम लोग नेपाल से आए हैं। मधुर उपदेश सुनने को मिला, यह हमारा अहोभाग्य! कल के प्रवचन के दौरान भगवान ने कहा कि एक ही क्षण में पूर्ण पाप कट जाते हैं। लेकिन मैंने सुना है कि कि पूर्वजन्म का पाप, या कहें प्रारब्ध भोगना पड़ता है। भगवान कृपया शंका दूर करें।

भोगना चाहो, तो भोगना पड़ता है। भोगना न चाहो, तो कट सकता है। सब तुम पर निर्भर है। अगर हिसाबी-किताबी हो तो भोगना पड़ेगा। हिसाब-किताब जला दिया, अस्तित्व भी जला देता है। अस्तित्व को दर्पण है। तुम जैसे हो वैसे ही झलका देता है। अब बंदर अगर दर्पण में झांकेगा तो तुम यह मत समझना कि देवता की तस्वीर दिखायी पड़ेगी। बंदर दर्पण में झांकेगा तो बंदर ही दिखायी पड़ेगा। निश्चित तुमने जो सुना है, ठीक सुना है, लोग कहते रहे हैं—हिसाबी-किताबी लोग, गणित की लकीर से चलनेवाले लोग। हिसाब-किताब में यह बात समझ में आती है कि बुरा किया है, तो भला करके बुरे को मिटाना पड़ेगा। तभी न्याय हो पाएगा। तभी हिसाब-किताब पूरा होगा। इसलिए उनको लगता है कि जन्मों-जन्मों तक बुरा किया, अब जन्मों-जन्मों तक भला करेंगे, तब कहीं चुकतारा हो पाएगा। ये हिसाबी-किताबी की दुनिया है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन का दादा कर रहा था। तो दादा ने अपने पोते को समझाते हुए कहा, नसरुद्दीन, बेटा काम करो, बेकार फिरना अच्छा नहीं है। जब मैं तुम्हारी उम्र का था तब मैंने एक फर्म में छः रुपये महीने की नौकरी की थी और फिर पांच साल के बाद उतनी ही बड़ी फर्म का मालिक बन गया था। मुल्ला नसरुद्दीन ने हाथ मटका कर कहा, दादा जी, वे जमाने गये। अब ऐसी धांधली नहीं चलती। हर जगह कायदे से हिसाब रखा जाता है। हिसाब रखा जाता है। हिसाबी-किताबी मन एक ढंग से सोचता है। प्रेम दूसरे ढंग से सोचता है। वे ढंग अलग हैं।

अगर तुम ज्ञान के मार्ग पर चलोगे तो तुमने जो सुना है वह ठीक ही सुना है कि पूर्वजन्म के पाप कहें, या प्रारब्ध, उन्हें भोगना पड़ेगा। भोगना ही नहीं पड़ेगा, उनके प्रतिकार के लिए उतने ही शुभ कर्म करने पड़ेंगे। और यह तो अंतहीन प्रक्रिया होगी। इसमें से छूटोगे कैसे? कितने जन्मों तक तुमने पाप किये हैं? उतने ही जन्म लग जाएंगे उन्हें भोगने में। और इस बीच भी तुम खाली तो नहीं बैठे रहोगे। इस बीच भी कुछ तो करोगे। और कुछ भी करोगे तो पाप होता रहेगा। तुम यह मत सोचना कि पाप करने से ही पाप होता है। जीने मात्र से पाप हो जाता है। सांस लेने से पाप हो रहा है। देखते नहीं, तेरापंथी जैन-मुनि नाक पर मुंहपट्टी बांधे रखता है। किसलिए? क्योंकि सांस की गर्म हवा हवा में तैरते-छोटे-छोटे कीटाणुओं को मार डालती है। सांस ही लेने में पाप हो रहा है। एक श्वास में करीब एक लाख जीवाणुओं की हत्या हो जाती है।

अब तुम क्या करोगे, सांस तो लोगे कम से कम! अपने खाट पर ही पड़े रहोगे, मगर सांस तो लोगे? भोजन तो करोगे? पानी तो पीओगे? जिओगे तो कुछ? चलोगे-फिरोगे? हिलने-डुलने में पाप हो रहा है। जीने का अर्थ, कहीं न कहीं कुछ न कुछ होगा। तो ये इतने जन्म तुम्हें पुराने पाप काटने में लग जाएंगे, और इस बीच तुम बैठे नहीं रहोगे, गोबर-गणेश बन कर बैठे नहीं रहोगे, कुछ न कुछ करोगे, उसे करने से फिर नया पाप होता रहेगा, फिर इस शृंखला का अंत कहा होगा? यह गणित बड़ा लंबा लंबा है। इस लंबे गणित में से बाहर आने का उपाय नहीं है। लेकिन जो बाहर आना नहीं चाहते, उनको यह गणित बड़ा सहारे का है। वे कहते हैं, हम करें भी क्या? प्रारब्ध तो भोगना पड़ेगा। यह प्रारब्ध को भोगने की बात उनकी तरकीब है। वे बाहर निकलना नहीं चाहते।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं—हम संन्यास तो लेना चाहते हैं, मगर अभी प्रारब्ध? जैसे उन्हें पता है कि प्रारब्ध क्या है। जैसे उन्हें पता है कि प्रारब्ध रोक रहा है। वे कहते हैं, अभी तो प्रारब्ध ऐसा है कि अभी तो संसार में रहना पड़ेगा। संसार में रहना चाहते हो, सीधा क्यों नहीं कहते, प्रारब्ध की आड़ क्यों लेते हो? यह चालबाजी क्यों? यह बेईमानी क्यों? यह होशियारी क्यों? इतना ही कहो ना सीधा कि अभी संसार में रहना है। अभी धंधा करना है, अभी चोरी बेईमानी करनी है। प्रारब्ध, ऊंचा शब्द उपयोग कर लिया। उसके पीछे तुम छिप गये। उससे तुम्हें सहारा मिल गया। अब तुम्हें यह कहने का भी कारण नहीं रहा कि मैं अपनी वजह से रुका हूं। प्रारब्ध रोक रहा है! तुम्हें जो करना है वह तुम करते हो, तुम्हें जो नहीं करना है वह तुम नहीं करते हो। लेकिन प्रारब्ध के बहाने तुम अपने को बचा लेते हो। स्थगित कर रहे हो तुम जीवन को। तुम कहते हो पहले सब भोग लेंगे, फिर कहीं मुक्ति होगी। तुम असत्य में मुक्ति चाहते नहीं।

भक्ति का शास्त्र छलांग में भरोसा करता है। भक्ति का शास्त्र कहता है, तुम परमात्मा पर छोड़ दो इसी क्षण और तुम मुक्त हो गये।

भक्ति के शास्त्र की कीमिया समझो।

भक्ति का शास्त्र कहता है कि तुमने कुछ कभी किया है, यह बात ही भ्रांत है। कर्म का सिद्धांत ही भ्रांत है कि तुमने कुछ किया है। जो परमात्मा ने करवाया है, हुआ है। जिस दिन तुम इस बात को परिपूर्ण रूप से स्वीकार कर लोगे—बड़ी कठिन है बात—क्योंकि फिर अहंकार को कोई जगह नहीं बचती। जब सभी वही करवा रहा है तो अहंकार को कोई स्थान नहीं बचा। पाप भी उसके, पुण्य भी उसके; अच्छा भी उसका, बुरा भी उसका। जिलाए तो वह, मारे तो वह। फिर तुम्हारे अहंकार को कहीं कोई जगह नहीं है। वह अहंकार कहता है, ऐसे कैसे

हो सकता है, मैं कर्ता हूं। अहंकार राजी है, अगर बुरे कर्म का भी बोझ हो ढोने को तो भी राजी है, मगर कर्म होना चाहिए। अहंकार कहता है, मैं चोर हूं—यह भी राजी हूं— मुझे ऐसी साधुता नहीं चाहिए। जिसमें मैं ही न रहूं। और 'मैं' के बिना गये साधुता फलती नहीं। साधुता नहीं। साधुता का एक ही अर्थ है कि 'मैं' समाप्त हुआ। भक्त का अर्थ होता है कि उसने सब परमात्मा पर छोड़ दिया—कि तूने जो करवाया, हुआ; तू जो करवा रहा है, होगा; जो आगे भी तू करवाता रहेगा, होता रहेगा। मैं अपने को विदा करता हूं। मैं अपने को नमस्कार करता हूं। मैं अपने को नमस्कार करता हूं। भक्त अपने अहंकार को अलविदा कह देता है। यह समर्पण है। इस समर्पण में ही क्रांति घट जाती है। फिर कौन कर्ता? जब कर्ता ही न बचा कर्म कैसे? कैसा प्रारब्ध?

तो तुम पूछते हो कि क्या प्रारब्ध भोगना ही पड़ता है? भोगना चाहो तो भोगना पड़ता है। भोगना चाहो, तो कर्म का सिद्धांत मानो। अगर न भोगना चाहो, तो भक्ति की ऊर्जा में उतर जाओ।

कर्म का सिद्धांत संकल्प पर आधारित है, भक्ति की क्रांति समर्पण पर। कर्म के सिद्धांत में अहंकार केंद्र पर है। भक्ति के सिद्धांत में कोई अहंकार नहीं। एक ही परमात्मा सब चला रहा है। हम उसके ही हाथ में कठपुतलियां हैं। उसने जो करवाया, वह हुआ है। फिर कोई दंश नहीं है, कोई ग्लानि नहीं कोई अपराध नहीं।

जरा सोचते हो, इस अपूर्व भावदशा को, जब चित्त में कोई अपराध नहीं रह जाता कोई ग्लानि नहीं रह जाती, कोई रोना-धोना नहीं रह जाता कि ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों नहीं किया? ऐसा हो जाता तो अच्छा था, वैसा हो जाता तो अच्छा था। आगे ऐसा कर लूं, आगे यह भूल न हो; यह ठीक हो जाए, वह ठीक हो जाए। सारी चिंता गयी। सारी चिंता भक्त एक ही गठरी में उतार कर रख देता है परमात्मा के चरणों में। वह कहता है, यह लो, तुम जानो। अब जो भी तुम्हें मुझसे करवाना हो, करवा लो। चोर बनाना हो तो चोर बन जाऊंगा। अपराध अपने ऊपर न लूंगा। और साधु बनाना हो तो साधु बन जाऊंगा—और पुण्य का अहंकार अपने ऊपर न लूंगा। तुम्हारी जो मौज! तुम्हें जो खेल खेलना हो मुझसे खेल लो। यह भक्ति की अपूर्व क्रांति है—उत्क्रांति है।

तो मैंने निश्चित कहा तुमसे, क्योंकि शांडिल्य को समझा रहा हूं। वह भक्ति के परम उपदेष्टा हैं। जैसे पतंजलि योग के, शांडिल्य भक्ति के। जैसे महावीर कर्म के, ऐसे शांडिल्य भक्ति के। जिनको हिम्मत हो—और बड़ी हिम्मत चाहिए; 'मैं' को छोड़ना ही सबसे बड़ी हिम्मत है। बुरे का भी सहरा 'मैं' ले लेता है, वह कहता है—कोई फिकिर नहीं, चिंता रहे, बेचैनी रहे, मगर मैं रहूं! अब निश्िंचत आकाश तुम्हें उपलब्ध होता है।

तुमने अपने को तो पैदा नहीं किया है। या कि किया है? तुमने अपने को बनाया तो नहीं। या कि बनाया है? तुम अपने स्रष्टा तो नहीं। तुम उसकी ही मौज की एक लहर हो। उसने चाहा तो हुए। वह जिस दिन चाहेगा, उसी दिन नहीं हो जाओगे। फिर उसने तुमसे जो करवाया, करवाया।

तुम्हारे कृत्यों में तुम्हारापन क्या है? राह जाते थे, एक स्त्री के प्रेम में पड़ गये। प्रेम हुआ, तुमने किया नहीं। बचपन से ही तुम्हें एक धुन सवार थी कि गहरे संगीत में उतरना है। होश नहीं था तब से संगीत की धुन सवार थी। कहते हैं, मोजर्ट जब तीन साल का था तब उसने बड़े-बड़े संगीतज्ञों को चकित कर दिया। तीन साल का बच्चा! यह संगीत की धुन खुद तो पैदा नहीं की होगी। यह आयी होगी। तुम जरा अपने जीवन को ठीक से पहचानने की कोशिश करो; तुमने जो किया है, सब हुआ है। करने की भ्रांति हो रही है। जिस दि यह दिखायी पड़ जाएगा कि सब हो रहा है, निश्िंचत हुए, विश्राम आ गया। मैं उस परम विश्राम को ही भक्ति कहता हूं। फिर वैसी घड़ी में एक ही क्षण में पूर्ण पाप कट जाते हैं।

असल में यह कहना की एक ही क्षण में पूर्ण पाप कट जाते हैं उचित नहीं है, क्योंकि उस क्षण में जाना जाता है—मैंने कुछ किया ही नहीं है, न पाप है, न पुण्य है; मेरा कुछ भी नहीं है। मेरा कर्तृत्व नहीं है। कर्ता कट जाता है। कर्ता का भाव गिर जाता है। कर्ता के भाव गिरते ही कर्ता के साथ जुड़ी सारी धारणाएं विदा हो जाती है।

तुम्हारी मर्जी! धीरे-धीरे चलना हो; पहुंचना कभी न हो, चलते ही रहना हो, तो ठीक है, काटो पाप! प्रारब्ध भोगो! मगर वह जिम्मा प्रारब्ध पर मत छोड़ो। वह जिम्मा तुम्हारा है। प्रारब्ध तो तरकीब है, बहाना है। मगर मुक्त

होना चाहो तो इसी क्षण मुक्ति के द्वार खुले हैं। द्वार मुक्ति के कभी बंद ही नहीं होते। किसी युग में बंद नहीं होते। कलियुग में भी नहीं। किसी काल में बंद नहीं होते, पंचमकाल में भी नहीं। किसी स्थल पर बंद नहीं होते—न नर्क में, न पृथ्वी पर, कहीं बंद नहीं होते, मुक्ति के द्वार सदा खुले हैं। जिसकी भी हिम्मत हो, उतर जाए। बस हिम्मत की एक ही शर्त पूरी करनी है। भक्ति यह नहीं कहती है कि कर्म छोड़ो, भक्ति कहती है—कर्ता छोड़ो। एक ही आघात में जड़ कट जाती है। कर्ता ही कट गया तो कर्म कट गये।

कर्म तो पत्तों जैसे है, कर्ता जड़ जैसा है। तुम पत्ते काटते रहते हो, नये पत्ते निकलते आएंगे। जड़ में पानी डाल रहे हो, जड़ में खाद डाल रहे हो, जड़ जमीन में गड़ी है, रस पी रही है, और तुम पत्ते काट रहे हो। काटते रहो पत्ते जन्मों-जन्मों तक, नये पत्ते निकलते आएंगे और तुम काटते रहना। जड़ ही काट दो। ज्ञान मार्गी पत्ते काटना है, भक्त जड़ काट देता है। कर्म पत्ते हैं, कर्ता जड़ है। जड़ के काटते ही सब विलीन हो जाता है। और स्वभावतः जो पत्ते काटता रहा, उसकी समझ में नहीं आता। क्योंकि वह कहता है कि हम कितने दिन से काट रहे हैं। काटते हैं और नये निकल आते हैं। यह कोई इतना आसान थोड़े ही है। जो जड़ काटना जानता है, वह कहता है—एक क्षण में हो जाता है; : एक कुल्हाड़ी, कि बात खत्म हो गयी। ज्ञानी हंसता है, वह कहता है—तुम समझ क्या रहे हो, अपने-आप को? इधर मैं कैंची लिये बैठा हूं, काटता रहता हूं, काटता रहता हूं, नये पत्ते निकलते आते हैं। बड़ा प्रारब्ध का लंबा जाल है। कहीं एक चोट में कटी है? मगर वह कैंची लिये बैठा है, उसे कुदाली का पता नहीं है। उसे कुल्हाड़ी का पता नहीं है। उसे जड़ का ही पता नहीं है। उसे जड़ का ही पता नहीं है। जड़ छिपी है। पत्ते प्रकट हैं, जड़ अप्रकट है। कर्म तो तुम्हारे दुनिया भर देख लेती है, कर्ता कोई नहीं देख पाता। तुम्हें बहुत खोज करोगे अपन भीतर, खोदोगे, तो कर्ता पकड़ में आएगा। वह जड़ है। और वह छिपा है भीतर और रस ले रहा है। और वहीं से पल्लव निकल रहे हैं, पत्ते निकल रहे हैं, शाखाएं निकल रही हैं, फूल निकल रहे हैं, जिंदगी चल रही है।

जीवन कर्ता के भाव से फैल रहा है। आवागमन छूट जाए इसी क्षण, अगर तुम जड़ काट दो।

अथाह सागर में
डूबते जहाज
या
पूजा के अंजुरी भर जल में,
सोचो!
अथाह सागर में
डूबते जहाज
या
पूजा के अंजुरी भर जल में

वह जो पूजा का अंजुली भर जल है, उसमें बड़े-बड़े जहाज डूब जाते हैं। उसमें सब डूब जाते हैं, सारा संसार डूब जाता है।

अथाह सागर में
डूबते जहाज
या पूजा के अंजुरी भर जल में
अविश्वास के
लंबे युग
या
पूरे समर्पण के

एक पल में,
कहीं नहीं
या
दोनों में
हे राम! तुम हो
या केवल मैं?
अनंत आकाश के
विस्तृत छलावे
या बाहों में लिपटी
मोहक सच्चाई में,
छोटे सुखों की
बेमानी ऊंचाइयों
या
सार्थक दुखों की गहराई में
कहीं नहीं
या दोनों में
हे राम! तुम हो
या केवल मैं?
बुढापे के ठंडे विवेक
या
उद्दाम यौवन की
दहकती आग में,
मृत्यु से हर बार
पराजित शरीर
या
फूलों में विकसित होते पराग में,
कहीं नहीं
या
दोनों में
हे राम! तुम हो
या केवल मैं?
बेलगाम
खल और कामी मन
या
मुक्ति की
कमजोर असफल तलाश में,
धरती पर
स्वामी!

ढूंढूं आकाश में,
कहीं नहीं
या
दोनों में
हे राम! तुम हो
या कुवल मैं?

बा इतनी ही बात समझ लेने जैसी है। राम है अगर केवल और तुम गये, तो अंजुरी भर पूजा के जल में बड़े-बड़े जहाज डुब जाते हैं। अगर तुम हो और राम नहीं है, तो अनंत-अनंत जन्मों तक तुम चेष्टा करो, नाव बनाओ, नाव कभी बनेगी नहीं। पार तुम कभी हो न पाओगे। डुबकी कभी लगेगी नहीं। तुम किनारे पर ही चलते रहोगे और चलते रहोगे। पूजा का अंजुली भर जल पर्याप्त है। एक भाव समर्पण का पर्याप्त है। हजार उपाय-व्रत, उपवास, त्याग-तपश्चर्या काम नहीं आते। एक उपाय है—झुक जाना। माथा टेक देना उसके चरणों में, पर्याप्त है।

तीसरा प्रश्नः मैं पचपन वर्ष का हूं। जीवन में तीन बार विवाह हुआ और हर बार पत्नी की मृत्यु हो गयी। लेकिन अभी भी स्त्री के प्रति मन ललचाता है। मैं क्या करूं?

क्या चौथी स्त्री को मारने का विचार है?

अब तो जागो! परमात्मा ने तीन-तीन बार इशारा किया, तुम्हारे कारण तीन स्त्रियां विदा हो गयीं, और तुम अभी भी ललचा रहे हो! चौथी पर नजर खराब है! एक समय है, तब सब सुंदर है। अब तुम पचपन के हुए! अब कुछ और भी करोगे यही घर-घुले बनाते रहोगे? और तुम सौभाग्यशाली हो! तुमने तो तीन-तीन बार झंझट ली, परमात्मा ने तुम्हें तीन-तीन बार झंझट से बाहर कर दिया। तुम स्वाभाविक संन्यासी हो, अब और क्यों झंझट में पड़ते हो? कहावत तुमने सुनी नहीं कि भगवान जब देता है, छप्पर फाड़ कर देता है। तुमको छपर फाड़ कर देता रहा। और क्या चाहते हो?

और तीन-तीन स्त्रियों से अनुभव पर्याप्त नहीं हुआ? क्या पाया? सुख पाया सुख यहां कोई भी दूसरे से पाता नहीं। न पति पत्नी से पता है, न पत्नी पति से पाती है। दूसरे से सुख कभी मिला है! सुख अंतभार्व है। भीतर से उमगता है। और जो अपने से पा लेता है, वह पत्नी से भी पा लेते है, बेटे से भी पा लेते है। पिता से भी पा लेते है, मां से भी पा लेता है। और कोई भी नहीं होता तो अकेले में भी पाता है। उसके भीतर ही उमग रहा है। और जो अपने से नहीं पा सकता, वह किसी से भी नहीं पा सकता। जो तुम्हारे भीतर नहीं है उसे तुम किसी से भी पा न सकोगे।

जीसस का प्रसिद्ध वचन है। जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा, और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छिन लिया जाएगा जो उनके पास है।

भीतर सुख चाहिए, भीतर शांति चाहिए, भीतर उल्लास चाहिए बस फिर और बढ़ता जाता है। फिर हर हालत में बढ़ता है; साथ रहो, संग रहो, अकेले रहो, बाजार में रहो, भीड़ में रहो—कहीं भी रहो—घर में रहो, घर के बाहर रहो, मंदिर में रहो, जहां रहना हो रहो, फिर सुख बढ़ता है तो बढ़ता चला जाता है। खोजना वहां है। जब तक तुम दूसरे में सुख खोज रहे हो तब तक तुम भ्रांति में पड़े हो। दूसरा तुम में खोज रहा है, तुम दूसरे में खोज रहे हो, दोनों भिखमंगे हो। न उसके पास है। उसके ही पास होता तो तुममें खोजने आता! ये तीन स्त्रियां जो तुम्हें खोजती चली आयीं और मारी गयीं, इनके पास सुख होता तो तुमको खोजतीं? तुम किस में खोज रहे थे? जो तुम में खोजने आया, उसमें तुम खोज रहे हो! जिसके हाथ तुम्हारे सामने भिक्षापात्र की तरह फैले हैं, उसके सामने तुम भी अपना भिक्षापात्र फैला रहे हो! भिखमंगे भिखमंगे के सामने खड़ा हैं! फिर अगर जीवन में सुख नहीं मिलता, तो आश्चर्य क्या है?

मांगे से नहीं मिलता सुख जागे से मिलता है। सुख का सृजन करना होता है। सुख तुम्हारे प्राणों का संगीत है। जैसे वीणा पर कोई तार छेड़ देता है, ऐसे ही जब तुम अपनी अंतर्वीणा को छेड़ते हो, जब उस कला को सीख लेते हो, उसी कला का नाम प्रार्थना है, उसी कला का नाम ध्यान, उसी कला का नाम भजन, उसी कला का नाम भक्ति, ये सब उसी के नाम हैं। वीणा तो मिली है जन्म के साथ, लेकिन कला सीखनी पड़ती है। वह किसी सदगुरु के पास सीखनी पड़ेगी। किसी ऐसे के पास सीखनी पड़ेगी जिसने अपनी वीणा बजा ली हो। बाहर की वीणा भी सीखने जाते हो, किसी उस्ताद के चरणों में बैठना पड़ता है। भीतर की वीणा तो तुम्हें मिली है, वह परमात्मा की भेंट है—उसी वीणा का नाम जीवन है—मगर उसी वीणा को कैसे बजाएं, यह पता नहीं है। और जब तक वह वीणा बजे तक तक तृप्ति नहीं है। अतृप्ति अनुभव होती है, तुम बाहर तड़पते हो, भागते हो इससे मिल जाए, उससे मिल जाए, तुम दौड़ते रहते हो, दौड़ते रहते हो जिंदगी भर, और वीणा तुम्हारे भीतर पड़ी है, और संगीत वहां पैदा होना था, और वही संगीत पैदा हो जाता तो सब संतृष्टि हो जाती। मगर वहां तुम जाते नहीं। वहां तुम आंख भी ले जाने से डरते हो, क्योंकि वह नंगी पड़ी वीणा तुम्हें बड़ा बेचैन कर देती है। तुम समझ ही नहीं पाते क्या है। वे तार तुम्हारी समझ में नहीं आते। और अगर कभी तुम उन्हें छेड़ते हो तो सिर्फ बेसुरापन पैदा होता है, क्योंकि कला तुम्हें नहीं आती।

धर्म और क्या है! अंतर्वीणा को बजाने की कला है।

तीन-तीन बार तुमने प्रयास किया और तुम हार गये, अब तो उम्र भी हो गयी। बयालीस साल की उम्र तक पुरुष का स्त्री में रस रहे, स्त्री का पुरुष में रस रहे, यह स्वाभाविक है। इसमें कुछ पाप नहीं है। जैसे चौदह साल की उम्र में रस पैदा होता है। जीवन में सारे परिवर्तन सात-सात साल के बिंदुओं पर होते हैं। पहला परिवर्तन तब होता है जब बच्चा सात साल से आठ साल का होता है। तब उसमें अहंकार का जन्म होता है। वह अपने मां-बाप से मुक्त होने की कोशिश करता है। इसलिए सात साल के बच्चे हर चीज में इनकार करने लगते हैं—नहीं करूंगा, नहीं जाऊंगा। और जो जो उनसे कहो, वही इनकार करेंगे, और जो इनकार करो कि मत मरना—सिगरेट मत पीना, सिनेमा मत जाना, वे पहुंच जाएंगे। वे सिगरेट भी पीएंगे। इनकार से अहंकार पैदा होने का उपाय बनता है। सात साल की उम्र में अहंकार पैदा होता है, व्यक्ति अपने को अलग करता है मां-बाप से। सात साल की उम्र में वस्तुतः मां-बाप के गर्भ से मुक्त होने की चेष्टा शुरू होती है। चौदह साल में चेष्टा पूरी हो जाती है।

इसलिए चौदह साल के बच्चे मां-बाप को भी जरा बेचैन करते हैं और बच्चों को मां-बाप भी जरा बेचैन करते हैं। चौदह साल का बच्चा बाप के सामने खड़ा होता है तो बाप भी थोड़ी मुश्किल में पड़ता है। और चौदह साल का बच्चा भी अपने को हमेशा मुश्किल में अनुभव करता है। अब उसकी कामवासना जगनी शुरू होती है। दूसरे सात साल पूरे हो गये। अहंकार के बिना कामवासना नहीं जब सकती। पहले अहंकार जगे, तो ही कामवासना जग सकती है। पहले मैं जगे, तो तू की तलाश जग सकती है। नहीं तो तू की तलाश कैसे होगी? चौदह साल में वासना जगती है।

अटठाईस साल में वासना अपने शिखर पर पहुंच जाती है। चौदह साल में जगती है, इक्कीस साल में परिपक्व होती है। अठाईस साल में अपने शिखर पर पहुंच जाती है। पैंतीसवें साल में ढलान शुरू हो जाता है। पैंतीस साल में जिंदगी का आधा हिस्सा आ गया। पहाड़ी चढ़ गये तुम। जितनी चढ़नी थी, पैंतीस के बाद उतार शुरू होता है। बयालीस में एकदम शिथिल होने लगती है। उन्चास में समाप्त हो जाती है।

बयालीस के पहले तक स्त्री में पुरुष का रस, पुरुष में स्त्री का रस स्वाभाविक है। बयालीस के बाद शिथिलता आनी शुरू होती है। उन्चास में समाप्त हो जाना चाहिए। अगर जीवन बिलकुल स्वाभाविक चलता जाएं। उन्चास के बाद एक नया अस्तित्व का चरण उठता है। जैसे एक से सात तक अहंकार को पाला था, ऐसे ही उन्चास से छप्पन तक अहंकार का विगलन शुरू होता है। यही क्षण हैं जब आदमी धार्मिक होने की चेष्टा में संलग्न होता

है। छप्पन से लेकर तिरेसठ तक अहंकार शून्य हो जाना चाहिए। और तिरेसठ से सत्तर तक निर-अहंकार जीवन होना चाहिए

अगर सत्तर वर्ष में हम जीवन को बांट दें, तो जैसे पहले से सात साल तक निर-अहंकार जीवन था, ऐसे ही फिर तिरेसठ से सत्तर तक निर-अहंकार जीवन हो जाना चाहिए। समाधिस्थ का जीवन, मृत्यु की तैयारी, परमात्मा से मिलने का उपाय।

अब तुम कहते हो—तुम पचपन के हुए! अब समय गंवाने को नहीं है। ऐसे ही काफी समय गंवा चुके हो। और तीन बार संयोग की बात थी कि स्त्रियां उदारमना थीं, छोड़कर चली गयी। चौथी भी इतनी उदारमना होगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। अवसर भी एक सीमा तक दीये जाते हैं। बार-बार मिलते ही रहेंगे, इतना भी भाग्य पर भरोसा मत करो।

और ध्यान रखो, समझदार आदमी दूसरे के अनुभव से भी सीख लेता है। और नासमझ अपने अनुभव से भी नहीं सीख पाता। तुम्हें मिला क्या है? एक बार इसका निरीक्षण करो। जीवन में सिर्फ आशाएं हैं, अनुभूतियां कुछ भी नहीं। मिलेगा, ऐसी आशा रहती है। मिलती कभी कुछ नहीं। बुद्धिमान आदमी दूसरे के जीवन को भी देखकर समझ जाता है। अब समय आ गया है। अब समय आ गया है कि थोड़ी बुद्धिमानी बरतो।

मैंने सुना है, एक अदालत में मुकदमा था। मुल्ला नसरुद्दीन गवाह की तरह मौजूद था। मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, जब इस स्त्री की अपने पति के साथ लड़ाई हुई, तब तुम क्या वहां मौजूद थे? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा—जी हां! जज ने पूछा कि तुम उसके गवाह की हैसियत से क्या कहना चाहते हो? बोलो। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, यही हजूर कि मैं कभी शादी नहीं करूंगा।

आदमी दूसरे के अनुभव से भी सीख लेता है।

तुम स्वयं तीन-तीन बार अनुभव से गुजर चुके, तुम कब दूसरे से मुक्त होओगे! काफी हो गयी देर। अब तो सांझ भी होने लगी। पचपन साल के हो गये, अब सांझ का वक्त आने लगा, अब रात की तैयारी करो। अब दूसरी यात्रा की तैयारी करो अब आगे और भी पड़ाव हैं। इस शरीर के पार और भी मंजिलें हैं—इम्तहान अभी और भी हैं—अब यहीं मत उलझे रहो। अब यह जो चित्त बार-बार अभी भी स्त्री की तरफ जा रहा है, यह जाता रहेगा अगर तुमने ध्यान में न लगाया। इसे कोई डेरा चाहिए, कोई पड़ाव चाहिए, कोई ठहरने की जगह चाहिए। यह जाता रहेगा स्त्री की तरफ अगर तुमने इसे परमात्मा में न लगाया। अब तो परमात्मा को ही प्रेयसी बनाओ। अब तो उसी प्यारे को खोज करो। अब तो उसी से राग, उसी से रास रचाओ। अब तो उसी से भांवर डालो। अब तो उसी से फेरे पड़ जाएं। उससे पड़े फेरो का कभी फिर अंत नहीं होता। उससे ही साथ हो जाए। अब तो विवाह उसी से कर लो। कबीर कहते हैं—मैं राम की दुल्हनिया।

अब तो कुछ ऐसा करो। इस संसार में तीन-तीन बार तुम रास रचाना चाहा, नहीं रच पाया, तीन-तीन बार भांवरें पड़ी और टूट-टूट गयीं; तीन-तीन बार साथ खोजा और साथी खो-खो गया, अब तो उसे खोजो जो कभी खोता नहीं है। जो मिला सो मिला।

धन्यवाद दो तीन पत्नियों को! नहीं तो एक ही डुबाने को काफी थी। सौभाग्यशाली हो तुम! मगर अपने सौभाग्य को अब दुर्भाग्य में मत बदलो।

और ध्यान रखना कि मैं किसी को असमय में नहीं कहता कि कोई छोड़कर भाग जाए। लेकिन तुमसे तो कहूंगा। अगर यही बात कोई और मुझसे पूछता...कल ही रात किसी युवक ने पूछी—अभी उम्र होगी कोई उठाईस साल की—कि ब्रह्मचर्य का भी मन में बड़ा भाव उठता है और कामवासना भी उठती है, मैं क्या करूं? मैंने उससे निश्चित कहा कि तू अभी कामवासना में जा। अभी ब्रह्मचर्य को रहने दे। लेकिन तुमसे मैं यह कह न सकूंगा।

इसलिए ध्यान रखना, मेरे वक्तव्य विरोधाभासी होंगे बहुत बार। अब कल तुम भी इसको किसी किताब में पढ़ोगे कि कभी किसी को कहा है कि ब्रह्मचर्य की फिक्र छोड़ो, अभी तू कामवासना में जा, तुम इसे अपने लिए मत

समझ लेना! यह किससे कहा है, किसके संदर्भ में कहा है, वह स्मरण रखना। अगर यह युवक अभी भाग जाए—भागना चाहता है—तो पछताएगा और पीछे जब कोई पछताता है तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। जब समय है किसी जीवन की अनुभूति में उतरने का, तब उतर जाना उचित है। क्योंकि फिर पीछे उतर भी न सकोगे। और बिनना उतरे अटके रह जाओगे।

मैंने सुना है, एक पहाड़ी की चोटी पर एक योगी रहता था। वह जवान था, स्वस्थ और सुंदर शरीर का मालिक था। मगर उसने शरीर का खयाल त्याग दिया था। दुनिया को भी त्याग दिया था, ऐश-आराम को त्याग दिया था, पत्नी बच्चों को छोड़कर पहाड़ पर भाग आया था, वह दिन भर भगवान की लौ लगाए समाधि में बैठा रहता था, आंखें भी नहीं खोलता था। नीचे पहाड़ के पास बसे गांव से कुछ भोजन लाकर रख जाते थे। जब कोई वहां न होता, चुपचाप भोजन लेता, फिर अपनी लौ में लग जाता। एक दिन एक जवान औरत उस पहाड़ी की चोटी पर आयी। योगी ने उसे देखो। औरत कोई सुंदर नहीं थी, पर जवान था। पूछा योगी ने—कहो, कैसे आना हुआ? उस स्त्री ने कहा—मैं जोगी जी को देखने आयी हूं। सुना है कि यहां बहुत बड़े जोगी रहते हैं, जो ब्रह्मचारी हैं। औरत सुंदर तो नहीं थी लेकिन उसके शरीर में जवानी का खमीर था। उसकी आवाज में शहद और शराब घुले हुए थे। योगी ने उसकी तरफ ध्यान से देखा और उसकी आंखों से दो आंसू टपके और उसने जवाब दिया कि तुम थोड़ी दूर कर के आयीं। पहले यहां एक योगी ब्रह्मचारी रहते थे, अब नहीं रहते। तुम क्या आयी, योगी ब्रह्मचारी जा चुके!

एक उम्र है। असमय में कुछ भी न करो।

तुमसे तो मैं कहूंगा कि पचपन काफी समय हो गया। कौन जाने कितने थोड़े से दिन बचे हो जिंदगी के। अब उन्हें भजन में लगाओ।

हो चुका है चार दिन मेरा तुम्हारा
प्रेम हंसिनि, और इतना भी यहां पर कम नहीं है।
एक आंधी है उठी गर्दो गुबारी
औ' इसी के साथ उड़ जाना मुझे है,
जानता मैं हूं नहीं, कोई नहीं है
कब तुम्हारे पास फिर आना मुझे है,
यह विदा का नाम ही होता बुरा है
डूबने लगती तबीयत, किंतु सोचो—
हो चुका है चार दिन मेरा तुम्हारा,
प्रेम हंसिनि, और इतना भी यहां पर कम नहीं है।
पंख चांदी के मिले हों या कि सोने
के मिले हों, एक दिन झड़ते अचानक,
औ' सभी को देखनी पड़ती किसी दिन,
जड़ प्रकृति की एक सच्चाई भयानक,
किंतु उनके वास्ते रोयें उन्हें जो
बैठ सहलाते, रहे हैं, किंतु उनसे जो बसंती
बात बहलाते बवंडर सात दहलाते
रहे हैं, जिंदगी उनके लिए मातम नहीं है।
हो चुका है चार दिन मेरा तुम्हारा,
प्रेम हंसिनि, और इतना भी यहां पर कम नहीं है।

हो गया चार दिन का मेरा-तुम्हारा, हो गये चार दिन के राग-रंग, हो गये चार दिन सपने, देख लिये—जरूरी था देखना, जागने के लिये सपने देखना जरूरी है—भटक लिये, अब घर की तलाश हो।

हो चुका दिन मेरा तुम्हारा,

प्रेम हंसिनि, और इतना भी यहां पर काम नहीं है।

पचपन वर्ष लंबा समय है। बहुत तो गुजार आए, थोड़ी है। हाथी तो निकल गया, शायद पूंछ ही बची है। पूंछ भी निकल जाएगी जब हाथी निकल गया। हाथी तो व्यर्थ ही निकल गया, अब जरा पूंछ को थोड़ी सार्थकता दे लो। संसार की आपाधापी में वासना में, इच्छा में, महत्वाकांक्षा में सिर्फ गंवाना ही गंवाना है, पाना कुछ भी नहीं है। और अगर कुछ पाना है तो इतना ही कि इस सारी व्यवस्था के प्रति कोई जागकर देख ले कि यह सपना है, माया है। मेरी ही वासनाओं का वेग है। अब अपने को देखो। दूसरे से मुक्त हो ओहो। अब भीतर की तरफ मुड़ो। अब घर लौटो।

चौथा प्रश्नः आपके सान्निध्य में मेरा जीवन इतना बदल रहा है कि मैं जन्मों-जन्मों तक भी इस ऋण से मुक्त नहीं हो सकती। मेरा मौन भी गहराता जा रहा है। लेकिन मेरे मौन से मेरे स्वजनों को मेरे ऊपर उदासी उतरती नजर आती है, क्योंकि मैं उनके साथ नहीं रहती। मुझे अपने लिए चिंता होने लगी है कि मैं शांत हो रही हूं या उदास? कृपया मार्ग बताएं।

शांति जब आती है तो बहुत कुछ उसका रंग-ढंग उदासी का होता है। उदासी से उसका थोड़ा तालमेल है। इसलिए अक्सर शांत व्यक्ति को बाहर के देखनेवाले लोग समझ सकते हैं कि उदास हो गया। क्योंकि वे पुराने कहकहे अब न होंगे वह राग-रंग अब न होगा। गपशप में उत्सुकता अब न होगी। पर निंदा में रस अब होगा। रेडियो-टेलीविजन और फिल्म में जाने में आतुरता न होगी। शांत व्यक्ति में यह सारी बातें खो जाएंगी। उसके भीतर इतनी रसधार बहने लगी है कि अब बाहर उसकी तलाश नहीं है।

मनोरंजन की जरूरत किसको पड़ती है? जो उदास है। इस सत्य को समझे की कोशिश करो।

जितना उदास आदमी, उतने मनोरंजन की जरूरत पड़ती है। इसलिए अमरीका में सबसे ज्यादा मनोरंजन के साधन ईजाद किये जा रहे हैं, क्योंकि अमरीका बहुत उदास है। सब और कुछ भी मालूम नहीं होता कि सार्थक है। तो नयी-नयी तलाश की जाती है—नये उपाय खोजो, नये नशे खोजो, नयी स्त्रियां खोजो, नये पुरुष खोजो। खोजते रहो कुछ भी, कहीं अपने को उलझाए रखने के लिए। सांड़ों को लड़ाओ, कबूतर लड़ाओ, तीतर लड़ाओ, या आदमियों को लड़ाओ। उत्तेजना का कोई उपाय खोजो। फिल्में भी बनानी होती हैं तो ऐसी जिनमें उत्तेजना हो। छुरे खिंचें, बंदूकें चलें, हत्याएं हों, आत्महत्याएं हों, जासूसी हो। किसी तरह मुर्दा होते आदमी को थोड़ी-सी ललक आए। वह जरा रीढ़ को सीधा करके फिल्म देखते वक्त बैठ जाए और देखने लगे कि हां, कुछ हो रहा है, कि जिंदगी में कुछ हो रहा है!

एक स्त्री से थक गये, अब दूसरी स्त्री खोज लो। थोड़ी देर को तो ललक रहेगी। फिर 'हनीमुन' हो जाए। दो-चार दिन फिर से ज्योति आ जाए, लगे कि हां कुछ हो रहा है, जिंदगी बेकार नहीं है। एक धंधा करते-करते थक गये, धंधा बदल लो। जुआ खेल लो। दांव पर लगा दो रुपये। तब दांव पर आदमी रुपये लगाता है तो पता नहीं जीतेगा कि हारेगा। चित्त ठहर जाता है! एक क्षण को सब भूल जाता है—जिंदगी की उदासी, बेचैनी, बोरियत, सब भूल जाता है। एक क्षण को एकदम ताजा हो जाता है कि पता नहीं क्या होने जा रहा है? लोग खतरे उठाने जाते हैं—पहाड़ चढ़ते हैं, सागर तैरते हैं—सिर्फ इसलिए कि किसी तरह से यह जो बोरियत चारों तरफ लद गयी है, उससे थोड़ी देर के लिए छुटकारा हो जाए।

मनोरंजन की तलाश दुखी और उदास आदमी करते हैं। जो आदमी दुखी नहीं है, उदास नहीं है, वह मनोरंजन की तलाश नहीं करता, यह बड़ी उल्टी बात है। अब तुम बुद्ध को अगर कहोगे कि चलो, नाटक दिखा लाएं। तो वह कहेंगे कि भई, तुम्हीं देखो! मैंने सब नाटक देख लिये। तुम बुद्ध को कहोगे कि नर्तकी नाचने आयी है, सारा

गांव जा रहा है, आप भी चलें, तो बुद्ध कहेंगे कि तुम जाओ, मेरा आशीष तुम्हारे कुछ क्षण आनंद से कटें, लेकिन मेरे भीतर ऐसा नृत्य हो रहा है कि उसके मुकाबले अब कोई नृत्य कोई अर्थ नहीं रखता। जैसे-जैसे बाहर की उदासी कट जाएगी, वैसे-वैसे बाहर के मनोरंजन का भी कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। यही हो रहा होगा शांता को।

ध्यान रखना, उसे मैंने नाम दिया है शांता। इसलिए दिया है शांत होने की उसके क्षमता है। शांति बढ़ रही है। मगर दूसरों को उदासी जैसी लगेगी, उससे चिंता मत लेना। चिंता पैदा होती है, क्योंकि हम दूसरों की बात मान कर सदा जीते रहे हैं। मां कहती है कि तू उदास दिखती है, पिता कहते हैं कि तू उदास दिखती है, पति कहते हैं कि तू उदास दिखती है, भाई, बहन, मित्र सब कहते हैं तू उदास दिखती है, इतने लोग गलत तो नहीं होंगे! ध्यान रखना, इतने लोग सही हो ही नहीं सकते। सही तो कभी कोई एकाध होता है। यहां गलत की ही भीड़ है।

सत्य के संबंध में लोकतंत्र नहीं चलता। कोई मत से सत्य तय नहीं होता। नहीं तो बुद्ध कभी के हार जाएं, क्राइस्ट कभी के हार जाएं, कृष्ण कभी के हार जाएं। सत्य के संबंध में कोई मत का अर्थ नहीं है। जो जानता है, जो नहीं जानता वह नहीं जानता। चाहे कितनी ही बड़ी भीड़ हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। न तुम्हारी मां को पता है कि शांति क्या है, न तुम्हारे पिता को पता है, न तुम्हारे भाई को, न तुम्हारी बहन को। हां, उन्हें उत्तेजना पता है, मनोरंजन पता है। अब तुम्हारी उत्तेजना कम हो जाएगी...वे ताश लेकर बैठे हैं, वे कहते हैं, शांता आओ, ताश खेलो! और तुम कहती हो—मुझे ताश में कोई रस नहीं। तुम एक कोने में बैठकर जाजेन करना चाहती हो। कि आंख बंद करके बैठे भीतर का रस ले रहे हैं। वे कहेंगे—यह क्या हो गया? ताश जैसी चीज! इस समय कोई आंख बंद कर के बैठता है? चार आदमी ताश खेलते हैं, बीस आदमी खड़े होकर देखते हैं, वे भी बड़े उत्तेजित हो जाते हैं। एक-एक आदमी के पीछे चार-चार आदमी खड़े हो जाते हैं। दांव कोई लगा रहा है, मगर वे भी उसमें हिस्सेदार हो जाते हैं। जैसे उनका भी दांव लगा हुआ है। वे भी सलाह-मशविरा दे लगते हैं।

फिल्म आ रही है टेलीविजन पर और तुम आंख बंद किये बैठे हो। तो स्वभावतः घर के लोग सोचेंगे, यह क्या हो गया? भिन्नता के कारण उन्हें लगेगा, उदास हो गयी शांता। उनकी चिंता मत करना। उनका प्रेम है, लगाव है, आसक्ति है—समझ उनमें नहीं है, आसक्ति उनकी है। और जब समझ नहीं होती तो आसक्ति बड़ी खतरनाक होती है। वे तुम्हें खींचने की कोशिश करेंगे। वे तुम्हें हर तरह से बाहर लाने की कोशिश करेंगे। शुभेच्छा से। उनकी इच्छा यही है कि उदासी टूट जाए। यह कहां की झंझट आ गयी? यह भली-चंगी बेटी हंसती थी, नाचती थी, गाती थी, गहनों में रस था, घंटों दर्पण के सामने खड़ी रहती थी, अब इसने गैरिक वस्त्र पहन लिये! अब इसको वस्त्रों मग रस नहीं है! नहीं तो रोज सांझ को जाती थी 'एम. जी. रोड'। लोग 'शॉपिंग' करें या न करें, फिर भी जाते हैं 'शॉपिंग' को। ऐसा देखते ही निकलते जाते हैं। दुकानों में जो साड़ियां सजी हैं, उनको देख-देख कर भी बड़े मग न होते हैं। अब यह एक रंग का पकड़ा दे दिया। अब इसमें कुछ उपाय न रहा बदलने का। घर के लोगों को लगेगा—यह क्या हो गया। अभी तो उत्सुकता लेनी थी। अभी तो और-और रंग की नयी साड़ियां बाजार में आ रही हैं। रोज-रोज नये ढंग के वस्त्र बन रहे हैं। बेटी को कुछ हो गये! वे चिंता करेंगे। वे खींचने की कोशिश करेंगे। उनसे सावधान रहना! उनकी आसक्ति खतरनाक है।

और तुम्हारी भी पुरानी आदतें पड़ी हैं, जिंदगी भर की। वे भी तुमसे कहेंगी कि तुझे हो क्या गया? तेरा ही मन तुझसे कहेगा कि तुझे हो क्या गया? उदास क्यों हो गयी? अब फिल्म क्यों नहीं? नाटक क्यों नहीं? तो न केवल बाहर से लोग कहेंगे, तुम्हारा मन भीतर से भी कहेगा कि कुछ गड़बड़ हो गयी। क्योंकि जो घटना घट रही है, उसके मन को कुछ पता नहीं है।

संन्यास की क्रांति है—मनोरंजन। मनोरंजन नहीं, मनोभंजन।

इन दो शब्द को याद रखना। मनोरंजन का अर्थ होता है, किसी तरह मन को खिलौने देकर समझा दो। फिर एक तरह के खिलौने बासे पड़ जाएं, फिर दूसरे तरह के खिलौने दे दो। बस उलझाए रहो मन को। मनोरंजन यानी उलझाए रहो।

मनोभंजन का अर्थ होता है—देखो सत्य को और मन को विदा दे दो। मन को छोड़ ही दो। उस अ-मन की दशा में समाधि फलित होती है। उसके पहले कदम उठने शुरू हुए हैं। यह शांति ही है। इसमें जरा भी चिंता की जरूरत नहीं है।

जिंदगी को एक बहरे-बेकरां पाती हूं मैं
उनके हाथों मिट के उम्रे-जाविदां पाती हूं मैं

यह मिटने का रास्ता है। यहां परमात्मा के हाथ मिट जाता है व्यक्ति और मिटकर अमरत्व को पा लेता है।

जिंदगी को एक बहरे-बेकरां पाती हूं मैं
उनके हाथों मिट के उम्रे जाविंदा पाती हूं मैं
खुद-ब-खुद दिल हो गया दीनो-जहां से बेनियाज
अब जमीन-इश्क गोया आस्मां पाती हूं मैं

अपने-आप इस जगत से एक तरह की उदासी आ जाएगी। क्यों? क्योंकि तुम्हारा सारा प्रेम आकाश की तरफ बहने लगेगा। तुम्हारी चेतना धारा आकाश की तरफ उन्मुख हो जाएगी।

खुद-ब-खुद दिल हो गया दीनो-जहां से बेनियाज

अपने-आप इस संसार से, इस तथाकथित शोरगुल-आपाधापी के संसार से, इस तथाकथित संबंधों के जगत से, इस सपनों के जल से—खुद-ब-खुद दिल हो गया बेनियाज—उदास हो गया, उदासीन हो गया।

उदासी न शब्द बड़ा प्यारा है। उदास शब्द भी बड़ा प्यारा है। उसका वही अर्थ नहीं है जो शास्त्र में और भाषाकोश में लिखा हुआ है, उसका मौलिक अर्थ बड़ा अदभुत है! उदासीन का अर्थ होता है, अपने भीतर बैठ जाना। उद-आसीन। आसीन से आसन बनता है। अपने भीतर बैठ जाना। बड़ा अपूर्व अर्थ है उदासीन का। उसी से उदास बना है। उदासीन का अर्थ होता है, बाहर में रस न रहा, अपने भीतर रस आने लगा, भीतर बैठ गये। आसन वहां जम गया। बाहर के लोगों को लगेगा—कुछ गलती हो गयी। इसलिए सदगुरु की जरूरत है कि वह तुम्हें कहता रहे—गलती नहीं हो गयी। नहीं तो तुम्हें बाहर के लोग तुम्हें खींच लेंगे। तुम्हारा मन तुम्हें खींच लेगा।

खुद-ब-खुद दिल हो गया दिनो-जहां से बेनियाज
अब जमीने-इश्क गोया आस्मां पाती हूं मैं
झुटपुटे से दिल बुझा रहता है तेरी याद में
चांदी रातों में अश्कों को रवां पाती हूं मैं

और बहुत बार आंसू भी झरेंगे। ओर बहार के लोग समझेंगे—आंसू! आंसू यानी दुख।

तुम्हें समझना पड़ेगा, आंसुओं का एक और गुणधर्म है। आंसू आनंद के भी होते हैं। मगर बाहर तो सदा आंसू दुख के ही पाए जाते हैं। लोग दुख में रोते हैं। लेकिन तुम जानोगे धीरे-धीरे कि सुख में तो और भी अदभुत आंसू बहते हैं, बड़े आंसू बहते हैं, मोतियों जैसे आंसू बहते हैं। प्रार्थना में भी आंसू बहते हैं। परमात्मा की याद में भी आंसू बहते हैं। उन आंसुओं में दुख की कोई छाया भी नहीं है। उनमें आनंद ही आनंद है।

चांदनी रातों में अश्कों को रवां पाती हूं मैं
झुटपुटे से दिल बुझा रहता है तेरी याद में
सैकड़ों सज्दे तड़पते हैं जबीने-शौक में
ऐ हकीकत तेरा नक्शे-पा कहां पाती हूं मैं

अब भी आंसू बह निकलते हैं किसी की याद मैं
अंदलीबे-जार को जब नौहारख्वां पाती हूं मैं
अपना ऐ 'तस्नीम!' इस दुनिया से घबराता है दिल
बांकी हर शै को फकत वहमो-गुमां पाती हूं मैं

धीरे-धीरे बाहर की बातें तो व्यर्थ हो जाएंगी, भ्रम हो जाएंगी, कोई उनमें अर्थवत्ता न रह जाएगी, भीतर का एक नया जगत प्रकट होगा। संसार का असली रूप प्रकट होगा—परमात्मा प्रकट होगा।

शांता, तेरी आंख खुलना शुरू हो रही है। मगर पुरानी आंखों का अभ्यास कहेगा कि तू अंधी हो रही है। और बाहर के लोग भी तुझसे कहेंगे कि तेरी आंखों को क्या हुआ, अब वे पुरानी जैसी नहीं मालूम होती। यह नये का जन्म हो रहा है। इस नये के जन्म का स्वागत करो, सम्मान करो। इस नये के जन्म का आलिंगन करो। अतिथि आ रहा है, आतिथेय बनो।

पांचवां प्रश्नः हमारे केंद्र में तीन साधक साक्षी के मार्ग पर गतिमान हैं। उनमें से मैं भी हूं। मैं इन लोगों से कहता हूं कि अब हमारे लिए कोई भी ध्यान करने की जरूरत नहीं है। अब तो होशपूर्वक सदा सब काम करना ही ध्यान है। लेकिन अन्य दो मित्रों का कहना है कि नटराज ध्यान करने से होश और भी बढ़ेगा। मैंने सब ध्यान बंद कर दिया है। कृपा कर इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन करें।

पूछा है सागर के स्वामी सत्य भक्त ने।

सत्य भक्त! तुममें मैं मूढ़ता को रोज-रोज बढ़ते देख रहा हूं। तुम जितने प्रश्न पूछते हो!...मैंने अब तक उनका कोई उत्तर नहीं दिया। जानकर ही नहीं दिया। कि तुम्हारे प्रश्न सिर्फ तुम्हारे अहंकार से आ रहे है, जिज्ञासा से नहीं। अभी तुमने ध्यान किया भी नहीं है, छोड़ने की तैयारी हो गयी! सीढ़ी चढ़े ही नहीं हो अभी। मगर अहंकार बड़ा चालबाज है। वह कहता है, क्या करना है! साक्षी ठीक! अब साक्षी में तो कुछ करना ही नहीं होता। तुम्हारा साक्षी का सिर्फ बहाना है। अभी तुम साक्षी तो हो ही नहीं सकते। अभी तो ध्यान से निखार लाना होगा, तब तुम साक्षी हो सकोगे। अभी तुमने नहीं बोए, तुम फसल काटने की बातें करने लगे हो।

तुमने ध्यान किया कब? और जो थोड़ा-बहुत तुमने पहले किया भी होगा, थोड़ा उछल-कूद उससे कुछ हुआ नहीं है। उससे सिर्फ तुम्हारा अहंकार और अकड़ गया है। अब तुम यही समझने लगे कि तुम सिद्ध हो गये। और न केवल तुम समझने लगे हो, तुम वहां केंद्र पर सागर में दूसरों को भी समझा रहे हो कि तुम्हें भी कोई जरूरत नहीं है। अगर सच में ही तुम्हें साक्षी का भाव पैदा हो गया होता, तो तुम दूसरों को समझाते कि ध्यान से मेरा साक्षी पैदा हुआ है, तुम ध्यान करो। और अगर तुम्हें साक्षी का भाव पैदा हो गया होता, तो यह प्रश्न भी पैदा नहीं हो सकता था। क्योंकि जिसको साक्षी का भाव पैदा हो गया, उसके सब प्रश्न समाप्त हो गये। यहां जितने लोग हैं, सबसे ज्यादा प्रश्न तुम्हीं पूछते हो—हालांकि मैं उत्तर नहीं देता, यह पहली दफा उत्तर दे रहा हूं।

तुम अपनी मूढ़ता में मत पड़ो। अभी ध्यान करना होगा! इतनी जल्दी सिद्ध मत हो जाओ। साक्षीभाव आएगा। और साक्षी ध्यान के विपरीत थोड़े ही है। साक्षी के लिए ध्यान प्रक्रिया है। ध्यान की प्रक्रिया से ही अंतिम निखार साक्षी का पैदा होता है। वे एक ही क्रिया के अंग हैं।

लेकिन हमारे चालबाज मन हैं। वे कहते हैं, कुछ न किये अगर सिद्ध हो जाएं तो सबसे अच्छा। फिर तुम सिद्ध हो गये हो, तो तुम्हारे केंद्र पर जो लोग आते होंगे उनको तुम जंचते नहीं होओगे सिद्ध। तो उनको भी समझा रहे हो कि तुम भी सिद्ध हो जाओ। तुम हानि पहुंचा रहे हो! तुम अपने को नुकसान पहुंचा रहे हो। दूसरों को नुकसान पहुंचा रहे हो। सहारा दो दूसरों को ध्यान मैं जाने के लिए। और खुद भी अभी ध्यान में उतरो। और जब तुम सिद्ध हो जाओगे तो मैं तुम्हें कहूंगा कि तुम सिद्ध हो गये, तुम्हें बार-बार लिख कर भेजने की जरूरत नहीं है।

तुम्हारे हर प्रश्न में यही होता है कि मैं घोषणा कर दूं। प्रश्न मुझे लिख कर भेजते हो तुम बार-बार कि आप कह दें कि मैं सिद्ध हो गया हूं। आप औरों को भी खबर कर दें कि मैं सिद्ध हो गया हूं। मैं खुद ही खबर कर दूंगा, तुम्हें पूछने की जरूरत नहीं होगी। और जो सिद्ध हो गया है, वह कोई सर्टिफिकेट की तलाश करेगा! तुम चाहते हो, मैं कह दूं कि तुम सिद्ध हो गये हो, तो तुम जाकर घोषणा करने लगो और लोगों की छाती पर बैठ जाओ और तुम उनको परेशान करने लगो। फिर तुम अपना तो अहित करोगे ही, दूसरों का भी अहित करोगे।

अभी ध्यान करो। अभी बीज बोओ! अभी फसल को उगाओ! काटने के दिन भी जरूर आएंगे। और अगर कोई अत्यंत निष्ठा और ईमान से एक क्षण भी ध्यान में उत्तर जाए, तो एक ही क्षण में वह दिन आ जाता है। मगर इतनी बेईमानी से चलोगे तो कैसे आएगा! तुम करना ही नहीं चाहते।

अब इसको थोड़ा समझ में लेना, यह औरों के भी काम की बात है। दुनिया में आलसी लोग हैं, काहिल लोग हैं, सुस्त लोग हैं, जो कुछ नहीं करना चाहते। उनके लिए भक्ति में बड़ा सहारा मिल जाता है। वे कहते हैं, करना ही क्या है? सब भगवान कर रहा है। इसलिए हमें कुछ करना नहीं है। दुनिया में कर्मठ लोग हैं, अत्यंत कर्म में लिप्त लोग हैं, अहंकारी लोग हैं, आक्रामक लोग हैं, उनको कर्म के मार्ग पर सहारा मिल जाता है, वे कहते हैं—करके दिखाना है। भक्ति के मार्ग से सिर्फ उनको लाभ होगा जो करेंगे और जानेंगे कि हमारे किये कुछ भी नहीं होता। लेकिन करना तो हमें है; क्योंकि अभी तो हमारे पास कुछ भी नहीं है। हम जब कर-कर के हार जाएंगे तब परमात्मा की कृपा अवतरित होती है। जब हम पूरा कर चुकेंगे, तब उसकी कृपा अवतरित होगी है। वे तो ठीक उपयोग कर रहे हैं भक्ति का। और जिन्होंने कहा कि करना ही क्या है, अब बस ठीक है, हम तो हो गये, उनके लिए भक्ति जहर हो गयी। कर्म के मार्ग पर जो इसलिए कर्म में लगा है कि उसके अहंकार के तृप्ति मिलती है, वह कर्म के मार्ग से हानि उठा रहा है। वह उसके लिए जहर हो गया। लेकिन इसलिए करता है कि अभी तो हमें परमात्मा का कुछ पता नहीं, कौन है, कहां है; अभी तो हम विधान करेंगे, विधि करेंगे, अपनी पूरी चेष्टा करेंगे, अपना पूरा संकल्प लगाएंगे; शायद संकल्प के अंतिम चरण में समर्पण का जन्म हो। समर्पण का जन्म संकल्प के अंतिम चरण में ही होता है। क्रिया की पूर्ण निष्पत्ति में निष्क्रिय है। और ध्यान का आखिरी रूप साक्षी है।

तो तुम इतनी जल्दी न करो। और दूसरों को तो भूल कर मत समझाना! अभी तो तुम्हें ही बहुत समझना है।

छठवां प्रश्नः आपके संन्यासी धीरे-धीरे संसार में फैल रहे हैं। उनकी संख्या दिनों दिन बढ़ रही है। यह संभावना भी तो है कि आप के जाने के बाद आपका संन्यास-धर्म एक वृहत संगठन का रूप लेगा जिसमें पद-शृंखला और राजनीति भी प्रविष्ट हो जाएगी। कृपा कर समझाएं कि क्या यह चक्र सदा-सदा चलता रहेगा?

पूछा है कृष्ण कुमार जाबाली ने।

तुम तो अभी संन्यासी भी नहीं हो। तुम्हें क्या चिंता!

फिर तुम कब तक यहां रहने का इरादा रखते हो? सदा! भविष्य में जो झंझटें आएंगी, उनको तुम्हें हल करना है! तुम अपनी झंझट हल कर लो, इतना काफी है। भविष्य को भविष्य पर छोड़ो! आखिरी भविष्य के लोगों को भी तो कुछ झंझटें हल करने को छोड़ोगे कि नहीं! कि तुम्हारा इरादा तुम्हारे साथ ही सृष्टि का अंत कर देने का है!

लोग बड़ी व्यर्थ के ऊहापोह में पड़ जाते हैं।

लेकिन ये सब तरकीबें हैं मन की। और इन तरकीबों का तुम उपयोग नहीं करते हो जहां तुम बचना चाहते हो। एक भी आदमी ने मुझसे अब तक नहीं पूछा, मैंने लाखों लोगों के सवालों के जवाब दिये हैं, एक भी आदमी ने मुझसे नहीं पूछा कि हम मरेंगे, तो हम बच्चे को पैदा करें कि नहीं, क्योंकि फिर इसको भी करना पड़ेगा। एक आदमी ने नहीं पूछा यह! लोग बच्चे पैदा किये चले जाते हैं। कोई नहीं पूछता यह कि इसको भी झंझटें आएंगी जो हमको आयीं, तो झंझटें हल ही क्यों न कर दें, इसको पैदा ही न करें। कोई भी नहीं पूछता कि जब मृत्यु होने ही वाली है, आगे, क्या आगे भी मृत्यु होती ही रहेगी? अगर आगे भी मृत्यु होती रहेगी तो बच्चे को पैदा क्यों

करना, क्योंकि यह मरेगा। नहीं, बच्चे तुम्हें पैदा करने हैं, तुम यह प्रश्न नहीं पूछते। लेकिन संन्यास लेने में तुम्हें डर है। डर को छिपाने के लिए नये-नये बहाने खड़े करते हो।

अब यह भी खूब अदभुत प्रश्न है! यह प्रश्न यह है कि आपके चल जाने के बाद...अभी मैं यहां हूं! कोई मैंने ठेका लिया है दुनिया का मेरे चले जाने के बाद! कि दुनिया में कोई समस्या नहीं बचने देंगे। समस्याएं उठती रहेंगी। जन्म के साथ मृत्यु आती रहेगी। और जब भी धर्म की कोई नयी अवधारणा पैदा होगी, संगठन पैदा होंगे, चर्च बनेगा, संप्रदाय बनेगा और सब रोग आएंगे जो सदा आते रहते हैं। लेकिन इस कारण धर्म की अवधारणा नहीं रोकी जा सकती। जितनों को लाभ हो जाए, उतने को सही। मेरी मौजूदगी में जितनों को लाभ हो जाएगा हो जाएगा और फिर भी जो समझदार हैं पीछे, उनको पीछे भी लाभ होता रहेगा। और जो नासमझ हैं, तुम जैसे, उनका अभी भी लाभ नहीं हो रहा है। तो मेरे होने न होने से क्या फर्क पड़ता है? नासमझों को भी लाभ नहीं हो रहा, समझदारों को फिर भी होता रहेगा। नासमझों को अभी भी लाभ नहीं हो रहा है, नासमझों को तब भी नहीं होगा।

कृष्ण कुमार! तुम्हें अपनी चिंता है या सारे जगत की चिंता है? इतनी बड़ी चिंता मत लो। छोटी-सी चिंताएं तो हल नहीं हो रही हैं। क्रोध तो हल नहीं होता, दुख तो हल ही होता, चिंता तो हल नहीं होती, अहंकार तो हल नहीं होता, तुम इतनी बड़ी चिंताएं मत लो। लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है, आदमी अपनी छोटी चिंताओं को छिपाने के लिए बड़ी-बड़ी चिंताएं ले लेता है—मनुष्यता का क्या होगा? तीसरा महायुद्ध होगा तो फिर क्या होगा? अभी तुम हल नहीं कर पाए अपनी पत्नी से जो रोज युद्ध होता है वह हल नहीं होता, तीसरा महायुद्ध होगा फिर क्या होगा? यह तुम अपने मन को भरमा रहे हो। यह तुम अपने मन को नये-नये उपाय दे रहे हो। ताकि तुम्हें यह झंझट न सोचनी पड़े कि घर जानना है और पत्नी तैयार हो रही होगी। और फिर तुम्हें धूल चटाएगी। उस छोटी-सी चिंता को हल नहीं कर पाते हो तो बड़ी चिंताएं खड़ी कर लेते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन से एक दिन मैंने पूछा कि तेरी कभी अपनी पत्नी से कोई झंझट होती है? क्योंकि मैं झंझट देखता नहीं। उसनने कहा, कभी झंझट नहीं होती, क्योंकि जिस दिन मेरी शादी हुई उसी दिन हमने एक बात तय कर लिया कि बड़ी-बड़ी समस्याएं मैं हल करूंगा, छोटी-छोटी समस्याएं तू हल कर। यह तो तूने बड़ा अच्छा उपाय किया; लेकिन कौन-सी समस्याएं छोटी हैं, कौन-सी बड़ी? मुल्ला ने कहा—सह सवाल मत पूछें तो ठीक है। क्योंकि जैसे तीसरा महायुद्ध होगा कि नहीं, इसको मैं हल करता हूं। और बच्चे को किस स्कूल में पढ़ने भेजना है, इसको वह इल करती है। किस सिनेमा जाना है आज, यह वह हल करती है। इजराइल किसके पास होना चाहिए, यह मैं हल करता हूं। मुझे किस डॉक्टर के पास इलाज करवाना चाहिए, यह वह हल करती है। और परमात्मा है या नहीं, यह मैं हल करता हूं। बड़ी समस्याएं मैं हल करता हूं, छोटी समस्याएं वह हल करती है। झगड़ा होता नहीं। पत्नियां बहुत होशियार हैं। वे कहती हैं, बड़ी समस्याएं तुम हल करो—इजरायल, वियतनाम, इत्यादि-इत्यादि; तुम बैठे रहो, सोचते रहो। मगर जिंदगी की असली समस्याएं, उनको वे छोटी समस्याएं हैं, वे पत्नियां खुद हल कर लेती हैं।

तुमसे हल नहीं होती अपनी जिंदगी की समस्याएं, तुम अपने को झुठलाने को बड़ी-बड़ी समस्याएं इतनी छोटी और नाचीज मालूम होने लगती हैं कि लगता है, हल की क्या करना!

तुमने सुनी है न कहानी, अकबर ने एक लकीर खींची दरबार में और अपने, दरबारियों से कहा—बिना इस लकीर को छुए कोई इसे छोटा कर दे। कोई न कर सका, लेकिन बीरबल ने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। और बिना छुए उसको छोटा कर दिया। यही तरकीब है तुम्हारे मन की।

यह तुम्हारा मनुष्य का मनोविज्ञान है। तुम्हारे पास समस्याएं हैं, बड़ी हैं, हल नहीं होती, तुम उनके सामने और बड़ी-बड़ी समस्याएं खड़ी कर देते हो; इतनी बड़ी कि वे बिलकुल छोटी हो जाती हैं, नाचीज हो जाती हैं, खो जाती हैं। अब कौन फिक्र करता है कि पत्नी से झंझट आज हुई, जब कि इजराइल में बड़ी भारी समस्या चल रही

है! अब क्या फिक्र करो कि घर में भोजन नहीं है! करोड़ों लोग प्रतिवर्ष बिना भोजन के मर रहे हैं। अब इसकी क्या चिंता करे चाय ठंढी पीनी पड़ रही है! जगत में बड़ी-बड़ी उलझने हैं। मनुष्यता के बड़े-बड़े सवाल तुम लिये बैठे हो।

कृष्ण कुमार! तुम यहां आए हो, मैं यहां मौजूद हूं, मेरी मौजूदगी तुम्हारी मौजूदगी का मिलन होने दो! कुछ फल लगने दो इस मिलन में! तुम फिक्र कर रहे हो कि आगे क्या होगा? और आगे जो लोग हैं, उनके लिए हम आयोजन कर भी कैसे सकते हैं? हम उनके मालिक नहीं। हम किसी के मालिक नहीं। उनकी स्वतंत्रता का वे उपयोग करेंगे। अगर उनको दुख लेना होगा तो दुख लेंगे, और सुख लेना होगा तो सुख लेंगे। हर आदमी स्वतंत्र है अपना नर्क और स्वर्ग बनाने को।

जीसस जिंदा थे, तो जिन लोगों ने लाभ लेना था ले लिया। फिर पीछे जिन लोगों को चर्च बनाना था, उन्होंने चर्च बनाया। तुम क्या सोचते हो जीसस न होते तो चर्च न बनता! किसी और के नाम से बनता, चर्च बनानेवाले चर्च बनाते ही। वह उनकी जरूरत है। अगर बुद्ध न होते तो तुम क्या सोचते हो बुद्ध-धर्म न होता? कोई और नाम होता! किसी और के बहाने बनता। किसी और के पीछे बनता। लेकिन जिनको बनाना था, वे बनाते। जिनको पूजा करनी है, वे पूजा करेंगे। तुम उनकी मूर्तियां तोड़ दो, वे पत्थरों की पूजा करेंगे।

मैंने सुना है, एक सूफी फकीरों की एक आदमी ने बड़ी सेवा की। उस पर बड़ा खुश हो गया। जब जाने लगा तो अपना बड़ा कीमती गधा जिस पर वह सवार होता था, उसको दे गया। कहा—इसको तू संभाल। वह भक्त भी बड़ा प्रसन्न हुआ वह भी उस गधे को प्रेम करने लगा था।

फिर दो साल बाद वह गधा मर गया। अब भक्त ने सोचा कि सूफी का गधा है, तो कुछ न कुछ सूफी तो है ही। इतने बड़े गुरु का गधा। कोई छोटा-मोटा गया तो नहीं, कोई साधारण गधा तो नहीं! ऐसे अलौकिक पुरुष का गधा! तो उसने उसकी सम्मानपूर्वक अंत्येष्टि, की कब्र बनवायी। ज्यादा उसके पास था भी नहीं, लेकिन जो भी था लगा कर संगमरमर की कब्र बनवा दी। कब्र बनकर तैयार हुई कि लोग जो रास्ते से निकलते थे वे फूल चढ़ाने लगे, कोई पैसा चढ़ाने लगा। उस गरीब आदमी ने देखा कि यह भी बड़ा मजा है; मगर था फकीर, पहुंचा हुआ फकीर था गधा! अब पक्का हो गया। हम तो सोचते थे कि गधा ही है, कई दफे संदेह भी आता था कि गधा आखिर गधा ही है, फकीर का भी हो तो क्या होता है, कोई सूफी के बैठने से सूफी थोड़े ही हो गया, मगर अब पक्का हो गया कि सूफी था! पहुंचा हुआ सिद्ध था।

लोग रुपये भी चढ़ाने लगे, मनौतियां करने लगे। लोगों की मनौतियां भी फलने लगीं। किसी को बेटा नहीं होता था, बेटा हो गया। अब दस आदमियों को बेटा न होता हो, दस जाकर मनौतियां करेंगे, पांच को तो हो ही जाएगा। और यह कहानी पुराने जमाने की है, जब कोई संतति-नियम इत्यादि भी नहीं था, तब दस को ही हो जाता। किसी की बीमारी थी। अब बीमारी कोई ज्यादा देर थोड़े ही रुकती है! अगर तुम दवा न लो तो भी जाती है एक दिन दवा लो तो भी जाती है! बीमारियां ठीक होने लगीं, बच्चे पैदा होने लगे। नौकरियां लगने लगीं। यह गरीब आदमी तो धनी होने लगा। उसने पास ही एक अपना स्थान भी बना लिया। वह उस कब्र का रक्षक हो गया। कोई पूछता ही नहीं कि इस कब्र में है कौन? कोई चार-पांच साल बाद तो वहां बड़ा महल खड़ा हो गया। धन ही धन फैल गया।

वह फकीर यात्रा को निकल था, हम को, गुरु, जो गधा दे गया था, वह वहां आकर रुका, उसने तो देखा तो समझ में ही नहीं आया कि एकदम चमत्कार हो गया! उसने पूछा कि भई, यहां मैं एक आदमी छोड़ गया था, गरीब आदमी, मेरी सेवा किया करता था। वह आदमी अब तो गरीब रहा ही नहीं था। वह तो सोने में मढ़ा बैठा था। हीरे-जवाहरातों के ढेर लगे थे। उसने कहा कि आप मुझे पहचाने नहीं, मैं ही वह गरीब आदमी हूं। एकदम उनके पैर में गिर पड़ा गुरु के और कहा—आपकी बड़ी कृपा! आपकी कृपा से सब हो रहा है, चमत्कार हो रहे हैं। गुरु ने पूछा, मगर हुआ क्या? कैसे हुआ? उसने कहा—अब आपको एकांत में बताएंगे। वह जो आप गधा

दे गये थे, बड़ा पहुंचा हुआ फकीर था। वह मर गया। उसकी मैंने कब्र बनायी। उससे यह सब चमत्कार हो रहे हैं। होते ही जा रहे हैं चमत्कार इनका कोई अंत ही नहीं है, लोग बढ़ते ही जाते हैं, भीड़ बढ़ती ही जाती है! मेरे सम्हाले ही नहीं सम्हल रहा है। अब आप कहां जाते हैं. आप भी यहीं रहो!

वह फकीर हंसने लगा।

उस गरीब आदमी ने पूछा—जो अब गरीब नहीं रहा था—कि आ हंसते क्यों हैं? उसने कहा, मैं हंसता इसलिए हूं कि इसकी मां भी बड़ी पहुंची हुई फकीर थी। वह जब मरी तो मैंने उसकी कब्र अपने गांव में बना दी थी, उसी के सहारे मैं जी रहा हूं। यह पुश्तैनी गधा था! यह कोई साधारण गया था ही नहीं! इसकी मां भी ऐसी पहुंची हुई थी! उसकी कब्र मैंने बनवा दी, वहां भी यही रांग-रंग चल रहा है।

अब जिनको कब्र ही पूजनी है, वे गधों की भी पूजेंगे! उनके लिए कोई बुद्ध की ही कब्र जरूरी नहीं है। वे किसी की भी कब्र पूज लेंगे। अब उनके लिए कोई बुद्ध हों, उसकी थोड़े ही आवश्यकता है। अब सोचते हो गणेशजी कभी हुए होंगे? जरा सोचो तो, उनकी शकल-सूरत तो देखो! ये कभी हुए होंगे! मगर कोई चिंता नहीं, किसी को कोई चिंता नहीं, कि यह हुए भी नहीं हुए? यह हो कैसे सकते हैं! मगर पूजा चल रही है। जिसको पूजा करनी है, वह गणेशजी भी करेगा। कोई बुद्ध जी की ही आवश्यकता थोड़े ही है। लोग रास्ते के किनारे पत्थरों पर पोत देते हैं सिंदूर और फूल चढ़ा देते हैं और पूजा शुरू हो जाती है। चर्च खड़ा हो जाता है, मंदिर खड़ा हो जाता है।

तुम इसको चिंता में न पड़ो। जिन्हें मूढ़ता करनी है, वे सदा करते रहेंगे। और मूढ़ता अपने लिए सदा कारण खोज लेगी। कारणों की कमी नहीं है। लोग वृक्षों की पूजा करते हैं—नदियों की पूजा करते हैं। अब नदियां कोई बहना थोड़े ही छोड़ दें! अब गंगा क्या करे! रुक जाए, बहे न? लोग गंगा की ही पूजा कर रहे हैं? वृक्षों की ही पूजा चल रही है। वृक्ष करें? रुक जाएं, बढ़ें न?

जो सदा होता रहा है वैसा होता रहेगा। मेरे पीछे भी वही होगा। उसकी चिंता में तुम न पड़ो। और उसको बचाने का कोई उपाय नहीं है!! समझदार अभी भी लाभ लेंगे, नासमझ अभी भी वंचित रहेंगे। समझदार फिर भी लाभ लेते रहेंगे, नासमझ फिर भी वंचित रहेंगे। यह सवाल नासमझदारी का है। अब तुम इतना ही तय कर लो कि तुम्हें नासमझों के साथ रहना है, कि समझदारों के साथ रहना है, बस! इससे ज्यादा तुम्हारे लिए कोई चिंता का कारण नहीं है।

यह संसार चलता रहेगा। चलता ही रहना चाहिए। और प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है। कोई गधे को ही पूजना चाहे, तो यह उसकी स्वतंत्रता है, यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। इसको तुम रोक कैसे सकते हो? कोई गणेश जी को ही मानना चाहता है, तो माने। यह किसके हाथ में है कि रोके? और क्यों रोके?

मनुष्य की स्वतंत्रता ऐसी अपरिसीम है कि यह सब होता रहेगा। होता ही रहना चाहिए। हम दीये जलाएं। लेकिन तुम पूछते हो—जब दिया बुझ जाएगा, फिर क्या होगा? फिर क्या होगा! जब तक दिया है तब उसकी रोशनी में कुछ पढ़ लो। तुम पूछते हो, जब दीया बूज जाएगा फिर क्या होगा? फिर लोग अंधेरे में कैसे पढ़ेंगे? अभी उजाले में नहीं पढ़ रहे हो, और तुम चिंता कर रहे हो अंधेरे में लोग पढ़ेंगे! अब अंधेरे में पढ़नेवाले अंधेरे की बात सोचें। और दिये हमेशा जलते रहेंगे।

यह दीया बुझ जाएगा, कोई और दीया जलेगा। दीये सदा जलते रहे हैं। जिनको पढ़ना है दीये की रोशनी में, वे सदा खोज लेते हैं। वे दूर-दूर से चले जाते हैं। तुम देखते हो यहां कहां-कहां से लोग आए हुए हैं? उन तक दीये की कोई खबर पहुंच गयी। यहां जमीन के हर देश से लोग हैं। चले आ रहे हैं। जिसको तलाश है, वह खोज लेगा। अब तुम भी नेपाल से चले आए हो! खाली हाथ मत लौट जाना! यहां प्रभु लुटाया जा रहा है, लुटा लो! यहां कुछ रंग जाओ इस रंग में! कुछ जी लो जीवन! यह संगीत कुछ तुम्हारे प्राणों में उतर जाने दो। यह मिश्री तुम्हारे प्राणों में धूल जाने दो। तुम व्यर्थ की चिंताएं मत लो। उनसे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है।

रंग में, धर्म में, देश में,

बंट रहा आज तक आदमी
रेख भूगोल पर खींच दी—
वो हमारे वतन हो गये
खून आदम औलाद का,
मंत्र से पूत जल बन गया,
धर्म, जो प्रेम के गीत थे—
आदमी का कफन हो गये,
नाप अपनी नहीं दूरियां,
नापता चांद को आदमी,
और इंसान के फासले—
अजनबी से घुटन हो गये.
बंट गया निलवर्णी गगन,
बंट गयी ये धरा श्यामल,
और बारुद-गंधी पवन—
भोगते ही जनम हो गये.
आदमी ब्रह्म का अंश है,
आदमी देव का वंश है,
ये विशेषण हमारे लिए—
आत्मभोगी अहम हो गये.

करोगे क्या! उपनिषद के ऋषि ने घोषणा की—'अहं ब्रह्मस्मि'। अज्ञानियों ने सुनी, उन्होंने कहा अहं ब्रह्मास्मि। उपनिषद के ऋषि का जोर था ब्रह्म पर, अज्ञानी ने जोर दिया अहं पर। उपनिषद के ऋषि ने कहा थाः मैं ब्रह्म हूं। वह यह कह रहा था—मैं नहीं हूं, ब्रह्म है। अज्ञानी ने जोर दिया कि मैं ब्रह्म हूं। ब्रह्म-भ्रह्म कहां मैं हूं। दोनों एक ही वचन का उपयोग कर रहे हैं; लेकिन दोनों का जोर बदल गया।

अब क्या करोगे; क्या तुम यह कहोगे कि उपनिषद के ऋषि को चुप ही रहना था, ताकि अज्ञानी यह अहं ब्रह्मस्मि की घोषणा न कर सके! तो क्या तुम सोचते हो यह अज्ञानी कोई और रास्ता अहंकार का न खोज लेता! कोई कमी थीं? जिन देशों में उपनिषद नहीं पैदा हुए, वहां अहंकारी नहीं हैं! लेकिन उपनिषद के ऋषि ने तो घोषणा कर दी, अब जो पी ले, जो लाभ ले ले पी ले ले। समझदार जहर को भी औषधि बना लेते हैं और नासमझ के लिए औषधि भी जहर हो जाती है। करोगे क्या!

मुझे जो कहना है, मैं कह रहा हूं। तुम्हारे मन में बैठ जाए तो सुन लो और सम्हाल लो, भविष्य की तुम चिंता न करो। उसे परमात्मा पर छोड़ो। इतना तो करो कम से कम! और कुछ मत छोड़ो, भविष्य को परमात्मा पर छोड़ो। फिर जो होगा होगा। जैसा होगा। हम जितनी देर यहां हैं, हम से जो बन पड़े, वह हम कर लें। उतने से ज्यादा आदमी का वश नहीं है। उससे ज्यादा सिर्फ अहंकार है।

सातवां प्रश्नः प्रभु! प्रतिदिन जब ध्यान में बैठता हूं तो अति प्रसन्नता, आनंद से भर जाता हूं। और फिर सारा दिन ध्यान के समय की प्रतीक्षा में रहता हूं। फिर भी दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति के समय, भोजन के समय, इत्यादि-इत्यादि, ध्यान भूल-भूल जाता है। अगर ध्यान में इतना आनंद, इतनी प्रतीक्षा रहती है, तो पूरा समय ध्यान की परिस्थिति क्यों नहीं बनी रहती?

प्रभु, हमारे पास प्रश्न ही प्रश्न हैं और आपके पास उत्तर ही उत्तर।

क्षमाप्रार्थी हूं!

पूछा है ईश्वर समर्पण ने।

समझना।

जीवन में हमेशा अतियां हैं। और अतियों के बीच एक समन्वय चाहिए। दिन भर तुमने श्रम किया, रात विश्राम किया और सो गये। असल में जितना गहरा श्रम करोगे, उतनी ही रात गहरी नींद आ जाएगी। यह बड़ा अतर्क्य है। तर्क तो यह होता कि दिन भर आराम करते, अभ्यास करते आराम का, तो रात गहरी नींद आनी चाहिए थी। क्योंकि जिसने दिन भर अभ्यास किया विश्राम का, करवटें बदलता रहा बिस्तर पर पड़ा हुआ, बहाने करता रहा सोने का, उसको गहरी नींद आनी चाहिए रात में। तार्किक तो यही होता। क्योंकि दिन भर बिचारे ने अभ्यास किया सोने का, इसके अभ्यास का फल तो मिलना चाहिए। मगर जो दिन भर बिस्तर पर पड़ा रहा, वह रात सो न सकेगा। सोने की जरूरत ही पैदा नहीं हुई।

विपरीत जीवन चलता है। दिन भर श्रम किया, वह रात सोएगा। इसलिए अमीर आदमी अगर अनिद्रा से बीमार रहने लगते हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं। निंद्रा का कारण ही नहीं रह जाता। तुमने देखा, बंबई की सड़क पर भी मजदूर सो जाते हैं। भरी दुपहरी में! बंबई का शोरगुल, रास्ता, और कोई अपनी ठेलागाड़ी के ही नीचे पड़ा है और सो रहा है, और मस्त घुर्रा रहा है! और उसी के पास खड़े महल में कोई वातानुकूलित भवन में सुंदर-सुंदर शैप्याओं पर रात भर करवट बदलता है। कुछ नींद नहीं आती। गरीब को अनिद्रा कभी नहीं सताती। गरीब और अनिद्रा इसका मेल नहीं है। और अमीर को अगर अनिद्रा हो तो समझना कि अमीरी में अभी कुछ कमी है। अभी अमीर हुए नहीं। अभी और 'बैंक-बैलेंस' चाहिए। अभी गरीब ही हैं, तभी तो सो रहे हैं, नहीं तो सोते कैसे!

दिन में जो श्रम करता है, वह रात विश्राम करता है। श्रम और विश्राम का तालमेल है। दिन भर रोशनी, रात अंधेरा हो जाता है। रात और दिन का तालमेल है। जीवन और मृत्यु, दोनों साथ-साथ हैं। एक श्वास भीतर गयी, तो एक श्वास बाहर जाती है। एक श्वास बाहर गयी, तो फिर एक श्वास भीतर आती है। तुम अगर कहो कि मैं भीतर ही रखूं श्वास को, तो मुश्किल हो जाएगी। तुम कहो बाहर ही रखूं, तो मुश्किल हो जाएगी।

ऐसा ही स्मरण और विस्मरण का मेल है। ऐसे ही ध्यान और प्रेम का मेल है।

ध्यान और प्रेम दो प्रक्रियाएं हैं। प्रेम में दूसरे का स्मरण रहता है, ध्यान में स्वयं का। तुम चौबीस घंटे स्वयं का स्मरण करोगे तो थक जाओगे। थोड़ी-थोड़ी देर को दूसरे का स्मरण भी आ जाना चाहिए। उतनी देर विश्राम मिल जाता है। फिर से स्वयं का स्मरण आएगा।

इसलिए ईश्वर भाई का प्रश्न महत्वपूर्ण है। वे कहते हज, किसी से बात करते समय, किसी की उपस्थिति में, भोजन करते समय ध्यान भूल-भूल जाता है। यह बिलकुल स्वाभाविक है। भूलना ही चाहिए। अगर तुम दूसरे की उपस्थिति में ध्यान का स्मरण रखोगे, तो तुम दूसरे का अपमान करोगे। क्योंकि सका मतलब होगा, तुम दूसरे पर ध्यान दे ही नहीं रहे। वह तो ऐसे ही हुआ कि दूसरा आदमी सामने खड़ा है और तुम भीतर कह रहे—राम-राम, राम-राम, राम-राम! अब यह जो राम सामने खड़े हैं, इनका अपमान हो रहा है। तुम भीतर कुछ चला रहे हो! तुम कह रहे हो—होश रखना है! देखता रहूं! जागा रहूं! तुम एक काम में उलझे हो, यह बिचारा सामने खड़ा है, यह देखेगा कि मुझसे तो कुछ लेना ही देना नहीं है। यह अपमान हो जाएगा। यह राम का अपमान हो जाएगा।

जब कोई सामने मौजूद है, भूलो अपने को, पूरी तरह इसमें डूब जाओ! यह घड़ी प्रेम की है। ध्यान को प्रेम में डुबा दो। जब कोई नहीं है, अकेले बैठे हैं, तब फिर प्रेम को ध्यान में उठा दो, फिर ध्यान को पकड़ लो। एकांत में ध्यान, संग साथ में प्रेम दोनों के बीच डोलते रहो। इन दोनों के बीच जितनी यात्रा होगी, और जितनी सुगमता से यात्रा होगी, उतना ही आत्मविकास होगा। ये दोनों ऐसे ही हैं जैसे घड़ी का पेंडुलम बायें जाता, बायें जाता, दायें जाता। घड़ी के पेंडूलम को बीच में पकड़ लो जोर से—घड़ी ठप्प! फिर घड़ी नहीं चलेगी। यह जो पेंडुलम

जाता है, दायें-बायें, इसके सहारे घड़ी चलती है। और जीवन का पेंडुलम हमेशा बायें-दायें जा रहा है। इसी के सहारे जीवन चलता है।

सब तलों पर, सब आयामों में, रात हो दिन, काम हो कि विश्राम, भीतर जाती श्वास हो कि बाहर जाती श्वास, ध्यान हो कि प्रेम, हर चीज में इन दो अतियों के बीच एक ताल मेल है। संगीत पैदा होता है ध्यानी से और शून्य के मिलन से।

ऐसे ही जीवन का संगीत पैदा होता है प्रेम और ध्यान से। दोनों को सम्हालो! जब अकेले तब ध्यान में, तब कोई मौजूद हो तब प्रेम में। जब प्रेम में तो अपने को बिलकुल भूल जाओ। और जब ध्यान में तो दूसरे को बिलकुल भूल जाओ।

और यह रूपांतरण इतना सहज होना चाहिए, इतना तरल होना चाहिए, कि इसमें जरा भी अड़चन न हो। यह सहज रूप से हो जाए। जैसे तुम घर के बाहर आते, भीतर जाते; जैसे श्वास लेते, श्वास छोड़ते; इतना ही सहज होना चाहिए।

मैं तुम्हें ध्यान और प्रेम दोनों की अति एक साथ सिखाता हूं। जो अकेला ध्यान करेगा, उसके व्यक्तित्व में थोड़ी कमी रहेगी। वह रूखा रहेगा। इसलिए अगर जैन-मुनि तुम्हें रूखे मालूम पड़ते हैं, बौद्ध भिक्षु रूखे मालूम पड़ते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं! रूखेपन का कारण है—अकेला ध्यान। एक अंग चुन लिया। एकांगी। अगर तुम्हें सूफी फकीर और भक्त रसपूर्ण मालूम पड़ते हैं, लेकिन होशपूर्ण नहीं। मालूम पड़ते, तो वह दूसरी अति हो गयी। उन्होंने प्रेम तो चुन लिया, मगर होश खो लिया।

प्रेम में बेहोशी आ जाती है। ध्यान में रुक्षता आ जाती है। मैं चाहता हूं कि तुम पूरे मनुष्य हो जाओ।

पृथ्वी पर अब तक जितने धर्म रहे हैं, उन्होंने मनुष्य की समग्रता पर जोर नहीं दिया। अंग-अंग चुन लिये हैं। अंग-अंग चुनने में सरलता है। एक कोई चुन लिया तो बात हल हो गयी। एक टांग तोड़ दी, एक ही टांग बचायी। मगर फिर चलना बंद हो जाता है। एक पंख काट दिया, एक ही पंख बचा लिया। मगर फिर उड़ना बंद हो जाता है। यह पृथ्वी बहुत धन्यभागी हो सकती है, अगर दोनों पंख हों। उन पंखों का मेरा नाम है—ध्यान और प्रेम।

दोनों को सम्हालो! दोनों के बीच एक तारतम्य, एक छंद पैदा करो। दोनों के बीच लयबद्धता को आने दो। उन दोनों के बीच तुम तीसरे को पाओगे, वही साक्षी है। उन दोनों के बीच जितना डूब जाओगे, जितनी सरलता से, स्वस्फूर्ति से लीन हो जाओगे, उतनी ही जल्दी तुम पाओगे—तीसरा पैदा हो गया। तीसरा पैदा ही तब हो सकता है जब दो की पूरी सरगम बैठ जाए।

उस तीसरे का नाम साक्षी है। वह पराकाष्ठा है। वही समाधि है। वही ब्रह्म-अनुभव है। वही बुद्धत्व है। वही जिनत्व है।

आज इतना ही।

फलस्माद्बादरायणो दृष्टत्वात् ।।९१।।
व्युत्क्रमदप्ययस्तथा दृष्टम् ।।९२।।
तदैक्यं नानात्वकैत्वमुपाधियोगहानादादित्यवत् ।।९३।।
पृथगिति चेन्नापरेणासम्बन्धात् प्रकाशानाम् ।।९४।।
न विकारिणस्तु कारणविकारात् ।।९५।।

ऊर्ध्वगति का आयाम है परमात्मा

सत्रहवां प्रवचन

'फलम् अस्मात् वादरायणः दृष्टत्वात्।।

वादरायण कहते हैं कि कर्म स्वयं फलदाता नहीं है; ईश्वर ही कर्मों के फलदाता हैं। ऐसा देखने में भी आता है।'

कर्म का सिद्धांत अगर अपनी तार्किक निष्पत्ति तक खींचा जाए, तो ईश्वर का हंता हो जाता है। फिर ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसा ही हुआ जैन और बौद्ध दर्शन में। कर्म के सिद्धांत को उसकी तार्किक निष्पत्ति तक ले जाया गया। ईश्वर व्यर्थ हो गया। ईश्वर की कोई आवश्यकता न रही। कर्म का नियम ही पर्याप्त हो गया, किसी नियंता की कोई जरूरत न रही। कर्म का सिद्धांत स्वचालित हो गया। उसके लिए किसी चालक की जरूरत न रही। पाप करोगे, उसका अनिवार्य परिणाम बुरा होगा। अनिवार्य, स्मरण रखना! पुण्य करोगे, उसका अनिवार्य परिणाम शुभ होगा। अनिवार्य, स्मरण रखना! कर्म अपना फल स्वयं दे जाता है, ऐसी जैन और बौद्धों की दृष्टि है। इस दृष्टि का ही परिणाम हुआ कि दोनों ने ईश्वर-तत्व को इनकार कर दिया।

ईश्वर-तत्व को इनकार करने के कारण जैन और बौद्ध दर्शन ध्यान की तो बड़ी ऊंचाइयों पर उठे, लेकिन प्रार्थना खो गयी। क्योंकि परमात्मा के बिना प्रार्थना कहां? ध्यान रूखी-सूखी बात है। उसमें रसधार नहीं है। और ध्यान अकेला अपंग भी है। और ध्यान अकेला अगर अति बुद्धिमत्ता पूर्वक ध्यान की यात्रा न की जाए तो अहंकार को बलिष्ठ करने का कारण हो सकता है। क्योंकि अहंकार को समर्पित करने के लिए कोई चरण ही न रहे। इसलिए जैन-मुनि जितना अहंकारी होता है उतना पृथ्वी पर कोई दूसरा साधु नहीं होता। हो नहीं सकता।

कारण?

जैन-मुनि को समर्पित होने के लिए कोई स्थल नहीं है, जहां वह माथा टेक दे; जहां सज्दा करे, ऐसे कोई चरण नहीं हैं। परमात्मा ही नहीं है अस्तित्व में तो प्रार्थना कैसे हो सकेगी? और परमात्मा ही नहीं है अस्तित्व में, तो तुम अकेले रह गये—द्वीप की भांति। अपने में बंद। अपने से बाहर जाने का उपाय न रहा। अपने से पार जाने का उपाय भी न रहा। और जीवन की सारी महिमा अपने से पार जाने की है। परमात्मा से निमित्त मात्र है कि तुम अपने से पार जा सको—सीढ़ी है। कि तुम धीरे-धीरे अपने को भी अतिक्रमण कर जाओ। मनुष्य की गरिमा यही है कि वह अपना अतिक्रमण कर ले। फ्रेडरिक नीत्से का प्रसिद्ध वचन है अभागे होंगे वे दिन जब मनुष्य अपना अतिक्रमण करना बंद कर देंगे। अभागे होंगे वे दिन जब मनुष्य अपने होने से तृप्त हो जाएंगे। जब उनके भीतर आग जलेगी अपने से पार जाने की अपने से ऊपर उठने की। मनुष्य की यही महिमा है।

इस जगत में कोई और पशु-पक्षी, कोई पौधा, कोई पत्थर-पहाड़ अपने से पार जाने के लिए आकांक्षा नहीं करता। और सब आकांक्षाएं समान हैं, सिर्फ एक आकांक्षा मनुष्य में विशिष्ट है। नीम का वृक्ष नीम का वृक्ष ही रहना चाहता है। इसके पार जाने की उसकी कोई अभीप्सा नहीं है। सिंह सिंह रहना चाहता है। सिंह होने से परितृप्त है। कुछ और होने की आवश्यकता नहीं है, न आकांक्षा है, न स्वप्न है। मनुष्य अकेला प्राणी है जो स्वप्न देखता है—अपने से ऊपर जाने के, अपने से भिन्न होने के। अपने को ही सीढ़ी बनाकर अपने ऊपर चढ़ जाने की अपूर्व आकांक्षा मनुष्य के प्राणों को झकझोर देती है। इसी आकांक्षा का नाम संन्यास है।

लेकिन ऊपर जाने को कोई लक्ष्य होना चाहिए। ऊपर जाने के लिए कोई आयाम होना चाहिए। परमात्मा उसी आयाम का नाम है।

अगर परमात्मा नहीं है, तो फिर आदमी बचा। उपनिषद का प्रसिद्ध वचन हैः 'अहं ब्रह्मास्मि'। अगर ब्रह्म नहीं है, तो अहं बचा। और अहं को मिटाने का कोई उपाय भी न बचा। ब्रह्म में ही डूबकर मिट सकता था। अब डूबेगा कहां? अब इससे उबरोगे कैसे? अब इतना ही हो सकता है कि यह पाप की जगह पुण्य में लग जाए। बस इतना ही उपाय रहा। इतना ही उपाय रहा कि सोने की जंजीरें आ जाएं, लोहे की जंजीरें चली जाएं। इतना ही उपाय रहा—धन की अकड़ मिट जाए, त्याग की अकड़ आ जाए। वही जैन-मुनि में उपलब्धि हो जाती है। धन की अकड़ चली जाती है, त्याग की अकड़ पकड़ जाती है। कृत्य पर बहुत भरोसा आ जाता है। संकल्प सब कुछ

हो जाता है। समर्पण की कोई संभावना नहीं रह जाती। और भक्ति तो समर्पण के बिना हो न सकेगी। और भक्ति के बिना आदमी अपने अहंकार से मुक्त नहीं हो सकता।

इसलिए वादरायण कहते है—और वादरायण का सूत्र शांडिल्य ने यहां उल्लेख किया है। वादरायण उन थोड़े-से मनीषियों में से एक हैं जिन्होंने जाना। जिन्होंने जागकर देखा, उन थोड़े-से बुद्धपुरुष में एक हैं।

'फलम् अस्मात् वादरायणः दृष्टवात् ।।

कर्म स्वयं फलदाता नहीं है। ईश्वर ही कर्मों का फलदाता है। ऐसा देखने में भी आता है।'

ईश्वर को स्वीकार करने का क्या अर्थ होता है? उसे ठीक से समझ लेना, अन्यथा तुम्हारी ईश्वर के प्रति बड़ी बचकानी धारणाएं हैं। उन्हीं धारणाओं को जैनों और बौद्धों ने आसानी से तोड़ दिया और खंडित कर दिया। इस जगत में एक बड़ा अदभुत खेल चलता है। तर्क का जो जाल है, वह उस पर ही आधारित है। वह खेल यह है।

जो लोक-सामान्य में, पृथकजनों में, सामान्य लोगों में जो धारणाएं प्रचलित होती हैं, उनका खंडन बड़ी आसानी से किया जा सकता है। क्योंकि उनके पीछे न तो कोई अनुभव होता है, न कोई दृष्टि होती है । उनके पीछे मनुष्य की सामान्य बुद्धि होती है। जरा-सी असामान्य बुद्धि तुम्हारे पास हो, उनका खंडन किया जा सकता है। लेकिन उनका खंडन से धारणा का वास्तविक रूप खंडित नहीं होता। जैसे कि तुमने सोच रखा है कि ईश्वर कहीं आकाश में बैठा कोई व्यक्ति है, तो तुम्हारी धारणा बचकानी है। ईश्वर कहीं कोई व्यक्ति की तरह नहीं बैठा हुआ है। और अगर तुमने ईश्वर को व्यक्ति माना, तो तुम नास्तिकों या अनीश्वरवादियों के किसी न किसी तर्क जाल से तोड़ दिये जाओगे। तुम बच न सकोगे।

ईश्वर व्यक्ति नहीं है, ईश्वर ऊर्जा है। वह जो बुद्धि की ऊर्जा है, उसका नाम ईश्वर है। इस जगत में जो बुद्धिमत्ता दिखायी पड़ती है, उसका नाम ईश्वर है। 'इंटेलिजेंस'। इस जगत में जो प्रतिभा का आभास होता है, उसका नाम भगवत्ता है। भगवान कोई व्यक्ति ही है। व्यक्ति को खोजने निकलोगे, तो कहीं भी न पाओगे। जिन्होंने भगवान का अनुभव किया है, उन्होंने भी नहीं कहा कि भगवान व्यक्ति है। उन्होंने भी कहा कि भगवान की अनुभूति है। तुम्हारी चैतन्यदशा जब इतनी निखार को उपलब्ध हो जाती है कि उस पर कोई सीमा के बंधन नहीं रह जाते, सब उपाधियां जब गिर जाती है, जब तुम निर-उपाधि हो जाते हो, जब तुम्हारी चैतन्य की दशा इतनी शांत और इतनी आनंदमग्न हो जाती है कि विचार की एक तरंग नहीं उठती, झील परिपूर्ण शांत होती है, तब तुम्हें अनुभव होता है कि तुम्हारी झील कहीं भी समाप्त नहीं होती; तुम्हारी झील किसी विराट झील का हिस्सा है; तुम्हारा यह छोटा-सा चैतन्य का दीया किसी विराट महासूर्य की किरणों का हिस्सा है। उस विराट चैतन्य का नाम परमात्मा है। तुम्हारे भीतर उसकी ही एक किरण है। तुम उसके ही एक रूप हो। तुम तक वह आया हुआ है।

परमात्मा व्यक्ति नहीं है, बल्कि समष्टि में छिपी हुई चैतन्य की शक्ति का नाम है। जड़ में भी वही है। क्योंकि जड़ भी चैतन्य की ही एक अवस्था है—सोयी हुई अवस्था। तुम्हारे शरीर में भी वही है। वह उसकी सोयी हुई अवस्था है। और तुम्हारे बोध में भी वही है, वह उसकी थोड़ी-सी जागती हुई अवस्था है। और जिस दिन तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे, परम जाग्रत हो जाओगे, उस दिन भी वही होगा। वह उसकी परिपूर्ण जाग्रत अवस्था है। जिसके पार फिर और जागना शेष नहीं रह जाता।

संक्षिप्त में, परमात्मा व्यक्ति नहीं, इस जगत में छिपी हुई बुद्धिमत्ता है। और बुद्धिमत्ता के प्रमाणों की कमी नहीं है। यहां हर चीज इतनी बुद्धिमत्ता से चल रही है कि क्या उसके लिए प्रमाण देना पड़ेगा? तुम एक बीज बोते हो, बीज में निश्चित ही कोई बुद्धिमत्ता है, क्योंकि बीज भलीभांति जानता है उसे क्या होना है! आम होना है कि नीम होना है। बीज भलीभांति जानता है कि किन पत्तों को उगाना है। वे हरे होंगे, कि लाल होंगे, कि पीले होंगे। बीज भलीभांति जानता है, आकाश में कितने ऊपर तक शाखाओं को भेजना है। बीज भलीभांति जानता है कि जड़ें कितनी दूर गहराई में जलस्रोत की तलाश में जानी चाहिए तब मैं जीवित रह सकूंगा। तुम वृक्ष की एक शाखा काट दो, तत्क्षण वृक्ष दूसरी शाखा पैदा कर देता है। कमी हो गई, उसे पूरी कर लेता है। रात वृक्ष भी सो जाता है,

दिन जागता है। और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि वृक्ष की संवेदना भी है। अब तो वैज्ञानिकों के पास इस बात के प्रमाण हैं। जो सर जगदीशचंद्र बसु ने सबसे पहली दफे प्रमाणित किया था, वह धीरे-धीरे इन पचास वर्षों में रोज-रोज सघनता से प्रमाणित होता गया। आज अगर जगदीशचंद्र बसु होते, तो उनके आनंद का पार न होता, पारावार न होता! क्योंकि पश्चिम में बहुत-सी खोजें इस बीच हुई हैं। उन खोजों को देखकर चमत्कार होता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि जब कुल्हाड़ी लेकर कोई वृक्ष को काटने आता है, तो कुल्हाड़ी लाने वाले व्यक्ति को दूर से ही देखकर और वृक्ष में तरंगें भय की पैदा हो जाती हैं। अभी काटा नहीं गया है, अभी यह भी पक्का नहीं है कि इसी को काटेगा। लेकिन वृक्ष की तरफ आ रहा है कुल्हाड़ी लेकर। दूर से। अभी आ भी नहीं गया है, अभी कुल्हाड़ी की चोट भी नहीं पड़ी, और वृक्ष भय से कंपने लगता है, जैसे तुम भय से कंपने लगोगे कोई अगर तलवार लेकर तुम्हारी तरफ आने लगे। हो सकता है सिर्फ मजाक कर रहा हो, तुम्हें मारने न आया हो, लेकिन तुम्हारे भीतर भय समा जाएगा।

अब वृक्षों के भीतर किस तरह के कंपन होते हैं उनको नापने के यंत्र बन गये हैं। जैसे कॉर्डियोग्रॉम होता है और तुम्हारे हृदय की धड़कन नापी जाती है। और तुम्हारे हृदय की तरंगें नापी जाती हैं, ठीक वैसे ही सूक्ष्म यंत्र बन गये हैं जो वृक्षों के हृदय की धड़कन को मापते हैं। कुल्हाड़ी लेकर आते हुए लकड़हारे को देखते ही वृक्ष के प्राण कंप जाते हैं। यंत्र तत्क्षण घबड़ाहट की खबरें देता है, कि वृक्ष घबड़ा रहा है। माली को आते देखकर वृक्ष प्रफुल्लित हो जाता है, यंत्र खबर देता है कि वृक्ष प्रफुल्लित हो रहा है, माली आ रहा है, पानी आ रहा है, प्रेम करने वाला पास आ रहा है।

तुम अगर किसी वृक्ष के पास रोज-रोज जाकर बैठते हो, उसको सहलाते हो, उससे दो बातें करते हो, तो वैज्ञानिक कहते हैं कि वह वृक्ष तुम्हारी प्रतीक्षा करने लगता है। वह रोज उतने वक्त राह देखता है। उसकी आंखें—जो हमें दिखायी नहीं पड़ती ऊपर से लेकिन यंत्र बताता है कि उसकी आंखें तुम्हारी प्रतीक्षा करती हैं। उसके कान—जो हमें दिखायी नहीं पड़ते, यंत्र बताता है—तुम्हारी पगध्वनि को सुनते। आते हो कि आज नहीं? नहीं आते हो तो उदास हो जाता है। आ जाते हो तो अपूर्व आनंद से भर जाता है। तुम्हें देखकर झुलने लगता है, मस्ती में डोलने लगता है।

अभी तक हमने ठीक से अस्तित्व के प्राणों में उतरना शुरू भी नहीं किया है, लेकिन इतने प्रमाण अभी मिल गये हैं कि सारा अस्तित्व बुद्धिमत्ता से भरा हुआ है। संवेदना है, चेतना है। और जो आज वृक्ष में सच हो गया है, वही कल चट्टान में भी सच होने को है। और सूक्ष्म यंत्र चाहिए होंगे, जो चट्टान के भीतर भी उठती हुई तरंग-धाराओं को माप सकें।

परमात्मा का इतना ही अर्थ है कि यह पूरा जगत संवेदनशील है। यह जगत संवेदनशून्य नहीं है। और इस जगत के पीछे एक बुद्धिमत्ता है, जो चीजों का नियोजन कर रही है।

वादरायण कहते हैं—और शांडिल्य वादरायण का उल्लेख कर रहे हैं, अपनी बात के पक्ष में—कि कर्म अपने-आप में फलदायी नहीं है। कोई कर्म अपने-आप में कैसे फलदायी हो सकता है? इस जगत की बुद्धिमत्ता फल देती है। यह जगत प्रतिसंवेदन करता है। यह जगत तुम जो इसके साथ करते हो, वही तुम्हारे साथ करता है। कर्म अपने-आप में फलदायी नहीं हो सकते। कर्म फलदायी हैं, क्योंकि जगत में एक बुद्धिमत्ता छिपी है, जो प्रत्येक कर्म के लिए पुरस्कार देती है और दंड देती है।

चार बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली बात, कि तुम जब भला करते हो, तो भला करने के कारण ही तुम्हें अच्छे परिणाम नहीं आते। तुम भला करते हो, इससे परमात्मा, इससे छिपी हुई जगत की बुद्धिमत्ता तुम्हारे साथ भला करती है। अगर जगत बुद्धिहीन होता, तो तुम करते रहते भला, कुछ परिणाम नहीं हो सकता था।

और तुम इसे अनुभव से भी देख सकते हो।

तुम किसी बुद्धू के साथ भला करो, और तुम उतना ही भला किसी बुद्धिमान के साथ करो, तुम पाओगे दोनों में फल का भेद पड़ गया। क्योंकि बुद्धू शायद समझे ही नहीं कि तुमने भला किया। या कभी यह भी हो सकता है कि बुद्धू तुम्हारे भले को बुरा समझ ले और तुम्हें नुकसान पहुंचा दे। बुद्धिमान समझेगा। बुद्धुओं को देखकर ही समझदारों ने कहा होगा—नेकी कर और कुएं में डाल। फिक्र ही मत करना। इन बुद्धुओं के साथ अगर अच्छा भी किया है तो अच्छे की अपेक्षा मत करना। इनसे अच्छा शायद ही हो। अकसर ऐसा हो जाता है कि बुद्धू, बुद्धिहीन आदमी से अगर तुम अच्छा व्यवहार करो, तो वह निश्चित तुमसे बुरा व्यवहार करेगा।

क्यों ऐसा हो जाता है?

तुम जब अच्छा व्यवहार करते हो किसी बुद्धिहीन से, तो उसके अहंकार को चोट लगती है कि अच्छा! तो तुम बड़े अच्छे होने की कोशिश कर रहे हो। तो तुमने अपने को समझा क्या है? बड़े साधु होना प्रमाणित कर रहे हो! वह तुम्हारी साधुता को बिखेरने के लिए उत्सुक हो जाएगा। वह तुम्हें नीचा दिखाने को उत्सुक हो जाएगा। अगर तुम बुद्धिमान के साथ अच्छा व्यवहार करोगे, तो अनंत गुना परिणाम होगा। यह तो रोज देखने में आता है। वादरायण कहते हैं—'ऐसा देखने में भी आता है' तुम जितनी जड़ स्थिति में अपनी भलाई डालोगे, उतना ही छोटा परिणाम होगा। जैसे-जैसे तुम ज्यादा समझदार व्यक्ति के साथ व्यवहार करोगे, उतने ज्यादा परिणाम होने लगेंगे।

तो इस जगत में बुरे का फल बुरा होता है, ऐसा देखा गया; भले का फल भला होता है, ऐसा देखा गया; लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि कर्म अपना ही फल खुद को दे लेते हैं। कर्मों की क्या क्षमता? कर्मों के फल होते हैं, क्योंकि यहां छिपी हुई बुद्धिमत्ता प्रत्येक कर्म के उत्तर में संवेदित होती है, झंकृत होती है। वही झंकार तुम तक आती है—शुभ की तरह, या अशुभ की तरह।

अगर अस्तित्व जड़ हो और अस्तित्व में कोई परमात्मा न हो और अस्तित्व को बिलकुल उपेक्षा हो, तुम्हारे प्रति—जड़ ही हो तो उपेक्षा होगी ही—फिर तुम अच्छा करो या बुरा, परिणाम केवल सांयोगिक होंगे। उनमें कोई अपरिहार्यता नहीं रह जाएगी। क्योंकि दूसरी तरफ कोई बुद्धिमत्ता नहीं है जो कि परिणामों को सुनिश्चितता दे सके।

वादरायण की बात में बड़ा बल है। जिन्होंने देखा है, उन्होंने ऐसा ही देखा है। इतना ही देखकर मत रुक जाना कि अच्छे कर्म का अच्छा फल हुआ और बुरे कर्म का बुरा फल हुआ। जरा और गहरे खोजना, तो तुम पाओगे कि अच्छे कर्म के पीछे अच्छा फल आया है क्योंकि कोई बुद्धिमान शक्ति चारों तरफ से उस अच्छे फल को सराही है। उस अच्छे कर्म का स्वागत हुआ है। फिर ऐसा भी हो जाता है कि तुम कभी अच्छा करते-सोचते हो कि तुम अच्छा कर रहे हो—लेकिन परिणाम बुरे होते हैं। तुम्हारे शुभ कर्म का शुभ फल मिलता हुआ नहीं दिखायी पड़ता। लोग बड़े चिंतित भी हो जाते हैं। मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि हमने अच्छा किया, कहते हैं कि अच्छे का फल अच्छा होगा लेकिन हुआ नहीं। तो मैं उनसे कहता हूं—कि तुम अपनी अच्छाई को खोजना। तुम सोचते थे तुमने अच्छा किया, लेकिन वह अच्छा था नहीं। इसलिए अस्तित्व ने तुम्हें जो प्रतिकार दिया है, वह अच्छा नहीं है। तुम जरा अपनी अच्छाई में और गौर से उतरना। तुम्हारी अच्छाई में कोई गहरी बुराई छिपी होगी। तुम इस जगत की बुद्धिमत्ता को धोखा नहीं दे सकते!

जैसे तुमने दान दिया किसी को। अब दान दो कारणों से दिया जा सकता है—या अनेक कारणों से भी दिया जा सकता है—लेकिन मौलिक रूप से दो कारण हो सकते हैं। एक, कि तुमने दया के कारण दिया। तुम्हें दूसरे के दुख की बात छू गयी। तुम्हारी आंखों में आंसू आ गये। तुम्हें लगा कि कुछ करना जरूरी है। तुम्हें दूसरे का दुख छुआ। तुमने दूसरे का दुख हरने को कुछ किया। या यह भी हो सकता है कि दूसरे को दुखी देखकर तुम्हारे अहंकार को आनंद आया और तुमने अहंकार के कारण कुछ किया कि ले भई! तू दुखी है, देख! हम दानी है! हमारी तरफ देख, याद रखना, कि जब तू दुखी था तो मैंने तेरी सहायता की थी। दान या तो दूसरे के दुख के

कारण सहजस्फूर्त हुआ, या, अहंकार से जन्मा कि तुम्हें दानी होने का मौका मिला। कुछ लोग हैं जो दानी होने की तलाश में होते हैं। उनकी आकांक्षा यही है कि कोई न कोई कहीं न कहीं दुखी हो।

एक ईसाई मिशनरी ने मुझसे कहा कि आपके देश में सेवा को कोई मूल्य नहीं दिया गया है। न महावीर ने, बुद्ध ने, न कृष्ण ने, सेवा को कोई मूल्य नहीं दिया है। उपनिषदों में, वेदों में सेवा की कोई चर्चा नहीं है। जैसा कि ईसाइयत में है। सेवा धर्म है। सेवा के बिना कोई मोक्ष जा ही नहीं सकता, मुक्त हो ही नहीं सकता। मैंने उससे पूछा कि अगर दुनिया में सब सुखी हो जाएं, फिर तुम क्या करोगे? फिर तुम कैसे मोक्ष जाओगे? कोई दुखी ही न होगा, किसी को सेवा की जरूरत न होगी—थोड़ी देर कल्पना कर लो, दुनिया में सारे लोग सुखी हो गये—फिर तो मोक्ष का द्वार बंद हो जाएगा! वह थोड़ा चौंका। इस तरह उसने कभी सोचा नहीं था। कहने लगा, नहीं, ऐसा हो ही नहीं सकता कि दुनिया में सब सुखी हो जाएं। मैंने कहा, सिर्फ इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि तुम्हें मोक्ष जाने का उपाय टूट जाएगा? तब तो तुम दूसरे का दुख भी शोषण कर रहे हो। तुम्हारी सेवा में नजर स्वार्थ की है। तुम दूसरे की सेवा कर हो ताकि स्वर्ग मिल जाए। तुम्हें दूसरे के दुख पर दया नहीं है, तुम्हीं अपने सुख की चाह है, अपने स्वर्ग की चाह है। अगर स्वर्ग दूसरे के दुख में सेवा करने से ही मिलता है, तो निश्चित ही सेवक चाहेगा दुनिया में दुख बना रहे। यह तो बड़ी अजीब बात हो गयी, कि सेवक चाहे कि दुनिया में दुख बना रहे। नहीं तो उसकी सेवा टूट जाएगी। यह तो बड़ा विरोधाभास हो गया। लेकिन यही हालत है।

अगर तुमने सेवा इसलिए की है कि तुम्हें स्वर्ग जाना है, और तुमने दान इसलिए दिया है कि इससे प्रतिष्ठा मिलती है, अखबार में नाम छपता है, समाज में आदर मिलता है, पुण्य अर्जित होता है, स्वर्ग में उसका प्रतिकार मिलेगा, प्रतिफल मिलेगा, तो तुमने शुभ कर्म नहीं किया। गहरे में तो तुम्हारा स्वार्थ है, परार्थ जरा भी नहीं है। गहरे में तो तुम्हारा अहंकार है। इसमें दूसरे के दुख से कुछ लेना-देना नहीं है। तब निश्चित तुम इस जगत की बुद्धिमत्ता को धोखा न दे पाओगे।

अगर जड़ नियम होता जगत में तो शायद तुम्हें इससे पुण्यफल भी मिल जाता। लेकिन जड़ता नहीं है, यहां जगत में छिपी बुद्धिमत्ता है। तुम क्या करते हो उसको ही नहीं देखती, तुम्हारे करने के भीतर छिपी हुई अभीप्सा को देखती है। तुम क्या करते हो उसको ही नहीं देखती, तुम क्यों करते हो उसको भी देखती है। तुम्हारा कृत्य और तुम्हारा कर्म क्या है, यह बात गौण है, तुम क्या हो, यह बात महत्वपूर्ण है। इस बुद्धिमत्ता को तुम धोखा नहीं दे पाते। इसलिए तुम पाओगे। और अक्सर तुमने देखा होगा कि कभी-कभी भला आदमी जो सब तरह से भला करता है और बड़ा दुख पाता है। और कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि बुरा आदमी जिसके संबंध में तुम्हें कुछ भी पता नहीं उसने कभी भला किया है, वह भी कभी बड़े आनंद में पाया जाता है। ये भेद इसलिए पड़ जाते हैं। ये भेद इसीलिए पड़ जाते हैं कि जगत में बुद्धिमत्ता काम कर रही है। परमात्मा विराजमान है। उन आंखों को तुम धोखा न दे पाओगे। उस बोध के साथ तुम चालाकी न कर पाओगे। तुम्हारी सब चालाकियां पड़ी रह जाएंगी। तुम्हारी सब होशियारियां दो कौड़ी की हैं।

इसलिए खयाल रखना, पुण्य के पीछे भी पाप का भाव हो सकता है। और कभी-कभी ऊपर से दिखायी पड़नेवाले पाप के पीछे भी पुण्य की ऊर्जा हो सकती है। असली बात अभिप्राय की है।

अब ऐसा समझो कि एक आदमी के सिर में वर्षों से दर्द था। तुम्हारा उससे झगड़ा हो गया, तुमने एक पत्थर उठाकर उसके सिर में मार दिया। पत्थर की क्या चोट लगी, उसका दर्द ठीक हो गया। तुम बुरा करने चले थे, हो गया भला। क्या तुम सोचते हो इससे तुम्हें पुण्य-फल मिलेगा? तुम्हारा अभिप्राय तो भले का नहीं था। और यह उदाहरण तुम ऐसा मत समझना कि सिर्फ काल्पनिक है। ऐसा कोई दफे हो गया है। चीन में आक्यूपंक्चर नाम का पूरा शास्त्र खोजा गया है इसी तरह। एक आदमी को पक्षाघात लग गया था, पैरॉलिसिस हो गयी थी, और वह एक रास्ते से अपने पैर को घसीटता चल रहा था कि उसके दुश्मन ने उसको एक तीर मारा। वह उसके पैर में लगा। उसके पैर में लगते ही उसका पक्षाघात चला गया। फिर इसमें बड़ी खोजबीन करनी पड़ी कि मामला क्या

हुआ? इलाज काम नहीं किये, औषधि काम नहीं की और तीर के लगने से हुआ क्या! खोज से पता चला कि तीर संयोगवशात ऐसी जगह लगा जहां विद्युत का मार्ग है, शरीर की विद्युत जहां से बहती है। उस तीर के लगने से विद्युत का मार्ग बदल गया। मार्ग के बदलने से उसका पक्षाघात बदल गया। इसी आधार पर ऑक्यूपंक्चर की खोज हुई।

इसलिए तुम अगर ऑक्यूपंक्चरिस्ट के पास जाओगे, तुम कहते हो सिर में दर्द है, हो सकता है कि तुम्हारे हाथ में सुई गड़ाए, कि तुम्हारे पैर में सुई गड़ाए। तुम सोचोगे भी कि यह मामला क्या है? यह होश में है? मेरे सिर में दर्द है और यह पैर में सुई गड़ा रहा! लेकिन चमत्कार होता है। पैर में सुई गड़ती है, सिर का दर्द खो जाता है। क्योंकि पैर से जो विद्युत की ऊर्जा सिर की तरफ बह रही है, उसको रूपांतरित करने के लिए सुई काफी है। सुई की चोट से विद्युत का प्रवाह बदल जाता है। फिर कहां-कहां बिंदु हैं विद्युत के प्रवाह को बदल के, इसकी खोज की गयी। सात सौ बिंदु पाये गये। मनुष्य के शरीर में सात सौ बिंदु हैं। उन बिंदुओं से सारी बीमारियों का इलाज हो सकता है।

मगर आविष्कार तो हुआ था एक आकस्मिक घटना से। जिसने तीर मारा था, वह कोई ऑक्यूपंक्चर को जन्म देने की इच्छा नहीं रखता था उसे कुछ पता भी नहीं था। वह तो मार डालना चाहता था इस आदमी को। क्या तुम सोचते हो उसको पुण्य हुआ! हालांकि उसके कृत्य का परिणाम तो बहुत अच्छा हुआ? आदमी बचा। एक आदमी नहीं बचा, पांच हजार साल में लाखों लोग उसके तीर की वजह से स्वास्थ्य-लाभ किये। लेकिन उसका अभिप्राय तो बुरा था। फल तो बुरा ही होगा। कभी-कभी तुम्हारा अभिप्राय अच्छा होता है और कृत्य ऊपर से दिखायी पड़ता है बुरा है। तो भी तुम्हें पुण्य का अर्जन होता है। कृत्य नहीं देखे जाते, कृत्य ऊपर हैं, देखे अभिप्राय जाते हैं। अभिप्राय कौन देखता होगा? उसके लिए बड़ी ही गहन प्रतिभा चाहिए जगत में छिपी हुई, जो तुम्हारे अभिप्रायों को भी परख लेती हो। शायद तुम्हें भी अपने अभिप्राय का पता न हो। तुमसे बड़ी कोई बुद्धिमत्ता चाहिए, जो तुम्हारे सामने भी छिपे अभिप्रायों को पता कर लेती हो। जो तुम्हारे अंतस्तल में पैठ जाती हो। जो तुम्हारे केंद्र में प्रवेश कर जाती हो। जो तुम्हारे भीतर से भीतर को पकड़ लेती हो और पहचान लेती हो। और ऐसा ही हो रहा है।

जब तुम्हें अपने किसी अच्छे काम के लिए बुरा फल मिले, तो नाराज मत होना और शिकायत मत करना, इतना ही समझना कि कृत्य तो अच्छा था लेकिन अभिप्राय भीतर बुरा था। इससे तुम यह मत समझ लेना कि जगत में कोई अन्याय हो रहा है। और कभी तुम किसी व्यक्ति को बुरा कृत्य करते देखो और फल अच्छा होते देखो, तो भी यह मत सोच लेना कि जगत में बड़ी बेईमानी चल रही है, परमात्मा तक अन्यायी हो गया है। वह कृत्य ऊपर से बुरा दिखायी पड़ रहा है, लेकिन भीतर उसका अभिप्राय अच्छा होगा। अभिप्राय तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता, हो सकता है स्वयं उसे भी दिखायी न पड़ता हो। लेकिन जो हमें भी नहीं दिखायी पड़ता, उसे भी देखनेवाली आंखें इस जगत में छिपी हैं। उन आंखों का नाम परमात्मा है। वे आंखें सदा तुम्हारा पीछा कर रही हैं। वे हर घड़ी तुम्हें देख रही हैं। यह तो एक अर्थ।

दूसरा यह भी अर्थ, जो इसीसे निष्पन्न होता है और और भी गहरा हो जाता है। कर्म करो, फल की चिंता न करो। कृष्ण ने गीता में कहा है कि तुम सिर्फ कर्म करो, फल की चिंता मत करो। फल तुम्हारे हाथ में नहीं है, फल परमात्मा के हाथ में है। और मजा ऐसा है कि हम कर्म तो कम करते हैं, फल की चिंता बहुत करते हैं। हम चाहते हैं कि कर्म तो करना ही न पड़े और फल हो जाए। या कर्म कम से कम करना पड़े और फल बड़ा से बड़ा हो जाए। कोई शॉर्टकट मिल जाए। कोई तंत्र-मंत्र हो जाए। कोई जादू का उपाय हो जाए। कर्म तो करना न पड़े और फल पूरा मिल जाए। हमारी यही बेईमानी है, ऐसा नहीं हो सकता।

फल उसी अनुपात में मिलता है जिस अनुपात में कर्म किया जाता है। कर्म कर के ही तुम जगत में छिपी बुद्धिमत्ता को उत्प्रेरित करते हो फल देने के लिए। तुम्हारा कर्म तुम्हारी पात्रता है। लेकिन फल तुम्हारे हाथ में नहीं

है। इसलिए फल की चिंता व्यर्थ है। और फल की ही चिंता होती है और कोई चिंता नहीं जगत में। जिसने यह समझ लिया कि फल परमात्मा के हाथ में है, वह चिंतित नहीं रह जाता, वह निश्चिंत हो जाता है। उसकी मनोदशा बड़ी शांत हो जाती है। कर्म करता रहता है, फल की कोई चिंता ही नहीं—जो होगा। जो होना चाहिए, वह होगा। जब होना चाहिए तब होगा। उसे इस विश्व की सत्ता पर भरोसा है, श्रद्धा है। वह जानता है अन्याय नहीं होता। और अगर देर लग रही है, तो वह भी मेरे हित में ही होगी। और अगर कभी बुरा परिणाम भी होता है उसको अच्छे कृत्य का, तो भी उसकी श्रद्धा इतनी गहरी है कि वह मानता है कि मेरे कृत्य में जरूर कोई बुराई रही होगी जो मुझे दिखायी नहीं पड़ती, लेकिन उन आंखों को दिखायी पड़ती है। अब मैं अपने कृत्य को बदल लूं। और कभी अगर उसे बहुत दुख भी मिलता है, तो भी वह जानता है, यह भी मेरी परीक्षा होगी, अग्निपरीक्षा होगी। तो भी वह जानता है, इस दुख के पीछे भी उस बुद्धिमत्ता के ही हाथ हैं, इसलिए निश्चित ही इस दुख से भी कुछ लाभ होने को होगा मैं मांजा जाऊंगा, निखारा जाऊंगा, मेरी अशुद्धियां जलायी जाएंगी।

भूल के भी न दर्द को दिल से कभी जुदा समझ

शाहिदे-दिलनवाज की यह भी कोई अता समझ

भूल के भी न दर्द को दिल से कभी जुदा समझ

शाहिदे-दिलनवाज की यह भी कोई अता समझ

उस परम प्रेमी की यह भी कोई कृपा है अगर दर्द हो, अगर पीड़ा हो। यह पीड़ा भी निखारने की ही उपाय है। यह पीड़ा भी परिष्कार का ही उपाय है।

मंजिलें-हस्त्रो-बूद में तेरा मुकाम है बुलंद

महरो-महो-नजूम को अपने निशाने-पा समझ

चिंता जरा भी न करो। उस विराट के हृदय में तुम्हारी जगह है। और जो भी हो रहा है, ठीक ही हो रहा होगा। गलत होता ही नहीं है। गलत हो ही नहीं सकता। जब परमात्मा कण-कण में व्याप्त है, तो गलत कैसे हो सकता है? अगर हमें गलत दिखायी पड़ता है तो हमारी आंख की कहीं भूल होगी। इस गहन आस्था का नाम धर्म है। जहां गलत भी हमें दिखायी पड़ता है, जहां हमारा तर्क कहता है गलत हो रहा है, वहां भी श्रद्धा जानती है—हमारी ही कोई भूल है। देखने में दृष्टि में कोई दोष है। हमारी आंख में ही पड़ी है। हमारा दर्पण ही झलका गलत रहा है। गलत तो हो ही नहीं सकता। कैसे गलत हो सकता है!

जगत तुम जैसे बुद्धिमान व्यक्तियों को पैदा किया है; निश्चित ही तुम जिससे आए हो, वह तुमसे ज्यादा बुद्धिमान होना चाहिए। तुम्हारी बुद्धि तो छोटी-सी है। एक बूंद समझो। और इस जगत की बुद्धिमत्ता सागर जैसी है। जब एक बूंद को कुछ भूल दिखायी पड़ रही है, तो सागर को तो कभी की दिखायी पड़ जाती। भूल नहीं होगी। बूंद होने के कारण ही शायद दिखायी पड़ रही है, क्योंकि हमारी सीमा है। हमारी समझ की सीमा कितनी! हमारी समझ क्षुद्र है। हम विराट को ठीक से नहीं झलका पाते।

जौहारे-दर्द है अगर गौहरे-अश्क में तेरे

दामने-कायनात को मोतियों से भरा समझ

जौहारे-दर्द है अगर गौहरे-अश्क में तेरे

अगर तेरे आंसू रूपी मोती में दर्द का अंश है।—

जौहरे-दर्द है अगर गौहरे-अश्म में तेरे

दामने-कायनात को मोतियों से भरा समझ

फिर चिंता मत करो। फिर इस संसार का दामन, इस संसार का आंचल मोतियों ही मोतियों से भरा है। सिर्फ एक बात की फिक्र कर लो कि तुम्हारा आंसू आंसू भी प्रार्थना में गिरे। बस तुम्हारे दर्द के आंसू में मोती की

झलक आ जाए। तुम्हारे भाव में श्रद्धा की झलक आ जाए। फिर सारा जगत, इस जगत का आंचल मोतियों ही मोतियों से भरा है।

कर्म करो, कर्म की चिंता मत करो। वह चिंता अकारण है। उसके कारण तुम व्यर्थ टूट जाते हो। और उस चिंता में तुम इतनी शक्ति लगा देते हो कि कर्म में लगाने को शक्ति बचती ही ही। वह सारी शक्ति अगर कर्म में लग जाए, तो इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति अपूर्व आनंद को उपलब्ध हो। और अपूर्व विजय की फल की चिंता में जाती है और एक प्रतिशत कर्म में लगती है। बीज तो तुम एक प्रतिशत बोते हो और निन्यानबे प्रतिशत तुम अपेक्षा करते हो फसल काटने की। फिर फसल नहीं काट पाते कौन जिम्मेवार है?

जिन्होंने देखा उन्होंने ऐसा ही देखा है, इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो साधारण अर्थ है, जो अब तक टीकाएं की गयी हैं लिखा हुआ है। वह साधारण अर्थ है—'ऐसा देखने में भी आता है।' कैसा देखने में आता है? जो साधारण टीकाएं लिखी गयी हैं। अब तक, शांडिल्य के सूत्रों पर, उन सभी टीकाओं में यह लिखा है कि जैसे तुम कोई अच्छा काम करते हो तो राजा तुम्हें पुरस्कार देता है।

कर्म करो, कर्म की चिंता मत करो। वह चिंता अकारण है। उसके कारण तुम व्यर्थ टूट जाते हो। और उस चिंता में तुम इतनी शक्ति लगा देते हो कि कर्म में लगाने को शक्ति बचती ही नहीं। वह सारी शक्ति अगर कर्म में लग जाए, तो इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति अपूर्व आनंद को उपलब्ध हो। और अपूर्व विजय की यात्रा हो जाए जीवन। सफलता ही सफलता है फिर मगर निन्यानबे प्रतिशत को फल की चिंता में जाती है और एक प्रतिशत कर्म में लगती है। बीज तो तुम एक प्रतिशत बोते हो और निन्यानबे प्रतिशत तुम अपेक्षा करते हो फसल काटने की। फिर फसल नहीं काट पाते तो कौन जिम्मेवार है?

जिन्होंने देखा है उन्होंने ऐसा ही देखा है, इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो साधारण अर्थ है, जो अब तक टीकाएं की गयी हैं उनमें लिखा हुआ है। वह साधारण अर्थ है—'ऐसा देखने में भी आता है'। कैसा देखने में आता है? जो साधारण टीकाएं लिखी गयी हैं। अब तक, शांडिल्य के सूत्रों पर, उन सभी टीकाओं में यह लिखा है कि जैसे तुम कोई अच्छा काम करते हो तो राजा तुम्हें पुरस्कार देता है। तुम कोई बुरा काम करते हो तो राजा तुम्हें दंड देता है। राजा के बिना कौन पुरस्कार देगा, कौन दंड देगा? मजिस्ट्रेट के बिना कौन तुम्हें सजा देगा? कृत्य अपने-आप में निर्णायक नहीं हो सकता, कृत्य का निर्णय करने को पीछे कोई चेतना चाहिए।

यह तो बड़ी साधारण व्याख्या हुई। यह मेरे मनपसंद व्याख्या नहीं। इस व्याख्या में भूलें भी बहुत हैं। क्योंकि जिन्होंने कर्म के सिद्धांत को माना है, वे इतनी आसानी से राजी नहीं हो जाएंगे। वे कहते हैं, हम आग में हाथ डालते हैं, कौन हमारा हाथ जलाता है? आग में हाथ डालना, यह हमारा कृत्य; और हाथ का जल जाना, यह उस कृत्य का फल। न कोई राजा है बीच में और न कोई मजिस्ट्रेट है बीच में। आग में हाथ डाला कि जलोगे। कर्म ही अपना फल ले आएगा। तो ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जहां कर्म अपना फल खुद ही ले आता है। तुमने जहर पीआ, मरोगे। अगर जहर पीने से मृत्यु हो जाती है और आग में हाथ डालने से जल जाता है, तो कर्म का सिद्धांत माननेवाले लोग कहते हैं, इसी तरह प्रेम करने से प्रेम मिलता है और घृणा करने से घृणा मिलती है। बुद्ध ने कहा: वैर से वैर बढ़ता है, और प्रेम से प्रेम बढ़ता है। नहीं, कोई राजा इत्यादि की बात सार्थक नहीं है।

फिर मैं क्या अर्थ करता हूं?

'फलम् अस्मात् वादरायणः दृष्टत्वात्।।

'ऐसा देखने में भी आता है।' मैं यही अर्थ करता हूं। जिन्होंने देखा। वादरायण ने देखा, शांडिल्य ने देखा। मैं तुमसे कहता हूं: मैं भी देख रहा हूं। तुम भी देख सकते हो। जिनकी भीतर की आंख खुलती है और जो यह देखना शुरू करते हैं कि जगत जड़ नहीं है, जड़ता सिर्फ हमारी धारणा है, हर जड़ता में चैतन्य, सुप्त पड़ा है, और सारा जगत चैतन्य से आप्लावित है, उसकी बाढ़ आयी हुई है, जिन्होंने ऐसा देखा है वे कहते हैं कि हमारे

कर्मों का जो फल मिलता है वह कर्मों के कारण नहीं मिलता, न हमारे कारण मिलता है, वरन इस चैतन्य के सागर के कारण मिलता है जो हमें सब तरफ से घेरे हुई है।

तुम भी खोलो आंख और देखो। यह दिखायी पड़ सकता है। यह कोई सिद्धांत मात्र नहीं है। यह कोई दर्शनशास्त्र मात्र नहीं है। भक्तों को दर्शनशास्त्र में बहुत जिज्ञासा नहीं रही है। उनका सारा रस भाव में है, विचार में नहीं। लेकिन आज के सूत्र बड़े विचार के सूत्र भी हैं। जो भाव को नहीं समझ सकते और जो अभी विचार के जगत में जी रहे हैं, उनके लिए कहे गये सूत्र हैं। समझ में आ जाएंगे तो वे भी भाव भी यात्रा पर निकलेंगे।

'व्यात्क्रमात् आप्ययः तथा दृष्टम्।।

'विलोम रीति से लय हुआ करता है।' यह सूत्र बड़ा अपूर्व है। इसे खूब गहरे हृदय में बिठा लेना।

इस सूत्र का अर्थ समझो।

दो क्रम शास्त्रों में कहे गये हैं अनुलोम और विलोम। अनुलोम का अर्थ होता है—विस्तार। जैसे बीज से वृक्ष होता है। बीज तो बिलकुल छोटा है, जरा-सा है। फिर टूटता है, पल्लव फूटते हैं, अंकुर निकलते हैं, शाखाएं फैलती हैं, बड़ा वृक्ष खड़ा हो जाता है—सैकड़ों लोग उसकी छाया में बैठ सकें, हजारों पक्षी उस पर सांझ बसेरा करें, राहगीर अपनी बैलगाड़ियां खोल दें, विश्राम करें—बड़ा हो जाता है। कोई सोच भी नहीं सकता था कि इस छोटे-से बीज में इतना बड़ा वृक्ष छिपा होगा। इस प्रक्रिया का नाम अनुलोम, 'एवलूशन,' विकास, फैलाव, विस्तार।

दूसरा क्रम कहलाता है—विलोम। विलोम का अर्थ होता है—वृक्ष फिर बीज बन गया। फिर वृक्ष ने बीज पैदा कर दिया। संकोच, सिकुड़ाव। अगर अनुलोम को हम कहें 'एवलूशन'—फैलाव, विस्तार, तो विलोम को हना होगा—'इनवलूशन'; सिकुड़ाव, संक्षिप्त हो जाना।

और यही लयबद्धता है।

बीज वृक्ष बनता है, वृक्ष फिर बीज बन जाते हैं। परमात्मा संसार बनता है, संसार फिर परमात्मा बन जाता है। संसार परमात्मा का विस्तार है। परमात्मा सूक्ष्म बीज की भांति है और संसार उसका फैलाव है। ब्रह्म शब्द का अर्थ ही होता है—फैलता है जो, विस्तीर्ण होता है जो। ब्रह्म और ब्रह्मांड एक ही ऊर्जा की दो दशाएं हैं। ब्रह्म, बीज और ब्रह्मांड, वृक्ष।

दुनिया के किसी धर्म ने विलोम-क्रम का विचार नहीं किया। इसलिए दुनिया का कोई धर्म पूरा धर्म नहीं कहा जा सकता। अनुलोम-क्रम का विचार तो बहुत हुआ है; ईसाई, मुसलमान, यहूदी, सभी अनुलोम-क्रम की बात कहते हैं कि परमात्मा ने सृष्टि की; लेकिन प्रलय की बात नहीं, कि परमात्मा सृष्टि को मिटा भी देगा। सृजन हुआ तो अंत भी होगा। जन्म हुआ तो मृत्यु भी होगी। जो चीज फैली, वह कब तक फैलेगी?

अभी वैज्ञानिक कहते हैं कि जगत फैलता जा रहा है—'एक्सपैंडिंग यूनिवर्स'—फैलता ही जा रहा है। लेकिन कब तक फैलेगा? तुम गुब्बारे में हवा भरते हो, वह फैलता जाता है, फैलता जाता है, फैलता जाता है, लेकिन कब तक? एक सीमा आएगी, उसके आगे फैलाओगे, गुब्बारा फूट जाएगा—फिर सिकुड़ जाएगा। यह विस्तार फैलता जा रहा है, फैलता जा रहा है, इसकी एक सीमा है। उस सीमा के बाद सिकुड़ाव शुरू होता है। बच्चा जवान होता है, फिर जवानी के बाद बुढ़ापा आता है। फिर सिकुड़ाव होने लगा। बच्चा आया था किसी अज्ञात लोक से एक दिन, जन्मा था। फिर एक दिन मृत्यु घटेगी, फिर अज्ञात लोक में प्रवेश कर जाएगा। पैंतीस वर्ष की उम्र तक अनुलोम और पैंतीस वर्ष के बाद विलोम।

'जिन लोगों ने जीवन को सिर्फ एक ही आधार पर खड़ा किया है—अनुलोम—वे पागल हैं, वे विक्षिप्त हैं। यही आज के जगत की बड़ी से बड़ी भूल है, आधुनिक मनुष्य की बड़ी से बड़ी भूल है, उसका सारा जीवन एक ही क्रम पर बना है—अनुलोम-क्रम। फैलते जाओ—और धन, और पद, और प्रतिष्ठा, और मकान, और, और, और...। यह जो 'और' है, अनुलोम-क्रम है। यह संसार।

संन्यास कब?

संन्यास की धारणा ही खो गयी है। संन्यास की बात ही घबड़ाती है। संन्यास का हम विचार ही नहीं करते। तो बीज वृक्ष हो गया, फिर बीज कब होगा? संन्यास विलोम-क्रम है।

अनुलोम कहता है, यह भी मेरा हो जाए, वह भी मेरा हो जाए—सब मेरा हो जाए। विलोम कहता है, न यह मेरा है, न वह मेरा है—कुछ भी मेरा नहीं। सिकुड़ता है, शांत होता है।

अनुलोम के साथ अशांति स्वभाविक है। छीना-झपटी होगी, प्रतिस्पर्धा होगी, मारकाट होगी, युद्ध होगा। विलोम के साथ शांति होती चली जाती है। व्यक्ति अपने भीतर बैठने, अपने भीतर ठहरने लगा। बीच में रुकने लगा। संसार को मैं कहता हूं अनुलोम, संन्यास को कहता हूं विलोम। और जिसने दोनों साध लिये, कही पूरा मनुष्य है। जो कोई साधता रहा, वह पागल है। आर ध्यान रखना, अगर विस्तार नहीं आधा, तो संकोच कैसे साधोगे? अगर संसार नहीं साधा, तो संन्यास कैसे साधोगे?

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं—संसार से भागो मत। संसार को साधते रहो—फैलने दो—लेकिन जब तुम्हारी समझ में बात आ जाए कि अब फैलना काफी हो गया, अब फैलाने में कोई अर्थ न रहा, तब अपने भीतर से फैलने का भाव चले जाने देना।

रहना यहीं—जाना कहां है! जाओगे कहां? जहां जाओ वहीं संसार है। नये-नये ढंग से संसार फैलने लगता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम किस ढंग से फैलाओगे। जब तक और की आकांक्षा है, संसार फैलता रहेगा। पहाड़ पर बैठे जाओगे एकांत में जा कर, तो कहेगा—और लगे ध्यान, और लगे समाधि, और हो पुण्य, और हो त्याग, और हो उपवास। मन कहेगा कि और मिले स्वर्ग, और मिले आनंद। मगर 'और' तो जारी रहा! कुछ फर्क न पड़ा। जिस दिन 'और' से तुम ऊब जाते हो, उस दिन संन्यास! कहीं जाने की जरूरत नहीं। 'और' से परिपूर्ण रूप से ऊब जाने में संन्यास का जन्म हो जाता है। फिर तुम जहां हो वहीं रहते हो, सब चलता रहता है—संसार ही चलता रहेगा—लेकिन तुम्हारे भीतर संन्यास फलित हो जाता है।

अनुलोम का अर्थ है, होऊं, बहुत होऊं। शास्त्रों में कथाएं हैं कि परमात्मा अकेला था और उसने सोचा कि मैं अनेक होऊं। फिर जब परमात्मा सोचने लगता है, बहुत अनेक होगा, अब मैं फिर एक होऊं—तो विलोम।

'व्युक्रमात् आप्ययः तथा दृष्टम्।।'

यह सूत्र क्यों शांडिल्य ने दिया! 'विलोम रीति से लय हुआ करता है'। क्योंकि इसमें सारा संन्यास का सूत्र आ जाता है। तुम्हें ऊपर से इस सूत्र में कुछ दिखायी न पड़ेगा। सूत्र का अर्थ ही यह होता है कि उसमें बड़ी संक्षिप्त में बात कह दी गयी है। जो समझेंगी, वही समझेंगे। जो समझ सकते हैं, वही समझ सकते हैं। इसलिए सूत्रों की व्याख्या करनी जरूरी होती है, अन्यथा सूत्र अपने-आप में बिलकुल बेबूझ होते हैं।

जैसे, मैं होऊं, और होऊं, ज्यादा से ज्यादा होता जाऊं; धन मेरे पास बहुत हो राज्य मेरे पास बड़ा हो, प्रतिष्ठा मेरी फैले—यश, नाम, कीर्ति—यह संसार। फिर एक दिन यह दिखायी पड़ता है—यह सब तो व्यर्थ है। न कीर्ति में कुछ सार है—पानी के बबूले इकट्ठे कर रहा हूं—न नाम में कुछ अर्थ है—क्योंकि मैं बिना नाम का हूं, बिना नाम का आया था और बिना नाम के जाऊंगा। न धन में कोई अर्थ है—सब यहीं का यहीं पड़ रह जाएगा। साथ में कुछ भी न ले जा सकूंगा। मौत आएगी, तो मैं क्या साथ ले जा सकूंगा? जिसको तुम मौत में साथ ले जा सकोगे, बस संन्यासी उतना ही हो जाता है, उसी का नाम संन्यास है। मरने के पहले मर जाने का नाम संन्यास है।

मरते सभी हैं, धन्यभागी हैं वे जो मरने के पहले मर जाते हैं। जो समझ लेते हैं कि जो अपना नहीं है वही मौत छीन लेगी। जो अपना है उसे कोई भी छीन सकता। 'नैनं छिंदति शस्त्राणि,' मुझे शस्त्र नहीं छेद सकते,' नैनं दहति पावकः,' न मुझे आग जला सकती है। तो मैं यह कौन हूं जिसको आग नहीं जला सकती, और जिसे शस्त्र नहीं छेद सकते। यह अमृतधर्मा मैं कौन हूं? बस इतना ही मैं हूं। उससे ज्यादा की कोई जरूरत नहीं है।

तो संसार का अर्थ होता है—यह भी, यह भी, और संन्यास का अर्थ होता है—नेति-नेति। न यह, न वह। छोड़ता जाता है भाव और धीरे-धीरे वहीं आ जाता है जहां शाश्वत अमृत तुम्हारे भीतर बीज की तरह पड़ा है। जहां से सब विकास हुआ था। वापस अपने घर लौट आना हो जाता है।

यह दशा ही मोक्ष है। इस दशा का नाम ही निर्वाण है।

बच्चे का विकास देखने की कोशिश करो। जो-जो बच्चे में आता है, वही-वही एक दिन छोड़ना पड़ता है। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि अंतिम अवस्था में सिद्ध पुरुष छोटे बच्चे की भांति फिर से हो जाता है। छोटा बच्चा पैदा हुआ। अभी इसके पास कोई ज्ञान नहीं है, इसे कुछ पता नहीं है। परम अवस्था में फिर यही हो जाएगा। छोटे बच्चे जैसी सरलता हो जाएगी। छोटा बच्चा पैदा हुआ है, इसमें संदेह नहीं है, इसमें श्रद्धा ही श्रद्धा है, यह बात मान लेता हैं, मां जो कहती है वह मान लेता है, पिता जो कहता वह मान लेता है। इसकी श्रद्धा अछूती है, क्वांरी है। सभी संदेह का कांटा नहीं ऊगा, अभी श्रद्धा का ही फूल है। जल्दी ही संदेह का कांटा ऊगेगा, यह संदेह करना शुरू करेगा, इसके शक आना शुरू होगा कि पिता जो मेरे कहते हैं, ठीक कहते हैं! इसे संदेह आना शुरू होगा कि मेरी मां हर हालत में ठीक है! और धीरे-धीरे इसे अश्रद्धा पैदा होगी, क्योंकि यह पाएगा कि पिता में भी कमियां हैं, पिता में भी सीमाएं हैं, मां से भी भूलें होती हैं। इसकी श्रद्धा क्षीण होती जाएगी। यह संदेह से भर जाएगा। यह अनुलोम चल रहा है। संदेह आ गया। संदेह पीछे पीछे अहंकार आएगा। संदेह के साथ-साथ इनकार का भाव गया। सदेह के पीछे-पीछे अहंकार आएगा। संदेह के साथ-साथ इनकार का भाव आएगा, नास्तिकता आएगी—नहीं।

हर बच्चा अपने मां-बाप से एक दिन कहता है कि नहीं करूंगा ऐसा। तुमने देखा है, कभी छोटा बच्चा जिद्द कर के खड़ा हो जाता है कि नहीं करूंगा! नहीं जाऊंगा स्कूल! यह इतने जोर का नहीं कैसे उठता है इतने छोटे-से बच्चे में? और जब कोई छोटा बच्चा 'नहीं' कहता है, तो उसका बल देखो! जैसे सब दांव पर लगा देने को तैयार है। रहे कि न रहे, लेकिन 'नहीं' का मतलब 'नहीं' है। जब जिद्द पकड़ लेता है कि यह खिलौना लेकर रहूंगा, तो नाक में दम कर देता है। जब तक कि ले ही न ले। और सब बच्चे समझ जाते हैं कि कितनी सीमा है मां-बाप के सहने की। वे लगे ही रहते हैं, चोट ही किये चले जाते हैं। एक दफे बाप न कहता है, दो दफा, तीन दफा, फिर देखता है कि यह महंगा पड़ा जा रहा सौदा, अब यह काम करने ही न देगा, मजबूरी में हां कहना पड़ता है।

बच्चे समझ जाते हैं कि तुम्हारी एक सीमा है, उस सीमा तक खिंचना जरूरी है।

इस 'नहीं' के आधार से बच्चा अपनी अस्मिता को पैदा करता है, अहंकार को पैदा करता है। यह अनुलोम चल रहा है। अहंकार आएगा, फिर अहंकार कहेगा अब धन चाहिए, पद चाहिए, प्रतिष्ठा चाहिए, यश चाहिए—दौड़ शुरू हुई। जिस दिन तुम्हें यह दिखायी पड़ जाएगा यह सब व्यर्थ उस दिन विलोम का क्रम तुम्हें सीखना होगा। फिर उसी क्रम से छोड़ना होगा, एक-एक कर के।

इसलिए आस्तिकता का अर्थ होता है, जिसमें 'हां' कहने की क्षमता फिर से आ गयी। आस्तिक का अर्थ है, 'हां' का भाव। नास्तिक का अर्थ है, 'नहीं' का भाव, नकार का भाव। इसलिए सारी आस्तिक परंपराएं कहती हैं—अहंकार छोड़ना होगा, क्योंकि अहंकार अनुलोम का आधार है, फैलाव का आधार है। अहंकार छोड़ना होगा। अहंकार छोड़ते ही विलोम घट जाता है। संदेह छोड़ना होगा, संघर्ष छोड़ना होगा। समर्पण सीखना होगा। संसार की पूरी यात्रा जैसी तुमने की है, बचपन से लेकर जवानी तक, उससे ठीक विपरीत तुम्हें जाना होगा। एक-एक चीज छोड़ते जानी होगी। फिर उस जगह पहुंच जाना होगा जहां मां के पेट से जन्मे थे पहले दिन। जैसे सरल थे, निर्दोष थे; न कोई पक्ष था, न विपक्ष था; न हिंदू थे, न मुसलमान थे; न चीनी थे, न पाकिस्तानी थे, न काले थे, गोरे थे; न सुंदर थे न असुंदर थे; न स्त्री थे, न पुरुष थे; कोई भाव ही न था। एक निर्भाव दशा थी। और एक परम स्वीकार था। कोई इंकार न था। 'मैं' की कोई धारणा ही पैदा न हुई थी। मैं जन्मा नहीं था। दर्पण

कोरा था। कोई विचार पैदा ही नहीं हुआ था। अभी निर्विचार था। फिर से ऐसा ही हो जाएं तो विलोम। और विलोम ही मोक्ष का मार्ग है। इसलिए ये शब्द बड़े बहुमूल्य हैं, इनको याद रखना। अनुलोम यानी संसार, विलोम यानी संन्यास। कहीं जाना नहीं है, कुछ बाहर से रूपांतरित नहीं करना है, लेकिन भीतर से यह क्रांति घट जानी चाहिए।

शामे गम है करार किसको है
दर्द पर इख्तियार किसको है
मेरी किस्मत में ओ है वरना
चांदनी नागवार किसको है
दर्द ही जिंदगी का हासिल है
मौत का इंतजार किसको है
अपनी आंखों से प्यार करती हूं
तेरे जल्वे से प्यार किसको है
देखें 'शबनम' को गुल में चुन-चुनकर
देता गुलशन ये हार किसको है।

'अपनी आंखों से प्यार करती हूं'। तुमने खयाल किया? अहंकार न तो धन से प्यार करता हूं, न पद से प्यार करता है, अहंकार का प्यार तो अपने से है। लेकिन धन हो तो अहंकार की शोभा बढ़ती है। पद हो तो ऊंचाई बढ़ती है। अहंकार सौंदर्य से भी प्रेम नहीं करना, लेकिन अहंकारी एक सुंदर स्त्री को अपने साथ सजावट की तरह लेकर चलना चाहता है। अहंकार सब तरह से अपने अहंकार को भरने का आयोजन खोजता है।

अपनी आंखों से प्यार करती हूं
तेरे जल्वे से प्यार किसको है

और किसी चीज का रस नहीं है इस संसार में। एक ही बात का रस है कि मैं सिद्ध कर दूं कि विशिष्ट हूं। मेरी विशिष्टता प्रमाणित हो जाए। और मजा ऐसा है कि जितना तुम अपनी विशिष्टता प्रमाणित करने चलते हो, उतने ही छेद निकल आते हैं। उतनी ही विशिष्टता टूटने लगती है। दया योग्य स्थिति हो जाती उनकी, जो अपनी विशिष्टता सिद्ध करने चलते हैं। उसी सिद्ध करने से सब असिद्ध हो जाता है। जो लड़ते हैं यहां, हार जाते हैं। जो यहां साम्राज्य बनाते हैं, भिखारी की तरह मरते हैं। सिकंदरों से पूछो। जीवन भर की दौड़-धूप, आपाधापी हाथ लगता क्या है? सब गंवा कर जाते हैं।

जो अनुलोम को पकड़ कर लता रहता है, वह गंवा कर जाएगा। उसने जिंदगी का राज नहीं समझा। उसने जिंदगी की पूरी लयबद्धता नहीं समझी। वह एकांगी है, अधूरा है। जिसने विलोम भी समझ लिया, उसका जीवन पूर्ण हो गया। अनुलोम आधा जीवन रहे और आधा जीवन विलोम हो जाए। मरते समय तुम उसी जगह पहुंच जाने चाहिए जहां से तुम आए थे। उसी जगह, जहां तुम पैदा हुए थे। ठीक उसी क्षण में—जन्म का क्षण जैसा पवित्र क्वांरा था, वैसा ही मृत्यु का क्षण भी क्वांरा और पवित्र हो जाए वर्तुल पूरा हो और जिसने इस वर्तुल को पूरा कर लिया, वही पूर्णपुरुष है।

और ऐसा नहीं है कि तुम्हें याद नहीं आती। ऐसा भी नहीं है कि तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता कि जो तुम कर रहे हो वह व्यर्थ है। मगर आदतें! भीड़-भाड़! सारे लोग वही कर रहे हैं। इसलिए ऐसा भ्रम बना रहता है कि ठीक ही होगा, जब इतने लोग कर रहे हैं तो ठीक ही होगा। एक भीड़ का सम्मोहन है जो तुम्हें चलाए जाता है। तुम्हें भी कई दफे दिखायी पड़ गया है कि कब तक धन इकट्ठा करता रहूंगा! सार क्या है? लेकिन और सब लोग इकट्ठे कर रहे हैं, तुम न इकट्ठे करोगे इससे सब लोग तो रुक न जाएंगे, पड़ोसी तो इकट्ठा करते ही रहेंगे; तुम नयी कार न खरीदोगे, पड़ोसी तो खरीदते ही रहेंगे; तुम नया मकान न बनाओगे, पड़ोसी तो बनाते ही रहेंगे; फिर

उसमें दीनता मालूम होगी कि मैं पिछड़ गया, तो दौड़े जाओ! जब सभी दौड़ जाओ! जो सब कर रहे हैं वही किये चले जाओ। आदमी नकली की तरह जीता है। आदमी अनुकरण करता रहता है। जिस दिन भी तुम समझोगे कि अनुकरण करना व्यर्थ है, मैं यहां किसी और का जीवन जीने को पैदा नहीं हुआ हूं, अपना जीवन जीने को पैदा हुआ हूं, उसी दिन क्रांति घट जाती है। उसी क्षण को मैं जीवन का सबसे बहुमूल्य क्षण कहता हूं। क्योंकि उसी दिन एक सीमा खिंच जाती है—उसके पहले का जीवन अनुलोम, उसके बाद का जीवन विलोम हो जाता है।

इक वक्त फिर आता है कि मर जाती है उम्मीद

फुर्सत नहीं मिलती कि सिएं चाके-गरीबां

होती नहीं मानूस किसी शै से तबीयत

खातिर भी परेशान, तखैय्युल भी परीशां

बढ़ जाती है अफकारे-मईशत की कशायश

दोजख-सी नजर आती है यह जन्नते-दौरां

छुट जाता है जौके-अमनो-जोशे-तमन्ना

बढ़ जाती है मायूसिए-दिल ताजदे-इमकां

एक ऐसी घड़ी आती है जब सब उम्मीदें टूट जाती हैं। सब के जीवन में यह घड़ी आती है।

इक वक्त फिर आता है कि मर जाती है उम्मीद

आशा टूट जाती है। मगर तुम किसी तरह अपनी आशा को फिर खींचतान कर खड़ा कर लेते हो—कोड़े मारकर अपनी आशा को फिर खड़ा कर लेते हो। फिर दौड़ने लगते हो। तुमने लोगों को देखा, कोई घोड़ागाड़ी चला रहा है, घोड़ा ठिठक गया है और वह कोड़े मार रहा है! और जितना घोड़ा ठिठकता है वह उतने ही कोड़े मारता है। और किसी तरह घोड़े को घसीट ले जाता है। यही तुम जिंदगी में कर रहे हो। बहुत बार तुम्हारी आशा का घोड़ा ठिठका है, बहुत बार तुम्हारी उम्मीद मर गयी है, बहुत बार तुम्हें लगा है कि कि सब व्यर्थ है, मगर फिर तुमने कोड़े फटकारे हैं। तुमने फटकार, तुम्हारे संगी-साथियों ने फटकारे; तुम अगर पति हो तो तुम्हारी पत्नी ने धक्का दिया, तुम्हारे बेटो न धक्के दिये?

यहां रोज ऐसी घटना घट जाती है। कोई संन्यासी हो जाता है, उसकी पत्नी रोती आ जाती है कि नहीं-नहीं, अभी नहीं! कोई बेटा संन्यासी हो जाता है, बाप घबड़ाकर आ जाता है, कि यह क्या हो गया? कोई बाप संन्यासी हो जाता है, बेटा घबड़ाकर आ जाता है, कि हमारे पिता को आपने क्या कर दिया? सम्मोहित कर लिया? अगर खुद तुम बचो, तुम्हारे संगी-साथी, परिवार, प्रियजन, वे कोड़े मारते हैं, वे आरे चुभाते हैं। वे कहते हैं—चलते रहो, चलते रहो; अभी सारी दुनिया चल रही है, तुम क्यों रुक गये? वे कहते हैं—चलते रहो, जब तक कि मौत ही तुम्हें न गिरा दे। मगर तब मिट्टी पड़ी रह जाएगी तुम्हारे मुंह में, कब्र में दबें रह जाओगे, और जीवन अकारथ गया। पानी पर लकीरें खींचते गया।

इक वक्त फिर आता है कि मर जाती है उम्मीद

फुर्सत नहीं मिलती कि सिएं चाके-गरीबां

ऐसा वक्त आ जाता है, सब की जिंदगी में आ जाता है, जब होश जगता है। और ऐसा बार-बार होता है, लेकिन तुम उस होश को झुठला लेते हो। तुम अपने मन को और कहीं उलझा लेते हो। तुम हजार बहाने खोज लेते हो। तुम कहीं न कहीं अपने मन को लगा देते हो। कि चलो आज सिनेमा देख आएं। कि चलो, आज शराब पी लें। कि चलो नाच होता है कहीं, नाच देख आएं। मन जरा बेचैन है, उम्मीद जरा टूटी है, आशा जरा उखड़ी-उखड़ी है, फिर से पैर जमा लें।

फिर तुम्हारा मन कहता है कि अभी तक नहीं हुआ, माना, लेकिन कल हो सकता है। अभी रुको मत, अभी बढ़े चले जाओ। कभी कहीं होता। कभी नहीं हुआ है। इस संसार में जिसने सिर्फ अनुलोम जाना, उसने शांति

नहीं जानी, आनंद नहीं जाना, उपलब्धि नहीं जानी, संतृष्टि नहीं जानी, समाधि नहीं जानी। और समाधि नहीं तो समाधान कहां? जिसने विलोम भी सीख लिया, उसीने समाधि जानी, समाधान जाना। और जितनी जल्दी विलोम की कला आ जाए, तुम प्रमाण दोगे कि तुम बुद्धिमान हो।

बुद्ध अटठाईस वर्ष के थे तब अनुलोम छोड़ दिया, विलोम में लग गये। अटट्ठाईस वर्ष की उम्र कोई बड़ी उम्र नहीं होती। बड़े बुद्धिमान रहे होंगे। क्योंकि यहां तो अठत्तर-अठत्तर साल हो जाते हैं और विलोम नहीं आता। शंकराचार्य अदभुत बुद्धि के धनी रहे होंगे। नौ साल की उम्र में विलोम आ गया! संन्यास लेना चाहा। मां रोने लगी। स्वाभाविक है, नौ साल का बच्चा संन्यास लेना चाहे! यह कोई बता हुई! सुना है कभी! नौ साल का बच्चा और संन्यास लेना चाहे! अपूर्व प्रतिभा रही होगी। नब्बे साल में लोग इतना अनुभव नहीं कर पाते जितना नौ साल में अनुभव कर लिया। इसको प्रतिभा कहते हैं। जड़ता नहीं रही होगी। देख ली बात! देखने की क्षमता हो तो नौ साल में भी देखी जा सकती है। मोजॅर्ट ने तीन साल की उम्र में ऐसा संगीत बजाया जो लोग नब्बे साल की उम्र में नहीं बजा सकते। प्रतिभा।

शंकर की कहानी बड़ी प्यारी है। लेकिन मां तो रोने लगी, उसनने कहा कि यह नहीं हो सकता। कहानी ऐसी है शंकर नदी पर स्नान करने गये और एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया। और मां किनारे पर खड़ी चिल्ला रही है, कि बचाओ मेरे लड़के को! लेकिन कौन बचाए? शंकर ने कहा अब एक ही उपाय है, मां तू कह दे कि अगर मैं बच जाऊंगा तो संन्यास। तो मैं परमात्मा से प्रार्थना करूं, तो बचने में कुछ सार है। अगर संन्यास होना ही नहीं है, तो मौत बराबर। जिंदगी में क्या रखा है! फिर मौत में हर्ज क्या है? जब जिंदगी में कुछ है ही नहीं तो मौत में कुछ खो नहीं रहा है अगर तू कह दे कि संन्यास लेने की आज्ञा देती है, अगर बच गया तो संन्यास लेने देगी, तो मैं प्रार्थना करूं भगवान से। अब ऐसी घड़ी में कौन आज्ञा नहीं देगा? कम से कम बचेगा तो, संन्यासी ही सही! जिंदा तो रहेगा! मौत और संन्यास, ऐसा विकल्प।

और ध्यान रखना, यह कहानी चाहे सच हो चाहे न हो, मगर यही विकल्प सब के सामने है—मौत या संन्यास। या तो तुम सिर्फ करोगे, या तुम संन्यासी होओगे। बस दो ही विकल्प हैं। और कहानी मधुर है, प्रीतिकर है, कि शंकर ने प्रार्थना की और मगर ने पैर छोड़ दिया। फिर तो मजबूरी थी! संन्यास की आज्ञा देनी पड़ी।

मगर तुम्हारे भी पैर पकड़े हुए। जरा गौर से अपने को देखना। मगरें बहुत तरह की हैं, कोई नदियों में ही नहीं पायी जाती। सच तो यह है कि नदियों में तो कभी-कभी पायी जाती हैं, सड़कों पर पायी जाती हैं, घरों में पायी जाती है; दुकानों में पायी जाती हैं, बाजारों में पायी जाती हैं; तरह-तरह की मगरें हैं। किसी के पैर को राजनीति की मगर ने पकड़ा है, किसी के पैरा को धन की मगर ने पकड़ा हैं, किसी के पैर को किसी और मगर ने पकड़ा हैं, मगर सब मगरें हैं। और तुम्हारा पैर छूट सकता है एक ही प्रार्थना तुम्हारे जीवन में उठ आए अगर—विलोम की प्रक्रिया। नहीं तो यह मगर तुम्हें चबा जाएगी। यह धीरे-धीरे चबा ही रही है। अंश-अंश तुम मरते जा रहे हो रोज। जब से पैदा हुई हो मरने के सिवाय और किया क्या है? रोज-रोज मर रहे हो, मरते जा रहे हो। एक दिन यह प्रक्रिया पूरी हो जाएगी। यह मगर तुम्हें पूरा चबा जाएगी। यह समय की मगर है।

विलोम की प्रक्रिया को समझ लो। विस्तार एक सीमा तक ठीक। समझने के लिए ठीक, अनुभव के लिए ठीक। मगर फिर लौटना है, फिर अपने घर जाना है।

'तदैक्यं नानात्वैकत्वम् उपाधियोगहाना् आदित्यवत्।।

वह एक ही है; क्योंकि उपाधि के नाश होने पर सूर्य की भांति नाना रूप एक हो जाते हैं।

जब तक अनुलोम चलता है, संसार चलता है,। तब तक अनेक दिखायी पड़ता है। जैसे ही विलोम की प्रक्रिया शुरू हुई कि एक दिखायी पड़ना शुरू हो जाता है। एक ही है। वस्तुतः एक ही है तरंगें कितनी ही अनेक दिखायी पड़ रही हों, सागर एक है, और यहां जीव कितने ही दिखायी पड़ रहे हों, जीवन एक है। यहां रूप

कितने ही दिखायी पड़ रहे हों, सब रूप के भीतर ऊर्जा एक है। मगर जब तक तुम अपने 'मैं से भरे हो और 'मैं' के फैलाव में उत्सुक हो, जब तक यह 'मैं' का विस्तारवाद चल रहा है, तब तक तुम्हें इस एक का अनुभव न हो पाएगा। और उस एक में ही विश्राम है। और उस एक में ही आनंद है।

अनेक में दुख है, पीड़ा है, संताप। क्योंकि अनेक में झूठ है, अनेक में मिथ्या है। तुम अपने भवन को रेत पर खड़ा कर रहे हो। यह गिरेगा। अनेक की रेत पर खड़ा कर रहे हो। जिस तरह तुमने सोचा है, जब भी तुमने सोचा है मैं अलग हूं—और संसार में अलग सोचना ही पड़ेगा। यहां प्रतिस्पर्धा नहीं हो सकेगी नहीं तो। मैं अलग हूं, पृथक हूं, मुझे सिद्ध करना है, मुझे लड़ना है, सब यहां बाकी मेरे दुश्मन हैं और प्रतियोगी हैं।

संसार का अर्थ क्या होता है? मैं भर मेरे लिए हूं और सब मेरे दुश्मन हैं। संन्यास का क्या अर्थ होता है? मैं हूं ही नहीं; और मेरे मित्र हैं। जब मैं हूं ही नहीं तो दुश्मन कैसा! मैं से दुश्मन पैदा होता है। मैं दुश्मन पैदा करता है। मैं सूत्र है सारी शत्रुता का। जब मैं ही गया, तो मैत्री का उदय हो जाता है। फिर कोई दूसरा नहीं, पराया नहीं, अन्य नहीं, लड़ना किससे, जूझना किससे? फिर दुख कैसा, पीड़ा कैसी? हार कैसी, जीत कैसी? सफलता कैसी, असफलता कैसी? सब गया। सब द्वंद्व गये। एक बचा। वही सच्चिदानंद है।

अनेक अर्थात संसार, माया, श्रम, उपाधि। जैसे घड़े में जल भर लिया। कभी नदी गये, या कुएं के घाट पर गये! मिटी का एक घड़ा ले गये और नदी में भरा। जब तुम नदी में घड़े को भर लिये—अभी घड़ा नदी में ही—पानी भर गया, लेकिन घड़े की पतली-सी मिट्टी की दीवाल ने नदी के जल से घड़े के जल को तोड़ दिया। क्षण भर पहले तक नदी का जल और घड़े का जल एक था। अब एक नहीं है। मिट्टी की दीवाल बीच में आ गयी। इस दीवाल का नाम उपाधि।

मगर लोग उपाधियां बड़ी उत्सुकता से खोजते हैं। लोगों की जिंदगी भर उपाधि की तलाश चलती है। धन एक उपाधि है, एक उपाधि है, प्रतिष्ठा एक उपाधि है। नाम, यश, कीर्ति उपाधियां हैं। इन सबसे तुम्हारा घड़ा मोटा होता जाता है। मजबूत होता जाता है। मिट्ठी का ही नहीं, लोहे का होता जाता है। और वह जो बाहर का जल है, जिसके तुम एक अंग हो, उससे तुम टूटते चले जाते हो। घड़े को फोड़ दो, फिर भीतर का जल बाहर का जल एक हो गया। तो अनेक का अर्थ, संसार, समाधि, घड़े में जल। एक का अर्थ, ब्रह्म, मोक्ष, विश्राम, निरुपाधि। घड़े फट गये, जल से जल जा मिला। बीच में कोई बाधा, कोई सीमा न रही।

सीमाओं में रस लेना बंद करो! हम बड़ी सीमाओं में रस लेते हैं। हिंदू अलग, मुसलमान अलग—सीमा बना ली। फिर हिंदू को भी चैन नहीं है इतने से। फिर ब्राह्मण अलग, क्षत्रिय अलग, वैश्य अलग, शूद्र अलग—और सीमाएं बना लीं। उतने से भी हल नहीं होता! फिर ब्राह्मण में भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण अलग, और चितपावन, और न-मालूम क्या-क्या! उसमें भी सीमा बना ली। सीमा पर सीमाएं बनाते चले जाते हो! उपाधि पर उपाधियां खड़ी करते चले जाते हो! फिर अगर अकेले हर जाते हो और सारे अस्तित्व से टूट जाते हो और उखड़े-उखड़े अनुभव करते हो और जड़ें नहीं मिलतीं और अर्थ खो जाता है और जीवन में कोई संगीत नहीं झरता है, तो कुछ आश्चर्य है! यह तुम्हारे ही श्रम का फल है! सीमाएं तोड़ो!

जो अपने को कहता है, मैं ब्राह्मण हूं, वह तो ब्राह्मण हो ही नहीं सकता। ब्राह्मण का अर्थ होता है, जिससे ब्राह्म को जाना, असीम को जाना। जिसने सारी सीमा छोड़ी। जो कहता है, मैं हिंदू हूं, उसे धर्म का कुछ पता ही नहीं। क्योंकि वह मुसलमान से, ईसाई से, जैन से, बौद्ध से अपने को अलग कर रहा है। धार्मिक व्यक्ति का न कोई देश होता है, न कोई जाति होती है, न कोई धर्म होता है। धार्मिक व्यक्ति की सीमा ही नहीं होती। धार्मिक व्यक्ति ने घड़ा तोड़ दिया। भीतर का जल बाहर से मिल गया। घटाकाश आकाश से मिल गया। उस एक में विश्राम है। उस निरुपाधि की तलाश संन्यास है। वही विलोम की प्रक्रिया है। वहीं से हम आए हैं, वहीं हमें वापस लौट जाना है। मूलस्त्रोत में वापस लौट जाना ही लक्ष्य है। लक्ष्य स्त्रोत से भिन्न नहीं है।

मिट्टी का तुमने एक घड़ा बना लिया, फिर घड़ा टूटेगा तो क्या होगा? वापिस मिट्टी में गिर जाएगा और मिल जाएगा। हर चीज अपने स्रोत में वापस लौट जाती है। हम भी अपने स्रोत में वापस लौटन लगे, तो बस जीवन में धुन अपनी शुरू हो जाती है।

मुहब्बत के तराने गा रही हूं
फजा में आग-सी भड़का रही हूं
यह मैं, यह हादसाते-जिंदगानी
किसी तूफां में बहती जा रही हूं
किसी की याद में नग्में लुटाकर
दिले-कोनों मकाम धड़का रही हूं
खिरद मुझे जितना समझा रही है
मैं उतनी और खोई जा रही हूं
मसाइब घूरते हैं हर तरफ से
मगर मैं कहकहे बरसा रही हूं
न मंजिलें है न कोई राहे-मंजिल
मगर मैं एक धुन में जा रही हूं

एक बार तुम्हें यह खयाल में आ जाए कि मूलस्रोत ही अंतिम लक्ष्य है प्रथम ही अंतिम है, बस उसी दिन से जीवन में एक धुन आ जाएगी। फिर जीवन में एक संगीत सुना जाएगा। भक्तों में में वही मस्ती दिखायी पड़ती है। अगर भक्त में मस्ती न हो, तो भक्त ही नहीं। अगर धुन पैदा हो रही हो, अगर उसके पास जाकर तुम्हें संगीत का अनुभव न हो, अगर उसके पास जाकर तुम भी किसी लय में न बंध जाओ और तुम्हारे भीतर भी नृत्य शुरू न हो जाए, तो भक्त भक्त ही नहीं है। जिसके पास जाकर तुम्हें भी पैरों में घूंघर बांध लेने की आकांक्षा जगने लगे, जिसके पास बैठकर तुम्हारे भीतर भी छिपा हुआ गीत प्रकट होने के लिए आतुर हो उठे, जिसके पास बैठकर, जिसकी हवा में तुम्हारे फूल भी जो कभी नहीं खिले थे, खिलने लगें, तुम्हारी कलियां भी फूल बनने के लिए अभीप्सु हो जाएं, वही भक्त है।

वह एक ही है; क्योंकि उपाधि के नाश होने पर सूर्य की भांति नानारूप एक हो जाते हैं। उसके प्रतिबिंब अलग-अलग हैं, सूर्य की भांति, आदित्यवत। जैसे सूरज निकला, आज सूरज निकला, कितनी पृथ्वी पर नदिया हैं, सबमें उसकी झलक बनेगी; और कितने तालाब हैं, सबमें उसकी झलक बनेगी; और कितने सागर हैं, सब में उसकी झलक बनेगी; और छोटे-छोटे डबरे जो रास्तों के किनारे भर गये होंगे वर्षा के जल से, उनमें उसकी झलक बनेगी; और मटको में, मटकियां में सब, में उसकी झलक बनेगी—और सूरज एक है, और झलक बहुत बनेंगी।

ऐसे ही सत्य एक है, परमात्मा एक है, झलकें भर भिन्न हैं। झलकों में सत्य कहां! झलकों से इशारा ले लो असली का और असली की तरफ चल पड़ो।

मैंने सुना है कि एक कुत्ता एक राजमहल में प्रवेश कर गया। भूल-चूक से रात वहीं बंद रह गया। सुबह मरा हुआ पाया। क्योंकि राजमहल के जिस कमरे में बंद रह गया था, वह दर्पणों से बना था; उस कमरे में दर्पण ही दर्पण लगे थे। सारी दीवालें दर्पण से ढकी थी; जब उस कुत्ते ने आंख खोली और चारों तरफ देखा तो वह घबड़ा गया। इतने कुत्ते उसने अपने जीव में कभी देख नहीं थे। स्वभावतः घबड़ाहट में भौंका। कुत्ता था और करता भी क्या? सारे कुत्ते भौंके! फिर तो उसने होश खो दिया। फिर तो वह इस कुत्ते की तरफ झपटे कि सारे कुत्ते उसकी तरफ झपटें। वह रात भर भौंकता रहा और दर्पणों से लड़ता रहा। सुबह लहूलुहान, दर्पणों पर भी उसके खून के चिंह थे और उसकी लाश पड़ी थी कमरे में।

तुम किससे लड़ रहे हो? और यहां दुश्मन है? तुम किससे भौंक रहे हो? किसके लिए भौंक रहे हो? यहां दर्पण-दर्पण हैं। एक ही बहुत रूपों में झलक रहा है। आर वह एक तुम्हारे भीतर विराज मान है। तुम्हारे बाहर भी, तुम्हारे भीतर भी। जरा उपाधि से मुक्त हो जाओ और उसे देखो। और उपाधि से मुक्त होने मग क्या अड़चन है! क्योंकि उपाधि सिर्फ थोपी हुई है। जैसे तुमने वस्त्र पहन रखे हैं, फिर भी भीतर तो तुम नंगे ही हो न! कितने ही वस्त्र पहन लो, नंगापन मिट नहीं जाता वस्त्रों से, सिर्फ अंदर छिप जाता है। ऐसे ही उपाधियां ऊपर-ऊपर होती हैं, भीतर तो तुम नग्न ही हो। भीतर तो तुम दिगंबर ही हो। उपाधियों के पार तुम अभी भी निरुपाधि हो। मनुष्य के भीतर भी अभी तुम परमात्मा हो। स्त्री के भीतर, पुरुष के भीतर, हिंदू-मुसलमान के भीतर तुम वही एक हो। आदित्यवत।

जैसे सूर्य अलग-अगल जल सरोवरों में झलकता है, ऐसे ही वह एक अलग-अलग उपाधियों के दर्पण में झलका है। उस एक कोई पहचानो। उस एक के पहचानते ही युद्ध मिट जाता है, हिंसा मिट जाती है, वैमनस्य मिट जाता है, वैर, क्रोध, सब मिट जाता है। उस एक ही पहचान के साथ फिर आनंद के सिवाय और बचता क्या है! फिर रास ही रास है। फिर रंग ही रंग है। रस ही रस। 'रसौ वै सः'। उसका रस तुम्हें तभी अनुभव होगा। और जब तक उसका रस अनुभव न हो, तब तक सारे अनुभव व्यर्थ हैं।

'पृथक इति चेत् न परेण असम्बन्धात् प्रकाशानाम्।।

पृथक भी नहीं कह सकते, क्योंकि वैसा कहने में प्रकाश की भांति ईश्वर से असंबंध होगा।' उस परमात्मा को तुमसे पृथक तो कहा ही नहीं जा सकता। पृथक होते ही हमारा संबंध हो जाएगा। फिर तो जुड़ ने का कोई उपाय न रह जाएगा। तुम अभी भी जुड़े हुए हो, इसीलिए जुड़ सकते हो। सेतु टूटा नहीं है सिर्फ भूल गया है, विस्मरण हुआ है। उस परमात्मा को खोजने कहीं जाना नहीं है, सिर्फ स्मरण करना है। प्रत्यभिज्ञा करनी है। याद करनी है। याद ही से हो जाएगा। क्योंकि हम उससे टूट नहीं हैं। उससे कभी नहीं टूटे हैं। जैसे वृक्ष का पत्ता वृक्ष से नहीं टूटा है, अहंकार से भर गया है और वृक्ष को भूल गया है, मगर अभी भी जुड़ा है वृक्ष से। अभी भी रसधार वृक्ष से ही बह रही है। तुम कैसे जी सकोगे परमात्मा के बिना? उसके बिना कहां श्वास होगी, कहां हृदय की धड़कन होगी? उसके बिना कैसा जीवन! वही जीवन है।

टूटे तो तुम नहीं हो। असंबंधित नहीं हुए हो। फिर क्या हो गया है? भूल गये हो, विस्मरण हुआ है। इसलिए सारे भक्तों ने स्मरण को इतना जोर दिया है। स्मरण का अर्थ होता है, याद करो; याद करो फिर, कौन तुम्हारे भीतर बैठा है? याद करो फिर, खोजो अपने भीतर, किससे तुम जुड़े हो? कौन तुम्हें जीवन दे रहा है? कहां से तुम्हारी चेतना प्रवाहित हो रही है? अगर कुआं में खोज लग जाए कि जलस्रोत कहां से आ रहे हैं, तो सागर तक पहुंच जाएगा। अगर तुम भी अपनी चेतना के कुएं में थोड़े उतरो, तो तुम सागर को पा लोगे—झरने अब भी जुड़े हैं; वहीं से धार बह रही है। पृथक भी नहीं कह सकते, क्योंकि वैसा कहने में प्रकाश की भांति ईश्वर से असंबंध होगा।

तुमने सुना है? झेन गुरुओं के वचन तुम्हें याद हैं? झेन गुरु कहते हैं, संसार और निर्वाण एक। चोट करती है बात! थोड़ी घबड़ाती भी है। कि संसार और निर्वाण एक! झेन गुरु कहते हैं, ज्ञान और अज्ञान एक। चोट करती है बात! घबड़ाती है। कि हमने सदा सोचा, ज्ञान अलग, अज्ञान अलग—विपरीत; संसार अलग, निर्वाण अलग—विपरीत; ये झेन गुरु क्या कह रहे हैं? ये ठीक कह रहे हैं। यह परम स्थिति से देखी गयी बात है। संसार निर्वाण से अलग हो कैसे सकता है! यहां अलग कुछ भी नहीं हो सकता। यहां सब इकट्ठा है, सब जुड़ा है।

एक झेन गुरु से एक साधक ने आकर पूछा कि युद्ध यानी क्या? बुद्ध यानी कौन? बुद्धत्व का क्या अर्थ है? सामने ही एक वृक्ष की तरफ सदगुरु ने इशारा किया और कहा, यह वृक्ष देखते हो? यही बुद्ध। साधक तो चौंका

होगा। वृक्ष और बुद्ध। मगर झेन गुरु इशारा कर रहा है, संसार और निर्वाण एक। पदार्थ और परमात्मा एक। सोया हुआ और जागा हुआ एक।

फर्क क्या है सोए हुए और जागे हुए में?

जरा-से होश का फर्क है और तो कुछ फर्क नहीं है। पतंजलि ने योग-सूत्रों में कहा है—समाधि और सुषुप्ति में कोई ज्यादा फर्क नहीं है, जरा-सा फर्क है। सुषुप्ति में तुम सोए होते हो, समाधि में तुम जागे होते हो, बस इतना ही फर्क है। अन्यथा विश्राम एक जैसा, विराम एक जैसा आह्लाद एक जैसा, आनंद एक जैसा।

'न विकारिणः तु कारणविकारात्।।

विकार भी नहीं कह सकते; क्योंकि ऐसा कहने से मूल कारण में विकार होने का डर पैदा हो जाएगा।।'

संसार को परमात्मा से भिन्न नहीं कह सकते हैं, यह शांडिल्य बड़े जोर से कह रहे हैं। यह उदघोषणा बड़ी क्रांतिकारी है। विकार भी नहीं कह सकते हैं। कुछ दार्शनिक ने यह समझाने की कोशिश की है कि भिन्न तो नहीं, लेकिन विकार है। कुछ बात गड़बड़ हो गयी है। जैसे दूध का विकार दही। भिन्न तो नहीं है, दूध का ही रूप है, लेकिन विकृत हो गया। लेकिन शांडिल्य कहते हैं, विकार भी नहीं कह सकते, क्योंकि उस निर्विकार परमात्मा में विकार कैसे पैदा होगा! उस परम में विकार की कल्पना ही असंभव है। संसार परमात्मा ही है। विकार नहीं है, भिन्न नहीं है। तुम भी उसके विकार नहीं हो, तुम भी उससे भिन्न नहीं हो।

फिर क्या भेद है दोनों में?

इतना ही भेद है कि तुम सो गये हो और सपने देख रहे हो। यहां हम पांच सौ लोग हैं, हम सब सो जाएं, हम सब अलग-अलग सपने देखेंगे। जागकर तो जो हम देखते हैं वह एक दुनिया है। तुम भी इन्हीं वृक्षों को देख रहे हो। जिनको मैं देख रहा हूं। और तुम भी इन्हीं पक्षियों को सुन रहे हो जिनको मैं सुन रहा हूं। लेकिन अगर हम सब सो जाएं, तो यहां पांच सौ जगत होंगे, एक जगत नहीं रहेगा। फिर तुम्हारे सपने के वृक्ष तुम्हारे हों और मेरे सपने के वृक्ष मेरे होंगे। तुम्हारे सपनों के वृक्षों को मैं न देख सकूंगा, तुम मेरे सपनों के वृक्षों को न देख सकोगे। तुम्हें मेरी याद न रहेगी, मुझे तुम्हारी याद रहेगी। यहां पांच सौ जगत पैदा हो जाएंगे अगर यह पांच सौ लोग सो जाएं। जागे थे तो एक था, सो गये तो पांच सौ हो गये। और सब अपने सपने देखेंगे; कोई साधु हो जाएगा, कोई चोर हो जाएगा, कोई हत्यारा हो जाएगा, कोई दुकानदार हो जाएगा, कोई कुछ हो जाएगा, सबके सपने अपने अपने होंगे। अपनी मौज होगी। और फिर जब सुबह हम जागेंगे, तो हम सब सपनों पर हंसेंगे। क्या हम यह कहेंगे कि तुम चारे हो गये थे सपने में, साधु हो गया था, तो हम और तुम भिन्न हो गये थे? कि तुम सच में ही चोर हो गये थे, मैं सच में ही साधु हो गया था।

न तो कोई साधु हुआ था, न कोई चोर हुआ था। कल्पनाएं जगी थीं। कल्पनाओं का खेल हुआ था। सपने पैदा हुए थे। सबने अपना-अपना नाटक रचा था। रचनेवाले भी तुम्हीं थे, नाटक में अभिनय करनेवाले भी तुम्हीं थे, निर्देशक भी तुम्हीं थे—और दर्शक भी तुम्हीं थे। बिलकुल नाटक पूरा का पूरा तुम्हारा था, सभी तुम्हीं थे। मंच पर भी तुम्हीं और बैठे हुए दर्शक भी तुम्हीं। देखनेवाले भी तुम्हीं और दृश्य भी तुम्हीं। कहानी तुमने लिखी थी, गीत भी तुमने बनाए थे, संगीत भी तुमने डाला था, सब तुम्हारा ही था। सपने में तुम बड़े स्त्रष्टा हो गये थे! बड़ी कल्पना को विस्तार मिल गया था।

यह जगत परमात्मा से भिन्न नहीं है, सिर्फ हम सोए हैं। हम सोए हैं तो हमने अपने-अपने जगत निर्माण कर लिये हैं। अपना-अपना सपना देख रहे हैं।

सपने निजी होते हैं। सत्य निजी होता। सत्य सार्वभौम होता है, 'युनिवर्सल' होता है। सत्य मेरा अलग और तुम्हारा अलग, ऐसा नहीं होता। सत्य में तो मैं और तुम भी अलग नहीं होते, सत्य कैसे अलग होगा? सत्य बस एक होता है। जहां अनेकता है, वहां असत्य है। जहां भेद है, वहां असत्य है।

करें फिर क्या? शांडिल्य कहना क्या चाहते हैं?

इतनी ही बात याद दिलाना चाहते हैं—जागो! कैसे जागोगे? स्मरण करो, पुकारो; रोओ, गाओ, गुनगुनाओ, भजन करो! वही भजन जिस दिन प्रगाढ़ हो जाएगा, उसकी चोट से ही तुम जग जाओगे। वह प्रार्थना जिस दिन प्राणों की चीख की तरह उठेगी, उसी चीख से तुम जग जाओगे। आंसू अगर गहन होते गये, गहन होते गये, तो आंसू ही तुम्हारी आंखों से सपनों को भी बहा ले जाएंगे। तुम स्वच्छ हो जाओगे।

लेकिन लोग सपनों में खूब खोए हैं। अपने-अपने मधुर सपने देख रहे हैं।

हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूं।
जब घन अंधियाला तारों से ढल धरती पर
आ जाता है,
जब दर-परदा-दीवारों पर भी नींद-नशा
छा जाता है,
तब यंत्र-सदृश अपने बिस्तर से हो बाहर
चुपके-चुपके
हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूं।
समतल भूतल, बत्ती की पांतों के पहरे
में सुप्त नगर, अंबर को दर्पण दिखलाते सरवर, सागर,
मधुबन, बंजर,
हिम-तरु-मंडित, नंगी पर्वत-माला, मरुथल
जंगल, दलदल—
सब की दुर्गमता के ऊपर मुसकाता हूं।
हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूं।
पर कभी-कभी क्या निद्रा को हो जाता है
रूठा करती,
तुमको पाने के मेरे सारे यत्नों को
झूठा करती,
तब भाव-जलद पर इंद्रधनुष-रूपक घर कर
छंदों से कस
तुम तक गीतों के सौ-सौ सेतु बनाता हूं।
हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूं।

सपने देख रहे हैं लोग, मधुर सपने देख रहे हैं। तुमने जो अब तक किया है, वह स्वप्न है। स्वप्न यानी अनुलोम प्रक्रिया। स्वप्न का फैलाव हो रहा है। स्वप्न की माया फैलती चली जा रही है।

जागो! विलोम करो अब, स्वप्न को सिकोड़ो! सांझ हो गयी, बाजार उठाने का वक्त हो गया। खूब पसारा किसा था दुकान का, अब समेटो, द्वार-दरवाजे बंद करो, सांझ हो गयी!

और ध्यान रखना, सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता है।

आज इतना ही।

वेदों में वर्णित होमापक्षी की कथा का आशय समझाने के लिए भगवान से निवेदन।
क्या कैवल्य में साक्षी भी प्रकाश के साथ समाहित हो जाता है?
हे भंते! मा शीला के मन में भाव उठा दीजिए न!...

...अब हद से गुजर चुकी मुहब्बत तेरी!

प्रार्थना है कि अब रंग चढ़ा दें!

संसार क्या है?

जगत की सबसे बड़ी बुद्धिमत्ताः प्रेम

अठारहवां प्रवचन

पहला प्रश्नः वेदों में होमापक्षी की कथा है। यह चिड़िया आकाश में बहुत ऊंचे पर रहती है। वहीं पर अंडे देती है। अंडा देते ही वह गिरने लगता है। परंतु इतने ऊंचे से गिरता है कि गिरते-गिरते बीच में ही फूट जाता है। तब बच्चा गिरने लगता है। गिरते-गिरते ही उसकी आंखें खुलती हैं और पंख निकल आते हैं। आंखें खुलने से जब वह बच्चा देखता है कि मैं गिर रहा हूं और जमीन पर गिर कर चूर-चूर हो जाऊंगा, तब वह एकदम अपनी मा की ओर फिर ऊंचे चढ़ जाता है। इस कथा का आशय समझाने की अनुकंपा करें।

नरेंद्र! यह कथा किसी पक्षी की कथा नहीं, मनुष्य की कथा है। मनुष्य के पतन, मनुष्य के बोध की कथा है। ऐसा ही मनुष्य है। आकाश में हमारा घर है, ऊंचाइयों पर हमारा घर है, लेकिन जन्म के साथ ही हम गिरना शुरू हो जाते हैं। गिरने का कोई अंत नहीं है। क्योंकि खाई अतल है। कोई तल नहीं है खाई का। हम गिरते जा सकते हैं और गिरते जा सकते हैं। ऐसी कोई सीमा नहीं है जहां अनुभव में आए कि बस इसके आगे गिरना और नहीं हो सकता। और भी हो सकता है, और भी हो सकता है।

अंतिम पापी कभी हुआ नहीं। कभी होगा नहीं। क्योंकि पाप में और परिष्कार हो सकते हैं। पाप में और नई ईजाद हो सकती है पाप में और नई कलाएं जोड़ी जा सकती हैं।

गिरने का कोई अंत नहीं है। गिरते ही गिरते किसी दिन आंख खुलती है। गिरने की चोट से ही आंख खुलती है। गिरने की पीड़ा से ही आंख खुलती है। और उसी आंख के खुलने में मनुष्य को अपने घर की याद आनी शुरू होती है। उस आंख का खुलना है—दर्शन, दृष्टि। नहीं तो हम अंधे हैं। ये बाहर की आंखें खुली हैं इससे यह मत सोच लेना कि तुम्हारे पास आंखें हैं। अगर तुम्हारे पास आंखें हैं तो फिर बुद्ध के पास क्या था? तुम्हारे पास आंखें हैं तो फिर महावीर के पास क्या था? तुम्हारे पास आंखें हैं तो फिर जिनको हमने द्रष्टा कहा है, उनके पास क्या था? नहीं तुम्हारे पास आंख नहीं है। तुम्हारे पास सिर्फ आंख की भ्रांति है।

हमारी आंखें वैसी ही हैं जैसे तुमने मोर के पंख पर बनी आंखें देखी हों। उनसे दिखाई कुछ नहीं पड़ता, आंखें भर हैं। हमारी आंखें मोरपंखी हैं। चित्रित हैं। दिखता कुछ नहीं है, सूझता कुछ नहीं है, बुझता कुछ नहीं है। टटोल-टटोल कर गिरते-उठते हम चलते रहते हैं।

आंख तो तब है जब तुम्हें अपने घर की याद आ जाए। आंख तो तब है जब तुम्हें ऊंचाई का स्मरण आ जाए। तुम कहां से आए हो, किस स्रोत से आए हो, जब उसकी प्रतीति सघन हो जाए, तब समझना कि आंख खुली। और उसी क्षण क्रांति शुरू हो जाती है। उसी क्षण अनुलोम समाप्त हुआ, विलोम प्रारंभ हुआ। उसी क्षण अदम क्राइस्ट बन जाता है। उसी क्षण हम परमात्मा से दूर जाने के बजाय उसके पास आने शुरू हो जाते हैं। और पंख हमारे पास हैं, आंख हमारे पास नहीं है। आंख हो तो हम पंखों का सम्यक उपयोग कर लें। शक्ति हमारे पास है, दृष्टि हमारे पास नहीं है। इसलिए हमारी शक्ति आत्मघाती हो जाती है। हम अपनी ही तलवार से अपने को ही छिन्न-भिन्न कर लेते हैं। किसी और ने तुम्हें थोड़े ही काटा है, किसी और ने तुम्हें खंडित थोड़े ही किया है, तुमने ही अपने को खंडित किया है, तुमने ही अपने को काटा है। कोई और तुम्हें नहीं मार रहा है, तुम्हीं अपने को मार रहे हो। महावीर ने कहा है, मनुष्य ही अपना मित्र और मनुष्य ही अपना शत्रु है। शत्रु तब तक जब तक आंख नहीं। तब तक हाथ में आई हुई ऊर्जा भी आत्मघाती सिद्ध होती है। और मित्र उस दिन से जिस दिन आंख खुली। आंख बंद और आंख खुलने के बीच जो घटना है, उसको मैं संन्यास कह रहा हूं। आंख खुले, इसकी आकांक्षा संन्यास है। आंख बंद है इसकी प्रतीति होने लगे, तो आंख खुल जाए इसकी आकांक्षा भी पैदा होने लगती है।

यहां पूरी चेष्टा यही है कि तुम्हें यह स्मरण आ जाए कि तुम्हारे पास आंख अभी है नहीं। तुम्हें स्मरण आ जाए कि तुम्हारा जो ज्ञान है थोथा है, झूठा है। तुम्हें ये स्मरण आ जाए कि जिसे तुमने जीवन समझा है, वह सपने से ज्यादा नहीं है और इससे तुम कुछ निकाल न पाओगे। जैसे कोई रेत से तेल निकालने की कोशिश कर रहा है, ऐसे ही जीवन में हारोगे। विषाद में मरोगे। ये आशाएं जो तुमने संजो रखी हैं, कोई भी काम आनेवाली नहीं हैं। क्योंकि इन आशाओं का अस्तित्व से कोई सामंजस्य नहीं है। ये तुम्हारे निजी सपने हैं। ये सपने पूरे नहीं हो सकते। अस्तित्व का सहयोग मिले तो कोई चीज पूरी हो सकती है। और अस्तित्व का सहयोग तभी मिलता है कि जब तुम्हारा अहंकार मरता है। अहंकार गिराता है, निर-अहंकार उठाता है। अहंकार अंधापन है, निर-अहंकार आंख है।

यह होमापक्षी की कथा मनुष्य की अंतर कथा है। अंतर-व्यथा भी। और इसे तुम ठीक से समझ लो तो मनुष्य का पूरा यात्रापथ समझ में आ जाए।

फिर से सुनो—

यह होमा बहुत ऊंचे आकाश में रहता है। ये तो प्रतीक हैं। हम ऊंचाई से आते हैं।

चार्ल्स डार्विन ने पश्चिम में एक विचार प्रतिपादित किया—विकासवाद का। वह विचार समस्त धर्मों के विपरीत है। विकासवाद का अर्थ होता है—हम नीचाई से ऊपर की तरफ आ रहे हैं। पतन नहीं हो रहा है, विकास हो रहा है। समस्त बुद्धों ने इससे भिन्न बात कही है। उन्होंने कहा है—मनुष्य का पतन हुआ है, हम ऊंचाई से नीचाई की तरफ आ रहे हैं। बुद्धों ने कहा है कि हम परमात्मा से नीचे गिरे हैं! यह हमारा पतन है। डार्विन ने कहा है—हम बंदरों से ऊपर उठे हैं। यह हमारा विकास है। बुद्धों ने कहा, परमात्मा हमारा पिता है और चार्ल्स डार्विन कहता है—बंदर हमारे पिता हैं। चार्ल्स डार्विन की बात के पीछे भी थोड़ा बल है; नहीं तो जीतती नहीं बात। ऊपर से देखने में ऐसा ही लगता कि डार्विन ही ठीक है, विकास हो रहा है, देखो बैलगाड़ी की जगह हवाई जहाज, तो विकास हो गया। यह जीवन को एक तरह से देखने का ढंग हुआ। तलवार की जगह एटम बम, यह विकास हो गया। लेकिन बुद्धों से पूछो। बुद्ध कहते हैं—तलवार जिसने खोजी थी और जिसने एटम बम खोजा है, इनमें विकास नहीं हुआ है, पतन हो गया, क्योंकि तलवार छोटी-मोटी हिंसा की खबर देती थी, एटम बम विराट हिंसा की खबर देता है। जिन्होंने तलवार से काम चला लिया था, वे बहुत बड़े हिंसक नहीं थे। हमारा तो एटम बम से भी काम नहीं चलता है। तो हाइड्रोजन बम! और अब और आगे बात चल रही है कि हम और भी नए बम खोज लें। हमारी चेष्टा यह है कि एक ही बम सारी पृथ्वी को डुबाने में समर्थ हो जाए।

ये विकास है?

एक तरफ से देखो तो विकास है—तलवार से एटम बम बड़ा विकास मालूम होता है। तलवार एकाध को मार सकती थी, एटम बम लाखों को मार सकता है।

हाइड्रोजन बम करोड़ों को मार सकता है। मारने की कला में बड़ा विकास हो गया। लेकिन मारनेवाला आदमी विकसित हुआ? हिंसा विकास है? हिंसा तो पतन है।

आदमी और विकृत हो गया।

जिंदगी को देखने के ढंग पर सब निर्भर करता है, तुम कैसे देखते हो।

आज लोग ज्यादा पढ़े-लिखे हैं, निश्चित। आज से दस हजार साल पहले गैर पढ़े-लिखे लोग थे। कोई लिखना नहीं जानता था, कोई पढ़ना नहीं जानता था। इस हिसाब से देखो तो आज का आदमी विकसित है। किताब पढ़ लेता है, अखबार पढ़ लेता है। लेकिन दस हजार साल पहले जो आदमी था, वह ज्यादा शांत था, ज्यादा आनंदित था, ज्यादा प्रफुल्लित था। उसके जीवन में एक राग था, एक छंद था। वह सब छंद खो गया। उस छंद को देखो तो पतन हो गया है। अखबार की कतरनें बढ़ती चली गई हैं, छंद खोता चला गया है। पढ़ाई-लिखाई हो गई बहुत,मस्तिष्क में बहुत-सी सूचनाएं संगृहीत हो गई और हृदय बिलकुल सिकुड़ गया है। अगर मस्तिष्क

को देखो, तो मात्रा बढ़ी है, मात्रा का विकास हुआ है। लेकिन अगर हृदय को देखो तो गुण गिरा है गुण का पतन हुआ है।

मूल्यवान क्या है—गुण या मात्रा? क्वांटिटी या क्वालिटी?

अगर आदमी को देखो तो कभी झोपड़ी में रहता था, फिर अच्छे मकानों में रहा, अब महलों में रह रहा है। आज गरीब से गरीब आदमी जो कपड़े पहने हुए हैं, वे सम्राटों को उपलब्ध नहीं थे। अशोक और अकबर के पास तुम जैसे अच्छे कपड़े नहीं थे। बिजली का पंखा नहीं था। न रेडियो था, न टेलीविजन था। आज गरीब से गरीब आदमी भी एक अर्थ में अशोक और अकबर से ज्यादा आगे हैं—विकसित हैं। चीजें बढ़ गइ। आदमी के पास परिग्रह का विस्तार बढ़ गया। लेकिन परिग्रह के विस्तार को बढ़ाने वाला आदमी विकसित आदमी है? यह सवाल है। क्योंकि जितना परिग्रह बढ़ता है, उतनी चिंता बढ़ती है। उतनी अशांति बढ़ती है, उतनी बेचैनी बढ़ती है, उतनी विक्षिप्तता बढ़ती है। चीजों की गिनती कर रहे हो, तो विकास मालूम होता है। लेकिन चीजों का विकास क्या आदमी का विकास है?

लोग कहते हैं जीवन-स्तर बढ़ गया। स्टैंडर्ड आफ लाइफ। अच्छा मकान है। अच्छी सड़कें हैं, अच्छे कपड़े हैं, अच्छी दवाइयां हैं—जीवन स्तर बढ़ गया। इसको जीवन-स्तर कहते हो? बस, इतने पर जीवन समाप्त हो जाता है? जीवन गुण की बात है। क्या इसीलिए तुम बुद्ध का जीवन-स्तर नीचा कहोगे, क्योंकि वह भिक्षापात्र लेकर सड़क पर भीख मांगते हैं? तुम्हारे बड़े से बड़े अरबपति—तुम्हारे राकफेलर, तुम्हारे मार्गन, तुम्हारे फोर्ड—सोचते हों कि बुद्ध से उनके पास बड़ा जीवन-स्तर है? महावीर नग्न खड़े हैं, इसलिए क्या उनका जीवन-स्तर तुमसे नीचा है? उनके पास वस्त्र नहीं हैं, आत्मा है, गुणवत्ता है, भगवत्ता है।

डार्विन की बात अगर हम केवल मात्रा को सोचें तो ठीक मालूम होती है। अगर भीतर के गुणों को सोचें तो ठीक नहीं मालूम होती।

यह होमा की कथा मनुष्य की चेतना के निरंतर पतन की कथा है।

इसलिए इस देश में हमने जो विभाजन किया है, वह देखते हो? चार कालों में समय को बांटा है। पहला काल, सतयुग। फिर द्वापर। फिर त्रेता। फिर कलि। श्रेष्ठतम युग पहले। फिर प्रतिक्षण पतन होता जाता है। फिर एक-एक टांग टूटती जाती है। आदमी अपंग होकर गिर पड़ता है कलि में। दोनों हाथ, दोनों पैर, सब टूट गए। इसके पीछे बड़ा गहरा मनोविज्ञान है। इसे तुम एक-एक आदमी की जिंदगी में भी देख सकते हो।

बच्चा पैदा होता है, तब वह सतयुग में होता है। बच्चे के जीवन में श्रद्धा होती है, सरलता होती है, निर्दोष भाव होता है। सौंदर्य होता है। आह्लाद होता है। आश्चर्यविमुग्ध बच्चा जीता है। छोटे बच्चे को देखो, अभी-अभी ताजे पैदा हुए बच्चे को देखो! वह सतयुग में है। सतयुग के लिए तुम्हें दार्शनिक सिद्धांतों में जाने की जरूरत नहीं है, छोटे बच्चे को देखो, वह सतयुग में है। फिर धीरे-धीरे पतन शुरू होता है। अहंकार पैदा होगा। पतन शुरू हुआ। फिर परिग्रह बढ़ेगा। पतन और शुरू हुआ। और आखिर में तुम एक आदमी को देखो, बुढ़ापे में, वह कलियुग है। सब यंत्रवत हो जाता है। जिंदगी बोझ हो जाती है। बूढ़ा आदमी मशीन की तरह हो जाता है। जीता है किसी तरह, सांस लेता किसी तरह, अब मरने की तैयारी है, मरने के सिवाय और कोई भविष्य नहीं है। इसलिए इस देश में हमने कहा है कि कलियुग के बाद प्रलय हो जाएगी। मृत्यु! कलियुग के बाद फिर कोई और समय नहीं बचता, मृत्यु ही बचती है। यह आदमी के सामान्य प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की कहानी है। और जो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की कहानी है, वही मनुष्य जाति की भी कहानी है।

होमापक्षी गिरना शुरू होता है ऊंचाई से, परमात्मा के घर से। पहले अंडे में छिपा होता है। फिर अंडा भी टूट जाता है—गिरते-गिरते-गिरते। फिर पंख भी निकल आते हैं—गिरते-गिरते-गिरते। फिर आंख भी खुल जाती है—गिरते-गिरते। और जब आंख खुलती है तब उसे समझ में आता है कि क्या हो रहा है! जब तक आंख नहीं

खुली थी, तब तक शायद वह सपना देखता हो कि मैं ऊंचाइयों पर जा रहा हूं, विकास हो रहा है। कि मैं अपनी मां को कितना पीछे छोड़ आया! हर बच्चा ऐसा ही सोचता है कि मैं अपने मां-बाप को कितना पीछे छोड़ आया! पश्चिम के बहुत हंसोड़ लेखक मार्क टवेन ने लिखा है कि मैं जब सत्रह साल का था और विश्वविद्यालय से पहली दफा घर आया, तो मुझे लगा—अरे, मेरे माता-पिता कितने गंवार हैं! फिर जब मैं चौबीस वर्ष का हो गया और विश्वविद्यालय से सारी शिक्षाएं पूरी कर के लौटा, तब मैं बड़ा चकित हुआ कि इन सात-आठ सालों में मेरे मां-बाप ने बड़ा विकास कर लिया, ये बड़े बुद्धिमान हो गए। जैसे-जैसे समझ बढ़ी वैसे-वैसे माता-पिता में बुद्धिमत्ता दिखाई पड़ी। जितनी समझ कम थी, उतने माता-पिता बुद्धू मालूम होते थे। जवानी में हर युवक सोचता है कि मां-बाप मेरे मूढ़ हैं।

क्यों?

सोचता है मैं विकास कर रहा हूं। मैं आगे जा रहा हूं। मेरे मां-बाप को पता क्या है? ये अभी भी पुराने ढर्रे के लोग अभी भी पुरानी रूढ़ि में चल रहे हैं और जी रहे हैं। इन्हें कुछ पता नहीं है। जिंदगी कहां से कहां चली गई, इन्हें कुछ पता नहीं है। जवानी में हर आदमी क्रांतिकारी होता है और सोचता है कि मैं जिंदगी को बड़े आगे ले जा रहा हूं। वह सिर्फ जवानी का भ्रम है। पक्षी जब तक उसकी आंखें बंद हैं यही सोचता होगा कि मैं आगे बढ़ता जा रहा हूं, कितना आगे बढ़ता जा रहा हूं! कितना दूर निकल आया, मां बाप को कितने पीछे छोड़ आया! बेचारी मां, वहीं के वहीं हैं। जब आंख खुलती है, तब उसे पता चलता है कि मैं दूर तो निकल आया लेकिन आगे नहीं निकल आया हूं। दूर निकल आना अनिवार्यरूप से आगे निकल जाना नहीं है। दूर निकल जाना गिरना भी हो सकता है, उठना भी हो सकता है। और उठना तो आंख खुलने के बाद ही संभव है। क्योंकि आंख खुली हो तभी पंखों का सदुपयोग हो सकता है।

तुम हो होमापक्षी! प्रत्येक व्यक्ति होमापक्षी है।

वेदों में दो शब्द बड़े बहुमूल्य हैं—होमा और सोमा। दोनों समझने जैसे हैं। दोनों प्रतीक हैं। शायद दोनों का जन्म एक ही शब्द से हुआ होगा। क्योंकि कुछ लोग स को ह उच्चारण करते हैं। तो होमा और सोमा हो सकता है एक ही शब्द से आए हों, सिर्फ उच्चारण-भेद हो गया है। इस स और ह के कारण ही तो हिंदुस्तान का नाम पड़ा। जब आर्य भारत में आकर बसे तो उनका ही एक हिस्सा ईरान में बसा। उनका एक कबीला ईरान में बसा। ईरान का पुराना नाम है—आयरान। आयरान से ही ईरान बना। आर्यों का एक कबीला ईरान में बस गया और एक कबीला भारत में आकर बस गया। भारत का पुराना नाम है—आर्यावर्त्त। और ईरान का पुराना नाम है—आयरान। ईरान में जो आर्य बसे, वे स का उच्चारण ह की तरह करते थे। इसलिए जब उन्होंने पहली दफा भारत की यात्राएं कीं—अपने मित्रों से मिलने आए होंगे, अपने सगे-संबंधियों से मिलने आए होंगे—तो सिंधु नदी को उन्होंने हिंदू नदी कहा। उसी से हिंदू शब्द पैदा हुआ। उसी से हिंदुस्तान शब्द पैदा हुआ। और उसी से इंडिया शब्द पैदा हुआ। उन्होंने इसको हिंदू कहा और जब इसे वे वापिस ले गए और उनके द्वारा यह शब्द जाकर पश्चिम की तरफ यात्रा पर निकला, तो कुछ जातियां थीं, जो ह का उच्चारण इ की तरह करती हैं, तो उन्होंने हिंदू को इंदु उच्चारण करना शुरू किया। इंदु से इंडस। इसलिए अंग्रेजी में सिंधु नदी का नाम है—इंडस। और फिर इंडस से इंडिया। भारत का नाम इंडिया हो गया। ये सारी बात पैदा हुई सिर्फ इसी बात से कि कुछ लोग ह की तरह उच्चारण करते थे स का।

होमा और सोमा एक ही शब्द होंगे, सिर्फ उच्चारण भेद हो गया है। सोमा का अर्थ होता है—वह परम मादक द्रव्य, जिसे पीकर आदमी सदा के लिए मस्त हो जाता है। वह आखिरी शराब, जिसे पी लेने पर फिर नशा नहीं उतरता।

वेदों में सोमा की बड़ी प्रशंसा है। और यह मान कर कि सोमा नाम की कोई जड़ी-बूटी होती होगी—जैसे भंग और गांजा होता है—क्योंकि नशे की बात है, न मालूम कितने लोग सोमा की तलाश करते रहे हैं सदियों से।

अभी भी तलाश जारी है। अभी पश्चिम के एक बहुत बड़े वैज्ञानिक ने कोई बीस वर्ष हिमालय में तलाश करके किताब लिखी—बड़ी किताब लिखी कि मैंने खोज ली वह जड़ी-बूटी। वह जड़ी-बूटी है ही नहीं, खोजोगे कैसे? सोमा तो सिर्फ प्रतीक है, जैसे होमा एक प्रतीक है।

अब तुम होमापक्षी को खोजने मत निकल जाना! नहीं तो कहीं नहीं मिलेगा। यह बात हो ही नहीं सकती कि इतनी ऊंचाई पर मां अंडा दे। ऊंचाई पर रहेगी कैसे? घोंसला कहां बनाएगी? अंडे को रखेगी कहां? इतनी ऊंचाई तो कोई भी नहीं है जहां से अंडा गिरे और गिरते ही गिरते, गिरते ही गिरते पक्षी निकल आए; और गिरते ही गिरते, गिरते ही गिरते पंख निकल आएं; और गिरते ही गिरते, गिरते ही गिरते आंखें खुल जाएं, ऐसी तो कोई ऊंचाई नहीं है। यह प्रतीक कथा है। सोमा भी कोई जड़ी-बूटी नहीं है, वह परमात्मा को पी जाने का नाम है। वह परम औषधि को पी जाने का नाम है। ये प्रतीक हैं। जब कोई व्यक्ति सोमरस पी लेता है—सोमरस यानी प्रभु-रस; रसो वै सः—जब प्रभु के रस को कोई पी लेता है, तो फिर जो मस्ती आती है, वह कभी टूटती नहीं। यहां तो जितने भी रस उपलब्ध हैं सबकी मस्ती टूट ही जाती है। क्षणभंगुर है। अभी है, अभी समाप्त हो जाएगी।

कीमती से कीमती शराब भी कितनी देर काम आएगी? थोड़ी देर विस्मरण हो जाता है, फिर सब वही जाल शुरू हो जाता है। मगर भक्ति का एक ऐसा रस है, एक ऐसी मधुशाला है, जहां अगर तुमने पी लिया, तो बस पी लिया। उसको पीते ही तुम मिट जाते हो—विस्मरण नहीं होते, मिट ही जाते हो, गल ही जाते हो, खो ही जाते हो।

सोमा प्रतीक है परम रस का। और होमा प्रतीक है उस परम गृह का, उस मातृगृह का, उस मातृभूमि का जहां से हम आए हैं। हम बड़ी ऊंचाइयों से आ रहे हैं। हम अगम्य ऊंचाइयों से आ रहे हैं। हमारे तथाकथित गौरीशंकर इत्यादि कुछ भी नहीं हैं, बच्चों के खिलौने हैं, जिन ऊंचाइयों से हम आ रहे हैं। हम परमात्मा से आ रहे हैं। कोई अभी अंडे में ही है। जो अंडे में ही है, उसे धर्म शब्द अर्थहीन मालूम होता है। उसे हैरानी होती है लोग जब धर्म चर्चा के लिए जाते हैं, या सत्संग के लिए जाते हैं, वह कहता है—क्या करते हो? मैं सिनेमा जा रहा हूं, चलो वहां! वहां कुछ रस है, कुछ आनंद; तुम जाते कहां हो? धर्म में रखा क्या है? अभी वह अंडे में है। जो अंडे में है, उसे अंडे के बाहर क्या है यह पता नहीं हो सकता। अभी वह कहता है—धन कमाओ, राजनीति में उतरो, चुनाव लड़ो, पद-प्रतिष्ठा बनाओ, इसमें कुछ सार है। यह तुम किस धुन में पड़ गए हो? तुम गलत रास्ते पर जा रहे हो। जिंदगी में कुछ कर जाओ, कुछ निशान छोड़ जाओ, हस्ताक्षर छोड़ जाओ। कि तुम्हारी लोग याद करें, इतिहास में तुम्हारी याद रह जाए। यह धर्म इत्यादि में लग कर तो तुम खो जाओगे। और धर्म इत्यादि सब झूठ हैं। मार्क्स ने कहा है कि धर्म अफीम का नशा है। मार्क्स अंडे में ही रहा होगा। जो अंडे में है, अगर उससे तुम आकाश की बात करोगे, चांद-तारों की बात करोगे, वह कहेगा—पागल हो तुम? सपने देख रहे हो। तुम कोई नशे में हो। कहां का आकाश? मुझे तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जो मुझे नहीं दिखाई पड़ता, वह हो कैसे सकता है? इस दुनिया में अधिक लोग अंडे में हैं। अभी अंडा भी नहीं टूटा, वे गिरते ही जा रहे हैं गिरते ही जा रहे हैं। कुछ लोग अंडे में ही रह कर मर जाते हैं।

अंडा भी तभी टूट सकता है जब तुम थोड़े पंख फड़फड़ाओ। तुम जरा भीतर से चोंच मारो! तुम अंडे से राजी मत हो जाओ! तुम अपनी सुरक्षा से राजी मत हो जाओ! तुम थोड़े-से अभियान करो, थोड़ी खोजबीन करो, थोड़ी जिज्ञासा करो—अथातो भक्ति जिज्ञासा! अंडा टूटेगा, मगर तुम कुछ भीतर से करोगे तो टूटेगा। बाहर तो कोई तोड़ नहीं सकता। बाहर से यह अंडा तोड़ा नहीं जा सकता, इसकी कुंजी भीतर से ही तोड़ी जा सकती है। बाहर से तो कोई तोड़ेगा तो और कठिन हो जाता है, क्योंकि तुम भीतर से रक्षा करने लगते हो। तुम आत्मरक्षा में लग जाते हो। तुम भयभीत हो जाते हो। तुम्हीं साहस जुटाओगे तो अंडा टूटेगा।

कुछ का अंडा टूट जाता है, मगर उनकी आंखें नहीं खुलतीं। फिर वे बंद आंखों से गिरना शुरू हो जाते हैं। ऐसे लोग धर्म के संबंध में विचार तो करते हैं, लेकिन धर्म का आचरण नहीं करते। सोचते हैं। कहते हैं, धर्म अच्छी

बात है, ईश्वर इत्यादि की सैद्धांतिक चर्चा करते हैं, गीता इत्यादि पढ़ते हैं, कुरान पढ़ते हैं, शब्द कंठस्थ कर लेते हैं, लेकिन उनके जीवन में कोई रंग नहीं होता। जीवन को नहीं रंगते। बातचीत ही होता है धर्म। बकवास होता है धर्म। बहुत लोग ऐसे ही बकवास करते समाप्त हो जाते हैं।

बहुत थोड़े से सौभाग्यशाली लोग हैं जो आंख खोलने की चेष्टा में संलग्न होते हैं। भजन से खुलती है आंख। भजन की ऊर्जा में ही आंख के खुलते की संभावना—या ध्यान से खुलती है आंख। एक ही बात को कहने के दो ढंग। ध्यान से या भजन से आंख खुलती है। भजन के संबंध में मत सोचते रहो, भजन करो। धर्म तुम्हारा कृत्य हो तो आंख खुलेगी। और आंख खुलते ही क्रांति घट जाती है। आंख खुलते ही दिखाई पड़ता है—तुम गिर रहे हो। रोज-रोज गिरते जा रहे हो। हम सब मृत्यु के मुंह में गिरते जा रहे हैं। वही है जमीन से टकराकर टूट जाना। देखते नहीं कितने लोग टूटकर गिर गए हैं और अपनी कब्रों में पड़े हैं? तुम भी कितनी देर चलोगे? जल्दी ही टकरा जाओगे, टूटोगे और कब्र में समा जाओगे। कोई भी खो गई घडी वापस नहीं मिलती। जो समय गया, गया। आंख खुलते ही दिखाई पड़ता है कि बहुत मैं गंवा चुका हूं। अब और गंवाने की जरूरत नहीं। तत्क्षण दिशा रूपांतरित हो जाती है।

पंख तो तुम्हारे पास ही हैं, आंख न हो तो अपने पंख भी नहीं दिखाई पड़ते। आंख न हो तो मैं कितनी संपदा लेकर पैदा हुआ हूं, यह भी दिखाई नहीं पड़ता। आंख न हो तो पता ही नहीं चलता कि मेरे भीतर हीरे-जवाहरातों की खदानें हैं। प्रभु का राज्य मेरे भीतर है। परमात्मा ने पूरा पाथेय देकर भेजा है। मगर आंख तो चाहिए ही चाहिए। कहते रहते हैं बुद्ध और क्राइस्ट और कृष्ण कि परमात्मा का राज्य तुम्हारे भीतर है, तुम सुन भी लेते हो फिर अपनी दुकान पर बैठ जाते हो। सुन लेते हो और अनसुना कर देते हो। क्राइस्ट ने बहुत बार अपने शिष्यों से कहा है कि अगर आंखें हों तो देख लो, मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूं। कान हों तो सुन लो मैं चिल्ला रहा हूं। जिनसे कहा था, उनके पास तुम जैसी ही आंखें थीं, तुम जैसे ही कान थे। अंधों से बात नहीं कर रहे थे। लेकिन साधारण आदमी अंधा ही तो है, बहरा ही तो है, लंगड़ा ही तो है। सोचता ही है, करता नहीं। और कृत्य से जीवन रूपांतरित होता है।

कुछ लोग सौभाग्यशाली हैं, जिनकी आंख खुलती है। बस आंख खुलने का क्षण संन्यास का क्षण है। फिर उसके बाद रूपांतरण हो जाता है। विलोम शुरू हुआ, वापसी की यात्रा शुरू हुई। बेटा बाप की तरफ वापिस लौटने लगा। जो अदम प्रभु के राज्य से निष्कासित हो गया था, वह फिर प्रभु की तलाश में चल पड़ा। अपने घर की खोज।

इस होमापक्षी की कथा को कथा मान कर तुम पढ़ लोगे तो चूक जाओगे इसका रस। इसमें पूरी प्रक्रिया छिपी हुई है।

चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,
किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।
कब किसी से भी कहा मैंने कि उसके रूप-मधु की
एक नन्ही बूंद से भी आंख अपनी सार आया,
कब किसी से भी कहा मैंने कि उसके पंथरज का
एक लघु कण भी उठाकर शीश पर मैंने चढ़ाया,
कम नहीं जाना अगर जाना कि इसका देखने को
स्वप्न भी क्या मूल्य पड़ता है चुकाना जिंदगी को,
चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,
किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।
जब भरे-भूरे घनों के बीच में दामिनी दमकती

तब अचानक एक बिजली दौड़ जाती है परों में,

धन्यभागी हैं वे, बिजली की चमक जब आकाश में गूंज जाती है तो जिनके पर फड़फड़ा उठते हैं। बुद्ध में और कृष्ण में और क्राइस्ट में हुआ क्या? बिजली चमकी। जिनमें थोड़ा भी प्राण था, जो थोड़े भी जीवंत थे, उनके पंख फड़फड़ा गए। जो मुर्दा थे, उनको कुछ भी न हुआ। वे जैसे थे वैसे ही बैठे रहे।

जब भरे-भूरे घनों के बीच में दामिनी दमकती
तब अचानक एक बिजली दौड़ जाती है परों में,
और जब नभ है गरजता इस तरह लगता कि कोई
दुर्निवार पुकारता अधिकार, आज्ञा के स्वरों में,

पुकारे तुम गये हो बहुत बार, पुकारे तुम जा रहे हो, पुकारे तुम अभी जा रहे हो, मैं तुम्हें पुकार रहा हूं, लेकिन तुम सिकुड़े बैठे हो। तुम अपना छोटा-मोटा संसार बना लिये हो। तुम उसी संसार में जकड़े बैठे हो। तुमने दो कौड़ी की चीजें इकट्ठी कर ली हैं, उनको संपदा मान ली है, वहीं अटके हो, और गिर रहे हो रोज और गिर रहे हो हर पल, और जल्दी ही टकराओगे भूमि से और चूर-चूर हो जाओगे।

और जब नभ है गरजता इस तरह लगता कि कोई
दुर्निवार पुकारता अधिकार, आज्ञा के स्वरों में,
कब धरा छुटी, हवा में कब उठा, पैठा गगन में,
धंस गया कितना, किधर को, कुछ नहीं मालूम होता,
मैं स्वयं खिंचता कि मुझको खींचता आकाश, इससे
सर्वथा अनजान बेकल प्राण मेरे, पंख मेरे
चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,
किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।

सुनते हो?

और जब नभ में गरजता इस तरह लगता कि कोई
दुर्निवार पुकारता अधिकार, आज्ञा के स्वरों में

जब भी सत्य उतरता है तो दुर्निवार आज्ञा के स्वरों में उतरता है। बुद्धों के वचन अधिकार पूर्ण वचन हैं। दार्शनिक के वचनों में झिझक होती है। दार्शनिक कहते हैं—शायद ऐसा हो! बुद्धपुरुष कहते हैं—ऐसा है! मैं रहा प्रमाण। और तुम चलो, आओ मेरे साथ और तुम भी बन जाओगे प्रमाण। दार्शनिक कहता है, मैं सोचता हूं, अनुमान करता हूं, शायद ऐसा हो, शायद ईश्वर हो, होना चाहिए, होगा ही। दार्शनिक जीवन को नहीं बदल पाता। दार्शनिकों में और द्रष्टाओं में यही फर्क है। दार्शनिक अंधे आदमी की तरह है रोशनी के संबंध में वक्तव्य दे रहा है। जो कह रहा है कि होनी चाहिए। इतने लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। रोशनी जरूर होनी चाहिए, बिना रोशनी के कैसे जीवन होगा? अनुमान लगाता है, तर्क करता है, विचार करता है, शास्त्र उल्लेख करता है।

द्रष्टा में क्या फर्क है? जिसने रोशनी देखी। बुद्धपुरुष और उनके वक्तव्य अधिकार के वक्तव्य होते हैं। वहां झिझक नहीं होती। वहां जैसा है उसको वैसा ही कहा जाता है।

जब भरे-भूरे घनों के बीच में दामिनी दमकती
तब अचानक एक बिजली दौड़ जाती है परों में,
और जब नभ है गरजता इस तरह लगता कि कोई
दुर्निवार पुकारता अधिकार, आज्ञा के स्वरों में,
कब धरा छूटी, हवा में कब उठा, पैठा गगन में,
धंस गया कितना, किधर को, कुछ नहीं मालूम होता,

और तब जिनके पास थोड़ा भी साहस है, थोड़ी भी आत्मा है, जिनके भीतर सब मर ही नहीं गया है, सब सड़ ही नहीं गया है, वे उठ चल पड़ते हैं। वे पंख फैला देते हैं। वे अज्ञात की यात्रा पर निकल जाते हैं।

कब धरा छूटी, हवा में कब उठा, पैठा गगन में,

धंस गया कितना, किधर को, कुछ नहीं मालूम होता

एक दुर्निवार आकांक्षा का जन्म होता है। एक अभीप्सा पैदा होती है, जिस पर सब दांव लगा देने का मन हो जाता है।

मैं स्वयं खिंचता कि मुझको खींचता आकाश,

और तब यह भी पता नहीं चलता कि मैं खिंच रहा हूं आकाश की तरह कि आकाश मुझे खींच रहा है। इतनी तल्लीनता होती है उस खिंचाव में, इतना एकात्मा होता है, कि तय करना मुश्किल हो जाता है। जो मेरे पास आकर सच में ही संन्यास की यात्रा पर निकल गये हैं, उनको तय करना निश्चित हो मुश्किल है कि उन्होंने संन्यास लिया है, या मैंने उन्हें संन्यास दिया है।

कब धरा छूटी, हवा कब उठा, पैठा गगन में,

धंस गया कितना, किधर को, कुछ नहीं मालूम होता,

मैं स्वयं खिंचता कि मुझको खींचता आकाश, इससे

सर्वथा अनजान बेकल प्राण मेरे, पंख मेरे।

इसका कुछ पता नहीं चलता मगर यात्रा शुरू हो जाती। यहां ऐसे लोग हैं जिनको सब पता है और यात्रा नहीं करते। और यहां ऐसे लोग हैं जिन्हें कुछ पता नहीं और यात्रा कर लेते हैं। जो यात्रा कर लेंगे, वे ही वस्तुतः जानेंगे। जो अपनी सड़ी-गली सूचनाओं को, उधार और बासी सूचनाओं को लिए बैठे रहेंगे, वे कितना ही बड़ा पांडित्य इकट्ठा कर लें, उनका पांडित्य उनके अज्ञान को छिपाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।

मैं स्वयं खिंचता कि मुझको खींचता आकाश, इससे

सर्वथा अनजान बेकल प्राण मेरे, पंख मेरे।

चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,

किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।

जीवन का आघात, वज्राघात अनुभव करो! खोलो आंख! अगर अपने अंडे में बंद हो अब तक सुरक्षा के, तो तोड़ो अपने अंडे को, खोलो आंख, देखो अपने पंख! तुम्हारा पंख ही आकाश का प्रमाण है। पंख है तो आकाश जरूर होगा। और पंख हैं तो ऊंचाइयां जरूर होंगी, नहीं तो पंख होते किसलिए? पंख होते कैसे? इस जगत में कुछ भी अकारण नहीं है! तुम्हारे भीतर अगर ईश्वर को खोजने की आकांक्षा है तो ईश्वर होना ही चाहिए। नहीं तो आकांक्षा न होती। पंख ही न होते अगर आकाश न होता। कैसे पंख होते? किसलिए पंख होते? कहां से पंख होते, उनका प्रयोजन क्या होता? निष्प्रयोजन तो कुछ नहीं है। तुम्हारा पंख इस बात का प्रमाण है कि आकाश है, ऊंचाइयां हैं, जो जाननी हैं। और जिन्हें बिना जाने कोई तृप्ति नहीं हो सकती।

बनो होमापक्षी! और तुम होमापक्षी बनो तो एक दिन सोमा का पान होगा। तुम होमापक्षी बनो तो एक दिन सोमरस तुम्हारे कंठ से उतरेगा। तुम उस परमात्मा को पी सकोगे। उसे बिना पीए तृप्ति नहीं। इस जगत का जल कितना ही पीओ, फिर-फिर प्यास लग आती है। उस जगत का एक बूंद भी कंठ से उतर जाए, तो प्यास सदा को समाप्त हो जाती है।

दूसरा प्रश्नः भंते! सात जुलाई उन्नीस सौ सतहत्तर को दिन की दुपहरी में पहली बार पता लगा कि बिना आंखों के भी देखा जा सकता है। आंखें बंद थीं, होश में था, पूरी विश्रांति में था, देखा कि एकाएक अदभुत प्रकाश ही प्रकाश है चारों ओर उस प्रकाश में पीठ के पीछे चीजें भी दिखायी दे रही थीं। उस समय न ही मैंने तर्क उठाया

कि यह क्या हो रहा है, जो हो रहा उसका मैं सिर्फ साक्षी था। क्या कैवल्य में साक्षी भी प्रकाश के साथ समाहित हो जाता है?

पूछा है शुभकरण पुंगलिया ने।

शुभ हुआ, शुभकरण! सत्य हुआ। और यह जो भाव, यह जो प्रश्न मन में उठा कि क्या कैवल्य में साक्षी भी प्रकाश के साथ समाहित हो जाता है, यह बहुमूल्य है। उस अंतिम घड़ी में द्वैत नहीं रह जाता। कौन साक्षी? किसका साक्षी? उस अंतिम घड़ी में भक्त और भगवान नहीं रह जाता। कौन भक्त? कौन भगवान? कौन दृश्य? कौन द्रष्टा? वहां एक ही बचता है। न दृश्य रह जाता है, न द्रष्टा रह जाता है, सिर्फ दर्शन रह जाता है। न ज्ञाता रह जाता, न ज्ञेय रह जाता, सिर्फ ज्ञान-ऊर्जा रह जाती। प्रकाश मात्र ही रह जाता है, साक्षी नहीं बचता।

जब तक साक्षी है, तब तक कितना ही गहरा अनुभव हो, अंतिम अनुभव नहीं हुआ। जब तक तुम देखनेवाले मौजूद नहीं हो। तब तुम जो देख रहे हो, वह तुमसे अलग है, तुमसे भिन्न है। वह आत्म-अनुभव नहीं है। तुम द्र ष्टा हो और तुम्हारे पास कोई चीज घट रही है। फिर वह कितनी ही सूक्ष्म हो! एक मोमबत्ती जल रही है तुम्हारे कमरे में, उसकी रोशनी तुम देखे रहे हो, यह साधारण, स्थूल रोशनी है। फिर तुम्हारे भीतर कोई दिया जल उठा—बिन बाती बिन तेल, न तेल है न बाती है लेकिन दिया जल उठा, लेकिन तुम देखनेवाले अभी भी हो, तो बहुत भेद नहीं है। पहला दिया स्थूल था, दूसरा दिया सूक्ष्म है। पहला दिया शरीर के बाहर था, दूसरा दिया शरीर के भीतर है, लेकिन अभी भी तुम इससे अलग खड़े हो। क्योंकि तुम द्रष्टा हो। तुम देख रहे हो कि रोशनी है। रोशनी दिखायी पड़ रही है।

स्मरण रखना, आध्यात्मिक अनुभव अनुभव जैसा होता ही नहीं। इसलिए सभी अनुभव या तो शारीरिक होते हैं, या मानसिक होते हैं। यह बहुत गहरा मानसिक अनुभव हुआ। प्यारा अनुभव हुआ, मगर उस पर रुक नहीं जाना है। पहुंचना तो वहां है जहां अनुभव और अनुभोक्ता एक हो जाएं, जहां दृश्य और द्रष्टा और एक हो जाएं। उस आखिरी घड़ी को ही कैवल्य कहा है। कैवल्य का अर्थ ही यही होता है—केवल एक बचा, केवल बचा।

प्यारा शब्द है, जैनों का, कैवल्य। वह एक ही सूचना देता है। मात्र एक बचा। शुद्ध एक बचा। वहां फिर कोई अनुभव नहीं रह जाते। इसलिए अंतिम अनुभव अनुभव जैसा नहीं होता

और बिना आंखों के देखा जा सकता है। क्योंकि आंखों से देखा ही क्या है? आंखों से किसने कब क्या देखा है? ये चमड़े की आंखें देखने की भ्रांति भर देती हैं। इनसे काम चल जाता है बाहर के जगत में, तुम एक दूसरे से टकराते नहीं हो, रास्ते से गुजर कर अपने घर आ जाते हो, दीवाल से नहीं निकलते हो, दरवाजे से निकल जाते हो, ऐसा इनका उपयोग है, लेकिन और क्या दिखायी पड़ता है? ऊपर की टकराहट बच जाती है, भीतर की टकराहट तो नहीं बचती इन आंखों से। ऊपर से तुम देखकर निकल जाते हो, भाई, यहां एक आदमी खड़ा है, इससे बचकर निकल जाएं लेकिन भीतर? भीतर तो आदमी-आदमी में टकराहट चलती है। महत्वाकांक्षा, गला घोंट टकराहट चलती है। पत्नी-पति से, बाप-बेटे से, भाई-भाई से, टकराहट चल रही है। भीतर की आंख आती है तो यह टकराहट भी चली जाती है। टकराहट ही नहीं बचती। कोई वैमनस्य नहीं बचता, कोई वैर नहीं बचता। प्रेम ही प्रेम शेष रह जाता है।

और अभी इस आंख से तुम्हें दूसरे थोड़े-बहुत दिखायी पड़ जाते हैं, थोड़े-बहुत ही, क्योंकि उनका भी वास्तविक अंग दिखायी नहीं पड़ता। तुम्हें जब कोई आदमी दिखायी पड़ता है तो उसकी देह ही दिखाई पड़ती है, उसकी आत्मा दिखायी नहीं पड़ती। वही उसका असली अंग है। देह तो ऊपर की खोल है। जैसे किसी ने किताब का कवर भर देखा हो, किताब के भीतर क्या है कुछ दिखायी नहीं पड़ता। असली चीज तो किताब के भीतर है, कवर में तो नहीं । कवर कैसा ही प्यारा हो तो भी असली चीज तो किताब के भीतर है। विषय-वस्तु तो भीतर है। देह तो केवल ढक्कन है। आवरण है। आत्मा तो भीतर है। वह तो इन आंखों से दिखायी नहीं पड़ती। अपनी ही आत्मा नहीं दिखायी पड़ती इन आंखों से, तो दूसरे की तो कैसे दिखायी पड़ेगी। इसलिए सम्यक-दृष्टि, ठीक

आंख आत्म-अनुभव का नाम है। जब तुम्हें भीतर स्वयं का भाव समझ में आ जाए कि मैं कौन हूं, उस भाव के साथ तुम्हें औरों के भीतर भी दिखायी पड़ने लगेगा कि वे भी कौन हैं। और तब तुम पाओगे कि एक ही फैला हुआ है। कैवल्य का विस्तार है।

दूसरा प्रश्न पूछा है शुभकरण पुंगलिया ने ही—

पंद्रह वर्षों से आपके चरण स्पर्श करने की उत्कट इच्छा है। और अभी मैं आपके पास हूं। मैंने आपके चरण स्पर्श के लिए मा शीला से प्रार्थना भी की। मा शीला ने कहा कि भाव उठेगा तो भगवान से मिलवा दूंगी। हे भंते! मा शीला के मन में भाव उठा दीजिए न! ताकि मेरा अंतराय-कर्म टूटे और आपके चरणों में गिरकर समुदघात चैतन्य का समस्त अस्तित्व में फैलाव कर सकूं।

शीला में भाव उठाने से कुछ भी न होगा! और शीला का मतलब भी यही था। उसका मतलब यह नहीं था कि शीला में जब भाव उठेगा, तब; उसका मतलब यही था कि जब तुममें भाव उठेगा, तब। तुम्हारे भीतर इच्छा तो है पैर छूने की, भाव अभी नहीं उठा है।

इच्छा और भाव में बड़ा फर्क है।

भाव का अर्थ होगा कि तुम सच में ही झुकने को तैयार हो गए। लेकिन तुमने अभी संन्यास भी नहीं लिया है। भाव तो नहीं उठा है, इच्छा है, एक वासना है। और बाहर के चरण छूकर होगा भी क्या? जब तक कि तुम्हारे भीतर झुक जाने की ऐसी भाव दशा न आ जाए कि समर्पित हो जाऊं, तब तक असली समर्पण, असली झुकाव नहीं घटा। शीला का मतलब वही था। शीला बड़ी रहस्यवादी है। उसने ठीक बात कही कि जब भाव उठेगा? उसने इतना ही कहा कि तुम्हारी इच्छा तो है, जाहिर है, पंद्रह साल से तुम कहते हो तो झूठ न कहते होओगे, ठीक ही कहते हो, लेकिन भाव, भाव बड़ी और बात है। भाव का मतलब है कि अब ऊपर ही ऊपर से क्या झुकना, ऊपर के चरण क्या छूने, अब भीतर से ही एकता बना लें। संन्यास का और क्या अर्थ होता है? इतना ही अर्थ। और अब तो तुम्हारे जीवन में थोड़े भीतर के अनुभव भी लगने लगे। अब तो संन्यास की घड़ी आ गई। पंद्रह वर्ष बाहर के चरण छूने का ही विचार करते रहे, क्या पंद्रह जन्म भीतर के चरण छूने का विचार करोगे? ऐसा समय मत गंवाओ।

बहारे-जां फजा जाकर चमन से फिर भी आती है
घटा काली बरस कर एक दफा फिर भी तो छाती है
सितारे दिन को बुझ जाते हैं फिर शब को चमकते हैं
फलक पर रात भर शोखी से हंस-हंसकर दमकते हैं
सफक की झील में खुर्शीद शब को डूब जाता है
दरे कसरे उफक से झांक कर फिर मुस्कुराते हैं
अगर मुरझा गए हैं फूल और गुंचे तो क्या परवा,
खिजां के बाद ही ये फूल और गुंचे फिर भी महकेंगे
बाहर आते ही तायर डालियों पे फिर भी चहकेंगे
अगर तारीक रात आती है ऐ हमदम तो आने दे
अगर जंगल की नदी खुश्क होती है तो हो जाए
कभी तो चांदनी रात आकर यह जुल्मत मिटाएगी
यह नदी के फिर सुरीले और शीरीं गीत गाएगी
निशां गुजरी हुई घड़ियों का लेकिन फिर नहीं मिलता
कमल मुरझा के दिल का एक दफे फिर से नहीं खिलता।

इतना खयाल रखो, सब लौट आता है, सब वापिस आ जाता है, निशां गुजरी हुई घड़ियों का लेकिन फिर नहीं मिलता, लेकिन जो समय बीत गया, फिर उसका निशान भी नहीं मिलता। तुम यहां हो, तुम इतने से ही राजी हो जाओगे कि मेरे चरण छू के चले जाओ? इतने से हल हो जाएगा? इतने से हल होता है तो शीला को मैं कहे देता हूं, कि शुभकरण को आज भेज देना। इतने से क्या होगा? और जब मैं तुम्हें सब देने को राजी हूं, तब तुम इतना सा लेने को क्यों? मैं कृपण देने में नहीं हूं, तुम लेने में कृपण हो रहे हो! हद हो गई कंजूसी की भी!

निशां गुजरी हुई घड़ियों का लेकिन फिर नहीं मिलता।

कल की कौन जाने? मैं होऊं, तुम न होओ, तुम होओ, मैं न होऊं, हम दोनों हों और फिर मिलना न हो सके।

चीन की एक बड़ी पुरानी कथा है। एक वजीर को सम्राट ने फांसी की सजा दे दी। नाराज हो गया था, कुछ बात ऐसी हो गई। ऐसे वजीर से प्रेम भी बहुत था, लेकिन राजा तो राजा थे। जरा-सी बात हो गई और इतना नाराज हो गया कि नाराजगी में कह दिया कि फांसी लगा दो। सात दिन बाद फांसी लग जाए। लेकिन नियम था उस राज्य का कि फांसी के एक दिन पहले सम्राट जिस को भी फांसी होती थी उससे मिलने जाता था। फिर यह तो उसका वजीर था। तो वह गया मिलने।

वजीर बहादुर आदमी था, अनेक युद्धों में लड़ा था, छाती पर बड़े घाव थे उसके। कभी उसकी आंख में आंसू नहीं देखा गया था। राजा को देखते ही उसकी आंख से आंसू झर-झर गिरने लगे। राजा ने कहा—आश्चर्य! क्या तुम मृत्यु से डर गए हो? मैं तुम्हें जन्म भर से जानता हूं, तुम जैसा हिम्मतवर आदमी इस राज्य में दूसरा नहीं, तुम्हें मैंने कभी रोते नहीं देखा, तुम रो क्यों रहे हो? बात क्या है? तुम कहो मुझसे, बात क्या है? उसने कहा—कुछ भी बात नहीं, अब कहने से कुछ सार नहीं। अब जो हो गया हो गया। लेकिन मैं मौत के कारण नहीं रो रहा हूं, मैं तुम्हारे घोड़े के कारण रो रहा हूं। वह जो घोड़ा सम्राट चढ़कर आया है। बाहर बांध दिया है, सींखचों से दिखाई पड़ रहा है। सम्राट ने कहा—घोड़े के कारण? घोड़े के कारण क्यों रोओगे तुम? पहेली मत बूझो, मुझे बात सीधी-सीधी कहो। वजीर ने कहा—अब आप नहीं मानते तो कहे देता हूं। मैंने जिंदगी भर एक कला सीखी, बड़ी मेहनत से कला सीखी कि मैं घोड़े को आकाश में उड़ना सिखा सकता हूं। मगर एक खास जाति के घोड़े को ही वह उड़ना सिखाया जा सकता है, और वह घोड़ा मुझे न मिला सो न मिला। आज जब कि मरने का दिन आ गया, यह घोड़ा सामने खड़ा है! आप जिस घोड़े पर बैठ कर आए हैं, इसकी मैं तलाश में जिंदगी भर से था। इस जाति का घोड़ा उड़ना सीख सकता है। सम्राट को तो आकांक्षा जगी कि अगर घोड़ा उड़ना सीख जाए! तो उन दिनों तो घोड़ा सबसे बड़ी ताकत थी, और अगर घोड़ा उड़ता हो, तब तो कहना क्या? तो यह सम्राट का साम्राज्य सारे जगत में फैल जाएगा। उसने कहा, तू फिकिर मत कर, कितना समय लगेगा घोड़े को उड़ना सीखने में? वजीर ने कहा—एक साल लगेगा। सम्राट ने कहा—तो एक साल के लिए तुझे हम जेल से बाहर निकाल लेते हैं। अगर घोड़ा उड़ना सीख गया तो आधा राज्य भी तुझे दूंगा और अपनी बेटी से विवाह भी कर दूंगा। और अगर घोड़ा उड़ना नहीं सीखा, तो ठीक है, अभी सूली लगती है, साल भर बाद लग जाएगी।

वजीर तो उस घोड़े पर बैठकर अपने घर लौट आया। घर तो पत्नी रो रही थी, बच्चे रो रहे थे, मां रो रही थी, बाप रो रहा था, कि आखिरी दिन आ गया और अभी तक कुछ आसार नहीं है क्षमा के। बेटे को लौटा देखकर बाप तो समझ ही नहीं सका। पत्नी तो एकदम दीवानी हो गई खुशी में। सबने घेर लिया कि कैसे बचे? क्या हुआ? वह हंसा और उसने कहा कि ऐसे बचा, ये घटना घटी। पत्नी और जोर से रोने लगी, मां और छाती पीटने लगी, उसने कहा—तुमने यह क्या किया? हमें सब पता है कि तुम्हें कुछ पता नहीं, तुम उड़ना कुछ सिखा नहीं सकते घोड़े को। तुमने कब सीखा? कहां सीखा? इसकी तुमने कभी बात ही नहीं की। उस वजीर ने कहा—मैं कुछ जानता नहीं घोड़ा उड़ने इत्यादि के संबंध में, यह तो एक कहानी गढ़ी है। उन्होंने कहा अब मुझे यह और मुसीबत में डाल दिया। ये सात दिन हमारे इतने कष्ट से कटे हैं, अब यह साल और कष्ट से कटेगा। इससे तो बेहतर था तुम मर ही जाते। हमें लटका दिया फांसी पर साल भर के लिए और। और अगर मांगा ही था तो कम

से कम दस साल तो मांगते। उस वजीर ने कहा—पागल हो गए हो! एक साल का क्या भरोसा? राजा मर सकता है, मैं मर सकता हूं, और कम से कम घोड़ा तो मर ही सकता है। एक साल का भरोसा क्या है? कुछ भी हो सकता है। फिकिर न करो!

और आश्चर्य की बात यह है कि ऐसा हुआ कि तीनों ही मर गए। राजा भी मर गया, वजीर भी मर गया, घोड़ा भी मर गया।

निशां गुजरी हुई घड़ियों का लेकिन फिर नहीं मिलता

तुम्हारे भीतर फूल खिलने शुरू हुए हैं। अवसर मत चूको! झुकने की आकांक्षा है तो झुक ही जाओ! फिर झुके तो उठना क्या? संन्यास का इतना ही तो अर्थ है, झुके तो झुके, फिर उठना क्या? फिर लाख अड़चनें हों, फिर लाख झंझटें आएं, फिर लाख बदनामी हो, लाख लोग पागल समझें! बस शुभकरण को वही अड़चन होगी, कलकत्ता में रहते हैं, वहां लोग पागल समझेंगे। फिकिर क्या है? यही कलकत्ते के लोग कल परसों तुम्हें अर्थी सजाकर मरघट पहुंचा आएंगे। इनकी चिंता क्या है? इनके पागल समझने से हर्ज क्या है?

शुभकरण जैन मालूम होते हैं, उनकी भाषा से। जैनों से डर रहे होंगे। मुनि, साधु इत्यादि पीछा करेंगे कि यह तुम्हें क्या हो गया? स्वीकार कर लेना कि भ्रष्ट हो गए, पागल हो गए, अब करें क्या? कुछ पता नहीं।

जब भरे-भूरे घनों के बीच में दामिनी दमकती

तब अचानक एक बिजली दौड़ जाती है परों में,

और जब नभ है गरजता इस तरह लगता कि कोई

दुर्निवार पुकारता अधिकार, आज्ञा के स्वरों में,

मैं तुम्हें पुकार रहा हूं—दुर्निवार अधिकार, आज्ञा के स्वरों में।

कब धरा छूटी, हवा में कब उठा, पैठा गगन में,

धंस गया कितना, किधर को, कुछ नहीं मालूम होता,

मैं स्वयं खिंचता कि मुझको खींचता आकाश, इससे

सर्वथा अनजान बेकल प्राण मेरे, पंख मेरे।

चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,

किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।

कह देना, पागल हो गया हूं। कह देना, मैं क्या करूं? मैं खिंचा कि आकाश ने खींचा, क्या हुआ, कुछ पता नहीं। कह देना, मैं करता क्या, बिजली ऐसी चमकी कि मेरे पंख फड़के, कि उड़े बिना नहीं रहा जा सका। लोगों के मंतव्यों के कारण लोग रुके हैं। लोगों का मूल्य क्या? उनके मंतव्यों का मूल्य क्या? उनके मंतव्यों से तुम्हें मिलेगा क्या? उनके मंतव्यों से किसको कब कुछ मिला है? साहस करो! शीला को तो मैं भाव उठा देता हूं, मगर उससे कुछ भी न होगा, तुम्हीं भाव उठाओ! समय आ गया। ठीक घड़ी है, उसे चूको मत।

कभी तो बीच से उठेगा शर्म का पर्दा

कभी तो उनकी मेरी बेतकुल्लुफी होगी

घड़ी आ गई। बेतकल्लुफी हो सकती है। मेरा निमंत्रण। पर्दा उठ सकता है। लेकिन पर्दा मैंने नहीं डाला है। न पर्दा शीला ने डाला है। पर्दा तुम्हीं डाले हो। तुम्हीं उठाओगे तो उठेगा।

मैंने सुना है, एक नाटककार के परिश्रम से लिखे गए अनेक नाटक मंच पर असफल हो गए। वह बहुत चिंतित रहने लगा। एक दिन उसने अपनी प्रेमिका से कहा कि मैं आत्महत्या की सोचता हूं। अब जीने में कुछ सार नहीं। मैंने जितने नाटक लिखे, जितने नाटक रचे, सब असफल हो गए। मेरी असफलता बड़ी गहरी है। मैं बिलकुल विजड़ित हो गया हूं, मैं टूट गया हूं। उसकी प्रेमिका ने कहा—आशा न छोड़ो! अब तुम नाटक लिखना बंद करो, हम तुम दोनों मंच पर नाटक खेलेंगे। कैसे, नाटककार ने पूछा! उसकी प्रेमिका ने कहा—पहले दृश्य में मैं

गीत गाऊंगी, फिर पर्दा उठेगा। फिर, नाटककार ने पूछा? दूसरे दृश्य में मैं नृत्य करूंगी। फिर, नाटककार ने पूछा? उसने कहा—फिर, फिर पर्दा उठेगा! और? तीसरे दृश्य में, तब नाटककार ने पूछा, और तू ही तू ही दृश्य दिखा रही है, और मैं क्या करूंगा? तो उसकी प्रेयसी ने कहा—आप क्या समझते हैं पर्दा अपने-आप उठ जाएगा? तुम पर्दा उठाना!

पर्दा अपने-आप नहीं उठता, यह तो सच है। मगर शीला के उठाए भी न उठेगा, शुभकरण! तुम्हीं को उठाना पड़ेगा, तुम्हीं ने डाला है।

मैं तो तैयार हूं कि पर्दा उठे। और तुम्हारी आत्मा भी भीतर तैयार हो गई है, और तुम्हारी आकांक्षा भी जगी है, लेकिन तुम कुछ भयभीत हो, कुछ संकोच से भरे हो—कुछ छोटे-मोटे डर। जाने दो अब उन छोटे-मोटे डरों को। इस जगत में कुछ भी चिंता योग्य नहीं है। जहां सभी खो जाना है, वहां क्या चिंता!

तीसरा प्रश्नः हां, नाम तो धर चुकी मुहब्बत तेरी

बदनाम तो कर चुकी मुहब्बत तेरी

कहते हैं जो लोग हम समझते भी नहीं

अब हद से गुजर चुकी मुहब्बत तेरी

पूछा है स्वामी शिरीष भारती ने।

अभी हद से गुजरी नहीं होगी! अभी थोड़ी-थोड़ी कमी होगी। अन्यथा पूछने को कौन बचता, कहने को कौन बचता? ऐसी घड़ी आती है जरूर जब हद से मुहब्बत गुजर जाती है। तब तो पता ही नहीं चलता। पता करने वाला ही डूब जाता है। तुम प्रेम में तो हो, लेकिन कुछ-कुछ.अपने को बचा रहे होओगे। अपने को समझा भी रहे होओगे कि प्रेम अब हद से आगे गुजर गया।

प्रेम बड़ी अनूठी घटना है। इस जगत में प्रेम सबसे बड़ा पागलपन है। मगर सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता भी। प्रेम बड़ा विरोधाभास है। प्रेम की बड़ी पीड़ा भी है और बड़ा आनंद भी। पीड़ा है कि अहंकार को मरना पड़ता है। और आनंद है, क्योंकि निर-अहंकार में ही आनंद अवतरित होता है। फिर जिसको हमने अब तक प्रेम समझा है इस दुनिया में, वह तो क्षणभंगुर का प्रेम होता है। वह तो जैसे प्याली में तूफान। जो प्रेम मैं तुम्हें सिखा रहा हूं, वह क्षणभंगुर का प्रेम नहीं है, वह शाश्वत का प्रेम है। उसकी कहां हद है? तुम अपनी हद से गुजर जाओगे, मगर उस प्रेम की कहां हद है? वह प्रेम बेहद है। अनहद उसका नाम है। उसकी कोई सीमा नहीं है। जिस प्रेम की सीमा होती है, वह प्रेम सांसारिक। जिस प्रेम की कोई सीमा नहीं होती, वही प्रेम आध्यात्मिक।

मगर, तुम्हारी अड़चनें मैं समझता हूं। तुमने इन पंक्तियों में अपनी अड़चन की तरफ ही इशारा किया है।

आखिर हमें कहना ही पड़ा हाले-दिल अपना

अच्छे हैं वही लोग जो उल्फत नहीं करते

तुमने निवेदन किया है कुछ इन पंक्तियों में। पीड़ा तो है प्रेम की। बड़ी पीड़ा तो यही है कि तुम मिटते जाते हो। तुम धीरे-धीरे गलते जाते हो। तुम मेरे पास आते हो तब तुम्हें यह पता भी नहीं होता। तुम तो मेरे पास आते हो और सबल होने को, तुम तो मेरे पास आते हो अपने अहंकार को और भर लेने को। कि थोड़ा ज्ञान बढ़े, थोड़ा ध्यान बढ़े, संसार में तो थोड़ा कब्जा है ही, थोड़ा परलोक में भी कब्जा हो जाए। थोड़ा पुण्य बढ़े। यहां तो सब ठीक-ठाक जमा लिया है, स्वर्ग में भी इंतजाम कर लूं—जाने के पहले तैयारी कर लूं—आरक्षण करवा लूं। इधर तो जीत की काफी पताकाएं फहरा दी हैं, अब वहां स्वर्ग में भी बड़ा झंडा गड़ा दूं। तुम आते इस तरह की आकांक्षाओं से। और मैं धीरे-धीरे तुम्हारे झंडे गिराने लगता हूं। और मैं धीरे-धीरे तुम्हारी धारणाओं को बदलने लगता हूं। एक बार तुम मेरे प्रेम में पड़ गए तो फिर धीरे-धीरे धीरे तुम राजी होते जाते हो। एक दिन तुम्हारा सारा अहंकार खो जाता है। मगर अहंकार बिना जद्दो-जहद के नहीं जाता। बड़ी पीड़ा देता है। लेकिन अगर प्रेम लग गया तो जाना ही पड़ता है चाहे कितना ही लड़े। उसकी हार फिर सुनिश्चित है। प्रेम का एक छोटा सा बीज भी

अहंकार के पहाड़ को मिटा देने को काफी है। प्रेम की एक छोटी बूंद भी अहंकार के समुद्रों को हरा देने के लिए पर्याप्त है।

आह वह बात कि जिस बात पे दिल दे बैठे

याद करने पर भी आती नहीं याद मुझे

ऐसा भी हो जाएगा एक दिन कि जब अहंकार बिलकुल चला जाएगा, ये पहाड़ टूट जाएगा, तब तुम्हें याद भी न आएगा कि कौन-सी बूंद गिरी थी? कौन-सी बूंद इस पहाड़ को गला गई? किस बात पर दिल दे बैठे थे? शायद उसका पता भी न चले, वह इतनी सूक्ष्म रही हो, इतनी छोटी रही हो।

पीड़ा उठती होगी अहंकार के गलने से। और पीड़ा उठती होगी लोग चारों तरफ तुम्हारे संबंध में न मालूम क्या-क्या कहने लगे होंगे? हंसना उनकी बातों पर, क्योंकि सच पूछो तो वे ही पागल हैं। वे क्षुद्र के साथ प्रेम किए बैठे हैं। आज नहीं कल जब नींद टुटेगी, बहुत पछताएंगे। तुमने विराट से दोस्ती बांधी। आज तुम कितने ही पागल लगते हो, आखिर में तुम्हीं विजेता सिद्ध होओगे। अंततः विजय तुम्हारी है। सत्यमेव जयते। छोटी-मोटी जीतें झूठ भी कर लेता है, लेकिन आखिरी विजय सत्य की है। भय मत करना।

तू रह न सकी फूलों में ऐ फूल की खुशबू

कांटों में रहे और परेशान न हुए हम

प्रेम के कांटे चुभेंगे, पीड़ा भी देंगे, मगर भयभीत मत होना, घबड़ाना मत।

तू रह न सकी फूलों में ऐ फूल की खुशबू

कांटों में रहे और परेशान न हुए हम

परेशान मत होना। ये कांटे जो अभी कांटों जैसे लग रहे हैं, यही फूलों में रूपांतरित हो जाते हैं। जीवन की बड़ी अपूर्व कीमिया है। बड़ी रहस्यपूर्ण रसायन है। यहां दुख सुख हो जाते हैं। यहां नर्क स्वर्ग हो जाते हैं। यहां मृत्यु महाजीवन का द्वार बन जाती है।

और कठिनाइयां बढ़ेंगी, तुम्हारा प्रेम जैसे-जैसे लगेगा परमात्मा की तरफ, जैसे-जैसे तुम उस रस में विभोर होओगे, वैसे-वैसे तुम संसार में बहुत अर्थों में बेकाम होने लगोगे। तुम्हारा रस वहां कम होगा। दौड़धूप कम हो जाएगी। यह बिलकुल स्वाभाविक है। जितने से काम चल जाए, उतने से तृप्ति हो जाएगी। दूसरों को लगेगा, तुम हार गए। दूसरों को लगेगा, तुमने पराजय स्वीकार कर ली। दूसरों को लगेगा, तुम उदास हो गए। दूसरों की कही गई बातों पर बहुत ध्यान मत देना। तुम तो अपने भीतर देखना, और देखना कि क्या तुम हार गए हो, या जीत अब शुरू हुई?

मुहब्बत में वही है काम का दिल

जिसे नाकाम समझा जा रहा है

यहां जगत में जो नाकाम होता जाता है, वही परमात्मा में सफल होता है।

और यह कोई साधारण प्रेम नहीं है। साधारण प्रेम भी बड़ी पीड़ाएं देता है, तो असाधारण प्रेम तो असाधारण पीड़ाएं देगा। लेकिन साधारण प्रेम के सुख भी साधारण हैं, असाधारण प्रेम के सुख भी असाधारण हैं।

प्रेम का राग न गाना पगले

प्रेम नगर मत जाना पगले

राह यह है पुरखार, पगले

प्रेम बड़ा आजार

कंटकाकीर्ण रास्ता है प्रेम का। और प्रेम बड़ा दुखदाई है।

प्रेम का राग न गाना पगले

प्रेम नगर मत जाना पगले

राह यह है पुरखार, पगले
प्रेम बड़ा आजार

प्रेम में रोना ही होता है
जीवन खोना ही होता है
जीत हो कि हार, पगले
प्रेम बड़ा आजार
इस संसार में प्रीति नहीं है
कोई किसी का मीत नहीं है
झूठा जग का प्यार, पगले
प्रेम बड़ा आजार
तू ही बता क्या पाया आखिर
प्रीति किए पछताया आखिर
अब रोना बेकार, पगले
प्रेम बड़ा आजार

इस जगत का प्रेम, साधारण प्रेम भी बड़ा पीड़ादायी है। सुख की तो थोड़ी-सी झलक है, कहीं, कभी। एक सुगंध आती और खो जाती। दुग□ध ज्यादा है। एक अंश में कभी कहीं कोई आनंद का भाव उठता है, निन्यानबे प्रतिशत तो अंधेरा ही अंधेरा है। एक किरण कभी फूटती है। मगर उस एक किरण के लिए लोग कितना दुख झेल लेते हैं!

मैं तुम्हें जिस प्रेम की तरफ ले जा रहा हूं, वहां शत-प्रतिशत प्रकाश की संभावना है, सौ प्रतिशत किरणें तुम पर बरसेंगी। स्वभावतः बहुत निखरना होगा, बहुत जलना होगा, बहुत आग से गुजरना होगा। हिम्मत चाहिए, पागल की हिम्मत चाहिए। हिम्मत चाहिए, जुआरी की हिम्मत चाहिए।

लेकिन, यह आधी बात है, कि प्रेम दुख है, कि प्रेम पीड़ा है। प्रेम आनंद भी है, प्रेम मस्ती भी है। वह दूसरा हिस्सा है प्रेम का। और जितनी बड़ी पीड़ा उतने ही बड़े आनंद की संभावना है। पीड़ा ही पीड़ा का हिसाब रखोगे तो जल्दी ही घबड़ा जाओगे, आनंद का भी हिसाब रखना।

आगाजे-मुहब्बत में वह इक सुबह खरामां
आंखों में समेटे हुए सौ रंग के तूफां
अब तक है तसव्वुर में वह बेदार नजार
वह मस्त समां अब भी आंखों में है रक्सां
दुजदीदा निगाहों में वोह दुजदीदा तबस्सुम
वोह बर्क मुजस्सिम कभी पिन्हा कभी उरियां
अंगड़ाई-सी लेकर हुई बेदार मुहब्बत
जज्बात की मस्ती हुई खुर्शीदे-गुलिस्तां

खूब फूल खिल रहे हैं। नजर कांटों पर ही मत अटका लेना। कांटों की ही गिनती मत करते रहना। और ध्यान रखना, हजार कांटों में भी एक फूल खिले, तो एक फूल की कीमत हजार कांटों की पीड़ा से बहुत ज्यादा है! फिर मैं तुमसे कहता हूं—हजारों फूल खिल रहे हैं। इसलिए नकारात्मक दृष्टि को छोड़ो। कुछ लोग ऐसे हैं जो नकार को ही गिनती करते रहते हैं। वे रास्ते के कंकड़-पत्थर गिनते रहते हैं। और रास्ते पर जो आनंद की वर्षा होती है,

उसकी उन्हें चिंता ही नहीं है। वे क्षुद्र अड़चनों का हिसाब-किताब रखते हैं और विराट का प्रसाद बरसता है, उसको ऐसे स्वीकार कर लेते हैं जैसे वह उनका जन्मसिद्ध अधिकार था।

इस भ्रांति से बचना। तो जल्दी ही तुम्हें साफ हो जाएगा कि मुहब्बत एक तरफ से मारती है, दूसरी तरफ से जिलाती है। एक तरफ से मिटाती है, दूसरी तरफ से बनाती है। अहंकार को गला देती है, और आत्मा को जन्मा देती है।

मृत्यु जैसा है प्रेम। और जन्म जैसा भी। सूली पर चढ़ना है, और सिंहासन पर विराजमान होना भी। सिंहासन को देखो, सूली को तो सीढ़ी बनाओ। सूली सीढ़ी है सिंहासन की। और मृत्यु द्वार है नये जन्म का!

चौथा प्रश्नः भगवान, आपने यह क्या गोलमाल कर दिया है? रविवार के प्रश्नोत्तर में आपने मेरे प्रश्न के उत्तर में कहा कि पूरे रंग जाओ। उसके एक दिन पहले मैं संन्यास में दीक्षित हुआ था। प्रार्थना है कि अब रंग चढ़ा दें! पूछा है स्वामी कृष्ण वेदांत ने।

संन्यास रंगे जाने की शुरुआत है, अंत नहीं। कपड़ों को रंगने से शुरू करते हैं, क्योंकि उसकी भी हिम्मत नहीं रह गई है लोगों में, फिर देह को रंगेंगे, फिर मन को रंगेंगे, फिर आत्मा को रंगेंगे। जैसे-जैसे तुम्हारी हिम्मत बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे रंग फैलता जाएगा। रंगरेज के हाथ में पड़ गए हो। घबड़ाओ मत। कपड़े से तो सिर्फ शुरुआत है। उंगली पकड़ में आ गई है तो पहुंचा बहुत दूर नहीं है। एक बार तुमने इशारा दे दिया कि मैं रंगे जाने को तैयार हूं—और तुमने तो शायद इसलिए दिया हो इशारा कि कपड़े ही तो रंगने हैं, और क्या होना है—मगर तुम्हारी तरफ से इशारा क्या मिल जाता है मुझे कि रंगने के लिए तुम तैयार हो, फिर तो मैं तुमसे दुबारा नहीं पूछता! फिर तो मैं रंगता ही चला जाता हूं।

फिर यह लंबी यात्रा है। बहुत डुबकियां देनी होंगी तुम्हें रंग की गागर में। डुबकी पर डुबकियां देनी होंगी। क्योंकि जन्मों-जन्मों से तुम्हारे रंग उड़ गए हैं। तुम्हें परमात्मा की कोई याद ही नहीं रही है। तुम कहां छोड़ दिए हो परमात्मा को तुम्हें स्मरण भी नहीं है। डुबकी पर डुबकियां, बार-बार चोट पर चोट, हर तरह से तुम्हें जगाने का उपाय—ध्यान से, भक्ति से, प्रेम से, भजन से, गीत से, नृत्य से, शब्द से, शून्य से, शास्त्र से, सत्संग से , हर तरह के उपाय किए जा रहे हैं। परेशान न होओ। रंगने की अंतिम घड़ी भी करीब आ जाएगी। तुमने पहले की हिम्मत की है, तो तुम आखिरी के अधिकारी भी हो गए।

तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में जो मैंने कहा कि पूरे रंग जाओ, कपड़े का रंग जाना पूरा रंग जाना तो नहीं है। कपड़े के रंगे जाने से तो सिर्फ तुम्हारी तरफ से एक भावभंगिमा सूचित हुई कि मैं तैयार हूं। फिर तुम्हारी आत्मा को एकदम रंगा जाए तो शायद तुम झेल भी न पाओ। झेलने की क्षमता धीरे-धीरे विकसित होती है। एकदम से आकाश टूट पड़े, तो तुम शायद दब ही जाओ। आहिस्ता-आहिस्ता। शनैः-शनैः। तुम्हारी हिम्मत बढ़ती जाती है और प्रसाद बढ़ता जाता है। क्रमिक। जल्दबाजी कुछ आवश्यक भी नहीं है। और पूरा रंगना, तो उसका अर्थ होता है—सिद्ध हो जाना। जब रंगने को कुछ न बचा तो उसका अर्थ हुआ कि तुम परमात्मा हो गए। लंबी यात्रा है। लेकिन ध्यान रखना, लाओत्सू का प्रसिद्ध वचन है कि हजारों मील की यात्रा एक-एक कदम चल कर पूरी हो जाती है। और दो कदम तो कोई भी एक साथ नहीं चल सकता, एक कदम ही एक बार में चलना पड़ता। और हजारों मील की यात्रा एक-एक कदम चलकर पूरी हो जाती है।

तो कृष्ण वेदांत, तुमने पहला कदम उठा लिया। अगर तुम मुझसे पूछो तो मैं पहले कदम को आधी यात्रा कहता हूं। सबसे कठिन पहला कदम है। फिर दूसरा कदम तो सहज होता है, क्योंकि वह भी पहले जैसा होता है। फिर तीसरा भी सहज होता है, क्योंकि वह भी पहले जैसा होता है। एक कदम उठा लिया तो कला आ गई। अब तुम रंगरेज के हाथ में पड़ ही गए हो, पूरे रंग दिए जाओगे।

गोलमाल इसलिए हुआ कि तुमने अपने संन्यास का नाम नहीं लिखा था प्रश्न में। तो दो ही कारण हो सकते थे। एक कारण तो हो सकता था कि तुमने प्रश्न संन्यास लेने के पहले लिखा हो। तो प्रश्न गैर-संन्यासी मन से उठा

था, इसलिए मुझे कहना पड़ा कि रंगो। प्रश्न गैर-संन्यासी मन से उठा था, इसलिए मुझे कहना पड़ा कि संन्यासी बनो। या दूसरी संभावना यह है कि तुमने प्रश्न तो संन्यास लेने के बाद ही लिखा हो, लेकिन पुरानी आदतवश पुराना नाम लिख गए हो। तो भी जरूरी है कि तुम्हें याद दिलाया जाए, कि पुराने को अब छोड़ो, नहीं तो रंग में बाधा पड़ेगी। अब पुराने को जाने दो; अब पुराने को विदा, अलविदा। अब पुराने से नाता तोड़ लो।

नए नाम का यही तो अर्थ है कि तुम्हारा नया जन्म हो। अतीत तुम जिए हो तीस साल, चालीस साल, पचास साल, उसकी बड़ी धूल जम गई है। एक खंडहर पड़ा है पचास साल का। कुछ लोग तो उसी खंडहर में सुधार करते रहते हैं—रिनोवेशन करते रहते हैं। वे उसी में इधर-उधर सहारे लगाते रहते हैं, इ□टें चुनते रहते हैं, कहीं पलस्तर गिर गया है तो पलस्तर कर दिया, कहीं रंग उड़ गया है तो रंग कर दिया, कहीं छप्पर टूट गया है तो छप्पर नया बिठा दिया। उसी पुराने में सारा करते रहते हैं। मगर पुराना पुराना है, खंडहर खंडहर है। मैं खंडहरों के पुनरुद्धार में विश्वास नहीं करता। मैं कहता हूं गिरा दो जमीन तक, हटा दो इसे बिलकुल, नया ही बना लेंगे। और पुराने में छोटे-छोटे फर्क करते रहो तो कभी हो नहीं पाते फर्क, क्योंकि पुराने की ताकत बड़ी होती है। सौ चीजें पुरानी, उसमें तुम एक नई डाल देते हो, वे निन्यानबे पुरानी उस एक को भी पुरानी कर लेती हैं। उनका बल ज्यादा होता है। इसलिए उचित यही है कि पुराना अध्याय बंद! इसलिए नया नाम देता हूं ताकि तुम संन्यास के क्षण से सोचने लगो कि यह तुम्हारा जन्म हुआ। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा था—संन्यास के बाद अपनी उम्र संन्यास के दिन में गिनना। वह ठीक बात थी।

एक दिन बहुत मजा हो गया। एक बूढ़ा संन्यासी बुद्ध के चरणों में सिर झुकाने आया—कोई होगा सत्तर साल का आदमी। और बुद्ध अक्सर पूछते थे कि हे भिक्षु, तेरी उम्र कितनी है? सम्राट प्रसेनजित बुद्ध से मिलने आया था, वह उनके पास ही बैठा हुआ था। जब बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा, हे भिक्षु तेरी उम्र कितनी है, तो उसने कहा—चार वर्ष। प्रसेनजित तो बड़ा चौंका। सत्तर साल-अस्सी साल का बूढ़ा, कह रहा है—चार वर्ष! कहीं मेरे सुनने में भूल तो नहीं हो गई? उसने बुद्ध को फिर कहा कि जरा फिर से पूछिए, मैं जरा सुनने में चूक गया; यह कितना कह रहा है? बुद्ध ने कहा, यह कहता है—चार वर्ष। और आप इसमें कोई प्रश्न नहीं उठा रहे हैं, प्रसेनजित ने कहा, यह चार वर्ष कह रहा है! यह कम से कम सत्तर का तो है ही। अस्सी का भी हो सकता है। बुद्ध हंसे, उन्होंने कहा—तुम्हें पता नहीं, हम इस तरह ही गणना करते हैं। यह चार वर्ष पहले संन्यासी हुआ। उसके पहले जो छियासठ वर्ष जीया, उनकी क्या गिनती है! वे तो सपने में गए, उनको क्या गिनना है? सपने के कृत्यों का तुम हिसाब तो नहीं रखते हो। कोई तुमसे पूछे कि तुम्हारे पास कितना धन है, तो तुम उतना ही बताते हो जितना जागने में तुम्हारे पास है। तुम उसमें वह नहीं जोड़ते जो तुम सपनों में भी होते हो। सपने में तुम्हारे पास करोड़ों होते हैं। और तुम यह नहीं कहते कि भाई, जागने में तो बस ये सौ रुपए हैं, मगर सपने में करोड़ भी होते हैं, तो सौ धन करोड़। सपने का धन तुम नहीं जोड़ते।

क्यों नहीं जोड़ते?

सपने का धन धन ही नहीं है। मूर्च्छा का धन धन ही नहीं है। मूर्च्छा का जीवन भी जीवन नहीं है।

जाने दो अतीत को। और मैं जानता हूं कि आदत आदत है, छूटते-छूटते ही छूटती है। जाते-जाते ही जाती है। देर लगती है। अचानक कोई तुमसे तुम्हारा नाम पूछेगा संन्यास के बाद, तुम्हें फिर पुराना नाम याद आ जाएगा। कुछ दिन तक आता रहेगा। संन्यास के बाद भी कोई पूछेगा—तुम्हारी जाति, तुम्हारा धर्म, तुम्हें फिर पुराना याद आ जाएगा, कि मैं जैन हूं, कि मैं हिंदू हूं, कि मैं बौद्ध हूं। भूलते-भूलते भूलेगा। इसलिए भी कहा कि पूरे रंग जाओ, संन्यस्त हो जाओ।

संन्यास लेने से ही संन्यास नहीं हो जाता है। कोई संन्यास लेकर भी संन्यास से वंचित रह सकता है; संन्यास को अगर ऐसे ही औपचारिकता के ढंग से ले लिया हो। कुछ लोग ले लेते हैं, मैं बड़ा चकित हूं, विशेषकर भारतीय। झूठा संन्यास ले लेते हैं! विदेश से आनेवाले लोग झूठा नहीं लेते हैं। उसका कारण है। उन्हें संन्यास का कुछ

पता ही नहीं है। समझते हैं, समझने की चेष्टा करते हैं, सोचते-विचारते हैं, पूछते हैं कि संन्यास क्या है? क्यों लेना? क्या होगा? विचार करते, मंथन करते। लेकिन भारतीय को तो पता ही है कि संन्यास अच्छी चीज है। और उस अच्छे संन्यास में कुछ थोड़े कांटे थे, वे भी मैंने अलग कर दिए हैं। न घर छोड़ना है, न द्वार छोड़ना है, न पत्नी, न बच्चा। तो मन कहता है, फिर संन्यासी होने का मजा भी क्यों न ले लिया जाए? कुछ खोना भी नहीं है और संन्यास भी मिलता हो, इतनी सुगमता से मिलता हो तो ले ही लो।

तो एक तो भारतीय मन को पता है कि संन्यास क्या है? संन्यास की महिमा पता है। और फिर मैंने संन्यास के बीच की सारी बाधाएं अलग कर दी हैं, तो सोचता है लेने में हर्ज क्या है? ले लेता है।

या, किन्हीं और कारणों से भी ले लेता है। ऐसे अक्सर मौके आ जाते हैं। कोई संन्यास लेकर, मैं पूछता हूं उससे कि ध्यान करो, वह कहता है कि ध्यान तो अभी मैं क्या करूं, असली में इसलिए मैंने संन्यास लिया है कि मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती। मैंने सोचा कि आपसे जुड़ जाऊं, तो शायद तबियत ठीक हो जाए। इसलिए संन्यास लिया है। सब इलाज करवा चुका। तो संन्यास एक इलाज है! सोचा कि अब सब करवा चुका, अब यह आखिरी भी करके देख लेना चाहिए।

एक महिला एक बच्चे को लेकर आ गई। वह बच्चा आ ही नहीं रहा है, वह उसको घसीट रही है, कि इसको संन्यास दे दें! इसका दिमाग खराब है, और हम सब इलाज करवाकर देख लिए, अब सोचा कि चलो संन्यास ही दिलवा दें। अब यह तो संन्यास नहीं होगा! यह तो कैसा संन्यास होगा? भारतीय मन धर्म के साथ इतने दिन रहा है कि धर्म के साथ भी बेईमानी करने में कुशल हो गया है।

फिर ऐसे भी लोग हैं जो यहां आकर संन्यास ले लेते हैं...एक भाव में आ गए, यहां सब गैरिक लोगों को देखकर तरंग आ गई, आंसू बहे, मग्न हुए, सुना, समझा। मगर जब ट्रेन में बैठते हैं वापिस, तो घबड़ाहट शुरू होती है कि अब घर वापिस जा रहे हैं! कुछ ऐसे भी हैं जो रास्ते में ही कपड़ा अपना पेटी में छिपा लेते हैं। घर जाकर खबर ही नहीं देते। मुझे पत्र लिखते हैं कि हम बड़े अपराधी हैं, लेकिन क्या करें, हिम्मत नहीं जुटा पा रहे हैं कि पत्नी को बता दें, कि दफ्तर में बता दें, कि लोगों को पता चल जाए कि संन्यासी हो गए हैं। मुझसे लोग संन्यास लेते वक्त पूछते हैं कि अगर माला को भीतर छिपाए रखें तो कुछ हर्ज तो नहीं है? माला बाहर और भीतर का सवाल नहीं है, मगर भीतर छिपाने का भाव! वहां हर्ज है। किसी को पता न चले। एक सज्जन संन्यास लेकर गए, जब वह कोई दो-तीन महीने बाद वापिस आए तो मैंने उनसे पूछा, गैरिक वस्त्रों का क्या हुआ? और मेरी आंखें खराब नहीं हैं। उन्होंने कहा, आप देखते नहीं, यह गैरिक वस्त्र तो पहने हुए हूं। तब मैंने बहुत गौर से देखा, तो पता चला—हां, सफेद रंग में थोड़ी-सी झलक है! तो कोई खोजे बहुत, चश्मा लगाकर, तो शायद समझ में आए कि हां, थोड़ी-सी झलक है।

ऐसा धोखा चलता!

वे कपड़े बिलकुल सफेद मालूम पड़ रहे हैं; थोड़ा-सा रंग, एक रत्ती भर रंग बाल्टी भर पानी में डालकर और कपड़े उन्होंने हिला लिए होंगे! जब मैंने बहुत गौर से देखा, मैंने कहा जरा करीब आओ, मैं और गौर से देखूं—हालांकि मेरी आंखें खराब नहीं हैं—तब मैंने कहा कि हां, मालूम तो होता है। मैं तो समझा कि कपड़े दो-चार दिन से धोए नहीं हैं, यात्रा में थोड़ी सफेदी खो गई है।

इसलिए संन्यास ले लेने से ही संन्यास हो गया, ऐसा मत मान लेना। शुरुआत हुई। फिर बहुत कुछ करना है। बुनियाद रखी गई, फिर भवन उठाना है।

आखिरी प्रश्नः संसार क्या है?

सोये-सोये देखा गया परमात्मा। मूर्छित अवस्था में देखा गया परमात्मा। मन के माध्यम से देखा गया परमात्मा संसार है। और चूंकि मन क्षणभंगुर है, इसलिए मन में बनते प्रतिबिंब भी क्षणभंगुर होते हैं। तुमने देखा, रात पूर्णिमा का चांद निकला हो, झील शांत हो, तो झील पर पूर्णिमा का चांद बनता है, प्रतिबिंब बनता है। जरा-सी

एक कंकड़ी फेंकना, जरा-सी कंकड़ी और झील कंप गई, और झील डोल गई, और लहरें उठ गइं, तरंगें उठ गई और चांद हजार टुकड़ों में टूट गया। चांद नहीं टूटता है हजार टुकड़ों में, ध्यान रखना, सिर्फ लहर में जो प्रतिबिंब बनता था वही टूटता है। झील का बना प्रतिबिंब टूटता है हजार टुकड़ों में, चांद नहीं टूटता। प्रतिबिंब क्षणभंगुर है, चांद तो क्षणभंगुर नहीं है।

हम मन की झील के द्वारा परमात्मा को देखते हैं, तो जो प्रतिबिंब बनता है—और वह प्रतिबिंब क्षणभंगुर होगा, क्योंकि मन में हजारों विचार की तरंगें चल रही हैं—इसलिए टूट-टूट जाता है, खंड-खंड हो जाता है। इसलिए संसार में कभी सुख संभव नहीं है, क्योंकि सुख बन भी नहीं पाता और उखड़ जाता है। यहां झील में कंकड़ पड़ते ही जाते हैं। तुम बड़े प्रसन्न जा रहे थे रास्ते पर, आज बड़े खुश थे, सुबह से ही ताजे थे, घर में भी कोई झंझट नहीं हुई थी, घर से मस्ती से निकले थे और एक आदमी तुम्हारे पास से गुजर गया—उसने कुछ खास नहीं किया, सिर्फ नमस्कार नहीं की, रोज नमस्कार करता था, आज नहीं की—बस, एक कंकड़ पड़ गया। कंकड़ डाल भी नहीं और पड़ गया। उसने कुछ किया नहीं, सिर्फ कुछ करता था जो आज उसने नहीं किया, मुंह फेर कर निकल गया, बस चिंता पैदा हो गई, लहरें उठने लगीं, बदला लेने का भाव होने लगा कि यह आदमी, इसके साथ मैंने कितना भला किया—सारी झील लहरों से पट गई! खो गया सब सुख, तरंग भूल गई। जरा-सी बात तुम्हारे मन को डावांडोल कर जाती है।

इसलिए इस मन के द्वारा कभी सुख तो मिल नहीं सकता। सुख तो शाश्वत में है। मन को हटाकर जगत को देख लेते ही परमात्मा मिल जाता है। झील में मत देखो चांद को, झील से आंखें हटाओ, चांद को ही देखो। परमात्मा और संसार दो नहीं हैं, संसार परमात्मा की ही छाया है। इसलिए उसे माया कहते हैं।

मैं हसीन कलियों से आगोश सजा लूं तो क्या
अपने गमखानों में इक शमअ जला लूं तो क्या
मुस्कुरा लूं भी तो क्या साज बजा लूं तो क्या
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही

ये समय की जो कड़वाहट है, ये तो मिटती ही नहीं है।

मैं हसीन कलियों से आगोश सजा लूं तो क्या

मैं अपनी गोदी में फूल ही फूल भर लूं तो भी क्या होगा? फूल जल्दी ही कुम्हला जाएंगे।

अपने गमखानों में इक शमअ जला लूं तो क्या

और अपनी दुख से भरी जिंदगी में एक दिया भी जला लूं तो क्या? दिया जल्दी ही बुझ जाएगा, तेल चुक जाएगा, बाती मिट जाएगी।

मुस्कुरा लूं भी तो क्या...

कितनी देर मुस्कुराओगे? मुस्कुराहट आई और गई।

...साज बजा लूं तो क्या

और कितनी देर वीणा छेड़ोगे? गीत उठेंगे, संगीत के स्वर उठेंगे और खो जाएंगे।

वक्त की तल्खिए-गुफ्तार को मिटने से रही

यह जो समय का उपद्रव है— और समय यानी मन। खयाल करना, मन के कारण ही समय पैदा हुआ है। जैसे ही मन चला जाता है, समय चला जाता है। जीसस से उनके एक शिष्य ने पूछा कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में सबसे खास बात क्या होगी? जीसस ने कहा, देयर शैल बी टाइम नो लांगर, वहां समय नहीं होगा।

महावीर कहते हैं, समाधि में समय नहीं होगा; समयातीत, कालातीत। सारे ज्ञानियों ने कहा है, काल मिट जाता है, समय मिट जाता है। और जहां काल मिट जाता है, समय मिट जाता है, वहां मृत्यु भी मिट जाती है। इसलिए तो हमने काल के दोनों अर्थ किए हैं—समय और मृत्यु। दोनों मिट जाते हैं। अमृत का अनुभव हो जाता है।

शाश्वत जहां मिल गया वहां समय भी नहीं रहा, मृत्यु भी नहीं रही। मिटने वाली कोई चीज ही न रही तो मृत्यु कैसे रहेगी? अमिट से मिलन हो गया, नित्य से मिलन हो गया।

मैं हसीन कलियों से आगोश सजा लूं तो क्या
अपने गमखानों में इक शमअ जला लूं तो क्या
मुस्कुरा लूं भी तो क्या साज बजा लूं तो क्या
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही
चूम लूं चांद के शफ्फाक किनारे भी अगर
तोड़ लूं उड़कर यह रंगीन सितारे भी अगर
मोड़ दूं जीस्त के बहते हुए धारे भी अगर
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही
पी भी लूं मस्त निगाहों के इशारों से अगर
तल्खिए-जीस्त मिटा भी दूं उठाकर सागर
मंजरे-गमको बना भी लूं जो फिरदौसे-नजर
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही
यह रविश और यह हालात बदल भी जाएं
यह तसब्वुर यह खयालात बदल भी जाएं
यह शऊर और यह जज्बात बदल भी जाएं
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही
घुटके रह जाएगी इक दिन यह सिसकती आवाज
मुंतसिर टूटके हो जाएगा शीराजए-राज
जल्वए-नाज से भर जाएगी आगोशे-नियाज
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही

सब छिन्न-भिन्न हो जाएगा। कितना ही गोद भरो फूलों से, सब छिन्न-भिन्न हो जाएगा। कितने ही दिए जलाओ, सब बुझ जाएंगे। आकाश के तारे भी तोड़ लाओ, सब व्यर्थ हो जाएगा।

घुट के रह जाएगी इक दिन यह सिसकती आवाज

और कितने ही गीत गाओ, और कितनी ही वीणा बजाओ...

घुटके रह जाएगी इक दिन यह सिसकती आवाज
मुंतसिर टूट के हो जाएगा शीराजए-राज

सब टूट जाएगा, सब बिखर जाएगा।

जल्वए-नाज से भर जाएगी आगोशे-नियाज
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही

कितने ही सुख यहां बना लो, सब उजड़ जाएंगे। और कितने ही घर यहां बना लो, सब गिर जाएंगे। यहां सब रेत पर बनाए हुए घर हैं, और पानी में चलाई गई कागज की नावें हैं। और समय की तल्खी, समय की कड़वाहट, समय का जहर कायम रहता है।

संसार का अर्थ है—समय। समय अर्थात मन। मन और समय एक ही ऊर्जा के दो नाम हैं। इधर मन गया...तुम जरा देखना! अगर किसी समय में ऐसा हो जाए कि मन में कोई विचार न हों, तो उसी के साथ तुम पाओगे—समय भी न रहा। घड़ी चलती रहेगी, तुम्हारे भीतर की घड़ी ठहर जाएगी। ध्यान में घंटों बीत जाते हैं

और पता नहीं चलता कि कितना समय बीत गया। ध्यान में कुछ बीतता ही नहीं। ध्यान में उसका पता चलता है जो सदा है और कभी बीतता नहीं। बीतना सिर्फ मन में होता है।

संसार सत्य की झलक है। और झलक मन की झील में। और मन की झील जरा-से कंकड़ों से डोल जाती है। इसलिए मन के सहारे तुम जो भी बसाओगे, टूट जाएगा, उखड़ जाएगा, बिगड़ जाएगा, छिन्न-भिन्न हो जाएगा। मन से हटो। मन से मुक्त हो जाओ। अ-मन की दशा खोजो। नो माइंड। उस अ-मन की दशा में मुक्ति है, मोक्ष है, ब्रह्म है। और फिर से तुम्हें दोहरा दूं कि संसार और परमात्मा दो नहीं हैं। एक ही हैं। लेकिन परमात्मा को ही मन के द्वारा देखने से संसार की भ्रांति पैदा होती है। और बिना मन के देखने से सारी भ्रांतियां मिट जाती हैं। सत्य का अनुभव हो जाता है। सत्य का साक्षात्कार हो जाता है।

आज इतना ही।

अनन्यभक्त्या तदबुद्धिर्बुद्धिलयादत्यन्तम् ।।९६।।

आयश्चिरयितरेषां तु हानिनास्पदत्वात् ।।९७।।

संसृतिरेषाम् भक्तिः स्यान्नाज्ञानात् कारणसिद्धेः ।।९८।।

त्रीण्येषां नेत्राणि शब्दलिंगाक्षभेदाद्रुद्रवत् ।।९९।।

आविस्तिरोभावाकिकाराः स्युः क्रियाफलसंयोगात् ।।१००।।

प्रेम ही मंदिर है

उन्नीसवां प्रवचन

अथातो भक्ति जिज्ञासा!

अब भक्ति की जिज्ञासा!

ऐसे इन अपूर्व सूत्रों का आज अंतिम दिन आ गया। सोचा, विचारा, पर उससे जिज्ञासा पूरी नहीं होती। जिज्ञासा तो तभी पूरी होती है जब रोम-रोम में समा जाए, धड़कन-धड़कन में धड़के, श्वास-प्रश्वास में डोले। इन सूत्रों पर विचार और मनन करके ही जो रुक गया, वह जल सरोवर के पास पहुंचा और प्यासा रह गया। ये सूत्र ऐसे हैं कि तुम्हारे जीवन को सदा-सदा के लिए तृप्त कर दें। इनकी महिमा अपार है। पर इनके हाथ में भी नहीं है कि यदि तुम सहयोग न करो तो तुम्हें तृप्त कर सकें। तुम्हारे सहयोग के बिना कुछ भी न हो सकेगा। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है। तुम पीओगे, तो सरोवर काम आ जाएगा। तुम अकड़े खड़े रहे, किनारे पर ही खड़े रहे, तो भी सरोवर के बस में नहीं है कि तुम्हारे कंठ में उतर जाए।

बहुत लोग शास्त्रों से केवल शब्द ही ले पाते हैं। तो उन्होंने कुछ भी नहीं लिया। तो यात्रा व्यर्थ हो गयी। वे चले ही नहीं। उन्होंने सिर्फ सोचा, सपना देखा चलने का। चलने के सपने से कोई यात्रा पूरी नहीं होती। चलना होता है, वस्तुतः चलना होता है।

और जीवन में चलने का क्या अर्थ होगा?

यही अर्थ होगा कि जो ठीक लगा, वह केवल बुद्धि में न रह जाए, परिव्याप्त हो जाए समग्र जीवन पर। उसका स्वाद फैल जाए तन-मन-आत्मा में। उसका स्वाद तुम्हारे प्राणों को संग्रहीत कर दे, तुम्हारे बिखरे टुकड़ों को जोड़ दे। उसके स्वाद का धागा तुम्हें माला बना दे—अनस्यूत हो जाए।

सूत्रों पर विचार करने का तो अंतिम दिन आ गया, लेकिन यह जिज्ञासा तो शांडिल्य ने जो जिज्ञासा चाही थी वह जिज्ञासा नहीं है। मैं जो जिज्ञासा चाहता हूं, वह जिज्ञासा नहीं है। यह तो दार्शनिक मनोमंथन हुआ। यह तो ऊहापोह हुआ। यह ऊहापोह शुभ है, यदि चला दे। अगर चलाए न तो किसी काम का नहीं है। यह पुकार जो दूर से सुनायी पड़ी है, सदियों को पार करके आयी है, इसे मैंने फिर से पुनरुज्जीवित किया। शांडिल्य को मौका दिया कि मुझसे फिर तुमसे बोल लें। शांडिल्य के शब्दों को फिर से जन्माया, निखारा, सदियों की धूल झाड़ी। लेकिन उससे काम पूरा नहीं हो गया। ऐसा मत समझ लेना कि तुम शांडिल्य को समझ गए। समझ से ही अगर काम

पूरा होता तो विश्वविद्यालयों में ज्ञानियों का जन्म हो जाता। फिर पंडित प्रज्ञावान हो जाते। फिर बुद्धों में और पंडितों में भेद क्या होता?

पंडित तो तोते ही रह जाते हैं। तोता कितना ही राम-राम जपे, उसका हृदय उस जपन में नहीं होता है। जप देता है, यंत्रवत, मगर उसे तुम भजन तो न कहोगे!

प्रसिद्ध कथा है कि शंकराचार्य उस समय के प्रकांड पंडित मंडन मिश्र से विवाद करने गए। मंडन मिश्र रहते थे मंडला में। मंडला का नाम ही मंडन के नाम पर पड़ा। जब शंकर वहां पहुंचे, शंकर तो युवा थे, मंडन की बड़ी ख्याति थी, शंकर को कोई जानता भी नहीं था। नगर के बाहर ही घाट पर पानी भरती स्त्रियों से उन्होंने पूछा कि मैं महापंडित मंडन मिश्र की तलाश में आया हूं, उनके घर का पता क्या है? वे स्त्रियां हंसने लगीं, और उन्होंने कहाः मंडन मिश्र का घर भी पूछने की कोई जरूरत है! तुम चले जाओ नगर में, जिस द्वार पर बैठे हुए तोता और मैनाएं उपनिषदों के, वेदों के वचन दोहराते हों, समझ लेना वही मंडन मिश्र का घर है।

चमत्कृत शंकर गांव में प्रवेश किए। और निश्चित ही मंडन मिश्र के द्वार पर पक्षी शुद्धतम रूप में वेदों के वचन उदधृत करते थे। उपनिषद दोहराते थे, गीता का गान करते थे, सैकड़ों विद्यार्थी आ-जा रहे थे—मंडन की ख्याति दूर-दिगंत तक थी। दूर-दूर देशों से विद्यार्थी उनके पास सीखने आते थे।

बहुत चकित हुए शंकर! और जब मंडन से मिले तो और भी चकित हुए। और उन्होंने मंडन से कहाः तुम्हारे द्वार पर ही तोते उपनिषद और वेद का पाठ नहीं करते, मैं तुम्हें भी देखता हूं कि तुम भी एक तोते हो। कंठ तक ही बात पहुंची है, बुद्धि तक पहुंची है, तुम्हारा हृदय अछूता है। तुम्हारा हृदय तुम जो कह रहे हो उसके पीछे नहीं। यह तुम्हारे प्राणों का आविर्भाव नहीं है।

ऐसा ही समझो न, बाजार से एक प्लास्टिक का फूल लाकर तुम किसी वृक्ष पर टांग दो। शायद दूर से धोखा दे जाए कि असली फूल है भ्रांति हो जाए; लेकिन पास आओगे तो समझ न पाओगे कि इस फूल में वृक्ष के प्राणों का संयोग नहीं है? वृक्ष की रसधार इस फूल में बहती नहीं है? वृक्ष की जड़ से यह फूल जुड़ा नहीं है? ज्ञान अगर प्लास्टिक के फूल जैसा वृक्ष पर लटका हो, तो आदमी पंडित होता है। और जब असली फूल की भांति वृक्ष की ऊर्जा से जन्मता है, वृक्ष की रसधार उसमें बहती है, तब प्रज्ञावान होता है, तब बुद्धपुरुष होता है।

शांडिल्य को तोतों की तरह याद मत रख लेना, अन्यथा इतनी अपूर्व यात्रा की और कहीं न पहुंचे—सिर्फ सपना देखा। इतने महिमापूर्ण वचनों में गहरे गए, मगर कुछ गहराई न मिली, सिर्फ थोड़ा-सा कूड़ा-कर्कट शब्दों का, सिद्धांतों का इकट्ठा हो गया। थोड़ा अहंकार और भर गया कि मैं जानता हूं। लेकिन जाना तो कुछ भी नहीं। इतना सस्ता तो जानना नहीं है। जानने में प्राण जोड़ने पड़ते हैं। अंतिम सूत्रों में प्राण जोड़ने की बात ही शांडिल्य ने कही है।

पहला सूत्र—

'अनन्याभक्त्या तद्बुद्धिः बुद्धिलयात् अत्यन्तम्।।

अनन्य अर्थात पराभक्ति से बुद्धि के अत्यंत लय होने से तन्मयी बुद्धि का उदय होता है।'

तन्मयी बुद्धि। बड़ा प्यारा शब्द उपयोग किया है! तुम जो जानते हो, जब तन्मय होकर जानोगे, जब वह तुम्हारा जानना होगा, निजी, जब तुम उसके गवाह हो सकोगे, जब तुम गवाही दे सकोगे कि हां, ऐसा है। अगर तुम कहते हो, परमात्मा है, क्योंकि वेद कहते हैं, तो तुम तोते हो; अगर तुम कहते हो कि परमात्मा है, क्योंकि शांडिल्य कहते हैं, या मैं कहता हूं, तो तुम यंत्रवत हो। खोज करो उस दिन की, तलाशो उस क्षण को, जब तुम कह सकोगे कि मैं कहता हूं कि परमात्मा है, क्योंकि मैं कहता हूं, क्योंकि मैंने जाना, क्योंकि मैंने देखा। देखने से कम पर भरोसा मत कर लेना! सुनी बात दो कौड़ी की, देखी बात में ही सचाई होती है। किसी ने कहा है, अब पता नहीं जानकर कहा हो, या उसने भी सुनकर कहा हो? कैसे निर्णय करोगे? फिर उसने जानकर ही कहा हो, तो जैसे ही जाननेवाला कहता है वैसे ही सुननेवाले के पास वही सत्य नहीं आता जो जाननेवाला कहता है।

सुननेवाले के पास शब्द आते हैं, सत्य नहीं आता। मैंने प्रेम किया, मैंने प्रेम जाना, और पैं तुमसे प्रेम की बातें कहूंगा, तुम्हारे पास प्रेम नहीं पहुंचेगा, प्रेम नाम का शब्द भर पहुंचेगा। और तुम मुझे लाख सुनो, लाख समझो, और लाख सम्हाल कर रख लो, तो भी तुम प्रेम क्या है, यह न जान सकोगे। प्रेम के संबंध में जानना और प्रेम को जानना अलग-अलग बातें हैं।

संबंध में जानना जानना है ही नहीं। संबंध का मतलब ही यही होता है कि तुमने जाना नहीं, ऐसे बाहर-बाहर घूमे, भीतर प्रवेश न किया, डरे-डरे रहे, जानने का साहस ही न किया। अब प्रेम के संबंध में एक तो जानने का ढंग है कि किसी के प्रेम में पड़ जाओ और एक ढंग है कि किसी ग्रंथालय में जाकर बैठ जाओ और प्रेम के संबंध में जितने शास्त्र लिखे गए हैं उन सबको पढ़ डालो। उन शास्त्रों को पढ़कर तुम भी शास्त्र रच सकते हो। उन शास्त्रों को पढ़कर तुम भी पी. एच. डी. की थीसिस लिख सकते हो, लेकिन फिर भी तुमने प्रेम को नहीं जाना। प्रेम को जानने के लिए प्रेम करना जरूरी है। और जो तुम जानते हो, जब तन्मय होते हो, उसके साथ एकरस होते हो, एक भाव होते हो, जब तुम्हारा तादात्म्य होता है, जब जाननेवाला और जानने में भेद नहीं होता—जब जाननेवाला ही 'जानना' हो जाता है—जब दोनों के बीच की सब सीमा, सब अंतराल खो जाता है, जब दोनों एक ही हो जाते हैं—अनन्यभाव हो जाता है—जब प्रेम और प्रेमी में जरा भी भेद नहीं होता, जब तुम प्रेमरूप होते हो, तब जानते हो। तब तुम्हारे भीतर प्रकट होता है जो छिपा था।

इन सूत्रों को सुना, सुनकर रुक मत जाना। इसलिए कहा भी नहीं था। इसलिए शांडिल्य ने भी इन्हें लिखा नहीं था। इसलिए मैंने भी इन्हें तुम्हारे सामने पुनः नहीं कहा है। सिर्फ इसीलिए कहा है कि इससे तुम्हारी प्यास प्रज्ज्वलित हो। इससे तुम्हें एक याद आए कि ऐसा भी संभव है। बस इतना याद आ जाए कि ऐसा भी संभव है, सिर्फ तुम्हारे भीतर एक जिज्ञासा उमग आए। तुम्हारे भीतर एक बुझी हुई प्यास पड़ी है, सदियों से बुझी पड़ी है, तुमने उसे ढांक दिया है, क्योंकि वह प्यास खतरनाक है। उस प्यास के लिए दांव लगाना पड़ता है। तुमने उसे छिपा रखा है। तुमने उसकी जगह छोटी-छोटी प्यासें पैदा कर ली हैं।

विराट प्यास तो एक ही है मनुष्य के भीतर कि मैं जान लूं—सत्य क्या है? या कहो परमात्मा, या कहो इस प्रकृति का रहस्य, कुछ भी नाम दो। गहनतम में, अंतरतम में तो पड़ी एक ही जिज्ञासा है और एक ही खोज है, हर आदमी की, हर प्राण की, कि मैं जान लूं कि यह अस्तित्व क्या है? मैं आया कहां से? मैं जाता कहां हूं? मैं हूं कौन? मेरे होने का प्रयोजन क्या है? मेरे सारे जीवन की दौड़-धूप की निष्पत्ति क्या है? यह जन्म और मृत्यु के बीच जो फैला है जीवन, इसका प्रयोजन क्या है, इसकी अर्थवत्ता क्या है? मैं इस अर्थ को जान लूं, क्योंकि इस अर्थ को बिना जाने मैं जाऊंगा तो मेरा जीना छिछला-छिछला होगा। इस अर्थ को बिना जाने मैं जो भी करूंगा, वह गलत होगा। क्योंकि जिसे अपने ही होने का पता नहीं, और अस्तित्व क्यों चल रहा है इसका पता नहीं, वह कैसे ठीक कर पाएगा? वह जो भी करेगा, वह अंधे के द्वारा अंधेरे में टटोलने जैसा होगा। भूल-चूक से शायद सत्य पर हाथ पड़ जाए, तो भी सत्य तुम्हारे हाथ नहीं आ पाएगा। हाथ पड़ भी जाएगा तो भी छूट जाएगा। तुम पहचान ही न पाओगे कि यह सत्य है। जिसको प्यास ही नहीं है, वह जल को कैसे पहचानेगा? और जो हीरों की खोज में नहीं गया है वह हो सकता है हीरों की खदान पर भी पहुंच जाए तो भी खाली हाथ ही आएगा, भिखमंगा ही लौट आएगा। जो खोजने गया है, जिसने बहुत सपने देखे हैं, बहुत गहन विचार किया है, जो तड़पा है रातों में, जो सोया नहीं, दिन हो कि रात जिसे एक धुन सवार रही है—कि जान लूं हीरे-जवाहरात कहां हैं, वह अगर पहुंच जाए तो शायद पहचान ले। इतनी प्रगाढ़ता से जिसने सपना देखा हो उसे धीरे-धीरे पहचान की कला आ जाती है।

तो इन सूत्रों को तुमने सुना है, बड़े प्रेम से सुना है, बड़े आह्लाद से सुना है, मगर उतने पर बात पूरी नहीं हो जाती, उतने पर शुरू होती है! तो हमने शुरू किया था 'अथातो जिज्ञासा' से कि अब हम जिज्ञासा करें। और मैं चाहूंगा कि हम अंत भी इसी पर करें। क्योंकि अब एक दूसरे तल पर जिज्ञासा होगी—अस्तित्व के तल पर। एक

जिज्ञासा होती है—बौद्धिक, 'इंटलेक्चुअल' और एक जिज्ञासा होती है—अस्तित्वगत, 'एक्जिस्टेंशियल'। बुद्धि की जिज्ञासा आज पूरी होगी, अब अस्तित्व की जिज्ञासा शुरू करनी होगी।

पहला सूत्र कहता है, 'अनन्य अर्थात पराभक्ति से बुद्धि के अत्यंत लय होने से, तन्मयी बुद्धि का उदय होता है।

एक-एक शब्द समझना।

अनन्य! जब तक तुम्हारे और अस्तित्व के बीच जरा-सा भी द्वेष है, जरा-सी भी दुविधा है, जरा-सा भी द्वैत है, तब तक तुम जान न सकोगे। क्योंकि जानना अद्वैत में घटता है। जानने का एकमात्र ढंग प्रेम है। प्रेम के बिना कोई जानना नहीं होता। जानकारी होती है, जानता नहीं होता।

ऐसा समझो, कि एक वनस्पतिशास्त्री इस बगीचे में आए, वृक्षों को देखे-जरूर बहुत उसकी जानकारी है, वह हर वृक्ष पर लेबल लगा सकता है कि इसका नाम क्या है, किस जाति का है, कितनी उम्र उसकी होती है, कब फूल लगेंगे, कब फल लगेंगे, लगेंगे कि नहीं लगेंगे। कितना ऊंचा जाएगा, यह सब बता सकता है, मगर यह सब जानकारी है। इस वृक्ष के साथ इसकी कोई अनन्यभाव-दशा नहीं है। इसने किताबों में पढ़ा है, यह पहचान लेता है कि जो किताबों में लिखा है वह इसी वृक्ष के बाबत लिखा है, इस वृक्ष के संबंध में दोहरा देता है। एक कवि आए, एक प्रेमी आए, एक चित्रकार आए, उसके देखने का ढंग और है। वह इस वृक्ष को देखे, वह इस वृक्ष को गले लगा ले, आलिंगन करे। वह इस वृक्ष के साथ मस्त हो जाए। इस वृक्ष की हरियाली में डूब जाए, इस वृक्ष की हरियाली को अपने में आमंत्रित कर ले। वह वृक्ष के पास बैठे, उठे, वह वृक्ष के साथ दोस्ती करे, मैत्री बनाए; कभी सुबह सूरज के ऊगते क्षण में वृक्ष को देखे, कभी सांझ सूरज के डूबते क्षण में वृक्ष को देखे, कभी चांदनी से भरी रात में, कभी तारों से भरी रात में, कभी अंधेरी अमावस में, कभी पूर्णिमा में; कभी वृक्ष मस्त है और कभी वृक्ष उदास है, और कभी वृक्ष आह्लाद में है, और कभी वृक्ष बड़े विषाद में हैं; और कभी वृक्ष पर फूल खिले हैं, और कभी वृक्ष के पत्ते भी गिर गए हैं और वृक्ष नंगा खड़ा है। कभी शीत है और कभी गर्मी है। वृक्ष की अनेक-अनेक भावभंगिमाओं को पहचाने, अनेक-अनेक मुद्राओं को पहचाने, वृक्ष के साथ मैत्री करे, वृक्ष से बतियाए, बातचीत करे, बोले, संवाद करे, तो एक और ढंग का जानना होता है। जिसको प्रेम के द्वारा जानना कहते हैं।

चीन के एक सम्राट ने एक बहुत बड़े झेन चित्रकार को कहा कि मुझे राजचिन्ह के लिए एक मुर्गे की तस्वीर चाहिए। मगर तस्वीर ऐसी हो कि जैसी कभी किसी मुर्गे की न हुई हो। तो तुम यह तस्वीर बना लाओ। प्रसिद्ध चित्रकार था। उसने कहा; कोशिश करूंगा। सम्राट ने कहा, समय कितना लगेगा? उसने कहा कि कम से कम तीन वर्ष तो लग ही जाएंगे। सम्राट ने कहा, पागल हुए हो, एक मुर्गे की तस्वीर! उस चित्रकार ने कहा कि तस्वीर तो सेकेंडों में बन जाएगी, मगर तस्वीर बनाने के पहले मुझे मुर्गा बनना होगा। नहीं तो मैं मुर्गे को भीतर से कैसे पहचानूंगा? बाहर से तो अभी बना दूं। जिंदगी मेरी चित्र बनाते बीती है, अभी बना दूं। लेकिन वे लकीरें ही होंगी, उनमें मुर्गा नहीं होगा। ऊपर की रूपरेखा होगी।

यही तो फर्क है एक फोटोग्राफ में और एक चित्रकार के द्वारा बनाए गए चित्र में। कैमरा ऊपर की रूपरेखा पकड़ता है। बहुत लोग सोचते थे, जब कैमरा बन गया तो अब चित्रकार की कोई जरूरत न रह जाएगी। तुम चकित होओगे, जबसे कैमरा बना है तब से चित्रकार की कीमत बहुत बढ़ गयी। क्योंकि पहली दफे फर्क साफ हो गया कि कैमरा सिर्फ लकीरें खींचता है, बाहर की रूपरेखा। लेकिन अंतस्तल रह जाता है।

उस चित्रकार ने कहा, तीन वर्ष तो मुझे लग ही जाएंगे। मुर्गों के साथ रहूंगा, मुर्गा बनूंगा, मुर्गे को भीतर से जानूंगा। जब मुर्गा सुबह बांग देता है, जब तक मैं भी वैसी बांग न दे सकूं, जब तक बांग मेरे भीतर से न उठ सके, तब तक मैं कैसे जानूंगा कि मुर्गे की शान क्या है, गरिमा क्या है, महिमा क्या है? सम्राट कुछ राजी तो नहीं हुआ, तीन साल बहुत वक्त होता है, लेकिन उसने कहा, अच्छा ठीक है, तीन वर्ष सही!

एक वर्ष बाद उसने आदमी भेजे कि पता लागाओ, उस पागल का क्या हुआ? वे गए, उन्होंने देखा वह जंगल में सरक गया है। खोजबीन की तो पता चला यह जंगली मुर्गों के साथ रह रहा है। वह गए भी तो उस चित्रकार ने उन्हें पहचाना भी नहीं। वह तो वैसे ही मुर्गों के बीच मुर्गा बनकर बैठा था, बांग दे रहा था। उन्होंने लौटकर कहा कि वह आदमी पागल हो गया है, अब आप प्रतीक्षा मत करो। अब वह आएगा नहीं। मुर्गा बनाने को कहा था उसे, वह खुद मुर्गा बन गया है। अब उससे क्या आशा है कि वह चित्र बनाएगा।

लेकिन तीन साल बाद चित्रकार लौटा। आकर उसने सम्राट के सामने यही मुर्गे की तस्वीर बना दी, सेकेंड लगे। कहते हैं, वैसी तस्वीर कभी नहीं बनायी गयी। तस्वीर सुरक्षित है अभी भी। और उस तस्वीर की सबसे बड़ी खूबी यह है कि मुर्गे भी उसे पहचान लेते हैं। और कोई तस्वीर तुम रख दो कमरे में, मुर्गा आएगा, ऐसे निकल जाएगा। मुर्गों को तस्वीर से क्या लेना-देना! लेकिन वह जो तस्वीर है, जो तीन साल चित्रकार ने मुर्गा बनकर बनायी है, मुर्गा आता है तो दरवाजे पर ठिठक जाता है। देखता है उसको, जीवंत है—डर भी जाता है, क्योंकि जंगली मुर्गे की तस्वीर है, जैसे अब बांग दी, तब बांग दी, बस अब बांग देने को ही है, जैसे सुबह होने को ही है।

यह एक और ढंग है जानने का। यह अस्तित्वगत ढंग है। जानकारी बाहर से मिल जाती है, जानना भीतर से करना होता है, एक तादात्म्य, एक अनन्यभाव। परमात्मा को कैसे जानोगे? शांडिल्य कहते हैं अनन्य भाव से। परमात्मा के साथ एकरूप हो जाना होगा। भक्त को भगवान और अपने बीच जरा-सा भी फासला न रखना होगा। न जरा-सी लाज, न जरा-सा संकोच, न जरा-सी लज्जा। मीरा जो कहती है, 'सब लोकलाज खोयी', वह किसलिए? क्योंकि जरा-सी ही लोकलाज रह जाए, तो उतना ही अंतराल रह जाता है, उतना ही फासला रह जाता है। प्रेम में हम सब फासले गिरा देते हैं। प्रेम में हम नग्न हो जाते हैं। प्रेम में वस्त्रों की जरूरत नहीं रह जाती। वस्त्र तो उनके लिए हैं जिनसे हमारा फासला है। वस्त्र तो उनके लिए हैं जिनसे हम कुछ छिपाना चाहते हैं। वस्त्र तो उनके लिए है जिनके सामने हम पूरे नहीं खुलना चाहते। परमात्मा के सामने तो भक्त को पूरा खुलना होगा, नग्न होना होगा। बुरा-भला जैसा है, सुंदर-कुरूप जैसा है, साधु-असाधु जैसा है, सब खोलकर रख देना है। सारे हृदय को खोल देना है।

सब तरह से अपनी अस्मिता को छोड़ देगा जो, वही अनन्यभाव को उपलब्ध होता है। जब तक अहंकार है तक तक अनन्यभाव नहीं, तब तक अन्य भाव है।

इस पूरे दर्शन को खयाल से समझ लो।

जब तक मुझे खयाल है कि मैं हूं, तब तक मेरे और परमात्मा के बीच दूरी रहेगी।

जलालुद्दीन रूमी की प्रसिद्ध कविता है—

एक प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी। प्रेयसी ने भीतर से पूछा—कौन है? और प्रेमी ने कहा—मैं हूं। क्या मेरे पगचाप तुझे सुनायी नहीं पड़े? क्या मेरे हाथ की दस्तक तू पहचान नहीं पायी? सन्नाटा हो गया भीतर। प्रेमी ने फिर द्वार खटखटाया कि बात क्या है? मैं आया हूं, तेरा प्रेमी। और प्रेयसी ने भीतर से कहा, इस घर में दो के रहने के लिए जगह नहीं। यह प्रेम का घर है, यहां एक ही हो सकता है, दो नहीं हो सकते। कबीर ने कहा है न—स्मरण करो—'प्रेम गली अति सांकरी तामें दो न समायं'। वहां एक ही बन सकता है प्रेम की गली में। वहां दो का उपाय नहीं है, गली बड़ी संकरी है। जीसस का भी प्रसिद्ध वचन है। 'स्ट्रेट इज माय वे, बट इट इज नैरो'। सीधा है मेरा मार्ग, पर बड़ा संकीर्ण। और ईसाई सदियों से इसकी व्याख्या करते रहे हैं, और अड़चन में रहे हैं, कि संकीर्ण क्यों? उन्हें कबीर का वचन समझ में आ जाए तो जीसस के वचन का अर्थ समझ में आ जाए, संकीर्ण क्यों? सीधा है मेरा मार्ग और संकीर्ण। जीसस यह क्यों कहते है कि और संकीर्ण? बस इतने पर ही बात उन्होंने छोड़ दी है, आगे कुछ कहा नहीं।

कबीर के वचन में उसकी व्याख्या हैः 'प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समायं।' संकीर्ण है मार्ग क्योंकि वहां दो नहीं बन सकते, बस एक ही बन सकता है। एक के ही गुजरने का उपाय है। दो एक साथ नहीं गुजर सकते।

प्रेमी चला गया। वर्ष बीते। उसने अपने 'मैं' को गलाया, फिर लौटा। द्वार पर दस्तक दी। भीतर से फिर वही सवालः कौन? और इस बार उसने कहा, तू ही है। फिर द्वार खुले। जिस दिन तुम कह सकोगे समग्र मन से कि तू ही है, उस दिन अनन्यभाव। उस दिन प्रेम का द्वार खुलता है। और प्रेम ही मंदिर है। और प्रेम के मंदिर में जो गया, वही परमात्मा में गया। और सब मंदिर थोथे हैं। और सब मंदिर तुम्हारे बनाए हुए हैं। और सब मंदिर खेल-खिलौने हैं। हिंदू का, मुसलमान का, ईसाई का, जैन का, बौद्ध का—वे सब राजनीतियां हैं, उनका कोई मूल्य नहीं। उनका धर्म की दृष्टि से कोई अर्थ नहीं है। धर्म की दृष्टि से तो एक ही मंदिर है, वह मंदिर प्रेम का है, अनन्यभाव का। फिर तुम कहां बैठकर उससे साथ एक हो गए, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता—काबा में, कि काशी में, कि कैलाश में। कहां बैठकर तुमने अनन्यभाव को जगा लिया, कहां बैठकर तुम उसके साथ डोलने लगे, मस्त हो गए, मदमस्त हो गए, कहां बैठकर तुमने उसकी शराब पी ली, कहां बैठकर तुमने अपने को खोल दिया, उसकी धार को बरस जाने दिया, उसके साथ नाच उठे—कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी पवित्र स्थल पर जाने की कोई जरूरत नहीं है, जिस जगह अनन्यभाव हो जाएगा, वहीं तीर्थ बन जाते हैं। जिस व्यक्ति का अनन्यभाव हो जाता है, उसके पैर जहां पड़ते हैं वहां तीर्थ बन जाते हैं। वह जहां बैठता है, वहां मंदिर उठ आते हैं।

अनन्यभाव। मैं अन्य नहीं हूं। तू अन्य नहीं है। मैं तेरी ही तरंग; मैं तेरा ही पत्ता, तू मेरा वृक्ष; मैं तेरी लहर, तू मेरा सागर; मैं तेरी एक अभिव्यक्ति, एक भावभंगिमा, एक मुद्रा। अनन्यभाव हो जाए, तो बुद्धि अत्यंत लय हो जाती है। और तब तन्मयी बुद्धि का जन्म होता है।

जब तक तुम सोचते हो मैं अलग हूं, तब तक एक अहंकारी बुद्धि है। यह अहंकार ही तुम्हारी बुद्धि को छोटा बनाए हुआ है। अन्यथा तुम्हारे पास जो बुद्धि है वह उतनी ही विराट है जितनी परमात्मा की बुद्धि। तुम्हारे भीतर जो प्रतिभा है, वह परमात्मा की प्रतिभा है। लेकिन तुमने उसे बड़ा छोटा बना रखा है। तुमने उस पर बड़ी बागुड़ लगा दी। तुमने बड़ी दीवाल उठा दी है। तुम दीवाल पर दीवाल उठाने में कुशल हो गए हो। हिंदू की दीवाल, मुसलमान की दीवाल, ब्राह्मण की दीवाल, शूद्र की दीवाल और दीवाल पर दीवाल हैं। दीवालें ही उठाते गए हो। तुम कितनी हजारों दीवालों के पीछे दब गए हो! कितने सिकुड़ गए हो! फैलो! मगर फैलाव उसके साथ है। अहंकार तो छोटा ही होगा।

ब्रह्म शब्द का अर्थ जानते हो? ब्रह्म शब्द का अर्थ हैः जो विस्तीर्ण है, जो फैला हुआ है। 'विस्तार' शब्द भी ब्रह्म जिस धातु से आता है उसी से आता है। इसीलिए तो हम इस विश्व को 'ब्रह्मांड' कहते हैं—जो फैला हुआ है। यह फैलता ही चला गया है। और यह हमारे रहस्यवादियों की जो अनुभूति थी, आधुनिक भौतिकशास्त्र इसके साथ सहानुभूति में है। पांच हजार साल पहले रहस्यवादी संतों ने कहा थाः यह ब्रह्मांड है। अर्थात यह फैलता हुआ विश्व है। और अभी इस सदी में अलबर्ट आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि यह जगत जो है, थिर नहीं है। 'दिस इज ऐन एक्सपैन्डिंग यूनिवर्स'। यह फैलता हुआ जगत है। यह रोज फैल रहा है, बड़ी गति से फैल रहा है। यहां सब चीज फैल रही है। बीज वृक्ष हो रहे हैं। बूंद सागर बन रही है। इस फैलते हुए जगत में तुम यह छोटा-सा क्षुद्र अहंकार लिए बैठे हो! वही तुम्हारी अड़चन है, वही तुम्हारा नर्क, वही तुम्हारी पीड़ा, वही तुम्हारा बंधन। उसी में तुम जकड़े हो।

तोड़ दो ये जंजीरें। और ये जंजीरें सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं दे रही हैं। इनके तोड़ते ही तुम अचानक पाओगे, तुम्हारे भीतर प्रतिभा जन्मी। ऐसी प्रतिभा जो परमात्मा की प्रतिभा है। फिर तुम पर कोई सीमा नहीं है। और मैं तुम्हें तभी ब्राह्मण कहूंगा, जब तुम पर कोई सीमा न रह जाए। ब्राह्मण का अर्थ भी वही होता है, जिसने

ब्रह्म को जाना। बुद्ध ने कहा कि जो ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ, उसको मैं ब्राह्मण नहीं कहता हूं। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं जो ब्रह्म को जाना।

ठीक परिभाषा की है।

किसी घर में पैदा होने से कोई कैसे ब्राह्मण होता है! पैदा तो सभी शूद्र की तरह होते हैं—ब्राह्मण भी। पैदा तो शूद्र की तरह होते हैं। शूद्र का अर्थ होता है: क्षुद्र, सीमित, संकीर्ण। अहंकार शूद्रता की जड़ है। जो भी अहंकारी है, वह शूद्र है। और जो निर-अहंकारी है, वह ब्राह्मण है। निर-अहंकार अनन्यभाव है। अनन्यभाव में ब्राह्मणत्व है। तब तन्मयी बुद्धि पैदा होती है।

क्या है तन्मयी बुद्धि?

तन्मयी बुद्धि का अर्थ होता है, अब मेरी बुद्धि तो गयी, अब उसकी बुद्धि मेरे भीतर काम करना शुरू कर दी। जब बुद्ध बोलते हैं तब बुद्ध थोड़े ही बोलते हैं, ब्रह्म बोलता है। इसलिए तो हमने वेदों को अपौरुषेय कहा है—पुरुष ने उन्हें नहीं रचा। पुरुष के द्वारा रचे गए हैं, लेकिन पुरुष उनका रचयिता नहीं है, सिर्फ लेखक है, माध्यम है।

इसलिए तो कुरान को हम 'हलहाम' कहते हैं। उतरा। मुहम्मद पर उतरा, तो मुहम्मद माध्यम हैं, 'मीडियम' हैं। मगर उतरा किसी अज्ञात लोक से हैं। मुहम्मद ने सिर्फ हम तक उसे पहुंचा दिया है। इसलिए मुसलमान मुहम्मद को पैगंबर कहते हैं—पैगाम पहुंचानेवाला; संदेशवाहक। पोस्टमैन। चिट्ठी परमात्मा की लिखी हुई है, पाती उसके घर से आयी है, मुहम्मद उस पाती को हम तक पहुंचा दिए हैं, सिर्फ माध्यम हैं। जैसे बांसुरी से किसी ने गाया। बांसुरी नहीं गाती—बांसुरी क्या गाएगी? बांसुरी तो बस पोला बांस है, उसमें कहां गान, उसमें कहां गीत? बांसुरी तो जड़ है। लेकिन किसी के ओठों पर रख जाती है, बस फिर उससे गीत बहने लगता है।

ऐसे ही वेद के ऋषि हैं, ऐसे ही कुरान है, ऐसे ही बाइबिल है, ऐसे ही दुनिया के सारे अपूर्व धर्मशास्त्र हैं। बांस की पोंगरी। उनमें से परमात्मा बोला है।

तन्मयी बुद्धि का अर्थ होता है: तुम गए, परमात्मा प्रविष्ट हुआ। तुमने जगह खाली कर दी। अहंकार से भरी बुद्धि विदा हो गयी, अब विराट बुद्धि का अवतरण हुआ। तुमने अपने आंगन के चारों तरफ जो दीवाल खींच दी थी, वह गिरा दी। अब तुम्हारा आंगन आकाश हो गया। तन्मयी बुद्धि का वही अर्थ है: आंगन को आकाश बना लेना है। और आंगन आकाश है, मगर तुमने एक छोटी-सी दीवाल खींच रखी है। तुमने कुछ इंट-पत्थर जोड़ कर एक दीवाल बना दी है। तुमने आकाश को खंड में तोड़ लिया है—जरा-सा कर दिया, छोटा कर दिया। इतना विराट आकाश तुम्हारा हो सकता था।

स्वामी रामतीर्थ जब अमरीका गए, उनकी मस्ती लोगों की समझ में न आयी। अपूर्व थी उनकी मस्ती—एक फकीर की मस्ती! पश्चिम से फकीर खो गया है। यहां भी खोता जा रहा है। क्योंकि मस्ती ही खोती जा रही है, क्योंकि तन्मयी बुद्धि खोती जा रही। बांस की पोंगरियां रह गयी हैं, गीत तो दिखायी नहीं पड़ता। रामतीर्थ की बांस की पोंगरी बांस की पोंगरी नहीं थी, बांसुरी थी; वेणु थी। उसमें से गीत उतर रहा था। जो भी उनके पास आते, देखते कि कुछ हो रहा है, कुछ घट रहा है—कुछ ऊर्जा, कुछ आभा! अंधों को भी दिखायी पड़ जाती। और बहरों को भी कुछ सुनायी पड़ जाती। और जो उनके पास आने की हिम्मत कर लेते, उनको थोड़ा रस भी लग जाता।

पूछा लोगों ने उनसे कि आपके पास कुछ दिखायी नहीं पड़ता, फिर आप इतने मस्त क्यों हैं? क्योंकि अमरीका तो एक ही भाषा समझता है। क्या तुम्हारे पास है? वही भाषा है। धन है तुम्हारे पास, तो तुम मस्त होने के अधिकारी हो। बड़ा मकान है, बड़ा पद है, प्रतिष्ठा है, तो तुम मस्त होने के अधिकारी हो। इस आदमी के पास कुछ भी नहीं है, ऐसा आदमी तो आत्महत्या कर लेता है। इतनी मस्ती किस कारण? तुम्हारे पास कुछ नहीं—मकान नहीं, पत्नी नहीं, धन-दौलत नहीं, कुछ भी नहीं, तुम मस्त क्यों हो रहे हो! रामतीर्थ ने कहा: जो

मेरे पास था, बहुत छोटा था। छोटे के कारण मैंने उसे छोड़ दिया। एक आंगन क्या छोड़ा, पूरा आकाश मेरा हो गया। एक घर क्या छोड़ा, सारे घर मेरे हो गए। इधर छोड़ना था कि उधर साम्राज्य हो गया मेरा। तब से मैं बादशाह हो गया हूं। लोग कहते हैं फकीर, और मैं हंसता हूं, क्योंकि मैं तब से बादशाह हो गया हूं। वह अपने को 'बादशाह राम' कहते थे। उनकी बड़ी प्रसिद्ध किताब हैः 'बादशाह राम के छः हुक्मनामे'। बादशाह ही हुक्मनामे लिख सकता है। आज्ञाएं! थे भी बादशाह!

हर एक बादशाह होने को पैदा हुआ है, मगर फकीर, भिखमंगा रह कर हम मर जाते हैं। मांगते-मांगते ही जिंदगी चुक जाती है। तन्मयी बुद्धि हो जाए, तो बादशाहत मिल जाती है। तुम्हारी बुद्धि तुम्हारी दरिद्रता है। तुम दरिद्र ही रहोगे, याद रखना, तुम्हारे पास कितना ही धन हो, और कितना ही पद हो, कितनी ही प्रतिष्ठा हो, तुम दरिद्र ही रहोगे। तुम्हारे होने में दरिद्रता छिपी है। तुम दरिद्रता का मूल कारण हो, मूल जड़ हो। तुम जाओ, तुम विदा हो जाओ। तुम अपने को नमस्कार कर लो। तुम अपने से हाथ जोड़ लो। जाओ नदी में सिरा दो अपने को, जैसे कभी-कभी गणेशजी को सिरा आते हो। उस सिरा ने से कुछ भी न होगा। यह जो भीतर गणेशजी बैठे हैं—सूंड़ अहंकार की—इनको सिरा आओ। और उसी दिन तुम पाओगे; तन्मयी बुद्धि का जन्म हुआ। आकाश मिला, विराट मिला, जिसकी कोई सीमा नहीं—अनंत और असीम।

'अनन्य अर्थात पराभक्ति से बुद्धि के अत्यंत लय होने से तन्मयी बुद्धि का जन्म होता है'। और तन्मयी बुद्धि यानी बुद्धत्व।

कृष्ण का आश्वासन है गीता मेंः

'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेकं ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते।।

मेरी माया में बंधे हो तुम, किंतु मुझमें शरण लेते ही, अनन्य भक्ति के जन्मते ही, माया से मुक्त हो जाओगे।'

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

तुम मेरी माया की शक्ति में उलझ गए हो। तुमने मुझे देखा ही नहीं। तुम मेरे सेवकों में उलझ गए हो। तुमने मालिक नहीं देखा। तुम्हारी हालत ऐसी है जैसे तुम राजमहल गए और द्वारपाल को ही सम्राट समझकर उसके पैर पकड़ लिए। द्वारपाल भी शानदार होता है। गर्वीला होता है, हाथ में उसके तलवार होती है, सुंदर उसकी वेशभूषा होती है, चमकदार बटन होते हैं उसके कोट पर, पॉलिश किए हुए जूते होते हैं—उसकी अकड़ देखते बनती है। सच तो यह है कि जमाना कुछ ऐसा बदला कि सम्राट तो सीधी-सादी वेषभूषा में रहने लगे हैं, द्वारपाल के पास ही चमकदार वेषभूषाएं रह गयी हैं। अब सम्राट इतने बुद्धू नहीं हैं। अब तो द्वारपाल ही चमकदार बटने लगाता है। मगर तुम एकदम झुक जाओगे। तुम उसके पैर पकड़ लोगे। और शायद समझोगे यही सम्राट है। तो तुम चूक गए। तो तुम दरवाजे पर ही अटक गए। इस जगत में तुमने अगर कोई भी चीज पकड़ ली है—धन, पद, प्रतिष्ठा—तो तुम द्वारपालों में उलझ गए।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

तुम मेरी दुष्परिहार्य माया में उलझ गए हो। तुमने मुझे देखा ही नहीं। जो मेरी शरण आ जाता है—मामेकं ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते—वह इस माया से तर जाता है। तुम जरा मेरी तरफ देखो, कृष्ण कहते हैं। मालिक की तरफ देखो। तुम उसकी साधारण शक्तियों में उलझ गए हो। शक्तियों के मूलस्रोत की तरफ देखो। उसकी शरण आ जाओ। तुम ऐश्वर्य में उलझ गए हो, ईश्वर की तरफ देखो, जो सारे ऐश्वर्य का मूलस्रोत है। उसके चरणों में गिर जाओ। उसके चरण में गिर जाने का नाम। अनन्यभक्ति।

लेकिन हम क्षुद्र में उलझे हैं। हमारा प्रेम भी देह में उलझा है। हमारा प्रेम भी नाक-नक्शों में उलझा है। हमारा प्रेम भी बड़ा दयनीय है। मगर हम वहीं अपना गुणगान किए रहते हैं। सुनो—

अब तो नाकामी ही तकदीर बनी जाती है

जिंदगी दर्द की तसवीर बनी जाती है
तेरा मिलना ही था मेराजे-मुहब्बत लेकिन
तुझसे दूरी मेरी तकदीर बनी जाती है।
है करिश्मा यह अनोखा शबे-महजूरी का
तीरगी सुबह की तनवीर बनी जाती है
राहें मसदूद हैं, महदूद है दुनिया मेरी
जिंदगी हलकए-जंजीर बनी जाती है
महफिले-हुस्न की थी, जहन में हल्की-सी झलक
वही फरदौस की तस्वीर बनी जाती है
कौन-सा राज है, दिल का जो नहीं उन पै अयां
खामुशी ही मेरी तकरीर बनी जाती है
आह की बे-असरी का भी मुझे होश नहीं
बे-खुदी जल्वए-तासीर बनी जाती है
राजे-गम कैसे छुपाऊं कि खामोशी भी मेरी
मेरे एहसास की तफसीर बनी जाती है।

साधारण प्रेम को लोग इतना गुणगान करते हैं कि उतना गुणगान अगर परमात्मा का करें, तो सब मिल जाए। कोई किसी की आंखों का दीवाना हो गया है, कोई किसी के नाम-नक्श का, कोई किसी के बालों के ढंग का, कोई किसी के बोलने की शैली का, कोई किसी की आवाज का, कोई किसी के चलने का, उठने का, बैठने का कोई किसी के रंग का। तुम्हारी दीवानगी भी बड़ी अजीब है! तुम बड़ी छोटी बातों में उलझ जाते हो। और नाक कितनी ही सुंदर हो और ओंठ कितने ही रस भरे मालूम पड़ते हों, सब मिट्टी है और सब मिट्टी में ही गिरेगा और मिल जाएगा। सब मिट्टी से ही उठा है और मिट्टी में ही गिर जाने वाला है। इस सारी मिट्टी के खेल के बीच परमात्मा भी छिपा है, मगर तुम बाहर-बाहर ही भटक जाते हो। तुम द्वारपाल में ही उलझ जाते हो।

तुमने जब किसी सुंदर स्त्री के मोह में अपने को बंधा पाया या सुंदर पुरुष के मोह में बंधा पाया, तब तुमने याद भी किया है कि तुमने उसके भीतर छिपे परमात्मा को देखा या नहीं? फिर अगर तुम दुखी होते हो तो आश्चर्य नहीं है। और अगर तुम्हारा प्रेम जंजीरें ढाल देता है तुम्हारे लिए तो आश्चर्य नहीं है। और अगर तुम्हारा प्रेम तुम्हारे लिए दुख के न-मालूम कितने-कितने उपाय ले आता है तो आश्चर्य नहीं है! मूल भूल हो गयी। तुमने मालिक को नहीं पहचाना। तुम केवल मालिक के कपड़ों से उलझ गए। परमात्मा का यह सारा जगत उसके वस्त्र हैं, उसकी अभिव्यक्ति है। तुम इसी में मत खो जाना। यह अभिव्यक्ति सुंदर है, मगर उसके मुकाबले क्या, जो इसका मालिक है?

सूफी फकीर स्त्री राबिया अपने झोपड़े में बैठी सुबह ध्यान करती थी। मस्त थी! होगी अनन्य भक्ति में। जगी होगी तन्मयी बुद्धि। उसके घर एक फकीर और ठहरा हुआ था—हसन नाम का फकीर। वह उठा, वह बाहर आया। सूरज निकलता था, सूरज की लाली पूरब पर फैली थी, पक्षी उड़ते थे, गीत गाते थे, वृक्ष जाग रहे थे; सुंदर सुबह थी, सुहानी सुबह थी, बड़ी मदमाती सुबह थी; हसन ने जोर से पुकारा कि राबिया, तू भीतर कोठरी में बैठी क्या करती है? बाहर आ, बड़ी सुंदर सुबह पैदा हो रही है। बड़ा प्यारा सूरज निकल रहा है। पक्षी गीत गा रहे हैं वृक्ष जागे हैं, फूल खिले हैं। हवाओं में बड़ी मदमाती गंध है। तू बाहर आ! हसन ने सोचा भी नहीं था, राबिया तो बाहर न आयी, भीतर से खिलखिलाने की आवाज आयी। और राबिया ने कहाः हसन, तुम कब तक बाहर भटकते रहोगे? सुबह सुंदर है, मगर मैं सुबह बनानेवाले को भीतर देख रही हूं; तुम्हीं भीतर आ जाओ। बाहर सुंदर होगा, जरूर सुंदर है—क्योंकि जिसने बनाया वह सुंदर है। मूर्ति जब इतनी सुंदर है तो मूर्तिकार

कितना सुंदर न होगा। फूल जब इतने सुंदर हैं तो वह चितेरा कितना सुंदर न होगा जिसने फूल रचे! चांद-तारे जब इतने सुंदर हैं तो जरा हस्ताक्षर तो खोजो, जिसके हस्ताक्षर हैं इनके ऊपर? उस मालिक की तलाश करो।

माया में मत उलझो, जागो! माया के भीतर कौन खड़ा है? इस जादू में मत पड़ जाओ, जादूगर को तलाशो। मगर नहीं, हम उलझे ही रहते हैं। एक आशा टूटती है, हम दूसरी बना लेते हैं। उम्मीद पर उम्मीद जन्माते चले जाते हैं।

शमएं बुझीं, फलक से सितारे चले ग
उनसे बिछुड़ के सारे सहारे चले गए
मोजे-बलाओ शोरिशे-तूफां का क्या गिला
पास आके और दूर किनारे चले गए
कैसी बहार, कैसा चमन और कहां के फूल
तुम क्या गए यह सारे नजारे चले गए
तुम यूं गए कि मुड़के भी देखा न एक बार
हम अश्कबार तुमको पुकारे चले गए
मामूर कर दिया था जिन्हें तुमने हुस्न से
रातें गयीं, वह चांद-सितारे चले गए
बे-आसरा खुदा न करे यूं भी कोई हो
एक-एक करके सारे सहारे चले गए
'नुदरत' कभी तो आयेगा दौरे-बहार भी
इस आरजू में वक्त गुजारे चले गए

बस लोग गुजार रहे हैं वक्त इसी आरजू में कि आता ही होगा वह क्षण तृप्ति का आनंद का। इस स्त्री से नहीं मिला, किसी और स्त्री से मिलेगा। इस पद पर नहीं मिला, किसी और पद पर मिलेगा। इस गांव में नहीं तो किसी और गांव में, इस घर में नहीं तो किसी और घर में—मिलेगा जरूर।

'नुदरत' कभी तो आएगा दौरे-बहार भी
बसंत कभी तो आएगी।
इस आरजू में वक्त गुजारे चले गए

इसी उम्मीद में, इसी आशा में लोग समय गुजार रहे हैं। मौत आती है और कुछ भी नहीं आता। आखिर हाथ में मिट्टी आती है और कुछ भी नहीं आता। सभी अंततः कब्रों में गिर जाते हैं। हम जिंदगी भर अपनी कब्र खुद ही खोदते हैं। और अगर हमने मालिक को देखा होता तो सारी बात बदल आती।

अनन्य भक्ति से बुद्धि का आत्यंतिक लय हो जाता है। और बुद्धि के आत्यंतिक लय से परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। भक्त उसी साक्षात्कार को मोक्ष कहते हैं। वही निर्वाण है। 'मैं' का मिट जाना निर्वाण है। परमात्मा परिपूर्ण रूप से तुम्हारे भीतर रह जाए और तुम न रहो, तुम सारी तरह से हट जाओ—तुम्हारी छाया भी न बचे—वही मोक्ष है।

'आयुः चिरम् इतरेषां तु हानिः अनास्पदत्वात्।।

साधारण जीवों की आयु प्रारब्ध भोग करने के अर्थ ही है, परंतु भक्तों की आयु भोग के कारण न होने से उनके संचित कर्म आप ही नष्ट हो जाते हैं।'

दूसरा सूत्र—

महत्वपूर्ण सवाल है और अंत में उठाने जैसा भी है। जब कोई भक्त अनन्यभाव को उपलब्ध हो जाता है, तन्मयी बुद्धि का जन्म हो जाता है—तो शांडिल्य से पूछा होगा किसी शिष्य ने, उसी के उत्तर में कह रहे

हैं—फिर भी शरीर में रहता क्यों है? क्योंकि शरीर तो है ही इसीलिए कि हमारी वासनाएं हैं। शरीर तो है ही इसीलिए कि हमारा अहंकार है, बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसके बाद भी चालीस वर्ष शरीर में रहे, क्यों रहे? यह भी प्रश्न उठता रहा है।

हम शरीर में इसलिए हैं कि हमारी वासनाएं हैं। हम शरीर में इसलिए हैं कि हमने क्षुद्र के साथ अपना संबंध बनाया है, लेकिन जिसका क्षुद्र से संबंध टूट गया उसका शरीर से संबंध क्यों नहीं टूट जाता? वह विराट में लीन क्यों नहीं हो जाता है? फिर रुका क्यों रहता है? फिर कौन-सी बात रोकती है? सब वासना गयी, अहंकार गया, अपनी बुद्धि गयी। आंगन आकाश हो गया, बूंद सागर हो गयी, व्यक्ति समष्टि हो गया, फिर अब कौन उसे रोके हुए हैं, भक्त फिर क्यों जीता है? फिर भक्त जीवनमुक्त की तरह कुछ देर रुकता है—कुछ वर्ष रुक सकता है—यह कैसे होता होगा?

शांडिल्य कहते हैं, साधारणतः हम शरीर में इसीलिए होते हैं कि हमारी वासनाएं हैं। वासना के कारण ही जन्म है। वासना न हो तो शरीर में होने का कोई कारण नहीं। लेकिन भक्त जब अनन्य बुद्धि को उपलब्ध होता है, तो उसके सारे कर्म क्षय हो जाते हैं, उसका अहंकार समाप्त हो जाता है, लेकिन उसके शरीर की आयु तो इस अनन्यभाव के पहले ही निर्धारित हो चुकी थी। जिस दिन तुम पैदा हुए, उस दिन तुम्हारे शरीर की आयु निर्धारित हो गयी। इस निर्धारण का अर्थ इतना ही होता है, तुम्हारी मां, तुम्हारे पिता, उनके बीजाणु, उनके माध्यम से तुम्हें जो शरीर मिला है, उसकी उम्र तय हो गयी कि तुम सत्तर साल जिओगे, कि अस्सी साल जिओगे! फिर समझो चालीस साल की उम्र में या तीस साल की उम्र में या पचास साल की उम्र में तुम ज्ञान को उपलब्ध हो गए। तुम्हारे सारे कर्म झड़ गए। शरीर में रहने का कोई कारण न रह गया। लेकिन शरीर की अपनी उम्र है। शरीर की उम्र समाप्त नहीं होती अनन्य बुद्धि से, अनन्य भाव से। शरीर का उससे कोई संबंध नहीं है। तुम ऐसा ही समझो कि तुम साइकिल चला रहे हो। तुम पैडल मारते आ रहे हो कई मीलों से। फिर तुम्हारी इच्छा चली गयी, कि अब साइकिल नहीं चलानी है। तुमने पैडल मारने बंद कर दिये। लेकिन साइकिल पुराने 'मुमेंटम' के कारण थोड़ी दूर चली जाएगी। और अगर उतार होगा तो काफी दूर भी जा सकती है। चढ़ाव होगा तो शायद उतनी दूर न जा सके, उतार होगा तो ज्यादा दूर जा सकती है। लेकिन इतना तो तय है कि पैडल न मारते ही साइकिल नहीं रुकती। क्योंकि इतने जन्मों तक तुमने जो पैडल मारे हैं, उनकी एक अपनी ऊर्जा पैदा हो गयी है। वह ऊर्जा साइकिल को कुछ दूर तक खींचे ले जाएगी।

भक्त भी परमात्मा में पूरी तरह लीन होकर थोड़े दिन, थोड़े वर्षों शरीर में रुका रह जाता है। अब शरीर में रहता नहीं, अब शरीर में अपने को सीमित नहीं मानता, अब शरीर उसका अंत नहीं है, लेकिन फिर भी शरीर में होता है। भावदशा बदल गयी, मैं-भाव न रहा। सच तो यह है कि अब यह शरीर मेरा है, यह भाव भी नहीं है। अब तो शरीर में परमात्मा ही रहता है।

एक बड़ी प्यारी घटना है—

रामकृष्ण की किसी ने तस्वीर उतारी। और जब तस्वीर बनकर आयी और रामकृष्ण के सामने रखी गयी तो रामकृष्ण उस तस्वीर को पैर पड़ने लगे। उन्हीं की तस्वीर थी! उसे सिर से लगाने लगे। जो उनके विरोधी थे उन्होंने तो कहा कि हम जानते हैं कि यह आदमी पागल है। अपनी तस्वीर कोई सिर से लगाता है! अपने पैर कोई छूता है! जो उनके शिष्य थे उनको भी जरा पीड़ा हुई कि यह हमारा गुरु क्या कर रहा है, लोग क्या कहेंगे? किसी शिष्य ने कहा कि परमहंस देव, आप यह क्या कर रहे हैं, होश में है? यह आपकी ही तस्वीर है, इसके आप पैर छू रहे हैं! अपने पैर खुद छू रहे हैं! रामकृष्ण ने कहा, अरे भली याद दिलायी! मैं तो भूल ही गया था कि यह मेरी तस्वीर है। क्योंकि अब तो उसकी ही तस्वीर सब तस्वीरों में हैं। मैं तो उसके ही चरण छू रहा था। मैं तो हूं कहां? अब तो जो भी है, वही है। और फिर यह बड़ी परम समाधि अवस्था की तस्वीर है, मैं तो बड़ा तल्लीन हो गया

था। यह तस्वीर किसी की भी हो, मगर है समाधि की, अनन्य भाव की, तन्मयी बुद्धि की; मैं तो उसी तन्मयी बुद्धि को नमस्कार करने लगा। ठीक कहते हैं रामकृष्ण।

अष्टावक्र ने कहा है कि जब कोई परम अनुभूति को उपलब्ध होता है तो बार-बार स्वयं को ही नमस्कार करता है।

क्यों स्वयं को नमस्कार करेगा? विक्षिप्तता है क्या यह? लेकिन स्वयं रहा नहीं है। अब तो सब जगह परमात्मा है अपने भीतर भी। इसलिए भक्त अपनी देह को भी बड़ा सम्मान करता है। और अगर तुम्हारी भक्ति के अंत में देह का सम्मान न आए, अपमान आ जाए, तो समझना कहीं भूल हो गयी, कहीं चुक हो गयी। भक्त तो अपनी देह को भी परमात्मा की ही देह मानता है। यह उसी का मंदिर है। इस देह को सताता नहीं। इसलिए भक्तों ने देह को सताया नहीं है। और जिन्होंने देह को सताया है, वे विक्षिप्त हैं, वे रुग्ण हैं, मनोरोग से ग्रस्त हैं।

जिसने सबके भीतर परमात्मा को देख लिया, क्या बस अपने भीतर नहीं देखेगा, और सबके भीतर देख लेगा? जिसने सबके भीतर देख लिया, उसने अपने भीतर भी देख लिया। वस्तुतः जिसने अपने भीतर देखा, उसी ने सबके भीतर देखा—पहले तो अपने भीतर ही देखना घटता है।

फिर तब तक शरीर की आयु है तब तक शरीर चलता चला जाता है।

तुम्हें याद नहीं है कि तुम कितने जन्मों से शरीर की वासना करते रहे हो। उस वासना ने बड़ा 'मुमेंटम', बड़ी शक्ति संग्रहीत कर ली है। तुम भूल ही गए हो। इसलिए जब ज्ञान को उपलब्ध होओगे तब भी कुछ वर्षों तक जीवनमुक्त की दशा रहेगी। फिर परम मुक्ति। फिर देह विसर्जित हो जाएगी। फिर दुबारा देह में आना नहीं है।

स्मरण तुम्हें नहीं है, यह सच है।

मैंने सुना, पति-पत्नी को लड़ते-झगड़ते घंटों गुजर गए थे। तो एक महाशय ने उनसे जाकर पूछा, आखिर आपके झगड़े का कारण क्या है? पतिदेव ने अपनी पत्नी की तरफ इशारा करते हुए झल्लाकर कहा, यह तो देवी जी से ही पूछ लीजिए। देवी जी ने छाती पीट ली और कहा, तीन घंटे से अधिक हो गए हैं झगड़ते हुए, इतनी देर तक क्या मुझे याद रहेगा कि क्यों लड़ रही थी? तीन घंटे पहले जो लड़ाई शुरू हुई थी—और लड़ाई अक्सर व्यर्थ बातों पर शुरू होती है। याद रखने योग्य बातें भी कहां होती हैं। बताने योग्य भी कहां होती है?

मेरे पास पति-पत्नी कभी झगड़ा कर आ जाते हैं—अक्सर रोज ही कोई आ जाता है। तो मैं पूछता हूं—कारण क्या? तो वे एक-दूसरे की तरफ देखते हैं, क्योंकि कारण जो बताए वह बुद्धू मालूम होता है! कारण इतने क्षुद्र हैं, कारण जैसा कुछ है नहीं! शायद लड़ना था, यही कारण है; बाकी तो कोई भी बहाना खोज लिया, है। बिना लड़े नहीं चलता है। लड़ने की एक सुगबुगाहट है। लड़ने की एक खुजलाहट है। बिना लड़े मजा नहीं आता है। बिना लड़े अपनी ताकत का पता नहीं चलता। पति-पत्नी तौलते रहते हैं, कौन ज्यादा ताकत में है! बहाना कोई भी होता है फिर—कि चाय जरा ठंडी थी, कि रोटी जरा जल गयी थी; कि तुम इतनी देर से घर क्यों आए, कि दफ्तर में काम नहीं था, मैंने फोन करके पूछा था, कि दफ्तर में तुम थे भी नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक सांझ अपने घर आया। रोज आता था तो यही झगड़ा होता था। कुछ भी बहाना बताए, उसकी पत्नी कहती थी—तुम जरूर किसी स्त्री के पीछे पड़े हो। आज सोचकर आया कि अब झगड़े का कारण समाप्त ही कर दूंगा, मैं खुद ही कह दूंगा। आते से ही उसने कहा कि भई, इनके पहले कि तू कुछ शुरू करे, मैं रास्ते पर जा रहा था, एक स्त्री ने मुझे इशारा किया। सुंदर स्त्री थी। अब तू तो मुझे जानती ही है कि मेरी नजर तो खराब, मैं उसके पीछे हो लिया। उसकी पत्नी ने कहा कि बंद करो यह बकवास, तुम सरासर झूठ बोल रहे हो। मैं पता कर ली हूं सब कि तुम जुआघर से आ रहे हो, जुआ खेलकर आ रहे हो।

झगड़ा इस पर शुरू हुआ। अगर वह खुद ही कह रहा है कि किसी स्त्री के पीछे चला गया था, अब वह झगड़े की बात ही न रही, उसमें कोई सार ही न रहा। वह बेकार हो गयी बात।

मैंने यह भी सुना है कि उसकी पत्नी रोज उसके कपड़े देखती हैं, उसमें खोजती है, एकाध बाल मिल जाए—जो कि मिल ही जाता है—तो बस झगड़ा शुरू हो जाता है। कि तुम किसी स्त्री के पीछे पड़े हो, यह किस स्त्री का बाल है? एक दिन वह घर आया और उसने सब तरह से बाहर घंटे भर खड़े होकर सब कपड़े झाड़ें, पोंछे, बिलकुल साफ-सुथरा होकर आया। पत्नी को कोई बाल न मिला, वह एकदम छाती पीटकर रोने लगी कि यह तो हद्द हो गयी, पत्नी ने कहा, कि अब तुम गंजी स्त्रियों के पीछे भी जाने लगे!

बहाना-कोई-न कोई चाहिए ही। अब गंजी स्त्रियां साधारणतः होती नहीं—बहुत मुश्किल मामला है गंजी स्त्री खोजना। मगर खोजो तो मिल ही सकती है! हर चीज मिल सकती है खोजने से। गंजी स्त्री भी मिल सकती है। गंजी स्त्री के प्रेम में कौन पड़ेगा, यह जरा सोचने जैसा है! मगर यह सवाल नहीं है—बहाना कोई भी, निमित्त कोई भी, झगड़ा उठ आना चाहिए।

आदमी जन्मों-जन्मों से ऐसी क्षुद्र बातों से उलझा रहा है कि उसे याद भी नहीं रहा है कि कहां-कहां हमने क्षुद्र ता को कितना मूल्य देकर बहुमूल्य बना दिया है। देह को हमने इतना चाहा है! हमारे सारे सुख देह के सुख हैं, इसलिए हमने देह को चाहा है। जिसको भोजन में सुख है, बिना देह के भोजन का सुख तो नहीं मिल सकता। जिसको अच्छे सुंदर वस्त्र पहनने का सुख है, बिना देह के वस्त्र तो नहीं पहने जा सकते। जिसको रूप का सुख है, बिना आंख के रूप तो नहीं हो सकता। जिसे स्वर का सुख है, बिना कान के स्वर तो नहीं हो सकता। हमारे सारे सुख पांच इंद्रियों में निर्भर हैं और पांच इंद्रियां शरीर से जुड़ी हैं। इसलिए हमने जन्मों-जन्मों से कोई भी सुख चाहा हो, शरीर को चाहा है। शरीर बना रहे, इसकी चेष्टा की, आकांक्षा की है। और जो हमने आकांक्षा की है, वह पूरी हो जाती है। जाननेवाले इसलिए कहते हैंः आकांक्षा बहुत सोचकर करना, क्योंकि खतरा है, कहीं पूरी न हो जाए।

तो जन्मों-जन्मों तक हमने शरीर को पैडल मारा है। फिर एक दिन क्रांति का क्षण आता है, सारे जीवन का विषाद सघन होते-होते-होते-होते एक ऐसी घड़ी आ जाती है जब फल पक जाता है और गिर जाता है और हमें दिखायी पड़ता है—यह सब व्यर्थ था। एक क्षण में अहंकार टूटता है और हम अनन्यभाव को उपलब्ध हो जाते हैं। उस भावदशा में भी शरीर चलता रहेगा। शरीर को खबर जरा देर से लगती है। खबर लगते ही लगती है। शरीर बड़ा स्थूल है। उसकी बुद्धि भी बहुत बुद्धि नहीं है। बड़ी स्थूल और बड़ी अविकसित बुद्धि है शरीर के पास। उस तक खबर आते-आते वर्षों लग जाएंगे। और उतनी देर भक्त जीवित रहता है। लेकिन, अब जीवन की चर्या और होती है। इस चर्या को ही ब्रह्मचर्य कहा है। ब्रह्मचर्य का अर्थ हैः ईश्वर जैसी चर्या। अब वह ईश्वर होकर जीता है। अब भक्त नहीं रह जाता, अब भगवान होकर जीता है।

'संसृतिः एषाम् अभक्तिः स्यात् न अज्ञानात् कारणसिद्धेः।।

जीव अज्ञान के कारण संसार-बंधन में पड़ा है, यह धारणा ठीक नहीं है, क्योंकि इस कारण का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। जीव का संसार-बंधन भक्ति हीनता के कारण ही है।'

यह सूत्र अपूर्व है! अति बहुमूल्य है! खूब गहरे में ग्रहण करने योग्य है। बार-बार मनन करने योग्य, बार-बार सेवन और भजन करने योग्य है। इसे समझ लेना, इस पर पूरा भक्ति का शास्त्र खड़ा हुआ है। यह आधारभित्ति है।

संसृतिः एषाम् अभक्तिः स्यात् न अज्ञानात् कारणसिद्धेः।।

लोग कहते हैं साधारणतः कि मनुष्य संसार में पड़ा हुआ है अज्ञान के कारण। शांडिल्य कहते हैं, यह बात सच नहीं है। बड़ी हिम्मत की बात कहते हैं वह। क्योंकि आमतौर से यही समझा जाता है, तुम्हारे साधु-संन्यासी तुम्हें यही समझाते रहते हैं कि अज्ञान के कारण आदमी-संसार में पड़ा है। शांडिल्य कहते हैं, अज्ञान का तो अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता उसके कारण कोई पड़ेगा कैसे? अज्ञान तो अंधेरे जैसा है। अंधेरे का कोई अस्तित्व है? अंधेरा दिखायी पड़ता है, मगर उसका कोई अस्तित्व नहीं है। इसीलिए तो तुम अंधेरे को धक्का देकर बाहर

नहीं निकाल सकते। अगर अस्तित्व होता, तो गांव से गुंडों को इकट्ठा कर लेते, जैसा राजनीतिज्ञ कर लेते हैं और धक्का दिलवाकर अंधेरे को बाहर कर देते। या तलवारें ले आते, और अंधेरे को काट डालते। या बंदूकें ले आते और अंधेरे को डरा देते। कोई-न-कोई उपाय कर लेते। लेकिन अंधेरे को तुम धक्का देकर निकाल नहीं सकते। बड़े-से-बड़े पहलवानों को इकट्ठा कर लो तो भी तुम्हीं हारोगे और तुम्हारे पहलवान हारेंगे।

अंधेरा है ही नहीं, तुम किससे लड़ रहे हो। अभाव से लड़ रहे हो। अंधेरे का कोई भाव नहीं है। अंधेरे का कोई पॉजिटिव एक्जिस्टेंस', कोई विधायक अवस्था नहीं है। अंधेरा तो केवल प्रकाश का अभाव है। इसलिए अंधेरे से लड़नेवाला मूढ़ है। जो आदमी अज्ञान तोड़ने में लगा है, वह मूढ़ है। अज्ञान में जो उलझ गया, कि अज्ञान से मुक्त होना है, वह पंडित हो जाएगा, बस और कुछ भी नहीं होगा। अज्ञान रहेगा, शब्दों के जाल में छिप जाएगा। अज्ञान वहां का वहां रहेगा। पांडित्य से अज्ञान अलग नहीं हो सकता। पांडित्य से अज्ञान अलग करने की कोशिश ऐसे ही है जैसे पहलवानों को और गुड़ों को इकट्ठा करके अंधेरे को निकलवाने की कोशिश।

समझदार व्यक्ति अंधेरे से लड़ता नहीं, दिया जलाता है। अंधेरे की बात ही नहीं करता, दिया जलाता है। दिया के जलते ही अंधेरा चला जाता है। प्रकाश का अस्तित्व है। इसलिए हम प्रकाश के साथ कुछ कर सकते हैं। अगर हमें अंधेरे के साथ भी कुछ करना हो, तो हमें प्रकाश के साथ ही कुछ करना पड़ेगा। अगर अंधेरा लाना हो तो भी ला नहीं सकते, पड़ोसियों से मांग नहीं सकते कि भाई, थोड़ा अंधेरा दे दो। आज हमारे घर में अंधेरा कम है और मुझे सोना है। हम पोटलियां बांधकर अंधेरा ला नहीं सकते, बाजार से खरीद नहीं सकते अंधेरा। कोई हमें अंधेरा दे नहीं सकता। क्यों? क्योंकि अंधेरा है नहीं, पोटलियों में बांधोगे क्या? पड़ोसी देना भी चाहें तो क्या देंगे? अंधेरे को लाना हो तो प्रकाश को बुझाना पड़ता है, बस, और कुछ नहीं कर सकते तुम। दिये को फूंक दो, अंधेरा आ गया। और अंधेरे को हटाना हो, दिये को जला दो—और अंधेरा गया। इस बात को खयाल रख लेना, केवल विधायक के साथ कुछ किया जा सकता है। नकारात्मक के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता।

शांडिल्य कहते हैं: लोग कहते हैं कि जीव अज्ञान के कारण संसार-बंधन में पड़ा है, यह धारणा गलत है। क्योंकि अज्ञान का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता। अज्ञान तो अंधेरा जैसा है। तो फिर आदमी क्यों संसार में पड़ा है? प्रकाश के अभाव के कारण। अंधेरे के भाव के कारण नहीं, प्रकाश के अभाव के कारण। प्रकाश नहीं है, इसलिए और प्रकाश पैदा होता है अनन्य भाव से। तुम अंधेरे हो, तुम नकारात्मक हो, परमात्मा से जुड़ते ही तुम विधायक हो जाते हो।

'जीव का संसार-बंधन भक्ति हीनता के कारण है'। इसलिए मैं कहता हूं, यह मूल आधारभित्ति है। शांडिल्य ने भी खूब अंत तक आधारभित्ति को नहीं कहा! अब तुम समझ सकोगे। इतने सारे सूत्रों को समझने के बाद यह गहरी बात कही जा सकती है। प्रतीक्षा की होगी इस बात को कहने के लिए, कि जब तुम तैयार हो जाओ, जब पूरी भूमिका बन जाए, तब यह घोषणा की जाए। ये घोषणा बहुमूल्य है। भक्ति का अभाव, अनन्यभाव का अभाव, तन्मयी बुद्धि का अभाव।

बुद्धि अंधकार है। 'मेरी बुद्धि' अंधकार है। 'मैं' गया 'मेरी बुद्धि' गयी, उसकी बुद्धिमत्ता उतरी—वही प्रकाश है। तुम अज्ञान के कारण नहीं उलझे हो। और अगर तुम सोचते हो अज्ञान के कारण उलझे हो, तो फिर एक उपाय रह जाता है—ज्ञान इकट्ठा करो। ज्ञान का कचरा इकट्ठा करते रहो। वही लोग कर रहे हैं। बड़ा पांडित्य फैला हुआ है। और उस पांडित्य से जरा भी, इंच भर भी अंधेरा नहीं कटता। कट ही नहीं सकता। सिर्फ अनन्यभाव से कटता है, सिर्फ परमात्म-भाव से कटता है। परमात्मा की ज्योति के साथ अपने को जोड़ दो। उसकी ज्योति के साथ ही ज्योतिर्मय हो जाओगे।

'त्रीणि एषां नेत्राणि शब्दलिंगाक्षभेदात् रुद्रवत्।।

महादेव की भांति शब्द, लिंग और अक्ष, इन तीन नेत्रों द्वारा जीव जान लेता है।

एक-एक सूत्र बहुमूल्य होता जा रहा है! यह निन्यानबेवां सूत्र है, अब एक सूत्र ही और बचा। अट्ठानबेवां सूत्र आधारभूत। अब निन्नयानवेबा सूत्र...अंतिम वक्तव्य दे रहे हैं, शांडिल्य। जैसे कोई चित्रकार आखिरी 'टच' चित्र को देता है। सब तरह पूरा हो गया, बस जरा-सा कहीं एक रेखा, और जरा-सा कहीं रंग, जरा-सी गहराई कहीं, जरा-सा इशारा कहीं—आखिरी स्पर्श तूलिका का!

'महादेव की भांति'। तुमने कहानी सुनी है महादेव के तीन नेत्रों की? वह तुम्हारी ही कहानी है, वह प्रत्येक व्यक्ति की कहानी है। तुम्हें पता नहीं कि तुम महादेव हो। तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे भीतर भगवान विराजा है। वे तीन आंखें क्या हैं? शांडिल्य कहते हैं, वे तीन आंखे हैं—शब्द, लिंग और अक्ष ।

ये तीनों बातें समझने जैसी हैं।

शब्द का अर्थ होता हैः शास्त्र, शास्ता। दूसरे से जो मिले, वह शब्द। शब्द 'पर' से आता है। स्वभावतः खोज 'पर' से शुरू होती है। तुमने पढ़ी गीता और तुम्हारे भीतर एक उमंग आयी। कि तुमने सुना किसी को कुरान की आयातों को दोहराता और तुम्हारे भीतर कोई चोट पड़ी, कोई तरंग उठी। कि तुम निकले किसी बुद्धपुरुष के पास से, या भक्त से तुम्हारा मिलन हो गया और तुमने पहली दफा जाना कि जीवन का ऐसा ढंग भी संभव है। ऐसे लोग भी हैं! फूलों जैसी जिनकी सुगंध है। दीयों से झरता-जैसा जिनका प्रकाश है। और जिनके भीतर अनाहत का नाद हो रहा है। तुम्हारे भीतर कोई बड़ी दूर...देर से दबी हुई आकांक्षा सुगबुगाई! तुम्हारे भीतर आकांक्षा का सूत्रपात हुआ। बीज टूटा, अंकुर आया। तो शुरुआत तो 'पर' से होगी, दूसरे से होगी। इसलिए पहली आंख पर-निर्भर होती है। शब्द, शास्त्र, शास्ता।

दूसरी आंखः लिंग। लिंग का अर्थ होता हैः अनुमान, विचार, मनन, चिंतन पहली आंख 'पर' से उपलब्ध होती है, दूसरी आंख 'स्व' से। सुना दूसरे से, मगर सुनने से क्या होगा? गुनोगे तो कुछ होगा। मनन करोगे तो कुछ होगा। चिंतन करोगे तो कुछ होगा। विचारोगे तो कुछ होगा। सदगुरु से सुनी कोई बात, उसे हृदय में धारोगे, उसे बार-बार उल्टाओगे-पल्टाओगे, एकांत में बैठकर उस पर गूढ़ मंथन करोगे, तो कुछ होगा। पहली से दूसरी बात ज्यादा गहरी जाएगी। क्योंकि पहली बात दूसरे से आयी थी, दूसरी बात तुम्हारी निज की प्रक्रिया होगी—आत्म-चिंतन पैदा होगा। तो पहला 'पर' दूसरा 'स्व'।

और फिर तीसरा अक्ष। अक्ष यानी प्रत्यक्ष; साक्षात्कार, अनुभव, सिद्धि। सिद्धि 'स्व' और 'पर' दोनों से मुक्त है, द्वंद्वातीत है। वहां न तो मैं बचता, न तू बचता। वहां परमात्मा बचता है।

तो ये तीन आंखें हैं।

एक आंख, जो सदगुरु से मिलती है। कहो श्रवण से मिलती है। दूसरी आंख, जो मनन से मिलती है, स्वयं से मिलती है। और तीसरी आंख जो निदिध्यासन, ध्यान से मिलती है, समाधि से मिलती है। इनमें योग के तीन सूत्र पूरे हो जाते हैंः श्रवण, मनन निदिध्यासन।

सदगुरु जगाता है। सदगुरु का भीतर आने दो। शास्त्र के शब्दों को गूंजने दो। लेकिन उतने पर रुक मत जाना। नहीं तो पंडित होकर समाप्त हो जाओगे। तोता-रटंत तुम्हारा जीवन हो जाएगा। उससे आगे बढ़ना। चिंतन करना, मनन करना, विचार कराना; अवगाहन करना; अवलोकन करना। खुद डुबकी मारना अब उस विचार में। लेकिन दूसरे पर भी रुक मत जाना, अन्यथा दार्शनिक होकर समाप्त हो जाओगे; विचारक होकर मर जाओगे।

पंडित से विचारक ज्यादा बहुमूल्य है। क्योंकि पंडित सिर्फ दोहराता है, विचारक कम से कम कुछ सोचता है। मगर विचारक भी अभी अनुभव को उपलब्ध नहीं हुआ है। इसलिए उसके सोचने में स्वयं गवाह नहीं हो सकता। अनुमान कर सकता है, कहता हैः लगता है कि ईश्वर होना चाहिए। होना ही चाहिए ऐसा मालूम पड़ता है। सब तरह से अनुमान होता है। कि ईश्वर के बिना जगत नहीं हो सकता। आखिर जब इतना बड़ा विराट जगत है तो कोई चलानेवाला होगा। मगर ये गवाहियां नहीं हैं, वह सिर्फ अनुमान कर रहा है। इनसे विवाद किया जा सकता है। इनको खंडित भी किया जा सकता है। इनके विपरीत तर्क दिये जा सकते हैं। पंडित तो कुछ जवाब भी नहीं दे

सकता, पंडित तो केवल दोहरा सकता है। उससे तुम कहो उपनिषद, तो वह उपनिषद दोहरा दे; गीता, तो गीता दोहरा दे; कुरान तो कुरान दोहरा दे। तुम उससे यह मत पूछना कि इस बात का क्या अर्थ है? अर्थ उसे पता ही नहीं। उसने कभी सोचा ही नहीं। पंडित तो कम्प्यूटर की मशीन है। उसे जो भर दिया गया है, ग्रामोफोन का रिकॉर्ड है। तुम जब भी बजाओ बजा लेना, जो भी भर दिया गया है। वह फिर दोहरा देगा। तुम ग्रामोफोन के रिकॉर्ड से अर्थ मत पूछना, कि भाई, इस पंक्ति का अर्थ क्या है? ग्रामोफोन के पास कोई अर्थ नहीं होता। पंडित के पास कोई अर्थ नहीं होता।

पंडित से दार्शनिक बेहतर है। मगर दार्शनिक भी कुछ बहुत बेहतर नहीं है, क्योंकि उसके पास कुछ थोड़े अर्थ तो होंगे मगर वे सब अनुमान होंगे। अनुमान खंडित किये जा सकते हैं। दार्शनिकों में विवाद चलते रहे हैं। आस्तिक और नास्तिक दार्शनिक में होते हैं। आस्तिक कहता है, इतना बड़ा जगत है, इसको जरूर किसी ने बनाया होगा। छोटा-सा घड़ा बनता है तो बिना कुम्हार के नहीं बनता। एक छोटा-सा घड़ा भी संयोग से नहीं बनता, एक बनानेवाला चाहिए।

ऐसा समझो कि तुम एक रेगिस्तान में गए और वहां तुम्हें घड़ी पड़ी मिल जाए, तो क्या तुम यह मान सकोगे कि घड़ी संयोग से बन गयी होगी? अपने-आप, आपने-आप, हजारों-हजारों साल में यह यंत्र अपने-आप बन गया होगा। कितने ही हजार साल बीतें हों, घड़ी अपने से नहीं बन सकती। कैसे बन जाएगी अपने से? घड़ी के भीतर साफ प्रयोजन मालूम पड़ता है। यह संयोग नहीं हो सकती। यह सिर्फ घटनाओं के घटते-घटते अपने-आप घट गयी हो, ऐसा नहीं हो सकता।

नास्तिक यही कहता है कि यह सारा जगत घटते-घटते घट गया है। नास्तिक यही कहता है कि अगर एक बंदर का टाइपराइटर पर बिठा दिया जाए और कई करोड़ों वर्ष तक वह टाइप करता ही रहे—बिना कुछ जाने, तो भी गीता पैदा हो जाएगी। एक न एक दिन, संयोगवशात। मगर यह बात जंचती नहीं कि गीता पैदा हो जाएगी। कितने ही करोड़ वर्ष तक बंदर बैठकर टाइप करता रहे, ऐसा संयोग शायद ही आए। छोटा-मोटा संयोग आ भी सकता है कि टाइप करता ही रहे तो राम बन जाए—यह हो सकता है। संयोग की बात है—'र' पर हाथ मार दे, 'आ' की मात्रा पर हाथ मार दे, 'म' पर हाथ मार दे। यह संयोग की बात हो सकती है कि राम बन जाए, लेकिन पूरी गीता संयोग से बन जाए—इसकी संभावना न के बराबर है। घड़ी संयोग से नहीं बन सकती।

तो आस्तिक दार्शनिक कहता है: इतना विराट विश्व, इतना सूक्ष्म प्रक्रियाओं में जुड़ा हुआ विश्व, जरूर कोई बनानेवाला होगा। नास्तिक मजे से जवाब दे सकता है। नास्तिक कहता है, अगर तुम कहते हो इतने बड़े विराट विश्व को बनानेवाला कोई होगा, तो फिर तुम्हारे परमात्मा को किसने बनाया? क्योंकि वह तो और भी जटिल है! और अगर तुम कहते हो परमात्मा को किसीने नहीं बनाया, तो तुम्हारी बात ही फिजूल हो गयी। जब घड़ी भी बिना बनाये नहीं बनती, तो परमात्मा कैसे बना होगा? जब घड़ी ही बिना बनाये नहीं बनती, तो घड़ी को बनानेवाला कैसे बिना बनाए बना होगा?

फिर तो झंझट शुरू हो गयी! फिर परमात्मा को किसी और बड़े परमात्मा ने बनाया, और उसको किसी और बड़े परमात्मा ने बनाया, फिर इसका कोई अंत न होगा। फिर यह अंतहीन तर्क हो गया। और इसी अंतहीन तर्क में दार्शनिक पड़े हुए हैं। न नास्तिक हारता है, न आस्तिक जीतता है। न आस्तिक हारता है, न नास्तिक जीतता है। विवाद जारी है। सदियां बीत गयी हैं, विवाद होता रहता है। अनुमान से कभी भी कोई निर्णय नहीं हो सकता। अनुमान में बल ही नहीं है, अनुमान नपुंसक है। पंडित से तो बेहतर है। चलो कम से कम अनुमान है, अपना तो है। पंडित के पास तो अनुमान भी अपना नहीं है, अनुमान भी दूसरों के हैं। दार्शनिक के पास अनुमान अपना है। एक कदम आगे बढ़ा। एक कदम और उठाना जरूरी है। 'पर' से तो छूट गया, अब 'स्व' से भी छूट जाए, तब तन्मयी बुद्धि पैदा हो जाएगी। उस तीसरी अवस्था का नाम अक्ष। आंख, असली आंख, प्रत्यक्ष। वही तीसरा नेत्र है।

उसी तीसरे नेत्र से जाना जाता है। फिर स्वयं गवाही हो जाता है व्यक्ति। फिर ऐसा नहीं कहता कि अनुमान है, कि होना चाहिए, कि शायद हो, कि जरूरी होगा, बिना हुए नहीं चल सकता, तब स्वयं गवाह होता है—चश्मदीद गवाह। कहता है, मैं स्वयं देखा हूं।

इसलिए तो बुद्ध के वचनों में जो बल है, या रामकृष्ण के वचनों में जो बल है, या जीसस के या मुहम्मद के वचनों में जो बल है, या कबीर या शांडिल्य के वचनों में, या मीरा और चैतन्य के वचनों में, वह बल क्या है? वह बल तर्क का नहीं है, वह बल अनुभव का है। उपनिषदों में तर्क है ही नहीं, उपनिषद सिर्फ घोषणाएं करते हैं। जब पहली दफा उपनिषदों का पश्चिम की भाषाओं में अनुवाद हुआ, तो पश्चिम के विचारक बड़े हैरान थे कि इनमें कोई तर्क तो है ही नहीं, बस ऋषि कह देता हैः 'अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं या कह देता हैः 'तत्त्वमसि श्वेतकेतु', श्वेतकेतु तू भी वही है। सिर्फ निष्कर्ष! इसका प्रमाण क्या है, तर्क क्या है, विधि क्या है? कैसे इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया कि हे श्वेतकेतु तू भी वही है, वह तो कुछ है ही नहीं। ये वचन दार्शनिकों के नहीं हैं, उपनिषदों के वचन सिद्धपुरुषों के वचन हैं। सिद्धपुरुष जो कहता है वह अनुमान नहीं है, उसे दिखायी पड़ता है। वह देखता है श्वेतकेतु में, और कहता हैः श्वेतकेतु, तू वही है। जिसको तू खोज रहा है, वह तेरे भीतर बैठा है, मैं देख रहा हूं।

अंधा आदमी अनुमान करता है कि प्रकाश होना चाहिए, या होगा, या बिना हुए कैसे चलेगा? आंखवाला आदमी कहता है—प्रकाश है! अब तुम से कोई पूछे कि प्रमाण? तुम कहोगे—प्रमाण का सवाल ही नहीं है, मुझे दिखायी पड़ रहा है कि प्रकाश है। इसमें मुझे संदेह ही नहीं पैदा हो रहा है। असंदिग्ध मुझे दिखायी पड़ रहा है कि प्रकाश है। मेरे पास आंख है, बस यही प्रमाण है। इसलिए अक्ष। अक्ष यानी आंख। असली आंख तीसरी आंख है। असली आंख अनुभव की आंख है—साक्षात्कार।

श्रवण से मनन की तरफ चलो, मनन से ध्यान की तरफ चलो। 'पर' से अभीप्सा को जगने दो, जिज्ञासा पैदा होने दो, 'स्व' से अभीप्सा को आत्मसात करो, रोएं-रोएं में व्याप्त करो। और फिर परमात्मा से तृप्ति है, संतुष्टि है।

मैंने सुना है एक प्रसिद्ध दार्शनिक के संबंध में। एक आदमी उस दार्शनिक को मिला और कहा, अरे, आप तो जिंदा हैं! हमने सोचा कि आप दुर्घटनाग्रस्त हो गए। उस दार्शनिक ने पूछा, आपने यह अंदाजा कैसे लगाया? यह अनुमान कैसे लगाया? दार्शनिक हमेशा अनुमान की बात पूछता है। अंदाज कैसे लगाया? किस हिसाब से तुमने सोचा? उस आदमी ने कहा, बिलकुल आपके जैसा चेहरा, आपके जैसे कपड़े—काली पेंट—एक आदमी कार के नीचे दबकर मर गया है। उस दार्शनिक ने कहा, क्या उसने सफेद कमीज भी पहनी हुई थी? उस व्यक्ति ने कहा, जी हां। दार्शनिक ने कहा, क्या कमीज के बटन टूटे और कालर फटा हुआ था! उस व्यक्ति ने कहा नहीं। दार्शनिक ने कहा, तब मैं वह नहीं हो सकता। वह कोई और आदमी रहा होगा। दार्शनिक अपने संबंध में भी अनुमान ही करता है। उसकी सारी प्रक्रिया अनुमान की है। सोचता रहता, सोचता रहता, लेकिन निष्पत्ति कभी नहीं आती।

पंडित तो बनना मत, नहीं तो तोते हो जाओगे। दार्शनिक पर रुकना मत, अन्यथा जिंदगी तुम्हारी केवल अनुमान रह जाएगी। अनुभव चाहिए। अनुभव आंख है।

अंतिम सूत्र—

'आविस्तरोभावाः विकाराः स्यूः क्रियाफलसंयोगात्।।

लय और उत्पत्ति रूप क्रियाफल के संयोग से विकार रूप दिखायी पड़ता है।' तथाकथित पंडित तुमसे कहते रहे हैं, यह संसार विकार है—परमात्मा का विकार। या तुम्हारे अज्ञान का विकार। शांडिल्य कहते हैं, विकार तो हो ही नहीं सकता। पहली बात, अज्ञान तो है ही नहीं कहीं, इसलिए अज्ञान के कारण विकार नहीं हो सकता। और दूसरी बात, परमात्मा निर्विकार है, उसमें विकार की संभावना नहीं है।

फिर यह जगत क्या है?

इसे समझने के लिए शांडिल्य का एक अपूर्व सिद्धांत स्मरण करो। शांडिल्य कहते हैं, यह जगत विपरीत के बीच लयबद्धता है। दिन है, बिना रात के नहीं हो सकता। जीवन बिना मृत्यु के नहीं हो सकता। पुरुष बिना स्त्री के नहीं हो सकता। उष्णता बिना शीतलता के नहीं हो सकती। सुख बिना दुख के नहीं हो सकता। यहां विपरीत में एक लयबद्धता है। विपरीत से जगत निर्माण हुआ है। सब चीजें अपने विपरीत पर ठहरी हुई हैं। संगीत में स्वर और शून्य का मेल है।

मैं तुमसे बोल रहा हूं लेकिन अगर मैं शब्द ही शब्द बोलूं, तो तुम कुछ भी न समझ पाओगे। हर दो शब्दों के बीच में थोड़ा मौन भी चाहिए। बोलने में भी शब्द और मौन का संयोग है। बीच-बीच में शून्य है, फिर शब्द, फिर शून्य, फिर शब्द, फिर शून्य। कोई वीणा बजाता है, स्वर, फिर शून्य, स्वर, फिर शून्य। अगर तार को ठोंकता ही रहे और बीच में जरा-भी गुंजाइश न दे, तो संगीत पैदा नहीं होगा। संगीत पैदा ही होता है स्वर और शून्य के मेल से।

ऐसा ही परमात्मा और जगत। इन दोनों का मेल ही लय पैदा कर रहा है।

शांडिल्य के हिसाब से परमात्मा बीज है, जगत वृक्ष। हर बीज वृक्ष बन जाता है और हर वृक्ष अंततः फिर बीज बन जाता है। परमात्मा है अनभिव्यक्त और जगत है उसी का व्यक्त रूप। परमात्मा है अनगाया गीत और जगत है गाया हुआ गीत। जगत है स्वर, परमात्मा है शून्य। जगत है दृश्य, परमात्मा है अदृश्य। जगत है श्रम, परमात्मा है विश्राम। जगत है दिन, परमात्मा है रात्रि। दोनों संयुक्त हैं। ये दोनों पंख अस्तित्व के हैं। इनमें कोई विपरीतता नहीं है। जगत विकार नहीं है और न जगत झूठ है। जगत उतना ही सच है जितना परमात्मा सच है। और जगत उतना ही निर्विकार है जितना परमात्मा निर्विकार है। क्योंकि निर्विकार से जो पैदा हुआ, वह निर्विकार होगा। यह जगत उसीकी अभिव्यक्ति है।

फिर भ्रांति कहां हो रही है?

भ्रांति सिर्फ इस बात से हो रही कि हम जगत को ही देखते हैं और परमात्मा को भूल जाते हैं। हमारे विस्मरण में भ्रांति है। कोई विकार नहीं है, सिर्फ विस्मरण। हमने एक चीज को इतना जोर से देखा है, हम दूसरे को भूल गए हैं। हमने सारी आंख एकाग्र कर दी है जगत पर। और उसके पीछे कारण है। क्योंकि जगत दिखायी पड़ता है, दृश्य है, तो आंख उस पर एकाग्र हो जाती है। और परमात्मा अदृश्य है। उसके लिए आंख एकाग्र नहीं करनी होती, अनेकाग्र करनी होती है। जगत को देखना है, तो आंख खोलने से हो जाता है, परमात्मा को देखना है तो आंख बंद करनी होती है। खुली आंख से देखा गया परमात्मा जगत, और बंद आंख से देखा गया जगत परमात्मा, बस इतना ही फर्क है। जगत परमात्मा का बहिर्रूप है, परमात्मा जगत की अंतरात्मा है। जैसे देह और आत्मा, ऐसे ब्रह्म और माया।

यहां विकार नहीं है। ये जो विपरीत हैं, ये जो पोलेरिटीज हैं—दिन की और रात की, श्रम और विश्राम की, वसंत और पतझड़ की, जीवन और मृत्यु की, इनको विपरीतता हम इसलिए कहते हैं कि एक-दूसरे के विपरीत दिखायी पड़ती हैं, लेकिन बहुत गहरे खोजने पर पता चलता है कि ये विपरीत नहीं हैं, एक-दूसरे की परिपूरक हैं, कांप्लीमेंट्री हैं।

विज्ञान इसके समर्थन में अब खड़ा हो गया है।

इस सदी की बड़ी से बड़ी खोजों में एक खोज है: 'दे थिअॅरी ऑफ कॉम्प्लीमेंटरिटी'। सब चीजें परिपूरक हैं। पुरुष अकेला नहीं हो सकता। बिना स्त्री के तुम सोच सकते हो पुरुष हो सकता है पृथ्वी पर? या स्त्री हो सकती है बिना पुरुष के पृथ्वी पर? ये दोनों परिपूरक हैं। इन दोनों से मिलकर वर्तुल पूरा होता है। ये दोनों एक दूसरे के अपरिहार्य अंग हैं।

ऐसा ही माया और ब्रह्म।

माया विकार नहीं है, विवर्त नहीं है। माया ब्रह्म की संगिनी है। शिव और शक्ति। राधा और कृष्ण। सीता और राम। ऐसी माया है। ब्रह्म और माया। वह परम रूप है। यह जगत ब्रह्म और माया का युगल है। और इस युगल के बीच विपरीतता दिखायी पड़ती है, वस्तुतः नहीं है। वस्तुतः तो परिपूरकता है।

इस अंतिम सूत्र पर शांडिल्य भक्ति की जिज्ञासा को पूरा करते हैं। क्यों इस अंतिम सूत्र पर पूरा करते हैं. इसलिए ताकि तुम्हें अंततः फिर याद दिला दी जाए—बार-बार याद दिलायी गयी है, फिर भी डर है कि तुम भूल न जाओ—इसलिए अंततः फिर याद दिलाते हैंः भक्ति संसार-विपरीत नहीं है। भक्त संसार को छोड़कर नहीं भागता है। भक्त भगोड़ा नहीं है। भक्त अंगीकार करता है संसार को। भक्त संसार में ही रहता है। और संसार में ही इस ढंग से जीता है कि संसार को भी जी लेता है और परमात्मा को भी जी लेता है। आंख खोलकर संसार को देख लेता है, आंख बंद कर के परमात्मा को देख लेता है।

मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि अपने संन्यासियों को संसार में ही रहने को क्यों कहता हूं? इसलिए कहता हूं कि संसार में परमात्मा छिपा है। इसे छोड़कर गए, तो ध्यान रखना तुम परमात्मा को ही छोड़कर भाग गए हो। इसी में सब तरफ से मौजूद है—यहीं मौजूद है, अभी मौजूद है। मुझमें, तुममें, इन वृक्षों में, इन चहकते पक्षियों में, सूरज की किरणों में, हवा के झोंके में, सबमें मौजूद है, क्योंकि सब उसी का विस्तार है। इस सब के बीच वही एक निनादित हो रहा है।

माया को परमात्मा से विपरीत मत समझ लेना, दुश्मन मत समझ लेना। दुश्मन समझे, तो अड़चन खड़ी होगी। तब तुम्हारे जीवन में बड़ी अड़चनें आ जाएंगी। और इसके बजाय कि तुम मुक्त होओ, तुम विक्षिप्त हो जाओगे। तुम पलायनवादी हो जाओगे, भगोड़े हो जाओगे—तुम पत्नी, बच्चों, परिवार को छोड़कर जंगल की तरफ जाने लगोगे। कहीं जाने की जरूरत नहीं है। जितना परमात्मा जंगल में है, उतना ही बाजार में भी है। और जितना महात्माओं में है, उतना ही तुम्हारी पत्नी में भी है। जितना राम और कृष्ण में है, उतना ही तुम्हारे बेटे में भी है; तुम्हारी बेटी में भी है; तुम्हारे मित्र में भी है, तुम्हारे शत्रु में भी है। इस दृष्टि को उपलब्ध होओ। तब तुम्हारा पुरा जीवन भजन हो जाता है। शांडिल्य के सारे सूत्रों का सार एक हैः जीवन भजन हो जाए। जीवन और भजन में विरोध न रह जाए। उठो-बैठो तो भजन, उठो-बैठो तो परिक्रमा। खाओ-पीओ सो सेवा।

छोटा-छोटा जीवन का काम, छोटे-छोटे कृत्य उसकी महिमा से भर जाएं। शांडिल्य तुम्हें किसी तरह के संघर्ष में नहीं डालना चाहते। क्योंकि सब संघर्ष अंततः अहंकार को पैदा करता है। और भक्ति का सूत्र संकल्प नहीं है, समर्पण है। तुम डुबकी लो! तुम डूबो! तुम उसके चरण गहो! इस संसार में उसके ही चरण प्रकट हुए हैं। और इसी संसार में तलाशते-तलाशते, गहरे उतरते-उतरते तुम उसे पा लोगे। ये जो लहरें हैं संसार की, इन्हीं में ही उसकी गहराई, उसका सागर भी छिपा हुआ है।

कृष्ण का आश्वासन हम अंत में फिर दोहरा लेंः

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेकं ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते।।

जो तरना चाहें, जो उतर जाना चाहें, वे शरण गह लें। माया से मत लड़ो, माया में ब्रह्म की शरण गह लो—और जीवन भजन हो जाएगा।

जीवन ही धर्म हो जाए, ऐसी ही शांडिल्य की अभीप्सा है और आशीर्वाद है!

अथातो भक्तिजिज्ञासा!

आज इतना ही।

प्रार्थना क्या है? और क्या प्रार्थना अपने ही लिए है?

अहंकार के पास भी कोई संजीवनी है क्या? जाने कहां से, कैसे और क्यों जी-जी आता है!

टी. यू. अंग्रेजी-विभागाध्यक्ष तथा शिवपुरी बाबा के कुछ शिष्यों के संदर्भ सहित नेपाल के एक मित्र का भगवान से प्रश्न—प्रेम के साथ इतना गहरा भय क्यों जुड़ा रहता है?

भगवान! अब तैयार हूं। तारीख तेरह अप्रैल को मेरा इकसठवां जन्मदिन है—आपके चरणों में संन्यस्त होने के लिए आ गिरूंगा।...आप ही मेरे शेष जीवन के एक मात्र आधार सदगुरु और इष्टदेव हो!

भगवान! क्या इस प्यास का कभी अंत होगा जिसने मुझे दीवाना बना दिया है?...आह! किस मैं अपने हृदय की बात बताऊं? मैं एकदम अजनबी और नितांत अकेला हूं!

मिलन होता है

बीसवां प्रवचन

पहला प्रश्नः प्रार्थना क्या है? और क्या प्रार्थना केवल अपने ही लिए है?

प्रार्थना बेबूझ घटना है। ध्यान समझा जा सकता, समझाया जा सकता। प्रार्थना न तो समझायी जा सकती है, न समझी जा सकती है। समझ के हाथ प्रार्थना तक नहीं पहुंचते। विचार के पंख प्रार्थना के आकाश तक उड़ान नहीं भरते। बोली जा सके, कही जा सके, ऐसी प्रार्थना वस्तु नहीं है। प्रार्थना है प्रेम। और प्रेम सदा से बेबूझ रहा है। प्रार्थना है हृदय का उदगार। और हृदय के पास कोई तर्क नहीं। हृदय के पास वस्तुतः कोई भाषा भी नहीं। हृदय के पास मौन ही भाषा है। बोले कि प्रार्थना झूठ हुई। जिसे तुमने आज तक प्रार्थना समझा है, वह प्रार्थना नहीं है, वह तो वासना का ही रूप है। तुमने कुछ कहा, तुमने कुछ मांगा—वासना हुई। प्रार्थना चुप्पी के अतिरिक्त और कोई भाषा नहीं जानती। प्रार्थना है मौन में झुक जाना। प्रार्थना है, समर्पण। प्रार्थना है इस बात की घोषणा कि मैं नहीं हूं, तू है। मैं नहीं हूं, परमात्मा है।

प्रार्थना परमात्मा से कुछ मांग नहीं है। क्योंकि मांग में 'मैं' मौजूद ही होता है। 'मैं' न हो तो मांग किसकी, मांग कैसी? 'मैं' ही मांगता है। 'मैं' भिखारी है, भिखमंगा है। उसकी मांगों का कोई अंत नहीं है। जितना मिले उतना ही ज्यादा मांगता है। मांगता ही जीता है, मांगता ही मरता है। जहां मैं नहीं, मैं की मांग नहीं, वहीं तुम सम्राट हो गये। प्रार्थना सम्राट के हृदय से उठा हुआ स्वर है—मौन का स्वर, संगीत का स्वर। प्रार्थना एक लयबद्धता है, जो तुम्हारे भीतर घटती है। उसी लयबद्धता में तुम झुक जाते हो और विराट की लयबद्धता के साथ एक हो जाते हो। तुम्हारी वीणा विराट की वीणा के संग साथ-संगत देने लगती है। जुगलबंदी हो जाती है। तुममें और विराट की वीणा में जरा भी फासला नहीं रह जाता, भेद नहीं रह जाता, अंतराल नहीं रह जाता। तुम्हारे पैर परमात्मा के साथ पड़ने लगते हैं। तुम उसके साथ नाचते हो, तुम उसके साथ मस्त होते हो, तुम उसके रस में डूबते हो।

इसलिए मंदिरों में जो प्रार्थनाएं की जा रही हैं, और मस्जिदों में और गिरजाघरों में, उन्हें मैं प्रार्थना नहीं कहता हूं। वे केवल प्रार्थना की प्रवंचनाएं हैं। प्रार्थना के नाम पर धोखा हैं। प्रार्थना के झूठे सिक्के हैं वे। असली सिक्का चुप होता है। कभी ऐसे क्षण तुम्हें आ जाते हैं, जब तुम अवाक होते हो—वे प्रार्थना के क्षण है। उन अवाक क्षणों में तुम हिंदू नहीं होते और मुसलमान नहीं होते और ईसाई नहीं होते—सिर्फ अवाक होते हो। अवाकता कहीं हिंदू होती है, मुसलमान होती, ईसाई होती है? सुबह ऊगते हुए सूरज को देखकर, या सफेद बगुलों की कतार को उड़ते देखकर, या हवा में तैरती हुई फूलों की गंध को अनुभव करके, या रात आकाश को तारों से भरा देखकर अवाक नहीं हुए हो? वही प्रार्थना है। क्षण भर को निस्तब्ध नहीं हुए हो? वही प्रार्थना है। कोयल कुहू-कुहू करके गीत गाने लगी है भर दोपहरी में, एक क्षण को तुम्हारे विचारों की शृंखला नहीं टूट गयी है? एक क्षण को तुम्हारी धड़कन नहीं रुक गयी है? उस कुहू-कुहू ने एक क्षण को तुम्हें भर नहीं दिया है—आपूर आकंठ? तुम्हें डुबा नहीं दिया है—जैसे बाढ़ आ गयी हो किसी अज्ञात लोक से! वही प्रार्थना है। या किसी मनुष्य की आंखों में झांककर और क्षणभर को देह भूल गयी हो—अपनी भी और उसकी भी। किसी मित्र का हाथ हाथ में लेकर बैठे हो और वाणी खो गयी हो, बोलने को शब्द न मिलते हों, आंख से आंसू झरते हों—वहीं प्रार्थना है।

तुम शायद सोचते होओगे मैं तुम्हें कहूंगा कि 'रघुपति राघव राजाराम' यह प्रार्थना है। कि 'अल्लाह ईश्वर तेरे नाम', यह प्रार्थना है। यह सब राजनीतियां हैं। इन सबके पीछे खेल हैं। और गंदे खेल हैं। मस्जिद से उठती अजान और मंदिर से उठते घंटियों का स्वर, ये सब खेल हैं, क्रियाकांड हैं। वह पुजारी जो मंदिर में घंटा बजा रहा है, उसके भीतर कुछ भी नहीं बज रहा है। और जिसने मस्जिद में जाकर अजान की है, उसके भीतर परमात्मा की कोई स्मृति नहीं, कोई स्मरण नहीं है। एक कृत्य दोहरा रहा है। सदियों से दोहराया गया है। संस्कार है उसे दोहराने का, दोहरा लेता है। मूर्ति देखता है, झुक जाता है, क्योंकि बचपन से झुकता रहा है। एक तरह की संस्कारबद्ध गुलामी पैदा हो गयी। यह प्रार्थना नहीं। चुप्पी के क्षण, मौन के क्षण, सौंदर्य भाव-बोध के क्षण, प्रीति की अनुभूति, मैत्री का भाव, तन्मयता, विमुग्धता—इन शब्दों से मैं कहना चाहता हूं कि प्रार्थना क्या है। इन सारे शब्दों में भी पूरी नहीं हो जाती, बस इन शब्दों में थोड़े-से इशारे मिलते हैं। तुम जानकर चकित होओगे, हिब्रू भाषा में प्रार्थना के लिए कोई शब्द नहीं।

रोओ, हंसो, गाओ, नाचो, पुकारो, पर प्रार्थना के लिए कोई शब्द नहीं। क्योंकि प्रार्थना शब्दातीत है। हिब्रू भाषा ने सदव्यवहार किया, प्रार्थना को कोई शब्द नहीं दिया। प्रार्थना क्या-क्या हो सकती है, उसकी तरफ इशारे किये। रोओ, गाओ, नाचो, हंसो, आनंदमग्न हो पुकारो, झुको, गिरो, असहाय हो जाओ, अवाक हो जाओ, विमुग्ध बनो, तन्मय हो जाओ, पर प्रार्थना के लिए कोई शब्द नहीं। इन सब में प्रार्थना चुक नहीं जाती, इन सबसे सिर्फ इशारे होते हैं। प्रार्थना इन सबसे बड़ी है। प्रार्थना इतनी विराट है जितना विराट आकाश है। प्रार्थना उतनी ही बड़ी है जितना बड़ा परमात्मा है। प्रार्थना परमात्मा से छोटी नहीं है, क्योंकि प्रार्थना के क्षण में तुम परमात्मा के साथ एक हो जाते हो। प्रार्थना का क्षण सेतु है। जोड़ता है। तुम खो गये। भक्त नहीं बचता। जब भक्ति परिपूर्ण होती है, भक्त नहीं बचता। और जब तक भक्त बचता है तब तक भक्ति परिपूर्ण नहीं है।

शांडिल्य ने इसी को भक्ति के दो रूप कहा। एक को गौणी-भक्ति कहा और एक को पराभक्ति कहा। जब तक भक्त बचता है, तब तक गौणी-भक्ति। नाममात्र को भक्ति। वस्तुतः नहीं, कहने मात्र को भक्ति। भक्ति जैसी लगती है, इसलिए भक्ति कहा, मगर भक्ति है नहीं। अभी भक्त मौजूद है, भक्ति कहां? जब भक्त खो गया, तब पराभक्ति। तब असली भक्ति, भगवान ही बचा! तो प्रार्थना उतनी ही बड़ी है जितना परमात्मा है।

और तुम अगर प्रार्थना को समझना ही चाहो, तो प्रार्थना करनी पड़ेगी, प्रार्थना होना पड़ेगा। मेरे समझाने से नहीं होगी बात। जब भी मन को तरंगित पाओ—और ऐसे क्षण सभी को आते हैं, मगर हम चूक-चूक जाते हैं। अब प्रार्थना के लिए कोई समय तय मत कर लेना। ऐसा मत कर लेना कि रोज सुबह स्नान करके प्रार्थना करेंगे। जरूरी नहीं है कि स्नान के बाद तुम्हारे मन में प्रार्थना की तरंग हो ही। प्रार्थना को निर्धारित मत कर लेना। प्रार्थना कब आ जाएगी, कब अचानक बादल फट जाएंगे और आकाश खुलेगा, कोई नहीं जानता—सुबह कि सांझ, कि भर दुपहर, कि आधी रात! जब भी ऐसा हो जाए कि मन तन्मय हो, जब भी ऐसा हो जाए कि मन में कोई विचार न हों, जब भी ऐसा हो जाए कि मन में कोई ऊहापोह न चलता हो, बवंडर न उठते हों, आंधियां न हों, तरंगें न हों, लहरें न आती हों—और ऐसे क्षण सब को आते हैं, मैं फिर दोहरा दूं—जब ऐसे क्षण आएं, तब झुक जाना। तब तुम क्या बोलोगे, इसकी बताने की जरूरत नहीं। कुछ बोलने जैसा आ जाए तो बोल लेना, कुछ कहने का मन हो जाए तो कह देना, कोई शब्द भीतर दोहरने लगे तो दोहरा लेना, कोई गीत की कड़ी गूंजने लगे तो गूंज जाने देना, मगर चेष्टा करके मत करना ऐसा। ऐसा मत करना कि अब राम-राम दोहराऊं। उसी दोहराने में मर जाएगी प्रार्थना।

प्रार्थना बड़ी कोमल है, तन्वंगी है। यह राम-राम का पत्थर तुमने पटका कि मर जाएगी। तुम कोशिश मत करना। हां, भीतर से उठने लगे राम-राम, अनायास हो जाए, तो हो जाने देना। फिर ठीक है। अपने से जो हो, ठीक है, किया जाए, वही गलत है। प्रार्थना के जगत में यह नियम है—अपने से जो हो जाए।

कभी-कभी अनर्गल शब्द उठ सकते हैं। बच्चे, जैसे छोटे-छोटे बच्चे कुछ भी शब्द पकड़ लेते हैं, दोहराए चले जाते हैं—कभी वैसा हो सकता है। प्रार्थना में तो निर्दोष बच्चे जैसा हो जाना है। या जैसे कभी तुमने शास्त्रीय संगीतज्ञों को आलाप भरते देखा है, वैसा आलाप पैदा हो सकता है—जिसमें कोई शब्द भी नहीं है, सिर्फ स्वर है। या सब सन्नाटा हो सकता है। प्रार्थना बड़ी है, सबको समा लेती है, किसी एक घटना में सीमित नहीं है। कभी सन्नाटा हो जाएगा इतना कि हाथ-पैर भी न हिलेंगे। और कभी ऐसा हो जाएगा ऐसी ऊर्जा उतरेगी कि नाचे बिना नहीं चलेगा। फिर जैसा हो! कभी बुद्ध की तरह बैठना हो जाए, तो बैठ जाना, कभी मीरा की तरह नाचना हो जाए, तो नाच लेना। चेष्टा करके नाचना भी मत, चेष्टा करके बैठना भी मत। जब तक कृत्य है तब तक प्रार्थना नहीं, क्योंकि कृत्य में कर्ता है। और कर्ता में अहंकार है। तुम सिर्फ खुल जाना। जैसे सुबह की हवा आती है और फूल को नचा जाती है। और सुबह का सूरज उगता है और फूल की पंखुड़ियां खिल जाती हैं—बस ऐसे! तुम उपलब्ध रहना। तुम परमात्मा कुछ करना चाहे तो होने देना, कुछ न करना चाहे तो चुपचाप जैसे हो वैसे ही रह जाना। जल्दी ही तुम्हें प्रार्थना का स्वाद लगने लगेगा।

प्रार्थना स्वाद है। शब्द नहीं, विचार नहीं, प्रत्यय नहीं, सिद्धांत नहीं, प्रार्थना स्वाद है। तुम्हारे भीतर एक मिठास भर जाएगी। जैसे भीतर कोई मधुकलश फूट गया, रोएं-रोएं में मस्ती आ गयी। आंखें गुलाबी हो जाएंगी, जैसे नशे में हो जाती हैं। पैर कहीं के कहीं पड़ेंगे, जैसे शराबी के पड़ते हैं। इन क्षणों की प्रतीक्षा करो। ये क्षण आते हैं। ये छोटे-छोटे क्षण हैं। और अगर तुम पकड़ लो क्षण को, तो क्षण बड़ा हो जाएगा।

जैसे बसंत में सारे वृक्ष खिल जाते हैं, ऐसे ही इन प्रार्थनाओं के क्षणों में हृदय के फूल खिलते हैं। कठिनाई क्या हो गयी, हमने नियम बना लिये हैं। रोज उठेंगे, स्नान करके प्रार्थना कर लेंगे। जैसे और कृत्य हैं—स्नान है, भोजन है, नाश्ता है, ऐसा प्रार्थना भी एक कृत्य है। प्रार्थना ऐसी छोटी बात नहीं। प्रार्थना को तुम मुट्ठी में बंद न कर सकोगे। आधी रात उठ सकती है। बिस्तर पर पड़े थे और उठ आयी। तो बैठ जाना! या पड़े रहना। सोचने-विचारने में भी पड़ने की जरूरत नहीं है कि अब मैं क्या करूं? जो हो होने देना—सहजस्फूर्त। और तुम पराभक्ति को जल्दी ही जान लोगे।

ऐसा मत सोचो कि परमात्मा ने तुम्हें छोड़ दिया है। परमात्मा अभी भी तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। परमात्मा निराश नहीं हुआ है। परमात्मा अब भी तुम्हें तलाशता आता है, टटोलता आता है, मगर तुम्हें कभी घर पाता ही नहीं। तुम सदा कहीं गये होते हो। तुम वहां होते ही नहीं। परमात्मा के आने के क्षण प्रार्थना के क्षण हैं। और परमात्मा सहज ही आता है। मगर वे क्षण बड़े छोटे-छोटे हैं—पकड़ लो उन्हें तो लंबे हो जाएंगे, जिंदगी पर फैल जाएंगे, धीरे-धीरे बड़े होने लगेंगे। और एक घड़ी ऐसी आती है कि चौबीस घंटे प्रार्थना में डूब जाते हैं। उसी क्षण भक्त भगवान हो जाता है। मगर सहज-स्फूर्तता पर 'स्पांटेनिटी' पर मेरा जोर है। किसी धर्म की बंधी-बंधायी प्रार्थना मत करना।

जीसस से उनके शिष्यों ने एक दिन पूछा कि हमें समझाएं कि प्रार्थना क्या है—जैसा तुमने पूछा है। जीसस ने क्या किया पता है? जीसस वहीं घुटने टेककर जमीन पर झुक गये। शिष्य तो खड़े रहे गये कि यह क्या हो रहा है? और जीसस प्रार्थना करने लगे। वे भूल ही गये उन शिष्यों को और भूल गये उस नगर को, भूल गये सड़क पर लोगों की भीड़ को, भीड़ खड़ी हो गयी और जीसस भाव-मुग्ध, आकाश की तरफ देखकर न-मालूम किससे बातें करने लगे।

प्रार्थना है उससे बातचीत, जो दिखायी नहीं पड़ता। प्रार्थना है उससे बातचीत जिससे उत्तर कभी आता मालूम नहीं पड़ता। प्रार्थना है उससे बातचीत जो पता नहीं है भी या नहीं है।

पागल मालूम पड़े होंगे जीसस। मगर उनकी आंख से आंसू बहे जा रहे हैं! उनकी मस्ती देखते बनती है! उनके आसपास खड़े हुए लोगों पर भी थोड़ा रस छलका है। उन्हें भी कुछ द्वार खुलता-सा दिखायी पड़ा है। एक सन्नाटा छा गया। बाजार में एक शून्य उतर आया। इसीलिए तो मैं कहता हूं बाजार को छोड़कर मत भागो, बाजार

में हिमालय को ले आना है। चुप्पी हो गयी। और जब जीसस उठे तो रूपांतरित थे। उनके चेहरे पर एक आभा थी, जो इस पृथ्वी की नहीं है। और उन्होंने पूछा अपने शिष्यों से—समझें? शिष्यों ने कहा—क्या खाक समझे! हमने पूछा था प्रार्थना क्या है, आप तो प्रार्थना करने लगे! इससे हम क्या समझेंगे? समझाइये। जीसस ने कहा, और कोई उपाय नहीं है। मैंने प्रार्थना में होकर बता दिया।

तुम भी ऐसे ही प्रार्थना में हो जाओ। जानोगे तो ही जानोगे, कोई और न जना सकेगा।

इस परिवार में, इस गैरिक परिवार में हम यही कोशिश कर रहे हैं। यहां प्रार्थना चल रही है । नाच-गान चल रहा है। इसमें सम्मिलित हो जाओ। पूछा-पाछी छोड़ो, कि प्रार्थना क्या है? प्रार्थना चल रही है, उसी रौ में बहो। उस धार के साथ हो लो, जल्दी ही तुम डुबकी खाआगे। डुबकी खाओगे तो जानोगे। रस में भीगोगे तो जानोगे।

और तुमने यह भी पूछा है कि क्या प्रार्थना केवल अपने लिए है? प्रार्थना होती ही तब है जब तुम नहीं होते हो, तो अपने लिए ही तो कैसे हो सकती है? बुद्ध ने कहा है, जो ध्यान, जो प्रार्थना अपने लिए हो, वह झूठ हो गयी। गलत हो गयी, विकृत हो गयी, जहरीली हो गयी। प्रार्थना सदा समग्र के लिए है। वहीं तो भूल हो रही है, तुम जब जाते हो मंदिर में ,अपने लिए कुछ मांग लेते हो। वहीं चूक हो रही है।

एक प्रसिद्ध झेन फकीर हुआ है नान इन। उसके पास एक व्यक्ति आता था, नान इन उसे प्रार्थना सिखाता था। प्रार्थना, बौद्धों की प्रार्थना में यह अनिवार्य हिस्सा है कि पहले प्रार्थना, भाव-गदगद हो जाओ, और फिर कहो कि जो भी इस प्रार्थना में मुझे आनंद मिला है, वह समस्त पृथ्वी पर फैल जाए, सभी दुखीजनों को मिल जाए। मेरे पास रुके नहीं, सब पर फैल जाए। यह बौद्ध प्रार्थना का अनिवार्य हिस्सा है। क्योंकि बुद्ध ने कहाः ध्यान हो और करुणा में संपूर्ण न हो, करुणा में पूर्ण न हो, तो ध्यान हुआ ही नहीं। इस आदमी ने, जो नान इन के पास आता था, इसने कहा और सब तो ठीक है, सारी पृथ्वी पर मैं अपने ध्यान की संपदा को बांट सकता हूं, लेकिन एक थोड़ी आज्ञा चाहता हूं, कि मेरे पड़ोसी! यह मैं प्रार्थना नहीं कर सकता कि उसको मेरा आनंद मिल जाए! यह पड़ोसी को मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता हूं। और मैं प्रार्थना करूं और मेरा आनंद इसको मिले! इसको छोड़कर सारी पृथ्वी को मिल जाए, यह मैं कह सकता हूं।

नान इन हंसने लगा, उसने कहाः पागल! यह सवाल पृथ्वी का नहीं है, यह सवाल 'मैं'-'तू' को छोड़ने का है। तू प्रार्थना में भी ऐसी कंजूसी करेगा, कि इस पड़ोसी को छोड़कर और सब को मिल जाए! तो तू समझा ही नहीं कि प्रार्थना क्या है। प्रार्थना में 'मैं' ही नहीं बचता, इसलिए प्रार्थना केवल अपने लिए ही नहीं हो सकती।

सुनो इन शब्दों को—

कौन-सी रात थी जो अश्क बहाते न कटी
कौन-सा दिन गमे-फरदा में गुजारा न गया
कब तबस्सुम मेरा अश्कों से संवारा न गया
अग्र-रहमत से भी किस्मत की सियाही न छुटी
आसमां चांद-सितारों से संवरता ही रहा
धुल सका फिर भी न तारीक खलाओं का गुबार
बन न पायी कोई तसवीर हसीन-ओ-जरकार
नूर हर जर्रए-अलम पै बिखरता ही रहा
छीन भी लेता है तू मुझसे अगर गम अपना
तेरे गम के सिवा गम हाय दिगर और भी हैं
मंजरे-दर्द अभी मुहताजे-नजर और भी हैं
इतनी महदूद नहीं मेरे दुखों की दुनिया

अगर तुम्हारा दुख छिन भी जाए—निश्चित छिन जाएगा—प्रार्थना में कोई कभी दुखी हुआ नहीं। प्रार्थना में कहां दुख? जैसे रोशनी में कहां अंधेरा? प्रार्थना में तुम्हारा दुख तो छिन ही जाएगा। उस घड़ी को चूकना मत, उस घड़ी को बांटने की घड़ी समझना। अब एक छलांग और भरना और इस सारे आनंद को बिखेर देना। इस सारी सुवास को बिखेर देना। फूल जब खिलता है, तो गंध को बांधकर थोड़े ही रखता है। फिर गंध बंट जाती है। वही तो फूल का खिलना है, वही तो उसका सौभाग्य है। और जब आषाढ़ के बादल घिरते हैं तो बरसते हैं। वही उनका सौभाग्य है। खाली हो जाने में ही उनकी पूर्णता है। जब ज्ञान जन्मता है तो ज्ञान बंटता है। जब आनंद जन्मे तो आनंद बंटे। हम अलग-अलग नहीं हैं, हम संयुक्त हैं, हम सब जुड़े हैं। 'मैं'-'तू' के सारे भेद कल्पित हैं, झूठे हैं।

मंजरे-दर्द अभी मुहताजे-नजर और भी हैं।

अभी और भी दुखों के बहुत दृश्य हैं और अभी बहुत हैं जो तेरे दर्शन के लिए दुखी हैं—और प्यासे हैं और पीड़ित हैं।

मंजरे-दर्द अभी मुहताजे-नजर और भी हैं

इतनी महदूद नहीं मेरे दुखों की दुनिया

मेरे दुखों की दुनिया मुझ तक ही सीमित नहीं है, इतनी छोटी नहीं है, इतनी कृपण नहीं है। सब के दुख मेरे दुख हैं।

प्रार्थना के क्षण में यह भाव तो उठेगा ही। मेरा दुख मिटा, क्योंकि मैं मिटा, हे प्रभु, सबके दुख मिटें! सब मिट जाएं। सबके अहंकार गलें। सब पिघल जाएं। जब तुममें स्वर वह उतरने लगे, तो तुम कंजूसी मत कर लेना। अगर कंजूसी की, स्वर्ग का गला घुट जाएगा। स्वर्ग बांटने से बढ़ता है, बचाने से घट जाता है। आनंद बांटने से बढ़ता है, रोक लेने से मर जाता है। आनंद को उड़ने देना, फैलने देना, सुगंध की भांति। जाने देना दूर-दिगंत तक। और तुम्हारी प्रार्थना रोज-रोज घनी होगी, रोज-रोज गहरी होगी। और जल्दी ही तुम पाओगे, तुम्हारे बीच और परमात्मा के बीच जरा-भी अंतराल नहीं रहा, जरा-भी दूरी नहीं रही। तुम उसके हृदय के अंग हो गये, वह तुम्हारे हृदय का अंग हो गया है।

दूसरा प्रश्नः अहंकार के पास भी कोई संजीवनी है क्या? जो कि मरते-मरते भी जी-जी जाता है—जाने कहां से, जाने कैसे, जाने क्यों?

प्रताप! अहंकार के पास कोई संजीवनी नहीं है। न तो अहंकार जी सकता है, न मर सकता है। जीने-मरने की भाषा अहंकार पर लगाना ही मत। अंधेरा कहीं जीता है, अंधेरा कहीं मरता है? अंधेरा होता ही नहीं, तो जीएगा कैसे, मरेगा कैसे? अंधेरा अभाव है। ऐसे ही अहंकार अभाव है। तुमने परमात्मा को नहीं जाना, यही तुम्हें अहंकार को पैदा करने का कारण बन गया है।

अहंकार प्रतीति है परमात्मा के गैर-मौजूदगी की। परमात्मा नहीं है, इसलिए 'मैं' हूं। यह 'मैं' उठता रहेगा, अगर तुम इसको गिराने की कोशिश करोगे—क्योंकि गिराने में भ्रांति बनी ही हुई है। तुमने यह बात नहीं देखी अभी तक कि अहंकार है ही नहीं। जब कोई पूछता हैं, अहंकार को कैसे मिटाऊं, तो गलत प्रश्न पूछता है। पूछना चाहिए, अहंकार को कैसे जानूं कि यह क्या है? गिराना, मिटाना, तो लड़ना शुरू हो गया। और जो नहीं है, उससे लड़ोगे तो हारोगे। अपनी छाया से कोई लड़ने लगेगा तो जीतेगा क्या कभी?

मैंने सुना है, एक आदमी अपनी छाया से बहुत डर गया था। रात अंधेरे में चलता होगा, रास्ते के किनारे, लैंपपोस्ट के नीचे अपनी छाया देखी, एकांत था, अंधेरा था, बहुत घबड़ा गया, कि कौन मेरा पीछा कर रहा है? भागने लगा। पागल ही रहा होगा—जैसे आदमी पागल होते हैं! भागने लगा तो अपने ही पैरों की आवाज पीछे से आती हुई मालूम होने लगी। कभी एकांत में मरघट पर भागे हो? तो अपने ही पैरों की आवाज ऐसी लगती है कि कोई पीछे आ रहा है, किसी के पैरों की आवाज आ रही है। और जब पीछे कोई आ रहा है तो लौट कर

देखना भी मुश्किल हो गया। कि पता नहीं कौन है? भूत हो कि प्रेत हो, कि चोर हो कि हत्यारा हो? वह और जोर से भागा, प्राण छोड़कर भागा। जितना भागने लगा, उतने ही जोर से भीतर पीछे की आवाज भी बढ़ने लगी—कोई पीछा भी करने लगा।

इस तरह तो तुम मुश्किल में पड़े हो। जरा लौटकर देखो, पीछे कोई भी नहीं है। अपनी ही छाया से भयभीत हो गये हो। और जिसे तुम मिटाने चले हो, पहले यह तो जान लो वह है भी या नहीं? नहीं तो तलवारें उठाकर अगर छायाओं से लड़ने लगे, तो खतरा यही है कि आज नहीं कल तलवारों से अपने ही हाथ-पैर काट लोगे। छाया तो कटने से रही! और यह हो सकता है कि अपने हाथ-पैर काटकर तुम्हें यह भी आनंद आए कि देखो, छाया का एक हाथ काट दिया, कि देखो छाया का एक पैर काट दिया—लंगड़ी कर दी छाया! मगर छाया लंगड़ी नहीं हो रही है तुम लंगड़े हो गये हो। तुम्हारे त्यागी, व्रती और मुनि इसी तरह लंगड़े हो कर बैठ गये हैं। अपने को ही काट लिया है, काटने अहंकार को चले थे; खुद को ही मुर्दा बना लिया है। जड़ हो गये हैं।

जीवन की तरंग दिखायी पड़ती है तुम्हें तुम्हारे मुनियों में, तुम्हारे तपस्वियों में? मौत छायी हुई मालूम होती है। क्या हो गया है इन्हें? मस्ती कहां है? और जो ज्ञान नाचता न हो, वह ज्ञान कैसा? अज्ञानी दुखी है, समझ में आता है, ज्ञानी क्यों दुखी है? अज्ञानी पीड़ित है, परेशान है, नर्क में जी रहा है, समझ में आता है, मगर ये तुम्हारी ज्ञानी, ये अज्ञानी से भी ज्यादा पीड़ित और दुखी मालूम पड़ते हैं। अज्ञानी कभी हंसता भी है, ये तो हंसते भी नहीं। अज्ञानी कभी थोड़ी मस्त चाल भी चल लेता है, क्षणभंगुर ही सही, लेकिन ये तो क्षणभर के लिए भी मस्त चाल नहीं चलते। ये पहाड़ ढो रहे हैं। और ये लंगड़े हो गये हैं। पक्षाघात इन्हें लग गया है। उन्होंने अपने ही हाथ-पैर काट लिये हैं। मगर ये मजा ले रहे हैं कि हाथ-पैर काट कर इन्होंने अहंकार को काट दिया है, छाया को काट दिया है। भूलकर इस भ्रांति में मत पड़ना।

छाया को काटने की जरूरत ही नहीं, इतना समझ लेना पर्याप्त है कि छाया छाया है। बस, इस समझ में ही छाया का अंत हो गया। इस समझ में ही छाया की तुम पर जकड़ खो गयी।

तुम पूछते हो—अहंकार के पास कोई संजीवनी है क्या? अहंकार के पास कोई संजीवनी नहीं है। लेकिन तुमने अहंकार को कभी आमने-सामने करके देखा नहीं, बस यही उसका बल है। मूर्च्छा, तुम्हारी मूर्च्छा अहंकार का बल है, और तुम्हारी जागृति अहंकार की मृत्यु हो जाएगी। जागकर जरा देखो भी किसे तुम अहंकार कह रहे हो? कभी आंख खोलकर भीतर तलाशो कि अहंकार कहां है? और तुम नहीं पाओगे-कभी किसी ने नहीं पाया; मैंने खोजा और नहीं पाया; और जिन्होंने भी खोजा उन्होंने नहीं पाया। भीतर जाओगे, जरा तलाश करोगे, तुम चकित हो जाओगे—किससे भयभीत थे, किससे लड़ते थे, दुश्मन तो कहीं दिखायी नहीं पड़ता।

लेकिन तूमने अहंकार तो खोजा नहीं है, तुमने संतों की बातें सुन ली हैं। साधु-सत्संग तुमने कर लिया। तुम वेद-उपनिषद-गीता-कुरान पढ़ लिये हैं, और उन सब में कहा गया है: जब तक अहंकार समाप्त न हो, तब तक परमात्मा का अनुभव न होगा। इन बातों को सुनकर तुम्हें लोभ पकड़ा कि अहंकार को समाप्त करें। और ध्यान रखना, शास्त्रों में जो कहा है, गलत नहीं कहा, बिलकुल ठीक कहा है, कि जब तक अहंकार समाप्त न हो, तब तक परमात्मा का अनुभव नहीं होगा। लेकिन तुम जो समझ रहे हो, वह नहीं कहा है। यह नहीं कहा है कि अहंकार को काटो, मारो, अहंकार को नष्ट करो, तब परमात्मा मिलेगा। इतना ही कहा है कि जानो तो अहंकार समाप्त हो जाता है। जानने में समाप्ति है। दिया जला लो जरा ध्यान का, या प्रार्थना का, जरा नाच होने दो, उसी रोशनी में अहंकार नहीं हो जाता है, समाप्त हो जाता है। काटने से नहीं कटता, देखने से कट जाता है। और जहां अहंकार कट गया, वहां परमात्मा विराज मान हो जाता है।

ठीक कहा है शास्त्रों ने, लेकिन तुम शास्त्रों को समझते वक्त भी तो अपने ढंग से ही समझोगे न! तुम व्याख्या अपनी ही थोपोगे न! तुम्हारा शास्त्र, तुम्हारे ही भीतर जो पड़ा हुआ है उसकी गूंज बन जाता है। तुम्हारा शास्त्र वह नहीं कह पाता जो कहना चाहता है, वही तुम समझ लेते हो तुम समझ सकते हो।

एक स्कूल में एक शिक्षिका ने एक बच्चे से पूछा...समझाया बहुत उसने हाथी के संबंध में, कि हाथी सबसे विशालकाय जानकर है। हाथी की कई कहानियां बतायीं। पंचतंत्र की पुरानी कहानी बतायी कि एक बार सिंह को यह सनक सवार हुई कि जाकर लोगों से पूछ लूं कि जंगल का राजा कौन है? शायद चुनाव हो रहा होगा आदमियों में कहीं! गांव से खबरें आ गयी होंगी कि वहां चुनाव हो रहा है। उसको भी वहम पकड़ा होगा कि पता नहीं मुझे लोग राजा मानते हैं या नहीं मानते हैं?—जमाने बदल गये, अब राजा रहे नहीं। पूछूं एक बार, मत ले लूं जंगल के जानवरों का। उसने लोमड़ी से पूछा कि मैं राजा हूं या नहीं, कौन है राजा? लोमड़ी ने कहा, आप को भी शक होने की बात है क्या? आप राजा हैं, सदा से राजा हैं, सदा राजा रहेंगे। यह पागल आदमियों की फिक्र छोड़ो, हम इस झंझट में नहीं पड़ते, हम लोकतंत्र इत्यादि में नहीं मानते। तुम राजाधिराज, तुम महाराजा हो! और किसी से पूछा, और किसी से पूछा, और फिर हाथी से जाकर पूछा, कि गजराज, तुम्हारा क्या खयाल है? इस जंगल का सम्राट कौन है? हाथी ने सिंह को अपनी सूंड़ में फंसाया और कोई तीस फीट दूर उठाकर फेंक दिया। एक चट्टान से उसका सिर टकराया, जमीन से उठकर उसने धूल झाड़ी और हाथी से कहा कि यह भी खूब रही, अगर तुम्हें ठीक उत्तर मालूम नहीं, तो कह देते! इतना नाराज हो जाने की क्या जरूरत थी?

यह कहानी शिक्षिका ने बच्चों को सुनायी और फिर बच्चों से पूछा—और भी कहानियां सुनायी, यह बात उनके मन में बिठाने को कि हाथी बड़ा शक्तिशाली हैं—फिर एक छोटे से बच्चे से पूछा कि तू बता लालू, कि सिंह किससे डरता है? उस बच्चे ने खड़े होकर कहां, सिंहिनी से।

बच्चों की अपनी समझ है। वह देखता है कि हर आदमी स्त्री से डरता है। पिता मां से डरते हैं, भाई भाभी से डरते हैं, हर आदमी स्त्री से डरता है! उसने अपना एक निष्कर्ष लिया हुआ है कि सिंह और किससे डरेगा? वह सब कहानियां वगैरह जो सुनायी थीं हाथी की, व्यर्थ गयीं। उसकी अपनी समझ है। वह अपनी समझ से डगमग नहीं होता। उसने अपना एक निर्णय कर लिया है।

तुम जब शास्त्र पढ़ते हो, तुम अपनी समझ से डगमग नहीं होते। तुम शास्त्र में अपनी समझ थोप देते हो।

और शास्त्र को पढ़कर तुम्हें ज्ञान तो हो ही नहीं सकता। शास्त्र को पढ़कर कहीं किसी को ज्ञान हुआ है। लेकिन लोभ होता है। लोभ से झंझट खड़ी हो जाती है। शास्त्र में सुना—या सदगुरु से सुना, शास्ता से सुना कि अहंकार छूट जाए तो परमात्मा मिल जाए, परमात्मा मिलने का लोभ तुम्हारे भीतर पकड़ता है, कि किसी तरह परमात्मा पा लूं। परमात्मा पाने के लोभ में अब तुम इस कोशिश में लग जाते हो—अहंकार को छोड़ना पड़ेगा, अहंकार कैसे छोड़ूं, कैसे मिटाऊं, कैसे लड़ूं, कैसे झगड़ूं? उपवास करके मार डालूं अहंकार को, घर छोड़ दूं, त्याग करके मार डालूं अहंकार को, क्या करूं? बस, उपद्रव शुरू हो गया। समझ तो पैदा नहीं हुई, लोभ ने और नासमझी खड़ी कर दी।

अहंकार मिटता है, मिटाने से नहीं, देखने से। साक्षात्कार से, बोध से, समझ से। अहंकार को समझो। और समझने के लिए जरूरी है कि तुम अहंकार से भागो भी मत। क्योंकि भागने वाला समझ नहीं सकता। भयभीत आदमी कभी नहीं समझ सकता। जिससे तुम भयभीत हो गये, उसे तुम कभी आंख भरकर देख भी न पाओगे। जिससे तुम भयभीत हो, उससे तुम आंखें बचाने लगते हो। जिससे तुम डर गये, उससे तुम भागने लगते हो, छिपने लगते हो, बचने लगते हो।

तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि अहंकार से भागो भी मत, अहंकार को जीओ। है अभी, तो जीओ! क्योंकि जीने से ही देखा जा सकेगा। छिपाओ मत, अनुभव करो। जहां-जहां अहंकार सिर उठाता है, उस सिर उठाने को जीओ। झुठलाओ मत। ऊपर-ऊपर से झुको मत, यह मत कहो कि मैं तो विनम्र आदमी हूं; भीतर अहंकार सिर उठा रहा है, उसकी तरफ पीठ किये खड़े हो, ताकि दिखायी नहीं पड़ेगा; न दिखायी पड़ेगा, न पता चलेगा; इस तरह भूल-भूलकर एक दिन समाप्त हो जाएगा। यह शुतुरमुर्गी-न्याय काम नहीं करेगा।

कहते हैं, शुतुरमुर्ग का दुश्मन जब उस पर हमला करता है तो वह रेत में सिर गपा कर खड़ा हो जाता है। उस का तर्क यह है कि न दिखायी पड़ेगा दुश्मन, न होगा। जो दिखायी पड़ता है, वही है। जो दिखायी नहीं पड़ता है, वह कैसे हो सकता है? यही तो नास्तिक कहते हैं। वे कहते हैं, ईश्वर दिखायी नहीं पड़ता, तो होगा कैसे? दिखा दो, तो मान लें। उनका तर्क भी शुतुरमुर्ग का तर्क है। शुतुरमुर्ग सिर को रेत में गड़ा लिया है, अब वह कहता है कि दिखायी ही नहीं पड़ता दुश्मन, तो हो ही नहीं सकता।

लेकिन दिखायी पड़ने से होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। तुमने आंख बंद कर ली है, इसलिए दिखायी नहीं पड़ता है। जिनको तुम विनम्र कहते हो, निर-अहंकारी कहते हो, साधु कहते हो, अक्सर ऐसे ही लोग हैं, जिन्होंने शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सिर गड़ा लिया है।

मैं तुमसे यह नहीं कहूंगा। शुतुरमुर्ग होने से बचना! शुतुरमुर्ग काफी हैं इस समाज में। इस देश में तो बहुत! इस देश में तो शुतुरमुर्ग इस तरह फैल गये हैं कि हर जगह उन्होंने अड्डा जमा लिया है। वे हमेशा हाथ जोड़े खड़े हैं, हमेशा झुके खड़े हैं, और भीतर भयंकर अहंकार की ज्वाला जल रही है। इनसे बचना। और ऐसे बनने से बचना।

मैं तुमसे कहता हूं, अहंकार को जीओ। अहंकार पीड़ा लाएगा, शुभ है; क्योंकि पीड़ा से ही कोई जागता है। अहंकार तुम्हें जलाएगा, शुभ है; दग्ध करेगा, शुभ है। अहंकार तुम्हारे भीतर घाव बनाएगा, शुभ है। क्योंकि यही सारे घाव, ये सारी पीड़ाएं, ये सारे नर्क झेल-झेल कर ही एक दिन तुम्हें अहंकार की समझ आएगी कि अहंकार है क्या? उस समझ में ही अहंकार तिरोहित हो जाता है।

व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?
नील-नीलम नभ निमंत्रण दे किसी को
तो करे इनकार कैसे
आंख जिनके, हो न उनको चांद-सूरज
की किरण से प्यार कैसे
ठीक है, दिल पास रखता हूं, समझता
हूं सभी कुछ, आज लेकिन,
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?
आसमानी स्वप्न ललचाते उसे हैं
भूमि जिसकी जन्म-गोदी,
आग से खिलवाड़ करने को तरसता
ही सदा है जल-विनोदी,
और फिर डैने मिले, इनको थका आ,
तोड़ आ, चाहे जला आ,
बेदिये कीमत यहां वरदान कोई मुफ्त में पाता कहां है?
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?
है ठहर तब तक फलक पर जब तलक है
जोर बाजू का सलामत,
बिजलियों की हर लहर, जैसे जमीं की
और गिरने की अलामत,
दग्ध पर की, दग्ध स्वर की कद्र केवल
एक धरती जानती है,

लाख आकर्षित किसी को भी करे आकाश अपनाता कहां है?

व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?

अहंकार से मुक्त होने के लिए पहले अहंकार को जी लेना जरूरी है। अहंकार को फैलाने दो डैने खोलने दो पंख, उड़ने दो आकाश में। अहंकार को अपनी यात्रा कर लेने दो। धन की, पद की, सब तरह की। जल्दी न करो। अहंकार जो करना चाहता है, उसे करने दो। उसी करने में ही तो तुम अहंकार को पहचानोगे। उसी करने में ही तो अहंकार से तुम्हारी समझ का नाता जुड़ेगा।

आसमानी स्वप्न ललचाते उसे हैं

भूमि जिसकी जन्म-गोदी

चुनौतियां हैं! हम जमीन पर जन्में हैं, आकाश का निमंत्रण और चुनौती हमें मिलती है। हम वही तो पाना चाहते हैं जो हम नहीं हैं। यही तो सारा संसार है—हम वही पाना चाहते हैं जो हम नहीं हैं। और हम पा केवल वही सकते हैं जो हम हैं। यही तो उपद्रव है। यही तो सारा गणित है। जो हमारा नहीं है, उसे हम पाना चाहते हैं। और उसे हम कभी पा न सकेंगे। जो हमारा है, वह मिला ही हुआ है। उसे पाने की कोई जरूरत नहीं है। मगर जो हमारा नहीं है और उसे पाने की आकांक्षा है अभी, उसके पीछे दौड़ना होगा, दौड़ना होगा और गिरना होगा, फिर उठना होगा और दौड़ना होगा। दौड़-दौड़ कर गिरना होगा। हर बार आशा करनी होगी, हर बार विषाद से भरना होगा। बहुत बार चोट खा-खा कर एक दिन यह बोध जागेगा—चोट-पर-चोट, चोट-पर-चोट—एक दिन यह बोध पैदा होगा, तुम्हारे भीतर, कि जो मेरा नहीं है, वह मेरा कभी नहीं हो सकेगा। वह हो ही नहीं सकता। वह प्रकृति का नियम नहीं है। तो अब मैं उसकी तरफ मुडूं जो मेरा है। उसी दिन अंतर्यात्रा शुरू होती है। उसी दिन संन्यास।

व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?

नील-नीलम नभ निमंत्रण दे किसी को

तो करे इनकार कैसे,

आंख जिनके, हो न उनको चांद-सूरज

की किरण से प्यार कैसे,

ठीक है, दिन पास रखता हूं, समझता

हूं सभी कुछ, आज लेकिन,

व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?

लेकिन जितना अंधेरा छाया होता है आकाश, उतनी ही चुनौती! जितना शिखर ऊंचा होता है, उतनी चुनौती! जितना पाना मुश्किल होता है, उतनी चुनौती! समझ लेना इस तर्क को।

अहंकार असंभव में उत्सुक होता है, संभव में नहीं। संभव में अहंकार को रस ही नहीं होता है। पूना की छोटी-सी पहाड़ी है, उस पर चढ़ जाओ, इसमें अहंकार को कोई रस नहीं। उस पर जाकर तिरंगा झंडा गड़ा दो, कोई अखबार वगैरह में तुम्हारी खबर न छपेगी। यह भला हो सकता है कि कोई जो सुबह-सुबह घूमने चले आए हों पहाड़ी पर वे पुलिस में खबर करें कि इस आदमी का दिमाग खराब हो गया है। एवरेस्ट पर चढ़कर अगर झंडा गड़ाओ, तो तुम जगत-विख्यात हो जाते हो। और एवरेस्ट में और हिमालय के छोटे-से टीले में फर्क गुण का नहीं है, केवल परिणाम का है। यह जरा छोटा है, वह जरा बड़ा है लेकिन हिमालय के एवरेस्ट शिखर पर झंडा गाड़ देता है जब कोई आदमी—हिलेरी या तेनसिंग सारे जगत में ख्याति हो जाती है। इतिहास में नाम ठहर जाता है। और मजा यह है कि वहां कुछ और पाने को नहीं है। बस झंडा ही गाड़ने की जगह है, वहां ज्यादा जगह भी नहीं है। वहां रुकने का भी कुछ नहीं है, पाने का भी कुछ नहीं है। लेकिन फिर मामला क्या है? हिलेरी से किसी ने पूछा—जब वह एवरेस्ट शिखर की विजय करके लौटा—कि वहां था क्या पाने का, आप इतने

परेशान क्यों हुए? उसने कहा, परेशान! एवरेस्ट की मौजूदगी बेचैनी का कारण थी। मनुष्य ने उसको भी जीत लिया, हमने एवरेस्ट को भी हरा दिया। पाया क्या! पाने का कोई सवाल ही नहीं है। इतना ही काफी था कि एवरेस्ट है और अनजीता पड़ा है। इसको जीतना ही होगा!

अहंकार असंभव में रस लेता है—जो नहीं हो सकता। और क्या नहीं हो सकता? इस दुनिया में सब से असंभव बात एक है, वह है—पद से तृप्ति, धन से तृप्ति, न कभी हुई है, न कभी हो सकती है। सारे बुद्धों का जीवन कह रहा है—नहीं हुई; और सारे सिकंदरों का जीवन भी कह रहा है कि नहीं हुई। साधु-असाधु सब एक बात मग सहमत हैं कि धन से और पद से किसी की तृप्ति नहीं हुई। बाहर की यात्रा से कभी कोई शांत नहीं हुआ, आनंदित नहीं हुआ। बाहर की यात्रा का कोई अंत ही नहीं है। चलो—और चलो, और गिरो—और गिरो और मर जाओ।

बाहर के सब रास्ते कब्र पर समाप्त होते हैं, अमृत तक बाहर का कोई रास्ता नहीं जाता। अमृत तुम्हारे भीतर मौजूद है, लेकिन जो मौजूद है उसमें रस नहीं है। अहंकार का मजा ही यह है कि जो मेरे पास नहीं, वह पाकर रहूं। तुमने देखा नहीं, तुम एक कार खरीद लेते हो। जब तक नहीं थी, तब तक उसके सपने देखे, विचार किया। जब रास्ते पर गुजरती दिख जाती थी, एक बिजली कौंध जाती थी, तड़प जाते थे। फिर तुम्हारे पोर्च में आकर खड़ी हो गयी। एकाध दिन झाड़ा-पोंछा, एकाध दिन उसके आसपास बड़ी शान से घूमे, बाजार गये, फिर दो-चार दिन में सब शांत हो गयी बात, खत्म हो गयी। रस ही असल में कार में नहीं था, रस था—जो तुम्हारे पास नहीं है। अब तुम्हारे पास है तो रस कैसे हो सकता है?

तुमने देखा नहीं कि जिस स्त्री के प्रेम में तुम पड़ जाते हो, उसे पाने में जितनी कठिनाई लग जाए, उतना ही प्रेम बढ़ता जाता है। मजनूं को अगर लैला मिल गयी होती, तो मजनूं का नाम भी तुमको पता नहीं होता। वह तो लैला नहीं मिली। यही मजनूं की कहानी का सारा सार है। और बहुत संभव है कि लैला मिल गयी होती तो तलाक भी हुआ होता। कहानियां बड़े अजीब ढंग से चलती हैं। असली कहानियां का ढंग और है। नहीं मिली तो मजनूं रोता ही रहा, तड़पता ही रहा, जंगलों-जंगलों, पहाड़ों, लैला-लैला पुकारता रहा! तुमने किसी पति को ऐसा करते देखा है? अगर किसी पति से पूछो शायद उसने बीस साल से पत्नी का चेहरा ठीक से देखा भी नहीं है।

तुम भी पति हो, तुम भी पत्नी हो, कभी आंख बंद करके अपने पति का या पत्नी का चेहरा याद करने की कोशिश करना—तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। फिल्म अभिनेत्रियां के चेहरे याद आएंगे, मगर अपनी पत्नी का चेहरा याद नहीं आएगा कि कैसा है। अगर जरा ज्यादा गौर से देखा तो जो थोड़ी धुंधली-धुंधली सी याद आती थी, वह भी खो जाएगी। जो मिल जाता है, उसमें रस खो जाता है। रस ही हमारा उसमें है जो हमारे पास नहीं है। इसका मतलब हुआ कि अहंकार तो कभी भी तुम्हें, कहीं भी आनंदित नहीं होने देगा। उसका रस ही उसमें है जो तुम्हारे पास नहीं—और वही दुख है। अहंकार का रस ही तुम्हारे जीवन का दुख है।

आसमानी स्वप्न ललचाते उसे हैं

भूमि जिसकी जन्म-गोदी

भूमि को कौन देखता है? उस पर तो हम पैदा हुए, चलते, रहते-भूल ही जाते हैं। आकाश की तरफ हम देखते हैं! आकाश में हमारा दिल भरमाता है!

आग से खिलवाड़ करने को तरसता

ही सदा है जल-विनोदी

जो पानी में पैदा हुआ है, वह आग से खिलवाड़ करने का रस रखता है। यही अहंकार है। तुम जो नहीं हो, वह होने की आकांक्षा अहंकार है। और यह हो नहीं सकता, इसलिए अहंकार विषाद में ले जाता है। जिस दिन विषाद का अनुभव कर-कर के तुम सजग हो जाओगे और यह आकांक्षा व्यर्थ हो जाएगी, इसका तुम मूल सूत्र

देख लोगे, उस दिन कुछ करना नहीं पड़ेगा अहंकार मिटाने को, बात खत्म हो गयी। उस दृष्टि में ही रूपांतरण है।

और फिर डैने मिले, इनको थका आ,

तोड़ आ, चाहे जला आ,

बेदिये कीमत यहां वरदान कोई मुफ्त में पाता कहां है?

व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?

स्मरण रखो—

बेदिये कीमत यहां वरदान कोई मुफ्त में पाता कहां है?

और यहीं अड़चन हो जाती है। उपनिषद पढ़ लेते होः छोड़ो अहंकार! बाइबिल पढ़ लेते होः छोड़ो अहंकार! मुझे सुन लेते होः छोड़ो अहंकार! और तुम सोचते हो, तो छोड़ ही दें न! मगर वह छूटता नहीं। क्यों? बेदिये कीमत यहां वरदान कोई मुफ्त में पाता कहां है? तुमने अभी कीमत नहीं चुकायी। अभी अहंकार की पीड़ा ही तुमने नहीं भोगी। अभी अहंकार का जहर तुमने नहीं पीआ। अभी अहंकार ने तुम्हें इतना नहीं सता दिया है कि तुम छोड़ सको। इसीलिए प्रताप, तुम दबा-दबू कर बैठ जाते हो—सरका दिया जरा, कपड़े में छिपा दिया जरा—फिर अहंकार निकल आता है। अहंकार के पास कोई संजीवनी नहीं है, सिर्फ तुम्हारा अनुभव अभी अहंकार का कच्चा है, अपरिपक्व है।

है ठहर तब तक फलक पर जब तलक है

जोर बाजू का सलामत

तुम देखते हो, कितने ही बड़े डैने हों और कितने ही बलशाली पंख हों, आकाश पर कितनी देर रुक सकोगे?

है ठहर तब तक फलक पर जब तलक है जोर बाजू का सलामत

जल्दी ही थकोगे। थकोगे और गिरोगे। जोर बाजू का सीमित है। तुम देखते हो, पदों पर लोग रुक जाते हैं थोड़ी देर तक—जब तक जोर बाजू का सलामत—फिर जरा सुस्त हुए, ढीले हुए कि किसी ने टांग खींची! क्योंकि दूसरे भी मौजूद हैं जो पूरे वक्त उत्सुक हैं कि वे सिंहासन पर बैठें। तुमने एक मजा देखा, राजनीति में दुश्मन तो दुश्मन होता ही हैं, मित्र भी दुश्मन होते हैं। धर्म में मित्र तो मित्र होते ही हैं, दुश्मन भी मित्र होते हैं! और राजनीति में ठीक उल्टा है। जो राजनीतिक पद पर पहुंच जाता है, उसका कोई मित्र नहीं बचता, उसके सब शत्रु होते हैं। क्योंकि अब उसकी ही वजह से मित्र आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं, अटक गये हैं। वह जब तक सिंहासन पर बैठा है, तब तक वे अटके हुए हैं। वे सब प्रार्थना कर रहे हैं कि प्रभु, अब इनको उठाओ! कि अब बहुत देर हुई जा रही है! कि अब इनको राजघाट पहुंचाओ! कि हम शाही जलसा करेंगे, सैन्य-विदाई देंगे—सब करेंगे—मगर जल्दी करो, बहुत देर हुई जा रही है!

राजनीति में कोई मित्र हो नहीं सकता। वहां तो गलाघोंट प्रतियोगिता है। और यह सारा जगत राजनीति है। मेरे देखे अहंकार का फैलाव राजनीति है। और अहंकार की समझ से जो मुक्ति फलित होती है, वही धर्म है।

बस, दुनिया में दो ही खेल हैं। एक अहंकार का खेल है और एक बोध का। अहंकार का खेल राजनीति है, बोध का खेल धर्म है। अहंकार का खेल सिर्फ दुख में ले जाता है, पीड़ा में—तुम्हें भी और दूसरों को भी—और धर्म का खेल तुम्हें आनंद में ले जाता है और दूसरों को भी।

है ठहर तब तक फलक पर जब तलक है

जोर बाजू का सलामत,

बिजलियों की हर लहर, तेरे जमीं की

ओर गिरने की अलामत,

और जल्दी ही बिजली की हर लहर कहेगी कि—अब गिरा, अब गिरा, तब गिरा!

दग्ध पर की, दग्ध स्वर की कद्र केवल

एक धरती जानती है,

अपनी भूमि में वापिस लौट आना होगा। अपने में ही गिर जाना होगा।

लाख आकर्षित किसी को भी करे आकाश अपनाता कहां है?

व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?

लेकिन जाना पड़ेगा! दूसरों से यह ज्ञान उधार नहीं लिया जा सकता है। कहते हैं न, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है, लेकिन दूध से जले तब न!

तुम दूध से अभी जले नहीं हो! यही तुम्हारी अड़चन है। तुम अपने अहंकार को छिपाओ मत, दबाओ मत—जीओ! भयभीत मत होओ। इस जगत में कुछ भी मुफ्त नहीं मिलता है। इस जगत में हर चीज के लिए कीमत चुकानी ही पड़ती है। और अहंकार से मुक्त होने की एक ही कीमत है: अहंकार का नर्क जीना पड़ेगा।

और तब तुम अचानक पाओगे कि न कोई संजीवनी है अहंकार के पास, न कोई जीवन-ऊर्जा है। अहंकार है ही नहीं। परिपक्व बोध में, अनुभव में, अहंकार अपने-आप गिर जाता है।

आके पत्थर तो मेरे सहन में दो चार गिरे,

जितने उस पेड़ के फल थे पसे दीवार गिरे.

मुझे गिरना है तो मैं अपने ही कदमों में गिरूं,

जिस तरह साया-ए-दीवार पे दीवार गिरे.

तीरगी छोड़ गये दिल में, उजाले के खतूत,

ये सितारे मेरे घर टूट के बेकार गिरे.

देखकर अपने दरोबाम लरज जाता हूं,

मेरे हमसाये में जब भी कोई दीवार गिरे

वक्त की डोर खुदा जाने कहां से टूटे,

किस घड़ी सर पे ये लटकी हुई तलवार गिर.

क्या कहूं दीदा-ए-तर, यह तो मेरा चेहरा है,

संग कट जाते हैं बारिश की जहां धार गिरे.

हाथ आया नहीं कुछ रात की दलदल के सिवा,

हाय किस मोड़ पे ख्वाबों के परस्तार गिरे.

अहंकार में चलो। चलना पड़ेगा! यद्यपि हाथ कुछ नहीं आएगा। वही हाथ आना है। अहंकार में चलकर जब तुम पाते हो—हाथ कुछ नहीं आया, तो एक बात कम से कम हाथ में आ गयी, एक अनुभव हाथ आ गया कि अहंकार की यात्रा व्यर्थ है।

हाथ आया नहीं कुछ रात की दलदल के सिवा,

हाय किस मोड़ पे ख्याबों के परस्तार गिरे.

अहंकार सिर्फ सपने देखना जानता है। और आज नहीं कल सब सपने गिर जाते हैं। जिस दिन तुम्हारे सपने सब गिर जाते हैं—मेरे कहने से नहीं, तुम्हारे जीवंत अनुभव से—उसी दिन अहंकार से मुक्ति है।

तीसरा प्रश्नः भगवान, विदा की इस पूर्व-संध्या में काठमांडू के एक मित्र डा. दुर्गा प्रसाद भंडारी, अंग्रेजी विभाग अध्यक्ष, टी. यू. की बहुत याद आती है। पूना से किसी नये मित्र के संन्यास लेकर लौटने पर, वे आनंद से नाचते हैं। आपके विरोध में बोलनेवाले से हाथापाई पर उतर आते हैं। पर जब कभी आपके पास आने का अवसर आता है, तो उन्हें बड़ी घबड़ाहट होने लगती है। उसी प्रकार शिवपुरी बाबा के कुछ शिष्य भी आपके प्रेम-दीवाने हैं। पर उनकी ऐसी मान्यता है कि उनके आपके पास आकर संन्यास लेने से अपने पूर्व-गुरु के प्रति

अवज्ञा होगी। ऐसे अनेक मित्र नेपाल में हैं जो आपके प्रति गहरे भाव से भरे हैं, पर आपके पास आने से बचते रहते हैं। भगवान, प्रेम के साथ इतना गहरा भय क्यों जुड़ा होता है?

प्रेम का अर्थ ही होता है, तुम्हें अपना अहंकार छोड़ना होगा। वही भय है। प्रेम का अर्थ होता है कि तुम्हें मरना होगा। वही भय है। प्रेम मृत्यु है और पुनर्जन्म भी। लेकिन मृत्यु पहले हैं, पुनर्जन्म पीछे। सूली पहले है, सिंहासन पीछे है। सूली की आड़ में सिंहासन छिपा है। तो जो भी मेरे प्रति प्रेम से भरेंगे वे भयभीत भी होंगे, वे आने से डरेंगे भी। क्योंकि अगर आए तो फिर लौटना नहीं होगा। आए तो फिर लौटना नहीं हो सकता है; फिर मेरे साथ डुबकी लेनी ही पड़ेगी। फिर जिंदगी का क्या रंग होगा, क्या ढंग होगा, कौन जाने?

सबने एक तरह की जिंदगी बना ली है। एक तरह की व्यवस्था खड़ी कर ली है। एक तरह की सुरक्षा! मुझसे संबंध जुड़ा तो सब अस्तव्यस्त होगा, अराजकता हो जाएगी। इससे भय होता है। भय स्वाभाविक है। भय इसी बात का सबूत है कि सच में ही मेरे प्रति प्रेम जगा है। जो मेरे पास बिना भय के आ जाता है, वह इसीलिए आ पाता है कि या तो इतना साहसी है कि भय के बावजूद आ जाता है; या, प्रेम ही नहीं है। इसलिए भय का कोई कारण ही नहीं है। मजे से आ जाता, जैसे और जगह जाता है। ऐसे यहां भी आ जाता है।

तुम पूछते हो, डा. दुर्गा प्रसाद भंडारी आने में डरते क्यों हैं? और इतना प्रेम उन्हें है कि जब कोई संन्यास लेकर लौटता है काठमांडू, तो वे नाचते हैं आनंद में। और मेरे खिलाफ कोई कुछ बोलता है तो हाथापाई पर उतर आते हैं। पर यहां आने का अवसर आता है तो घबड़ा जाते हैं और आने से बच जाते हैं।

उनसे जाकर कहना कि अब बचने का कोई उपाय नहीं है। वे यहां नहीं आए, लेकिन मैं वहां पहुंच गया हूं। थोड़ी-देर-अबेर कर सकते हो। मुझे चुनने में वे देर लगा रहे हैं और मैंने उन्हें चुन लिया है। थोड़ी-बहुत देर से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। अच्छा यही होगा, अब देर करना व्यर्थ है। यह संन्यास का पागलपन होकर ही रहेगा। उनसे कहना, मन तो रंग ही गया है, अब तन भी रंग डालो।

और भय स्वाभाविक है। मगर एक बार आ जाएंगे तो भय चला जाएगा। सूली की आड़ में सिंहासन है, उनको कह देना।

संन्यास में पहले तो मृत्यु घटती है, शिष्य अपने को मिटने की घोषणा करता है। संन्यास और क्या है? इस बात की घोषणा है शिष्य की तरफ से कि अब से मैं नहीं। अब से गुरु की आज्ञा, आज्ञा होगी। अब से गुरु के चरणचिन्ह मार्ग के सूचक होंगे। अब अगर मेरा मन कुछ कहेगा तो मैं नहीं सुनूंगा, अगर वह गुरु के विपरीत जाता होगा। अब एक ही सुनने का उपाय रह गया, वह गुरु है। अपने से ज्यादा मूल्यवान किसी को बना लेने का अर्थ होता है, गुरु की तलाश। अपने को इनकार किया जा सकता है, लेकिन गुरु को इनकार नहीं किया जा सकता। इसलिए हिम्मतवर, साहसी और जुआरी ही शिष्य हो पाते हैं।

उनसे कहना, एक बार आ जाओ! मैं राह देखता हूं। आना तो पड़ेगा ही, जितनी देर करोगे उतना समय व्यर्थ गया। उतना पीछे पछताओगे। क्योंकि जो यहां आकर डुबकी लगा लेते हैं, वे फिर मुझसे कहते हैं कि अब हमें भरोसा नहीं आता कि हम इतनी देर तक आए क्यों नहीं, इतनी देर तक हम डूबे क्यों नहीं, इतनी देर तक हम अपने-आप को रोके कैसे रहे? बस इतना उनसे कह देना।

और उनसे कहना कि तुम्हें सिंहासन भी पीछे छिपा दिखायी पड़ रहा है, थोड़ी हिम्मत जुटाओ। बस यहां आ जाओ, बाकी काम अपने से हो जाएगा।

और जो मित्र सोचते हैं कि शिवपुरी बाबा के शिष्य हैं और मेरे प्रेम में भी दीवाने हो रहे हैं, अब उन्हें भय है कि संन्यास लेने से कहीं पूर्व-गुरु के प्रति अवज्ञा न हो जाए। मैं जो काम कर रहा हूं, वह वही है जो शिवपुरी बाबा का काम था। वह अगर मेरे प्रेम में दीवाने हो सके हैं तो सिर्फ इसीलिए कि जो उन्होंने शिवपुरी बाबा में पाया था, वह फिर उन्हें मुझमें दिखायी पड़ा है। किसी भी सदगुरु का काम किसी अन्य सदगुरु के विपरीत नहीं है—असदगुरुओं के विपरीत है, सदगुरुओं के विपरीत नहीं है। शिवपुरी बाबा से मेरा लगाव है। इस सदी के वे

उन थोड़े-से लोगों में एक थे, जिन्होंने पाया। तो उनको कहना कि वे मुझमें शिवपुरी बाबा को ही पाएंगे। जरा भी चिंता न करें। अवज्ञा नहीं होगी। अगर वे न आए तो अवज्ञा होगी। थोड़ा पहचानें, थोड़ा खोजें। उनके गुरु प्रसन्न होंगे जहां भी होंगे। संभावना तो यही है कि शिवपुरी बाबा ने ही उनके भीतर इशारा किया होगा।

यहां बहुत लोग हैं, जो इस तरह के इशारे से आए हैं। गुर्जिएफ के बहुत-से शिष्य यहां आए हैं। वे गुर्जिएफ के इशारे से आ रहे हैं। झेन-परंपरा को मानने वाले बहुत से लोग आ रहे हैं, वे भी ऐसे ही इशारों से आ रहे हैं। जिनका इस जन्म में या किसी और जन्म में कभी किसी सदगुरु से साथ रहा है, वे आ ही जाएंगे।

उनका रुकना तर्कयुक्त मालूम होता है, लेकिन उसमें बहुत गहरी समझ नहीं है। वे शिवपुरी बाबा से ही पूछ लें अपनी प्रार्थना में और मैं उनसे कहता हूं कि शिवपुरी बाबा को स्वीकार होगा। न केवल स्वीकार होगा, बल्कि शिवपुरी बाबा आनंदित होंगे। यहां जो मैं काम कर रहा हूं, वही काम है—और बड़े विराट पैमाने पर—जो शिवपुरी बाबा करना चाहते थे और नहीं संभव हो सका। समय पका नहीं था। अब समय पक गया है।

कहना उनसे कि मुझसे जो प्रेम लग रहा है, वह सूचक है।

पड़ता है पांव ठीक जो तारीक राह में

ऐ चश्म, रोशनी यह किसी नक्शे-पा की है

वह जो मेरी बात में पगे जा रहे हैं, रसविमुग्ध हो रहे हैं, वह सिर्फ इसीलिए है कि उन्होंने पहले किसी और रोशन व्यक्ति को जाना और देखा था। नेपाल का धन्यभाग था कि शिवपुरी बाबा वहां रहे। अभी लोग जिंदा हैं नेपाल में जो शिवपुरी बाबा के चरणों में बैठे हैं। अगर उन्हें मुझसे रस लगा जा रहा है, तो उसका और कोई कारण नहीं है। जो उन्होंने शिवपुरी बाबा में पाया था, उसकी भनक फिर उन्हें सुनायी पड़ी है। फिर वही वीणा छेड़ी गयी है।

उनसे कहना, मैं प्रतीक्षा करता हूं। कहना उनसे—

अब हेमंत-अंत नियराया, लौट न आ तू, गगन-बिहारी।

खोल ऊषा का द्वार झांकती

बाहर फिर किरणों की जाली,

अंबर की ड्योढ़ी पर अटकी

रहती फिर संध्या की लाली

राह तुझे देने को कटते,

छटते, हटते नभ के बादल,

अब हेमंत-अंत नियराया, लौट न आ तू, गगन-बिहारी।

जिन सूनी, सूखी साखों में

होता तू दिन एक गया था,

मुझको था मालूम कि उनको

मिलने को पहराव नया था,

नयी-नयी कोमल कोंपल से

लदी खड़ी हैं तरु-मालाएं

फूट कहीं से पड़ने को है सहसा कोयल की किलकारी।

अब हेमंत अंत नियराला, लौट न आ तू, गगन-बिहारी

हिम की चादर फाड़ उभरती

धरती फिर से तिनकों वाली

करती है अभिसार कुसुम के

रंगों से मधुबन की डाली,

जलज निकलकर जल के तल पर

जोह रहे हैं बाट किसी की,

कानों में कुछ भेद भरी-सी कह जाती है वात बहारी।

अब हेमंत-अंत नियराया, लौट न आ तू, गगन-बिहारी।

नीड़ तैयार हो गया है। और जिन्हें भी इस नीड़ में निवास करना हो, वे आ जाएं, और देर न करें। जिन्हें भी खोज है वे आ जाएं, और प्रतीक्षा न करें।

प्रतीक्षा महंगी पड़ सकती है!

चौथा प्रश्नः भगवान, अब तैयार हूं। तारीख तेरह अप्रैल को मेरा इकसठवां जन्मदिन है। आपके चरणों में संन्यस्त होने के लिए आ गिरूंगा। एक साल से करीब दफ्तर भी नहीं जाता; बच्चों को कारोबार सौंप दिया है। गत वर्ष में ही ले लेता था संन्यास, लेकिन रुक गया इस भय से कि बच्चे ठीक से कारोबार चलाएंगे या नहीं? आप की कृपा से सब ठीक चल रहा है। अब आपके सान्निध्य में पूना में ही ठहरना चाहता हूं। आप ही मेरे शेष जीवन के एकमात्र आधार, सदगुरु और इष्टदेव हो।

मेरे ध्यान में कोई गति हो रही है, ऐसा महसूस नहीं होता। लगता है कि चिदाकाश में कोई रंगों की मिलावट होती है और मिटती है। कुछ विचार के बादल आते हैं और जाते हैं। और कुछ भी नहीं होता। समर्पण तो आपको कर चुका हूं, आप जो कहें वही मेरा कर्तव्य, वही मेरा काम। आज्ञा की प्रतीक्षा में!

पूछा है साधु आनंद चित्त ने।

मैं तो रोज ही प्रतीक्षा कर रहा था कि कब आओ! ध्यान की गति की चिंता न करो, संन्यास के होते ही अपूर्व गति होगी। संन्यास में जो बात बाधा थी, वही बात ध्यान में भी बाधा थी। उसमें भेद नहीं है। वही चिंता कि बच्चे सम्हाल पाएंगे कारोबार या नहीं? बच्चे घर-द्वार सम्हाल पाएंगे या नहीं, वही चिंता संन्यास में बाधा थी, वही चिंता ध्यान में भी बाधा थी। ध्यान और संन्यास भिन्न-भिन्न थोड़े ही हैं। संन्यास बाहर का ध्यान है, ध्यान भीतर का संन्यास है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस दिन तुम संन्यास में डूबोगे, उसी दिन ध्यान में गति शुरू हो जाएगी।

संन्यास की तैयारी इस बात की सूचना है कि अब इस जगत की चिंताओं में और पड़े रहने की आकांक्षा नहीं रही। समय आ गया है—समय बहुत देर से आया हुआ है—तुम्हीं देर कर रहे थे। फिक्र न लो! और मन में यह जो रंगों कि मिलावट मालूम होती है, और मन में ये जो विचार के बादल आते-जाते हैं, इनके केवल साक्षी बन जाना है। इन्हें सिर्फ देखना है और जानना है कि मैं इनसे पृथक हूं, इनसे अन्य हूं। जो व्यक्ति विचारों से अपने को अन्य जान लेगा, वह एक दिन परमात्मा से अपने को अनन्य जान लेगा। विचार से अपने को अन्य जानना, परमात्मा से अनन्य जानने का उपाय है।

इन रंगों में खोना मत, कभी-कभी रंग बड़े सुहावने भी हो सकते हैं, कभी-कभी बड़े प्यारे भी हो सकते हैं। कभी बड़े मनमोहक। और ऐसी मूढ़ताएं प्रचलित हैं लोगों में कि शायद ये सब रंग और रोशनियां बड़े आध्यात्मिक अनुभव हैं! इनमें कुछ आध्यात्मिक नहीं है। ये सब मानसिक जगत के खेल हैं। ये सब सपने हैं, जिनका कोई मूल्य नहीं है। इनमें उलझना मत। इनमें कोई उलझे, तो इनके रंग निखरते जाते हैं। और-और मीठी-मीठी अनुभूतियां होने लगेंगी। और-और सुंदर दृश्य खुलने लगेंगे। उनमें खो मत जाना, द्रष्टा की याद करो! कोई दृश्य काम का नहीं है। बाहर के दृश्य व्यर्थ हैं, भीतर के दृश्य व्यर्थ हैं। बाहर के अनुभव व्यर्थ हैं, भीतर के अनुभव व्यर्थ हैं। मैं तुमसे कहना चाहता हूं—आध्यात्मिक अनुभव जैसी कोई चीज होती ही नहीं। सब अनुभव सांसारिक हैं। अध्यात्म का अर्थ ही है, अनुभव के पार आ गये। अध्यात्म का अर्थ ही है कि अब अनुभव में रस नहीं रहा। अब तो जो अनुभव जिसको हो रहा है, उस द्रष्टा में ही रस है। जिस दिन सब दृश्य खो

जाते हैं, सब अनुभव खो जाते हैं, और द्रष्टा अकेला रह जाता है, उस दशा को कैवल्य कहा है। वही दशा समाधि की है। यहां संन्यास के माध्यम से उसी दशा की यात्रा चल रही है।

बस ऐसा करो कि जल्दी तेरह अप्रैल आ जाए! ऐसे तेरह अप्रैल के लिए भी रुकने की कोई जरूरत नहीं है। हम कुछ न कुछ बहाने खोजकर टालते रहते हैं। आज का दिन उतना ही शुभ है जितना तेरह अप्रैल का होगा। अब और पंद्रह दिन क्यों सरकाते हो? और फिर किस को पता है, पंद्रह दिन में क्या हो जाए! जब शुभ करने की आकांक्षा हो तो क्षणभर मत टालना। और जब अशुभ करने की आकांक्षा हो तो जितना टाल सको, टालना। लेकिन हम ऐसा करते नहीं, इससे उल्टा ही करते हैं। क्रोध होता है तो हम अभी करते हैं, प्रेम होता है तो हम कहते हैं—कल। किसी को गाली देनी हो तो हम अभी दे देते हैं और किसी से क्षमा मांगनी हो तो हम कहते हैं—विचार करेंगे।

बुरा करना हो तो रुकना। क्योंकि जिस चीज को भी करने के लिए तुम रुक जाओगे, शायद होगी ही नहीं। जैसे-जैसे समय बीतेगा, वैसे-वैसे उसका प्रभाव कम होता जाएगा। शुभ को करना हो तो तत्क्षण कर लेना। क्योंकि कौन जाने रुकने से उसका प्रभाव कम हो जाए।

अभी आनंद चित्त यहां आए हुए है, एक भाव-रंग में डूब गये हैं, अब घर लौटेंगे...अब वह कहते हैं कि आपकी सब कृपा से ठीक चल रहा है। मेरी कृपा का कोई हाथ नहीं है, क्योंकि मैं किसी का कारोबार नहीं चलाता हूं!...अब पंद्रह दिन में कारोबार ठीक न चले, कुछ अड़चन आ आए, कोई बैंक का दीवाला निकल जाए, कोई आदमी उधार ले जाए और लौटाए न—हजार झंझटें हो सकती हैं। अब तुम मुझ पर छोड़ रहे हो! इन झंझटों से मैं तुम्हें निकालना चाहता हूं, तुम मुझे इन झंझटों में खींचना चाहते हो!

पंद्रह दिन में बहुत कुछ हो सकता है। सब कुछ हो सकता है। पंद्रह दिन में सारी दुनिया उलटी-सीधी हो सकती है। पंद्रह सेकेंड का भरोसा मत करो।

और अब पुराने जन्मदिन से क्या लेना-देना, संन्यास नया जन्मदिन होगा! असली जन्मदिन होगा। इकसठ साल पहले तुम्हारी देह जन्मी थी, मैं तुम्हारी आत्मा को जन्म देने को तैयार हूं। तुम कहते हो, पंद्रह दिन रुको!

शुभ को जब भी करने का भाव आ जाए, तत्क्षण कर लेना। आदमी का मन बड़ा कमजोर है।

मार्क ट्वेन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं एक दिन चर्च में गया। और चर्च के पुरोहित ने जो प्रवचन दिया, अदभुत था। दस मिनिट सुनने के बाद मुझे ऐसा लगा, ऐसा मैंने कभी सुना नहीं। जेब में मैंने टटोल कर देखा तो सौ डालर का नोट था। मन में भाव आया कि सौ ही डालर आज दान कर जाऊंगा। कभी चर्च को दान भी नहीं दिया था, मगर उस दिन बड़ा भाव उठा, वह वाणी ऐसी थी!

फिर आधा घंटा सुनने के बाद उसे लगा कि इतना, सौ डालर देने जैसा नहीं है। सौ डालर बहुत होते हैं। कोई मुफ्त नहीं आते! हजार तरह के विचार उठे। असल में सौ डालर देने के खयाल के कारण प्रवचन सुनना बंद ही हो गया। वह दूसरी बातों में लग गया कि यह सौ डालर! मजाक है! समझा क्या है! इसलिए वह प्रवचन से उसका तारतम्य भी टूट गया। आधे में उसने सोचा कि नहीं, सौ बहुत हैं, दस डालर से काम चल जाएगा। थोड़ी निश्चिंतता आयी, थोड़ी हलकी सांस ली।

मगर फिर और दस मिनट सुना, उसने सोचा कि दस डालर! सप्ताह भर मेहनत करो तब दस डालर मिलते हैं। और यह आदमी कर ही क्या रहा है, लफ्फाजी कर रहा है! शब्द-शब्द-शब्द—और है क्या? जरा गौर से देखा कि आदमी है भी कुछ! कुछ दिखायी नहीं पड़ा। वह दस डालर के कारण दिखायी भी न पड़े। क्योंकि अगर दिखायी पड़े तो दस डालर देने पड़ेंगे। तो उसने सोचा कि एक डालर बहुत है दुनिया में कोई ऐसा देता है! यहां इतने लोग बैठे हैं, एक डालर भी कोई पूरा नहीं देगा। कोई आठ आने देगा, कोई चार आने देगा, इस तरह लोग देंगे। चर्च की थाली जब फिरती है तो कौन पूरा सिक्का देता है! एक से काम चल जाएगा।

लेकिन जो चित्त सौ से दस पर लाया, दस से एक पर लाया, वह इतनी जल्दी राजी तो नहीं हो जाता! प्रवचन पूरा होते-होते उसने सोचा कि, मैंने किसी से कहा तो है नहीं कि एक दूंगा ही! यह तो मेरे भीतर की बात है। यह तो मेरी तरंग थी। कोई जबर्दस्ती है, कि देना ही पड़ेगा? और तब उसने कहा कि नहीं देंगे, कुछ देने की आवश्यकता नहीं है। ये मुफ्तखोर! ये चर्च और ये सब—यह सब शोषण है! बड़ी बातें आने लगीं खयाल में कि सब शोषण है। मार्क्स ने कहा है कि धर्म अफीम का नशा है। और जितने नास्तिकों के वचन मालूम थे सब उसने दोहरा लिये—वह एक डालर की वजह से दोहराने पड़े नहीं तो एक डालर हाथ से जाता है!

और तब उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं प्रवचन पूरा होने के पहले ही उठ आया, क्योंकि मुझे यह डर लगा कि जब तक थाली मेरे सामने आएगी, कहीं मैं उसमें से कुछ उठा न लूं। कि बहती गंगा, हाथ धो लो!

ऐसा आदमी का मन है। ऐसा हम सब का मन है। मन का यह स्वभाव है। मन तुम्हें उन सब बातों की तरफ जाने से रोकता है जहां मन को खतरा है। संन्यास में खतरा है, ध्यान में खतरा है। क्योंकि ये मन की आत्महत्याएं हैं। ये मन के पार जाने के उपाय हैं।

तो मैं तो कहूंगा आनंद चित्त, रुको मत। कहां की तेरह अप्रैल! एक अप्रैल के बाद लोग बुद्धू होना शुरू हो जाते हैं। एक अप्रैल को हालत खराब हो जाती है, तेरह तक तो तेरह गुनी हो जाती है। तुम अप्रैल के पहले ही निपटा लो!

अंतिम प्रश्नः भगवान, क्या इस प्यास का कभी अंत होगा, जिसने मुझे दीवाना बना दिया है? जिसने प्राणों को शूल की भांति छेद दिया है। प्रतिक्षण जो एक ज्वाला की भांति सीने में धधकती रहती है। आह! किसे मैं अपने हृदय की बात बताऊं! इस भीड़-भरी दुनिया में मैं एकदम अजनबी और नितांत अकेला हूं। कब उठेगा उस अज्ञात रहस्य के द्वार से वह पर्दा?

उस द्वार पर कोई पर्दा नहीं है, पर्दा तुम्हारी आंख पर है। उस द्वार पर पर्दा है, यह तुम्हारे मन की भ्रांति है और मन की तरकीब है। क्योंकि फिर तुम्हारे हाथ के बाहर बात हो गयी—उसके द्वार पर पर्दा है। अब जब वह उठाएगा, तब उठेगा। तुम्हारे किये तो कुछ हो नहीं सकता। इस भांति तुमने अपने को बचा लिया।

मैं तुमसे कहना चाहा हूं, मैं तुम्हें बचने की कोई जगह नहीं देना चाहता, तुम्हें बचने का कोई उपाय नहीं बचने देना चाहता। मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारी आंख पर पर्दा है। सूरज तो निकला है, तुम आंख बंद किये खड़े हो। अब तुम कहते हो कि हे प्रभु, कब सूरज पर से पर्दा उठेगा! पर्दा ही नहीं है। तो उठेगा कैसे? और चूंकि पर्दा है ही नहीं, उठेगा नहीं, तुम बैठे राह देखते रहोगे कि पर्दा उठे तो हम सूरज को देखें। और जरा-सी पलक उठाने की बात है, पर्दा-वर्दा कहीं भी नहीं है। पलक ही पर्दा है। यह तुम्हारी आंख पर जो पलक है, यही पर्दा है।

तो पहले तो यह स्मरण कर लो कि परमात्मा छिपा नहीं है, परमात्मा प्रकट है। तुम छिपे हो! तुम घूंघट डाले बैठे हो! हटाओ घूंघट। घूंघट के पट खोल! कल मैं एक कवि की पंक्तियां पढ़ रहा था—

वहां परदे को जुंबिश तक नहीं है

यहां पहलू में दिल बस थर्रा रहा है

थर्राते रहो! वहां कोई पर्दा ही नहीं है, जुंबिश कहां से होगी?

पर्दा हमारी आंख पर है। परमात्मा मौजूद है। उसने तुम्हें घेरा है इस वक्त सब तरफ से। ये पक्षियों के गीत सुनते हो? इसमें उसीने पुकारा है। यह वृक्षों का सन्नाटा सुनते हो? इसमें वही चुप होकर खड़ा है। ये सूरज की किरणें देखते हो? यह तुम्हारे पास बैठे हुए इतने शांत, आनंदमग्न लोग देखते हो? इनमें वही बैठा है। सब तरफ वही है। पर्दा आंख पर है। और पर्दा कुछ बड़ा नहीं, दो पलकों का है। जरा आंख खोलो।

तुम पूछते हो, क्या इस प्यास का कभी अंत होगा? जब तक तुम न मिटोगे तब तक नहीं अंत होगा। भक्त न मिटे, तब तक प्यास का अंत नहीं। भक्त मिटे, कि बस प्यास का भी अंत हो गया। भक्त मिटा कि तृप्ति। भक्त मिटा कि भगवान—पराभक्ति। तुम अगर चाहो कि मैं बना रहूं और परमात्मा को जान लूं, तो अंत कभी भी

होनेवाला नहीं है। आज तक किसी मनुष्य ने अपने को बचाकर परमात्मा को नहीं जाना है। अपने को गंवा कर जानना होता है। यही कीमत है जो चुकानी पड़ती है।

हालांकि समझदारी हमारी कहती है कि अपने को बचाकर जानने की कोई तरकीब हो तो अच्छा रहे—खुद भी बच जाएं, उसे भी जान लें। हम दोनों हाथ लड्डू चाहते हैं। यह नहीं हो सकता। यह नियम के अनुकूल नहीं है। तुम मिटो, तो परमात्मा होओ। प्यास तो तुम जरूर मिटाना चाहते हो, मगर प्यासे को नहीं मिटाना चाहते। तुम कहते हो, प्यासा ही मिट गया कि सार क्या? फिर प्यास मिटी कि नहीं मिटी, हमें पता कैसे चलेगा? हम ही मिट गये, फिर परमात्मा मिला तो मिलने में मजा ही क्या? तुम कहते हो, हम भी रहें, और तू भी रहे—कुछ ऐसा कर। फिर नहीं हो पाता। प्रेम गली अति सांकरी तामें दो न समायं।

क्या इस प्यास का कभी अंत होगा? तुम जिस दिन समाप्त होओगे, उसी दिन इसका अंत हो जाएगा। जिसने मुझे दीवाना बना दिया है। जिसने प्राणों को शूल की भांति छेद दिया है। प्रतिक्षण जो एक ज्वाला की भांति सीने में धधकती रहती है। क्या इस प्यास का कभी अंत होगा? तुम्हारे अंत के साथ ही! यह बीमारी ऐसी है कि बीमार मरेगा तो मिटेगी।

इस संबंध में ठीक से समझ लेना।

आमतौर से जब हमारी बीमारी होती है तो हम बीमार को बचाते हैं और बीमारी को मिटाते हैं। यह बीमारी साधारण बीमारी नहीं है। यह तो बीमार ही मरेगा, तो ही जाएगी। यह तो ठीक से समझो तो बीमार का होना ही बीमारी है। यह बीमार से अलग बीमारी नहीं है, बीमार ही बीमारी है तुम जाओ, तुम विदा हो जाओ। तुम अस्त हो जाओ। तुम्हारे अस्त होते ही परमात्मा प्रकट हो जाएगा। सूर्योदय हो जाएगा। तुम जब तक रहोगे तब तक पीड़ा। तब तक यह कांटा चुभेगा, बुरी तरह चुभेगा।

और इतना पक्का है कि तुम्हारे भीतर प्यास गहरी हो रही है। और अग्नि भभकेगी! और ज्वाला लपटेगी! और तुम जलोगे! और मेरा सारा उपाय यहां यही है कि तुम्हारी प्यास को भड़का दूं—इतना भड़का दूं, कि प्यास में प्यासा डूब जाए और समाप्त हो जाए। तुम्हारी आग को इतना भड़का दूं, तुम्हारी विरह की अग्नि को ऐसा जला दूं कि विरही उसी अग्नि में जल जाए और राख हो जाए। तुम्हारी राख पर ही परमात्मा का मंदिर उठता है।

यह प्यास बुझ सकती है। यह ज्वाला भी शांत हो सकती। है। इस विरह का अंत है। मिलन होता है। और मिलन के लिए ही हम सब तलाश कर रहे हैं—कोई ठीक ढंग से, कोई गलत ढंग से।

और जो अंतिम भूल है, वह तुम्हें स्मरण दिला दूं। अंतिम भूल यही है कि खोजी अपने को बचाना चाहता है। कबीर ने कहा हैः

हेरत हेरत है सखी, रहया कबीर हिराइ।

जब कबीर खोजते-खोजते खो गया...

बूंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाइ।।

फिर बूंद सागर में गिर गयी। अब उसे वापिस कहां पाया जा सकता है! जिस दिन तुम परमात्मा को पा लोगे, फिर अपने को वापिस न पा सकोगे—बूंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाइ। इतना ही नहीं, कबीर ने बाद में इस वचन में थोड़ा सुधार भी किया, जो बहुत अपूर्व है। बाद में उन्होंने इसमें सुधार किया—

हेरत-हेरत है सखी, रह्या कबीर हिराइ।

समुंद समाना बूंद में सो कत हेरी जाइ।।

पहले तो ऐसा ही लगता है कि बूंद सागर में गिर गयी, अब कैसे खोजा जाए? मगर उससे भी बड़ी घटना बाद में पता चलती है कि सागर बूंद में गिर गया। अब तो और मुश्किल हो गयी। विराट क्षुद्र में समा गया। सागर बूंद में समा गया। अब तो खोजने की कोई जगह न रही।

सच तो यह है कि न तो बूंद सागर में गिरती है और न तो सागर बूंद में गिरता है, दोनों एक-दूसरे में गिर जाते हैं। न तो सागर बचता है फिर, न बूंद बचती है। कुछ बचता है जो अगोचर है, अदृश्य है, अवक्तव्य, अव्याख्य है।

उसी अव्याख्य की जिज्ञासा में हम गये। उसी अगोचर की, उसी अदृश्य की हमने तलाश की। एक तलाश पूरी हुई—एक बौद्धिक तलाश। अब दूसरी तलाश तुम शुरू करो—अस्तित्वगत। वहां मिटना होगा, चलना होगा, समाप्त होना होगा। मरने को जो राजी हैं, बस धर्म उन्हीं का है। मिटने को जो राजी हैं, परमात्मा उन्हीं को मिलता है।

अथातो भक्तिजिज्ञासा!

आज इतना ही।